आठवां तरङ्ग ।

दूसरे दिन रात्रिके समय राजकुमार नरवाहनदत्त अपने भवन में विराजमान थे, उसी अवसर पर सब मन्त्री भी आ गये, इधर उधर की बातें हो रही थीं पर उनका मन तो शक्तियशा के हेतु अत्यन्त उत्कण्ठित था किसी प्रकार चित्तविनोद होताही नहीं सो अति व्याकुल हो उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री और मित्र गोमुख से कहा कि सखे कोई ऐसी बात छेड़ते कि चित्त को कुछ शान्ति होती। उनकी आज्ञा पाय परम प्रवीण गोमुख मन्त्री ने क्रमानुसार कथाओं का प्रारम्भ किया।

किसी नगर में देवशर्म्मा नामक ब्राह्मण रहता था, उसकी भार्य्या का नाम देवदत्ता, जो उसके समान कुल की थी। ब्राह्मणी कुछ कालोपरान्त गर्भिणी हुई और समय पर पुत्र जनी। देवशर्म्मा दरिद्र था, इस दुरवस्था में रहके भी पुत्ररत्न पाय वह अपने को धन्य समझने लगा, ऐसा प्रमुदित रहता मानों उसे निधि मिल गई हो। सूतीगृह से निकलने के उपरान्त एक दिन उसकी भार्य्या नदी में स्नान करने गयी और देवशर्म्मा घर में बालक की रखवाली करता रहा। ब्राह्मण पूजापाठ करके अपना जीवननिर्वाह किया करता था, उसी अवसर में राजा के अन्तःपुर से बुलावा लेकर एक चेरी आई। अब ब्राह्मण बड़े असमञ्जस में पड़ा कि बालक की रक्षा में किसको रख जाऊँ, यदि नहीं जाता तो दक्षिणा मारी जाती है। उसके घर में एक नेवला था जो कि बचपन से पला पोसा था सो ब्राह्मण ने सोचा कि इसेही रक्षक कर चलूं, अस्तु उसी आबाल्यपोषित नकुल को बालक का रखवाला कर वह चला गया। उसके चले जाने पर अकस्मात् एक सांप उस बालक के समीप आ गया, सर्प को देखतेही स्वामिभक्त नेवले ने उसे मार डाला। इतने में देवशर्म्मा आ गया, उसे दूर से देखतेही नेवला अति प्रहृष्ट हो उसके आगे दौड़ आया; उसके मुंह में सर्प का लहू लगा था जिससे ब्राह्मण ने समझा कि निश्चय इस दुष्ट ने मेरे बालक पुत्र का बध कर डाला, ऐसा विचार कर एक पत्थर पटक उस नेवले को मार डाला। जब वह घर के भीतर गया तो क्या देखता है कि नेवले का मारा वह सांप पड़ा है और बालक जीता जागता खटोले पर लेटा है; यह देख उसे बड़ाही सन्ताप हुआ। इतने में उसकी भार्य्या

भी स्नान कर लौट आई, जब उसे ब्राह्मण की अविमृष्यकारिता का वृत्तान्त विदित हुआ तब वह उसे धिक्कारने लगी।

इतनी कथा सुनाय गोमुख फिर बोला कि देव! इसीसे कहा है—

कुण्डलिया।

विना विचारे जो करै सो पाछे पछिताय।
काम विगारै आपनो जगमें होत हँसाय॥
जगमें होत हँसाय चित्तमें चैन न पावै।
खानपान सनमान राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टर न टारे।
खटकत है मनमांहिँ कियो जो बिना विचारे॥

सो देव! कोई काम हो सहसा न कर बैठे, बुद्धिमानी इसी में है। जो कोई सहसा कर बैठता है दोनों लोक से जाता है और फिर अविधिपूर्वक जो कार्य किया जाता है उसका फल भी विपरीतही होता है। सुनिये आपको इसी विषय में एक कथा सुनाता हूं।

किसी पुरुष को वायु रोग हो गया था, वह किसी वैद्य के यहां उसकी चिकित्सा के हेतु गया, वैद्य ने उसे बस्तीकर्म्म को कुछ औषधि दी और उससे कहा कि घर चलकर इसे पिसवा रक्खो मैं अभी आता हूं तो इसके प्रयोग की विधि बतला देऊँगा। इतना कह वैद्य कहीं चला गया, उसके आने में कुछ विलम्ब हुआ सो वह मूर्ख औषधि पीसपास पानी में घोर पी गया। फल और का और हो गया कहां लाभ कहां कुछ उलटे प्राणों का सङ्कट आ पड़ा, "आह मैय्या" "हाय बप्पा" होने लगा; इसी अवसर में वैद्य आ गया, देखे तो यह दशा सङ्कटित है, सो उसने झटपट वमन कराया और बड़े २ कष्ट से मरते २ उसे बचा लिया। वैद्य ने कहा "अरे मूर्ख! बस्ती का औषध तो गुदा में डाला जाता है; कहीं पीया भी जाता है? छिः! तू बड़ाही मूर्ख है; भला मेरे आने की प्रतीक्षा तो कर लेनी थी," इस प्रकार उसे धिक्कार दे वैद्य चला गया।

इस प्रकार कथा सुनाय गोमुख बोला "महाराज! इस रीति से जो कार्य्य अविधिपूर्वक किया जाता है उसका फल अनिष्टही होता है इससे बुद्धिमान् को उचित है कि विधि का त्याग कर कुछ भी कार्य न करे क्योंकि बिना विचारे जो कोई कुछ कार्य्य करता है वह निन्दाभाजनही होता है। सुनिये इस विषय में आपको एक कथा और सुनाता हूं।

किसी स्थान में एक बड़ा मूर्खचपाट रहता था। वह एक दिन परदेश को चला, उसका पुत्र भी उसके साथ लगा; जाते २ एक बन पड़ा, वहीं पर सब पथिक टिक गये, सभों ने डेरा किया; पिता पुत्र उन दोनों का भी डेरा पड़ा। सब लोगों के टिक जाने पर उसका पुत्र वन में विहार करता कुछ दूर निकल गया, वहां बन्दरों ने उसे बहुत दिक किया, नोचनाच के उसे व्याकुल कर डाला किसी प्रकार वह जीता हुआ अपने पिता के पास भाग आया; उसके पिता ने पूछा कि यह क्या हुआ? वह तो ऋच्छ (१) के नाम से अपरिचित था सो कहने लगा कि वन में कुछ लोमश (२) फलभक्षी जन्तुओं ने मुझे बहुत दिक किया है। यह सुनतेही उसका पिता आग बबूला हो गया और तलवार खींचकर उस वन की ओर दौड़ा आगे जाकर क्या देखता है कि अनेक जटिल तपस्वी फल खा रहे हैं सो वह उन्हीं पर टूटा कि बस येही वे फलभक्षी लोमश जन्तु हैं जिन्होंने मेरे बेटे को नोचा बकोटा है। वहीं एक बटोही (विश्राम करता था उसने उसे रोका और कहा कि यह क्या अनर्थ कर रहा है, मैं तो देखताही रहा, तेरे पुत्र को ऋच्छों ने दिक किया है तू तपस्वियों का बध क्यों किया चाहता है? सो वह इस तापसबधरूपी महापाप से दैवात् बचकर अपने गोल में चला गया।

गोमुख बोला "महाराज! इसीसे कहा है कि बिना भली भांति समझे बूझे

---

(१) यहां पहिले तो मर्कट शब्द आया है पश्चात् ऋच्छ, इससे यह भी अर्थ निकलता है कि भालुओं ने उसे दिक किया था, पीछे जटाधारी तपस्वियों के दृष्टान्त से भी भालूही का अर्थ द्योतित होता है; पर पूर्व में मर्कट (वानर) शब्द के आने से हमने उसी का प्रतिपादन किया है। "भालू" शब्द का ग्रहण कर यदि अर्थ किया जाय तो वैपरीत्य न होगा।

(२) लोम = रोआंवाले = जटिल = जटाधारी।

कोई कार्य्य न कर बैठना चाहिये; और क्या कहूं जीवधारी को सदा बुद्धि का सहारा लेना उचित है, नहीं तो जो लोग बुद्धि की शरण नहीं गहते वे हास्यास्पद होते हैं। सुनिये एक और कथा ऐसीही सुनाता हूं।"

एक निर्धन जन कहीं चला जा रहा था, मार्ग में उसे एक पड़ी हुई थैली मिली जिसमें सोने के सिक्के थे वह थैली किसी सार्थ (बटोही) की गिर पड़ी थी, उसके भाग्य से वह थैली उसे मिल गयी। अब वह मूर्ख आगे न बढ़ा किन्तु वहीं बैठकर थैली की मोहरें गिनने लगा; इतने में जो उस बटोही को स्मरण हुआ जिसकी थैली गिर पड़ी थी सो वह घोड़ा दौड़ाता वहीं आ पहुँचा, देखता क्या है कि यह गबद्द मोहर गिन रहा है, सो उसने उससे अपनी थैली छीन ली, यह लपोड़शङ्ख मुंह देखता रह गया। अब वह मूर्ख पाया हुआ भी धन गँवा, शोक करता नीचे मुख किये हुए चला गया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि राजकुमार! इसी प्रकार मूर्ख अपना पाया हुआ द्रव्य भी क्षणभर में खो बैठते हैं। अब आपको एक दूसरे मूर्ख की कथा सुनाता हूं।

कोई मूर्ख पर्वकाल के चन्द्रमा को देखा चाहता था, उससे एक जन ने, जो कि नवीन चन्द्रमा को देख चुका था (अथवा देख रहा था) कहा कि अंगुली के साम्हने देखो; वह मूर्ख आकाश की ओर न देख उसकी अंगुली कोही ओर देखता रहा, चन्द्रमा तो न दिखाई पड़े पर वह क्या देखता है कि लोग ठहाके मार हँस रहे हैं।

गोमुख बोला कि देव! कैसाही असाध्य कोई काम क्यों न हो पर बुद्धि के द्वारा सिद्ध हो जाता है। सुनिये इस विषय में आपको एक कथा सुनाता हूं।

कोई एक स्त्री किसी गांव को अकेली जा रही थी, मार्ग में उसे एक वानर मिला जो उसे दिक् किया चाहता था; वह उससे बचकर एक वृक्ष की आड़ में हो रही. कपि ने वहां भी उसका पिण्ड न छोड़ा तब वह उससे छिप २ कर पेड़ की पीड़ को चहुँओर घूमती और वानर भी दूसरी ओर उसी प्रकार घूमता; अन्त में वानर ने अँकवार से उस पेड़ की पीड़ धर ली, उधर से स्त्री ने उसके दोनों हाथ धर दबाये। अब तो उस मर्कट की अक्की बक्की सब भूल गयी, वह क्रोध के

मारे किचकिचाता पर बन क्या पड़ता। इसी अवसर में उस मार्ग से एक अहीर आ निकला, स्त्री ने उससे कहा कि महाभाग! टुक इस वानर के हाथ पकड़े रहते तो मैं अपना कपड़ा सम्भाल कर जूड़ा बांध लेती। उस दुष्ट ने कहा कि यदि मेरे साथ ऐसा २ काम करना स्वीकार करो तो मैं इसके हाथ पकड़े रहूं। उस स्त्री ने कहा "बहुत अच्छा क्या चिन्ता है।" तब उस अहीर ने कपि के दोनों हाथ पकड़ लिये, इसी अवसर में स्त्री ने छुरी निकालकर उस बन्दर का शिर उड़ा दिया, तब उस ग्वाल से कहा कि आओ चलें एकान्त में तब काम हो, इतना कह वह उस अहीर को बहुत दूर निकाल ले गयी. आगे जाकर कुछ बनियों का साथ मिल गया, सो वह चतुर नारी अपना धर्म्म बचाकर उन लोगों के साथ हो गयी और कुशलपूर्वक अभीष्ट ग्राम में पहुँच भी गयी यों अपनी बुद्धि के प्रताप से उस दुष्ट के फन्दे से बच निकली।

इतना कह गोमुख फिर बोला कि देव! बस बुद्धिही प्रधान तत्व है, लोक में बुद्धि बिना कुछ कार्य्यही नहीं चलता, जिसके धन नहीं होता वह जीता है, अपना काम चला लेता है. पर जिसके बुद्धि नहीं रहती वह नहीं जीता, वह संसार में अपना कार्य्य किसी प्रकार नहीं चला सकता। सुनिये महाराजकुमार! आपको एक अद्भुत कथा सुनाता हूं।

किसी नगर में घट और कर्पर नामक दो चोर रहते थे, उनमें से कर्पर एक रात सेन्ध देकर राजा की पुत्री के आवास-गृह में पैठा और घट को बाहरही छोड़ता गया, वहां पहुँचकर एक कोने में बैठ रहा। राजकन्या की जो नींद टूटी तो उसपर दृष्टि पड़ी, देखतेही कामबाण से विद्ध हो गई और चुपचाप बुलाकर उससे रमण करने लगी और रमण के अनन्तर बहुत सा द्रव्य देकर राजकुमारी ने कर्पर से कहा कि जो ऐसेही फिर आओगे तो और धन तुमको दूँगी। तब कर्पर ने बाहर आय सब वृत्तान्त घट को कह सुनाया और प्राप्त धन सब उसे दे घर भेज दिया। घट को विदा कर कर्पर पुन: उसी वेश्म में पैठा; ठीक है, काम और लोभ के वश में पड़कर पाप की कौन चिन्ता करता है! वहां तो यही धुन रहती है कि अब क्या, ले लिया है। अस्तु कर्पर वहां गया और राजकुमारी के साथ सुखपूर्वक रमण करके श्रान्त हो गया और श्रमापनोदनार्थ मदिरा पानकर छका-

छक्क हो उसी राजपुत्री को आलिङ्गन कर सो रहा, ऐसी सुख नींद आई कि उसे यह भी न विदित हुआ कि रात बीती । प्रात:काल सेन्ध देखकर रखवाले पैठे तो क्या देखते हैं कि यहां यह व्यापार है सो वे सब उसे पकड़ के बांधकर राजा के पास ले गये, राजा ने क्रोधान्ध हो उसके बध की आज्ञा दे दी । इधर से राजभट लोग उसे वध्यस्थल को लिये जा रहे थे कि उधर से उसका सखा घट उसके न जाने पर उसे ढूंढ़ने चला, मार्ग में दोनों की चार दृष्टि हुई तो कर्पर ने उसे सङ्केत से समझा दिया कि राजपुत्री को घर ले जाकर रखना, घट ने भी संकेतही से स्वीकारवाचक उत्तर दिया। इसके उपरान्त वधिकों ने कर्पर को ले जाकर पेड़ पर लटका के मार डाला ।

घट अपने मित्र कर्पर के मारे जाने से बड़ा शोकित हुआ और विलपता कलपता घर चला गया। किसी २ प्रकार दिन बीता, रात हुई बस घट सुरंग खोद राजकुमारी के घर में पैठा; राजपुत्री भी वहां हथकड़ियों में जकड़ी अकेली पड़ी थी, सो उन्हें देख घट बोला "राजपुत्री तुम्हारे कारण जो कर्पर आज बध किया गया है उसका मित्र मैं घट हूं, सो उसी के स्नेह से मैं तुम्हें लेने आया हूं, सो जबलों तुम्हारे पिता तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं करते तुम मेरे साथ चलो चलो। राजपुत्री यह सुन अति प्रसन्न हुई और उसके साथ जाने पर प्रस्तुत हुई, तब घट ने उसकी बेड़ियां काट दी। तब वह घट चोर आत्मसमर्पणकारिणी राजपुत्री को साथ ले उसी सुरंग के मार्ग से निकलकर अपने घर चला गया।

प्रात:काल होने पर राजा को विदित हुआ कि राजकुमारी के घर में सुरङ्ग खुदी है और वह भी नहीं है न जाने कौन उसे उड़ा ले गया; इस वृत्तान्त से राजा को बड़ा शोक हुआ, वह अपने मनमें चिन्ता करने लगे कि निश्चय उस हत दुष्ट का कोई संगी है, बस यह उसी का साहस है कि मेरी पुत्री को हर ले गया ऐसी चिन्ता कर राजा ने कर्पर के कलेवर पर पहरुए बैठाकर उनसे कहा कि जो कोई विलपता और रोता आवे और इसका शरीर दाहादि संस्कार के लिये मांगे उसे तुम लोग पकड़ रखना। इसी प्रकार मैं कुलाङ्गारिणी को पा जाऊंगा। इस प्रकार महीपति की आज्ञा पाय रखवाले बैठकर रात दिन उस कर्पर के कलेवर की रखवाली करने लगे।

उधर घट भी कर्पर के कलेवर की खोज में लगा था, किसी प्रकार उसे पता लग गया कि राजा ने ऐसा २ कठिन प्रबन्ध कर रक्खा है, सो वह राजपुत्री से कहने लगा "प्रिये ! मेरा साथी कर्पर मेरा परम प्रिय मित्र था; यह उसी का प्रसाद है कि रत्नों की राशि को और तुम्हारी प्राप्ति हुई है सो जबलों उसके स्नेह का ऋण मैं न चुका लूं मेरे चित्त की शान्ति नहीं हो सकती। सो अब मैं जाता हूं जहां उसकी लोथ मिलेगी उसे लेकर भरपेट अहक मिटाऊँगा और उसके शव का अग्निसंस्कार कर हड्डियां किसी तीर्थस्थान में डाल आऊँगा । देखना तुम किसी प्रकार का भय न करना मैं कर्पर के समान निर्बुद्धि नहीं हूं।"

इस प्रकार राजकुमारी को समझा बुझाकर उसने वहीं पर संन्यासी अवधूत का वेष बनाया और एक खपड़ी में (१) दही और चावल (२) लेकर प्रस्थान किया। चलते २ वहीं पहुँचा जहां कर्पर की लोथ टँगी थी और वहां पहुँचतेही फिसल कर गिर पड़ा, उसके हाथ से वह खपड़ी फूट गयी और वह "हा कर्पर ! अमृतपूर्ण !" (३) इस प्रकार कह २ विलाप करने लगा । जो रखवाले वहां थे उन्होंने यह समझा कि विचारे की खपड़ी फूट गयी है इसी से रो रहा है। थोड़ीही देर में घट ने घर जाकर राजपुत्री से सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

दूसरे दिन उसने दूसरा ढंग रचा, अपने एक सेवक को तो दुलहिन बनाया और एक के शिर पर मिठाई का कुण्डा रक्खा उस मिठाई में धतूरा मिला रक्खा

(१) "हांड़ी" ऐसा अर्थ भी झलकता है। (२) मूल में "दध्योनम्" ऐसा पाठ है जिसका अर्थ "दधि चावल"; पर यहां "दूध और भात" अर्थात् "खीर" का अर्थ साधु प्रतीत होता है, क्योंकि प्रेतको खीर के पिण्ड दिये जाते हैं, यह लोकरीति है। सो कर्पर के प्रेत को पिण्ड देनेके उद्देश्य से घट "दूधभात" अर्थात् खीर ले गया था। इससे खीर ही का अर्थ ठीक है । ऊपर जो अर्थ किया गया है वह मूल का अक्षरार्थ है।

(३) कर्पर = हांड़ी = खपड़ी। यहां यथार्थ में घट अपने मित्र कर्पर का सम्बोधन कर विलाप करता है, यथा "हा कर्पर मित्र ! अमृत स्वरूपिणी राजपुत्री के दिलानेहारे और रत्नादि दिलाकर दरिद्र नाश करानेवाले ।" पर रखवालों ने खपड़ी के लिये विलख २ रोता है ऐसा समझा।

था, और अपना रूप एक गँवैयां पियक्कड़ सा बना लिया। आगे २ घट आप झूमता चला, पीछे उसकी वह कृत्रिम दुलहिन तिसके पीछे कुण्डा लिये हुए वह चाकर। चलते २ सायङ्काल में तीनों वहीं आ पहुँचे जहां बैठे हुए रखवाले कर्पर की लोथ का पहरा दे रहे थे। पहरुओंने पूछा "भाई! तुम कौन हो? यह स्त्री तुम्हारी कौन है? कहां जाते हो?" इस प्रकार उनके पूछने पर लड़खड़ाती जीभ से वह धूर्त्त बोला "भाई मैं तो एक गँवार व्यक्ति हूं. यह मेरी स्त्री है; मैं ससुराल जा रहा हूं वहीं के लिये कुण्डे में यह पाहुर लिये जा रहा हूं; अब भाई तुम लोगों से बातचीत हो गई इससे तुम लोग भी मित्र हो गये सो इसमें से आधा तुम लोग भी लो वहां आधाही ले जाऊँगा।" इतना कह एक एक लड्डू एक एक रखवाले को दे दिया. उन सभों ने भी बड़े हर्ष से लेकर तुरत खा डाला; खातेही धतूरे का रस सभों के शरीर में व्याप गया और सबके सब अचेत हो गये; तब रात्रि के समय इन्धन बटोरके घट ने कर्पर की लोथ जलाकर भस्म कर डाली। इस प्रकार कर्पर का अग्निसंस्कार कर घट अपने अनुचरोंके साथ वहां से खसक चला गया।

अब प्रातःकाल राजा को विदित हुआ कि उस चोर की लोथ तो जला दी गयी और रखवालों को अचेत कर यह कार्य्य किया गया है सो उन्होंने वहां से उन असावधान रखवालों को हटाकर दूसरों को उस कार्य्य पर नियुक्त किया और उन्हें सहेज दिया कि देखना अब हड्डी बटोरने कोई न कोई अवश्य आवेगा उसे पकड़ना। देखना रात दिन सजग रहना सावधानी से तनिक भी न चूकना और जो कोई कुछ खाने को देवे तो कदापि न खाना और न किसी से कुछ लेना। इस प्रकार राजा की आज्ञा पाय वे रखवाले वहां गये और बड़ी सावधानी से रात दिन कर्पर की हड्डियों की रखवाली करने लगे। यह बात घट को विदित हो गई।

अब घट इस उपाय में लगा कि किसी प्रकार से कर्पर की हड्डियां तीर्थस्थान में फेंकनी चाहिये। उसे भगवती चण्डिका का दिया मोहनमन्त्र आता था, सो उसने इस कार्य्य में किसी प्रव्राजक को अपना साथी बनाया; उद्देश्य यह था कि प्रव्राजक के देखने से उन रखवालों को विश्वास हो जायगा कि यह तो कोई

योगीश्वर हैं इससे वे वहां रुकने और ठहरने में बाधा न डालेंगी। सो उस प्रव्राजक के साथ घट वहां गया, वहां पहुँच दोनों बैठ गये, संन्यासी अपना मन्त्र जपने लगा और उसी जप के प्रभाव से रखवाले सब मोहित हो गये और उधर घट कर्पर की हड्डियां बटोरकर चलता हुआ और ले जाकर हड्डियां गङ्गा में फेंक आया। इस प्रकार अपने मित्र की सद्गति कर घट ने आकर राजपुत्री से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अब घट उस प्रव्राजक के संग मित्रता कर राजकुमारी के साथ अनेक भोग विलास करता सुख से रहने लगा।

जब राजा को यह वृत्तान्त भी विदित हुआ कि इस प्रकार से कर्पर की हड्डियां भी कोई उठा ले गया तब उन्होंने यह निश्चय किया कि हो न हो यह किसी योगी का काम है, क्योंकि बिना योग के कैसे कोई मेरी पुत्री का हरण कर लेवे और उस चोर का अग्निसंस्कार इत्यादि जितने कार्य्य आज लों हुए हैं सब योगही के द्वारा साध्य हैं। इतना विचार उन्होंने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जिस योगी ने अपने योगबलसे मेरी कन्या के हरणादि व्यापार सिद्ध किये हैं वह यदि अपने को प्रगट कर देवें तो आधा राज्य अपना बांट देऊँगा। यह घोषणा सुन घट ने चाहा कि प्रगट होकर आधा राज्य राजा से बँटवा लूं किन्तु राजपुत्री ने उसकी ऐसी चेष्टा जान उसे ऐसा करने से रोका और कहा "यह तुम क्या करने चले हो; इस छली कपटी राजा का विश्वास कदापि न करना, इसी प्रकार छल कर यह राजा घात करा देता है सो तुम इसका विश्वास न करो नहीं तो व्यर्थही अमूल्य प्राण गँवा बैठोगे।"

अब घट को यह भय हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि भेद खुल जाय तो बड़ा अनर्थ हो सो वह राजपुत्री को संग ले उस प्रव्राजक के साथ उस देश से निकल भागा। मार्ग में जाते २ निराले में राजपुत्री ने उस प्रव्राजक से कहा कि "एक दुष्ट ने तो मेरा सतीत्व भंग किया और इस पापी ने मुझे मट्टी में मिला छोड़ा कि मैं इधर की रही न उधर की। वह दुष्ट चोर तो मर गया, अब यह घट जो है इसे मैं प्यार नहीं करती, तुमसे वरन मेरा मन पटता है तुम मुझे बड़े प्रिय लगते हो।" इस प्रकार उससे कह सुनकर राजकुमारी ने उस प्रव्राजक को भी जुठारा और विष देकर घट को मार डाला।

ऐसा दुःसाहस कर राजकुमारी और प्रव्राजक आगे चले; जाते २ मार्ग में धनदेव नामक एक बनिया मिला। उससे भी राजपुत्री का मन लग गया सो उस बनिये से कहने लगी कि यह कपाली मेरा कौन है, भला इससे मेरा क्या नाता, तुम मेरे परम प्रिय हो, तुमसे मेरा मन लग गया है; बस तुम मेरे और मैं तुम्हारी। इस प्रकार उस वणिक् से कहकर राजकुमारी उस प्रव्राजक को सोया छोड़ उस बनिये के साथ चली गयी। प्रातःकाल जब प्रव्राजक जगा तो राजकुमारी को न देखकर मनमें चिन्ता करने लगा, उसने कहा, "स्त्रियों में स्नेह तो नाममात्र नहीं न उनमें दाक्षिण्य का लेश होता है; बस उनमें जो कुछ है सो चञ्चलता; चपलता के अतिरिक्त उनमें और कुछ होताही नहीं। देखो तो सही इस पापिनी ने मुझे कैसा विश्वास दिलाया, भलेही मुझे धोखा दिया और सर्वस धन भी साथ लेती गई। अहोभाग्य कि उसने घट के समान मेरे भी प्राण न ले लिये, मैं इतनेही से अपने को परम धन्य समझता हूं।" इस प्रकार चिन्ता करके वह परिव्राजक उठा और अपने देश को लौट गया।

इधर राजपुत्री उस वणिक् के साथ चलती २ उसके देश में पहुँची, वहां धनदेव अपने मनमें विचारने लगा कि इस कुलटा को कैसे घर में ले जाऊँ। इस प्रकार सोच विचार वह सायंकाल होने पर अपने नगर में पैठा और निज गृह न जाकर राजपुत्री सहित एक बुढ़िया के घर में गया। उसने बुढ़िया से पूछा कि बूढ़ा माई! धनदेव बनिये के घर की भी कुछ बात जानती हो? वृद्धा उसे पहिचानती न थी, सो बोली, "बेटा उसके घर की क्या बात बताऊँ, उसकी स्त्री तो बड़ीही दुष्टा है, प्रतिदिन नये नये पुरुषों से रमण करती है। पुरुष के बुलाने का एक अद्भुत ढंग उसने रच रक्खा है, रात के समय रस्सी से बांधकर एक पेटारा खिड़की से लटका दिया जाता है, आधी रात में उस पेटारे में जो बैठ जाता है वही ऊपर खींच लिया जाता है, बस उसीके साथ रातभर आनन्द उड़ता है; जब रात बीतने को होती है तब उसी प्रकार वह पुरुष पेटारे में बैठाकर नीचे उतार दिया जाता है। उसकी पत्नी सदा मदमाती बनी रहती है, किसी प्रकार की चिन्ता नहीं, बस उत्तम २ भोजन करना, मद पीना और इसी प्रकार नवयुवकों से रमण करना, इनके अतिरिक्त उसको मानों और कुछ करना ही नहीं है।

बच्चा ! नगर भर में उसकी बात खुली है; सब लोग जानते हैं, इसकी ख्याति चहुँओर व्याप रही है । उसका पति बहुत दिनों से न जानें कहां चला गया है आज लों नहीं लौटा, इधर इसकी यह दशा है ।"

वृद्धा का इतना कहना सुन धनदेव को बड़ाही सन्ताप हुआ, पत्नी के दुश्चरित्र से उसको बड़ाही खेद हुआ, उसकी दशा इस समय वर्णनानीत हुई । वह विचारा गँव से उठा कि चलकर इसका निश्चय तो कर लूं कि सचमुच बात कहां लों सत्य है, सो वहां जाकर क्या देखता है कि सचमुच पेटारा लटक रहा है, वह उसी में बैठ गया और दासियां खींचकर उसे भीतर ले गयीं । ज्योंही कि वह द्वारपर पहुँचा कि उसकी मदान्ध पत्नी उठी और चट उसे आलिङ्गन कर पलङ्ग पर ले गयी, पत्नी तो मदिरा में मस्त थी पहिचान न सकी कि यह है कौन, फिर तिसपर से कामदेव का प्रहार; और कामातुर पक्के अन्धे होते हैं इसमें सन्देहही क्या । स्त्री को तो रमण की उत्कट इच्छा थी, पर धनदेव को उसके व्यापार से बड़ी घृणा उत्पन्न हुई वह भला कैसे रमण करे; उसे इस समय रमण कैसे सूझे उसका शरीर तो क्रोधानल से जल रहा था । अस्तु जब इसकी रमण की इच्छा न रही और उधर मद का भी प्रभाव बढ़ा तो उसकी पत्नी नींद के वश में हो गयी । निशान्त में दासियों ने उसे चटपट उसी प्रकार पेटारे में बैठा निकाल फेंका ।

इस व्यापार से धनदेव बड़ाही खिन्न हुआ, वह अपने मनमें सोचने लगा,— अहो ! गृहमोह कैसा प्रबल है और स्त्रियों के कैसे जाल हैं इनके जाल में फँसकर ऐसेही दुःख भोगने पड़ते हैं; सो इनमें फँसना व्यर्थ है; कल्याण तो इसी में है कि स्त्रियों से परे रहे; बनमें बास करना इसकी अपेक्षा कहीं अच्छा है ।" इस प्रकार चिन्ता कर वह निर्विण्ण वणिक् धनदेव उस राजपुत्री को भी त्याग बन की ओर चला । वह चला जा रहा था कि मार्ग में रुद्रसोम नामक एक ब्राह्मण से भेंट हो गयी, यह ब्राह्मण भी बहुत दिनों पर प्रवास से लौटा आ रहा था, दोनों में मित्रता हो गयी । होते २ बनियें ने अपना सारा वृत्तान्त उस ब्राह्मण को कह सुनाया; सुनतेही ब्राह्मण के भी कान खड़े हो गये, उसे चटकन लगी कि मैं भी तो बहुत दिनों पर लौटा हूं कहीं मेरे घर भी ऐसेही पूए न पकते हों; सो वह उस बनिये को साथ लिये दिये सांझ की बेला अपने ग्राम में पहुँचा ।

गांव में पहुँचने पर ब्राह्मण ने अपने घर के समीपही नदी किनारे एक ग्वाले को बैठा देखा कि वह मद में मस्त हो आनन्द से तान छोड़ रहा है, सो रुद्रसोम ने उससे हँसी से पूछा कि कहो भाई गोप ! क्या किसी अनुरागवती तरुणी से तुम्हारा हेलमेल है कि इस प्रकार से जगत् को तृणवत् मानकर मदमाते आनन्द से गाय रहे हो ? ब्राह्मण का ऐसा प्रश्न सुन वह गोप हँसा और बोला,— "भाई ! छिपाना क्या है, तुम इस गांव के स्वामी रुद्रसोम को जानते हो; अच्छा इससे क्या जानो चाहे मत जानो, बात तो यह है कि वह बहुत दिनों से परदेश गये हैं; उनकी पत्नी तरुणी है बस उसी से सदा मैं रमण करता हूं, उसकी लौंड़ी आती है और मुझे स्त्री के भेष में नित्य ले जाती है; बस रातभर आनन्द लूटता हूं।" उस गोपाल से यह वृत्तान्त सुन ब्राह्मण को बड़ाही क्रोध हुआ पर उसने अपना क्रोध ठांवहीं दबाया क्योंकि उसे तो तत्व का निर्णय करना था, क्रोध से तो काम बिगड़ जाता । सो रुद्रसोम ने उस गोप से कहा कि भाई अब तो मैं तुम्हारा अतिथि हूं, सो ऐसा करते कि अपना सा भेष मेरा भी बना देते तो मैं भी आज जाकर आनन्द लूटता क्योंकि मेरे मनमें भी इस व्यापार के देखने का बड़ा कौतुक हो रहा है। गोप बोला "क्या चिन्ता आज तुम्ही जाओ, लो यह मेरा काला कम्बल ओढ़ लो, और यह मेरा लट्ठ ले लो यहीं बैठो, उसकी दासी आपही यहां आवेगी और मेरेही भेष से तुम्हें चुपके से बुलावेगी और स्त्री की साड़ी देगी बस उसे पहिनकर तुम चले जाना, भाई आज तो मैं विश्राम करूँ। ग्वाल की इतनी बात सुन रुद्रसोम ने उससे कम्बल और लट्ठ ले लिये, अब वह उसी गोप के वेष में बैठा हुआ दासी की प्रतीक्षा करने लगा और वह ग्वाल उस धनदेव बनियें के साथ कुछ दूर जा बैठा। यथा समय लौंड़ी आय पहुँची, अन्धकार में चुपचाप वह बैठाही था, सो धीरे से "आओ" इतना कह वह लौंड़ी स्त्रीवेषधारी उस रुद्रसोम को ले चली। जब वह ब्राह्मण वहां पहुँचा तो उसकी भार्य्या ने उठकर उसे गोपाल समझ आलिङ्गन कर लिया तब तो वह विप्र अपने मनमें चिन्ता करने लगा—"हा कष्टम् ! दुष्टा स्त्रियों का कैसा स्वभाव होता है कि ऊँच नीच का कुछ भी विचार नहीं करतीं, जोही पास में मिला उसी में, चाहे वह नीचही हो, अनुरक्त हो गयीं देखो न यह पापिष्ठा एक गोप से फँस गयी, इसका कारण यही

है कि वह निकट में रहता है ।" इतनी चिन्ता कर टूटीफूटी जिह्वा से कुछ बहाना करके वह विरक्त रुद्रसोम ब्राह्मण धनदेव के पास चला गया, और अपने सम दु:खी मित्र धनदेव से आद्यन्त सारा वृत्तान्त कह गया और पश्चात् यह भी कहा कि भाई ऐसे घर में आग लगे, अब तो मैं भी तुम्हारे साथ बन में चलूंगा । इस प्रकार अपना वृत्तान्त कह रुद्रसोम उसके साथ हो लिया सो वे दोनों वहां से बन की ओर चले ।

दोनों चले जा रहे थे कि मार्ग में धनदेव का मित्र शशी नामक मिला, बहुत दिनों पर भेंट हुई इससे इधर उधर की बातें चलीं, होते होते यह बात भी निकल आई सो ब्राह्मण और वणिक् ने अपने २ गृह का चरित्र कह सुनाया। सुनतेही शशी के कान भी खड़े हो गये, क्योंकि वह भी बहुत दिनों पर परदेश से लौटा था । परदेश जाते समय वह अपनी भार्य्या को भूगृह (१) में बन्द कर गया था, वह कुछ दूरदर्शी भी था; पर अब इन दोनों का वृत्तान्त सुन उसे भी चटकन लगी कि कहीं वहां भी पूआ न पकता होवे । अस्तु, वह उन दोनों के साथ साथ चला और सायंकाल में अपने घर के समीप पहुँचा; शशी चाहता था कि उन दोनों को अपने घर ले जाकर उनकी पहुनई करे । घर के निकट पहुँचकर शशी क्या देखता है कि एक कोढ़ी बैठा है, कोढ़ से हाथ पांव गल गये हैं परन्तु शृङ्गार का क्या पूछना; सजधज के साम्हने सब सुन्दर युवक भी पराभूत है, ऊपर से वह आनन्द में मग्न हो आलाप भी कर रहा है । उसकी यह दशा देख शशी को बड़ा आश्चर्य्य हुआ सो उसने उस कुष्ठी से पूछा कि भाई आप कौन हैं ? कोढ़ी ने उत्तर दिया "मैं कामदेव हूं ।" "इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तुम कामदेव हो, इसका प्रमाण तुम्हारे रूप की शोभा ही दिये देती है," शशी की एतादृश उक्ति सुन वह कोढ़ी पुन: बोला, "भाई इतनेही से तुम चमक पड़े, सुनो तुमको कुछ और भी सुनाता हूं । यहां शशी नामक एक पक्का धूर्त्त रहता है; वह कहीं परदेश को जाने पर उतारू हुआ, सो वह धूर्त्त तो थाही अपने मनमें विचारने लगा कि मैं तो परदेश चला कहीं यह मेरी भार्य्या दूसरा ढंग न रोप दे इस भय से वह अपनी पत्नी को भूगेह में रखकर चला गया, उसकी रखवाली

(१) पृथ्वी के भीतर गुप्त स्थान, जहां गोप्य द्रव्यादि रखे जाते हैं, तहखाना ।

तथा कामधन्धे के निमित्त एक परिचारिका को भी रख गया था, पर भाई सुना है न—'विधि का लिखा को मेटनहारा," भाग्य में जो लिखा रहता है उसे कोई मिटा नहीं सकता; सो एक दिन मेरी उसकी चार दृष्टि हो गयी बस अब क्या, कामवाण से विद्ध हो वह मुझपर आसक्त हो गयी, अपना आत्मा उसने तत्क्षण मुझे अर्पण कर दिया । अब उसकी दासी प्रतिदिन आकर मुझे अपनी पीठ पर लादकर ले जाती है और रातभर मैं उसके साथ रमण करके आनन्द लूटता हूं। सो भाई मैं कामदेव क्यों नहीं हुआ, कहो तो सही; भला यह किसका भाग्य है कि दूसरे की स्त्री की प्राप्ति होवे, फिर जो व्यक्ति कि ऐसी चित्रिणी शशी की भार्य्या का प्रेमपात्र हो उसके भाग्य की क्या बात है !"

उस कामदेवरूपी कुष्ठी की बातें सुनतेही शशी अवाक् हो गया उसके हृदय पर भारी आघात पहुँचा; पर इसका निश्चय तो अवश्य कर्त्तव्य है, तन्निमित्त अपना भीषण दुःख भीतरही दबा वह उस कोढ़ी से फिर कहने लगा, "भाई ! तुम सचमुच कामदेव हो; अब तुमसे उसके सौन्दर्य का वर्णन सुन मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हुआ है कि टुक उस रतिस्वरूपा रमणी को मैं भी देखता, सो यदि कृपा करते तो आज तुम्हारे वेश में मैं उसके पास जाता और तुम तो प्रतिदिन उसे पातेही हो तो इसमें तुम्हारी कुछ भी क्षति नहीं है।" शशी की इतनी प्रार्थना सुन वह कोढ़ी बोला—"बहुत अच्छा इसमें क्या, लेओ ये मेरे कपड़े लत्ते तुम पहिन लो और अपने मुझे दे दो; मेरे समान हाथ पांव में कपड़े लपेट कर यहीं बैठे रहो, ज्योंही कि अन्धकार की जम्हाई हुई कि उसकी दासी लेने आवेगी और मुझेही समझ तुमको अपनी पीठ पर उठा ले जावेगी। देखना भूलकर भी हाथ पांव से काम न लेना मैं पङ्गुल हूं सो तुम भी सच्चे पङ्गुल के समान बन जाना।" उस कुष्ठी की इतनी बात सुन शशी उसी के भेष में बन ठन के बैठ रहा और उसके दोनों साथी तथा वह कोढ़ी वहां से टलकर कुछ दूर जा बैठे।

यथा समय दासी आ पहुँची और उसेही कुष्ठी समझ "आओ" इतना कह उसे पीठ पर लाद ले चली; अब दासी की पीठ पर लदा हुआ शशी उसी भूगृह में पहुँचा जहां उसकी पत्नी उस कुष्ठी जार की प्रतीक्षा में बैठी सोच रही थी। अपनी भार्य्या का अङ्गस्पर्श कर शशी को निश्चय हो गया कि यह मेरीही पत्नी है।

इससे उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई कि हाय ! स्त्रियों का स्वभाव ऐसा चंचल होता है. हाय वे ऐसी नीचगा होती हैं; अरे मैंने इसे भूगृह में रखकर ही क्या किया कि अन्त में यह दूसरे से फँसही तो गयी। नारियों का व्यापार ठीक नदियों का सा है कि सर्वदा नीचाही ताकती हैं, भला देखो न इसने उस कोढ़ी को चुना, हाय ! हाय !! धिक्कार है ऐसी चंचलाओं को, स्त्रियां दूरही से मनोरम प्रतीत होती हैं पर यथार्थ में वे वैसी नहीं होतीं । अब इस कुलटा के साथ क्या रहना इससे तो बनवासही अच्छा है । इस घटना से उसके मन में वैराग्य हो गया सो जब उसकी स्त्री सो गयी तब वह गंव से उठा और चुपचाप धनदेव और रुद्रसोम के पास चला गया। वहां पहुँचकर उसने उन दोनों से अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया और फिर कहा कि भाई ऐसे घर से तो बनही अच्छा है, हा! धिक् ! घर में ऐसे २ कूट भरे रहते हैं. सो अब मैं भी तुम दोनों के साथ चलकर बन में ही वास करूँगा। इस प्रकार अपनी दशा सुनाय शशी अपने सम दुःखी उन दोनों मित्रों के साथ वहीं सो रहा ।

दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर वे तीनों एक साथ बन को चले, दिनभर चले गये सांझ को एक जलाशय मिला उसके किनारे एक वृक्ष भी था सो सभोंने विचारा कि अब यहीं टिक जाना चाहिये सो कुछ (फलफूल) खा पी कर वे तीनों उसी पेड़ पर चढ़ बैठ रहे । इतने में क्या देखते हैं कि एक बटोही भी आकर उसी पेड़ के नीचे सो रहा। थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि उस सरोवर से एक दूसरा पुरुष निकला उसने अपने मुंह से एक स्त्री निकाली और एक पलङ्ग भी । उस नारी के साथ सानन्द रमण कर वह पुरुष उसी पलङ्ग पर सो गया और उस स्त्री ने पलङ्ग से उठ उस बटोही से रमण किया। रमण के अनन्तर उस पान्थ ने नारी से पूछा कि तुम दोनों कौन हो ? उस प्रमदा ने उत्तर दिया कि यह नाग हैं और मैं नागकन्या इनकी भार्य्या हूं ; तुम कुछ भय मत करो, मैं निन्नानवे बटोहियों से इसी प्रकार रमण कर चुकी हूं तुमसे आज सौ का हिसाब पूरा हो गया। वह इस प्रकार बात करही रही थी कि दैवात् उस नाग की नींद टूट गयी, सो उसने अपने मुख से ज्वाला निकाल उन दोनों को क्षणभर में भस्म कर डाला।

यह घटना पेड़ के ऊपर से वे तीनों देख रहे थे सो जब नाग चला गया तब

रात बिता वे पेड़ पर से उतरे और परस्पर कहने लगे कि जब देह के भीतर रखने पर भी स्त्री की रक्षा नहीं हो सकती तो घर में रहनेवाली उन स्त्रियों की कुछ बातही नहीं है। हा धिक्! वे ऐसी कुलटा निकलीं। अब शशि प्रभृति उन तीनों जनों के निर्वेद की और भी वृद्धि हुई सो वे लोग अति खिन्न हो वन में चले गये और वहां जाकर तपश्चर्य्या में लीन हुये, मन को सब ओर से निवृत्त कर, बुद्धि को नियमित कर शान्तभाव से दिन व्यतीत करने लगे; सब प्राणियों पर सौम्य दृष्टि रखते। चारों प्रकार की भावनाओं से (१) उनका मन शान्त और शुद्ध रहता और मैत्री के कारण उनकी तपश्चर्य्या में किसी प्रकार की वाधा न पड़ती। इस प्रकार तपस्या करते २ निरुपम आनन्दभूमि समाधि में उनको सिद्धि प्राप्त हो गयी जिससे उनके समस्त कर्म्मबन्धन छूट गये और उन तीनों का मोक्ष हो गया।

उन स्त्रियों की दशा क्या कही जाय, प्रगटही है कि ऐसी कुलकलङ्किनि भला कब सुख से रहती हैं; अपने २ पापों के फल अनेक दुःख वे सब भोगने लगीं, उनकी दशा अति शोचनीय हो गयी। थोड़ेही दिनों में वे दुष्टायें कौड़ी की तीन २ हो विनष्ट हो गयीं और उनके दोनों लोक बिगड़ गये।

सोरठा।

यहि विधि तिय अनुराग, करि को दुःख न पावही।
इन से करैं विराग, सोइ मोक्ष पद लहत हैं॥

चौपाई।

सुनि या भांति धेनुमुख बानी। वत्सराजसुत अतिमुदमानी।
शक्तियशामहँ मन लवलीना। कवनिहुं भांति सयन पुनि कीना।

---

(१) चार प्रकार की भावनायें—यथा - (१) संसार के सब विषय क्षणिक और अस्थायी हैं। (२) संसार के सब विषय दुःखद और क्लेशद हैं। (३) परलोक में अपना साथी कोई नहीं है। (४) यावत् विषय निराधार हैं।

नवां तरङ्ग ।

दूसरे दिन रात्रि के समय फिर जमावड़ा हुआ, यथापूर्व इधर उधर की बातें छिड़ीं पर राजकुमार नरवाहनदत्त का मन शक्तियशा में लीन होने के कारण किसी प्रकार विनोद नहीं पाता था सो उनके चित्तविनोदार्थ अति प्रवीण कार्य्य-कुशल गोमुख मन्त्री इस प्रकार कथा सुनाने लगा।

किसी नगर में बोधिसत्वांशसमुद्भव एक वणिक् था, वह एक धनाढ्य पिता का पुत्र था। माता उसकी मर गयी और पिता ने दूसरा विवाह किया; कहने की आवश्यकता नहीं कि जब पुरुष नयी स्त्री का मुंह देखता है तब पूर्वपत्नी के सन्तानों पर उसका प्रेम कैसा रह जाता है अथवा सौतेली माताही का भाव सौतेले सन्तानों के प्रति कैसा हो जाता है। अस्तु वही दशा यहां भी संघटित हुई, पिता अपनी नवविवाहिता पत्नी के वश में पड़ नितान्त मोहान्ध हो गया उसीके कथन से उसने अपने उस पुत्र को भार्य्या सहित घर से निकाल दिया। अब वह विचारा पत्नी के साथ निकलकर बन की ओर चला। उसी प्रकार पिता नें उसके छोटे भाई को भी निकाल बाहर किया; सो छोटा भाई भी बड़े के पीछे २ चला। उसका छोटा भाई चञ्चलस्वभाव था अतः उसने उसको साथ रखना उचित न समझा; इसलिये गँव से उसका संग छोड़ वह दूसरे मार्ग से चला गया।

स्त्री के सहित चलते २ वह एक मरुस्थल में पहुँचा जहां न कोई पेड़ न पालव न कहीं जलाशय; ऊपर से चण्डांशु की प्रचण्ड किरणों से भूमि उत्तप्त हो रही थी। ऐसे निदारुण मरुस्थल में उन दोनों को बराबर सात दिन चलना पड़ा, ऐसी दुरवस्था में वह पुरुष अपनी क्षुधातृषातुर पत्नी को अपना मांस काट काट खिलाता और अपना लहू पिलाता गया कि जिससे वह जीवित रहे और वह पापिनी अपने प्राणेश्वर के मांस लहू से अपना जीवन धारण करती रही। आठवें दिन जाकर उनको एक पहाड़ मिला जहां से एक नदी निकली थी, वहां सघन वृक्ष फलों से लदे थे, और हरी हरी घासें दृष्टि को आनन्द देती थीं। वहां उस पुरुष ने अपनी क्रान्त पत्नी को फलफूल खिलाकर जल पिलाया जिससे उसकी थकावट दूर हुई; इसके पश्चात् वह स्वयं नदी में स्नान करने को उतरा। वहां क्या

देखता है कि एक जन, जिसके चारों हाथ पांव कटे हैं, धारा में बहा जाता है; और अपने प्राण की रक्षा के हेतु छटपटा २ उड़ुक बुड़ुक कर रहा है। उसकी ऐसी दशा देख इस महानुभाव के हृदय में दया आई, यद्यपि वह बहुत दिनों के उपवास से चीण भी हो गया था तथापि कुछ परवाह न कर धड़ाम से उस नदी में कूद पड़ा और पौंड़कर उस पुरुष को किनारे पर खींच लाया। जब वह जन स्थल पर बैठकर स्वस्थ हुआ तब इस कारुणीक ने उससे पूछा कि भाई तुम्हारी ऐसी दुर्दशा किसने किई है? तब उस रुण्ड ने उत्तर दिया, "भाई शत्रुओं ने मेरे हाथ पांव काटकर मुझे नदी में डाल दिया कि बड़े क्लेश से मेरे प्राण निकल जावें, सो भाई तुम करुणामय ने मेरा उद्धार किया।" इस प्रकार उसका कथन सुन इस महासत्व ने उसके घावों पर पट्टियां बांधी और उसे फलफूल खिलाकर जल पिलाया तत्पश्चात् आप भी स्नान कर कुछ खाया पीया। इस प्रकार वह बोधिसत्वांश वणिकपुत्र फल मूल का आहार कर अपनी भार्य्या के साथ तप करने लगा।

एक समय वह बोधिसत्वांश बन में फल मूल लेने गया था इधर उसकी भार्य्या कामपीड़ित हो उस रुण्ड के साथ कि जिसके घाव अब भर आये थे, रमण करने लगी। उसका मन उस रुण्ड से ऐसा लग गया कि वह पापिनी उससे मन्त्रणा कर अपने पति के बध करने के विचार से ढोंग कर मांदी हो गयी। इतने में पति आया और अपनी स्त्री को रुग्ण देख बड़ा चिन्तित हुआ और उससे पूछने लगा, "प्रिये! तुम्हें क्या हो गया, कहो क्या उपाय किया जाय कि तुम्हारा यह रोग छूटे?" उस दुष्टा ने नखड़े की लड़खड़ाती जीभ से उत्तर दिया, "प्राणनाथ! क्या कहूं रोग तो मुझे भारी लग गया कुछ बुद्धि काम नहीं देती कि क्या किया जाय पर हां स्वप्न में एक देवता ने मुझे एक औषधि बतलाई है, यदि तुमसे हो सके करो; देखो उस नाले में वह जो ऐसी २ एक बूटी दीखती है उसे यदि किसी प्रकार ला सको तो मेरे प्राण बच जांय।" अपनी पत्नी की इतनी बात सुन वह घासफूस की रस्सी बट, उसे एक पेड़ में बांध उसीके सहारे से उस नाले में उतरा; जब वह नाले में उतर गया तो इधर उस पापिनी ने वह रस्सी खोल फेंक दी जिससे वह विचारा नदी में गिर पड़ा और तरखे में पड़कर बह गया।

कहा है,—"धर्म्मो रक्षति धार्म्मिकम्।" अर्थात् धार्म्मिक की रक्षा धर्म्म भग-

वान् स्वयं करते हैं; इसी न्याय से उस बनिये की रक्षा उसके धर्म्म ने की । वह नदी के तरङ्ग में बहता २ बहुत दूर निकल गया; तब एक नगर पड़ा जहां एक हिलकोरे से वह किनारे फेंक दिया गया। वहां वह थलपर बैठकर अपनी स्त्रीकी करतूत पर सोचने लगा। नदी की धारा में पौंड़ता २ थक तो गयाही था सो तीर-वर्त्ती एक वृक्ष के नीचे बैठ विश्राम करता था और साथही अपनी भार्य्या की करतूत पर शोक और ग्लानि भी करता जाता था कि देखो तो सही उस दुष्टा ने मेरे संग कैसा असद्व्यवहार किया, जिसके जीवन की रक्षा मैंने अपने रक्त मांस से की वह मेरे साथ ऐसा बर्त्ताव करे। हा धिक्! स्त्रियों का विश्वास कदापि न करना चाहिये उनके विश्वास में पुरुष पड़ा कि गया।

जिस समय बोधिसत्वांशसम्भव वह बणिक् वहां पहुँचा और तट पर बैठा चिन्ता कर रहा था कि एक अद्भुत घटना उपस्थित हुई । उसी समय वहां का राजा मर गया और उस देश की यह रीति थी कि पुरवासी लोग मङ्गल गज को चहुँओर घुमाते थे, वह गजेन्द्र जिस किसी को सूंड़ से उठाकर अपनी पीठ पर चढ़ा लेता था वही राजासन पर अभिषिक्त किया जाता था। दैव का करना वह मङ्गलगज भ्रमण करता २ वहीं आ पहुँचा जहां पेड़ तले वह बनिया शोकमग्न बैठा था, हाथी ने चट उठाकर उसे अपनी पीठ पर बैठा लिया, उसी क्षण मन्त्री लोग उस बोधिसत्वांशसम्भव को नगर में ले गये और वह राजासन पर अभिषिक्त कर दिया गया। ठीक है धर्म्म आगे २ दौड़ता है; कहां वह पिता से त्याग जाना, प्राणाधिका पत्नी से छलकर बहाया हुआ, कहां नदी के धार में पड़ मरते २ बचना कहां अब राजा होना! यद्यपि वह राज्य प्राप्तकर आनन्दित हुआ तथापि स्त्रियों में उसका मन न लगता वह उनसे रमण न करता क्योंकि वह जानता था कि स्त्रियां स्वभावत: चपला होती हैं, उनका व्यापार चञ्चला से भी चञ्चल होता है।

यह तो उस वणिक् की दशा हुई अब आगे उसकी भार्य्या का वृत्तान्त सुनाया जाता है। वह तो अपने जानते अपने पति को नदी में बहा ही चुकी थी अब अब नि:शङ्क हो गयी सो उस रुण्ड यारको अपनी पीठ पर लादकर इधर उधर घूमने लगी, द्वार २ यह कह २ भिक्षा मांगती कि यह मेरे पति हैं, शत्रुओं ने इनके हाथ पांव काट डाले; मैं पतिव्रता और क्या करूँ; किसी प्रकार भिक्षा मांग-

कर इन्हें जिलाती हूं सो भीख मिले । इसी प्रकार गांव २ नगर २ भीख मांगती हुई उसी नगर में पहुँची जहां उसका पति राजासन पर अधिष्ठित होकर राज्य कर रहा था । वहां भी उसी प्रकार भीख मांगने लगी और लोग उसे सत्य पतिव्रता समझते और बड़े सम्मान से उसको भिक्षा देते । होते २ यह बात राजा के कानों में पड़ी; उन्होंने उसे राजसभा में बुलवाया, वह उसी प्रकार उस रुण्ड को पीठपर लादे राजा के समक्ष उपस्थित हुई । राजा तो झट उसे पहिचान गये कि यह वही दुष्टा मेरी पत्नी है तथापि सहसा न कर उन्होंने उससे यह प्रश्न किया "तू वही पतिव्रता है ?" राजा तो उसे पहिचान गयेही थे, पर यह अपने पति को न पहिचान सकी क्योंकि राजश्री का तेजही और होता है, इस समय तो वह राजश्री से देदीप्यमान था सो वह क्योंकर पहिचान सकती इसीसे वह चटपट बोल उठी, "हां महाराज ! मैं वही पतिव्रता हूं ।" अब तो बोधिसत्वांश राजा से न रहा गया, बोल उठे, "हे पतिव्रते ! तेरा पातिव्रत मैं देख चुका हूं, यह तेरे पातिव्रत का ही फल है । तू मानुषी है कि राक्षसी ? भला यह तो बता, समूचे हाथ पैरवाला पति अपना रक्त मांस देकर भी तुझे वश न कर सका, कह तो तू उसका रक्त मांस खाकर अपना जीवन नहीं धारण करती थी ? भलेही इस रुण्ड ने तुझे बाहन बनाया है !!! अरी पापिष्ठे ! कभी अपने उस पति को भी इस प्रकार ढोया था जिसको कि तूने नदी में गिरा दिया, हे पतिते ! स्मरण रख यह उसी पातक का फल है कि तू इस रुण्ड को ढो रही है ।" इस प्रकार राजा के मुख से अपना वृत्तान्त सुन उसने पहिचान लिया कि यह तो मेरे पतिही हैं; अब तो वह मारे डर के थर २ कांपने लगी, मूर्छित हो चित्रलिखित सी हो गयी, काटो तो लोहू नहीं मानों मर गयी है । यह देख मन्त्रियों को बड़ा कौतुक हुआ उन्होंने राजा से नम्रतापूर्वक पूछा कि महाराज कहिये तो सही यह क्या बात है ? उनका ऐसा प्रश्न सुन बोधिसत्वांश महीपति ने यथावत् सारा वृत्तान्त कह सुनाया। जब मन्त्रियों को विदित हुआ कि यह भर्तृद्वेषिणी है तब उन्होंने उसके नाक कान कटवा, मस्तक पर उत्तप्त लोहे से दगवा देश से निकलवा दिया । विधि की सदृशसंयोगिनी शक्ति का भी अच्छा प्रमाण मिल गया कि नकटी के साथ तो रुण्ड को मिला दिया और बोधिसत्व को राजलक्ष्मी से संयुक्त कर दिया। ठीकही है —

जैसे को तैसा मिलै, मिलै नीच को नीच।
पानी में पानी मिलै, मिलै कीच में कीच॥

इस प्रकार महाराज स्त्रियोंके चित्तकी गति जानी नहीं जाती, इतना तो अवश्य है कि उनकी प्रवृत्ति नीचे की ओरही होती है, सो जैसे दैव की गति अचिन्त्य है वैसेही स्त्रियों की भी गति कदापि ज्ञेय नहीं है। इसी प्रकार सम्पत्ति का भी स्वभाव प्रत्यक्ष है उसकी गति विदित है, जो लोग कदापि अपना शील त्याग नहीं करते, उत्साह से परे नहीं होते, क्रोध को जीत लेते हैं उनके समीप सब सम्पत्तियां आपसे आप बिना बुलाये चली जाती हैं मानों उन्हीं से उनका सन्तोष हो जाता है।

इतनी कथा सुनाय मन्त्रिप्रवर गोमुख नरवाहनदत्त को फिर भी इस प्रकार कथा सुनाने लगा।

किसी बन में बोधिसत्वांशसम्भूत एक जन कुटी बनाकर रहता था, उसका हृदय मानों करुणा का आगार था, वह महासत्व वहां तपस्या किया करता। जो कोई जीव जन्तु विपद्ग्रस्त होते उनको और क्या पिशाचों को भी अपने तपःप्रभाव से विपत्ति से उद्धार करता और अन्यान्य लोगों को अन्न जल से परितृप्त करता, उसकी तपश्चर्य्या का ऐसा प्रभाव था। एक दिन जब कि वह जीवों के उपकारार्थ बन में भ्रमण करता था उसको एक बड़ा भारी इनारा दिखाई पड़ा। वह उसमें झांकने लगा, इतने में उस कूएँ में से एक स्त्री उसे देख बड़े ऊँचे स्वर से पुकार उठी "हे महात्मन्! इस कूएँ में चार जीव पड़े हैं एक मैं स्त्री हूं, एक सिंह है, एक स्वर्णशिख पक्षी है और एक सर्प है, हम चारों रात्रि के समय इस महाकूप में गिर पड़े हैं सो अब कृपाकर इस क्लेश से हमारा उद्धार कीजिये" इतना सुनकर उस पुरुष ने प्रश्न किया कि अच्छा यह तो बतलाओ कि तुम तीनों तो अन्धकार के कारण इसमें गिर पड़े किन्तु यह पक्षी क्योंकर गिरा? उस स्त्री ने उत्तर दिया कि उसी प्रकार व्याध के जाल में फँसकर यह पक्षी भी गिरा है। तदनन्तर वह बोधिसत्वांशजन्मा पुरुष अपने तप की शक्ति से उन चारों को निकालने चला परन्तु निकाल न सका प्रत्युत उसकी जो कुछ शक्ति रही सोभी जाती रही; तब तो वह बहुत घबड़ाया और अपने मनमें विचारने लगा कि यह स्त्री अवश्य पापिनी है, बस इसीके संग सम्भाषण करने का यह फल है कि मेरी शक्ति

नष्ट हो गयी; अच्छा क्या हुआ इनका निकालना तो अवश्यही है तो एक दूसरा उपाय अब किया जाय। इतना सोच विचार उसने तिनकों को रस्सी बटी और उसीके द्वारा उन चारों को उस कूप से निकाला, वे चारों उस महात्मा की बड़ी स्तुति करने लगे। जब वे सब ऊपर आये और स्तुति करने लगे तब तो उसे बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ सो उस महापुरुष ने सिंह, पक्षी और सर्प से पूछा कि तुम सभों की बोली तो बड़ी स्पष्ट है, यह बात क्या है अपना २ वृत्तान्त तो कह सुनाओ। इसपर सिंह ने उत्तर दिया कि हम सबों की बोली बहुत व्यक्त है क्योंकि हम जातिस्मर (१) हैं हमारा परस्पर बड़ा विरोध है, अच्छा सुनिये हम अपना २ वृत्तान्त कह सुनाते हैं। इतना कह सिंह अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाने लगा।

तुषाराद्रि पर (२) वैडूर्य्यशृङ्ग नामक एक बड़ा उत्तम नगर है, तहां विद्याधरों के अधीश्वर पद्मवेग नामक (राज्य करते) हैं, इनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम वज्रवेग पड़ा। वज्रवेग बड़ा अहङ्कारी था, जिस समय कि वह विद्याधरलोक में वास करता था तब जिस किसी से हो लड़ बैठता था, सबसे विरोधही बेसाहता था। पिता बहुत मना करता पर वह उसकी बात पर कुछ ध्यान ही न देता; इससे पिता को बड़ा क्रोध आया, उसने शाप दे दिया कि जा तू मर्त्यलोक में गिर जा। अब तो वज्रवेग की सब विद्यायें हो जाती रहीं जिससे उसका सारा मद उतर गया और वह रो रोकर अपने पिता से चिरौरी करने लगा। तब तो उसका पिता क्षणभर ध्यानकर बोला "अच्छा सुन मेरे शाप से तुझे मर्त्यलोक में जाना तो अवश्य पड़ेहीगा सो तू वहां जाकर पहिले ब्राह्मण के घर में जन्म लेगा वहां भी तू ऐसाही मदान्ध रहेगा; तब तेरा पिता तुझे शाप देगा और उसी शाप के प्रभाव से तू सिंह होगा और कूप में गिरेगा तब एक महानुभाव कृपाकर तेरा वहां से उद्धार करेंगे। विपत्ति के समय उस महानुभाव का प्रत्युपकार कर तू इस शाप से मुक्त हो जावेगा" इस प्रकार उसके पिता ने उसके शाप का अन्त ठहरा दिया।

इसके उपरान्त वह वज्रवेग मालवदेश में हरघोष नामक ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ तहां उसका नाम देवघोष पड़ा। वहां भी उसकी वही चाल, वह

(१) पूर्वजन्म के स्मरण रखनेवाले, जिन्हें पहिले जन्म की बातें स्मरण हो।

(२) हिमालय।

अपने शौर्य्य के मद से किसी को कुछ भी न समझे, सबसे वैर करता फिरे। पिता ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया कि बेटा सबसे वैर करना अच्छा नहीं है, व्यर्थही तुम सबसे विरोध कर लेते हो इसका फल अच्छा नहीं दीख पड़ता किसी न किसी दिन तुमको नीचा देखना ही पड़ेगा। पिता ने बहुत समझाया पर उसने उसके उपदेश पर तनिक भी ध्यान न दिया। तब तो पिता को बड़ा क्रोध हुआ, उसने उसे शाप दिया "अरे दुष्ट तू मेरी बातों की उपेक्षा करता है इससे ले मैं अभी तुझे इस ढिठाई का फल दिये देता हूं; तू अपने शौर्य्य का बड़ा घमंड रखता है सो जा तू सिंह हो जा।" अब वह विद्याधर जो कि पिता के शाप से ब्राह्मण के यहां जन्मा था सोही देवघोष फिर अपने जनक के शाप से इस बन में सिंहत्व को प्राप्त हुआ। सो हे महात्मन्! मैं वही सिंह हूं, रात्रि के समय भ्रमण करता हुआ दैवात् इस कूप में गिर पड़ा, सो आज आपने करुणा कर इस महाघोर कूएँ से मेरा उद्धार किया। अब तो मैं जाता हूं, जब कभी आप पर विपत्ति पड़े तो मुझको स्मरण करना उस समय मैं आपका उपकार करूँगा और अपने शाप से भी मुक्त हो जाऊँगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाकर जब सिंह चला गया तब बोधिसत्व ने उस स्वर्णशिख पक्षी से कहा कि अच्छा अब तुम अपनी कथा सुनाओ। तब वह पक्षी अपनी कहानी इस प्रकार सुनाने लगा।

हिमाचल पर विद्याधरों के अधीश वज्रदंष्ट्र नामक रहते हैं उनकी पत्नी के गर्भ से क्रमानुसार पांच कन्यायें जन्मीं। तब राजाने भगवान् भूतभावन की आराधना की, महाप्रभु का नाम तो आशुतोष है ही बस उनकी कृपा से राजा की महिषी पुत्र जन्मी विद्याधरेन्द्रने उस पुत्र का नाम रजतदंष्ट्र रखा, वे अपने तनय को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। मारे स्नेह के पिता ने बाल्यावस्थाही में अपने पुत्रको सम्पूर्ण विद्यायें सिखा दीं। अब वह रजतदंष्ट्र अपने बान्धवों के नयनों का आनन्दोत्सव बढ़ाता हुआ बड़ा हुआ।

एक समय की बात है कि उसकी बड़ी बहिन सोमप्रभा गौरी देवी के समक्ष पिञ्जरक (१) बजा रही थी कि उसे देख रजतदंष्ट्रने उससे बड़ी विनती कियी कि बड़ी

(१) एक प्रकार का बाजा।

बहिन मुझे भी पिञ्जर दो मैंभी बजाऊँ; इस प्रकार कह २ वह मचल गया पर बहिन ने बाजा न दिया। तब तो चपलता के कारण वह बालक अपनी बहिन से बाजा छीन कर पक्षी के समान आकाश में उड़ गया। इस पर उसकी बहिनने क्रोध में आकर शाप दे दिया कि अरे दुष्ट! तू हठपूर्वक मेरा पिञ्जरक ले उड़ा है सो जा तू स्वर्णचूल पक्षी हो जायगा। यह सुनकर उसने लौट कर बहिन के चरणों पर गिर के बड़ी विनती कियी तब उसने शाप का अन्त इस प्रकार ठहराय दिया। "हे मूढ़! तू जब पक्षी होकर किसी अन्धकूप में गिरेगा तब कोई करुणावरुणालय तुझे उस कूए से निकालेगा सो जब तू उसका प्रत्युपकार कर देगा तब इस शाप से मुक्ति पावेगा।" इस प्रकार बहिन की बात सुन वह रजतदंष्ट्र स्वर्णशिख पक्षी होकर जन्मा। सो वह स्वर्णचूल पक्षी मैं ही हूं, रात्रि के समय इस अन्धकूप में गिर पड़ा अब आपने मेरा उद्धार किया; सो अब मैं जाता हूं जिस समय आप पर कोई विपत्ति पड़े उस समय मुझे स्मरण करियेगा तो आपका उपकार कर अपने शाप से मुक्ति पाऊंगा। इतना कह वह पक्षी भी चला गया।

तब बोधिसत्त्वने उस भुजङ्ग से कहा कि अच्छा अब तुम अपना वृत्तान्त सुनाओ, इस पर वह सांप अपना वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगा।

पूर्व समय में कश्यप ऋषि के आश्रम में कोई मुनिकुमार था वहां एक मुनिपुत्र मेरा वरास्ख था। एक समय वह मेरा सखा सरोवर में स्नान करने के लिये पैठा और मैं किनारे पर खड़ा रहा। इतने में तीन फण का एक सर्प आया। उस समय मैंने अपने मन्त्रबल से उसी के सन्मुख उस सांप को रोक रक्खा कि जब वह नहा के निकले तो सांप को देख डरजावे और तब एक कौतुक देखने में आवे। थोड़ी देरमें मेरा मित्र स्नान कर तीरे आया और उस सांप को देखतेही त्रस्त होकर मूर्च्छित हो गया। बहुत देर के उपरान्त वह चैतन्य हुआ। तब मैंने बहुत समझा बुझाकर उसे शान्ति दी; परन्तु ध्यान से जान लिया कि यह त्रास मेरे द्वारा किया गया था। सो उसने मुझे शाप दिया कि जा तू ऐसाही त्रिफण सर्प हो जा। तब मैंने उससे बड़ी विनती किई सो उस मुनिकुमार ने यह शापान्त ठहरा दिया कि जब तू सांप होकर किसी अन्धकूप में गिरेगा तो कोई महात्मा तुझे उसमें से निकालेगा सो जब तू उसका प्रत्युपकार करेगा तब इस शाप से मुक्ति पावेगा।

इतना कह वह मेरा मित्र चला गया और मैं तत्क्षण सर्प हुआ आज आपने इस अन्धकूप से मेरा उद्धार किया; सो जब कभी आपको काम पड़े तो मुझे स्मरण कीजियेगा उस समय आपका प्रत्युपकार कर मैं अपने शाप से मुक्त हो जाऊंगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय वह भुजंग जब चला गया तब वह स्त्री अपना वृत्तान्त इस प्रकार वर्णन करने लगी।

मैं राजा के सेवक एक शूर क्षत्री की भार्य्या हूं, मेरा पति बड़ा रूपवान् युवा और मानमर्य्यादाशाली है। मुझे पापिष्ठाने अन्य पुरुष से कुकर्म्म कराया, यह बात मेरे पति को विदित होगयी बस उन्होंने मुझे दण्ड देने का विचार किया। सखी के मुख से यह बात सुन रात्रि के समय मैं भाग निकली और इस कूप में गिर पड़ी अब आपने मुझे निकाला। अब आपके प्रसाद से मेरे प्राण बचे सो कहीं जाकर जीवन निर्वाह करूंगी; ईश्वर करे कि वह दिन आवे कि मैं आपका प्रत्युपकार करूं। इतना बोधिसत्त्व से कहकर वह कुलटा वहां से चली गयी और गोत्रवर्द्धन राजा के नगर में जाकर वहां के राजपरिवारस्थ लोगों से परिचय कर कराके राजा की पटरानी की दासी हो रहने लगी।

इस प्रकार उस कुलटा के साथ सम्भाषण करने से उस बोधिसत्त्व की सिद्धि जाती रही अब उसे बन में मूल फलादिक कुछ भी न मिलता; भूख प्यास से व्याकुल हो वह बड़ा दुःखी हुआ; सो पहिले उसने सिंह का स्मरण किया। स्मरण करतेही सिंह आ पहुंचा और मृगों के मांस से उसको जीविका करने लगा। इस प्रकार जब कुछ दिनों में मांस खाते २ वह हृष्ट पुष्ट हुआ तब सिंह ने उससे कहा कि अब तो मेरा वह शाप क्षीण हो गया अब मैं जाता हूं। इतना कह सिंह शरीर त्याग तुरत विद्याधर के रूप में हो गया और उससे विदा हो अपने स्थान को चला गया।

अब बोधिसत्त्व को पुनः उपवास होने लगे तब उसने उस स्वर्णशिख पक्षी को स्मरण किया; स्मृतमात्र में वह खग आ पहुंचा। उसके आने पर इसने अपनी विपत्ति कह सुनाई। गगनचर ने क्षण भर में ही रत्न और आभरणों से भरा एक डब्बा उसे लादिया और कहा कि इतने धन से तुम्हारा काम आजीवन भलीभांति चल जायगा: और अब मेरे शाप का अन्त हुआ; तुम्हारा कल्याण हो

में चला। इतना कह तत्क्षण वह विद्याधरकुमार के रूप में हो गया और आकाश मार्ग से अपने लोक को चला गया। पिता ने उसी क्षण उसे राज्य पद दे दिया और वह भलीभांति उसका निर्वाह करने लगा।

विद्याधर कुमार के चले जाने पर बोधिसत्त्व रत्न बेचने चला चलते २ उसी नगर में पहुंचा जहां वह स्त्री रहती थी जिसे उसने कूप से निकाला था। वहां किसी वृद्ध ब्राह्मणी के सूनसान घर में सब रत्न रख ज्योंही वह हाट की ओर चला त्योंही उस बन में कूप से निकाली हुई वह स्त्री साम्हने दीख पड़ी, उस नारीने भी उसे देखा। देखा देखी होतेही दोनों ने एक दूसरे को पहिचान लिया आपस में बात चीत करने लगे। कथाप्रसङ्ग के बीच में स्त्रीने कह सुनाया कि मैं महारानी के यहां दासी हूं। स्त्रीने जब इसका वृत्तान्त पूछा तो इसने अपनी दुर्दशा और विपत्ति की बात और सिंहव्रत परिपालन कहकर यह भी कह सुनाया कि उस स्वर्णशिख पक्षी ने बहुत से रत्न और आभरण ला दिये हैं, फिर ब्राह्मणी के घर उसे ले जाकर सब रत्नाभरण दिखा भी दिये। वह बिचारा तो सीधासादा था वह क्या जाने कि किसके पेटमें क्या है। अस्तु, उस दुष्टा के उदर में यह बात कैसे पचे उसने जाकर अपनी स्वामिनी रानी से सब वृत्तान्त कह सुनाया। इस स्त्री के देखतेही वह स्वर्णचूल रानी के घर में से रत्नाभरणों का वह डब्बा उठा लेगया। जब रानी को उसी स्त्री से पता लगा कि वे रत्नाभरण नगर में आगये हैं तब उन्होंने राजा से यह वृत्तान्त कहा। राजाने भी उस स्त्री से दिखवाकर बोधिसत्त्व को रत्नाभरण सहित पकड़वा मँगाया। महीपति ने उससे पूछा कि तूने ये रत्नाभरण क्योंकर पाये? उसने आद्यन्त उनकी प्राप्ति का वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर यद्यपि राजा को विश्वास हुआ कि बात सत्य है तथापि उन्होंने उससे सब रत्न और आभरण छीन लिये और उसे बन्दीगृह में डाल दिया।

अब बन्दीगृह में पड़े हुए बोधिसत्त्व ने मुनिपुत्रावतार उस भुजंगम को स्मरण किया, उसीक्षण वह फणी वहीं उपस्थित हुआ। उसे उस प्रकार जकड़ा देख सर्प ने पूछा कि कहो तो सही तुम्हारी यह दुर्गति क्योंकर हुई तब उसने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर सांप ने उस साधु से कहा "अच्छा कुछ चिन्ता नहीं मैं इसका उपाय अभी करता हूं; सुनो मैं जाकर राजा के समस्त शरीर में

लपट जाता हूं;बस देखो न कैसी हलचली मच जाती है। उस समय तुम भी वहां आना और कहना कि मैं राजा को इस सर्प से छुड़ाये देता हूं इतना कह तुम मुझसे कहना बस मैं राजा को छोड़ धीरे से रेंग जाऊंगा; मुझसे छूट कर राजा तुम्हें आधा राज्य बांट देगा।" इतना कह वह सांप जाकर राजा के समस्त शरीर में लपट गया और तीनों फण नरेश के मस्तक पर फैला झूमने लगा। हाहाकार मच गया सब लोग चिल्ला २ कहने लगे "अरे बड़ा अनर्थ हुआ, सर्प राजा को डँस लिया चाहता है। चारों ओर हड़बड़ी मच गयी। तब बोधिसत्त्वने रखवालों से कहा कि यदि कोई मुझे राजा के समक्ष ले चले तो मैं सर्प से उनका उद्धार कर दूंगा। इसपर सेवकोंने जाकर महीपति से वह बात कही, राजाने सुनतेही उसे बुला भेजा और उसके आने पर उससे कहा कि भाई जो तुम इस अहि से मेरे प्राण बचा दो तो मैं अपना आधा राज्य तुम्हें बांट दूंगा; ये मेरे मन्त्री जो यहां बैठे हैं मध्यस्थ हैं।" जब मन्त्रियोंने कहा "हां" तब बोधिसत्त्वने उस भुजंग से कहा कि इसी क्षण राजा को छोड़ दो। सर्प से मुक्त होकर राजाने अपना आधा राज्य बाँट कर बोधिसत्त्व को दे दिया। अब उसके दुःख दारिद्र्य भाग गये, वह सर्प अपने शाप से छूट कर तत्क्षण मुनिकुमार हो पड़ा और राजसभा में अपना वृत्तान्त सुनाय अपने आश्रम को चला गया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला, "महाराज! आप समझ रक्खें कि जो भले हैं वे अन्त में शुभही शुभ प्राप्त करते हैं। अन्ततोगत्वा उनका कल्याण होताही है और कैसे बड़े से बड़े महात्मा क्यों न हों, तनिक भी अतिक्रम हुआ कि पतन हुआ। फिर स्त्रियों के स्वभाव का भी कैसा परिचय मिलता है, दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि नारियों का विश्वास कदापि न करना, चाहे प्राणही क्यों न दिये जावें पर उनके हृदय की गति जानी नहीं जाती, तब और क्या उपाय चल सकता है।

वत्सराजपुत्र श्रीनरवाहनदत्त को इस प्रकार मनभावनी कथायें सुनाकर गोमुख फिर बोला कि देव! सुनिये अब आपको पुनः मूर्खों की कथायें सुनाता हूं।

किसी विहार (१) में एक मूर्ख श्रमण (२) रहता था। एक समय की बात है

(१) जैन संन्यासियों के रहने का स्थान; आश्रम।

(२) जैन संन्यासी श्रमण नाम से भी परिचित होते हैं; भिक्षुक भी कहलाते हैं।

कि वह किसी गली मेंसे चला जाता था, इतने में एक कुत्तेने उसकी टांग में काट लिया। अस्तु वह अपने विहार को लौट आया और अपने मन में यही चिन्ता करने लगा कि जोही देखेगा वही पूछेगा कि टांग में क्या हुआ; सो एक २ कर कबलों मैं सभों को उत्तर देता रहूंगा कोई ऐसा उपाय करूं कि एकही बार सभों को विदित हो जाय। इतना विचार वह मठ के ऊपर चढ़ गया और मुंगरी उठाय घंटा बजाने लगा। घंटे की ध्वनि सुन सब भिक्षुक एकत्रित हो गये और उससे पूछने लगे कि असमय में अकारण क्यों घंटा बजा रहा है? उसने उत्तर दिया दिया कि कुत्ते ने मेरी टांग में काट खाया है, सो एक २ के पूछने पर मैं कबलों सब का उत्तर दिया करता बस इसी से मैंने सब को एकत्रित किया है कि एक-बारही कह देने से सब को विदित हो जाय। सो तुम लोग देखलो यह मेरी टांग है जिसमें कुत्तेने काट खाया है, इतना कह उसने सब भिक्षुकों को अपनी टांग दिखा दी।

गोमुख बोला "देव! यह तो मूर्ख श्रमण की कथा हुई अब आपको एक मूर्ख टक्क (२) की कथा सुनाता हूं।

किसी नगर में एक मूर्ख टक्क रहता था वह जैसा बड़ा धनवान् था वैसाही कंजूस भी था। कंजूसी की पराकाष्ठा समझनी चाहिये क्योंकि वह और उसकी पत्नी बस दोही प्राणी तो थे परन्तु सत्तू खाकर दिन बिताते थे सोभी बिना निमक का; यहां लों कि दूसरे किसी अन्न का स्वाद भी नहीं जानते थे कि कैसा होता है। एक दिन दैव की प्रेरणा से उसने अपनी स्त्री से कहा कि आज खीर खाने की इच्छा है यदि आज खीर बनाती तो अच्छा होता। "बहुत अच्छा" कह उसकी भार्य्या तो खीर पकाने की सामग्री जुटाने लगी और वह सूम घर के भीतर एक खटिया पर जा पड़ा बाहिर इस भय से न निकला कि कहीं कोई सुन न ले कि आज इसके यहां खीर पकी है तो देनी पड़े। वह विचारा तो इसी भय से भीतर लुका था कि इतने में उसका मित्र एक धूर्त्त टक्क पहुंचही तो गया। उस आगन्तुक ने उस सूम की स्त्री से पूछा कि तुम्हारे पति कहां हैं? इस प्रश्नका उत्तर कुछ न देकर वह अपने पति के पास चली गयी। पत्नी से मित्र के आने का

(२) वाह्लीक देश के निवासी पुरुष टक्क नामसे भी परिचित होते हैं।

वृत्तान्त जान उसने अपनी भार्य्या से कहा कि सुन यहीं बैठ कर मेरे पांव पकड़ तू रोने लग और जब मित्र आकर पूछे तो कह देना कि मेरे पति मर गये, सो जब वह चला जायगा तब हम दोनों जने मजेमें खीर खायेंगे। इतना सुन ज्योंही वह रोने लगी त्योंही वह सुहृद् भीतर चला आया और पूछने लगा "ऐं क्या हुआ? यह क्या बात है?" स्त्रीने उत्तर दिया "देखो न मेरे पति मर गये," उसकी ऐसी बात सुन वह अपने मनमें विचारने लगा कहां तो अभी ही मैंने इसे देखा कि सुख से बैठी खीर पका रही थी; कहां क्षण भर में ही इसका पति, विना किसी रोग के मर गया; बस २ मैं समझ गया कि मुझ पाहुने को देखकर इन दोनोंने यह ढोंग रचा है; अच्छा क्या हुआ मैं भी एकही हूं, मैं भी टलने का नहीं। इतना विचार वह धूर्त्तराट् वहीं बैठ गया और "हा मित्र! हा मित्र!" कह २ चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। उसका आक्रन्दन सुन बन्धु बान्धव तथा पड़ोस के लोग बटुर आये और उसको श्मशान ले चलने का उपक्रम करने लगे। यह देख उसकी स्त्रीने झुककर उसके कानमें कहा कि अब उठो नहीं तो ये बान्धव ले जा कर तुम्हें जला देंगे। उस शठने भी धीरे से उत्तर दिया कि यह धूर्त मेरी खीर खाया चाहता है सो जबलों यह चला न जाय मैं उठने का नहीं, चाहे मरजाऊं तो मरजाऊं; अरे बापरे मेरी खीर खायगा, हमारे समान लोगों के पक्ष में एक मुट्ठी अन्न प्राण से भी भारी है सो मैं तो इसे खीर कदापि न खिलाऊंगा। तब उस कुस्त्रीने उसे बान्धवों के साथ लेजाकर उसकी दाहक्रिया कर दी और वह कदर्य्यशिरोमणि निश्चेष्ट जल मरा पर उसके मुंह से यह न निकला कि अच्छा खा लेना, जलाओ मत। इस प्रकार उस मूर्खने अपने प्राण दे दिये पर खीर न दियी अन्तमें उसका ऐसे कष्ट से कमाया धन दूसरोंने मजेमें उड़ाया और खाया।

इस प्रकार सूमड़े की कथा सुनाय गोमुख बोला "महाराज यह तो अपने सूमकी कथा सुनी अब आपको उन मूर्खों की कथा सुनाता हूं जो यह नहीं जानते थे कि बिल्ली कैसी होती है।

उज्जयिनी में किसी मठ में एक उपाध्याय रहता था, मूसों के उपद्रव से उसे रात्रि में भली भाँति नींद नहीं आती थी, सो अति दुःखित हो उसने अपने एक मित्र से मूसों के इस उपद्रव की बात कही। उसके मित्र ब्राह्मण ने उससे कहा कि

बिल्ली मूसों को खा जाती है सो लाकर एक बिल्ली पालो। उस उपाध्यायने पूछा कि मित्र बिल्ली कैसी होती है. टुक उसका वर्णन तो करो तो ज्ञात होवे कि वह ऐसी २ होती है क्योंकि हमने कभी उसे देखा नहीं है। उसके मित्र ने उत्तर दिया "मित्र! उसकी आंखें काली और चमकीली होती हैं, उसका रंग धूसर होता है, पीठपर गुलगुल रोंए होते हैं; गलियों में प्रायः घूमा करती है; सो हे मित्र! इन लक्षणों से मार्जार को पहिचनवा कर तुम मंगवा कर पालो बस तुम्हारा कष्ट दूर हो जायगा।" इतना कह उसका सुहृद् चला गया। तब उस मूर्ख उपाध्याय ने अपने शिष्यों से कहा कि तुम लोगों ने बिल्ली के सब लक्षण तो सुनही लिये, सो गलियों में से ढूंढ़ कर एक बिल्ली पकड़ लाओ। "जो आज्ञा," कह सब शिष्य बिल्ली की खोज में चले, पर ढूंढ़ने पर भी उन्हें बिल्ली न मिली।

अन्त में उन्होंने एक गली से निकलते एक वटु को (१) देखा, उसके नेत्र वैसेही कंजे और चमकीले, वर्ण धूसर, पीठ पर लोमश मृगचर्म बस सब लक्षण तो मिल गये सो उन्होंने उस वटुकोही मार्जार समझा और उसको रोक कर आपस में कहा कि हमलोगों से जैसे मार्जार के लक्षण बतलाये गये थे वैसाही मिल गया। अब उसे पकड़ कर उपाध्याय के पास ले गये। उपाध्यायजीने भी देखा कि बिल्ली के सब लक्षण तो इसमें मिल गये बस यह मार्जार तो है ही, इसमें संदेहही क्या है; इतना बिचार उन्होंने उस वटुको रात्रि के समय मठ के भीतर रखा, वह मूर्ख वटु भी उनसे आपना नाम मार्जार सुन अपने मनमें विचारने लगा कि ये सब ठीक जानते हैं तब न ऐसा कह के पुकारते हैं; बस निश्चय करके मैं मार्जारही हूं। यहां एक कौतुक यह हुआ कि वह वटु भी पक्का मूर्ख था और उसी ब्राह्मण का शिष्य था जिसने उस उपाध्याय को मार्जार के लक्षण बतलाये थे। सो प्रातःकाल जब वह ब्राह्मण अपने मित्र उस उपाध्याय के यहां आया तो क्या देखता है कि घर के भीतर वही विद्यार्थी वटु बैठा है; उसे देख उस विप्रने उन मूर्खों से पूछा कि इसे यहां कौन लाया? उपाध्याय तथा उन जड़मति शिष्योंने उत्तर दिया कि आपने मार्जार के लक्षण जैसे बतलाये थे उन्हीं लक्षणों से पहिचान कर हमलोग इसे यहां लाये हैं। उनको ऐसी बात सुन वह विप्र बोला, "तुमलोग मनुष्य

(१) यज्ञोपवीत के उपरान्त में वास करने वाला ब्रह्मचारी।

हो कि घनचक्कर ! भला कहां यह मनुष्य और कहां मार्जार ! ! ! मार्जार को तो पूंछ भी होती है ।" ब्राह्मण का ऐसा कथन सुनकर उन मूर्खों ने उस वटु को छोड़ दिया और कहा यह मार्जार नहीं है अच्छा तो हम दूसरे मार्जार को ढूंढ़ लावेंगे । उनकी ऐसी बात सुन जो लोग वहां बैठे थे हँस पड़े । भला अज्ञता से किसकी हँसी नहीं होती ।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव ! यह तो आपने उन मूर्खों की कथा सुनी जो वटु को मार्जार मान बैठे थे, अब आप को और २ मूर्खों की कथा सुनाता हूं ।

किसी मठ में बहुत से मूर्ख रहते थे, उनका जो मुखिया था वह नामानुरूप था । एक दिन वह ऐसा स्थान में जा पहुंचा जहां कथा हो रही थी, उस दिन व्यासजी ने कथाप्रसङ्ग में यह सुनाया कि जो कोई यहां तलाव खुदवाता है उसे परलोक में बड़ा फल मिलता है । इस कथा के श्रवण करने से उसके मनमें भी तड़ाग बनवाने की इच्छा हुई । यह बात तो प्रत्यक्ष ही है कि मठधारियों के पास रुपयों की कमी नहीं रहती; बस अतिशीघ्र मठ के समीपही एक बड़ा भारी तलाव उसने खोदवा डाला ।

एक दिन वह मूर्खाग्रणी अपना बनवाया तलाव देखने गया तो क्या देखता है कि तलाव की बालू बिखरी है । उसी प्रकार उसने दूसरे दिन जाकर देखा तो दूसरा किनारा उधेड़ा हुआ है; तब तो उसके मन में बड़ी चिन्ता हुई कि यह बात क्या है, किस जन्तु का यह काम है अच्छा कल मैं बड़े तड़केही आऊंगा और भोर से लेकर सायंकाल पर्य्यन्त यहीं बैठा रहूंगा, देखूंगा न कि यह किसका उत्पात है, इतना सोच वह चला गया । दूसरे दिन ज्योंही बडे तड़के वहां पहुंचा तो क्या देखता है कि आकाश से एक वृषभ उतरा है और तलाव का किनारा खोदने में लगा है । इसने विचारा कि यह स्वर्गीय वृष है सो क्यों न मैं इसके साथ स्वर्गलोक को चला जाऊं, इतना सोच झटपट वृष के समीप जाकर उसने कस कर उसकी पूंछ पकड़ ली । वह वृषभ भगवान् भी उसे लिये दिये ऊपर उठे और क्षण भर में अपने लोक कैलास धाम में पहुंच गये । वहां वह मुग्ध मठाधीश उत्तमोत्तम दिव्य लड्डू इत्यादि अनेक प्रकार के भक्ष्य भक्षण कर बड़े सुख से रहने लगा । इधर

वह वृषभ भगवान् भी प्रति दिन आया जाया करते थे, सो कुछ दिनों के उपरान्त दैववश उस मुच मठाधीश्वर ने विचारा कि अब उसी प्रकार वृष की पूंछ पकड़ कर अपने घर चलना चाहिये और बन्धुबान्धवों को देखभाल के फिर इसी प्रकार चला आऊंगा। अस्तु ऐसा विचार कर वह उन्हीं वृष भगवान् को पूंछ पकड़ उसी प्रकार भूलोक में उतर आया। जब वह मठ में पहुंचा तब और सब दूसर मठ में रहनेवाले उसके निकट घिर आये और उसे आलिङ्गन कर बड़े प्रेम से पूछने लगे कि कहिये तो आप कहां चले गये थे, इतने दिन कहां रहे? इस प्रकार पूछे जाने पर उसने अपना वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया बस अब क्या था अब तो सभों को इच्छा उन मोदकों के खाने की हुई सब उससे बड़ी चिरौरी करने लगे कि हमें भी वहां ले चलिये और मोदक खिलाइये। इस पर वह बोला "अच्छा, तुम लोग भी चलो क्या चिन्ता है; ऐसा २ करना होगा, जब वह बैल आवेगा तो मैं उसकी पूंछ पकड़ लूंगा और तुम में से एक मेरी टांगें पकड़ लेना, उसकी टांगें दूसरा पकड़ लेवे, बस इसी प्रकार एक दूसरे की टांगें पकड़ लेना सब लोग उड़ चलेंगे। इस प्रकार युक्ति बतला कर वह सभों को तलाव के किनारे ले गया और यथा समय वह वृष महाराज भी आय पहुंचे, बस महंतजी ने आगे बढ़ कर उनकी पूंछ पकड़ ली, एक दूसरे ने महंतजी की टांगें पकड़ लीं, तीसरे ने उसकी, इस प्रकार सभों ने एक दूसरे की टांगें पकड़ लीं जिस से एक बड़ी भारी सिकड़ी बन गयी। इतने में वृष भगवान् वेग से उड़े और उनकी पूंछ में वह मानव-सिकड़ी लटकी हुई थी; इसी अवसर में दैव के मारे एक ने महन्तजी से पूछा कि अच्छा यह तो बतलाइये कि अनायास जो लड्डू आपको स्वर्ग में भोजन के लिये मिलते हैं वे कितने बड़े होते हैं। अब उस मुच महन्त को भूल गया कि हम लोग वृष की पूंछ में लटके हुए है सो उसने पूंछ छोड़ अपने दोनों हाथ जोड़ पद्माकार बना कर दिखा के कहा कि इतने बड़े २ होते हैं, इतना करना था कि सब के सब धड़ाम २ पृथ्वी पर गिर पड़े और गिरतेही ठंढे हो गये, इधर कौतुक देखने वाले लोग ठहाका मार २ हँसने लगे।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज; इस प्रकार जो लोग बिना विचारे कुछ काम कर बैठते हैं वे दुःखभागीही होते हैं और ऊपर से जो लोग

उनका उपहास करते हैं वह घलुवा समझना चाहिये । अच्छा देव ! आपने इन स्वर्गगामी मूर्ख चपाटों की कथा सुनी अब आपको एक दूसरे भुच्च की कथा सुनाता हूं ।

कोई भुच्च कहीं चला जा रहा था, जाते २ राह भूल कर किसी दूसरी ओर भटक गया । उसने किसी से मार्ग पूछा कि अमुक २ स्थान को किस ओर से जाना होगा उत्तर मिला कि 'देखो नदी के किनारे पर जो पेड़ है उसी के ऊपर से चले जाओ,' जिससे पूछे वह यही उत्तर देवे । इस प्रकार लोगों से पूछ के वह उसी मार्ग से चला । जब उस पेड़ के नीचे पहुंचा तब वह मूर्ख उस वृक्ष पर चढ़ गया । अपने मन में यह सोचने लगा कि लोगों ने यही मार्ग तो बतलाया है । ज्यों २ वह ऊपर चढ़ता जाय त्यों २ उस वृक्ष की शाखा झुकती जाय अन्त में जब सब से ऊपर की चोटी पर पहुंचा तो वह शाखा बहुत झुक गई और वह उसे पकड़े हुए लटक गया ।

इधर तो वह लटकही रहा था उधर से एक फीलवान् अपने हाथी को पानी पिला कर उसी पर चढ़ा करारे पर आ पहुंचा । उसे देख तरुशाखावलम्बी वह भुच्च बड़ी दीन वाणी से बोला "हे महात्मन् ! यदि मुझे पकड़ कर उतार लेते तो बड़ी दया होती । अब उसके उतारने के लिये उस हस्तिरक्षक ने अंकुश छोड़ उस मूर्ख के दोनों पाव अपने दोनों हाथ से पकड़ लिये किन्तु इतने में वह हाथी वहां से खसक गया और पीलवान् भी भुच्च के पांव पकड़े लटकता रह गया । तब वह भुच्च लगा हड़बड़ी मचाने और उस पीलवान् से कहने लगा कि यदि तुम्हें कुछ गाना आता हो तो झटपट गाओ जिसमें आस पास के लोग आकर हम दोनों को उतार लेवें नहीं तो जो हम दोनों गिरेंगे तो नदी हमें बहा ले जायगी । इतना सुन वह गजारोह ऐसे मधुर स्वर से गाने लगा कि उसके माधुर्य्य से वह ऊपर वाला भुच्चही बड़ा प्रसन्न हुआ, सो वह आनन्द में मग्न होकर साधुवाद देने लगा इसी में भूल गया कि हम कहां लटके हैं बस डाल छोड़ ताली बजाने लगा, इतने में दोनों झम से नदी में गिर पड़े और बह गये । ठीकही है मूर्खों की संगति से भला किस का कल्याण हुआ है ।

इस प्रकार वत्सेश्वरात्मज नरबाहनदत्त को मूर्खों की कथाएं सुनाय मन्त्रि-प्रवर गोमुख आगे हिरण्याक्ष की कथा सुनाने लगा ।

वह वृषभ भगवान् भी प्रति दिन आया जाया करते थे, सो कुछ दिनों के उपरान्त दैववश उस भुच्च मठाधीश्वर ने विचारा कि अब उसी प्रकार वृष की पूंछ पकड़ कर अपने घर चलना चाहिये और बन्धुबान्धवों को देखभाल के फिर इसी प्रकार चला आऊंगा। अस्तु ऐसा विचार कर वह उन्हीं वृष भगवान् की पूंछ पकड़ उसी प्रकार भूलोक में उतर आया। जब वह मठ में पहुंचा तब और सब दूसर मठ में रहनेवाले उसके निकट घिर आये और उसे आलिङ्गन कर बड़े प्रेम से पूछने लगे कि कहिये तो आप कहां चले गये थे, इतने दिन कहां रहे? इस प्रकार पूछे जाने पर उसने अपना वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया बस अब क्या था अब तो सभों को इच्छा उन मोदकों के खाने की हुई सब उससे बड़ी चिरौरी करने लगे कि हमें भी वहां ले चलिये और मोदक खिलाइये। इस पर वह बोला "अच्छा, तुम लोग भी चलो क्या चिन्ता है; ऐसा २ करना होगा, जब वह बैल आवेगा तो मैं उसकी पूंछ पकड़ लूंगा और तुम में से एक मेरी टांगें पकड़ लेना, उसकी टांगें दूसरा पकड़ लेवे, बस इसी प्रकार एक दूसरे की टांगें पकड़ लेना सब लोग उड़ चलेंगे। इस प्रकार युक्ति बतला कर वह सभों को तलाव के किनारे ले गया और यथा समय वह वृष महाराज भी आय पहुंचे, बस महंतजी ने आगे बढ़ कर उनकी पूंछ पकड़ ली, एक दूसरे ने महंतजी की टांगें पकड़ लीं, तीसरे ने उसकी, इस प्रकार सभों ने एक दूसरे की टांगें पकड़ लीं जिस से एक बड़ी भारी सिकड़ी बन गयी। इतने में वृष भगवान् वेग से उड़े और उनकी पूंछ में वह मानव-सिकड़ी लटकी हुई थी; इसी अवसर में दैव के मारे एक ने महन्तजी से पूछा कि अच्छा यह तो बतलाइये कि अनायास जो लड्डू आपको स्वर्ग में भोजन के लिये मिलते हैं वे कितने बड़े होते हैं। अब उस भुच्च महन्त को भूल गया कि हम लोग वृष की पूंछ में लटके हुए है सो उसने पूंछ छोड़ अपने दोनों हाथ जोड़ पद्माकार बना कर दिखा के कहा कि इतने बड़े २ होते हैं, इतना करना था कि सब के सब धड़ाम २ पृथ्वी पर गिर पड़े और गिरतेही ठंढे हो गये, इधर कौतुक देखने वाले लोग ठहाका मार २ हँसने लगे।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज; इस प्रकार जो लोग बिना विचारे कुछ काम कर बैठते हैं वे दुःखभागीही होते हैं और ऊपर से जो लोग

उनका उपहास करते हैं वह घनुवा समझना चाहिये । अच्छा देव ! आपने इन स्वर्गगामी मूर्ख चपाटों की कथा सुनी अब आपको एक दूसरे भुच्च की कथा सुनाता हूं ।

कोई भुच्च कहीं चला जा रहा था, जाते २ राह भूल कर किसी दूसरी ओर भटक गया । उसने किसी से मार्ग पूछा कि अमुक २ स्थान को किस ओर से जाना होगा उत्तर मिला कि 'देखो नदी के किनारे पर जो पेड़ है उसी के ऊपर से चले जाओ,' जिससे पूछे वह यही उत्तर देवे । इस प्रकार लोगों से पूछ के वह उसी मार्ग से चला । जब उस पेड़ के नीचे पहुंचा तब वह मूर्ख उस वृक्ष पर चढ़ गया । अपने मन में यह सोचने लगा कि लोगों ने यही मार्ग तो बतलाया है । ज्यों २ वह ऊपर चढ़ता जाय त्यों २ उस वृक्ष की शाखा झुकती जाय अन्त में जब सब से ऊपर की चोटी पर पहुंचा तो वह शाखा बहुत झुक गई और वह उसे पकड़े हुए लटक गया ।

इधर तो वह लटकही रहा था उधर से एक फीलवान् अपने हाथी को पानी पिला कर उसी पर चढ़ा करारे पर आ पहुंचा । उसे देख तरुशाखावलम्बी वह भुच्च बड़ी दीन वाणी से बोला "हे महात्मन् ! यदि मुझे पकड़ कर उतार लेते तो बड़ी दया होती । अब उसके उतारने के लिये उस हस्तिरक्षक ने अंकुश छोड़ उस मूर्ख के दोनों पाव अपने दोनों हाथ से पकड़ लिये किन्तु इतने में वह हाथी वहां से खसक गया और पीलवान् भी भुच्च के पांव पकड़े लटकता रह गया । तब वह भुच्च लगा हड़बड़ी मचाने और उस पीलवान् से कहने लगा कि यदि तुम्हें कुछ गाना आता हो तो झटपट गाओ जिसमें आस पास के लोग आकर हम दोनों को उतार लेवें नहीं तो जो हम दोनों गिरेंगे तो नदी हमें बहा ले जायगी । इतना सुन वह गजारोह ऐसे मधुर स्वर से गाने लगा कि उसके माधुर्य्य से वह ऊपर वाला भुच्चही बड़ा प्रसन्न हुआ, सो वह आनन्द में मग्न होकर साधुवाद देने लगा इसी में भूल गया कि हम कहां लटके हैं बस डाल छोड़ ताली बजाने लगा, इतने में दोनों झम से नदी में गिर पड़े और वह गये । ठीकही है मूर्खों की संगति से भला किस का कल्याण हुआ है ।

इस प्रकार वत्सेश्वरात्मज नरवाहनदत्त को मूर्खों की कथाएं सुनाय मन्त्रि-प्रवर गोमुख आगे हिरण्याक्ष की कथा सुनाने लगा ।

हिमवान् की कुक्षि में कश्मीर नामक एक देश है जिसको धरातल का शिरोमणि कहना चाहिये, विद्या और धर्म्म का तो मानो वह निकेतन है । वहां की बात है कि राजकुमार गेंद खेल रहे थे, उसी मार्ग से एक तापसी चली आती थी सो उन्होंने छल से तापसी को गेंद से मार दिया। तापसी जितक्रोधा थीं सो क्रोध न कर प्रत्युत हँस कर बोलीं "राजकुमार । जो तुम्हें अपने सौन्दर्यादि का ऐसा घमण्ड है तो जो कहीं मृगाङ्कलेखा को भार्य्या पाओ तो कैसा हो ? यह सुन राजकुमार ने तापसी से अपना अपराध क्षमा कराया और बड़ी उत्कण्ठा से पूछा कि भगवति कहिये तो सही यह मृगाङ्कलेखा कौन है ।

राजपुत्र का ऐसा प्रश्न सुन तापसी बोलीं हिमालय पर शशितेजा नामक एक महायश विद्याधरेन्द्र हैं, मृगाङ्कलेखा उन्हीं की पुत्री है; विधाता ने उसको ऐसा सौन्दर्य्य दिया है कि जिसके लिये अनेक द्युचरेन्द्र रात २ भर जागते ही रह जाते हैं पल भर के लिये भी नींद नहीं आती । सो जैसी हो वह सुन्दर है वैसेही तुम भी हो तुम्हारे लिये वही अनुरूप भार्य्या है और उसके लिये तुम्हीं उचित वर हो। सिद्धा तापसी की ऐसी बात सुन हिरण्याक्ष बोले, "भगवति ! यह भी तो बता दो कि वह कैसे मुझे मिल सकती है !" इस पर योगेश्वरी ने उत्तर दिया, "मैं जाकर उससे तुम्हारा वर्णन करूंगी और जो उसका मन मुंह पाऊंगी तो आकर मैं ही तुम्हें उसके पास ले चलूंगी । यहां पर जो अमरेशाख्य देव हैं उन्हीं के मन्दिर में कल प्रात:काल आकर मुझ से भेंट करना क्योंकि मैं प्रति दिन उनकी पूजा करने आती हूं ।

राजकुमार से इतना कह वह तापसी अपनी सिद्धि के बल से उड़ी और हिमालय पर मृगाङ्कलेखा के निकट पहुंच गयी । इधर उधर की बातें होने लगीं, बीच में बड़ी युक्ति से तापसी ने राजकुमार हिरण्याक्ष की बात छेड़ दी और उनके सौन्दर्य्यादिक गुणों का वर्णन इस प्रकार किया कि वह दिव्य कन्या तापसी से कहने लगी कि भगवति । यदि ऐसा पति मुझे न मिले तो मेरा जीवन निष्फल है, इससे मुझे क्या काम । मृगाङ्कलेखा कामबाण से बिद्ध हो गयी थी अब उसे राजकुमार हिरण्याक्ष की कथा छोड़ और बातही अच्छी न लगी. अस्तु इसी प्रकार दिन तो उन्हीं के कथोपकथन में बीता, रात हुई और मृगाङ्कलेखा उस तापसी के साथ सो रही ।

यह तो इधर की बात हुई उधर मृगाङ्कलेखा की चिन्ता से राजकुमार का हृदय व्याप्त हो गया, उन्हें कुछ भी न सुहावे; किसी प्रकार करते धरते दिवस बीता, रात आई पर हिरण्याक्ष की आंखों में नींद कहां ? बहुत बिलम्ब के उपरान्त एक झपकी लगी तो स्वप्न में क्या देखते हैं कि रात्रि के अवसान के समय श्रीगौरी देवी आई हैं और कह रही हैं कि "हिरण्याक्ष ! तुम पूर्वजन्म में विद्याधर थे एक मुनि के शाप से तुम्हें मर्त्यशरीर धारण करना पड़ा है, इसी तापसी के करस्पर्श से तुम शाप से मुक्ति पाओगे और तब मृगाङ्कलेखा से तुम्हारा विवाह होगा; अब तुम कुछ चिन्ता न करो, मृगाङ्कलेखा पूर्वजन्म की तुम्हारी भार्य्या है सो इस जन्म में भी तुम दोनों का सम्बन्ध अवश्य होगा ।" स्वप्न में इतनी बात कह के देवी अन्तर्धान हो गयीं और प्रातःकाल उठ कर राजकुमार ने स्नानादिकार्य सम्पन्न किये पश्चात् जिस मन्दिर का संकेत उस तापसी ने बताया था उन्हीं अमरेश्वर के मन्दिर में जाकर हाथ जोड़ देवाधिदेव के समक्ष खड़े हो गये ।

उसी प्रकार भगवती गौरी ने मृगाङ्कलेखा को भी स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि इस तापसी के करस्पर्श से हिरण्याक्ष का शापान्त होने पर और वह विद्याधर हो जायगा तब तू उसे अपना पति करके प्राप्त करेगी, सो तू शोक मत कर। इतना कह देवी अन्तर्धान हो गयीं और मृगाङ्कलेखा की नींद भी टूट गयी उधर प्रातःकाल भी हो गया सो उसने जाग कर स्वप्न का वृत्तान्त तापसी से कह सुनाया ।

इतना सुन वह सिद्धतापसी भूलोक में उतर आई और अमरेश्वर के मन्दिर में स्थित हिरण्याक्ष से कहने लगी "आओ पुत्र विद्याधर लोक को चलो," इतना कह प्रणाम करते हुए हिरण्याक्ष को गोद में उठा कर तापसी आकाश में उड़ गयी। उस तापसी के स्पर्श से हिरण्याक्ष त्वरित विद्याधरेश्वर हो गये और शाप क्षय हो जाने से अपनी जाति का स्मरण कर तापसी से कहने लगे। "हिमाद्रि पर जो वज्रकूट नामक पुर है वहीं का मैं राजा था, उस जन्म में मैं विद्याधरों का अधीश्वर था तब मेरा नाम अमृततेजा था। मैंने एक समय मुनि की आज्ञा की उपेक्षा की थी सो मुनि ने क्रोध कर मुझे शाप दे दिया कि जा तू मर्त्यलोक में उत्पन्न हो, जब अमुक तापसी के कर का स्पर्श होगा तब तू इस शाप से छुट

कारा पावेगा। जब मुझे शाप मिला तब जो मेरी पत्नी थी उसने दुःख से अपना शरीर छोड़ दिया था वही मेरी पूर्वप्रिया अब यह मृगाङ्कलेखा हुई है। सो अब मैं आपके साथ जाकर उसे प्राप्त करूंगा, हे भगवति! आपके करस्पर्श से आज मेरा वह शाप शान्त हो गया," इस प्रकार द्युचराधिप उस तापसी से आलाप करते हुए आकाशमार्ग से हिमाद्रि पर पहुंचे; वहां मृगाङ्कलेखा उद्यान में उन्हें दीख पड़ी और मृगाङ्कलेखा ने भी उन्हें देखा जिनका वर्णन वह तापसी पहिले कर चुकी थी। यह कैसा आश्चर्य है कि जिन दोनों का परस्पर श्रुतिपथ से मानस प्रवेश हुआ था उन्हीं का बिना निर्गमन अब पुन चाक्षुष प्रवेश हुआ।

इस प्रकार जब दोनों का परस्पर दर्शन हो चुका तब उस प्रौढ़ा तापसी ने मृगाङ्कलेखा से कहा कि बेटी अब तुम जाकर अपने पिता से विवाह कर देने की बात चलाओ। मृगाङ्कलेखा ने लज्जा से अपना शिर नीचे कर लिया और जाकर एक सखी से अपने पिता को समस्त वृत्तान्त कह सुनवाया। उसके पिता को भी स्वप्न में आम्बिका देवी ने दर्शन दे कर ऐसाही आदेश कर दिया था सो उन्होंने अमृततेजा को बड़े सत्कार के साथ अपने यहां बुला मँगाया और विधि पूर्वक मृगाङ्कलेखा का विवाह उनसे कर दिया।

विवाह हो जाने के उपरान्त अमृततेजा अपनी प्रिया मृगाङ्कलेखा को लेकर अपने नगर वज्रकूट को गये और भार्य्या तथा राज्य की प्राप्ति से अति प्रमुदित हुए। अब उन्होंने उस सिद्धतापसी के द्वारा अपने पिता कनकाक्ष को मंगवाया और अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम भोगों से उनका सम्मान किया पश्चात् पुनः उन्हें मर्त्यलोक में भेज दिया। अब विद्याधरेश्वर अमृततेजा अपनी प्रियतमा मृगाङ्कलेखा के संग आनन्दपूर्वक राज्य भोग करने लगे।

दोहा।

यहि विधि पूरबकरमफल, पावत हैं सब लोग ॥
यदपि असाध्य प्रयास बिन, बिधिवश होत सँयोग ॥१५॥
गोमुख-कथा प्रसंग सुनि, शक्तियशा-मनलीन ॥
श्रीनरवाहनदत्त पुनि, शयन जाइ गृह कीन ॥ २ ॥

दशवां तरङ्ग ।

अब दूसरे दिन रात्रि के समय फिर जमावड़ा जुटा। नरवाहनदत्त का मन तो शक्तियशा में ही लीन था सो प्रवीण मन्त्री गोमुख उनके विनोद के हेतु पुनः कथा कहने लगा।

धारेश्वर नामक महादेवजी का एक सिद्धक्षेत्र है तहां पूर्वकाल में कोई एक मुनि रहते थे; अनेक शिष्य सदा उनकी उपासना में लगे रहते। एक समय की बात है कि उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि तुम लोगों में से किसी ने यदि कुछ अपूर्व बात देखी अथवा सुनी हो तो वह कह सुनावे। मुनि का ऐसा कथन सुन एक शिष्य बोला "महाराज! मैंने एक अपूर्व बात सुनी है; जिसे मैं कहता हूं।"

कश्मीर देश में बिजय नामक एक शाम्भव महाक्षेत्र है, वहां एक प्रव्राजक रहता जो अपनी विद्या का बड़ा अभिमान रखता था। एक बार वह इस आशा से कि मैं सर्वत्र विजयी होऊं, महादेवजी को प्रणाम कर शास्त्रार्थ करने के लिये पाटलीपुत्र नगर को प्रस्थानित हुआ। चलते २ बन पहाड़ और नदियां डांकता हुआ एक जङ्गल में पहुंचा, थक तो गया ही था सो एक पेड़ के तले बैठ कर विश्राम करने लगा, इस प्रकार वह बावड़ी के किनारे बैठा विश्राम कर रहा था कि क्षण भर के उपरान्त दण्डकमण्डलुधारी एक धार्मिक (१) वहीं आ पहुंचा; वह बहुत दूर से आया हुआ प्रतीत होता था क्योंकि उसका समस्त शरीर धूर से धूसरित हो रहा था। वह वहीं पर आकर बैठ गया। अब दोनों जनों में परस्पर वार्तालाप होने लगा प्रव्राजक ने उस धार्मिक से पूछा कि भाई तुम कहां से आ रहे हो और कहां जाओगे? धार्मिक ने उत्तर दिया, 'मित्र! आप जानतेही हैं कि पाटलीपुत्र कैसा प्रसिद्ध विद्याक्षेत्र है, सो मैं वहीं से आ रहा हूं और कश्मीर को जाता हूं कि वहां के पण्डितों को शास्त्रार्थ करके जीत लूं। उस धार्मिक का ऐसा बचन सुन परिव्राट् अपने मन में सोचने लगा कि यह तो पाटलीपुत्र से आही रहा है सो इसकी आहट ले लेना चाहिये कि कितना जानता है; क्योंकि यदि इसी एक को न जीत सका तो और दूसरे बहुतों को क्योंकर जीत सकूंगा।

(१) धर्म्मतत्व का जिज्ञासु।

इस प्रकार चिल्ला कर वह बड़े आक्षेप के साथ उस धार्मिक से बोला "हे धार्मिक! बता तो सही यह तू अपने धर्म्म के विपरीत क्यों आचरण करता है? भला कहां तू धार्मिक मुमुक्षु और कहां इस प्रकार वादाविवाद के व्यसन में व्यस्त है; अरे तू वाद रूपी अभिमान-बन्धन के द्वारा संसार से मुक्त हुआ चाहता है? अग्नि से उष्णता का शमन किया चाहता है? और हिम से शीत का संहार करता है; हे मूढ़! पाषाण की नौका से महोदधि को पार किया चाहता है? अरे तू प्रचलित वह्नि को बात के द्वारा शान्त करने चला है? सुन और इस पर ध्यान दे, ब्राह्मणों का स्वभाव क्षमा है; क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि विपत्ति में पड़े हुओं की रक्षा करें और मुमुक्षु लोगों का धर्म्म है कि शम रखें, कलह तथा विवाद करना तो राक्षसी व्यापार है। इससे मुमुक्षु को शान्त और दान्त होना चाहिये संसार के क्लेश से भीत हो कर उसे द्वन्द्वातीत होना चाहिये। अतएव मैं तुझे यह उपदेश देता हूं कि शमरूपी कुठार से भवरूपी पादप काट डाल, हेतु वाद के अभिमान रूपी जल से उसे सींच मत।" इस प्रकार उसका उपदेश सुन वह धार्मिक अति सन्तुष्ट हुआ और "आप मेरे गुरु हैं," इतना कह उसे प्रणाम करके जहां से आया था वहां चला गया।

उस धार्मिक के चले जाने पर वह परिव्राट् वहां वृक्ष के नीचे बैठा हुआ विहस रहा था कि पेड़ के भीतर से भार्य्या से साथ क्रीड़ा करते हुए किसी यक्ष के आलाप की आहट उसे सुन पड़ी, सो वह कान लगा कर सुनने लगा तो क्या सुनता है कि यक्ष ने हंसी २ में अपनी भार्य्या को माला फेंक कर मारा, बस इतने ही से वह झूठ मूठ मृतक के समान हो कर मूर्छित हो गयी, परिवार में रोना पीटना मच गया लोग शिर पीट कर रोने और बिलाप करने लगे। बहुत देर में उसने आंखें खोलीं मानो जीवन आ गया; तब उसके पति यक्ष ने उससे पूछा कि प्रिये! कहो तो, तुम ने क्या देखा? तब उसने नखड़े से यह उत्तर बना कर दिया, "जब तुमने मुझे माला से मारा उसी समय मैंने देखा कि एक काला भुशुण्ड पुरुष आया है; उसके हाथ में पाश था, लाल २ नेत्र, लम्बे २ और खड़े २ केश, महाभयङ्कर आकार, उसकी छाया से समस्त दिशाये अंधकारमय हो गयीं। वह दुष्ट मुझे यमराज की मन्दिर में ले गया परन्तु वहां के अधिकारियों

ने उसे बहुत डांटा और मुझे छोड़ा दिया ।" इतना सुन कर वह यक्ष मुस्कुरा के बोला, "अहो ! स्त्रियों की चेष्टा में इन्द्रजालही भरा है; भला फूल लगने से कहीं कोई मरा है और फिर यमराज के आलय से लौटना यह कैसा ? ऐ मूढ़ ! तूने तो पाटलीपुत्र की स्त्री के वृत्तान्त का अनुकरण किया है । सुन, मैं उसकी कथा सुनाता हूं।"

उस नगर में सिंहाक्ष नामक राजा है; उसकी महिषी, एक बार अपने साथ मन्त्री, सेनापति पुरोहित तथा राजवैद्य की पत्नियों को लेकर शुक्ल पक्ष की चयोदशी के दिन उस देश की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी के दर्शन करने चली। मार्ग में उन्हें बहुतेरे कुबड़े, अन्धे, पङ्गुल तथा रोगार्त्त लोग मिले जिन्होंने उनसे बिन्ती किई कि हम दुखियों पर दया कीजिये हमें औषधि दीजिये कि हम रोग से मुक्ति पावें। यह संसार, समुद्र की लहर के समान चंचल तथा बिजली की चमक की नाईं क्षणभङ्गुर है और जैसे यात्रादि का उत्सव क्षण भर के लिये सुन्दर लगता है वैसेही यह संसार क्षणिक है; सो इस असार संसार में सार वस्तु यही है कि दीनों पर दया करे, दीनों को दान देवे; गुणवान् कहां नहीं जीवित रहता है अर्थात् जिसकी कीर्ति इस लोक में रहती है वह जीवितही रहता है। धनी को दान देने से क्या, पेट भरे को क्या भोजन कराना, शीतालु को चन्दन से क्या प्रयोजन ! वैसेही हिमागम के उपरान्त घन की क्या आवश्यकता ? सो हम रोगग्रस्त दुःखियों का उद्धार कीजिये।

इस प्रकार उन व्याधितों की बातें सुन राजमहिषी तथा उनके साथ की सब स्त्रियां बोलीं, "ये दीन रुजग्रस्त जन ठीकही कह रहे हैं अतः अपना सर्वस्व देकर भी इनकी चिकित्सा करनी चाहिये।" इस प्रकार परस्पर आलाप कर उन सबों ने देवी की पूजा की, तदुपरान्त वे सब पृथक् २ रोगियों को अपने २ घर लिवा ले गयीं वहां अपने २ महानुभाव पतियों की प्रेरणा कर महौषधियों से उनकी चिकित्सा कराने लगीं और स्वयं उनकी परिचर्य्या में लगी रहतीं और उनके निकट से कभी न हटतीं।

इस प्रकार रातदिन उन रोगियों के समीप रहने से घनिष्ट सम्पर्क के कारण उन प्रमदाओं के मन में मन्मथ का प्रादुर्भाव ऐसा हुआ कि सब संसारही उन्हें

तन्मय दिखने लगा। कहां ये दीन हीन रोगी कहां वे नृप आदिक पति, परन्तु उनका मन मदन के बाणों से बिद्ध होकर ऐसा अन्धा हो गया था कि इनका विभेद न कर सका। भला यह कब सम्भव था कि ऐसी कुलीन स्त्रियां ऐसे घृणित रोगियों से संभोग करेंगी पर धन्य मन्मथ कि जिसके प्रताप से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। नीति में कहाही है:—

घृतकुम्भसमा नारी, तप्ताङ्गारसमः पुमान्।
तस्मात् घृतं च वह्निञ्च, नैकत्र स्थापयेद्बुधः॥ *

जब उन प्रमदाओं के पतियों ने उनके अङ्ग पर नख और दांतों के क्षत देखे तब राजा मन्त्री सेनापतिप्रभृति के कान खड़े हो गये सो वे परस्पर बात करने लगे कि लक्षण तो दुर्लक्षण दीख पड़ते हैं अब क्या करना चाहिये। तब राजा ने औरों से कहा कि, "आप लोग ठहरें आज मैं युक्ति से अपनी भार्य्याही से पूछता हूं कि ये चिन्ह कैसे हुए।" इस प्रकार कहके राजा ने उन्हें बिदा किया और अपने वास गृह में जाकर पहिले तो रानी से बड़ा स्नेह दिखाया और उन्हें बहुत प्यार किया पश्चात् उनसे पूछा, "प्रिये! एक बात पूछता हूं सच २ बतलाना, झूठ न बोलना सच २ कह देनेही से तुम्हारा कल्याण है अन्यथा नहीं; भला कहो तो सही यह तुम्हारा अधर किसने दांतों से काटा है और तुम्हारे स्तनों पर किसके नखों के क्षत लगे हैं!" राजा के ऐसे प्रश्न सुन रानी बात बना के बोली, "मैं कैसी अभागिनी हूं, यह एक ऐसा आश्चर्य है कि कुछ कहते नहीं बनता; सुनिये प्राणनाथ! भीतर जो चित्र उरेहा है, रात्रि के समय उसमें से चक्र और गदाधारी एक पुरुष प्रति दिन निकलता है और मुझ से सम्भोग कर प्रातःकाल फिर उसी में लीन हो जाता है। महाराज! मेरे जिस अंग को सूर्य्य और चन्द्र ने भी नहीं देखा है उस अङ्ग की ऐसी अवस्था आपके रहते यह आकर कर कर जाता है।"

ऐसे वचन जो कातर हो रानी ने कहे तो राजा को विश्वास हो गया। राजा ऐसे मूर्ख थे कि उन्होंने समझा कि यह वैष्णवी माया है नहीं तो भला

* स्त्री घी के घड़े के समान है, और पुरुष तप्त अंगार के तुल्य है; इस लिये बुद्धिमान् को उचित है कि घृत और अग्नि का संयोग न होने देवे।

किसकी शक्ति है! इतना स्थिर कर उन्होंने मन्त्री प्रभृति से जाकर यही बात कह सुनायी; वे भी पक्के सांचे के ढाले मूर्ख थे, उन्होंने भी समझा कि अच्युत भगवान् हमारी भार्य्याओं का उपभोग करते हैं; ऐसा समझ वे सब चुप ही बैठे।

इतना सुनाय वह यक्ष पुनः अपनी स्त्री से कहने लगा कि स्त्रियां इसी प्रकार असत्य रचना में बड़ी प्रवीण होती हैं; वे दुष्टायें ऐसी २ बातें बना कर मूर्खों को बहका देती हैं; मैं वैसा मूर्ख नहीं हूं कि तेरी भड़ी में आ जाऊँ। इस प्रकार कह के यक्ष ने अपनी भार्य्या को चबड़ा दिया जिससे वह अकबका गयी और कुछ भी उत्तर न दे सकी।

ये सब बातें पेड़तले बैठा हुआ वह प्रव्राजक सुन रहा था सो उसने हाथ जोड़ कर यक्ष से निवेदन किया कि भगवन्। मैं आपके आश्रम में शरणागत उपस्थित हुवा हूं सो मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि मेरा अपराध क्षमा किया जाय क्योंकि मैंने आपकी सब बातें सुन ली हैं। उसके ऐसे सत्यभाषण से यक्ष बड़ा सन्तुष्ट हुआ, उसने कहा, "मैं सर्वस्थानगत नामक यक्ष हूं, मैं तुझ से बड़ा सन्तुष्ट हुआ हूं सो तू मुझ से वर मांग ले। प्रव्राजक ने गुह्यक से कहा कि यदि आप मुझे वर दिया ही चाहते हैं तो यह वर देवें कि आप अपनी भार्य्या पर क्रोध न करें। तब यक्ष बोला, "तथास्तु; मैंने तुझे यह वर दिया, और मैं तेरे ऐसे वर मांगने से बड़ा ही प्रसन्न हुआ सो तू मुझ से अब एक दूसरा वर मांग ले।" तब प्रव्राट् ने उत्तर दिया कि यदि यही बात है तो आप मुझे दूसरा वर यह देवें कि आज से आप दोनों मुझे अपना पुत्र करके मानें। इतना सुनतेही वह यक्ष पत्नी सहित प्रत्यक्ष हो कर बोला "पुत्र! बहुत अच्छा तू हमारा सुत हुआ, हमारे प्रसाद से तुझ पर विपत्ति कदापि न पड़ेगी और विवाद, कलह तथा द्यूत में तू सदा विजयी होगा।" इतना कहके यक्ष अन्तर्धान हो गया और प्रव्राट् ने उसे प्रणाम किया।

यक्ष के चले जाने पर रात वहीं बिताय दूसरे दिन प्रातःकाल के समय परिव्राजक पाटलिपुत्र को प्रस्थानित हुआ। राजद्वार पर पहुंच कर पौरिये से उसने राजा सिंहाक्ष के पास यह सन्देशा कहला भेजा कि मैं काश्मीर देश से एक शास्त्रार्थी आया हूं। सुनते ही राजा ने उसे सभा में बुला भेजा सो सभा में प्रवेश

कर उस सभ्यने पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। उसको तो यक्ष का वरदान थाही सो विवाद में कोई भी उसे न जीत सका तब तो सर्वविजयी होकर उसने पुनः उन पण्डितों से ऐसा आक्षेप किया; हे पण्डितो मैं तुम से एक प्रश्न करता हूं इसका उत्तर दो, कहो तो सही इसका क्या अर्थ है कि, "भीत के चित्र में से एक चक्र और गदाधारी पुरुष निकलता है और मेरे अधर अपने दांतों से काट, स्तनों पर नखों से क्षत करके मेरा उपभोग कर पुनः उसी भीत में लीन हो जाता है।" इतना सुन कर सभा के सब पण्डित चुप रह गये क्योंकि वे विचारे तो परमार्थ से अनभिज्ञ थे सो उत्तरही क्या देवें अतः वे परस्पर एक दूसरे का मुख देखने लगे। तब राजा सिंहाक्ष ने स्वयं उससे कहा कि, "भगवन्! आपने जो कहा है इसका उत्तर आपही बतला देवें।" इसने तो यक्ष से रानी के चरित्र का वर्णन पहिलेहीं सुन रक्खा था सो राजा की महिषी का चरित्र आद्यन्त वर्णन कर गया, इतना सुनाय राजा से उसने फिर कहा कि महाराज! स्त्रियों का विश्वास कदापि न करना चाहिये उनका विश्वास कर उनमें लीन हुआ कि गया। राजा उसकी बातों से बड़े प्रसन्न हुए और उसे अपना सारा राज्य देने लगे परन्तु परिव्राट् तो अपने देशका एकान्त भक्त था अतः उसने राज्य नहीं ग्रहण किया; तब राजा ने बहुत से रत्नादि उपहार देकर उसका बड़ा सम्मान किया और वह प्रव्राट् रत्नादि लेकर अपने देश काश्मीर को लौट गया और यक्ष के प्रसाद से दुःख दारिद्र्य से छूट कर वह वहां बड़े सुख से रहने लगा।

इतनी कथा सुनाय वह शिष्य महामुनि से कहने लगा कि महाराज! मैंने ये सब बातें उसी प्रव्राजक के मुख से सुनी हैं। इतना सुन वह महामुनि अपने शिष्यों के सहित बड़े विस्मित हुए और बहुत देरलोंआश्चर्य्य सागर में मग्न थे।

इतनी कथा सुनाय गोमुख वत्सेश्वरात्मज से पुनः कहने लगा कि देव! इस प्रकार कुलटा स्त्रियों के चरित्र, बिधाता के कार्य्य, तथा मानव व्यापार अति विचित्र होते हैं। अच्छा सुनिये अब आपको एकादशमारिका नारी की कथा सुनाता हूं।

मालवदेश में किसी गांव में एक कुटुम्बी मनुष्य रहता था, उसके एक कन्या हुई जो दो या तीन भाइयों से छोटी थी। जिस समय उस कन्या का जन्म हुआ

उसी समय उस गृहस्थ की भार्य्या मर गयी, थोड़ेही दिनों में उसका एक पुत्र भी मर गया; उसके मरने के कुछ कालोपरान्त उसके भाई को सांड़ ने मार दिया जिससे वह भी पञ्चत्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार उसके जन्म के उत्तर चटपट तीन जनों की मृत्यु हो गयी इस कारण उस कुटुम्बी ने उस कन्या का नाम त्रिमारिका रक्खा। कुछ कालोपरान्त वह त्रिमारिका वयास्था हुई; उसी गांव में एक धनवान् रहता था सो उसने त्रिमारिका को उसके पिता से मांगा; पिता ने भी विधिपूर्वक उत्सव करके इसका विवाह उस धनाढ्य व्यक्ति से कर दिया। उस पति के साथ त्रिमारिका थोड़ेही दिन भोग विलास कर सकी क्योंकि अल्पही काल में उसकी मृत्यु हो गयी। वह चपला विना पुरुष के कैसे रह सके अत: उसने एक दूसरा भतार किया वह भी थोड़ेही दिनों में यमलोक को सिधारा। तब उस मस्तानी ने तीसरे से सगाई कियी परन्तु पतिघातिनी का वह पति भी पञ्चत्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार क्रमश: उसके दश पति हुए और दशो मर गये तब लोग हँसी करके उसे दशमारिका के नाम से पुकारने लगे (१)।

दश पतियों के साथ सम्भोग करके भी उस त्रिमारिका पश्चात् दशमारिका का सन्तोष न हुआ वह एक पति और किया चाहती थी परन्तु पिता उसके व्यापार से बहुत लज्जित होता था अत: वह उसे रोकता था और लोग उसे मना करते और समझाते थे सो वह किसी प्रकार मन मार अपने पिता के घर में रहने लगी।

एक समय कहीं से कोई बटोही उसके घर आया, वह एक रात वहां टिका चाहता था सो दशमारिका का पिता उसे टिका लेने पर सहमत हुआ बटोही उसके घर में टिक रहा। यह बड़ा सुन्दर तथा युवा था, दशमारिका उसे देखते ही मोहित हो गयी, और वह भी उसको देखकर उसकी प्राप्ति का अभिलाषी हुआ। दशमारिका तो मार की मार से मर्माहत हो अपने को न सम्भाल सकी लाज उसकी छप्पर पर जा बैठी सो उसने अपने पिता से कहा कि हे तात! मैं इस पथिक को एक पति और बनाया चाहती हूं जो कदाचित् यह भी मर गया तो व्रत धारण कर दिन काटूंगी। इस प्रकार उसका बचन सुन उसका पिता

(१) "यह डायन है, अथव भतार खानेवाली है," ऐसा भी लोग कहते थे। किसी पुस्तक में इतना अधिक पाठ है।

बटोही को सुनाता हुआ उससे कहने लगा. "पुत्रि ! ऐसा तू मत कर, यह बड़ी लज्जा की बात है, देख तेरे दश पति मर चुके हैं और कहीं यह भी मर गया तो बड़ी हँसी हंसारत होगी।" उसकी ऐसी उक्ति सुन वह पथिक भी लज्जा त्याग बोल बैठा, "मैं नहीं मरने का, क्रमानुसार मेरी भी दश भार्य्याएँ मर चुकी हैं मैं भगवान् शङ्कर के चरणों की शपथ कर कहता हूं कि हम दोनों समान हैं।" उस पथिक की ऐसी बात सुन कौन ऐसा है जो अचम्भित न हुआ होगा। अस्तु यह वृत्तान्त सुन कर गांव के लोग बटुर आये और सभों की सम्मति से दशमारिका ने उस बटोही को अपना पति बनाय लिया। उस पति के साथ भी वह थोड़े ही दिन रही होगी कि वह भी शीत ज्वर से पीड़ित हो मर गया। तब तो गांव के लोगों की कौन चलावे पाषाण भी उसके उपहास से न रुक सके। लोगों ने उसका नाम एकादशमारिका रक्खा। तब तो एकादशमारिका को बड़ाही उद्वेग हुआ सो वह गङ्गातट पर जाकर तपस्या करने लगी।

इतनी कथा सुन कर वत्सराजपुत्र हँस पड़े तब गोमुख फिर बोला "अच्छा देव ! अब वृषजीवी की कथा सुनिये।"

किसी गांव में एक दरिद्र रहता था, विचारा दीन तो था ही ऊपर से उसका कुटुम्ब भी बड़ा था, उसके पास जो कुछ धन था सो एक मात्र बली वर्द था। घर के लोग भोजन भाव से उपवास करते और वह भी उपवास करता तथापि लोभ वस उस बैल को न बेंचता। इस प्रकार उपवास करते २ जब वह अति क्षीण हो गया तब उसके मन में यह आया कि अब चल कर किसी देवता की आराधना करनी चाहिये; यह विचार विन्ध्यक्षेत्र को चला गया और भगवती विन्ध्यवासिनी के समक्ष कुशासन पर बैठ अन्न जल त्याग कर धन की कामना से तपस्या करने लगा। जगदम्बा ने स्वप्न में उसे दर्शन देकर कहा "उठ एक बली वर्द सदा तेरा धन बना रहेगा उसी को बेच कर तू सदा सुख पूर्वक जीवन यात्रा निर्वाह करेगा," इस प्रकार जगज्जननी का आदेश पाय वह प्रातःकाल में उठा और पारण करके अपने घर चला गया।

वह बरदान पाकर घर तो लौट आया पर अधीरता के कारण बैल न बेंच सकता, वह सोचता कि जब यह बैल बिक जायगा तब मैं निःस्व हो जाऊंगा

तब क्यों कर जीविका निर्वाह कर सकूंगा। एक दिन उसके किसी सुहृद् ने उस अतिचीण देखा और पूछा कि मित्र कहो तो सही तुम्हारी यह क्या दशा हुई जा रही है ? सो उ ने उपवासादि की बात कहते २ भगवती विन्ध्यवासिनी के वरदान की कथा भी कह सुनाई । वह सुहृद् बड़ाही चतुर था, उसने कहा कि रे मूढ़ ! भगवती जी ने जो कहा कि तेरे एकही बैल है उसी को बेच कर तू जीवन निर्वाह करेगा; इसका तू ने अर्थही नहीं समझा, सुन तू उस बैल को बेंच कर अपने कुटुम्ब का काम चला, तब तेरे एक दूसरा बैल हो जायगा, तब तीसरा होगा, तब फिर एक हो जायगा इसी प्रकार एक बैल तेरे यहां बनाही रहेगा। अपने मित्र की बात मान उस ग्रामीण ने उस बैल को बेंच डाला, और इस प्रकार एक २ बैल बेंच २ कर वह सुखपूर्वक अपने दिन बिताने लगा।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव ! इस प्रकार सत्वानुरूप विधि भी फलदाता होते हैं इसलिये सत्त्ववान् होना उचित है क्योंकि जो पुरुष सत्त्वहीन है उसके पास लक्ष्मी कदापि नहीं आती । अच्छा महाराज ! अब मिथ्यामन्त्री एक धूर्त्त की कथा सुनाता हूं।

दक्षिण देश के बीच किसी नगर में पृथ्वीपति नाम एक राजा थे, उनके राज्य में एक धूर्त्त रहता था जिसकी जीविका यही थी कि दूसरों को ठग लेना। उसकी इच्छा महती थी, इसी से वह कभी संतुष्ट न होता; एक समय की बात है कि वह अपने मन में इस प्रकार की चिन्ता करने लगा, "मेरी इस धूर्त्तता से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है बस इतनाही न कि पेट चला जा रहा है तो अब दूसरा उपाय क्यों न किया जाय कि एकाएक बहुत सी लक्ष्मी प्राप्त हो जाय इतना सोच उसने एक अति उत्तम बनिये का वेश बनाया और राजद्वारपर जाकर द्वारपाल से कहा कि महाराज से जाकर कहो कि एक साहूकार आया है। द्वारपाल से संवाद पाय राजा ने उसे बुला भेजा सो उसने महीपति के समक्ष पहुंच कर उनका अभिवादन किया और उनसे कहा "महाराज ! आप से एकान्त में कुछ कहना है ।" राजा भी उसके वेश तथा अभिवादन से उसकी बातों में आ गये और एकान्त में ले जाकर उससे पूछने लगे "कहो, क्या कहना है ?" तब उस धूर्त्त ने उत्तर दिया " महाराज ! प्रतिदिन आप सभाभवन में से सब के समक्ष

उठ कर एकान्त में चल कर क्षणभर मेरे साथ कुछ बातचीत कर लिया करें; इस प्रयास के हेतु मैं देव को प्रति दिन पांच सौ अशर्फियां दिया करूंगा और श्रीमान् से मैं कुछ भी नहीं चाहता हूं।" उसकी ऐसी बात सुन राजा अपने मन में विचारने लगे कि इसमें क्या दोष है, यह मुझ से कुछ ले तो जाताही नहीं प्रत्युत प्रति दिन अशर्फियां देगा तो हानिही क्या है; फिर यदि साधारण व्यक्ति से आलाप करने में कुछ लाज की बात हो तो यह साधारण व्यक्ति नहीं है, एक बड़ा साहूकार है फिर इसके साथ कथालाप में लज्जा कैसी," इस प्रकार सोच विचार महीपति उसकी प्रार्थना पर सहमत हो गये। बस राजा प्रति दिन उसके कथनानुसार सभा से उठ कर एकान्त में जाकर क्षणभर उससे बात करते और अपने बचनानुसार वह भी प्रति दिन पांच सौ अशर्फियां देता। यह व्यापार देख लोगों को निश्चय हो गया कि यह व्यक्ति महामन्त्री ठहराया गया है।

एक समय की बात है कि वह धूर्त जब कि राजा से बात करता था उस समय सभा के एक अध्यक्ष के मुख की ओर बार २ देखता जाता था सो भी ऐसा मुंह बना लेता कि देखनेवाले को विश्वास हो जाय कि कोई भारी विषय आपड़ा है। जब वह राजा से बात कर बाहर निकला तब वह सभाध्यक्ष भी धीरे से उसके पास जाकर पूछने लगा कि कहो भाई आज क्या ऐसा गम्भीर विषय था और मेरी ओर क्यों बार २ देखते थे ? इस पर उस धूर्त्तराज ने उत्तर दिया कि भाई कुछ न पूछो, राजा को तुम्हारे ऊपर सन्देह हो गया है कि तुम उनके देश में लूट मचाते हो इसी से वह तुम पर बड़ेही कुपित हैं; इसी कारण मैं तुम्हारे मुख की ओर देखता था; अच्छा तुम कुछ चिन्ता मत करो, मैं राजा का कोप शमन करा दूंगा। इस प्रकार उस अलीक मन्त्री की बात सुन वह अधिकारी बड़ा ही भयभीत हुआ और उसके घर जाकर चुपचाप उसे एक सहस्र दीनार दे आया। इसी प्रकार जब दूसरे दिन यह कपटी महीपति से बात कर निकला तब उस नियोगी ने आकर उससे पूछा कि कहो भाई मेरा क्या निबटेरा किया ? तब उस धूर्त्तराज ने उत्तर दिया, 'भाई ! धीरज रखो, किसी युक्ति से मैंने राजा को तुम पर प्रसन्न तो कर दिया, अब तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो तुम्हारी पीठ पर मैं हूं मैं सब प्रकार से तुम्हारी रक्षा करूंगा," इस प्रकार उसे झूठी पट्टी देकर उसने उसको बिदा किया तब से लेकर वह अधिकारी उसके अनेक उप

चार किया करता था । इस प्रकार वह धूर्त्त, राजा से बातचीत करके सब अधिकारियों से किसी न किसी युक्ति से कुछ न कुछ धन फँस लिया करता यहां लों कि अपने अधीनस्थ राजाओं तथा राजपुत्रों से भी अपनी धूर्त्तता से उसने बहुत सा धन ले लिया; विचारे राजसेवक किस गिनती में ठहरे उनसे भी वह धूर्त्त यथासाध्य यथाशक्ति कुछ न कुछ बिना लिये न रहता । इस प्रकार करते २ वह पांच करोड़ अशर्फियों का अधीश्वर हो गया ।

तब एक दिन उस धूर्त्त मन्त्री ने एकान्त में महाराज से कहा कि देव! प्रति दिन आपको पांच सौ अशर्फियां देकर भी मैंने आपके प्रसाद से पांच करोड़ अशर्फियां कमाय लीं सो प्रसन्नतापूर्वक ये अशर्फियां आप लेलें; मैं कौन हूं कि रखूं ये सब आपही की हैं । इतना कह उसने महाराज के समक्ष सब अशर्फियां रख दीं, परन्तु बहुत कहने सुनने पर महीश ने उनमें से आधी अशर्फियां ग्रहण कीं। राजा उसके ऐसे व्यापार से बड़ेही प्रसन्न हुए सो उन्होंने उसे महामन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया । यों अमात्यपद पर अधिष्ठित हो अतुल सम्पत्ति पाकर उस धूर्त्त ने सब लोगों को नाना प्रकार के दान तथा भोगों से अपने पाश में कर लिया । इस प्रकार हे महाराज! जो बुद्धिमान् होता है वह बिना भारी पाप किये ही अतुल अर्थ प्राप्त कर लेता है पश्चात् फल प्राप्त हो जाने पर दोष का त्याग कर देता है जैसे कि कूप का खननेवाला । इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव! यद्यपि आप अपने विवाह के लिये बड़े उत्कण्ठित हैं तथापि यह एक कथा सुन ली जाय ।

पूर्व समय में रत्नाकर नामक नगर में बुद्धिप्रभ नाम राजा थे, धरणीपाल ऐसे प्रतापी थे कि बड़े २ दुर्दान्त अरातिवर्ग उनसे ऐसे भयभीत होते थे जैसे सिंह से बड़े २ करीन्द्र । राजाकी महिषी रत्नरेखा से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसकी सुन्दरता ऐसी थी कि जोड़ी न मिले; महीपति ने उस कन्या का नाम हेमप्रभा रक्खा। वह कन्या पूर्वजन्म की विद्याधरी थी सो नभोविहार रूपी पूर्वजन्म का वही संस्कार इस जन्म में भी बना रहा इससे वह सदा हिंडोला झूला करती थी । राजा को इस बात का भय बना रहे कि कहीं ऐसा न हो कि वह गिर पड़े इस लिये वह सदा उसे बरजते पर वह न मानती, तब तो महाराज को बड़ाही क्रोध आया, कोपवश

उन्होंने राजकुमारी को एक थप्पड़ लगा दिया। राजपुत्री को यह अपमान असह्य हो गया, उसकी यह अभिलाषा हुई कि अब बन में जा रहिये सो एक बार विहार के बहाने से बाहिरी उपवन में गयी। जब सब नौकर चाकर मदिरा पीकर छकाछक हो अचेत हो गये तब राजकुमारी इधर उधर घूमती २ घने वृक्षों के बीच में चली गई और उनकी दृष्टि से लुप्त हो गयी। अब राजकुमारी चलती २ एक बन में पहुंची और वहां एक कुटीर बनाय तपश्चर्य्या में लीन हो गयी।

उधर राजा को भी विदित हुआ कि राजाकुमारी न जाने कहां चली गयी इस पर उन्होंने बहुत खोज की और कराई पर कहीं पता न लगा तब तो उनको बड़ाही सन्ताप हुआ। बहुत दिनों के उपरान्त उनका शोक कुछ शान्त हुआ तब एक दिन चित्तविनोदार्थ अहेर करने के लिये घर से निकले। भ्रमण करते २ दैवात् उसी बन में पहुंचे जहां उनकी कन्या हेमप्रभा बैठी तपस्या कर रही थी। वहां एक कुटीर देख महीपति बुद्धिप्रभ निःशङ्क उसके भीतर चले गये वहां देखते क्या हैं कि राजपुत्री हेमप्रभा तपश्चर्य्या कर रही है, तपस्या के कारण उसका शरीर अति क्षीण हो गया है। पिता को देखतेही राजपुत्री उठकर उनके चरणों में लिपट गयी, राजा ने भी आंखों में आंसू भर उसे गोद में बैठाय लिया। बहुत दिनों के अनन्तर दोनों को देखा देखी हुई इससे पिता पुत्री दोनों यों रोने लगे कि उनका रोना सुन पशु पक्षियों के नेत्रों में भी आंसू आ गये। तब कुछ क्षणो परान्त आश्वासन पा राजा बोले, "पुत्रि! राजश्री का त्याग कर तूने यह क्या किया सो अब बनवास छोड़ अपनी माता के पास चलो।" पिता की ऐसी उक्ति सुन हेमप्रभा बोली, "हे तात! दैव ने मेरे भाग्य में यही लिख दिया था, मेरा क्या वश! मैं राजश्री के उपभोगार्थ घर न चलूंगी; तपःसुख का कभी त्याग न करूंगी।" इस प्रकार कह राजदुलारी अपने निश्चय पर अटल बनी रही जब राजा ने देखा कि पुत्री अपने निश्चय से विचलित नहीं होती तब उन्होंने उसके लिये वहीं पर एक मन्दिर बनवाय दिया। इस प्रकार मन्दिर बनवाय राजा अपनी राजधानी को चले आये और वहां से राजकुमारी के पास अतिथिपूजा के निर्वाहार्थ प्रतिदिन विविध पक्वान्न तथा धन भेज दिया करते थे। राजकुमारी हेमप्रभा उन पक्वान्नों और धन से तो अतिथियों का सत्कार करती और आप फल मूल खाकर रह जाती थी।

एक समय की बात है कि राजपुत्री के आश्रम में कहीं से घूमती घामती एक परिव्राजिका आयी जो कौमारावस्थाही से ब्रह्मचारिणी थी। राजपुत्री ने उस की बड़ी अभ्यर्थना की और कथाप्रसङ्ग में उससे पूछा कि आपने बाल्यही से किस कारण से ब्रह्मचर्य्य धारण किया। इसके उत्तर में वह बालप्रव्राजिका बोली, "एक समय की बात है कि मैं अपने पिताजी के पांव दाबती थी, मुझे नींद आ रही थी इससे हाथ शिथिल हो गये थे; तब पिता ने यह कह कर कि 'क्यों री झंपती है,' मुझे लात से मारा, इससे मुझे बड़ी ग्लानि हुई सो मैं उनके गृह से निकल खड़ी हुई।" इस प्रकार उस प्रव्राजिका की कथा सुन राजकुमारी हेमप्रभा ने उसे अपने समान समदु:खिनी समझा और अपनी बनवाससखी बनाया।

एक दिन प्रात:काल में राजकुमारी ने उस परिव्राजिका से कहा कि हे सखि! आज स्वप्न में मैंने देखा है कि एक मैं बड़ी भारी नदी पार हुई हूं, तदुपरान्त एक बड़े भारी वारणेन्द्र पर चढ़ी हूं तत्पश्चात् एक पर्वत पर; सो वहां आश्रम में भगवान् अम्बिका के पति दिख पड़े; उनके साम्हने में वीणा बजा कर गाने लगी। इतने में क्या देखती हूं कि एक दिव्याकृति पुरुष आया सो मैं उसके साथ आकाश में उड़ गयी; इतने में मेरी नींद टूट गयी और रात भी बीत गयी। राजकुमारी का ऐसा स्वप्न सुन वह सखी बोली 'हे कल्याणि हेमप्रभे! निश्चय तू कोई दिव्याङ्गना है और अब तेरे शाप का अन्त हो गया स्वप्न का यही फल प्रतीत होता है।' सखी का ऐसा बचन सुन राजकुमारी अति प्रमुदित हुई।

तदनन्तर जब कि जगद्दीप दिवाकर आकाश में बहुत ऊंचे उठे उसी समय तुरङ्गम पर आरूढ़ कोई राजपुत्र वहां आ विराजे; हेमप्रभा को तापसी के वेश में देखकर उनके हृदय में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई सो अश्व से उतर आगे जाय उन्होंने अभिवादन किया। हेमप्रभा ने भी उनका आतिथ्य कर आसन पर उन्हें बैठाया; इसके मन में भी प्रणय का अङ्कुर उग गया सो इसने पूछा "महात्मन्! आप कौन हैं?" राजपुत्र ने उत्तर दिया "हे महाभागे! शुभनामानुकीर्त्तन प्रतापसेन नामक एक महीपति हैं; उनके पुत्र न था सो वह भूतभावन आशुतोष भगवान् शङ्कर की आराधना में तप करने लगे, उनकी आराधना से देवाधिदेव अति प्रसन्न हुये और प्रत्यक्ष दर्शन दे बोले, "राजन्! विद्याधर का अवतार तेरे एक पुत्र होगा

सो तो शापक्षय हो जाने से अपने लोक को चला जावेगा परन्तु तेरे एक दूसरा पुत्र होगा जो तेरा वंशधर और उत्तराधिकारी होगा," भगवान् शम्भु की ऐसी बात सुन कर धरणीपति अति प्रमुदित हुए और उठ कर उन्होंने पारण किया । कुछ कालोपरान्त राजा के एक पुत्र हुआ जिसका नाम लक्ष्मीसेन पड़ा तत्पश्चात् दूसरा तनय जन्मा उसका नाम सूरसेन पड़ा। सो हे वरानने ! मैं वही लक्ष्मीसेन हूं, आज आखेट को निकला कि वातजव यह मेरा घोड़ा मुझे यहां ले आया " इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय राजपुत्र ने हेमप्रभा से पूछा कि हे कल्याणि ! तुम अपनी कथा सुनाओ कि तुम कौन हो ? राजकुमार का ऐसा प्रश्न सुन राजकुमारी हेमप्रभा ने अपना वृत्तान्त साद्यन्त कह सुनाया।

इतने में राजकुमारी को अपनी जाति का स्मरण हो आया सो वह राजकुमार से पुनः इस प्रकार कहने लगी, "हे महाभाग ! आपके दर्शनमात्र से मुझे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया तथा सब विद्यायें भी स्मृतिपथ में आ विराजीं; मैं विद्याधरी हूं और यह मेरी सखी है, हम दोनों शाप के कारण च्युत हो इस लोक में आई हैं। आप भी विद्याधर हैं और अपने मन्त्री के साथ शाप वश इस मर्त्यलोक में आ पड़े हैं; आप मेरे पति हैं और इस मेरी सखी के पति आपके सचिव हैं। अब मेरा और मेरी सहेली का शाप छूट गया सो अब हम लोगों का समागम पुनः विद्याधर लोक में होगा।"

इतना कहतेही राजकुमारी हेमप्रभा तथा उसकी सखी का दिव्य रूप हो गया सो वे दोनों आकाश में उड़ गयीं और बात की बात में अपने लोक में जा विराजीं।

राजकुमार लक्ष्मीसेन यह सब व्यापार खड़े निरख रहे थे, उनके आश्चर्य्य का तो ठिकाना न था इतने में उनका मन्त्री उन्हें ढूंढ़ता ढाढ़ता वहीं आ पहुंचा। राजकुमार अपने सखा को वह वृत्तान्त सुना ही रहे थे कि इसी अवसर में राजा बुद्धिप्रभ भी अपनी सुता को देखने वहां आ पहुंचे। राजकुमारी तो वहां न दीख पड़ी प्रत्युत लक्ष्मीसेन वहां दिखाई पड़े सो महीपति ने इनसे पूछा कि यहां एक तपस्विनी कन्या थी उसका वृत्तान्त आप कुछ जानते हैं ? राजकुमार ने जो कुछ देखा था आद्योपान्त कह सुनाया। अपनी पुत्री का ऐसा वृत्तान्त सुन राजा बुद्धिप्रभ बड़ेही विकल हुए।

इतनेही में राजकुमार लक्ष्मीसेन तथा उनके मन्त्री को भी अपनी जाति का स्मरण हो आया सो शापक्षय हो जाने से दोनों आकाश मार्ग से उड़ कर अपने लोक में जा विराजे। वहां हेमप्रभा अपनी भार्या को पाय वह अतिप्रमुदित हुए और उसके साथ पुनः वहीं लौटे जहां महाराज बुद्धिप्रभ बैठे विलख रहे थे, राजकुमार ने उन्हें बहुत कुछ समझा बुझा राजधानी को बिदा किया।

इसके उपरान्त लक्ष्मीसेन अपनी प्राप्त भार्या और मन्त्री के साथ अपने पिता प्रतापसेन के समीप पहुंचे जहां उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनतेही राजा ने अपना राज्यभार लक्ष्मीसेन के माथे धरा परन्तु वह यह राज्यभार अपने अनुज शूरसेन के हाथ में सौंप निज लोक विद्याधरपुर को चले गये। तहां अपनी प्रियतमा भार्या हेमप्रभा के साथ राजकुमार लक्ष्मीसेन विद्याधर के ऐश्वर्य्य का भोग करते हुए अपने मन्त्री के सहित सुखपूर्वक रहने लगे।

बसन्त-तिलका।

या भांति गोमुख-कहीं सुनि कै कथायें,
पायो अनन्द नरबाहनदत्त देव।
आसन्नवर्त्ति नव शक्तियश।विवाह
उत्कण्ठितो क्षणमिव क्षणदा (१) बितायो॥ १॥
एवं विनोदि कतिपय दिन लौं जु आयो,
वा द्यौस, जा दिन विवाह सु होन को थो।
वत्सेश्वरात्मज लख्यो नभ सौं उतरते,
दैदीप्यमान शुभ खेचर को समूहा॥ २॥

छन्द।

तिहि मध्य दुहिता दान कारन सङ्ग लीने लखि परे।
विद्याधरेन्द्र स्फटिकयश अतिहित सुतन मन मुदभरे॥

(१) रात्रि।

वत्सेश जाकी प्रथम चर्य्या कीन्ह अर्घादिक दिया ।
तेहि श्वसुर वर अगवानि कर वत्सेशसुत पूजन कियो ॥

शार्दूल विक्रीड़ित।

तत्पश्चात् द्युचरेन्द्र लाइ अपनी सिद्धी से नाना विधी ।
रत्नादी वसनादि आत्म उचित वत्साङ्ग-जन्मै दयो ॥
ता पाछे निजपुत्रि शक्तियश को ताकों समर्प्यौ मुदा ।
जाको पूर्व कियो हुत्यो हरष सों वाग्दान तद्दान भी ॥

दोहा।

अब नरबाहनदत्त जू शक्तियशा कों पाय ।
शोभित भये सुपद्म जिमि तरणि-किरण बिरमाय ॥ १ ॥

छन्द।

विद्याधरेन्द्र स्फटिकयश निज लोक जब चलि कै गये ।
वत्सेशसुत कौशाम्बि महँ निज पितुभवन शोभित भये ॥
शक्तीयशा मुखकमल-सक्त दृगालिवत् नित बनि रहे ।
इहि भांति नरबाहन जु दत्त हुलास नित नूतन लहे ॥

इति शक्तियशा नामक दशवां लम्बक समाप्तः ।

॥ श्रीः ॥

कथासरित्सागर का भाषानुवाद ।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित ।

वेला-नामक ग्यारहवां लम्बक ।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालाबिनैबल पाई ।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा बसुधा महँ छाई ॥
प्रेम-समेत पियै जो कोई बलवीर भनै वलि ईश दोहाई ।
पावहि सो जगदीश कृपा ते अमन्द अनन्द बड़ा बिबुधाई ॥

प्रथम तरङ्ग ।

अखिल विघ्न को वारण वारणमूंह ।
प्रणवौं सिद्धिसदन हर दुरित समूह ॥

इस प्रकार वत्सराजतनय नरवाहनदत्त शक्तियशा को पाय अपनी रत्नप्रभादि प्रथम भार्यायों तथा पट्टरानी मदनमञ्चुका के साथ विहार करते अपने पिता के भवन में कौशाम्बी में निज सुहृदों के संग आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक समय की बात है कि जब वह राजवाटिका में विहार कर रहे थे कि किसी देश से दो भाई राजपूत अकस्मात् उनके समक्ष आ विराजे। राजकुमार ने उनका आतिथ्य किया और उन दोनों ने बड़ी नम्रता से झुक कर उन्हें प्रणाम किया। इसके उपरान्त उनमें से एक इस प्रकार उनसे कहने लगा।

राजकुमार! विशाख नगर के राजा के हम दोनों विमातृ पुत्र हैं। मेरा नाम रुचिरदेव है और यह दूसरा पोतक है; मेरे पास अति शीघ्रगामिनी एक हथिनी है

और इसके पास दो घोड़े हैं। मैं कहता हूं कि हथिनी बड़े वेग से चलनेवाली है, और इसका कथन है कि नहीं, दोनों घोड़े अतिशीघ्रगामी हैं, बस इसी बात का हम दोनों का विवाद है। हम दोनों का पण वह हथिनी और दोनों घोड़े हैं, जो हारे वह अपने पशु से हाथ धो बैठे। सो हे प्रभो! उन पशुओं के वेग का निर्णायक आपके अतिरिक्त कोई दूसरा दीख नहीं पड़ता, अत: आप हमारे घर चल कर इस बात की परीक्षा (जांच, कर देवें। आप इसमें हिचकिचावें न क्योंकि आप सब की प्रार्थना के स्वीकार कर लेने में कल्पतरु सम हैं बस यही समझ हम दोनों का इतनी दूर आना हुआ है"

इस प्रकार रुचिरदेव की प्रार्थना सुन वत्सराजसूनु को उन हथिनी और घोड़ों के देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई क्योंकि बाहनों का उन्हें सविशेष कौतुक रहता था अत: वह उस राजपूत की अभ्यर्थना पर सम्मत हो गये। उनके लाये वायुसम शीघ्रगामी घोड़ों से जुते रथ पर आरूढ़ हो नरवाहनदत्त प्रस्थानित हुए और बात करते उन दोनों के साथ वैशाखपुर में जा पहुंचे। जब आपका रथ नगर में होके चला तब नगर की कामिनियां अपनी अटारियों पर से उनका अनुपम रूप निरख कहने लगी—"अहो यह कौन महानुभाव है जिनके संग कि उनकी पत्नी रति नहीं है; अथवा निष्कलङ्क दूसरे दिवाचर चन्द्रमा तो नहीं हैं; अथवा विधाता ने तरुणियों के हृदय रूपी काण्ड का समूल उन्मूलनकारी कामदेव का पुरुष रूपी वाण तो नहीं बनाया है।" इस प्रकार सब स्त्रियां आंखे फार २ उन्हें निरखतीं और अपने २ मन में नाना भांति की तर्कना करतीं तथा परस्पर उनका वर्णन करतीं थीं।

इतने में युवराज उस स्थान पर पहुंचे जहां प्राचीनों का स्थापित कामदेव का मन्दिर था। उस आनन्ददायी मन्दिर के भीतर जाकर वत्सेशसूनु ने भगवान् पञ्चशर की पूजा की और क्षणभर विश्राम कर मार्गश्रम दूर किया। उसी मन्दिर के समीप ही रुचिरदेव का भवन था सो राजकुमार नरवाहनदत्त कामदेव के मन्दिर से निकल कर रुचिरदेव के मन्दिर में गये जहां उनके आगमनोत्सव के उपलक्ष्य में बड़े २ उपक्रम हुए थे, जहां नाना प्रकार और रंग के उत्तमोत्तम गज बाजि यथा-स्थान शोभा दे रहे थे; जहां भवन तथा प्रासाद की श्री अपूर्वही छटा दिखा रही थी। भवन के भीतर आतेही नरवाहनदत्त का बड़े समारोह के साथ स्वागत हुआ

जिससे वत्सेश्वरात्मज की प्रीति अधिक बढ़ी और वह बड़े कौतुक से भवनों की शोभा निरखने लगे जिनकी अनुपम छटा से उनका मन मुग्ध हो गया। वहां रुचिरदेव उनका नाना प्रकार से आतिथ्य करने लगे, अनेक प्रकार के सत्कार उनके होते जिनसे वत्सराजसुत का मन प्रफुल्लित रहता।

इसी अवसर में नरवाहनदत्त की दृष्टि रुचिरदेव की भगिनी पर पड़ी जो कि कुमारी थी, राजकुमारी की अद्भुत आकृति देख उनका मन लट्टू हो गया प्रवास का कष्ट तथा स्वजनों का विरह वह एकाएक भूल गये अब तो सर्वतोभाव से वही राजकुमारी उनके नेत्रों के साम्हने विराजती रहतीं। यह तो इधर की बात हुई अब उधर की दशा का भी कुछ वर्णन सुनिये। राजकुमारी, नरवाहनदत्त का अलौकिक सौन्दर्य्य निरखतेही अपने वश में न रह सकी उसका मन पराये हाथ हो गया। उसने प्रफुल्ल नीलोत्पल की मालारूपिणी दृष्टि से मानो उन्हें स्वयंवर कर अपना वर चुन लिया। राजकुमारी का नाम जयेन्द्रसेना था, अब जयेन्द्रसेना में नरवाहनदत्त का मन ऐसा लौलीन था कि रात्रि के समय निद्रादेवी मानो उनसे सौ कोस दूर पर जा विराजी थीं। इधर तो जयेन्द्रसेना की चिन्ता में उन्हें नींद न आयी उधर नगर की स्त्रियां भी इन्हीं की बातों में रात भर जागती रह गयीं और प्रभात हो गया।

दूसरे दिन पोतक वायुवत् शीघ्रगामी अपने दोनों घोड़े लाये और रुचिरदेव अपनी हथिनी लाये। नरवाहनदत्त उस हथिनो पर आरूढ़ हुये रुचिरदेव बांहविद्या में बड़ेही निपुण थे सो उन्होंने उस कुशलता से अपनी हथिनी चलायी कि पोतक के दोनों घोड़े प्रतिद्वन्दिता में ठहर न सके; इस प्रकार पोतक के दोनों घोड़े जीत लिये।

रत्नदेव के दोनों घोड़े जीत लेने पर ज्योंही नरवाहनदत्त राजभवन में पैठते हैं कि इसी अवसर में उनके पिता के यहां से एक दूत उनके समीप आया और उनके चरणों पर गिर प्रणाम कर यह कहने लगा कि राजकुमार! जब आपके पिता को परिवारवर्ग से यह विदित हुआ कि आप यहां चले आये तब उन्होंने मुझे भेजकर आपको यह सन्देशा कहलाया है, कि "आयुष्मन्! तुम बिना हमलोगों से कहेही उद्यान से इतनी दूर क्यों चले गये। इससे हमलोगों का मन

बड़ा चंचल हो गया है सो तुम सो काम छोड़ अति शीघ्र लौट आओ ।" दूत के मुख से ऐसा सन्देशा सुन नरवाहनदत्त बड़े असमञ्जस में पड़े; उधर पिता की आज्ञा इधर प्रियाप्राप्ति की आशा; अब उनका मन हिंडोले पर झूलने लगा।

नरवाहनदत्त इधर द्विविधा में पड़े विचार करही रहे थे कि क्या किया जाय कि इतनेही में बड़ी दूर से उनके समक्ष एक वणिक् आ उपस्थित हुआ, हर्ष के मारे वह फूला नहीं समाता था, सो वह प्रणाम कर उनसे इस प्रकार कहने लगा,—"हे जयापुष्पकोदण्ड कुसुमायुधवीर! जय हो, हे विद्याधरों के भावी अधीश और चक्रवर्त्ती प्रभो! जयजयकार होवे । बाल्यावस्था में क्या आप मनोहर न थे और जब बढ़े तब क्या शत्रुओं के विनाशकारी नहीं हैं; सो देव ! इसमें संशय नहीं है कि अब थोड़ेही दिनों में विद्याधर लोग आपके दर्शन करेंगे; जिस प्रकार आकाश का आक्रमण करते हुए बलि को जीत भगवान् वामन देव के हर्षप्रद हुए थे उसी प्रकार अच्युतवत् आपके दर्शनों से वे खेचर कृतार्थ हो जावेंगे।" इस प्रकार जब वह स्तुति कर चुका तब युवराज ने उसका बड़ा सत्कार किया और मधुर वाणी से पूछा कि कहो कैसे चले ? कहो, तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? युवराज के ऐसे प्रश्न सुन वह वणिक् अपना वृत्तान्त सुनाने लगा।

हे राजपुत्र! पृथ्वी की शिरमौररूपा लम्पा नाम्नी एक नगरी है, उसमें कुसुमसार नामक एक बड़े धनाढ्य वणिक् रहते थे । धर्म्म में उनकी बड़ी प्रवृत्ति थी, उठते बैठते सोते जागते सदा सर्वदा धर्म्मचर्चा रहती; हे वत्सेशनन्दन! भगवान् शङ्कर की आराधना से उनके एक पुत्र हुआ, सोही मैं हूं, नाम मेरा चन्द्रसार है। एक समय की बात है कि मैं अपने मित्रों के संग देवयात्रा देखने गया सो वहां मैंने अन्यान्य धनिकों को अर्थियों को दान देते देखा; सो मेरे मन में यह भाव उदय हुआ कि मैं भी धन कमाऊँ और दान करूँ। यद्यपि मेरे पिता की उपार्जित अतुल सम्पत्ति थी परन्तु मैं उससे सन्तुष्ट न हुआ; भला दूसरे का कमाया धन क्या उड़ाना, नाम तो तब जब आप कमावे और उड़ावे । सो रत्नों से जहाज लदाकर मैं दूसरे द्वीप को प्रस्थानित हुआ, दैवात् वायु अनुकूल मिल गया सो थोड़ेही दिनों में मेरा जहाज उस द्वीप में पहुँच गया । वहां मैं रत्नों का व्यवहार करने लगा, क्रमात् यह बात राजा के कानों में पहुँची; मैं वहां अपरिचित तो था ही

सो वहां की राजा ने समझा कि यह कोई कूट व्यवसायी है, और नृपति कुछ लोभी भी थे सो बिना कुछ पूछपाछ किये अर्थलोभ से उन्होंने मुझे कारागृह में डाल दिया। राजकुमार उस कारागृह का मैं क्या वर्णन करूँ, नरक भी कदाचित् उससे हार मानेगा। वहां अनेक प्रकार के पापिष्ठ पड़े भूख प्यास से पीड़ित हो तड़प रहे थे, जैसे प्रेत हों, सो उन्हीं के साथ मुझे भी अपना कर्मभोग भोगना पड़ा। वहां एक बड़े धनी महाजन महीधर रहते थे, दैवात् वह मेरे कुल से परिचित थे सो उन्होंने जाकर मेरे लिये राजा से कहा कि महाराज! यह आपने क्या अनर्थ कर रखा है, भला इस व्यक्ति को कारागार में क्यों डाला है; यह तो लम्पानिवासी एक बड़े महाजन का पुत्र है, इस निर्दोष को आपने बांध रक्खा है इससे आपकी निन्दा होगी, बड़ा अपयश होगा सो आप इसे छोड़ देवें। इस प्रकार उनके समझाने बुझाने पर राजा ने मुझे कारागार से छोड़ा मँगाया और मेरा बड़ा आदर सत्कार किया। सो देव! राजा के प्रसाद से और मन्त्रियों के आश्रय से मैं भली भांति अपना व्यवसाय करने लगा, कार बार मेरा अच्छा चला और मैं बड़ा सुखी हुआ।

एक समय मैं मदनोत्सव की यात्रा में गया था वहां शिखर नामक वणिक् की तनया भी आई थी सो उस पर जो मेरी दृष्टि पड़ी तो फिर क्या कन्दर्प दर्पाग्निलहरी उस वर कन्या ने मेरा मन हर लिया। तब मैंने उसके पिता के पास जाय उसकी याचना की। उसका पिता चण भर चुपचाप कुछ सोचता रहा पश्चात् बोला "महाजन! मैं तो साचात् इसका दान नहीं कर सकता, सुनो इसमें कुछ कारण है सो मैं सिंहलद्वीप में इसके नाना के पास इसे भेज देता हूं, तुम वहां जाओ और उनसे मांग कर विवाह कर लेओ, चिन्ता न करो कि वह कदाचित् न देवें सुनो इसका मैं प्रबन्ध कर दूंगा, मैं ऐसा सन्देशा भेज दूंगा कि इसके साथ विवाह कर दीजिये बस तुम्हारा विवाह हो जायगा।" इतना कह शिखर ने मेरा बड़ा सम्मान किया और मुझे बिदा किया। दूसरेही दिन उसने अपनी कन्या को एक जहाज पर सवार कराया और साथ में कतिपय नौकर चाकर देकर सिंहल की ओर बिदा किया।

इसके उपरान्त मैं भी बड़ी उत्कण्ठा के साथ वहां जाने का उपक्रम करने लगा

कि इसी अवसर में विद्युत्पात के समान यह उग्र बात सुनने में आई कि सिखर की सुता जिस पोत से जाती थी वह पोत उदधि में डूब गया, एक भी प्राणी उस पर का नहीं बचा। कहां तो मैं जहाज का उपक्रम कर रहा था कहां यह वज्र-पात सी बात सुन पड़ी; मेरा धैर्य्य जाता रहा और मैं सद्यः निरालम्ब शोकसागर में मग्न हो गया । इन्होंने मुझे बहुत कुछ समझाया बुझाया तब मेरा मन कुछ शान्त हुआ । आहा! आशा भी क्याही तत्व है; उसी के भरोसे मेरे मन में यह भावना उदय हुई कि जो होनहार रहा होगा सो तो हुआही पर चल कर पता तो लगाना चाहिये कि क्या हुआ है; ऐसा विचार कर मैं उस द्वीप में जाने को प्रस्तुत हुआ।

कहने की कुछ आवश्यकता नहीं है कि राजा मुझे कैसा मानते थे, पर इस समय तो मेरा मन दूसरीही ओर लगा था, इससे किसी के समझाने बुझाने का कुछ भी परिणाम न हुआ; अन्ततो गत्वा पोत पर आरूढ़ हो मैं चलही पड़ा। मेरा जहाज चला जा रहा था कि अकस्मात् बारिद तस्कर का उदय हुआ, घोर गर्जन के साथ मूसलधार वृष्टि होने लगी । वायु प्रतिकूल बहता था, पहाड़देव उठते थे जिस से मेरा जहाज कभी ऊपर उछलता और कभी नीचे गिर पड़ता, इस उछला उछली में पड़ कर मेरा जहाज टूक २ हो गया। हा! दैव कैसा प्रबल है! मेरे धन और नौकर चाकर समुद्र के गर्भ में अन्तर्हित हो गए, भाग्यवश मुझे एक पटरा मिल गया मानों विधाताने मेरी रक्षा के हेतु अपना बाहु बढ़ाया हो सो उसी के सहारे मैं बहता २ समुद्र के किनारे जा लगा, फिर ऊपर चढ़ बैठ कर मैं अपने भाग्य को कोंसने लगा । इतने में किनारे पड़ा हुआ सोने का एक टुकड़ा मुझे मिला, उसे पास के गांव में बेच कर मैंने कुछ खाने पीने की सामग्री ली, जब क्षुधा शान्त हुई तब जाकर मैंने एक जोड़ा कपड़ा मोल लिया; और धीरे २ समुद्र में बहने की थकावट दूर हुई।

अब मैं वहां से चला, मेरी प्रियासी के विरह से मेरा मन ऐसा व्याकुल हो गया था कि मैं यह नहीं जानता था कि कहां जा रहा हूं । इस प्रकार डौरि-याते २ मैं एक ऐसे स्थान में पहुंचा जहां बालू के बहुत से शिवलिङ्ग बने थे, और बहुतेरी मुनिकन्याएं वहां विचर रही थीं; यहां क्या देखता हूं कि एक ओर एक

कन्या बैठी पार्थिवपूजन कर रही है । यद्यपि उसका वनवासिनी का वेष था तथापि वह अपनी शोभा से एक निरालीही समझ पड़ती थी । उसके दर्शन मात्र से मेरे मन में यह भावना उदित हुई कि यह तो ठीक मेरी प्रिया सी भासती है । आहा मेरे ऐसे भाग्य कहां ! पर मेरी भावना रही कि हो न हो यह मेरी प्राणप्रियाही है; इतने में दाहिने नेत्र के प्रस्फुरण से और भी आह्लाद को अवसर मिल गया । तब मैंने धीरे से उससे पूछा—"हे तन्वि ! तुम तो प्रासाद में रहने योग्य हो, भला कहो तो सही तुम इस अरण्य में कैसे आई और तुम हो कौन ? इस प्रकार मेरे पूछने पर भी उसने कुछ उत्तर न दिया । तब तो मुझे भय हुआ कि यह मुझे शाप दे देवे, अथवा यह कुछ न बोले तो नहीं सही पर यह किसी मुनि का आश्रम है तो कहीं कोई मुनिही शाप न दे देवें; बस इसी भय से लता-गुल्म की आड़ में छिप कर मैं टकटकी लगाय उसे देखने लगा । जब वह पूजा कर चुकी तब उठ कर वहां से चली, पर उलट २ कर बड़े स्नेह से मुझे निरखती और मन में कुछ विचार करती जाती थी । इस प्रकार वह धीरे २ चली गयी । जब वह मेरी दृष्टि के बाहिर हो गयी उस समय मेरी जो दशा हुई उसका मैं क्या वर्णन करूं; मेरी आंखों के साम्हने अन्धकार छाय गया; रात्रि के समय चकवे की दशा के समान मेरी एक अद्भुत अवस्था हो गयी ।

थोड़ीही देर में मतङ्ग मुनि की यमुना नाम्नी कन्या मेरे समक्ष निःशंक आन उपस्थित हुई; आहा उस तपस्विनी का मैं क्या वर्णन करूं तेज तो ऐसा मानों स्वयं भास्कर हो, आबाल्यब्रह्मचारिणी; कठोर तप से समस्त शरीर शुष्क हो गया था, दोनों नेत्र अति दिव्य; साक्षात् धैर्य्यकी मूर्त्ति, जिसका दर्शन मानो कल्याण का द्वारा है । उन्होंने मुझ से कहा, "चन्द्रसार ! धीरज धरो और मैं जो कहती हूं सो सुनो; उस द्वीप में शिखर नामक जो एक महाजन रहता है, उसके जब एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई तो जिन रक्षित नामक उसके एक ज्ञानी भिक्षुक मित्र ने उससे कहा कि, "हे मित्र तुम इस कन्या का दान मत करना क्योंकि इसकी माता कोई दूसरी है, जो तुम इसका दान करोगे तो तुम को दोष होगा, इसको ऐसाही लिखा है ।" भिक्षुक की बात सुन उसके पिता ने यह ठहराया कि अच्छा इसका दान इसके मातामह के हाथ करा दूंगा; बस अब तुम ने समझा न

चन्द्रसार! कि जब तुमने शिखर से कन्या की याचना की तब उसने तुम्हें क्या उत्तर दिया था। इसी हेतु उसके पिता ने उसे जहाज पर चढ़ाय सिंहलद्वीप को भेजा परन्तु जहाज टूट जाने से वह समुद्र में गिर गयी; आयुर्बल बड़ा बलवान् होता है; दैवात् समुद्र ने अपने बड़े २ तरङ्गों से बेलातट (१) पर फेंक दिया। इतने में मेरे पिता भगवान् मतङ्गमुनि अपने शिष्यों के साथ समुद्र में स्नान करने आए वहां वह कन्या उन्हें मृतक सी देख पड़ी, मुनि को उस पर बड़ी दया आई सो वह उसे समाश्वासन दे अपने आश्रम में ले आये, और "हे यमुने तू इसका पालन कर" इतना कह महामुनि ने वह कन्या मुझे सौंप दी। वह बेलातट पर मिली थी इस हेतु मुनि ने उसका नाम बेला रखा, अब सब मुनियों का उस पर बराबर प्रेम रहता है। उसमें मेरा अपत्य का सा स्नेह हो गया है, यद्यपि मैं ब्रह्मचर्य्य धारण कर बैठी हूं परन्तु इस सन्तानरूपी स्नेह से अब यह संसार मेरे उस कर्म का बाधक हुआ है। हे चन्द्रसार! नवयौवन की शोभा भरी उसको देख २ मेरे मन में बड़ा सन्ताप होता है, मेरे मन में अब यही चिन्ता बनी रहती है कि किसी प्रकार उसका विवाह हो जावे तो अच्छा हो। हे पुत्र चन्द्रसार! तपोबल से मुझे ज्ञात हो गया है कि यह तुम्हारी पूर्वजन्म की भार्य्या है सो यह जानकर कि तुम यहां आये हो मैं तुम्हारे समीप उपस्थित हुई हूं, सो मेरे साथ चलो और मुझसे अर्पण की गयी बेला का पाणिग्रहण करो; तुम दोनों का इतना कष्ट उठाना सफल हो जावे।"

हे राजकुमार! इस प्रकार से अनभ्रवृष्टि से मानों मुझे आनन्दित कर भगवती यमुना मुझे अपने पिता मतङ्गऋषि के आश्रम को ले गयीं। मतङ्ग मुनि ने अपनी कन्या से सब वृत्तान्त सुन उनके विशेष अनुरोध से मनोराज्य की रूपिणी सम्पत्ति सदृश उस बेला को पाय मैं बड़े आनन्द के साथ उसके संग रहने लगा।

एक समय की बात है कि मैं अपनी प्राणवल्लभा के साथ एक तड़ाग में जलक्रीड़ा कर रहा था, उसी समय मतङ्ग मुनि भी वहीं स्नान करने आये, मैं तो इधर बेला के साथ केलि में मग्न था, मुझे क्या ज्ञात कि मुनि आये हैं सो मैंने जो जल उछाला सो महर्षि पर पड़ गया, बस महर्षि का कोप भड़का उन्होंने

(१) समुन्द्र तट की भूमि।

झटपट शाप देही तो डाला कि हे पापियो ! तुम दोनों का वियोग हो जायगा । तब मेरी वेला महामुनि के चरण पकड़ गिड़गिड़ा २ कर चिरौरी विनति करने लगी, इससे मुनि का कोप शान्त हुआ सो उन्होंने ध्यान करके हम दोनों का शापान्त इस प्रकार ठहराय दिया —"विद्याधरों के भावी अधीश्वर नरवाहनदत्त जब करेणुवेग से अम्बररत्नयुगल जीतेंगे तब हे चन्द्रसार ! तू वत्सेश्वरात्मज का दर्शन दूर से कर इस शाप से मुक्त हो अपनी इस भार्य्या को प्राप्त करेगा ।" इतना कह स्नानादि क्रिया सम्पन्न कर मतङ्ग ऋषि हरि भगवान् के दर्शन करने के हेतु आकाशमार्ग से श्वेतद्वीप को चले गये । इसके उपरान्त यमुना ने मुझसे और मेरी पत्नी से कहा कि पूर्व समय में भगवान् शङ्कर के चरण से जो जूता गिर पड़ा था उसे एक विद्याधर ने पाया था सो उससे भी छूटा तो मैंने बालकपन से उसे ले लिया सो सङ्कल्प निश्चय वह जूता मैं तुम दोनों को देती हूं । इतना कह भगवती यमुना भी वहीं चली गयीं ।

अब जब मैं अपनी प्रियतमा को पा चुका तब बनवास से मेरा चित्त बड़ा उद्विग्न हुआ, ऊपर से वियोग का शाप मिला इससे मेरी इच्छा हुई कि अब अपने देश को चला जाना चाहिए । इतना विचार मैं वहां से भार्य्या सहित प्रस्थानित हुआ और समुद्र किनारे आया, इसी अवसर में किसी महाजन का जहाज भी वहां आ गया, बस मैंने पहिले अपनी भार्य्या को उस पर चढ़ाया और ज्योंही मैं चढ़ा चाहता था कि मुनि के शाप का सुहृद् प्रचण्ड समीरण आया और मेरा जहाज दूर उड़ा ले गया । उधर तो पोत मेरी भार्य्या को हर ले गया इधर अवसर पाय मोह ने मेरी चेतना हर ली; अब मैं व्याकुल हो वहीं गिर पड़ा और मूर्छित हो गया । इतने में वहां एक ऋषि आ गये, मुझे मूर्छित देख उनके हृदय में बड़ी करुणा हुई, सो कृपापूर्वक मुझे अनेक प्रकार से शान्ति देकर धीरे धीरे अपने आश्रम को ले गये । ऋषि ने मुझसे मूर्छा का कारण पूछा तब मैंने आद्यन्त अपना वृत्तान्त कह सुनाया तब उन्होंने अपने तपोबल से देख लिया कि अब शाप की अवधि भी आ गयी है अतः समझा बुझाकर मुझे बहुत शान्ति दी ।

इसके उपरान्त मेरा एक मित्र महाजन मुझे वहीं आ मिला, उसका जहाज भी टूट गया था, वह किसी प्रकार बचकर पार हो वहां आ लगा था, सो मैं

उसके साथ अपनी प्रिया की खोज में निकला। आशा तो बड़ी बलवती होती है फिर यहां तो शापच्चय की अवधि भी ठहरा दी गयी थी सो उसी आशा के भरोसे फिर ऊपर से एक सहारा भी मिल गया, मैं अनेक देश देशान्तरों में बहुत दिनों भटकता रहा। घूमताघामता वैशाखपुर में पहुँचा, यहां मैंने यह सुना कि वत्स-राजवंश के मुक्तामणि आप यहां विराजमान हैं; और दूर से यह भी देखा कि हथिनी से आपने दो घोड़ों को जीत लिया है, बस मेरे शिर का शापरूपी वह बोझ उतर गया और मेरा अन्तरात्मा हलका हो गया। थोड़ेही कालोपरान्त क्या देखता हूं कि वे साधु वणिक् मेरी भार्या को लिये हुए अपने पोत सहित वहीं आ पहुँचे। यमुना का दिया हुआ वह सद्रत्न जूता मेरी प्रिया के साथही चला गया था; आपके प्रसाद से मेरी प्रियतमा वेला पुनः मुझे मिली और शापसमुद्र से-पार हुआ; सो हे वत्सराजतनय मैं आपको प्रणाम करने आया हूं। अब मेरा अन्तरात्मा अति प्रमुदित हुआ है, सो मैं अपनी भार्या के साथ अपने देश को जाता हूं।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय, चरितार्थ वह महाजन चन्द्रसार प्रणाम कर जब चला गया तब नरवाहनदत्त का ऐसा माहात्म्य देख रुचिरदेव अति हृष्ट हुए और वत्सराज के पुत्र के प्रति अति नम्रभाव से प्रणत हुए। वह तो पहिलेही से अपनी भगिनी का विवाह नरवाहनदत्त से किया चाहते थे और इसी हेतु युक्ति से उन्हें वहां लाये भी थे सो करेणु और दोनों घोड़ों के साथही साथ उन्होंने सुसद्दशी जयेन्द्रसेना का विवाह भी उनके साथ कर दिया।

दोहा।

तब नरवाहनदत्त जू, बधु, हय, करिणी संग॥
कौशाम्बी गवनत भये, मन महँ भरे उमंग॥ १॥
वत्सेश्वर कहँ मुदित करि, नई नारि सँग जाय॥
मदनमञ्जुका आदि सँग, विहरत भे हरखाय॥ २॥

॥ श्रीः ॥

कथासरित्सागर का भाषानुवाद।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित।

शशाङ्कवती-नामक बारहवां लम्बक।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि वालबिनैबल पाई।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा बसुधा मँहँ काई॥
प्रेम-समेत पिये जो कोई बलवीर भनै बलि ईश दोहाई।
पावहि सो जगदीश कृपा ते अमन्द अनन्द बड़ो बिबुधाई॥

प्रथम तरङ्ग।

दोहा।

श्रीगणेश रक्षा करैं, विघनविदारनहार॥
यहै जासु कीरति अहै, जो हैं परमउदार॥ १॥
नृत्य करत आनन्द सों, शुण्डदण्ड फैलाय॥
जापै भृङ्गाचर अवलि, लीन सदा दरसाय॥ २॥

सोरठा।

स्वयं विषय तें हीन, विविध-विषय-रचनाचतुर॥
नव रचना परवीन, चित्रकार सम, हरहिं नम॥ १॥
स्मरसर सकल जहान, जीत्यौ यद्यपि पुष्पमय॥
अस परभाव महान, बज्रहु कहँ कुण्ठित करहिं॥ २॥

होइ गयो सो छार, जाके सौंहैं जातहो ॥
जो भवसागर पार, होन चहसि तौ भजु शिवहिँ ॥ ३ ॥

इस प्रकार वत्सेश्वरात्मज नरवाहनदत्त उस भार्य्या को भी पाकर आनन्दपूर्वक कौशाम्बी में रहने लगे। यद्यपि उनके बहुत सी भार्य्यायें थीं तथापि वे पहिली पत्नी देवी मदनमञ्चुका को प्राणों से अधिक मानते थे जिस प्रकार भगवान् माधव रुक्मिणी को (मानते थे)। एक समय की बात है कि वह रात्रि के समय सोये थे तो स्वप्न में क्या देखते हैं कि आकाश से एक दिव्य कन्या उतरी है और मुझे लेकर उड़ गयी; जब जागे तो क्या देखते हैं कि एक बड़े पर्वत के ऊपर वृक्षों की घनी और शीतल छाया में तार्क्ष्यरत्न शिला पर बैठे हुए हैं और पास में वह दिव्य कन्या भी बैठी है जिसकी ज्योति से समस्त कानन प्रकाशमय हो रहा है; मानो कामदेव की विश्वसम्मोहनी औषधि है। उसको देखतेही उन्होंने समझ लिया कि बस यही मुझको यहां उठा लायी है और अब लज्जा के वश में पड़ अपनी इच्छा दबाय पृथक् हो बैठी है; सो उन्होंने ऐसा दिखाया कि मानों घोर निद्रा में प्रसुप्त हैं। गहिरी नींद में वह बया उठे, "प्यारी मदनमञ्चुका कहां हो, आओ मुझे आलिङ्गन कर लो"। इतना सुनना कि उस कन्या की लज्जारूपी यन्त्रणा टूट गयी और उसने झट उनकी प्रिया मदनमञ्चुका का रूप धारण कर उन्हें आलिङ्गन कर लिया। तब उन्होंने नेत्र उघारे और उसे अपनी प्रिया के रूप में देख यह कहा, "बस समझ गया," इतना कह हँसकर उसे गले लगा लिया। अब तो उसकी लज्जा पेड़ पर जा बैठी, अपना रूप प्रगट कर वह बोली, "आर्यपुत्र! मैंने स्वयं आपको अपना वर चुनकर ठहराया है सो अब आप मुझे ग्रहण करें।" उसकी ऐसी बातें सुन नरवाहनदत्त ने गान्धर्व विधि से उस कन्या का विवाह कर लिया इस प्रकार रातभर उसके साथ आनन्दपूर्वक बिताकर प्रातःकाल में उसके कुल की जिज्ञासा के हेतु युक्ति से इस प्रकार कहने लगे,—"प्रिये! सुनो मैं तुमको एक अपूर्व कथा सुनाता हूं—

किसी तपोवन में ब्रह्मसिद्धि नामक कोई मुनि रहते थे, वे यथार्थनामा और बड़ेही सज्जन भी थे। उनके आश्रम के समीप गुफा में एक बूढ़ी शृगाली

रहती थी। कई दिनों से आकाश मेघाच्छन्न रहा, बराबर वृष्टि होती रही इससे वह विचारी अपनी मांद में भी भूखी प्यासी पड़ी रही। जब आकाश निर्मल हुआ, तब वह भोजन की खोज में निकली; इतने में अपनी हथिनी से बिछुड़ा हुआ एक मतवाला बनैला हाथी वहीं आ पहुँचा और उस सियारिन पर झपटा कि मार डाले। मुनि को यह देख दया आई, अपने ज्ञान से वह समझ गये कि यह हस्ती किसको खोज में है सो उन्होंने उस सियारिन को हथिनी बना दोनों पर अपना अपार अनुग्रह दरसाया। उस हथिनी के देखतेही हाथी का विकार जाता रहा, अब वह उसमें अनुरक्त हो गया और वह विचारी शृगाली भी मृत्यु के मुंह से बची। अब ऐसा हुआ कि वह गजेन्द्र उस करेणुका के साथ इधर उधर घूमता हुआ एक ऐसे सरोवर पर पहुँचा जहां शरत्काल होने के कारण कमल लहरा रहे थे; सो वह अपनी प्रिया के हेतु कमल लाने के लिये उस सरोवर में धँसा। तड़ाग में कीचड़ था सो वह विचारा उस दलदल में फँस गया, अब वह हिल डोल भी न सके; कुलिश से पंख कटे गिरे हुए पहाड़ के समान खड़ा रह गया। वह शृगाली करेणुका उस वारण को इस प्रकार विपन्न देख उसी क्षण किसी दूसरे वारणेन्द्र से लग कहीं चली गयी। इतने में उस गज की बिछुड़ी हुई वह निज करिणी उसे खोजती खाजती दैवात् वहीं आ पहुँची; देखे तो पति पङ्क में मग्न खड़ा है। वह विचारी बड़ी भद्रजाति थी भला वह अपने पति को इस दुरवस्था में कब छोड़ सके अत: अनुसरण करने के लिये आप भी उस तड़ाग के कीचड़ में जा धँसी। उसी समय ब्रह्मसिद्धि मुनि भी अपने शिष्यों के साथ उसी मार्ग से आ निकले, उन दोनों को पङ्कमग्न देख मुनि के हृदय में करुणा आ गई सो महातपस्वी मुनि ने अपने तप:प्रभाव से शिष्यों को शक्ति दी और उन्हींके द्वारा हथिनी और हाथी को कीचड़ से निकलवा बाहर किया। तदनन्तर मुनि के चले जाने पर वे दोनों करिणी और करी वियोग और मृत्यु से छुटकारा पाय यथाकाम विहार करने लगे।

इतनी कथा सुनाय नरवाहनदत्त पुन: बोले कि प्रिये! पशुओं में भी यह गुण पाया जाता है कि जो उत्तम जाति के होते हैं वे अपने प्रभु अथवा मित्र को त्याग नहीं करते प्रत्युत विपद् से उनका उद्धार करते हैं; किन्तु जो हीन जाति के होते हैं उनका स्वभाव चञ्चल होता है, उनके हृदय में सद्भाव अथवा स्नेह छू भी नहीं जाता।

वत्सेश्वरात्मज से इस प्रकार सुनकर वह दिव्य कन्या बोली, "आर्यपुत्र ! बात तो ऐसीही है, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं है। आपके कहने का अभिप्राय भी मैं जान गयी, अब मुझसे भी एक कथा सुनिये।"

कन्नौज में शूरदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था, वहां के राजा बाहुशक्ति उसे बहुत मानते थे, और (जिनके प्रभाव से) वह विप्र सौ ग्रामों का अधीश्वर था। उसकी भार्या वसुमती नाम्नी थी जोकि अपने पति को देवता के तुल्य मानती थी। उस वसुमती से ब्राह्मण के एक पुत्र, अति सुन्दर, उत्पन्न हुआ जिसका नाम ब्राह्मण ने वामदत्त रक्खा। पिता का प्यारा वह वाम थोड़ेही समय में सब विद्याओं का पारङ्गत हो गया तब उसने शशिप्रभा नाम्नी एक कन्या से अपना विवाह किया। काल पाकर उसका पिता परलोक को सिधारा और उसकी माता अपने पति की अनुगामिनी हुई। अब वामदत्त अपनी भार्या के साथ गार्हस्थ्य में प्रवृत्त हुआ। उसकी पत्नी उसके अनजानते स्वेच्छाचारिणी हो गयी, दैवात् किसी शाकिनी को सिद्ध कर उस कुलटा ने वर भी प्राप्त कर लिया।

एक समय की बात है जब कि वह राजसेवा वश सैन्य में अपने कार्य पर नियुक्त था कि उसका चाचा घर से आया और एकान्त में उससे इस प्रकार कहने लगा – "पुत्र ! हमारा कुल तो नष्ट न हुआ, तेरी भार्य्या तेरेही महिषपाल के साथ असत् सम्बन्ध रखती है, यह व्यापार मैं अपनी आंखों देख आया हूं।" चाचा की ऐसी बात सुनतेही वामदत्त हाथ में खड्ग ले उठ खड़ा हुआ और उसे पहरे पर नियुक्त कर झटपट अपने घर आया और पुष्पवाटिका में छिप रहा कि छिपे छिपे सब व्यापार देखें इतने में रात हुई और महिपालक आ पहुँचा। थोड़ीही देर में उसकी पत्नी उपपति से रति करने के हेतु नाना प्रकार के पकवान लेकर वहां आ पहुँची। जब वह खा पी के सुचित्त हुआ तब वह कुलटा उसके संग पलंग पर पौढ़कर आनन्द करने लगी। यह देखतेही वामदत्त तलवार खींचकर यह कहता हुआ दौड़ा कि, "हे पापिष्ठो अब कहां जाते हो।" इतना सुनतेही उसकी गेहिनी उठी और देखे तो उसका पतिही है; झट वह बोल उठी "दूर हो कपटी कहीं का," इतना कह उस दुष्टा ने उसके मुंहपर धूलि फेंकी, तत्क्षणही वह मानुष महिष हो गया; परन्तु वामदत्त की स्मृति तब भी नहीं गयी। इसके उपरान्त

लट्ठ से पिटवाके उस दुष्ट ने उसे और सब भैंसों के बीच बँधवा दिया, इतनेही से उस पापिनी को सन्तोष न हुआ ऊपर से उस महिषपाल से नित्य उसे पिटवाया भी करती थी।

कुछ कालोपरान्त वहां पर एक महिष मोल लेने के अभिप्राय से घूमता घामता एक बनिया आया, सो उस क्रूरा ने तिर्यकत्व के कारण विवश हुए अपने पति को उसके हाथ बेंच दिया। वामदेव, एक तो भैंसा बना दिये जाने से स्वयं पीड़ित था, ऊपर से अब बोझ लाद दिया गया अब तो उसके दुःख का थाहही न रहा। अस्तु, लादलूद के वह वणिक् उसे गङ्गा के तटवर्त्ती एक गांव में ले गया, वामदेव सदा इसी बात की चिन्ता किया करता कि हाय मैं नारी का विश्वास कर मारा गया; जिसका विश्वास स्त्री पर हो, और वह छिप २ कर दुराचार करावे तो उस पुरुष का कल्याण कब हो सकता है; वह भार्य्या नहीं किन्तु घर में पली भुजङ्गी है। एक तो यह चिन्ता दूसरे ऊपर से भार ढोना, विचारा महिषरूप वामदत्त ऐसा सूख गया कि अङ्ग में हड्डीही शेष रह गयी।

वामदत्त इस अवस्था में पड़ अपना कर्म्मभोग भोग रहा था कि एक दिन किसी योगिनी की दृष्टि उसपर पड़ गयी; वह अपने योगबल से समझ गयी कि यह मनुष्य से भैंसा बना दिया गया है, इससे उसके हृदय में दया का संचार हुआ सो उसने जल अभिमन्त्रित कर उसपर छिड़का और महिषयोनि से उसे मुक्त किया। जब वामदत्त अपना मनुष्य रूप पा चुका तब दयामयी योगिनी ने उसे अपने घर लेजाकर निज कन्या कान्तिमती का विवाह उससे करा दिया। विवाह हो जाने के उपरान्त योगिनी ने उससे कहा कि पुत्र! लो मैं तुम्हें ये अभिमन्त्रित सरसों देती हूं, इन्हें लेजाकर अपनी पहिली भार्य्या पर छिड़को बस वह दुष्टा उसी क्षण घोड़ी हो जायगी। इतना कह योगिनी ने उसे अभिमन्त्रित सरसों दे दिये।

अब तो वामदत्त के आनन्द का ठिकानाही न रहा, वह सरसों तथा अपनी नवीन भार्य्या कान्तिमती को लेकर अपने घर की ओर चला और थोड़ेही समय के उपरान्त घर पहुँच गया। घर पहुँचतेही उसने पहिले महिषपाल को मार डाला पश्चात् सरसों छिड़क अपनी भार्या को घोड़ी बनाय घोड़शाला में बांध

दिया। अपना बैर चुकाने के हेतु उसने यह नियम बना रक्खा था कि जबलों उसे सात लट्ठ न जमा ले अन्न ग्रहण न करे। इस प्रकार प्रतिदिन वह उसे पीटता तब पीछे भोजन करता। अब वह ब्राह्मण वामदत्त अपनी नवोढ़ा पत्नी कान्तिमती के साथ निर्द्वन्द आनन्दपूर्वक रहने लगा।

एक दिन की बात है कि वामदत्त के घर कोई अतिथि आया, उन्होंने उसका बड़ा सत्कार किया; जब भोजन के समय अतिथि के समक्ष उत्तमोत्तम पकवान चुने गये, और वह अतिथि भोजन करने लगा कि इतनेही में वामदत्त को स्मरण हुआ कि आज उस दुष्टा को लट्ठ नहीं लगाये सो वह बिना भोजन कियेही झटपट घर से निकला और बड़वारूपिणी अपनी उस दुष्टा भार्य्या को नियत लट्ठ लगा के आकर निश्चिन्त हो भोजन करने लगा। इसपर उस अतिथि को बड़ा विस्मय हुआ सो उसने बड़े कौतुक से उससे पूछा कि भाई तुम बिना भोजन कियेहो उतावली के साथ कहांचले गये थे? वामदत्त ने उस अतिथि को अपना वृत्तान्त आद्यन्त सुना दिया। तब उस अतिथि ने उससे कहा, "भाई! इस दुराग्रह से क्या सिद्ध होने का, तुम्हारी जिस सास ने तुम्हें पशुयोनि से निर्मुक्त किया उसीकी आराधना कर कुछ ऐसा बरदान प्राप्त कर लो कि हां तुम भी कुछ कहाने लगो।" उस अतिथि की ऐसी बात वामदेव के मन में धँस गयी सो वह इस पर सन्नद्ध हुआ; प्रातःकाल होने पर उसने बड़े सम्मान और सत्कार से अतिथि को बिदा किया।

दैव घटना! उसी दिन वामदत्त की सास वह सिद्ध योगिनी भी वहीं अकस्मात् आ पहुंची, सो वामदत्त ने बड़े आदर सम्मान से उसकी पूजा कर अपनी प्रार्थना कह सुनाई। योगेश्वरी ने अपने दामाद और बेटी को काल सङ्कर्षिणी विद्या दीक्षापूर्वक सिखा दियी और उनसे कहा कि श्रीपर्वत पर जाकर यह विद्या सिद्ध कर लो। तदनन्तर वामदत्त अपनी भार्य्या के साथ श्रीपर्वत पर चला गया और वहां वह विद्या साधने लगा। कुछ कालोपरान्त वह विद्या सिद्ध हो गयी और प्रत्यक्ष हो बोली "वामदत्त मैं तुम को यह उत्तम खड्ग देती हूं, अब तुम्हारा कार्य्य सिद्ध हो गया, इस खड्ग के प्रभाव से तुम विद्याधरेन्द्र हो जाओगे।" अब खड्ग पाकर वामदत्त अपनी भार्य्या के साथ कृतार्थ हुआ और तत्काल उत्तम

विद्याधर हो गया । तब उसने मलय पर्वत की रजतकूट नामक शृङ्ग पर अपनी सिद्धि के प्रभाव से एक उत्तम नगर बसाया और अपनी पत्नी कान्तिमती के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा ।

कुछ कालोपरान्त विद्याधरेन्द्र की उस पत्नी से एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम दम्पती ने ललितलोचना रक्खा । जिस समय इसका जन्म हुआ उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि यह कन्या विद्याधरों के उत्तम चक्रवर्त्ती की भार्या होगी।

इतनी कथा सुनाय वह वनकन्या बोली—"आर्य्यपुत्र! मैं वही ललितलोचना हूं, अपनी विद्या के द्वारा मैं अपना अर्थ जान गयी और उसी विद्या के प्रभाव से आपको अपने मलयाचल पर लाई हूं, आप किसी बात का सङ्कोच न करें, यह आपका भवन है आनन्द से रहिये ।"

चौपाई ।

इहि विधि जब वह ललितलोचना ॥
निज कुल कर कर चुकी वर्नना ॥ १ ॥
तब नरबाहनदत्त मुदितमन ॥
जानि ताहि विद्याधरि तेहि छन ॥ २ ॥
नई नारि लहि भयहु निहाला ॥
रहन लगे तेहि संग भुआला ॥ ३ ॥

सोरठा ।

वत्सराज महिपाल, चिन्तित पुत्रविछोह तें ॥
जानत नहिँ कछु हाल, कहां गये मम लाड़िले ॥ २ ॥
रत्नप्रभादिक नार, निज विद्याबल जानि कै ॥
कह्यौ सकल व्यापार, ससुर वत्स महिपाल सन ॥ २ ॥

दूसरा तरङ्ग।

अब नरवाहनदत्त उस नवीन भार्य्या ललितलोचना को पाय, उस मलय पर्वत पर जहां कि वसन्त के प्रसार से अधिक अपूर्वही छटा विद्यमान हो गयी थी, अपनी प्रिया के संग वनवनान्तों में विहार करने लगे।

एक दिन की बात है कि उनकी प्रिया वन में फूल चुन रही थी, सो चुनती चुनती क्रमश: गहन जंगल में जा पड़ी और उनकी दृष्टि से बहिर्भूत हो गयी। इधर नरवाहनदत्त भी भ्रमण करते हुए एक सरोवर पर पहुँचे जिसका जल अति निर्मल था, तीर के वृक्षों से जो फूल गिरे थे उनके द्वारा उसकी ऐसी शोभा थी मानों तारागण से शोभायमान आकाश। नरवाहनदत्त उस उत्तम सरोवर को देख अति प्रहृष्ट हुए और अपने मनमें सोचने लगे कि जबलों मेरी प्रिया फूल चुनकर लौटे इस बीच में मैं इस सरोवर में स्नान कर तीर पर बैठकर कुछ विश्राम करूँ। इस प्रकार विचार कर उन्होंने स्नान किया तदुपरान्त सन्ध्यावन्दनादि तथा देवार्चन कर चन्दनतरु की शीतल छाया में एक शिला पर आसन लगाया।

जबकि वह शिला पर बैठे थे, उसी समय राजहंसिनियां वहां दीख पड़ीं, उधर आम की डालियों पर कोयलों की कुहक सुन पड़ी, पुन: साम्हने हरिणियां आईं, इन दृश्यों से उन्हें हंसगामिनी, पिकबयनी, हरिणाक्षी प्यारी मदनमञ्चुका का स्मरण हो आया। प्रियतमा का बहुत दिनों से बिछोह हो गया था, तथा इतनी दूर पर आ पड़े हैं पुन: परवश पड़जाने से न जाने कब वहां जाना हो। इतनी बातें तो एक ओर रहीं अब प्रियतमा का जो स्मरण हुआ तो कामाग्नि धधक उठी इससे वह मूर्छित हो गये।

इसी अवसर में पिशङ्गजट नामक एक मुनिपुंगव वहां स्नान करने आये देखते हैं तो राजकुमार शिला पर मूर्छित पड़े हैं, यह देख उन्हें दया आयी सो उन्होंने उनपर चन्दनजल छिड़का, जिससे नरवाहनदत्त को प्रियास्पर्श का सा सुख बोध हुआ सो वह चैतन्य हो उठ बैठे, देखें तो सम्मुख मुनीश्वर खड़े हैं। देखतेही वह ऋषि के चरणों पर गिर पड़े। मुनि अपनी दिव्यदृष्टि से सब समझ गये; तब नरवाहनदत्त से इस प्रकार कहने लगे—"पुत्र! इस हेतु कि तुम अपना अभीष्ट

लाभ करो तुमको धैर्य्य का अवलम्बन करना चाहिये क्योंकि धैर्य्यही से सब कुछ मिलता है, इससे कहता हूं कि धीरज धरो । मृगाङ्कदत्त की कथा तो तुमने न सुनी होगी, चलो मेरे आश्रम पर मैं तुमको उसकी कथा सुनाऊँगा।" इस प्रकार कहकर मुनि ने स्नान किया तदुपरान्त वह नरवाहनदत्त को अपने आश्रम में ले गये। वहां पहुंच कर महर्षि ने अति शीघ्र आह्निक क्रियायें कीं, तत्पश्चात् फल से नरवाहनदत्त का आतिथ्य किया और आप भी कुछ फल खाये। इस प्रकार सब क्रियाओं से सुचित्त हो पिशङ्गजट मुनि नरवाहनदत्त को कथा सुनाने लगे।

तीनों भुवनों में उजागर अयोध्या नाम्नी एक नगरी है, वहां पूर्वकाल में राजा अमरदत्त राज्य करते थे. राजा बड़े तेजस्वी थे । जिस प्रकार वह्नि की भार्य्या स्वाहा वैसेही उनकी महिषी सुरतप्रभा थीं; रानी सदा अपने पति के अनुकूल रहतीं । उन्हीं रानी से राजा के एक पुत्र हुआ जिसका नाम मृगाङ्कदत्त पड़ा, राजकुमार अपने पिता के कोदण्ड (१) के समान नत हुए। जैसे कोदण्ड, कोटि (२) पर गुण के (३) पहुँच जाने से झुक जाता है वैसेही राजकुमार कोटि (४) गुण (५) प्राप्त कर नत (६) हो गये (७)। राजकुमार के निज दस मन्त्री थे; उनके

(१) धनुष।

(२) धनुष की छोर "कोटि" कही जाती है।

(३) धनुष की डोरी अथवा और कोई भी डोरी हो, वह "गुण" नाम से प्रख्यात है।

(४) इस स्थल पर "कोटि" शब्द का अर्थ है "करोड़।"

५ इस स्थान पर "गुण" शब्द का अर्थ है "सद्गुण," अर्थात् उत्तमोत्तम मानव धर्म।

(६) नत = नम्र = शील सम्पन्न।

(७) यहां श्लेषालङ्कार है। भावार्थ यह है कि जिस प्रकार प्रत्यञ्चा के चढ़ाने पर धनुष झुक जाता है उसी प्रकार करोड़ों अर्थात् अगणित सद्गुण प्राप्त कर राजकुमार नम्र हो गये। कहाही है "भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै" अर्थात् वृक्ष जब फलों से लद जाते हैं तब झुक जाते हैं । ऐसेही गुण प्राप्त कर सत्पुरुष नम्र हो जाते हैं। गुणवानों का लक्षण नम्रताही है।

नाम प्रचण्डशक्ति, स्थूलबाहु, विक्रमकेसरी, दृढ़मुष्टि, मेघबल भीमपराक्रम, विमल बुद्धि, व्याघ्रसेन, गुणाकर और विचित्रकथ । ये दशों सत्कुल में जन्मे थे, सबकी सब युवा, शूर, पण्डित और अपने प्रभु के हितैषी थे। राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने दशों मन्त्रियों के संग पिता के भवन में बड़े सुख से रहते थे, अवस्था उनकी बड़ी हो गयी थी तथापि उन्हें सदृशी भार्य्या न मिली।

एक समय की बात है कि उनका भीमपराक्रम नामक एक मन्त्री एकान्त में उनसे कहने लगा कि देव ! आज रात मुझपर जो घटना घटी है सुनिये उसका वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूं । आज मैं अटारी पर सोया था तो अकस्मात् मेरी नींद टूट गयी, क्या देखता हूं कि बज्रसमान उग्र नखवाला एक सिंह मुझ पर झपटा है; मैं एक छूरा ले के उठा तब तो वह भाग चला मैं भी उसके पीछे पड़ा। आगे एक नदी मिली उसे वह पार कर गया मैं भी उसी के पीछे २ पार हुआ; जब वह नदी पार पहुंचा तब जीभ निकाल खड़ा हो गया; मैंने उसकी वह लम्बी जीभ अपने छूरे से काट ली । उसकी पृथ्वी क्या थी एक पुल का काम करती थी, उसी पर बैठ कर ज्योंही मैं नदी में इस पार आने पर प्रस्तुत हुआ कि इतने में वह सिंह एक महा बिकराल पुरुष हो गया । तब मैंने उससे पूछा कि आप कौन हैं ? इस पर उस पुरुष ने उत्तर दिया "हे वीर मैं वेताल हूं, तुम्हारी वीरता से मैं बड़ाही सन्तुष्ट हुआ हूं।" इतना सुनतेही मैंने फिर उससे एक प्रश्न किया कि भाई यदि यह बात है तब तो तुम बहुत कुछ जानते होगे भला यह तो बतलाओ कि मेरे प्रभु मृगाङ्कदत्त की भार्य्या कौन होगी ! मेरा ऐसा प्रश्न सुन वह वेताल बोला "उज्जयिनी में कर्मसेन नामक राजा हैं; उनको एक कन्या है, जिसकी सुन्दरता के आगे अप्सराएँ भी झख मारती है। उसको देखकर मन में यह भावना उदित होती है कि मानों विधिना ने उसे सौन्दर्य्यसृष्टिकी निधान भूमि बनायी हो। नाम उस राजाकुमारी का शशाङ्कवती है, बस वही तुम्हारे प्रभु की भार्य्या होगी। तुम्हारे प्रभु उसको प्राप्त कर पृथ्वी भर का राज्य करेंगे। इतना कह वह वेताल अन्तर्धान हो गया और मैं अपने घर चला आया, सो देव ! यही मेरी रात की घटना है।

भीमपराक्रम से इतनी बातें सुन कर मृगाङ्कदत्त ने अपने सब मन्त्रियों को

बुलाया और उन्हें सारी कथा सुना दी पश्चात् उनसे कहा कि सुनो, आज मैंने जो एक स्वप्न देखा है।

मुझे ऐसा भासा कि हम सब लोग किसी घने जंगल में गये हैं, सो चलते २ प्यास के मारे हम लोगों के कण्ठ सूख गये; बड़ी कठिनता से हम लोग एक जलाशय पर पहुंचे, ज्योंही कि हम लोग पानी पीने चले है त्योंही उसमें से पांच अस्त्रधारी पुरुष निकले और हमें जल पीने से रोकने लगे। उन पांचों को मार कर हम फिर पानी पीने चले, बस न तो वे पुरुषही दीख पड़े और न जलाशय; सब न जानें क्या हो गये। पिपासा से हम लोगों की दशा बड़ी ही बुरी हो गयी थी जिसका वर्णन नहीं हो सकता। इतमें में अकस्मात् शशाङ्कोज्वल भगवान् शङ्कर वृषभ पर चढ़े हमारे सम्मुख आ विराजे। हम लोगों ने झुक कर महेश्वर को प्रणाम किया, तब भगवान् ने अपने दक्षिण नेत्र से आंसू की एक बूंद पृथ्वी पर टपका दी जिससे वहां एक समुद्र हो गया, उसमें से मोतियों की एक माला निकाल कर मैंने अपने गले में पहिन लियी और तदुपरान्त मनुष्य की खोपड़ी जिस में कि लहू लगा था। मैं वह समुद्र पी गया इतने ही में मेरी निद्रा टूट गयी और साथही विभावरी भी बीत गयी।

इस प्रकार मृगाङ्कदत्त जब अपना अद्भुत स्वप्न सुना चुके तब उस अनोखे स्वप्न के श्रवण से उनके समस्त मन्त्री बड़े प्रमुदित हुए उस समय उनका मन्त्री विमलबुद्धि बोला "देव! आप धन्य हैं, कि जिन पर भगवान् शङ्कर का ऐसा अनुग्रह है; स्वप्न में जो आपने मोतियों की माला पाई और अम्बुधि का पान किया उसका फल यह होगा कि शशाङ्कवती को प्राप्त कर आप पृथ्वी का भोग करेंगे, यह आप निश्चय जान रखिये और जो कुछ आपने देखा है उसका फल कुछ अनिष्ट है।" जब विमलबुद्धि इतना कह चुका तब मृगाङ्कदत्त ने फिर अपने सब सचिवों से कहा कि यद्यपि मेरे स्वप्न का वैसाही फल होगा जैसा भीमपराक्रम ने वेताल से सुना है तथापि कर्मसेन को अपने बल (१) और दुर्ग (२) का जो बड़ा अभिमान है तो मुझे उचित है कि उनकी कन्या शशाङ्कवती को अपने बुद्धिबल से प्राप्त

(१) सैन्य, (२) गढ़।

करूं। प्रजाबल जो है सो सब कार्यों में मुख्य साधन है, सुनिये इसी विषय में आप लोगों को एक कथा सुनाता हूं।

मगधदेश में भद्रबाहु नाम करके एक राजा हुए, तिनके मन्त्री मन्त्रगुप्त, जो बुद्धिमानों में बड़े श्रेष्ठ थे। एक दिन राजा अपने मन्त्री से अपनी इच्छा प्रगट कर इस प्रकार कहने लगे कि वाराणसीपति राजा धर्म्मगोप की दुहिता अनङ्गलीला ऐसी सुन्दरी है कि तीनों जगत् में वैसी ललना कहां पाइये; सो मैंने राजा से उस ललना ललाम को मांगा पर द्वेषवश राजा उसे नहीं देते। उनके पास भद्रदन्त नामक एक हाथी है उसी के प्रभाव से वह दुर्जय हैं; परन्तु यहां तो यह बात है कि मुझे उनकी कन्या के बिना अपना जीवन भी अपार हो गया है। मुझे कुछ उपाय भी नहीं सूझता, सो सखे! कहो क्या किया जाय? राजा की ऐसी बात सुन मन्त्री बोला "देव! क्या आप ऐसा मानते हैं कि विक्रम से ही कार्य्य की सिद्धि होती है, बुद्धि कुछ तत्वही नहीं है; अच्छा आप चिन्ता न करें, देखिये मैं अपनी बुद्धि से आपका कार्य्य सिद्ध कर देता हूं कि नहीं।

इस प्रकार राजा से कह कर मन्त्री ने दूसरे दिन एक महाव्रती (२) का भेष बनाया और पांच सात अनुचरों के साथ वाराणसी को प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर उसके अनुचरों ने, जो कि शिष्य बने थे, चहुँ ओर यह प्रख्यात कर दिया कि यह योगीश्वर बड़े सिद्ध हैं। जो कोई भक्ति से योगीश्वरजी के समीप आता उसे तो वे ऐसी पाटी पढ़ाते कि वह भी उन्हीं के समान उनकी बड़ाई करने लगता। अब सिद्धजी महाराज बड़ेही प्रख्यात हो गये। एक दिन रात्रि के समय वह योगीन्द्र अपने कार्य्य की सिद्धि के उपलक्ष्य में अपने अनुचरसहित घूम रहे थे तो दूर से क्या देखते हैं कि गजपाल की स्त्री अपने घर से निकली है, शङ्का के कारण उसका चित्त चंचल है, इससे वह झपटती हुई चली जा रही है और तीन चार शस्त्रधारी पुरुष उसे कहीं लिये जा रहे हैं। उस मन्त्री ने सोचा कि निश्चय करके यह इनके संग निकल भागी है, सो देखा चाहिये कहां जाती है, ऐसा बिचार वह अपने अनुचरों के साथ उसके पीछे २ चला। इतने में वह स्त्री एक घर में पैठी, सो दूरही से देख कर वह मन्त्री अपने डेरे पर लौट आया। प्रातःकाल होने पर

(२) महायोगी, संन्यासी।

बिचारा महावत क्या देखता है कि स्त्री उसका सर्वस्व लेकर न जाने कहां चली गयी, सो वह उसकी खोज कर रहा था, इतने में अवसर पाय योगीश्वर रूप मंत्री ने अपने अनुचरों को उसके पास भेजा । ज्योंही वे उसके घर पर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि स्त्री और धन के न मिलने से हताश हो वह दुखिया विष खा गया है तब उन्होंने अपनी विद्या से उसका विष उतार दिया और कहा" आओ हमारे गुरु जी महाराज के पास चलो, वह बड़े ज्ञानी हैं और सब कुछ जानते हैं, अवश्य अपने योगबल से तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे," इतना कह वे उसे मन्त्री योगीश्वर के निकट ले गये । महावत वहां पहुंच कर क्या देखता है कि योगिराज ऐसे विराजमान हैं मानों मूर्त्तिमान् योगही समाधिस्थ है, सो वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ा कर बोला "योगिराज ! मुझ दीन पर दया कीजिये और यह बतलाइये कि मेरी भार्य्या कहां चली गयी है ।" हस्तिपक की इतनी बात सुन मन्त्री ने झूठ मूठ ध्यान लगाया और कुछ कालोपरान्त उससे कहा कि सुनो पुत्र ! तुम्हारी भार्य्या को रात के समय कुछ लोग अमुक २ स्थान में ले गये हैं, सो तुम चट पट उद्योग करो तो मिल जायगी, अभी वह उसी स्थान में है । तदनन्तर वह हस्तिपालक योगिराज को प्रणाम कर सीधे थाने को चला गया वहां से कुछ सिपाहियों को ले कर उसने जाकर वह स्थान घेर लिया । उन परदारापहारियों को उसने मार डाला और सब आभूषण और धनसहित अपनी भार्य्या को प्राप्त किया ।

अब दूसरे दिन बड़े तड़के ही वह महावत मुनीश्वर के आश्रम (डेरे) पर पहुंचा और प्रणाम कर बैठ गया; कुछ कालोपरान्त बड़ी नम्रता से बोला कि योगीश्वर मैं निमन्त्रण देने आया हूं; यदि आप आज इस दास के घर पधार कर वहां जूठन डालते तो दास पर आपकी बड़ी कृपा होती । कपटी मुनि बोला—"बच्चा हम तो रमते योगी ठहरे, घर द्वार त्याग योग साधन करते हैं फिर तुम्हारे घर कैसे जा सकते हैं, और दिन में तो हम भोजन करते नहीं, रात्रि में जो कुछ मिला अपने राम को भोग लगा प्रसाद पाते हैं ।" इतना सुन महावत बोला "अच्छा महाराज ! मैं आपके लिये हाथीशाला में प्रबन्ध करूंगा और रात्रिही के समय सही, पर प्रभु का अनुग्रह मुझ पर होना चाहिये इतना कह उसने रात्रि के समय हाथीशाला में सब सामग्री जुटाई । मन्त्री का तो यह इष्टही था सो वह जब

भोजन करने गया तब मन्त्रबल से बांस की एक छड़ी में एक सांप भर लेता गया वहां पहुंच कर मंत्री ने अपने अनुचरों के साथ उत्तमोत्तम पक्वान्न भोजन किये। जब हस्तिपाल चला गया और सब लोग सो गये तब मन्त्री ने बांस की वह छड़ी सोते हुए भद्रदन्त नामक उस हस्ती के कान में डाल दी, रात बिता कर मन्त्री तो अपने अनुयायियों के साथ मगध की ओर चला और उधर वह हाथी सोताही रह गया । इस प्रकार राजा धर्म्मगोप का दर्प मानों, जब वह गजेन्द्र मार कर मन्त्री लौट कर आ गया तब राजा भद्रबाहु बड़ेही आनन्दित हुए।

अब राजा भद्रबाहु ने बाराणसीश्वर धर्म्मगोप के पास एक दूत भेजा और उनकी कन्या अनङ्गलीला की याचना की । राजा धर्म्मगोप का बल तो हाथी के मर जाने से टूटही गया था, वह अब क्या कर सकते थे, अगत्या उन्होंने अपनी कन्या अनङ्गलीला का विवाह मगधेश्वर भद्रबाहु से कर दिया। ठीकही है काल-चक्र के जाननेवाले राजा लोग कुसमय में वैतसी (१) वृत्ति का अवलम्बन कर लेते हैं।

इतनी कथा सुनाय राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों से पुनः कहने लगे कि सुना न, इस प्रकार मन्त्री मन्त्रगुप्त की प्रज्ञा के द्वारा महीपति भद्रबाहु ने अनङ्गलीला को प्राप्त किया, उसी रीति से मैं भी अपनी बुद्धि के प्रभाव से उस भार्य्या को प्राप्त करूंगा। राजकुमार का ऐसा कथन सुन उनका मन्त्री विचित्र-कथ बोला "देव! स्वप्न में भगवान् शङ्कर ने जैसा अनुग्रह आप पर किया उसी के प्रभाव से आपके सब कार्य्य सिद्ध हो जावेंगे; देवताओं का प्रसाद अमोघ होता है भला उससे क्या नहीं सिद्ध हो सकता । सुनिये इसी विषय में आपको एक कथा सुनाता हूं!

(१) वेत का सव्यापार। जिस प्रकार वेंत, जलप्रवाह अथवा वायुवेग के आग-मन से झुक जाती है और उसके चले जाने पर फिर सीधी खड़ी हो जाती है; ऐसेही कालज्ञ लोग कुसमय में नम्र हो जाते हैं, उनका यह विश्वास है कि समय ऐसाही न रहेगा कभी अवश्य पलटेगा; इसी बिचार से वे समय पर यथोचित कार्य्य कर उसे टाल देते हैं।

तक्षशिला पुरी में भद्राक्ष नाम के राजा थे, उनके कोई पुत्र न था; सो पुत्र-प्राप्ति की कामना से राजा लक्ष्मी देवी की पूजा करने लगे; वह प्रति दिन एक सौ आठ श्वेतपद्म खड्ग पर रख कर भगवती पद्मा को चढ़ाते थे । एक दिन की बात है कि राजा पूजा कर रहे थे और चुप चाप मनही मन फूल गिनते जाते थे कि दैवात् एक कमल घट गया सो महीपति ने चट अपना हृत्पद्म निकाल कर चढ़ा दिया । इस पर देवी बहुत प्रसन्न हुईं उन्होंने वर दिया कि राजन् ! तेरे सार्वभौम पुत्र होगा । तदुपरान्त राजा का शरीर अक्षत (२) कर भगवती वहीं अन्तर्द्धान हो गयीं ।

कुछ कालोपरान्त राजा की पटरानी के पुत्र हुआ । हृत्पुष्कर चढ़ाने के प्रताप से वह पुत्र उत्पन्न हुआ था अत: राजा न उसका नाम पुष्कराक्ष रखा, राजकुमार होनहार थे, उनके लक्षण सब सुलक्षण थे । क्रमानुसार जब राजपुत्र युवा हुए तब नरनाथ ने उन्हें सद्गुणसम्पन्न देख राजासन पर अभिषिक्त कर दिया और आप बन का आश्रय लिया ।

इधर पुष्कराक्ष भी राज्य का भार प्राप्त कर नीतिपूर्वक प्रजा का शासन करने लगे, उनका भी यह नियम था कि प्रति दीन अम्बिकापति भगवान् शङ्कर की पूजा करते । एक समय की बात है कि उन्होंने पूजन के अवसान में देवाधिदेव महादेव से प्रार्थनाकी कि हे प्रभो मुझे अनुकूल भार्य्या मिले । इतने में आकाश वाणी हुई कि पुत्र ! जो कुछ तू चाहता है तेरी अभिलाषा पूरी होगी । इस प्रकार आकाशवाणी सुन राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें भरोसा हुआ कि अब मुझे सदृशी भार्य्या अवश्य प्राप्त होगी ।

एक समय की बात है कि राजा पुष्कराक्ष आखेट करने अरण्य में गये, वहां जाकर क्या देखते हैं कि भुजंग मिथुन संभोगसंसक्त है, और एक ऊंट उस जोड़े के भक्षण करने पर उद्यत है, यह देख उनको बड़ा शोक हुआ सो उन्होंने उस ऊंट को मार गिराया । इतनेही में वह उष्ट्र अपना वह शरीर त्याग दिया।धर

(२) हृत्पद्म निकालने से जो घाव हो गया था उसे देवी ने छू कर अच्छा कर दिया अत: राजा के शरीर में घाव न रह गया ।

हो गया और अति प्रसन्न हो पुष्कराच से कहने लगा "राजन्! आपने मेरा बड़ा उपकार किया, सो अब जो मैं कहता हूं उसे आप ध्यान देकर सुनिये।"

रङ्गमाली नामका एक अति श्रेष्ठ विद्याधर है, उसका रूप निरख तारावली नाम एक विद्याधरकन्या मोहित हो गयी सो उसने उस तरुण को स्वयं अपना पति वरण कर लिया। इन दोनों का जो परस्पर निज इच्छा से विवाह हो गया इस बात से तारावली के पिता बड़ेही कुपित हुए, उन्होंने चट शाप देही तो दिया कि तुम दोनों ने बिना मेरी सम्मति के जो विवाह कर लिया इससे कुछ काल पर्य्यन्त तुम दोनों का वियोग रहेगा इसके उपरान्त तारावली और रङ्गमाली उन अपनी भूमियों में आनन्दपूर्वक बिहार करने लगे।

एक समय की बात है कि उस शाप का प्रभाव आ पड़ा, और जब वे दोनों बन बिहार करते थे कि अकस्मात् देखतेही देखते एक दूसरे की दृष्टि से तिरोहित हो गये और बहुत दूर बनान्तर में जा पड़े, इस प्रकार दम्पती का वियोग हो गया। तारावली अपने प्राणेश्वर का अन्वेषण करती बड़ी दूर पश्चिम समुद्र के उसपार एक बन में जा पहुंची जहां सिद्ध और महर्षियों के आश्रम थे। वहां पर उसे फूला हुआ जामुन का एक विशाल पेड़ दिखाई पड़ा जिस पर भ्रमर मधुर २ गूंज रहे थे, जिस से यह भावना हुई मानों वह वृक्ष प्रीति वश उसको आश्वासन दे रहा है। तारावली थक तो गयी ही थी, विश्राम किया ही चाहती थी, इधर प्रसूनों का मधुर सौरभ मिला सो वह बटभृङ्गी का रूप धारण कर एक कुसुम पर जा बैठी और मधुपान करने लगी। वह रसपान करही रही थी कि थोड़ेही काल के उपरान्त उसका पति रङ्गमाली भी उसे ढूढ़ता ढ़ांढ़ता वहीं आ पहुंचा। बहुत दिनों का बिछुड़ा पति जो दृष्टिगोचर हुआ इस से तारावली के हर्ष को सीमा न रही; आनन्द के वेग से उसका बीर्य स्खलित हो गया और उस पुष्प पर गिर पड़ा। तारावली झट पट अपना भृङ्गीवपु त्याग अपने पति रङ्गमाली से जा मिली जैसे ज्योत्स्ना चन्द्र से मिले। तदनन्तर दोनों अति प्रफुल्लित हो आनन्द मनाते अपने निकेत चले गये।

इधर तारावली का बीर्य जिस कुसुम पर गिरा था उससे एक फल हुआ, उस फल के भीतर काल योग से एक कन्या हो गयी। ठीक है, दिव्य लोगों का बीर्य

क्या कभी निष्फल जा सकता है । अस्तु; किसी समय विजितासु मुनि फल मूल बटोरते वहीं आ पहुँचे; जामुन का वह फल भी पक चुका था; सो उसी क्षण टूट पड़ा और गिरतेही फट गया उससे एक दिव्य कन्या निकल पड़ी; कन्या ने झट बड़ी नम्रता से मुनि के चरणों को प्रणाम किया । महर्षि अपनी दिव्यदृष्टि से उसका सारा वृत्तान्त जान गये जिससे उनको बड़ाही आश्चर्य हुआ, सो वह उस कन्या को अपने आश्रम को ले गये; महामुनि ने उसका नाम विनयवती रक्खा।

अब काल पाकर वह कन्या ऋषि के आश्रम में सयानी हुई। एक समय की बात है, महाराज पुष्कराक्ष ! कि मैं आकाश में उड़ा चला जा रहा था कि उस ललनाललाम पर मेरी दृष्टि पड़ गयी बस अब क्या पूछना था; मैं अपने रूप का गर्व कुछ रखता ही था, इधर पञ्चबाण के तीखे बाण भी चुभे बस मैं तुरन्त उस आश्रम में पहुँचा और बलात् उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे हर ले चला, इतने में उसकी चीख सुन विजितासु मुनि वहां दौड़ आये; उन्होंने क्रोध में आकर मुझे शाप दे दिया कि अरे दुष्ट ! तुझे अपने रूप का बड़ा गर्व है इससे जा तू सर्वाङ्ग-निन्दित ऊँट हो जा; जब महाराज पुष्कराक्ष तेरा बध करेंगे तब तू इस शाप से छुटकारा पावेगा । मुनि ने यह भी कहा कि वही महाराज इस विनयवती के पति होंगे।

इतनी कथा सुनाय वह विद्याधर फिर बोला कि महाराज पुष्कराक्ष ! मुनि के शाप से मैं उसी क्षण ऊँट हो गया और भूलोक पर आ पड़ा; आज आपने मेरा शापान्त किया । सो महाराज ! पश्चिम समुद्र के उस पार सुरभिमारुत नामक उस बनमें जाइये और लक्ष्मी को लजावनहारी उस दिव्य भार्य्या को प्राप्त कीजिये।

राजकुमार मृगाङ्कदत्त को इतनी कथा सुनाय वह मन्त्री विचित्रकथ फिर इस प्रकार कहने लगा कि राजकुमार ! पुष्कराक्ष की इतनी कथा सुनाकर वह विद्याधर आकाश में उड़ गया। इधर पुष्कराक्ष भी अपने नगर को गये, उन्हें तो तारावली का ध्यान लगा था सो राज्य का भार मन्त्रियों पर रख रात्रि के समय घोड़े पर आरूढ़ हो अकेलेही चल पड़े । चलते चलते पश्चिम समुद्र के तट पर पहुँचे, पर अब अम्भोधि के पार कैसे पहुँचें इस बात की उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। इतने में उन्हें जगदम्बा श्रीदुर्गाजी का एक मन्दिर दिखाई पड़ा जहां कोई जन

न था। वहां स्नान कर वह भगवती के मन्दिर में गये और जगज्जननी को दण्डवत कर स्तुति करने लगे। वहां कोई वीणा रख गया था उसे बड़े आदर से उतारकर बजाने और महामाया की स्तुति गाने लगे। इस प्रकार अम्बिका के समक्ष भजन कर वहीं मन्दिर में सो रहे, जगदम्बा उनके गाने बजाने से बड़ी सन्तुष्ट हुईं सो उन्होंने अपने भूतगणों के द्वारा उन्हें सोतेही सोते समुद्र के उस पार पहुँचवा दिया। प्रात:काल जब राजा पुष्कराक्ष जागे तो क्या देखते हैं कि समुद्र के किनारे बनान्तर में पड़े हैं। उनको इस बात से बड़ाही आश्चर्य्य हुआ कि मैं सोया तो था दुर्गाजी के मन्दिर में अब यहां बनमें कैसे आ गया। अस्तु महामाया की माया का पार नहीं ऐसा विचार वह उठे और अरण्य में विचरने लगे, घूमते घूमते एक आश्रम में पहुँचे जहां फलों से लदे वृक्ष ऐसे प्रतीत होते थे मानों बड़ी नम्रता से आतिथ्य कर रहे हैं; पत्तों के झंकार से ऐसी भावना होती थी मानों वे पादप स्वागत कर रहे हैं। महाराज पुष्कराक्ष आश्रम के भीतर गये, जाकर देखते हैं तो ऋषिमण्डली के मध्य मुनि विराजमान हैं। उनके समीप जाय राजा ने उनके चरण गह प्रणाम किया, मुनि तो सिद्ध पुरुष थे ही सब समझ गये; उनका आतिथ्य सत्कार कर बोले—"पुष्कराक्ष! जिसके हेतु तुम यहां आये हो वह विनयवती, अभी क्षण भर हुआ है कि समिधा लेने गई है सो तुम बैठकर थोड़ा विश्राम करो; राजन्! वह तुम्हारी पूर्वभार्या है सो तुम उसका विवाह आजही कर लो"। मुनि की ऐसी बात सुन महाराज पुष्कराक्ष विचारने लगे, "बड़े भाग्य की बात है, अरे! यह तो वही मुनि विजितासु हैं और वही बन भी है। मैंने ठीकही कहा कि महामाया की माया अपरम्पार है, बस अब मुझको निश्चय हो गया कि भगवतीने ही मुझे महासागर के पार किया। अब यहां एक और आश्चर्य्य की बात सुनने में आई; मुनि कहते हैं कि वह मेरी पूर्व भार्य्या है यह भी एक बड़ी विचित्र बात है।" इस प्रकार विचार कर उन्होंने महर्षि से पूछा, "भगवन्! यह जो आपने कहा कि यह तुम्हारी पूर्व भार्य्या है सो कैसे? कृपाकर इसका वृत्तान्त सुना मेरा कौतूहल शान्त कीजिये।" तब मुनि बोले, "यदि तुम्हें बड़ा कौतुक है तो सुनो मैं तुमको इसका वृत्तान्त सुनाता हूं।"

पूर्वकाल की बात है कि ताम्रलिप्ती नगरी में धर्म्मसेन नामक एक बनिया

रहता था, उसकी पत्नी का नाम विद्युल्लेखा था जो बड़ी साध्वी थी । दैवात् एक रात उसके घर में चोर पैठे, शस्त्रों से उसे घोर रूप से आहत कर उसका सर्वस्व धन हर ले गये। वह दीन दुखिया अब क्या करे, पास में एक कौड़ी नहीं, शरीर आघातों से ऐसा जर्जरित और मर्मरित हुआ कि उठना बैठना कठिन, कुछ अर्जन करना भला कहां ! अब वह अति दुःखित हो अपनी भार्य्या के साथ निकल खड़ा हुआ कि चलो कहीं आग में जल मरें । दोनों चले जा रहे थे तो क्या देखते हैं कि आकाश में हंस का एक अति सुन्दर जोड़ा उड़ा चला जा रहा है । उनका चित्त उन्हीं हंसों में लुभाय गया, उसी अवसर पर दोनों स्त्री पुरुष आग में जल कर मर गये । शास्त्र में कहा ही है कि मरते समय मनमें जो भावना होती है जन्मान्तर में वही भुगतनी पड़ती है, बस इसी कारण उन दोनों को हंसयोनि में जन्म लेना पड़ा वहां भी दोनों पति पत्नी हुए । किसी समय दोनों एक खजूर के पेड़ पर अपने नीड़ में बैठे थे, वर्षाऋतु थी, रात्रि का समय था कि प्रचण्ड वायु चला जिससे वह पेड़ जड़ से उखड़कर बड़ी दूर पर जा गिरा और उन दोनों का वियोग हो गया । प्रातःकाल जब अन्धड़ शान्त हुआ तब वह हंस अपनी हंसिनी की खोज मे निकला पर कहीं उसका पता न लगा । तब वह मानसरोवर की ओर चला क्योंकि हंसों का वहीं पक्का अड्डा है, उसे यह आशा थी कि कदाचित् मेरी प्रिया वहां मिल जाय । सो कामदेव से अति पीड़ित हो वह मानसरोवर को प्रस्थानित हुआ; मार्ग में उसे एक हंसी मिली उसने भरोसा दिलाया कि वहां जाने से तुम अवश्य उसे पाओगे । वहां उसने अपनी प्रिया को पाया और वर्षाकाल वहीं बिताया । इसके पश्चात् एक गिरिशृङ्ग पर गया कि उसके साथ वहां एकान्त में आनन्दपूर्वक निर्द्वन्द्व विहार करे । भाग्य की बात वहां किसी बहेलिये ने उसकी हंसिनी मार ली, यह देख उसके मनमें बड़ा शोक हुआ और भय भी व्यापा कि कहीं मेरे भी प्राण न जांय इससे वह ताबड़तोड़ वहां से उड़ भागा। अब वह लुब्धक उस मरी हंसी को लेकर चला, थोड़ीही दूर गया होगा कि दूर पर बहुत से शस्त्रधारी पुरुष दीख पड़े जो उसी ओर चले आ रहे थे । उन्हें देख बहेलिये ने अपने मनमें विचारा कि बस ये आकर मुझसे हंसी छीन लेंगे । ऐसा विचारकर उसने छुरी से कुछ घास काटी और उसके भीतर रखकर हंसी को छिपा

दिया। जब सब पुरुष चले गये और वह व्याध आकर घास हटाने लगा तो उसके देखतेही देखते वह हंसिनी आकाश में उड़ गयी, जो घास उसने काट के हंसी पर रक्खी थी उसमें कोई मृतसञ्जीवनी जड़ी थी जिसके रस से हंसी जी उठी, बस घास हटातेही उड़ गयी; विचारा बहेलिया अपना सा मुंह लिये रह गया।

उधर उसका पति हंस एक सरोवर पर जाकर वहांके हंसोंके बीच रहने लगा, उसे सदा अपनी भार्या की चिन्ता बनी रहती, रात दिन वह उसी के ध्यान में डूबा रहता। इतने में एक धीवर वहां आया देखे तो सरोवर के तट पर बहुत से हंस कलरव कर रहे हैं, सो उसने उनपर जाल फेंककर सभीं को फँसा लिया। जब सब हंस जाल में पड़ गये तब वह मछुआ किनारे बैठकर अपना भोजन करने लगा। इसी अवसर में वह हंसी अपने पति को खोजती हुई वहीं आ पहुँची, देखे तो प्राणेश्वर जाल में पड़े हैं, यह देखतेही विचारी अति विकल हो चहुँओर विलोकने लगी। उसी समय उसकी दृष्टि एक ओर पड़ी कि एक पुरुष अपने कपड़े उतार तीर पर रख उनके ऊपर अपनी रत्नमाला धर सरोवर में जाकर स्नान कर रहा है। बस चुपके से माला चोंच से उठाय धीवर को दिखाती वह हंसी धीरे उड़ चली। अब वह दास भी माला के लोभ में पड़ अपनी लकुटी उठाय हंसी के पीछे दौड़ा, उसे पूरा भरोसा था कि हंस तो जाल में फँसही चुके हैं अब जांयगे कहां, सो उनकी कुछ चिन्ता न कर अब वह माला लेने चला। हंसिनी बड़ी बुद्धिमती थी, वह ऐसे वेग से भी न उड़ती थी कि दृष्टि के बाहर हो जाय और न ऐसी धीमी थी कि धीवर चटपट लाठी मार पकड़ ही ले। हंसी उड़ती उड़ती एक बड़े ऊँचे पहाड़ पर चढ़ गयी और वहां एक टीले पर उसने वह माला रख दी। धीवर देखताही रहा कि हंसिनीने माला कहां रक्खी है सो वह उसके लोभ से पहाड़ पर चढ़ने लगा। इधर हंसी अति शीघ्र वहां आ पहुँची जहां उसका पति जाल में फँसा था। वहां वृक्ष पर एक बानर सो रहा था हंसी ने जाकर धीरे से उसकी आंख में चोंच मार दी बस वह कपि घबड़ाके उठा और हंसों के जाल पर टूट पड़ा और स्वभाववश उसने जाल छिन्नभिन्न कर डाला इससे सब हंस निकल भागे। अब दोनों पति पत्नी मिले, दोनों ने अपना २ वृत्तान्त कह सुनाया; इसके उपरान्त वे दोनों प्रहृष्ट मन हो यथा-काम विहार

करने लगी । इतने में वह दास भी माला लेकर हंसों के लोभ से वहां आया, जहां वह पुरुष अपनी माला की खोज कर रहा था । पुरुष ने देखा कि धीवर माला लिये है सो उसने डांट डपेट के उससे अपनी माला ले ली और ऊपर से उसका दहिना हाथ भी अपने खड्ग से काट डाला ।

एक समय दोनों हंस मध्याह्नकाल में कमल के एक पत्ते का छाता लगाये आकाश में विचर रहे थे; कुछ काल में वे दोनों खग एक नदी के किनारे पहुँचे जहां बैठे हुए एक मुनि, भगवान् धूर्जटि की पूजा कर रहे थे । उसी समय उन दोनों पक्षियों को किसी व्याध ने एकही वाण से मार गिराया, विहङ्ग तो भूमि पर गिर पड़े परन्तु वह छत्र-कमल जो वे लिये जा रहे थे उस शिवलिङ्ग के मस्तक पर गिरा जिसकी पूजा वह मुनीश्वर कर रहे थे । व्याध ने उन दोनों पक्षियों को देख हंस को तो अपने लिये रख लिया और हंसी मुनि को दे दी मुनि ने भी उस हंसिनी को शिव पर चढ़ा दिया ।

इतनी कथा सुनाय मुनि विजितासु बोले—"पुष्कराक्ष ! तुम वही हंस हो, महादेवजी के मस्तक पर जो वह कमलपत्र गिरा उसी के प्रभाव से तुम इस जन्म में राजा के वंश में जन्मे, और यह जो विनयवती है सो वही हंसिनी है, यह जो विद्याधर की योनि में जन्मी इसमें विशेष कारण यह पड़ गया कि उस हंसी रूपी श्वेत कमल से भगवान् शङ्कर की पूजा की गयी थी । सो इस प्रकार विनयवती तुम्हारी पूर्वभार्य्या है ।"

मुनि का ऐसा कहना सुन राजा पुष्कराक्ष ने फिर प्रश्न किया कि भगवन् ! कृपाकर मेरा यह संशय भी दूर कर दीजिये, अग्निदेव तो ऐसे हैं न कि सब प्रकार के पातक समुदाय भस्म कर डालते हैं, सो हम दोनों तो उनमें जल मरे सो हमारे सब पाप भी जल भुने फिर हमारा जन्म पक्षियोनि में कैसे हुआ ? इस पर मुनि बोले,—"सुनो पुत्र, मरते समय जिसके मनमें जो भावना रहती है उसी के अनुसार उसका जन्म होता है । इस विषय में तुम्हें एक कथा सुनाता हूं ।"

पूर्वकाल की बात है कि उज्जयिनी नगरी में लावण्यमञ्जरी नाम्नी एक नैष्ठिकी ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी रहती थी । एक समय उसकी दृष्टि कमलोदय संज्ञक एक ब्राह्मणकुमार पर पड़ी, उस युवा को देख उसकी सुधि जाती रही और वह

कामाग्नि से जलने लगी। उधर अपना नियम भी न तोड़ सके इधर असह्य काल-वेदना सही न जाय, इससे उसी ब्राह्मण युवा के ध्यान में गन्धवती के तीर तीर्थ-स्थान में जाकर उसने अपना जीवन त्याग दिया। उसकी भावना तो भोग विलास की थी इसीसे एकलव्या नाम्नी नगरी में रूपवती नाम्नी अति सुन्दरी वेश्या होके जन्मी। तीर्थ तथा व्रत के प्रभाव से उसकी पूर्वजन्म की स्मृति नष्ट न हुई, सो एक समय प्रसङ्ग पड़ने से उसने चोडकर्ण नामक एक जापक द्विजन्मा को अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त कह सुनाया। वह ब्राह्मण भी परम निष्ठावान् जापक था, जप के प्रभाव से अपना चित्त उसने अपने वश में कर लिया था और इसी के भरोसे वह संसारबन्धन से मुक्त हुआ चाहता था। अस्तु वही उपदेश उस विप्र ने उस वेश्या को भी दिया, उसने भी शुद्ध मन से वैसाही किया इससे सद्गति प्राप्त की।

इतनी कथा सुनाय विजितासु मुनि बोले कि राजन्! इस प्रकार जो जिस भावना में प्राण त्याग करता है उसी में जाकर उसको जन्म लेना पड़ता है।

इसके उपरान्त विचित्रकथ बोला कि राजकुमार! तत्पश्चात् मुनि विजितासु ने राजा पुष्कराक्ष को स्नानादि की आज्ञा दी और आप भी मध्याह्नकालिक हव-नादि कार्य्य सम्पन्न किये।

उधर राजा पुष्कराक्ष बन नदी के किनारे गये तो देखते क्या हैं कि विनयवती फूल चुन रही है, उसके शरीर की ऐसी कान्ति है मानों प्रभाकर की प्रभा, जो कि इस अदृष्टपूर्व गहन बन में कौतुक के अर्थ आयी हो। यह इधर अपने मन में तर्क करही रहे थे कि भगवान् यह कौन है कि इसी अवसर में वह बैठकर अपनी विश्वस्त सखी से इस प्रकार कहने लगी—"हे सखी! जो विद्याधर कि मुझे पहले बलपूर्वक हरा चाहता था वह आज शापमुक्त होके यहां आया था और मुझ से कह गया है कि अब तुम अपने पति को पाओगी।" इस प्रकार उसका कहना सुन वह सखी बोली, "अरी यह बात सत्य है, आज प्रातःकाल की बात है कि मेरे साम्हनेही विजितासु मुनि ने मुञ्जकेश नामक अपने शिष्य को यह आज्ञा दी कि जाकर तारावली और रङ्कमाली को झटपट यहां बुला ला, उनसे कहना कि तुम्हारी दुहिता विनयवती का विवाह आज राजा पुष्कराक्ष से यहां होगा, सो तुम दोनों झटपट चलो। गुरु की ऐसी आज्ञा पाय, "बहुत अच्छा," इतना कह

मुञ्जकेश चला गया। सो आओ आली! हम भी अब आश्रम को चलें। इस प्रकार उसको बात सुन विनयवती उसके साथ चली गयी। पुष्कराच्च दूर से छिपे हुए सब सुन रहे थे। कामाग्निसन्ताप से जल तो रहेही थे सो स्नान कर वह भी विजितासु मुनि के आश्रम को लौट आये।

उधर से तारावली और रङ्कुमाली भी आ पहुँचे, राजा ने उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने उनको आशीर्वाद दिया। सब तपस्वी वहां एकत्रित हो गये; वेदी निर्मित की गयी, जिस पर मूर्त्तिमान् वह्निस्वरूप स्वयं मुनि विजितासु विराजमान हुए। तत्पश्चात् रंकुमाली ने विधिपूर्वक विनयवती का दान राजा पुष्कराच्च के हाथ में कर दिया, यौतुक में उन्होंने आकाशगामी एक दिव्य रथ दिया। विजितासु महा मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि राजन्! तुम इस विनयवती के साथ चतुःसमुद्रान्त पृथ्वी का शासन करो। इसके उपरान्त राजा महामुनि की आज्ञा से अपनी नववधू विनयवती के साथ उस गगनगामी दिव्य रथ पर आरूढ़ हुए और वह विमान एक च्चण में समुद्र के इस पार आ गया; राजा पुष्कराच्च बात की बात में अपने नगर में आ विराजे; नवीन चन्द्रतुल्य उनको देखकर प्रजाओं के नेत्र प्रफुल्लित हुए।

सोरठा।

तिहि रथ के परभाव, जीति धरनि साम्राज्य लहि।
विनयवती सँग राव, विविध भोग भोगन लगे ॥

वसन्ततिलक।

या भांति कैसहु सुदुष्कर कार्य्य होवै।
देवप्रसाद करि शीघ्रहिँ सिद्ध होवै ॥
सो, स्वप्न दृष्ट गिरिजापति के प्रसादात्। (१)
ह्वैहै सुसिद्ध तुम्हरो अभिलाष देव ॥ १ ॥
इत्थं (२) विचित्रकथ वर्णित (३) अद्भुताख्या। (४)

---

(१) प्रसाद से, प्रभाव से। (२) इस प्रकार।
(३) विचित्रकथ नामक मन्त्री से वर्णन की गई।

श्रुत्वा (५) शशाङ्कवतिलाभ विषै समुत्सुक ॥
निश्चय नृपात्मज कियो जु मृगाङ्कदत्त ।
जानौ अमात्यसँग उज्जयिनीपुरी में ॥ २ ॥

तीसरा तरङ्ग।

इस प्रकार मृगाङ्कदत्त वेताल से वर्णित कर्मसेन की दुहिता शशाङ्कवती को प्राप्ति की इच्छा से मन्त्रियों से मन्त्रणा करते रहे अन्त में यह स्थिर हुआ कि योगी संन्यासी तथा कापालिक के भेष में चुपचाप नगर से निकलकर उज्जयिनी को चलना। इस प्रकार जब विचार पक्का हो गया तब राजपुत्र ने अपने मन्त्री भीमपराक्रम को यह आदेश दिया कि जाओ तुम सोंटा कपाल इत्यादि सामग्री जुटाओ। स्वामी की आज्ञा पाय भीमपराक्रम ने अपने घर में सब सामग्री इकट्ठी कियी, यह बात भेदिये के द्वारा मृगाङ्कदत्त के पिता के प्रधान मन्त्री को विदित हो गयी। उसी समय एक और घटना हो गयी कि मृगाङ्कदत्त अपने प्रासाद पर टहल रहे थे सो उन्होंने पान की पीक फेंकी, दैवात् नीचे उसी मार्ग से उनके पिता के वही प्रधान मन्त्री चले जा रहे थे सो वह पीक उनके सिर पर जा पड़ी। उन्होंने जान लिया कि मृगाङ्कदत्त ने मुझ पर पीक फेंकी है, इससे उनके हृदय में क्रोध का समावेश हो गया; उस समय तो उन्होंने कोप दबा रक्खा और जाकर स्नान कर डाला पर हृदय से वह न गया, उन्होंने स्थिर कर रक्खा कि कभी न कभी इसका पलटा अवश्य लेऊँगा।

अब ऐसा हुआ कि मृगाङ्कदत्त के पिता राजा अमरदत्त को दूसरेही दिन दैवात् विशूचिका रोग हो गया, बस प्रधान मन्त्री को अवसर मिल गया, उन्होंने एकान्त में महाराज से कहा कि यदि आप मुझे अभय दान दें तो मैं कुछ निवेदन करूँ; अभय पाकर उन्होंने निवेदन किया कि देव! आपके कुमार मृगाङ्कदत्त

(४) अद्भुत = विचित्र, आख्या = कथा, विचित्र कथा।
(५) सुनकर।

ने आपही के विरुद्ध भीमपराक्रम के घर में अभिचार करना आरम्भ कर दिया है बस उसी से महाराज पीड़ित हो गये हैं। मैंने चार के मुख से यह बात सुनी है, फिर उसका फल तो प्रत्यक्षही दृष्टिगोचर हो रहा है, और इस से बढ़कर क्या प्रमाण हो सकता है। अब आप उन्हें देह के रोग के समान देश से निकाल बाहर कीजिये। इतना सुनतेही महाराज का चित्त उद्भ्रान्त हो गया, उन्होंने उसी क्षण यह सब व्यापार देखने के हेतु अपने सेनापति को भीमपराक्रम के घर भेजा। सेनापति जाके देखे तो सचमुच केशकपालादि वहां विद्यमान हैं सो उसने लाकर सब महाराज को दिखा दिये। देखतेही महाराज क्रोध से जलजला उठे उन्होंने कहा कि यह मेरा पुत्र राज्य के लोभ से मेरेही विरुद्ध आचरण कर रहा है सो इस द्रोही को उसके मन्त्रियों के साथ आजही अभी निकाल बाहर करो। उन्होंने बिना विचारे क्रोध में आकर सेनापति को ऐसी आज्ञा दे दी और इसका टुक भी विचार न किया कि इसमें यथार्थ बात क्या है। ठीकही है जो प्रभु अपने मन्त्रियों का पूर्ण विश्वास करता है वह उनकी कुटिल गति नहीं समझ सकता। अस्तु सेनापति ने जाकर मृगाङ्कदत्त को राजाज्ञा कह सुनाई और उन्हें मन्त्री सहित नगर से बाहर निकलवाय दिया।

मृगाङ्कदत्त की राजलक्ष्मी छिन गयी इससे उन्हें कुछ भी विषाद न हुआ, वह प्रसन्न चित्त से विघ्नविदारण विनायक का अर्चन कर तथा मनही मन माता पिता को प्रणाम कर अयोध्या से निकल पड़े। जब कुछ दूर चले गये तब उन्होंने प्रचण्ड शक्ति प्रभृति अपने सहगामी दश मन्त्रियों से कहा कि किरातों का महान् अधीश्वर जो शक्तिरक्षित नामक है, वह ब्रह्मचारी तथा सब विद्याओं में कुशल है और वह मेरा बालपन का मित्र भी है। एक समय उसका पिता युद्ध में बन्दी किया गया तब उसने अपनी पलटे अपने पुत्र शक्तिरक्षित को अपना प्रतिनिधि करके मेरे पिता को सौंप दिया था। जब शक्तिरक्षित का पिता मर गया तब उसके गोतियों ने सिर उठाया उस समय पिता से कह सुनकर मैंने उसे उसके राज्यासन पर अभिषिक्त करवा दिया था और अपनी सेना के द्वारा उसका आधिपत्य स्थापित करा दिया था, सो हमलोग पहिले उस मित्र के समीप चलें फिर वहां से शशाङ्कवती के लिये उज्जयिनी चलेंगे। ऐसा उनका कथन सुन मन्त्रियों ने कहा, "जी हां वहीं चलना चाहिये।"

अब मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों के साथ चलते चलते एक महा घोर मरुस्थल में पहुँचे जहां न पेड़ न पालव न कोई जलाशय; इतने में सन्ध्या का आगमन भी हो चला; अब लौं ऐसा स्थल या जलाशय न मिला जहां वे लोग उतरकर विश्राम करते। बहुत दूर जाने पर बड़ी कठिनता से एक सरोवर मिला जिसके किनारे एक पेड़ लगा था सो भी ठूंठा था। अस्तु सब लोग वहीं उतरे, और सन्ध्यावन्दन कर उसी सरोवर का जल पीया, इसके उपरान्त सब लोग उसी ठूंठे वृक्ष के नीचे सो रहे। रात शुक्लपक्ष की थी, जब चन्द्रिका छिटकी और स्वच्छ प्रकाश चहुँओर हो गया अकस्मात् मृगाङ्कदत्त की निद्रा टूट गयी तो क्या देखते हैं कि वह सूखा वृक्ष हरा भरा हो गया है, पत्ते लग आये हैं उनके उपरान्त फूल भी लगे हैं तत्पश्चात् फलों से वह वृक्ष लद गया। फल लगे और तुरन्तही पककर टपकने भी लगे यह अद्भुत व्यापार देखकर राजकुमार मृगाङ्कदत्त को बड़ाही आश्चर्य हुआ सो उन्होंने अपने मन्त्रियों को भी जगाकर वह कौतुक दिखाया। वे सब भी देखकर अति विस्मित हुए, भूखे तो थेही सभों ने उस वृक्ष के मीठे मीठे फल पेट भर खाये। जब वे लोग फल खा पी कर तृप्त हो गये तब उनके देखतेही देखते वह वृक्ष क्षण भर में एक विप्रकुमार हो गया; यह देख उनके विस्मय का पार न रहा; तब मृगाङ्कदत्त ने उस ब्राह्मणतनय से पूछा कि कहिये तो सही यह व्यापार क्या है? आप कौन हैं? सब समझा के कहिये। इस प्रकार पूछा जाकर वह ब्राह्मणकुमार अपना वृत्तान्त सुनाने लगा।

अयोध्यापुरी में दमधि नामक कोई एक द्विजोत्तम रहते थे, उन्हीं का मैं पुत्र हूं नाम मेरा श्रुतधि है। एक समय की बात है कि उस देश में बड़ा भारी अकाल पड़ा, उसी समय दैवात् मेरी माता का देहान्त हो गया। इससे मेरे पिता का चित्त और भी उद्विग्न हुआ सो वह मुझे ले वहां से निकल चले। चलते २ यहां पहुँचे। भूख प्यास से हम दोनों लस्तपस्त हो गये थे, उस समय किसी ने आकर मेरे पिता को पांच फल दिये; पिता ने तीन फल तो मुझे दिये और दो अपने लिये रख छोड़े। जब वह सरोवर में नहाने गये तब मैं वे दोनों फल भी खा गया और चुपचाप बनावटी नींद कर सो गया। जब वह स्नान कर के आये तो क्या देखते हैं कि मैं सो रहा हूं। पिता समझ गये कि यह मेरा बहाना मात्र है

सो उन्होंने शाप दिया कि जा मूर्ख ! तू बहाना कर काठ के समान पड़ा है इससे तू इसी सरोवर के तट पर ठूंठा पेड़ हो जा । उजेली रात में तुझमें फूल फल लगेंगे तब किसी समय तू अतिथियों को तृप्त करेगा, तब इस शाप से छूटेगा । इस प्रकार पिता का शाप पाकर मैं उसी क्षण एक शुष्क पादप हो गया; आप लोगों ने आज मेरा फल खाया है इससे बहुत काल के उपरान्त आज मैं उस शाप से मुक्त हुआ हूं ।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय श्रुतधि ने मृगाङ्कदत्त से उनका वृत्तान्त पूछा तब उन्होंने अपना वृत्तान्त आद्यन्त कह सुनाया । इसके उपरान्त श्रुतधि फिर बोला कि राजकुमार ! मेरे आगे पीछे कोई हैही नहीं सो यदि आप मुझे अपने संग ले चलते तो बहुत अच्छा होता । ब्राह्मण नीति में बड़ा कुशल था सो मृगाङ्कदत्त ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

जब रात बीती और प्रभात हुआ तब मृगाङ्कदत्त अपने सचिवों तथा श्रुतधि ब्राह्मण के साथ वहां से चले । चलते २ सब लोग करिमखिडत नामक बनमें पहुँचे वहां उन्हें लम्बे २ केशवाले बड़े भयङ्कर पांच पुरुष मिले, उन्हें देख सब लोगों को बड़ाही आश्चर्य्य हुआ । इतने में पांचो जन मृगाङ्कदत्त के सम्मुख आकर इस प्रकार कहने लगे—

राजन् ! हमलोगोंका जन्म काशीपुरी में हुआ, हमलोग ब्राह्मण हैं पर व्यापार हमलोगों का धेनुओं के द्वारा होता है; अर्थात् हमलोग दूध बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं । एक समय अनावृष्टि हुई इससे चारे का बड़ा टोटा पड़ा, सो हमलोग अपना देश छोड़ अपनी गौओं को लेकर इस बन में चले आये यहां तृण का बड़ा सुभीता है । यहां हमलोगों को एक बावड़ी मिली है जिसका जल बड़ा रसायन है, कारण यह है कि इसके किनारे त्रिफले (१) के पेड़ लगे हैं, उनके फल उसमें गिरते हैं । हमलोग गौओं का दूध और इस सरोवर का रसायन जल पीते हैं; सो इस निर्जन बन में रहते हमलोगों को पांच सौ वर्ष हो गये, इसीसे हमलोग ऐसे बने हुए हैं । दैवात् आज आप लोग हमारे यहां अतिथि प्राप्त हुए सो देव ! चलिये हमारा आश्रम पावन कीजिये ।

(१) आंवला, हर्रा और बहेरा, इन तीनों का समुदाय त्रिफला कहलाता है ।

इस प्रकार उनकी अभ्यर्थना स्वीकार कर मृगाङ्कदत्त अपने अनुचरों के साथ उनके आश्रम को गये; वहां चीर भोजन कर सब लोगों ने वह दिन वहीं बिताया। दूसरे दिन प्रात:काल होने पर सब लोग वहां से चले और अनेक प्रकार के कौतुक देखते २ किरातों के देश में पहुँचे, तब राजकुमार मृगाङ्कदत्त ने श्रुतधि को किरातराज शक्तिरचित के निकट अपने आगमन के सूचनार्थ भेजा। किरातराज यह सुनतेही उनकी अगवानी को चले और बड़ी नम्रता से उनका स्वागत कर मन्त्रियों के सहित मृगाङ्कदत्त को अपने नगर में ले गये। वहां पहुंच राजकुमार मृगाङ्कदत्त ने अपने आने का कारण कह सुनाया। किराताधिपति ने उनका बड़ा सत्कार किया। नित्य नये २ उपचार होते। इस प्रकार अपने मित्र से सत्कृत हो मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों सहित कुछ दिन वहां रहे। इसी अवसर में उन्होंने किरातराज शक्तिरचित से यह प्रबन्ध करा लिया कि जब आवश्यकता पड़े तब सहायता करें। किरातराज प्रस्तुत रहे कि जब काम पड़े मैं सहायार्थ उद्यत हूं। इसके उपरान्त किरातराज की आज्ञा लेकर मृगाङ्कदत्त अपने बारह साथियों सहित (१) वहां से शुभ मुहूर्त में उज्जयिनी की ओर चले क्योंकि उनका मन तो शशाङ्कवती में लगा था भला वह कब कहीं रुक सकते थे।

चलते २ वह अपने अनुयायिवर्ग के साथ एक सूनसान अटवी में पहुंचे, वहां क्या देखते हैं कि एक वृक्ष के नीचे भस्म रमाये जटा और अजिनधारी एक तपस्वी बैठे हैं। तब मृगाङ्कदत्त ने अपने अनुयायियों के साथ उनके समक्ष जाकर उनसे पूछा—"भगवन्! आप इस निर्जन वन में अकेले क्यों रहते हैं?" तपस्वी बोले—"राजकुमार! शुद्धकीर्त्ति नामक महागुरु का शिष्य हूं, मन्त्रों के ओघ (२) मुझे सिद्ध हैं। एक समय दैवात् एक क्षत्रियकुमार मिला, उसके लक्षण बड़े शुभ दीख पड़े तो मेरे मनमें यह आया कि इस पर आवेश कर कुछ प्रश्न करूँ। सो मैंने उस पर आवेश किया और उससे पूछा। मेरे पूछने पर उस क्षत्रिय-बालक ने नाना प्रकार के सिद्धौषधियों के क्षेत्रों का उल्लेख कर पश्चात् यह कहा कि यहां से उत्तर की ओर विन्ध्याटवी में एक शिंशिपा तरु (३) है जिसके नीचे नागराज का

(१) राजकुमार मृगाङ्कदत्त, दश मन्त्री, एक श्रुतधि ब्राह्मण, ये बारह हुए।
(२) समूह, अनेक मन्त्र। (३) अशोक वृक्ष।

एक महान् भवन है, कि मध्याह्न के समय वहां का जल आर्द्र धूलि से प्रच्छन्न(१) दीख पड़ता है वहां हंस मिथुन और जलपक्षी क्रीड़ा करते रहते हैं। वहां पारावताख्य श्रेष्ठ नाग रहता है जो बड़ा बलवान् है, देवासुरसंग्राम में उसे एक अति उत्तम खड्ग मिल गया था जिसका नाम वैदूर्यकान्ति है। जो मनुष्य वह खड्ग पा जावे वह सिद्धों का अधिपति हो जावे और उसका प्रभाव ऐसा है कि वह मनुष्य जहां कहीं चाहे विचरण करता रहे उसका पराभव कहीं होवेही नहीं । फिर एक बात यह है कि जब वीरों की सहायता मिले तो वह खड्ग पाया जा सकता है। जब वह बालक इतना कह चुका तब मैंने उस पर से आवेश उतार लिया और उसे विदा किया। सो राजन् ! मैं और सब कामों से विमुख हो गया, अब मेरी यही इच्छा हुई कि किसी न किसी प्रकार वह खड्ग प्राप्त करना, बस मैं सहायकों की खोज में निकला और पृथ्वीतल पर घूमता फिरा पर कोई भी सहायक न मिला, सो इसीसे खिन्न हो मैं यहां मरने आया हूं। उस तापस से इतना सुन मृगाङ्कदत्त बोले "महाराज ! आप चिन्ता न करें, अपने मन्त्रियों के सहित मैं आपका सहायक हूं।" मृगाङ्कदत्त का ऐसा कहना सुन वह तापस अति आनन्दित हुआ।

अब नागराज पर आक्रमण करने का उपक्रम होने लगा; तापस ने एक ऐसा लेप प्रस्तुत किया कि जिसे तलवे में लगाकर जहां चाहे तहां क्षण मात्र में पहुँच जावे। सो सब लोग अपने तलवों में वह लेप लगाय वहां से चले और क्षण भर में वहां जा पहुंचे जहां नागराज का भवन था । बताये हुए चिन्हों से निश्चय हो गया कि पारावताख्य नागराज का यही भवन है। तब उस तापस ने मन्त्र से सब दिशायें बांध दीं और रात्रि के समय मृगाङ्कदत्तादिकों को मन्त्र से अभिमन्त्रित कर एक स्थान में बैठा दिया । इसके उपरान्त अभिमन्त्रित सरसों छीट धूल दूर कर जल प्रकट किया। तत्पश्चात् वह तपस्वी बैठकर नागदमन (२) मन्त्रों से होम करने लगा। इतने में मेघादि अनेक उत्पात होने लगे उन्हें वह अपने मन्त्रों से दूर करता गया। तत्पश्चात् उस शिंशिपा तरु से एक दिव्य स्त्री निकली जो

(१) ढँका हुआ। (२) जिन मन्त्रों से सापों का दमन हो जाता है और वे विवश हो जाते हैं।

मोहन मन्त्र पढ़ती जाती थी । यथास्थान उसके अङ्ग पर दिव्य आभरण अपूर्व शोभा दे रहे थे जिनके रव से किसका मन न मोहित हो जायगा। देखतेही देखते वह विधुवदनी उस तापस के समीप जा पहुंची, जिसके कटाक्ष से उस तपस्वी का मन क्षत हो गया। तपस्वी का धैर्य जाता रहा, इतनाही नहीं उस घटस्तनी ने चटपट आगे बढ़ उसे आलिङ्गन कर लिया इससे उसका रहा सहा जो मन्त्र था सो भी भूल गया। इसी अवसर में उस प्रमदारत्न ने उसके हाथ से होम का पात्र गिरा दिया । अब अन्तर पाय पारावताख्य नाग कल्पान्त मेघ के समान अपने भवन से निकला, इतने में वह दिव्य नारी लोप हो गयी। उस नागराज के नेत्रों से ऐसी जलजलाती घोर ज्वाला निकली और उसका गर्जन (१) ऐसा दारुण हुआ कि तापस का हृदय फट गया और वह ठांवही ठंढा हो गया। तापस के मर जाने उस पर उस नागराजका कोप कुछ शान्त हुआ, तब उसने उसके सहायक मृगाङ्कदत्त आदिकों को इस प्रकार शाप दिया—"तुम लोगों ने इसका साथ दे व्यर्थ मुझे दुःख पहुंचाया है इससे कुछ काल के लिये तुम लोगों का वियोग होगा।" इस प्रकार शाप देकर जब नागराज अन्तर्धान हो गये तब उसी क्षण उन लोगों के साम्हने अन्धकार छाय गया और ऐसी कुछ देवमाया व्याप गयी कि एक दूसरे को न देख ही सके न शब्द ही सुन सके। यों उस शाप के प्रभाव से सब लोग तितर बितर हो गये और एक दूसरे को ढूंढ़ते भटकते फिरने लगे। अब मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों से वियुक्त हो अरण्य में इधर उधर घूमते रहे इतने में वह मायारूपी रात्रि बीत गयी।

इस प्रकार भटकते फिरते दो तीन मास बीत गये, एक दिन अकस्मात् श्रुतधि विप्र खोजता खाजता मृगाङ्कदत्त को आ मिला । उन्होंने बड़ा आदर कर उससे अपने मन्त्रियों की वार्त्ता पूछी, इसपर वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और आंखों में आंसू भर, उनको समाश्वासन दे इस प्रकार कहने लगा—"प्रभो! मैंने उन लोगों को देखा तो नहीं है, परन्तु इतना तो मैं जानता हूं कि वे उज्जयिनी पुरी को जायँगे क्योंकि अब तो वहीं जाना है, सो महाराज! उसी ओर आप चलें वहीं सबकी भेंट हो जावेगी।" इस प्रकार उसका कथन सुन मृगाङ्कदत्त उसके साथ धीरे धीरे उज्जयिनी की ओर चले।

(१) फुफकार।

कुछ दिवस लों वे दोनों जन चले गये कि एक दिन मृगाङ्कदत्त का मन्त्री विमलबुद्धि अकस्मात् मिल गया, उसे देख उनके हर्ष का ठिकाना न रहा, आंखों में आंसू भर आये। मन्त्री विमलबुद्धि ने उन्हें प्रणाम किया, मृगाङ्कदत्त ने उसे गले लगाया; पश्चात् बैठाकर अपर मन्त्रियों का वृत्तान्त पूछा। इस प्रकार भृत्यवत्सल राजकुमार मृगाङ्कदत्त का प्रश्न सुन विमलबुद्धि बोला - "देव! नागराजके शाप से न जाने कौन कहाँ गया, परन्तु इतना तो मैं जानता हूं कि आप सभी को अवश्य पावेंगे; कहिये, क्यों, तो इसका मैं कारण बतलाता हूं, ध्यान देकर सुनिये।"

जब कि नाग का शाप हुआ उसी समय मैं आपसे अलग हो गया, मैं भटकता भटकता बड़ी दूर निकल गया; चलता चलता अरण्य के पूर्व भाग में जा रहा तहां मैं ऐसा थक गया था कि एक पग चलना कठिन हो गया। इतनेमें कोई साधु वहां आ निकले, मुझे क्लान्त देख उन्हें दया आई सो वह ब्रह्मदण्डी मुझे एक महर्षि के आश्रम में ले गये। महर्षि ने मुझे फलमूल खाने को दिये उन्हें खाकर जब मैंने जल पीया तब मानों मेरे प्राण बहुरे, सब थकावट दूर हो गयी। आश्रम से थोड़ीही दूर पर मैं टहल रहा था कि एक बड़ी भारी गुफा दृष्टि में आई, कौतुक ही से मैं उसके भीतर घुस गया, वहां जाकर क्या देखता हूं कि एक मणिमयमन्दिर है सो झरोखों से मैं झांकने लगा तो क्या देखता हूं कि भीतर बैठी हुई एक स्त्री एक चक्र चला रही है (१) जिस पर बहुत से भौंरे बैठे हैं; इतने में वे बैठे हुए भौंरे कुछ तो एक बैल बन गये और कुछ एक गदहा, ये दोनों दूध और लहू के फेन वमन करने लगे उन्हें चाटकर वे उन्हीं के रंग के अनुसार सित और असित (२) हो गये. इसके उपरान्त ही वे मकड़े बन गये। तब उन दोरंगी मकड़ों ने अपनी विष्ठा से नाना प्रकार के जाल लगाये जिनमें कुछ में तो अतिं सुन्दर फल लगे और कुछ में विषैले। फिर उन्हीं जालों में वे सुखपूर्वक रहने लगे, इतने में एक श्वेत और एक कृष्ण मुख वाले सर्प ने आकर उन्हें डँस लिया। तब उस नारी ने उन्हें उठा उठा अनेक घड़ों में भर उनके मुंह बन्द कर बांध दिये परन्तु वे बन्धन काट २ फिर निकल आये और अपने अपने

(१) चरखा कात रही है—ऐसा अर्थ संगत प्रतीत होता है।
(२) श्वेत और कृष्ण।

जालों पर जा लगी। जो कि विष फलवाले जालों पर बैठे थे वे विष की उद्वेग से रटने (रोने) लगे, उन्हें देख दूसरे मकड़े भी रोने लगे। वहां एक दयालु तपस्वी ध्यानमग्न थे उनके क्रन्दन से उनका ध्यान टूट गया सो उन्होंने अपने भाल से अग्नि की ज्वालायें निकालीं जिनसे सब जाल जल गये। इतने में सब मकड़े एक सूंगे के डंडे में घुस गये. और शिरे पर जो ज्योति थी उसमें लीन हो गये। इसके उपरान्त वह स्त्री अपने चरखे और बैल तथा गदहे के साथ कहीं चली गयी। यह आश्चर्य देख मैं अति विस्मित हुआ और वहीं टहलने लगा।

टहलते २ मुझे एक अति रम्य पुष्करिणी दिखाई पड़ी जिसमें कमल लहरा रहे थे जिन पर भ्रमर गुंजार रहे थे जिनसे यह भासता था कि वह कलनादिनी मुझे बुला रही है कि यहां आकर निरीक्षण करो। उसके तीर पर बैठकर मैं निर्झरिणी की शोभा निरखने लगा तो क्या देखता हूं कि जल के भीतर एक वन है, उस वन में एक लुब्धक ने एक सिंहपोत (१) पकड़ा जिसके दश बाहु थे, उस पोत को उसने बढ़ाया, पश्चात् यह कहकर कि यह नम्र नहीं है, क्रोध में आकर उसे वन से निकाल दिया। उस सिंह को दूसरे वन में एक सिंहनी का शब्द सुन पड़ा सो वह उसकी ओर चला, इतने में एक अन्धड़ जो उठा उससे उसके दसो बाहु छिन्न भिन्न हो गये। तब एक तोन्देल पुरुष आया, उसने सब भुज जोड़ दिये तब वह उस सिंहनी के लिये उस वन की ओर चला गया। वहां उस वन में उसे बहुत क्लेश उठाने पड़े अन्ततोगत्वा उसन उस सिंहनी को पाया। पश्चात् उस सिंहनी के साथ वह सिंह अपने वन में लौट आया भार्या के सहित उस करिमर्दन को आया देख वह लुब्धक उसे कानन सौंप आप वहां से चला गया।

इतना सुनाय विमलबुद्धि बोला कि महाराज! यह व्यापार देखकर भी मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ सो मैंने आश्रम में जाकर ब्रह्मदण्डी महाराज को उन दोनों आश्चर्यों का वृत्तान्त कह सुनाया। मुनि त्रिकालज्ञ थे, उन्होंने अपने ज्ञानबल से सब कुछ जान लिया। तब उन्होंने मुझसे कहा, "तुम धन्य हो कि परमेश्वर ने अपनी प्रसन्नता से तुम्हें यह सब दिखाया है; अच्छा सुनो अब मैं तुमको इनका भेद बताता हूं।"

(१) सिंह का बच्चा।

वहां जो स्त्री तुमने देखी सो तो माया है, जो चक्र वह घुमाती थी सो संसार चक्र है, भौंरे सब जीव जन्तु हैं । वृष और गर्दभ जो थे सो धर्म और अधर्म हैं, उनके पृथक् २ वमन जो दूध और लोहरूप थे सो पुण्य और पाप हैं । जिसका सेवन जिन्होंने किया उसी के अनुसार श्वेत और कल्मष (१) हुए, विष्ठा से जो जाल निर्माण देखा वह अपने वीर्य से सुसन्तान और दुःसन्तान की उत्पत्ति है, जिनके फल सुख और दुःख हैं जैसे तुमने सुपुष्प और विष पुष्प देखे थे । अपनी अपनी वासना के अनुसार जाल में पड़े हुए मकड़ों को जो वह दुमुंहा सर्प डंस गया सो करालकाल है जिसके मुख दो शुभ और अशुभ हैं । पुनः स्त्री ने जो अनेक घड़ों में उन्हें भरा इसका अर्थ यह है मायाकृत नाना योनि में उनके जन्म होते हैं और वे तुल्य २ श्वेत और कृष्ण आकृतियों में पड़ते हैं और पुत्र कलत्रादि बन्धनों में फँसकर पचते हैं । पश्चात् यह जो देखा कि कृष्ण मकड़े विषादित हो रोने लगे सो दुःखी जीव भगवान् की शरण पुकारते हैं, उनको देखादेखी श्वेत मकड़े जो रोये सो सुखी जीवों को वैराग्य का प्रादुर्भाव है सो वे भी परमात्मा की शरण में पड़ उन्हीं को पुकार रहे हैं । तब तापस का जागना जो है सो ज्ञान का प्रादुर्भाव उसके उदय होतेही सब पाश (बन्धन) कट जाते हैं सोही उन जालों का जलना है । विद्रुमदण्ड (२) आदित्य मण्डल है, उसमें ऊपर शिरे पर जो ज्योति है सो ऊर्द्धस्थान परमधाम है वहीं सब जीव अन्त में पहुँच जाते हैं । जब जीव परमपद को प्राप्त हो जाते हैं तब फिर इस संसार में आना कहां, और जब यहां आना ही नहीं तो फिर धर्म्म और अधर्म कैसे रहें सोही प्रकृति देवी संसाररूपी चक्र बटोर धर्म और अधर्म्म के साथ लुप्त हो गयीं, यही तो वह है जो स्त्री अपना चक्र ले वृषभ और गर्दभ के साथ न जाने कहां चली गयी । इस प्रकार शुक्ल और कृष्ण (३) जन्तु अपने अपने कर्मों के अनुसार संसार में भ्रमते रहते हैं अन्त में ईश्वर की आराधनाही से इस चक्र से उनकी मुक्ति होती है ।

इस प्रकार आध्यात्मिक तत्वार्थ सुनाय मुनि फिर बोले कि पुत्र ! यह ईश्वर ने

(१) काला = पाप, खोटाई इत्यादि ।

(२) मूंगे का डंडा । (३) उत्तम और निकृष्ट कर्म करनेवाले ।

तुम्हारे मोह के शान्त्यर्थ तुम्हें दिखाया है। अच्छा सुनो अब तुमको इसका अर्थ सुनाता हूं जो कुछ कि तुमने नदी के जल में देखा है।

सच पूछो तो यह मृगाङ्कदत्त का भावी अर्थ जल में प्रतिबिम्बित करके भगवान् ने तुमको दिखाया है। मृगाङ्कदत्त जो हैं सो मृगेन्द्रपोत तुल्य हैं, उनके दश भुज इनके दशों मन्त्री हैं। वन जो है सो देश है, लुब्धक तुल्य इनके पिता हैं जिन्होंने इन्हें देश से निकाल दिया। अन्य वन का अर्थ है अवन्तिदेश, तहां जो सिंहनी सो शशाङ्कवती है तिसका शब्द (१) सुन यह चल पड़े। बीच में प्रचण्ड वातरूपी नागपाश से मन्त्रिरूपी भुज कट के छिन्न भिन्न हो गये। तोन्देल पुरुष विनायक हैं उन्होंने सब अमात्यों को मिलाकर उन्हें फिर जैसे का तैसा बना दिया। फिर वह बहुतेरे क्लेश उठाय सिंहीरूपिणी शशाङ्कवती को लेकर अपने देश में आये। तब विद्युतआरातिवारण मृगाङ्कदत्तरूपी सिंह को भार्या समेत समीप आया देख, लुब्धकरूपी उनके पिता वनरूपी स्वदेश और अपना सर्वस्व उन्हें दे तपोवन को चले गये। सो यह भावीफल भगवान् ने तुम्हें दिखाया है; सो तुम्हारे प्रभु तुम सभों को, और भार्य्या को प्राप्त कर अन्त में राज्य भी पावेंगे।

इस प्रकार अपना दृष्ट वृत्तान्त सुनाय, विमलबुद्धि बोला—"देव! इतना जब मैंने मुनिवर से सुना तब मुझको धैर्य्य हुआ, और मैं वहां से चला, और क्रमानुसार यहां आपको आ मिला इससे मैं साहसपूर्वक कहता हूं कि आप प्रचण्डशक्ति इत्यादि मन्त्रियों को अवश्य पावेंगे, और प्रस्थानकाल में आपने जो विघ्नेश्वर की पूजा की थी उन्हीं के प्रभाव से आपका अभीष्ट भी निश्चय सिद्ध होगा।"

दोहा।

विमलबुद्धि वर्णित इती, सुनिकै अद्भुत बात॥
छन, मृगाङ्कदत नृपतनय, भे अति हर्षित गात॥ १॥

सोरठा।

पुनि विचारि ता संग, अपर सचिव के लाभ हित॥
निजकारज परसंग, चले अवन्तीपुरि विषै॥ १॥

---

(१) उपाख्यान—वर्णन।

चौथा तरङ्ग ।

इधर राजकुमार मृगाङ्कदत्त श्रुतधि और विमलबुद्धि के साथ शशाङ्कवती के हेतु उज्जयिनी को चले जाते थे कि मार्ग में नर्मदा नदी पड़ी जिसके तरंग अति तरल थे, और जो फेन के कारण पाण्डुर वर्ण दीख पड़ती थी। उस तरङ्गिणी का वेग ऐसा तीखा था कि कुछ कहा नहीं जाता उससे यह भावना होती थी कि मानों वह, इस महा हर्ष से कि, मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्री से मिल गये, नृत्य करती हो। अस्तु, मृगाङ्कदत्त ने विचारा कि इस पुण्यसलिला सरित्प्रवरा में स्नान कर लेना चाहिये सो वह स्नान करने को उतरे; इसी अवसर में मायावटु नाम शबरों का अधिपति भी वहीं स्नान करने आया, ज्योंही कि वह नहाने के लिये नदी में हला कि उस मेंसे एकसाथ तीन जलमानुषों ने निकलकर उस भिल्ल को पकड़ लिया, यह देखते ही उसके साथ के सब सेवक भय के मारे भाग गये । किन्तु दयामय मृगाङ्कदत्त चट तलवार खींच भीतर धँसे, उन्होंने उन जलमानुषों को मारकर विचारे भिल्लेन्द्र को छुड़ा लिया । भिल्लराज के प्राण बच गये, उन ग्राहों से छुटकारा पाय वह जल के (से) बाहर आया और अपने प्राणदाता राजपुत्र के चरणों पर गिर उनसे इस प्रकार पूछने लगा—"विधाता से मेरे प्राण बचाने के लिये आप यहां लाये गये हैं, मुझसे कहो तो सही कि किस पुण्यात्मा पिता का वंश आपने अलङ्कृत किया है ? पुण्य का कटाक्ष किस २ देश पर हुआ है जहां जहां आप जायँगे।" इस प्रकार उस शबरराज के प्रश्न सुन श्रुतधि ने मृगाङ्कदत्त का वृत्तान्त आद्यन्त कह सुनाया। इस प्रकार उनका वृत्तान्त सुन वह शबरेन्द्र और भी प्रणत हुआ और पुनः बोला—"तो आपके इस अभिवाञ्छित अर्थ में, जो कि भगवान् के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है, मैं आपका सहायक हूं, और मेरा सखा मातङ्गपति दुर्गपिशाच इसमें मेरा साथ देगा। सो हे प्रभो ! चलकर मुझ भृत्य का घर पावन कीजिये।" इस प्रकार प्रीतिपूर्वक वचनों से अनुनय कर शबरेन्द्र मृगाङ्कदत्त को अपने गांव को ले गया । तहां पल्ली के समस्त लोगों ने राजकुमार की सविशेष पूजा की और भिल्लाधीश की ओर से इनके विविध उपचार होने लगे। उसी समय मतङ्गराज भी वहां आया, जब उसे यह विदित हुआ कि इन्हीं के प्रताप से माया

बटु के प्राण बचे तब वह भी अति प्रसन्न हो अपने मित्र के प्राण बचानेहारे मृ-गाङ्कदत्त के चरणों पर गिरा। तदुपरान्त भिल्लेन्द्र मायाबटु के अनुरोध से मृगाङ्क-दत्त कुछ दिन वहां रहे।

एक समय शबरेश्वर मृगाङ्कदत्त के समक्ष अपने प्रतीहार चण्डकेतु के साथ जूआ खेलने लगा, वह खेलही रहा था कि इतने में आकाश में मेघ घिर आये और घोर गर्जन होने लगा। उनका गर्जन सुन घर के मयूर नृत्य करने लगे उनके नृत्य दर्शनार्थ मायाबटु खेल छोड़ उठ खड़ा हुआ। प्रतीहार तो बड़ा द्यूतरसिक था, उससे खेल कब छोड़ा जाय, सो उसने अपने राजा से कहा—"राजन्! इनका नृत्य देखकर क्या करेंगे, ये मयूर तो भली भाँति ताण्डव (१) नहीं जानते हैं। मेरे घर में जो मयूर हैं वैसा मोर भूतल पर कहीं हैही नहीं, यदि आप उनका नृत्य देखा चाहें तो मैं कल प्रात:काल लाकर आपको उसका अनुपम ताण्डव दिखा दूंगा।" यह सुन शबरेश्वर बोला—"अच्छा तुम अवश्य मुझे उसका नाच दिखाओ।" इतना प्रतीहार से कहकर राजा ने जाकर अपना दिनकृत्य सम्पादन किया। मृगाङ्कदत्त भी यह सब सुन अपने मन्त्रियों के साथ वहां से उठे और जाकर सब लोगों ने स्नान भोजन आदि काम निपटाये।

जब रात हुई और घोर अन्धकार छाय गया तब राजकुमार उठे और समस्त शरीर में कस्तूरी लगाय, नीले कपड़े पहिन ओढ़. हाथ में खड्ग ले अनुगामियों को सोते छोड़कर घर से अकेले निकले कि चलें रात्रि में टुक घूमघाम कर देख सुन आवें कि इस नगर की क्या दशा है और यहां क्या विचित्रता है, और यदि अवसर मिल जाय तो वीरता का परिचय भी मिल जाय। इधर से यह चले जाते थे कि उधर से एक दूसरा पुरुष चला आया, अन्धकार में देखादेखी तो हुई नहीं बस दोनों के कन्धे टकरा गये। टक्कर लगतेही राजकुमार को बड़ा क्रोध आया उन्होंने उस पुरुष को ललकारा कि आ, यदि कुछ बल रखता हो तो मुझसे लड़ ले। वह एक प्रौढ़ पुरुष था, समयोचित बोला—"भाई! विना विचारे क्यों तन्नाते हो? यदि विचार के देखो तो निशापति का दोष है कि उन्होंने रात्रि प्रकाशित क्यों न कीयो; अथवा विधाता का दोष है कि उन्होंने उन्हें पूर्ण अधिकार ही न

(१) मयूरों का नृत्य।

दिया जिससे इस प्रकार अन्धकार में अकारण वैर हो जाया करते हैं । इस नाग-रिक उक्ति से मृगाङ्कदत्त अति तुष्ट हुए, बोले भाई ! तुम्हारा कहना ठीक है; अच्छा अब यह तो बताओ कि तुम हो कौन ? उसने उत्तर दिया कि मैं चोर हूं, इसपर झूठमूठ वह बोल उठे—भाई हाथ दो, तुम तो मेरे साथी हो; चलो अच्छा साथ मिल गया ।"

मृगाङ्कदत्त तो जिज्ञासु थेही, सो वह उससे सख्य करके उसी के साथ चले । चलते चलते एक अगाड़ पर पहुँचे जिसका मुंह घास फूसों से ढँका था । उस पुरुष के साथ वह उसमें पैठे और सुरंग से होते हुए उस मायाबटु राजा के अन्तःपुर में जा पहुँचे । वहां दीपक के प्रकाश में उस पुरुष को देखकर वह पहिचान गये कि अरे यह तो वही चण्डकेतु प्रतीहार है, चोर और कुछ नहीं है, परन्तु प्रतीहार उन्हें न पहिचान सका क्योंकि एक तो वह एक कोने में चुपचाप जाकर छिपके बैठे रहे थे जहां प्रकाश की बड़ी न्यूनता थी. दूसरे इनका वेष कुछ वह न था जो उसने देखा था तीसरे वह स्वयं राजपत्नी का जार था सो भला क्यों किसी को पहिचान सकता है ।

जिस समय कि वह उपपति पहुँचा राजमहिषी मञ्जुमती ने उठकर उसे गले लगा लिया पश्चात् पर्यङ्क पर बैठाकर उससे पूछा—"कहो प्यारे ! यह तो आज एक नयी बात हुई है, आज किस पुरुष को साथ ले आये हो ?" उसने उत्तर दिया—"प्यारी कुछ चिन्ता मत करो यह मेरा मित्र है, तुम विश्वास रक्खो कुछ भय नहीं है ।" इस प्रकार प्रतीहार का कथन सुन बड़े उद्वेग से मञ्जुमती यों कहने लगी—"मुझ मन्दभागिनी को विश्वास करने का अवसर कहां है; मेरी चिन्ता क्या कभी दूर हो सकती है; देखो न यह निगोड़ा राजा मृत्यु के मुख में पड़कर भी मृगाङ्कदत्त के द्वारा बचा दिया गया ।" यह सुन वह प्रतीहार बोला—"प्रिये ! शोच मत करो, थोड़ेही दिनों में मैं राजा को और मृगांकदत्त को मार डालूंगा, थोड़ा धीरज भी तो रक्खो; जो काम धीरे होता है उसका परिणाम भला होता है, शीघ्रता से काम बिगड़ जाता है ।" उसका ऐसा कथन सुन वह बोली—"चलो २ मेरे साम्हने बहुत सीटो मत, तुम्हारा पुरुषार्थ जाना हुआ है; जब कि राजा को नर्मदा नदी में ग्राहों ने पकड़ा था, तब तुम कहां थे ? क्या तुमने नहीं

देखा कि अकेले मृगाङ्कदत्त ने उसे बचा लिया; तब तुमने क्यों नहीं उसे मार डाला, तब तो तुम अपना जी लेकर भाग आये, कुछ करते धरते तो बनता नहीं झूठे सीटने आता है ऐसे सिट्टू और डरपोंक की बात का विश्वास क्या करूँ। बस अब चुप रहो नहीं तो कोई सुन लेगा तो जाकर मृगाङ्कदत्त से कह देगा तो उस शूर से समझ रक्खो कि, तुम्हारे प्राण न बचेंगे।" ऐसी ताना भरी बात रानी के मुंह से सुनकर वह जार प्रतीहार सह न सका, बोला "अरी पापिनी तेरा भाव प्रगट हो गया. बस मैंने जान लिया कि तेरा मन मृगाङ्कदत्त पर लग गया है; अच्छा क्या हुआ, मैं भी एकही हूं तुझे इस अधिक्षेप का फल अभी देता हूं।" इतना कह तलवार निकाल वह रानी को मारने चला, इतने में रानी की रहस्य-धारिणी एक दासी ने दौड़कर उसकी तलवार पकड़ ली, इसी अवसर में रानी मंजुमती वहां से निकल भागी और कहीं जाकर छिप रही। प्रतीहार ने लौंड़ी के हाथ से खड्ग छीन लिया, इसी छीनाछोरी में उस दासी की एक अंगुली भी कट गयी। इसके उपरान्त वह प्रतीहार जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से मृगांक-दत्त के साथ चला गया राजकुमार को यह व्यापार देख बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

जब वह अपने घर के समीप पहुँचा तब मृगाङ्कदत्त ने उससे कहा कि भाई अब तो तुम अपने घर पहुँचे अब मैं जाता हूं। अन्धकार का प्रबलप्रताप था इससे अबलों उनका पता उस प्रतीहार को न लगा। प्रतीहार ने उत्तर दिया "भाई थक तो गयेही होगे फिर उनीदे भी हो, चलो यहीं झटपट सो रहो" राजकुमार को तो किसी प्रकार की चिन्ता थीही नहीं उन्होंने निर्भय होकर कहा "बहुत अच्छा," प्रतीहार को इस अपरिचित व्यक्ति का व्यापार देखना था इसी कारण वह उसे घर ले जाया चाहता था सो वह उसे (उन्हें) अपने घर ले गया, वहां उसने अपने एक भृत्य को बुलाकर कहा, "जहां वह मोर है तहीं इस पुरुष को ले जा और विश्राम करने के लिये इसे एक पलंग दे दे। "बहुत अच्छा," इतना कह वह चाकर मृगाङ्कदत्त को उसी घर में ले गया जहां वह मयूर था, एक दी-पक जल रहा था; तहां उनके विश्राम के लिये एक शैय्या देकर बाहर से केवाड़ की सिकड़ी लगा वह भृत्य वहां से चला गया।

अब मृगाङ्कदत्त की दृष्टि जो उधर गयी तो क्या देखते हैं कि वह मयूर पिं-

जड़े में बन्द है, "यह वही मोर जान पड़ता है जिसकी बात प्रतीहार ने कही थी," इस प्रकार विचार कौतुक से उन्होंने मोर का पिंजड़ा खोल दिया । मयूर जब बाहर निकला तब बड़े ध्यान से उन्हें देख उनके चरणों पर गिर पड़ा और बार बार उनके पावों पर लोटने लगा। जब कि वह पावों पर लोट रहा था उस समय राजकुमार ने उसके गले में एक डोरा बँधा देखा, उसे देख उन्होंने विचारा कि इसीसे इसको पीड़ा हो रही है, ऐसा विचार उन्होंने उसके कण्ठ से डोरा खोल दिया। डोरे का खोलना था कि चट उनके देखते २ वह मयूर उनका मंत्री भीमपराक्रम हो गया। वह मृगाङ्कदत्त के चरणों पर गिर पड़ा उन्होंने उसे उठा कर कण्ठ में लगा लिया और बड़ी विस्मय से उससे पूछा "कहो सखे! यह क्या बात है?" अति प्रसन्न हो भीमपराक्रम बोला, "देव! सुनिये मैं अपना वृत्तान्त जड़ से आपको सुनाता हूं।"

जब कि नागराज के शाप से आपका संग छूटा तब मैं अरण्य में घूमता २ एक शाल्मली के पेड़ के नीचे पहुँचा, उसमें गणेशजी की एक खुदी प्रतिमा मुझे दीख पड़ी, मैं थक तो गयाही था सो उन्हें प्रणाम कर उसी वृक्ष की जड़ पर बैठ गया और अपने मनमें चिन्ता करने लगा कि "धिक्कार है मुझको, वह पाप मेराही किया है कि रात में वेतालवाला वृत्तान्त स्वामी से कह दिया, सो मैं इस अपराधी पतित प्राण को रखकर क्या करूँगा इसका त्यागही श्रेय है। ऐसा विचार मैं वहीं देव के समक्ष निराहार बैठ गया कि भूखा रहकर प्राण त्याग दूं" इसी प्रकार जब कई दिन बीत गये तब एक दिन की बात है कि एक वृद्ध पथिक उसी मार्ग से आ निकला, वह भी उसी वृक्ष की छाया में बैठकर सुस्ताने लगा। वह पान्थ बड़ाही भद्र पुरुष था, मुझे उदासीन देखकर उसने पूछा—"पुत्र! इस निर्जन वन में म्लानमुख इस प्रकार क्यों बैठे हो?" मैंने पहिले तो कुछ न उत्तर दिया परन्तु जब वह बार बार हठ करके पूछने लगा तब मुझे अगत्या अपना वृत्तान्त कहना ही पड़ा। जब मैं अपना सारा वृत्तान्त सुना गया तब वह वृद्ध पान्थ मुझे धीरज दे बहुत प्रकार से समझा बुझा प्रीतिपूर्वक यों कहने लगा -- "पुत्र! तुम तो वीर हो तो वीर होकर अबला के समान क्यों आत्महत्या पर उतारू हुए हो? अथवा ऐसा भी अधिक देखा गया है कि स्त्रियां भी आपत्काल में अपने

धैर्य्य का त्याग नहीं करती हैं; सुनो इसी विषय में मैं तुमको एक कथा सुनाता हूं।

कोशलपुरी में विमलाकर नामक एक राजा राज्य करते थे, उनके कमलाकर संज्ञक एक पुत्र था; राजपुत्र अपने तेज, रूप तथा उदारतादि गुणों से ऐसे श्लाघ्य थे कि विधाता ने मानों स्कन्द, कन्दर्प और कल्पद्रुम के पराभव के हेतु उनकी सृष्टि की हो। राजकुमार की स्तुति दिग्दिगन्तर में बन्दीजन गाया करते थे। एक समय की बात है कि उनके एक परिचित बन्दी ने उनके समक्ष यह सोरठा गाय सुनाया—

पद्मासन हरषाय, मुखर द्विजाली घिरि रहै।
विनु कमलाकर पाय, हंसावलि कहँ रति लहै॥ *

उस वन्दी का नाम मनोरथसिद्धि था, सो जब कभी वह राजकुमार को देखता तो यही सोरठा पढ़ सुनाता, इससे उन्हें बड़ा कौतुक हुआ कि यह मुझे देखतेही क्यों यह पद्म सुनाने लगता है, हो न हो इसमें कुछ रहस्य अवश्य है, सो उन्होंने एक दिन उससे पूछा कि कहो मनोरथ सिद्धि! तुम जो यह पद्य बार बार सुनाया करते हो इसका उद्देश्य क्या है? उसने उत्तर दिया कि राजकुमार सुनिये मैं इसका भेद आपको बताता हूं—

देव! मैं देशाटन कर रहा था, कि जाते जाते राजा मेघमाली की विदिशा नगरी में जा निकला, उस नगरी का मैं क्या वर्णन करूं मुझे तो ऐसी प्रतीत हुई मानों लक्ष्मीदेवी की लीलोद्यान भूमि है। मैं वहां दर्दुरक नामक गीताचार्य्य के † घर में टिका, एक दिन बातही बात में उसने मुझसे कहा, "यहां के राजा की कन्या हंसावली नृत्यविद्या में बड़ी प्रवीण हैं सो कल वह अपना नृत्य महीपति के समक्ष दिखावेंगी।" यह सुनतेही मुझे भी नाच देखने का बड़ा कौतुक हुआ सो मैं एक युक्ति से उसके साथ राजसभा में जाकर रंगमण्डप में पहुंचा। वहां उस सुमध्यमा ‡ राजकन्या हंसावली ने पिता के साम्हने अपना नृत्य दिखाया; मैं भी

* यहां श्लेषालङ्कार है, आगे पढ़ने से इसका अर्थ आपही स्पष्ट हो जायगा।

† गानविद्या का आचार्य्य।

‡ सु=सुन्दर। मध्यम=बीच का भाग जिसका अर्थात् जिसकी कटि अति मनोहर है।

उनका नाच देखता रहा । नाच की बात तो जाने दीजिये मैं उनके रूप सौन्दर्य का वर्णन आपसे क्या करूँ—राजकन्या मानों स्मरतरु की बल्ली हैं, जो नाचने में अंगों का चालन होता था उससे यह भावना उदित होती थी कि यौवनानिल से लता लहरा रही है; उनके भूषण जो अति लोल थे पुष्पों की शोभा देते थे; हाथों का परिभ्रमण पल्लवों का सौन्दर्य दिखाता था । उन्हें देखतेही मेरे मनमें यह भावना हुई कि इस मृगनैनी के योग्य भर्त्ता राजकुमार कमलाकर को छोड़ और कोई नहीं है । यदि उन उपयुक्त कमलाकर से एतादृशी इन राजकन्या का संयोग न हुआ तो कामदेव का कुसुम कार्मुकारोपण (१) व्यर्थही है । अब मैं अपने मन में विचार करने लगा कि यहां कोई कला खेलनी चाहिये; इस प्रकार विचार जब नृत्य समाप्त हो गया तब मैं राजा के सिंहद्वार पर चला गया, वहां पर एक विज्ञा-पन लिखकर मैंने लगा दिया कि यहां कोई चित्रकार मेरे समान हो तो वह चित्र खींचकर दिखावे । किसी का साहस न हुआ कि वह विज्ञापन उखाड़ फेंके राजा के कानों में भी यह बात पड़ी सो उन्होंने मुझे बुलाकर अपनी कन्या के आवास (२) में मुझे चित्रकार नियुक्त कर दिया । सो देव कमलाकर ! हंसावली के वासगृह की भित्ति पर मैंने भृत्य सहित आपका चित्र उरेह दिया ।

अब मैं यह सोचने लगा कि क्योंकर इस चित्र का परिचय राजकुमारी को मिले; यदि मैंही उपत के उनसे कुछ कहूं तो वह समझेंगी कि यह धूर्त्त है, सो आओ कुछ युक्ति की जाय । मैंने अपने एक विश्वस्त मित्र को साधा, वह रूपवान् तो था ही सो मैंने उससे परामर्श करके यह ठीक किया कि तू उन्मत्त बनकर इधर उधर नाचता राजप्रासाद के समीप आना—इत्यादि इत्यादि ! मेरे कथना-नुसार वह उसी क्षण पागल बन के नाचने और गाने लगा, दूर से राजकुमारों ने उसे बुला भेजा उसे देख उन्हें बड़ाही कौतुक हुआ सो वे उसे लेकर हंसावली के वासभवन में आ पहुंचे कि वह भी उसे देख लें । ज्योंही वह राजकुमारी के भवन में पहुँचा त्योंही आपका चित्र देख बड़े हर्ष से यह कह कह गाने और नाचने लगा —

(१) पुष्पमय धनुष का चढ़ाना । (२) वासगृह ।

अहो भाग ! हम देख्यो आज । पदुम संख अंकित महराज ॥
श्रीविलास नारायणरूप । गुण-आकर कमलाकर भूप ॥
अहो भाग !—इत्यादि ! इत्यादि ! !

इसी प्रकार गाय २ वह नाचता जाता, सो सुन राजदुलारी को बड़ा कौतुक हुआ, उन्होंने मुझसे पूछा –"कहो जी यह क्या गाय रहा है और भीत पर तुमने यह किसका चित्र उरेहा है ?" इस प्रकार जब वह बार बार हठ करके पूछने लगीं तब मैंने उनसे कहा—"हे राजपुत्रि ! रूप गौरव से मैंने जिस राजपुत्र का चित्र यह खींचा है, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इस पागल ने कभी देखा है— इसीसे उनका वर्णन कर गाता और नाचता है ।" हे राजकुमार कमलाकर ! इस प्रकार कहकर मैंने उन्हें आपका नाम बताया और साथही आपके गुणों का वर्णन कर सुनाया । बस अब क्या था आपके प्रेमरूपी रत से आहत हंसावली के हृदय में एक नया स्मरद्रुम उत्पन्न हो गया । इतने में उनके पिता मेघमाली आ गये, सो उन्होंने क्रोध से उस नाचते हुए पागल को और मुझे भी निकाल बाहर करवाया, अब तो राजकुमारी का मन आप पर लग गया था, वह सदा आपही के लिये उत्कण्ठित बनी रहती; कृष्णपक्ष के चन्द्र की नाईं वह दिनों दिन क्षीण होने लगी, तथापि उनका लावण्य वैसाही बना रहा वह क्षीण न हुआ उनका चित्त कहीं लगताही न था, होते होते उन्होंने एक युक्ति निकाली, झूठमूठ वह मांदी हो गयी; तब यह स्थिर हुआ कि भगवान् के किसी मन्दिर में अर्चा पूजा हो तो पाप दूर होकर कष्ट कटे; पिता को भी यह बात भायी, सो राजपुत्री एक विजन वन में जाकर भगवान् विष्णु के मन्दिर में रहकर उनकी अर्चा में लीन हुईं। राजकुमारी सदा आपकी चिन्ता में मग्न रहतीं, इससे उनकी निद्रा देवी पलायन कर गयीं, क्षण भर भी उन्हें नींद न आती; रात दिन का भेद भी न जानतीं कि कब रात बीती और कब दिन हुआ । एक दिन मैं उस मन्दिर में दर्शन करने गया तो राजकुमारी ने मुझे बुलाया और मेरा बड़ा आदर सत्कार किया तथा बहुतेरे वस्त्राभरण दिये । जब इस प्रकार पूजित हो मैं मन्दिर से निकला तो उनके दिये हुए एक वस्त्र के अञ्चल में एक पत्र गँठियाया हुआ मिला, जिस पर यह सोरठा लिखा था, सो सुनिये मैं फिर आपको सुनाये देता हूं—

पद्मासन (१) हरषाय, मुखर (२) द्विजाली (३) घिरि रहै ॥
बिनु कमलाकर (४) पाय, हंसावलि (५) कहँ रति लहै ॥

इस प्रकार सोरठा दोहराके सुनाकर मनोरथसिद्धि पुनः कहने लगा कि देव ! जब मैंने यह गाथा पढ़ी तब मुझको उनका निश्चित अर्थ ज्ञात हो गया सो मैं आपको जनाने के लिये यहां आया और आपके समक्ष वह सोरठा मैंने बार बार गाय सुनाया । देखिये यही वह वस्त्र है जिसमें उन्होंने वह सोरठा लिखके बांध दिया था।

इस प्रकार उस बन्दी का वचन सुन, सोरठा देखके श्रोत्र और नेत्र के द्वारा हृदय में प्रविष्ट हुई हंसावली का ध्यान करते हुए राजकुमार कमलाकर अत्यन्त हर्षित हुए । अब वह इस बात के लिये बड़ेही उत्सुक हुए कि किस उपाय से प्रिया हंसावली की प्राप्ति हो ।

अब एक दिन ऐसा हुआ कि उनके पिता ने उन्हें अपने पास बुलाया और उनसे कहा—"पुत्र ! जो राजा आलसी होते हैं वे मन्त्रबद्ध उरग के समान नष्ट हो जाते हैं, सो अब मैं तुमसे पूछता हूं कहो तो सही जब वे नष्ट हो गये तो फिर क्योंकर उठ सकते हैं ? तुम अब लों सुखही में पले हो, सुख छोड़ दुःख का नाम भी तुमने नहीं सुना; तुम अद्यावधि यह भी नहीं जानते कि जिगीषा (६) क्या तत्व है; सो जबलों मैं जीता हूं तुम आलस त्याग उद्युक्त (७) हो जाओ । पहिले जाकर अङ्गाधिपति को जीतो क्योंकि वह मेरा प्रधान शत्रु है, और मैं सुनता हूं कि मेरे राज्य पर आक्रमण करने के हेतु वह अपने देश से निकल भी चुका है ।" पिता का ऐसा वचन सुन कमलाकर बोले—"आपकी आज्ञा शिर माथे ।" वह अपनी प्रिया की प्राप्ति के हेतु प्रस्थान किया ही चाहते थे बीचही में पिता की ऐसी आज्ञा मिल गयी. अब किसी बात की रुकावट ही न रही । पिता के दिये हुए बल के (८) साथ राजकुमार कमलाकर विजय करने चले । उनका सैन्य ऐसा

(१) पद्मा = लक्ष्मी आसन = बैठने का उपकरण = जिस पर लक्ष्मी बैठती हैं अर्थात् कमल । (२) मुखर = पक्षी पक्ष में चहचहाते, शब्द करते । ब्राह्मण पक्ष में वेदध्वनि, आशीर्वचन उच्चरते । (३) पक्षियों का समूह,। ब्राह्मणों का दल। (४) कमल सरोवर, राजकुमार कमलाकर । (५) हंसों की श्रेणी, राजकुमारी हंसावली । (६) जीतने की इच्छा । (७) प्रस्तुत, तैयार । (८) सैन्य ।

चला कि पृथ्वी हिलने लगी और शत्रुओं के हृदय कांपने लगे। कईएक पड़ावों के उपरान्त वह वहां जा पहुँचे जहां अङ्गाधिपति का पड़ाव पड़ा था। कहां तो वह इनपर आक्रमण करने आ रहे थे कहां उन्हीं पर आक्रमण हो गया; दोनों में घोर संग्राम हुआ; जिस प्रकार अगस्त्य मुनि समुद्र को पी गये थे उसी प्रकार कमलाकर अंगराज की सेना का पान कर गये। अन्त में राजा अंगपति हारे और राजकुमार कमलाकर विजयी हुए। कमलाकर ने अंगाधिपति को जीते जी पकड़ लिया और वन्दी कर प्रधान प्रतीहार के हाथ सौंप पिता के पास भेज दिया और साथ में कईएक सिपाही कर दिये। उन्होंने उसी प्रतीहार के द्वारा पिता के पास यह सन्देशा भी कहला भेजा कि हे तात! अब मैं अन्यान्य शत्रुओं को जीतने जाता हूं। इस प्रकार क्रमानुसार शत्रुओं को जीतते हुए राजपुत्र कमलाकर विदिशापुरी के निकट पहुँचे।

विदिशापुरी की सीमा पर पहुँच कमलाकर ने हंसावली के पिता राजा मेघमाली के पास यह सन्देशा देकर एक दूत को भेज दिया कि अपनी कन्या हंसावली का विवाह मुझसे कर दीजिये। दूत के मुख से यह सन्देशा सुन राजा मेघमाली कुछ भी अप्रसन्न न हुए प्रत्युत बड़े हर्ष से उनके पास स्वयं चले आये और बड़े सम्मान से राजकुमार का आतिथ्य कर बोले "राजकुमार! यह काम तो आप घर बैठे दूत के द्वारा कर सकते थे तो इतना परिश्रम आपने क्यों उठाया। अस्तु, मेरा तो यह अभीष्ट ही था, सुनिये इसमें जो कारण है सो मैं आपको सुनाता हूं—यह हंसावली बाल्यावस्था ही से भगवान् अच्युत की अर्चना में तत्पर रहती है। शिरीषसुकुमाराङ्गी इस कन्या को देखकर मेरे मन में यह चिन्ता उदित हुई कि ऐसी गुणवती कन्या के सदृश कौन वर पाऊँ। मैंने बहुत दूर लों दृष्टि फैलाई पर कोई उपयुक्त वर न सूझा। रात दिन मेरे मन में यही चिन्ता बनी रहती इससे नींद भी जाती रही—इस कारण महाभयङ्कर ज्वर हो आया। उसकी शान्ति के लिये मैंने भगवान् नारायण की पूजा की और बड़ी आर्त्ति से उनसे विनति की, तब उस दिन रात्रि में झपकी आई। उसी में मुझे एक स्वप्न दीख पड़ा कि हरि भगवान् यह आदेश करते हैं—"हे पुत्र! जिसके कारण तुमको यह ज्वर हुआ है वही हंसावली तुम्हें छू दे तो ज्वर शान्त हो जाय। मेरे पूजन के प्रभाव से वह

पावन हो गयी है, सो जिस किसी को यह हाथ से छू दे, उसका कैसा भी असाध्य ज्वर हो तो उतर जाय इसमें किञ्चिन्मात्र संशय नहीं है । इसके विवाह की चिन्ता भी तुम मत करो क्योंकि इसका पति राजपुत्र कमलाकर होगा, परन्तु एक बात है कि कुछ काल इसे किञ्चित् क्लेश उठाना पड़ेगा।" सो राजकुमार! भगवान् शार्ङ्गधारी का ऐसा आदेश मुझको हुआ, जब रात बीती तब मैं जागा, उस समय हंसावली ने मुझे अपने हाथ से छू दिया और उसी क्षण मेरा ज्वर जाता रहा। इस प्रकार तुम दोनों का सम्बन्ध तो भगवान् का ठहराया हुआ ही है. मैं तो हंसावली को तुम्हें देही चुका । यों कह, लग्नादि ठहराय राजा मेघमाली अपनी राजधानी को लौट गये ।

पिता के द्वारा यह सारा वृत्तान्त सुन राजकुमारी ने अपनी परम विश्वस्त सखी कनकमञ्जरी से कहा कि अरी आली तू जाकर देख आ कि यह राजपुत्र वही हैं जिनका चित्र उस चित्रकार ने उरेहा था और चित्र के द्वारा जिन्होंने मेरा मन हर लिया है । कहीं ऐसा न हो कि कोई प्रबल राजा इसी नाम से चढ़ आये हों और भय के मारे मेरे पिता ने मेरे विवाह की प्रतिज्ञा कर दी हो । यदि ऐसा हुआ तब तो मैं मट्टी में मिल गयी सो सखी तू जाकर भली भांति जांच तो आ तब मेरा चित्त सुस्थिर हो । इस प्रकार कह सुन हंसावली ने कनकमंजरी को वहां भेजा ।

अब कनकमञ्जरी आडम्बर रचने लगी; अक्षसूत्र, अजिनचर्म्म और जटा धारण कर उसने तापसी का वेष बनाया । इस प्रकार आडम्बर कर वह राजकुमार कमलाकर के कटक में पहुँची; प्रतीहारों के द्वारा समाचार भेज वह उनके समक्ष जा विराजी । वहां पहुँचकर क्या देखती है कि कामदेव के जगज्जैत्र मोहनास्त्र के अधिदेवस्वरूप राजकुमार शोभायमान हैं; उनका रूप निरखतेही उसका चित्त उनमें लीन हो गया और वह ठगी सी खड़ी रह गयी, मानों समाधि लग गई हो। अब वह अपना चित्त सम्भाल न सकी, कामवाण से ऐसी विद्ध हो गयी कि चहुँ ओर कमलाकरही कमलाकर दीख पड़ते । वह विचारने लगी कि यदि ऐसे पुरुष के साथ मेरा समागम न हुआ तो मेरे जन्म को धिक्कार है; सो अब मैं एक उपाय करतीहूं देखूं जो लग जाय । इतना विचार वह आगे बढ़ी और राजकुमार

को आशीर्वाद और उपहारस्वरूप एक मणि देकर वहीं बैठ गयी; राजपुत्र ने रत्न बड़े आदर से ग्रहण कर उस तापसी का बड़ा आदर सत्कार किया। तब वह कपट तापसी उनसे इस प्रकार कहने लगी—"राजकुमार! मैं इस मणि की परीक्षा कई बार कर चुकी हूं, इस उत्तम मणि का बड़ा प्रभाव है, जिसके पास यह रहता है उसके ऊपर शत्रु का कोई भी अस्त्र नहीं चल सकता प्रत्युत उसका उत्तम से उत्तम अस्त्र स्तब्ध हो जाता है। आपके गुणों से मेरे मन में बड़ा अनुराग हुआ, इसी से मैंने यह तुमको दे दिया क्योंकि जैसा यह तुमको उपयोगी है वैसा मुझको नहीं है।" उसकी ऐसी बात सुन राजकुमार कुछ कहा चाहते थे कि वह निषेध कर फिर बोल बैठी, "राजपुत्र! मैं तो भिक्षा मांग के जीवनयात्रानिर्वाह करती हूं," इतना कह वहां से चली गयी।

अब वह तापसी का वेष त्याग मुंह बनाकर हंसावली के पास पहुंची और पूछी जाकर झूठमूठ बात बना इस प्रकार कहने लगी—"राजकुमारी! राजा का यह एक ऐसा रहस्य है कि उसका प्रकाश करना उचित नहीं है; परन्तु तुम पर मेरा समधिक प्रेम है इससे कहे देती हूं—सुनो बात यह है। जब मैं यहां से तापसी का वेष बनाकर राजपुत्र के समीप गयी तो पहिले ज्योंही उनके कटक में पहुंची एक पुरुष मेरे पास आया और मुझसे कहने लगा—"भगवति! भूत उतारने के कुछ मन्त्र तन्त्र टोटक आपको आते हैं?' देखतेही मैंने समझा कि यह पुरुष उनका प्रतीहार है सो मैंने उससे कहा—"हां हां मैं भली भांति जानती हूं भला यह तो मेरा कामही ठहरा।" सो देवि! वही मुझको कमलाकर के समक्ष ले गया, वहां जाकर मैंने देखा कि राजपुत्र भूत के आवेश से रोगी पड़े हैं, आस पास में लोग उन्हें पकड़े बठे हैं, अनेक प्रकार की औषधियां तथा यन्त्र मन्त्र टोटक तथा उत्तम मणि उनके शरीर पर बँधे हैं। मैं वहां पहुंचही गयी थी कुछ तो अवश्य करना ही था, सो झूठमूठ मैंने भी कुछ फूंकफांक की और कहा कि आज तो मैं जाती हूं अब कल आकर इनका भूत उतारही दूंगी। इस प्रकार अपना पिण्ड छोड़ा मैं वहां से चली आई। इस अनिष्ट के दर्शन से मेरा चित्त बड़ा दु:खित हुआ सो जो देखा सो तुमसे कहने आई हूं अब आगे जैसा तुम्हें अच्छा लगे वैसा करो।

हंसावली तो सीधीसादी थी, वह छल छिद्र क्या जाने सो ऐसा वज्रपात सम वचन सुनतेही मूर्छित हो गयी, कुछ कालोपरान्त जब चेत हुआ तब उस सखी से कहने लगी—"सखि ! विधाता बड़े मत्सरी हैं, वह अपनी गुणवती सृष्टि से भी मत्सर रखते हैं, कुछ न कुछ धब्बा अवश्य लगा देते हैं; देखो न चन्द्रमा को कैसा सौम्य बनाया तो भी उसमें कलङ्क लगा दिया, और इनमें ऐसा दोष भर दिया। कहो तो विधि धिक्कारने योग्य है न ? फिर इन राजकुमार को मैं अपना पति वरण कर चुकी हूं अब मैं उन्हें देख भी नहीं सकती, तो इससे बढ़कर क्या और भी कुछ कष्ट हो सकता है; अब मेरे लिये यही श्रेय है कि या तो प्राण-विसर्जन कर दूं अथवा कहीं गहन वन में चली जाऊँ। सो सखि ! अब तुम्हो बताओ ऐसी दशा में क्या कर्त्तव्य है ?" इस प्रकार उस मुग्धा की बात सुन वह मायाविनी कनकमञ्जरी फिर बोली—"प्रिये हंसावलि! उनका विवाह तो निश्चय होवेहीगा, वह तो रुकता नहीं, फिर अब यह उपाय करना चाहिये कि वह भूत-ग्रस्त तुम्हारे माथे न पड़े, बस तुमको ही बचाना है । ऐसा किया जाय कि जब विवाह का समय आवे तो तुम्हारी कोई दासी बना ठना के भेज दी जाय, उस समय विवाह की धूमधाम में कौन पूछता है कि क्या होता जाता है, बस हम दोनों उसी समय कहीं चली जावगी।" उस कुसखी का ऐसा कथन सुन राजपुत्री बोली. "तो हे सखि ! तुम्ही मेरा वेष बना उनसे अपना विवाह कर लो, तुमसे बढ़कर अब मेरी आप्त (१) सखी और कौन है।" राजपुत्री की ऐसी बात सुन उस पापिष्ठा ने कहा—"सखि ! धीरज धरो ऐसाही करूँगी, इसमें भी एक युक्ति है किन्तु चेत रखो उस समय जैसा कहूंगी वैसाही करना नहीं तो काम बिगड़ जायगा।" राजपुत्री को इस प्रकार समझाबुझा वह धूर्त्ता वहां से चली और चट पट अपनी एक विश्वस्त सखी अशोककरी के पास पहुँची, वहां उस दुष्टा ने अपनी सारी करनी उसे कह सुनायी। हंसावली तो उक्त व्यापार के श्रवण से उदास थी ही और प्रतिज्ञा करही चुकी थी कि उस भूतग्रस्त से विवाह न करूँगी सो जब लों विवाह का दिन नहीं आया तब लों वह परम धूर्त्ता कनकमञ्जरी अपनी सखी अशोककरी के साथ उनकी सेवा शुश्रूषा में ऐसी लीन रही कि तनिक भी न प्रकट हुआ कि यह चाल चल रही है।

(१) विश्वस्त

क्रमशः विवाह का दिन समीप आया, सायङ्काल में राजकुमार कमलाकर हाथी घोड़े और पदातियों के सहित राजा मेघमाली के राजभवन में आ विराजे। उस समय सब लोग तो उत्सव में व्यग्रही थे सो अवसर पाय कनकमंजरी और २ दासियां की आंख बचाय हंसावली को एक गुप्त प्रसाधन गृह में (१) ले गयी। वहां उसने हंसावली का वेष तो आप धारण किया और उन्हें अशोककरी के वेष में सजाय दिया और अपने वेष में अशोककरी को बनाय दिया। जब रात हुई तब उस धूर्त्ता ने हंसावली से कहा—"सुनो सखि! अब तुम एक काम करो, नगर के पश्चिम द्वार से निकल जाओ तो एक कोस पर एक पुराना शाल्मली का पेड़ मिलेगा, उसमें एक बड़ा खोंढ़रा है; सो तुम उसी के भीतर बैठकर मेरी प्रतीक्षा करना; कार्य्य समाप्त होने पर मैं अवश्य तुम्हें आ मिलूंगी। उस व्याजसखी की (२) ऐसी बात सुन सरल सप्रकृति शुद्धस्वभावा हंसावली अपनी सखी के वेष में, "बहुत अच्छा," कह रात्रि के समय अन्तःपुर से निकली, और नगर के उसी द्वार से जहां कि ठटाठट्ट भीड़ लगी थी, धीरे से निकल गयी, और चली २ उस शाल्मली पादप के पास पहुँची। वहां जब पहुंची तब खोखले में घना अन्धकार देख यह साहस न हुआ कि उसमें पैठे और एकान्त में डर भी लगता था अब क्या करे; पासही में एक बड़ का पेड़ था सो राजदुलारी उसी पर चढ़कर बैठ रही। वहां पत्तों के बीच में छिपी बैठी हुई वह अपनी सखी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। राजकुमारी का हृदय तो शुद्ध था उसमें छल कपट का लेश मात्र न था वह कैसे समझ सकती थी कि मेरी सखी कैसी चाल चल रही है, इसी हेतु से कनकमंजरी की कुटिलगति का पता उन्हें न लगा।

अब लग्न आया, राजकुल में सब वैवाहिक उपक्रम होने लगे; हंसावली के वेष में कनकमञ्जरी वेदी पर लायी गयी और शुभ मुहूर्त्त में कमलाकर ने उसका करकमल ग्रहण किया। एक तो रात थी, दूसरे घूंघट काढ़ा था इससे कोई पहिचान न सका कि यह कनकमंजरी है। उसी समय विदाविदाई का भी मुहूर्त्त था सो राजकुमार कमलाकर विवाहोत्तर व्याजहंसावली को (३) विदा करा ले चले

(१) जहां शृङ्गार किया जाता है। (२) कपट करनेवाली सखी। (३) जो सचमुच कनकमंजरी थी किन्तु हंसावली के वेष में बनी थी।

और साथ में माया कनकमंजरी अशोककरी (१) भी चली। उसी पश्चिम फाटक से निर्गमन हुआ, कमलाकर अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ हाथी पर आरूढ़ थे। अब उनका प्रयाण निज कटक की ओर हुआ।

चलते २ सब लोग वहां पहुँचे जहां शाल्मली का पेड़ था जिसके समीपवर्त्ती वटवृक्ष पर प्रकृत हंसावली कनकमंजरी के वेष में छिपी बैठी थी। ज्योंही हाथी वहां पहुँचा वह झूठी हंसावली कमलाकर के अङ्ग में लिपट गयी, राजकुमार ने पूछा—"प्रिये! क्या है, हां तुम डरती क्यों हो?" तब वह झूठेही आंखों में आंसू भरकर बोली—"आर्यपुत्र! मैं क्या कहूं, कल एक स्वप्न देखा था जिसके स्मरण से हृदय दहल उठता है; मैंने क्या देखा सो आप से कहती हूं। इस शाल्मली के पेड़ से राक्षसी सी एक स्त्री निकली और मुझे पकड़कर खाने चली; उसी समय एक ब्राह्मण देवता आ गये उन्होंने उसके हाथ से मेरा छुटकारा किया उन्हीं ने मुझको आश्वासन देकर यों कहा कि पुत्रि! तुम शाल्मली का यह पेड़ जलवा डालना और जो वह स्त्री इसमें से निकल भागे तो उसे पकड़वाकर इसी दहकते पेड़ में झोंकवा देना। बस इसी से तेरा कल्याण होगा। इतना कह वह ब्राह्मण देवता अन्तर्धान हो गये, उसी क्षण मेरी नींद भी टूट गयी। सो इस पेड़ के देखने से मुझे वह स्वप्न स्मरण हो आया इसी से मैं डर गयी हूं।" अपनी प्रिया की इतनी बात सुनतेही कमलाकर ने अपने भृत्यों को तत्क्षण उस वृक्ष और उस स्त्री के दग्ध कर देने की आज्ञा दे दी। आज्ञा पातेही वह वृक्ष जलाकर भस्म कर दिया गया हंसावली उसमें से निकली नहीं इससे उस कूट हंसावली ने समझा कि वह भी उसी में जल गयी। अब राजकुमार कमलाकर उस कूट हंसावली के साथ, जिसका हृदय कि अब निर्द्वन्द्व हो गया था; अति हृष्ट हो अपने कटक में पहुँचे, उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह मेरी अभीष्ट प्राणप्रिया हंसावलीही है। दूसरे ही दिन उन्होंने अपनी कोशलापुरी को प्रस्थान कर दिया, और जब वह अपनी नगरी में पहुँचे तब उनके पिता अत्यन्तही प्रमुदित हुए कि मेरे लाड़िले कृतकार्य्य होकर नगर में लौट आये; इसके उपरान्त अति प्रसन्नतापूर्वक राजा विमलाकर ने अपने पुत्र कमलाकर को राजासन पर अभिषिक्त किया। जब राज्यभार पुत्र को

(१) वह अशोककरी जो कि कनकमंजरी के वेष में बनी ठनी थी।

सौंप कोशलेश्वर विमलाकर वन में चले गये, तब राजा कमलाकर अपनी भार्य्या व्याज हंसावली कनकमञ्जरी के साथ पृथ्वी का शासन करने लगे। अब मनोरथसिद्धि नामक वह वन्दी भी वहां से टल गया, उसे यह भय हुआ कि कहीं कनकमञ्जरी पहिचान ले तो किसी उपाय से मरवा न डाले।

उधर हंसावली उस बड़ के पेड़ पर बैठी हुई सब सुन और देख रही थीं तब उनकी आंखें खुलीं, अब उन्होंने समझा कि मैं ठगी गयी, सो जब कमलाकर चले गये तब वह अपने मन में यह चिन्ता करने लगीं,—"अहो! देखो तो इस दुष्टा सखी ने कैसा छल कर मेरे कान्त को हर लिया है, अहो मुझे भस्म करकेही वह शान्त हुआ चाहती थी। ठीकही है दुर्जन का विश्वास कर किसने कल्याण भोगा है? देखो तो सही मेरे कारण यह विचारा शाल्मली तरु व्यर्थही दग्ध किया गया तो मैं इसका ऋण क्योंकर चुकाऊँ; सो आओ इसी के अङ्गारों में गिरकर इस से उऋण हो जाऊँ।" इस प्रकार विचार अपने प्राण त्यागने के हेतु वह उस बड़ के पेड़ से उतरीं, परन्तु दैवात् उनकी बुद्धि ठिकाने आयी और वह अपने मन में विमर्श (१) करने लगीं, "भला यह मैं क्या करने चली हूं, वृथा आत्महत्या कर मैं क्या फल उठाऊँगी, जो जीती रहे तो शीघ्रही इस सखीद्रुह का (२) पलटा चुका लूंगी। देखो उस समय जब कि पिताजी ज्वरार्त्त हुए थे भगवान् शौरि ने स्वप्न में उनसे क्या कहा था कि हंसावली के करस्पर्श से ज्वर शान्त हो जायगा— और यह भी न कहा था कि हंसावली कमलाकर को पावेगी जो कि उसके उचित पति हैं किन्तु एक बात है कि उसे बीच में कुछ क्लेश अवश्य उठाना पड़ेगा, सो चलो किसी वन में चलकर रहूं और उस समय की प्रतीक्षा करूँ और देखूं कि समय कब पलटता है।" इतना विचार वह निर्जन अटवी की ओर चलीं। जब कुछ दूर निकल गयीं तो बहुत थककर लड़खड़ाने लगीं, इतने में रात बीत गयी मानों मार्ग दिखाने के हेतु उसके हृदय में दया का सञ्चार हुआ आकाश से बूंदें गिरने लगीं मानों उनके दर्शन से उसके हृदय में कृपा का आवेश हुआ उसीसे वह रोने लगा हो। गुणियों के बन्धु सूर्य्यनारायण अपने कर (३) फैलाकर उदय हुए, मानों

(१) विचार। (२) जिसने छलकर अपनी सखी से द्रोह किया अर्थात् उसे धोखा दिया। (३) किरण।

उनके आंसू पोंछने के लिये कर (१) पसारे हों और हंसावली को आशा और आश्वासन प्रदान के हेतु उनका उदय हुआ हो । तब राजकुमारी हंसावली को कुछ आश्वासन हुआ । अब वह और आगे चलीं; उस जनशून्य अरण्य में किसी मानव का दर्शन कहां, धीरे २ वह चली जाती थीं, कुश और कांटे गड़ते थे जिस से उनके पांव क्षतविक्षत हो गये थे । चलती २ जब बहुत दूर निकल गयीं तब एक वन पड़ा जहां कि विहङ्गम मधुर २ गूँज रहे थे जिससे यह प्रतीत होता था कि वे उन्हें बुला रहे हों कि राजकुमारि! इधर आओ। राजकुमारी थक तो बहुत गयी थीं; सो वन में पैठीं तो त्रिविध बयार बह रही थी जिससे लताओं और वृक्षों के पत्र हिलते थे मानों वे बड़े आदर से पंखे हांकते हों । अपने पीतम के लिये वह अति उत्कण्ठित थीं उस वन के निरखने से उनको विरहवेदना और बढ़ गयी; फूले हुए आमों की डालियों पर बैठी कोयलें कुहू कुहू कर रही थीं, भला ऐसी ऐसी कुहूक सुन किस विरही का हृदय विदीर्ण न होगा; सो वह अति उद्विग्न हो चिन्ता करने लगीं "देखो तो सही यह मलयानिल (२) पुष्पों की रेणु से पिशङ्ग (३) होकर अति मनभावन बह रहा है तथापि मेरे पक्ष में वह अनल (४) का व्यवहार कर रहा है, भौंरे गूंज रहे हैं, अब जो वायुवश कुसुम गिर रहे हैं मेरे ऊपर ये कुसुमशर के शर निकर हैं । यद्यपि यहां मेरे विरहानल को बढ़ानेहारी सब सामग्री एकत्रित है तथापि अब मैं यहीं रहूंगी और इन्हीं फलों से पूज्यदेव रमापति की पूजा कर अपने दुष्कृतरूपी नदी से पार उतरूँगी ।" इस प्रकार की चिन्ता कर वह वहीं रहीं, प्रतिदिन उसी वापी में स्नान करतीं, फल खातीं, और कमलाकर के पाने की इच्छा से भगवान् कमलापति की अर्चा में तत्पर रहने लगीं ।

उधर दैवयोग से एक अद्भुत घटना हुई, महाराज कमलाकर को चातुर्थिक (५) ज्वर आने लगा; यह देख उस पापिनी कूट-हंसावली कनकमंजरी के मनमें बड़ी व्यग्रता हुई; वह चिन्ता करने लगी कि तब नहीं तो अब बात बिगड़ी; कहां तो अशोककरी का भय मेरे मन से क्षण भर के लिये दूर नहीं होता कि

(१) हाथ । (२) मलयाचल का पवन । (३) पीला, धुमला । (४) अग्नि । (५) चौथिया ।

कहीं वह निगोड़ी भण्डाफोड़ न कर दे, दूसरे अब यह एक महा उत्पात माथे आ पड़ा।" हंसावली के करस्पर्श से ज्वर नष्ट हो जाता है," ऐसा उसके पिता ने सबके साम्हने मेरे प्रभु से कहा था; सो इस समय यह ज्वराक्रान्त हैं ही, जो कहीं वह बात स्मरण हुई तो भेद खुल जायगा क्योंकि मुझ में वैसा प्रभाव तो है नहीं, बस अब भेद खुल जाने से मैं नष्ट हो जाऊँगी। पूर्व में किसी योगिनी ने जो मुझे ज्वर का चेटक (१) बताया था सो इनके लिये मैं विधिपूर्वक उसी को सिद्ध करूँ तो वह ज्वर को नष्ट कर देगा। फिर उसी के समक्ष किसी युक्ति से इस अशोककरी को भी मार डालूंगी क्योंकि मानुष अङ्ग से आर्घ्यादि पाय (२) वह सिद्ध हो जायगा और अभीष्ट भी सिद्ध कर देगा। इस प्रकार करने से राजा का ज्वर छूट जायगा और साथही अशोककरी भी नष्ट हो जावेगी, बस मेरे दोनों भय शान्त हो जायँगी और यदि ऐसा न हुआ तो और किसी प्रकार से मेरा कल्याण नहीं होने का।"

इस प्रकार विचार कर उसने अशोककरी को फिर साधा और जो कुछ चिकीर्षित (३) था सो सब उसे कह सुनाया केवल मानुष बध की बात छिपाय रक्खी। अशोककरी इसपर सहमत हुई और उसने चटपट सब सामग्री जुटा दी। अब कनकमञ्जरी ने किसी उपाय से सब दासियों को बाहर भेज दिया; इसके उपरान्त वह अपने हाथ में खड्ग लेकर अशोककरी के साथ रात्रि के समय चुपचाप नगर के दूसरे द्वार से निकली और एक सूनसान भैरवालय में पहुँची जहां भैरवजी का एकमात्र लिङ्ग था। वहां उसने एक बकरे का बध किया उसके शोणित से उसने लिङ्ग को स्नान कराया और लोहू ही का अर्घ्य दिया, अँतड़ी की माला पहिनाई, उस अज का हृत्पद्म भैरवलिङ्ग के मस्तक पर रखकर पूजा कियी, आंखें जलाकर धूप दिया और उसका शिर नैवेद्य लगाया (चढ़ाया)। तब रक्तचन्दन से लिप्त अग्रवेदी पर उसने गोरोचन से अष्टदल कमल उरेहा, उसकी कर्णिका पर लोहू से ज्वर का चित्र बना दिया, जिसके तीन शिर और तीन ही पांव थे; हाथ में प्रहार के निमित्त भस्म था; दलों पर ज्वर के परिवार के चित्र

(१) प्रेत अथवा दैत्य। (२) मनुष्य के रक्त का अर्घ्यपाद्य और मांस का भोजन। (३) करने का अभीष्ट।

लिखे । तत्पश्चात् अपने मन्त्र से ज्वर का आह्वान किया और पूर्वोक्त विधान से स्नान कराय अर्घ्य पाद्यादि दिये। अब मानुष अङ्ग के रक्तपात का अवसर आया तब उसने अशोककरी से कहा—"सखि ! अब देव को साष्टाङ्ग प्रणाम करो इसमे तुम्हारा कल्याण होगा।" "बहुत अच्छा," कह ज्योंही अशोककरी धरणी पर गिर साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगी त्योंही दुराशया कनकमंजरी ने उसपर खड्गप्रहार किया; दैवात् खड्ग ठीक उसके गले पर नहीं जमा किन्तु तनिक सा कन्धे पर लग गया इससे वह चकपकाकर उठी और डर के मारे प्राण लेकर भागी। उसको भागते देख कनकमञ्जरी भी उसके पीछे दौड़ी। अशोककरी यह कहती हुई कि बचाओ बचाओ!! चिल्लाती भागती जाती थी, उसका ऐसा आर्त्तनाद सुन नगररक्षक(१) चहुँओर से घिर आये, देखें तो खड्ग खींचे महाभयङ्कर रूप कनकमञ्जरी है; देखतेही सभों ने समझा कि यह कोई राक्षसी है बस चारों ओर से सब शस्त्र-प्रहार करने लगे यहां लों कि वह मृतक सी हो गयी। जब उन सभों को अशोक-करी के मुख से पता लगा कि बात ऐसी २ है तब वे पुराधिप को (२) आगे कर उन दोनों को राजा के न्यायालय में ले गये। महाराज कमलाकर को यह वृत्तान्त सुन बड़ाही आश्चर्य हुआ, उन्होंने अपनी उस कुभार्या को तथा उसकी उस सखी को अपने समक्ष मँगाया। जब वे दोनों महाराज के सम्मुख लायी गयीं उस समय कनकमंजरी निदारुण प्रहारव्यथा से तत्क्षण परलोक को सिधारी । राजा इस व्यापार से बड़े खिन्न हुए थे उन्होंने उसकी सखी अशोककरी से पूछा कि कह तो सही यह क्या बात है, तू निर्भय होकर सब बता दे । तब जो कुछ कनक-मंजरी ने किया था और जिस प्रकार हंसावली को धोखा दे अपना विवाह करा लिया सो सब कथा आरम्भ से वह सुना गयी। जब राजा कमलाकर को तत्त्वार्थ विदित हुआ तब वह अति दुःखित हुए और इस प्रकार अपने मनमें विचार क-रने लगे—"अहो ! इस कूट-हंसावली से मैं ठगा गया, हाय ! मैं ऐसा मूर्ख था कि हंसावली को अपने हाथ से जला दिया । यह दुष्टा तो अपने पाप का फल पा चुकी कि राजमहिषी होकर इस प्रकार मारी गयी। विधाता कैसे क्रूर हैं उ-

(१) पुलिस के सिपाही, पहरुये। (२) नगर का प्रधान, कोटपाल अर्थात् कोतवाल।

न्होंने कैसा मुझे ठग लिया कि रूपमात्र से मोहित कर बालक के समान मुझे कांच दे मुझ से रत्न छीन लिया। हाय! मुझे ज्वरशान्ति के लिये उसके पिता ने जो बताया था कि विष्णु भगवान् ने कहा है कि हंसावली के करस्पर्श से ज्वर दूर हो जाता है, सो भी स्मरण न आया।"

इस प्रकार विलाप और सन्ताप करते २ उनको नारायण की यह बात स्मरण हुई कि हंसावली पति को प्राप्त करेगी परन्तु पहिले इसे कुछ क्लेश उठाना पड़ेगा सो वह विचार करने लगे कि नारायण का ऐसा वचन जो महाराज मेघमाली ने मुझ से कहा था कभी मृषा नहीं हो सकता—सो कदाचित् हंसावली कहीं अन्यत्र जाकर अपने जीवन की रक्षा करती हो! क्योंकि स्त्री के चित्त और दैव की गति दुर्विभाव्य है। अब वही मनोरथसिद्धि वन्दी फिर मिले तो मेरा काम सिद्ध होवे। इस प्रकार सोचकर राजा ने मनोरथसिद्धि वन्दीवर को बुलवा भेजा—जब वह आया तब उन्होंने उससे कहा—"भाई आजकल आप कहां रहते हैं कि देख भी नहीं पड़ते अथवा जो धूर्त्तों से ठगे गये हैं उनके मनोरथ की सिद्धि कहां!" ऐसा प्रश्न राजा का सुन वह बन्दी बोला—"महाराज! मन्त्रभेद के भय से आहृत की गयी यह अशोककरीही मेरा उत्तर है। अब हंसावली के निमित्त आप विषाद न करें क्योंकि हरि भगवान् ने ही बतला दिया है कि कुछ काल उनको दुर्गति भोगनी पड़ेगी, सो वह भगवान् की आराधना में लीन होवेंहीगी और भगवान् उनकी रक्षा करतेही होवेंगे। धर्म्म जो है सो बड़ा प्रबल है, इसका तो प्रत्यक्ष प्रमाण आप देखही चुके हैं। अच्छा महाराज! अब मैं उनका पता लगाऊँगा।" इस प्रकार बन्दी का बचन सुन क्षितिपाल बोले—"मैं भी उनका पता लगाने स्वयं चलूंगा नहीं तो मेरा चित्त क्षणभर भी स्थिर न रहेगा।"

इस प्रकार निश्चय कर महाराज कमलाकर ने दूसरे ही दिन अपने मन्त्री प्रज्ञाढ्य के हाथ में राज्य सौंप दिया। मन्त्री ने बहुत कुछ समझाया और मना किया पर यहां सुनता ही कौन है। अस्तु वह मनोरथसिद्धि के साथ चुपचाप नगर से निकल चले। जहां जहां भगवान् के क्षेत्र तथा मुनियों के आश्रम पड़ते तहां २ ढूंढ़ते इसी प्रकार बन २ ढूंढ़ते फिरते थे; भला कौन ऐसा वीर जन्मा है जो मनोभव की आज्ञा टाल सके। इसी प्रकार घूमते २ दैवात् उस बन में पहुँचे

जहां हंसावली तपस्या कर रही थीं। वहां देखते हैं तो भास्वत् अशोक की जड़ पर हंसावली सुशोभित हैं मानों चन्द्रमा की अन्त्य कला हो, यद्यपि तपस्या के कारण शरीर क्षीण हो गया था और वह पाण्डुवर्ण हो गयी थीं तथापि मनोरम लगती थीं। उनको देखकर महाराज कमलाकर उस बन्दी से कहने लगे, "भाई मनोरथसिद्धि! यह निःशब्द और निश्चल ध्यानस्थ कौन है कोई देवता तो नहीं है क्योंकि इसका रूप अमानुष है, मनुष्यों में ऐसा सौन्दर्य्य कहां पाइये।" महाराज का ऐसा बचन सुन उसने ध्यान से जो देखा तो उसे निश्चित हो गया सो वह एकाएक बोल उठा "महाराज! आप धन्य हैं, महाप्रभो! आप हंसावली को ढूंढ़ रहे हैं यह तो वही हैं।" इतना सुनतेही हंसावली का ध्यान टूट गया, आंखें खोलकर देखें तो साम्हने दो जन खड़े हैं। बन्दी को तो देखतेही पहिचान गयीं, अब उनका दुःख मानों नया हो आया सो वह रो रोकर कहने लगीं—"हा तात! हा आर्य्यपुत्र! मैं व्यर्थ मारी गयी! हा मनोरथसिद्धि! हा विपरीतविधायक विधि!" इस प्रकार विलाप करती हुई वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ीं, उनकी ऐसी वाणी सुन तथा ऐसी दशा देख दुःखार्त्त हो कमलाकर भी पृथ्वी पर गिर पड़े। मनोरथसिद्धि ने दोनों जनों को ढाढ़स दिलाया। अब दोनों जनों को एक दूसरे का निश्चित ज्ञान हुआ उस समय उनके आनन्द का ठिकाना न रहा; बहुत दिनों के वियोग के उपरान्त अब जो संयोग हुआ इससे एक अनिर्वचनीय आमोद उन दोनों के हृदय में उमड़ आया। इसके उपरान्त उन दोनों ने परस्पर अपना २ वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् महाराज कमलाकर हंसावली को लेकर अपने बन्दी के साथ कोशलापुरी को लौट आये; महाराज मेघमाली के पास सन्देश भेजा गया, वह भी वहां आ विराजे; तब महाराज कमलाकर ने विधिपूर्वक हंसावली का रोगनाशक पाणी ग्रहण किया। अब हंसावली से संयुक्त हो कमलाकर विशेष शोभायमान हुए क्योंकि एक तो वह स्वयं विमलयशा थे, दूसरे हंसावली मिलीं जिनका पितृकुल तो शुद्ध था ही अब श्वशुरकुल भी विशुद्ध मिला। हंसावली का धैर्य्य फलित हुआ सो महाराज कमलाकर उनके साथ आनन्दपूर्वक रमण करते हुए सुख से दिन बिताने लगे। अब उन्होंने पृथ्वी का भार फिर अपने ऊपर उठाया, मनोरथसिद्धि भी उनके समीप ही रहता। इस प्रकार महाराज कमलाकर धर्म्म से पृथ्वी का शासन करने लगे।

इतनी कथा सुनाय वह वृद्ध पथिक भीमपराक्रम से कहने लगा कि वत्स! इसीसे मैं कहता हूं कि तुम भी धीरज धरो, धीरज धरने से कार्य सिद्ध हो जाता है। अतः शरीर मत त्याग करो क्योंकि जीते रहोगे तो कभी न कभी अपने प्रभु को अवश्य पाओगे। फिर मेरी यह बात भी गांठ बांध लो कि जो लोग विपत्ति के समय अपना धैर्य नहीं छोड़ते व सब कुछ पाते हैं, इससे धैर्य का त्यागना कदापि उचित नहीं है।

यों अपना वृत्तान्त सुनाय मन्त्री भीमपराक्रम मृगाङ्कदत्त से कहने लगा कि देव! इस प्रकार मुझे मरण से निवृत्त कर वह महात्मा वृद्ध पथिक जहां जाना था वहां चले गये और मैं भी उनके उपदेश से कुछ आश्वस्त हुआ।

चण्डकेतु के गृह में रात्रि के समय मन्त्री भीमपराक्रम इस प्रकार राजकुमार मृगाङ्कदत्त को अपना वृत्तान्त सुनाय फिर बोला कि देव। इसके उपरान्त मैं उज्जयिनी की ओर चला क्योंकि यह तो मैं जानताही हूं कि वहीं के लिये आप निकले हैं सो अवश्य वहां जावेंहीगी तो इधर उधर भटकने से क्या सिद्ध होगा; यह विचार मैं उधरही चला, वहां आप लोग न मिले; मैं थक तो गया ही था सो एक स्त्री के घर में उतरा, उसे भोजनादि सामग्री का मूल्य देकर मैं विश्राम का विचार करने लगा। उस स्त्री ने चट एक पलङ्ग बिछा दिया बस उसी पर मैं लेट गया; थकावट के कारण लेटतेही नींद आ गयी। थोड़ीही देर में मेरी नींद खुली तो बड़ा आश्चर्य देखने में आया, सो मैं चुपचाप पड़ा २ देखने लगा। उस स्त्री ने एक मुट्ठी यव लिये, कुछ मन्त्र पढ़कर उन्हें घर में चारों ओर छींट दिया, उसी क्षण वे जौ उग आये और देखतेही देखते बालें उनमें लग गयीं और दाने भी पक गये, उन्हें लव कर उसने भूंजा और पीसकर सत्तू बनाया। कांस के पात्र में रख कर उस सत्तू पर उसने थोड़ा सा जल छिड़का इसके उपरान्त पूर्ववत् गृह सजाय वह झटपट स्नान करने चली गयी।

यह व्यापार देख मुझे आश्चर्य तो बड़ा हुआ साथही मनमें यह भावना हुई कि यह कोई शाकिनी है, सो मैं धीरे से उठा, वह सत्तू तो मैंने दूसरे पात्र में रख दिया और उतनाही सत्तू दूसरे सत्तू के बर्तन से निकालकर उस बर्तन में रखा। इस बात की बड़ी ही सावधानी की कि दोनों सत्तू मिल न जावें। इतना काम

कर में जाकर चुपचाप उसी प्रकार पलंग पर सो रहा। इतने में वह स्त्री आयी, उसने मुझे जगाया और वही सत्तू खाने को दिया और आप सत्तू के उस बर्तन से निकालकर वह सत्तू खाया जो मैंने उलट पुलट दिया था। वह क्या जाने कि यहां ऐसी करनी की गयी है बस खातेही वह बकरी हो गई। मुझे तो यह चिन्ता लगीही थी कि इस दुष्टा ने मेरे साथ जैसी ठगी की है उसका पलटा अवश्य लेना चाहिये सो मैंने उसे एक बकरकसाव के हाथ बेंच दिया। इसका फल विपरीतही हुआ, उस चीक की भार्या क्रोध से जलजलाती मेरे निकट पहुँची और दांत पीसकर बोली "अरे दुष्ट! तूने मेरी सखी को धोखा दिया है इसका फल तू अवश्य भोगेगा।" उसका ऐसा तर्जन सुन मैं बड़ाही भयभीत हुआ सो मैं चुपके से उस नगर से निकल भागा, चलते २ थक गया और एक बड़ के पेड़ तले सो रहा। मैं नींद में अचेत पड़ा था कि वह योगिनी चीकिन वहां आयी और मेरे गले में यह डोरा बांध गयी। जब मेरी नींद खुली तो क्या देखता हूं कि मैं मयूर हो गया हूं। मैं मोर तो बन गया पर मेरी स्मृति जैसी की तैसी बनी रही। तब तो मैं बड़ाही उद्विग्न हुआ कि अब क्योंकर आपसे भेंट होगी, मेरा मानुष जन्म मट्टी में मिल गया; मैं व्याकुल हो इधर उधर परिभ्रमण करने लगा; कुछ दिनों के उपरान्त वहां एक बहेलिया आया उसने जीताही मुझे पकड़ लिया और लाकर भिल्लराज के प्रधान प्रतीहार इस चण्डकेतु को उपहार में दे दिया, प्रतीहार ने भी उसी क्षण मुझे अपनी भार्या के प्रति अर्पण किया उसने मुझे इस घर में पाल रक्खा है। आज देव! आप भी यहां आ पहुँचे और आपने जो मेरे कण्ठ का डोरा खोल लिया इससे मैं पुनः अपनी मानुषीय आकृति को प्राप्त हो गया हूं।

सो देव! अब यहां से अति शीघ्र खसक चलना चाहिये क्योंकि यह प्रतीहार बड़ाही पापी है; रात में जो उसके सहचर हो जाते हैं उन्हें वह यहीं बहका लाता है और प्रातःकाल उन्हें मार डालता है कि कहीं ऐसा न हो कि वे भेद खोल दें। आज रातभर इसके साथ घूमकर आपने इसका सारा काम देख लिया सो यह दुष्ट आपको भी यहां ले आया। अब आप एक उपाय कीजिये, योगिनी का बनाया हुआ जो यह गण्डा है उसे कण्ठ में बांध मयूर होके इस खिड़की से बाहर निकल जाइये और मैं हाथ बढ़ाकर आपके गले से गण्डा खोल लूंगा;

पश्चात् वही गण्डा अपने गले में बांधकर मोर बन मैं भी बाहर निकल आऊँगा, बस आप मेरे कण्ठ से गण्डा खोल देंगे इस प्रकार हमदोनों पूर्ववत् हो जावेंगे। यदि कहें तो ऐसेही निकल चलें क्योंकि द्वार बाहर से बन्द हैं इससे बाहर जाना कठिन है ।

परम बुद्धिमान् भीमपराक्रम का ऐसा कथन सुन मृगाङ्कदत्त उसी युक्ति से उसके साथ वहां से निकले और अपने डेरे पर पहुँचे जहां उनके अन्य दोनों मन्त्री थे। मृगाङ्कदत्तादि प्रसन्न हो परस्पर अपना २ वृत्तान्त सुनाने लगे; इस प्रकार कहते सुनते सारी रात बीत गयी ।

दूसरे दिन उस पल्ली का अधीश्वर भिल्लराज मायाबटु, मृगाङ्कदत्त के समीप आया। उसने मृगाङ्कदत्त से पूछा कि कहिये रात्रि तो सुख से कटी न। इस प्रकार की अनेक बातों से उनका मन प्रमुदित कर भिल्लराज ने उनसे कहा कि आइये अब जूआ खेला जाय तदनन्तर मृगाङ्कदत्त का सखा श्रुतधि भिल्लराज को उस प्रतीहार के सहित आया देख बोला—"जूआ खेलकर क्या होगा—क्या आप भूल गये ? कलही न यह बात हुई थी कि आज इस प्रतीहार के मयूर का नृत्य देखा जायगा सो इससे कहिये कि यह अपना मयूर ले आवे और उसका नृत्य दिखावे" यह सुन शबरेश्वरको भी स्मरण हो गया, बोले "हां हां आज तो नाच देखना है," बस उसने चट अपने प्रतीहार को आज्ञा दी कि जाओ अपना मयूर ले आओ। अब तो प्रतीहार को उस चोर का स्मरण हो आया, वह विचारने लगा—"ओः ! यह मैंने क्या किया कि उस रात्रि के रहस्य देखनेवाले चोर को मोर के घर में बन्द तो करवा दिया पर उसे घात न किया, अरे यह तो बड़ाही बुरा हुआ सो अब शीघ्र चलूं और दोनों काम सपराऊँ।" इतना सोच वह चटपट वहां से चल खड़ा हुआ और दौड़ता हुआ घर पहुंचा।

घर पहुंचतेही वह दौड़कर पहिले मोरवाले गृह में गया पर वहां देखे तो न वह चोर है और न तो वह मोरही है । अब तो वह फक्क हो गया, भय के मारे व्याकुल हो अपने स्वामी के पास लौट आया और बोला—"प्रभो ! वह मयूर तो घर में नहीं है, ऐसा भासता है कोई चोर रात में उसे चुरा ले गया।" इतना उसका कहना सुन मुस्कुराकर श्रुतधि बोला "ओह ! वह तो कोई बड़ा प्रसिद्ध

चोर है जो तुम्हारा मोर चुरा ले गया ।' इसपर मृगाङ्कदत्तादि एक दूसरे का मुंह निरख हँसने लगे, यह देख मायाबटु को बड़ाही आश्चर्य हुआ सो वह बड़े निर्बन्ध से उनसे पूछने लगा कि कहिये तो सही आपलोग क्यों हँस रहे हैं, अवश्य इसमें कुछ भेद है, कहिये बात क्या है?" मृगाङ्कदत्त ने जब देखा कि अब बिना कहे काम नहीं चलता तब जिस प्रकार उस प्रतीहार से रात को भेंट हुई, राजपत्नी के घर में जाकर उस कामी प्रतीहार ने क्योंकर रानी पर शस्त्र उठाया था, कैसे वह उस प्रतीहार के घर पहुँचे; क्योंकर भीमपराक्रम का मयूरत्व से छुटकारा हुआ, कैसे वहां से निकला, इत्यादि २ प्रतीहारसम्बन्धी सब बातें वह शबरेन्द्र को आद्यन्त सुना गये। यह सब वृत्तान्त सुनतेही शबरेन्द्र का मुँह लाल हो गया, उसने अन्तःपुर में जाकर देखा तो राजमहिषी पर छुरी का आघात पाया; पुनः आकर भीमपराक्रम के गले में वही गण्डा बँधवाया तो चट वह वैसाही मयूर बन गया सो उसने अन्तःपुर के दूषक उस प्रतीहार का उसी क्षण वध कर डाला। मृगाङ्कदत्त के बहुत कुछ कहने सुनने पर उस अविनीत रानी मञ्जुमती का तो उसने बध नहीं किया किन्तु उसे घर से निकाल कहीं दूर पर रख उसके साथ सम्पर्क छोड़ दिया ।।

दोहा।

एहि विधि तहँ कछु दिन रहे, पाये सचिव समेत ।
राजपुत्र जु मृगाङ्कदत, शबराधीश निकेत ॥
श्रीशशाङ्कवति हेतु सों, जदपि रहे अकुलाय ।
तदपि शेष सचीन के, लाभ हेतु अँटकाय ॥
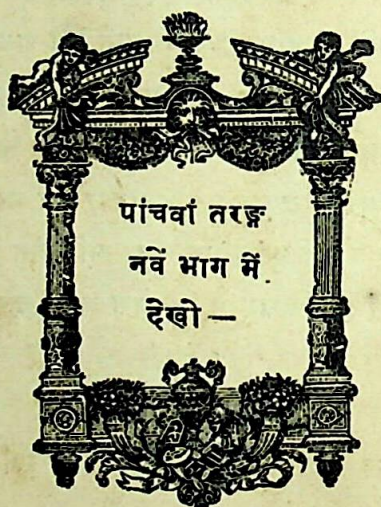
पांचवां तरङ्ग
नवें भाग में
देखो —

पाँचवाँ तरङ्ग ।

इस प्रकार राजपुत्र मृगाङ्कदत्त अपने पाये हुए विमलबुद्धि आदि मन्त्रियों के साथ भिल्लाधिपति मायाबटु के भवन में रहते थे । एक दिन की बात है कि शबराधिपति का आत्मीय चमूपति घबराया हुआ उसके समीप आया और इस प्रकार कहने लगा—"महाराज! आपने भगवती के उपहार के लिये जैसा पुरुष बतलाया था वैसा मिला तो सही पर आप से क्या कहूं वह एक अद्भुत योद्धा है। देखतेही देखते उसने हमारी ओर के पांच सौ वीरों को काट डाला, बहुतेरे प्रहारों से जब वह विवश हो गया तब हमलोगों ने उसे पकड़ लिया; अब वह यहां लाया गया है आज्ञा हो तो आपके समक्ष उपस्थित करूँ।" उसका ऐसा कथन सुन पलिन्देन्द्र ने उस से कहा झटपट यहां लाओ, देखें तो वह कौन है। सेनापति तुरत उसे राजसभा में लाया और सभास्थित सब लोग उसे देखने लगे, शस्त्र के घावों से लहू बह रहा था, रण की धूलि समस्त शरीर में लगी थी, उस समय वह कैसा जान पड़ता था जैसे कोई मतवाला हाथी पाश से बँधा हो जिसके गण्ड-स्थल से सिन्दूर के सम्पर्क से पङ्कित मद बह रहा हो। इतनेही में मृगाङ्कदत्त ने पहिचाना कि यह तो मेरा मन्त्री गुणाकर है, सो वह रोकर दौड़े और उसके गले में लिपट गये, वह भी उनके चरणों पर गिर पड़ा। मृगाङ्कदत्त के अन्यान्य मित्रों से यह जानकर कि यह उनका सचिव गुणाकर है, भिल्लेन्द्र भी उठा और अति नम्रता से उसे आश्वासन देने लगा; इसके उपरान्त वह उसे अपने भवन में ले गया जहां उसे स्नान कराया गया, घावों पर पट्टियां बांधी गयीं और वैद्य के बत-लाये पथ्य पान और भोजन से उपचार किया गया। जब वह कुछ आश्वस्त हुआ तो मृगाङ्कदत्त ने उससे पूछा कि सखे! कहो तुम्हारा वृत्तान्त क्या है? अब सबके सम्मुख वह गुणाकर बोला—"देव! सुनिये मैं अपना वृत्तान्त आपको सुनाता हूं"—

जब कि नागराज के शाप से मैं आप लोगों से अलग हुआ तब उस अटवी में इधर उधर भटकता फिरा, मुझे यह भी विदित नहीं कि मैं कहां जा रहा हूं मानों मैं उन्मत्त हो गया। कुछ कालोपरान्त जब मेरी बुद्धि ठिकाने आयी तब मैं दुःखित हो चिन्ता करने लगा कि यह दुःशिक्षित विधाता का खेल है। भला

जो मृगाङ्कदत्त राजप्रासाद में रहकर भी खिन्न हो जाया करते थे वह इस अटवी में क्योंकर रह अथवा चल सकेंगे जहां की बालू ऐसी अङ्गार सी लहलहा रही है और मेरे उन मित्रों की क्या दशा होगी। इस प्रकार विविध भावनायें मेरे मन में उठने लगीं। घूमता फिरता मैं दैवात् भगवती श्रीविन्ध्यवासिनीजी के धाम में पहुँचा, देवी के भवन में रात दिन नाना प्रकार के अनेक जीव जन्तु बलि होते थे जिससे उस भवन की उपमा यमसदन से दी जा सकती है, सो मैं उन भवन के भीतर गया। वहां मैंने जगदम्बा को प्रणाम किया और देखा कि वहीं एक पुरुष का शव पड़ा हुआ है, उसके हाथ में एक खड्ग था उसीसे अपना गला काट उसने आत्मबलि चढ़ाई थी। आपके वियोग से मेरा चित्त उद्विग्न तो था ही, पुनः उस मृतक आत्मोपहारक को देखकर मेरे मनमें यह भावना उठी कि मैं भी आत्मबलि चढ़ा के भगवती को सन्तुष्ट कर दूं। ज्योंही कि दौड़कर मैंने उसके हाथ मे खड्ग लेकर उठाया कि उसी क्षण दूर से मना करती हुई कोई एक कपाल वृद्धा तापसी वहां आयीं, वह ऐसी जुलजुल थीं कि बुढ़ौती से उनका शिर कांप रहा था; उन्होंने मुझे मरण से निवारण किया और पूछा कि कहो तुम्हारा क्या वृत्तान्त है तुम ऐसा निदारुण व्यापार क्यों करने चले हो। जब मैं अपना वृत्तान्त आरम्भ से सुना गया तब वह दयामयी फिर बोलीं "पुत्र! कभी ऐसा मत करो, सुनो ऐसा भी देखा गया है कि मृतकों का संयोग हुआ है फिर जीवतों के संगम का क्या पूछना है; इसी विषय की मैं तुमको एक कथा सुनाती हूं।

जगतीतल पर अहिच्छत्रा नाम्नी एक विख्यात नगरी है, पूर्व समय वहां राजा उदयतुङ्ग हुए थे जो बड़ेही प्रतापी थे। उनके पास एक कमलमति नामक प्रतीहार था वह भी बड़ाही पराक्रमी था; उसके एक पुत्र था जिसका नाम विनीतमति था; वह विनीतमति ऐसा गुणाकर था कि उस समय में उसकी जोड़ी का कोई भी न पाया जाता था। उसके पास समस्त गुण ऐसे विद्यमान थे कि मृणाल और चाप से उसकी तुलना नहीं हो सकती क्योंकि एक तो छिद्रयुक्त है दूसरा कुटिल(१)। एक समय की बात है कि वह सायङ्काल में सुधाधौतप्रासाद शिखर

(१) गुण शब्द पर यहां श्लेष है, कमल में गुण (तन्तु) होते हैं, धनुष की डोरी भी गुण के नाम से प्रसिद्ध है।

के ऊपर मञ्च पर बैठा हुआ था कि इतने में चन्द्रमा का उदय हुआ मानों काम-कल्पद्रुम के पल्लव का बना पूर्वदिशा की रजनी का उज्वल कर्णफूल हो। धीरे २ उसकी चन्द्रिका से जगत् शोभायमान हो गया, यह देख विनीतमति का मन अति हुलसित हुआ सो वह अपने चित्त में इस प्रकार विचारने लगा—"अहो! देखो न सुधासी चन्द्रिका से समस्त मार्ग कैसे शोभायमान हो रहे हैं, सो चल के किसी पर टहलूं न क्यों," ऐसा विचार वह अपना धनुष लेकर निकला और घूमने लगा। घूमते २ वह एक कोस निकल गया जहां उसे रोने की ध्वनि सुन पड़ी, अब वह उसी ओर चला जिधर से रोने का शब्द आता था, वहां जाकर क्या देखता है कि एक दिव्यरूप कन्या वृक्ष की जड़ पर बैठी रो रही है। विनीतमति उससे पूछने लगा—"हे शोभने! तुम कौन हो और क्यों यह चन्द्रवदन मलीन कर रही हो?" उसके ऐसे प्रश्न सुन वह बोली—"महात्मन्! नागपति गन्धमाली की मैं कन्या हूं, नाम मेरा विजयवती है। एक समय मेरे पिता रण से भाग गये इस पर वासुकि नाग ने उन्हें शाप दिया कि रे पापिष्ठ! तू रण से विरत हो गया इससे जा तू शत्रु के हाथ में पड़ उसका दास होगा। उन्हीं के शाप से मेरे पिता अपने बैरी कालजिह्व नामक यक्ष से हार गये, उन्हें उसने अपना अनुचर बना लिया अब सदा वह उनसे फल ढोलाता है। इस दुःख से मेरी छाती रात दिन जलने लगी, मुझे यही चिन्ता बनी रहती है कि क्या उपाय करूँ कि पिताजी इस बन्धन से छूटें। सो उन्हीं की मुक्ति के लिये मैंने भगवती गौरी की आराधना किई, देवी प्रत्यक्ष हुईं और मुझसे इस प्रकार कहने लगीं—"हे बेटी! सुन मान सरोवर के भीतर एक दिव्य सहस्रदल पद्म है; उष्णरश्मि की किरणों से जब वह प्रस्फुटित होता है और उसके दल चारों ओर छिटक जाते हैं उस समय उसकी अपूर्व शोभा हो जाती है उसके निरीक्षण से रत्नोंकी किरणों से सुशोभित शेषनाग के अनेक फणवाले शिर का अनुमान होता है। एक समय उस सरोवर में स्नान करने के लिये कुबेरजी आये सो उस कमल के लेने की अभिलाषा उनके मनमें हुई। स्नान कर वह भगवान् नीललोहित की अर्चना करने लगे। उसी समय उनके अनुचर यक्ष लोग चक्रवाक और हंसादि जलचरों का रूप धर उस सरोवर में विहार करने लगे। वहीं तुम्हारे शत्रु कालजिह्व का जेठा भाई अपनी भार्य्या के साथ चकवे

के रूप में क्रीड़ा कर रहा था कि दैवात् उसके पंख का झटका लगा और कुबेरजी के हाथ से अर्घ्यपात्र गिर पड़ा। धनद अपना क्रोध न सम्भाल सके, उन्होंने चट शाप दिया कि रे दुष्ट जा तू अपनी पत्नी के साथ इसी योनि में बना रह, बस वे दोनों चकवा चकवी होके वहीं रहने लगे। अब प्रति रात्रि में दोनों पृथक् २ रहने लगे सो कालजिह्व अपने विरहातुर ज्येष्ठ के प्रेम से प्रति रात्रि में उसकी स्त्री के रूप में आता है और अनेक प्रकार के सान्त्वना वाक्यों से उसे विनोदित करता है, इस प्रकार रात भर तो वह अपने भाई के साथ रहता है। सो हे पुत्रि! अहिच्छत्रा नगरी का रहनेवाला महावीर विनीतमति जो प्रतीहारपुत्र है वह बड़ा उद्यमी है, उसे तू वहां भेज, ले यह एक खड्ग और एक अश्व मैं तुझे देती हूं, इन्हीं के द्वारा वह वीरवर उसको मारकर तेरे पिता को मुक्त करावेगा। जो कोई पुरुष इस खड्गरत्न का स्वामी होगा वह समस्त शत्रुओं को जीतकर भूतल पर राज्य करेगा।

इस प्रकार वृत्तान्त सुनाय विजयवती फिर बोली कि महात्मन्! इतना कह देवी मुझे अश्व और खड्ग देकर अन्तर्धान हो गयीं। इसके उपरान्त आपके भेजने के लिये मैं यहां आयी, देवी के प्रसाद सहित आपको आज रात में बाहर निकला देख इसी युक्ति से रोने की ध्वनि सुनाय आपको यहां ले आई, सो हे सुभग! आप इतना मेरा अभीष्ट सिद्ध कर देवें। इस प्रकार उसकी प्रार्थना सुन बिनीत-मति उसके कार्य्यसाधन पर सम्मत हुए।

इसके उपरान्त जाकर वह नागकन्या तत्क्षण उस घोड़े को लाई, घोड़ा बड़ाही बेगवान् था वर्ण उसका श्वेत और ऐसा चमचमाता था कि आंखों मे चकाचौंधी लग जाती थी, मानों चन्द्रमा का रश्मिजाल दिगन्त के अन्धकार के नाश के हेतु अश्वरूप में आया हो। वह खड्ग जो वह लायी थी एक अद्भुतही प्रकाश रखता था; तारागणों के साथ जैसी शोभा गगनमण्डल की होती है वैसीही कान्ति उस खड्गरत्न की थी, जिसके अवलोकन से ऐसी भो भावना उठती थी कि मानों वीरों की वीरता की परीक्षा के हेतु साक्षात् लक्ष्मी देवी ने उसपर कृपाकटाक्ष किया हो। वह घोड़ा और खड्गरत्न उस नागकन्या ने विनीतमति को समर्पण कर दिये।

अब विनीतमति खड्ग और घोड़ा पाकर अश्वारूढ़ हुए और विजयवती के

साथ वहां से चला और उस अश्व के प्रभाव से बात की बात में मानसरोवर पर पहुँच गया जहां वायु के वेग से कमलनाल कम्पायमान हो रहे थे, और चकवे आर्त्तनाद कर रहे थे जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि कालजिह्व पर अनुकम्पा कर वे निषेध करते हों कि यहां मत आइये। वहां यक्षों के वश में गन्धमाली को देखकर उसने उसके छुटकारे के लिये उनपर खड्ग चलाया जिससे जर्जरित कलेवर हो सब भाग चले। यह देख कालजिह्व चकवी का रूप त्याग वर्षाकाल के मेघ के समान गर्जता हुआ उस सरोवर से निकला। दोनों में घोर संग्राम होने लगा, तब कालजिह्व आकाश में उड़ गया घोड़े के सहारे से विनीतमति भी वहीं जा पहुँचा पहुँचतेही उसने कालजिह्व के केश पकड़ लिये। ज्योंही कि वह केश पकड़ उसका शिरच्छेद किया चाहता था कि वह यक्ष अति विनती से चिरौरी करने लगा और उसकी शरण में आया, तब तो उसने उसे छोड़ दिया। छूटकर उस कालजिह्व ने अपनी अंगूठी उसे दी जिसमें यह गुण था कि जिसके पास वह रहे उसके ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति न पड़े और न उसके अधिकार में ईति (१) का भय हो। इसके उपरान्त उसने गन्धमाली को दास्य से मुक्त किया। गन्धमाली के पास वहां क्या था कि देकर ऋणमुक्त हो, उसके हर्ष का तो ठिकाना न था, सो अपनी कन्या विजयवती को उसे दे वह अपने घर चला गया। इतने में प्रभात हो गया सो विनीतमति खड्ग, अंगूठी, अश्व तथा कन्यारत्न को लिये अपने घर आया। पिता अपने पुत्र का वृत्तान्त सुन अति प्रमुदित हुआ और उसका अभिनन्दन करने लगा; उसके राजा भी इस वृत्तान्त के सुनने से अति हर्षित हुए। इसके उपरान्त विनीतमति ने विधिपूर्वक उस नागकन्या का पाणिग्रहण किया।

अब एक समय कमलमति ने चारों रत्नों तथा निज गुणों से युक्त अपने पुत्र से एकान्त में कहा कि हे पुत्र! महाराज उदयतुङ्ग जो हैं उनकी कन्या उदयवती सब विद्याओं में शिक्षिता है किन्तु महाराज ने यह पण किया है कि जो कोई ब्राह्मण हो या क्षत्रिय उन्हें शास्त्रार्थ में जीत ले उसी के साथ राजकन्या का विवाह कर देंगे। बहुतेरे शास्त्रार्थ करने आये पर सब हारकर चले गये; रूप तो उनका ऐसा है

(१) अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ, मूसे और सुग्गे ये छः ईतियां हैं।

कि जिसके साम्हने देवाङ्गना भी हार मान बैठी हैं। बेटा तू अपने क्षत्रियों के बालक में एकही वीर है तो इस समय तू चुप क्यों बैठा है अवसर क्यों चूकता है, जा राजकुमारी से शास्त्रार्थ कर उन्हें जीतकर उनका भी पाणिग्रहण कर ले। पिता की ऐसी बात सुन विनीतमति बोला "हे तात! अबलाओं के साथ मेरे समान लोगों का शास्त्रार्थ कैसा? तथापि आपकी आज्ञा शिर माथे, मैं राजकन्या से शास्त्रार्थ करूँगा।"

इस प्रकार पुत्र का कथन सुन कमलमति राजा के निकट गया और महाराज से कहने लगा कि पृथ्वीनाथ! मेरा पुत्र विनीतमति राजपुत्री से शास्त्रार्थ किया चाहता है सो कल वह यहां आवेगा और उनसे वाद-विवाद करेगा। राजा ने उसकी बात मान ली तब उसने घर जाकर अपने पुत्र विनीतमति से वह वृत्तान्त कह दिया।

अब प्रातःकाल होने पर समाज जुटने लगा, चहुँओर से विद्वान् लोग शास्त्रार्थ सुनने के लिये आ आकर राजसभा में बैठने लगे; कुछ कालोपरान्त महाराज उदयतुङ्ग भी आकर अपने आसन पर विराजमान हुए। तत्पश्चात् शास्त्रार्थ करनेवाला विनीतमति उस विद्वन्मण्डली में आया उसके आतेही सभा मानों प्रकाशित हो गयी और चारों ओर से गुणी लोग उसके मुख की ओर टकटकी लगाये देखने लगे। कुछ कालोपरान्त कामदेव की प्रत्यञ्चा के समान गुणालङ्कृता राजपुत्री उदयवती भी मन्थरगति से वहां आ विराजीं; राजकुमारी के सब आभूषण गुणवान् थे क्योंकि उनसे जो शब्द निकलता था उससे एक विचित्र ध्वनि का उद्गम होता था उन्हीं आभूषणों के शब्द से यह भी प्रकट होता था कि पूर्वपक्ष को मानो उपेक्षा कर रहे हों। राजकुमारी मरकतमणि के सिंहासन पर शोभित हुईं, स्वच्छ आकाश में निर्मल इन्दुलेखा की शोभा जैसी होती है राजकन्या की वैसीही शोभा इस समय थी।

अब राजकुमारी ने पूर्वपक्ष उठाया, उस समय यह भासा कि वह अपने प्रकाशमान दन्तों की किरणरूपी तन्तुओं में सुललित पदरत्नों की माला गुह रही हों। राजकन्या ने प्रश्न तो किया किन्तु विनीतमति ने तत्क्षण यह सिद्ध कर दिया कि यह प्रश्नही अशुद्ध है, इसका जो सिद्धान्त होगा वह भ्रमात्मक रहेगा। तब

राजदुलारी ने दूसरा प्रश्न किया, विनीतमति ने उसका भी खण्डन कर दिया। इसी प्रकार वह सुमुखी उदयवती जो जो प्रश्न करतीं विनीतमति तत्क्षण खण्डन कर उन्हें निरुत्तर कर देता । इस पर सभा में जितने लोग बैठे थे सबके सब जयजयकार कर विनीतमति की स्तुति करने लगे । इस प्रकार पराजित होकर भी उत्तम भर्त्ता की प्राप्ति के कारण राजकुमारी अपनाही जय मानती थीं। राजा उदयतुङ्ग के आनन्द का ठिकाना न था क्योंकि आज उनका मनोरथ पूर्ण हुआ, सो उन्होंने तत्क्षण सब वैवाहिक विधान कर अपनी कन्या उदयवती का विवाह विनीतमति से कर दिया, और यौतुक में असंख्य रत्न, कन्या और जामाता को दिये। अब कृती विनीतमति उन दोनों नागसुता और राजसुता के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

एक दिन की बात है कि विनीतमति अपनी सभा में बैठा था उसके कुछ मित्रों ने बात छेड़ी कि भाई जूआ होना चाहिये, चलो जूआ आरम्भ हो गया। विनीतमति हारने लगा और दूसरे लोग जीतने लगे । इससे उसका मन बड़ा व्याकुल हुआ; इसी अवसर में एक भूखा ब्राह्मण आया और भोजन मांगने लगा । विनीतमति इधर जूए में लीन था उधर ब्राह्मण भी अपना टर्रा लगा मचाने; विनीतमति हारते हारते चिड़चिड़ा तो उठाही था कि इस ब्राह्मण के हठ से और भी झुंझला गया, उसने एक सेवक से कान में कह दिया कि किसी बर्तन में बालू भर कपड़े में लपेट कर इसे दे दो; चलो उसी प्रकार कर दिया गया। बर्तन भारी था इससे ब्राह्मण अपने मन में सोचने लगा कि इसमें सोना भरा होगा सो किसी निराले स्थान में चलकर खोलना चाहिये; एकान्त में जाके खोले तो क्या देखता है कि पात्र बालुकापूर्ण है इसपर पात्र धरती पर पटककर वह बोला, "ओ: उसने मुझे अच्छा धोखा दिया," इतना कह विचारा ब्राह्मण अतिही उदास हो अपने घर चला गया। जब ब्राह्मण भीख लेकर चला गया तब विनीतमति भी जूआ छोड़ उठ खड़ा हुआ और जाकर अपने नित्यकर्म में लीन हो गया। इस प्रकार वह अपनी दोनों भार्य्याओं के साथ सुखपूर्वक रहता पर उसे इस बात का स्वप्न में भी खटका न था कि मैंने किसी ब्राह्मण को हताश किया है, उसका फल परमात्मा की ओर से क्या मिलेगा।

इस प्रकार समय बीतते २ महाराज उदयतुङ्ग की बुढ़ौती आ गयी, अब वह सन्धिविग्रहादि कार्य्यों में असमर्थ हो गये तथा राज्य का भार भी उनसे न चलता। उनके कोई पुत्र तो थाही नहीं सो जामाता विनीतमतिही को राजासन पर अभिषिक्त कर आप गङ्गाजी के तट पर जाकर तपस्या में तत्पर हुए कि यह कलुषित देह फिर न मिले। राज्य पाने के थोड़ेही कालोपरान्त महाराज विनीतमति दिग्विजय को निकले और अपने अश्व तथा खड्ग के प्रभाव से दशों दिशाएँ जीत निज राज्य में लौट आये और धर्म्म से प्रजापालन करने लगे। उस ईतिनाशक अंगूठी के प्रभाव से उनके राज्य में किसी प्रकार का रोग नहीं था न दुर्भिचही होता था, उनका राज्य महाराज रामचन्द्र के राज्य की नाईं था।

एक समय की बात है कि वादिद्विरदकेसरी (१) रत्नचन्द्रमति नामक एक भिचु (२) राजाके समीप आया। महीपति ने बड़े हर्ष से सत्कारपूर्वक उसका आतिथ्य किया। तब उसने उनसे कहा—"राजन्! आप गुणियों का समुचित सत्कार करते हैं और वाद (३) में अद्भुत शक्ति रखते हैं, यह सुन मैं बड़ी दूर से आपके साथ शास्त्रार्थ करने आया हूं, और सुनिये हम दोनों के बीच यह पण होगा कि यदि तुम हार जाओ तो बुद्धदेव का शासन ग्रहण करो और यदि मैं हार जाऊँ तो अपनी कौपीन सौपीन फेंकफांक ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा करूँ," यह सुन राजा ने कहा, "तथास्तु," अब शास्त्रार्थ होने लगा। पूर्वपच उत्तरपच उठते और क्रमानुसार सबका समाधान होता; इस प्रकार सात दिन पर्य्यन्त राजा विनीतमति उस भिचु से शास्त्रार्थ करते रहे आठवें दिन भिचुक ने उन्हें जीत लिया जिन्होंने कि समस्त वादियों को हरानेहारी उदयवती को जीत लिया था। तब उस भिचु ने राजा को बुद्धधर्म्म की शिचा दी और बताया कि इस धर्म्म का प्रधान उद्देश्य यह है कि परोपकार अर्थात् जीवों का उपकार करना, इससे बढ़कर दूसरा पुण्य हैही नहीं राजा विनीतमति के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुई सो उन्होंने बड़े आदर से वह धर्म्म ग्रहण किया और ज़िन देव की पूजा में तत्पर हो

(१) शास्त्रार्थ करनेवाले जो गजों के समान हैं उनके लिये जो सिंह समान है।
(२) जैन संन्यासी। (३) शास्त्रार्थ।

भिक्षुक, ब्राह्मण तथा सर्वसाधारण के उपकार के लिये विहार (१) बनवा दिये, सत्र (२) खोल दिये और धर्म्मशालाएं बनवा दियीं।

इस प्रकार अभ्यास करते २ राजा का हृदय शुद्ध हो गया सो उन्होंने उस भिक्षुक से यह प्रार्थना की कि हे महात्मन्! बोधिसत्त्व की सर्वोपकारिणी चर्य्या की आज्ञा दीजिये। महीपति का ऐसा प्रश्न सुन वह भिक्षुक बोला—"राजन्! जिनके पाप निर्मूल हो गये हों वेही तो बोधिसत्व की महाचर्य्या कर सकते हैं, दूसरे नहीं; जबलों लेशमात्र पाप रहे इसका अभ्यास नहीं हो सकता। हमलोगों के चर्मचक्षु से तो आप में ऐसा कोई स्थूल पाप नहीं दीख पड़ता, स्थूल दृष्टि से स्थूलही पाप देखे जा सकते हैं, सूक्ष्म पाप को मैं नहीं कह सकता, कदाचित् आपमें कोई सूक्ष्म हों। सो अब मैं आपको एक उपाय बतलाता हूं उसीसे आप देखें कि आपमें कोई सूक्ष्म पाप है या नहीं, जो कोई पाया जाय तो उसका शमन कीजिये।" इस प्रकार कहकर उस भिक्षुक ने राजा को एक स्वप्नमाणव (३) बता दिया. राजा ने उसीके प्रभाव से रात्रि में एक स्वप्न देखा जिसका वर्णन उन्होंने प्रातःकाल उस भिक्षु से इस प्रकार किया। "आचार्य्य! आज स्वप्न में मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं परलोक में गया हूं, वहां मुझे बड़ी कड़ी भूख लगी सो मैं वहां के रक्षकों से अन्न मांगने लगा; वे दण्डधारी पुरुष बोले—"राजन्! लो यह बहुत सा बालू है इसे भकोसो (फांको), एक समय भूखा ब्राह्मण तुमसे अन्न मांगने आया था तो तुमने बालूही दी थी अब वही तुम खाओ क्योंकि यह तुम्हारी कमाई है। जो तुम दश करोड़ सुवर्णमुद्रा दान करो तो इस पाप से छूट सकते हो।" उन दण्डहस्तों (४) की इतनी बात सुनकर मैं जाग पड़ा और साथही रात भी बीत गई।"

इस प्रकार स्वप्नवृत्तान्त सुनाय राजा ने दश करोड़ स्वर्णमुद्रायें दान कीं पश्चात् उन्होंने पुनः स्वप्नमाणव का अनुष्ठान किया। फिर स्वप्न देखा और प्रातःकाल उठकर अपने गुरु को कह सुनाया—"गुरो! आज भी मैंने वही बात देखी परलोक में उन पुरुषों ने बालूही मुझे खाने को दी। जब मैंने उनसे पूछा कि

(१) जैन संन्यासियों का मठ। (२) अन्न सत्र ज़हां अन्न बँटे। (३ एक मन्त्र, जिसके प्रभाव से स्वप्न में ज्ञेय विषय ज्ञात हो जाय। (४) जिनके हाथ में डंडे थे।

मैं तो दश करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दान कर चुका हूं क्या अब भी बालुकाही खानी पड़ेगी? इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि वह दान तो तुम्हारा निष्फल हो गया क्योंकि उसमें एक मुद्रा ब्राह्मण की थी। इतना जब सुना तब मेरी नींद टूट गयी।" इस प्रकार स्वप्न का वर्णन कर राजा ने अर्थियों को पुनः दश करोड़ सुवर्णमुद्रायें दान कीं।

जब रात हुई तब राजा ने फिर वही स्वप्नमाणव किया और जो कुछ देखा सो प्रातःकाल अपने गुरु को कह सुनाया—"महाराज! आज भी वही बात! आज भी परलोक में उन्होंने सिकताही खाने को दी। जब मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—"राजन्। तुम्हारा यह दान भी निष्फल गया क्योंकि तुम्हारे राज्य में डाकुओं ने आज अरण्य में एक ब्राह्मण को मार डाला है और उसका सर्वस्व छीन लिया है। तुम्हारी ओर से ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं था कि उस ब्राह्मण की रक्षा होती, इसीसे तुम्हारा यह दान भी निष्फल हो गया, सो अब तुम उसका दूना दान करो तो काम चले।" इतना सुनतेही मैं जाग उठा"। इस प्रकार अपने गुरु उस भिक्षुक को स्वप्नवृत्तान्त सुनाय राजा ने आज दूना दान दिया।

इसके उपरान्त राजा ने अपने आचार्य्य उस भिक्षुक से पूछा कि 'हे गुरो! जब कि धर्म्म में ऐसे ऐसे सङ्कट व्याप्त हैं तो मेरे समान लोकों से क्योंकर उसका पालन हो सकता है? अपने शिष्य का ऐसा प्रश्न सुन वह भिक्षुक बोला—"राजन्। धर्म्मरक्षा में कभी अनुत्साह न करना चाहिये; जो हो पर मति उसी ओर बनी रहे, कदापि उधर से हटे नहीं। जो लोग धैर्य्य धारण कर उत्साह सहित अपने धर्म्म का पालन करते रहते हैं, देवगण उनकी रक्षा करते और उनकी अभिलाषा पूरी करते हैं। भगवान् बोधिसत्व ने वाराह शरीर धारण किया था, यह कथा जो आप न जानते हों तो सुनिये मैं आपको सविस्तर सुनाता हूं।"

पूर्व समय की बात है कि विन्ध्याचल की गुहा में बुद्धांशसम्भव (१) कोई वराह बड़ा बुद्धिमान्, अपने मित्र एक मर्कट के साथ रहता था। वह अपने सुहृद् के साथ सदा सब जीवधारियों का हितसाधन किया करता और जो कोई अतिथि

(१) बुद्ध के अंश से उत्पन्न।

आ जाता तो उसका समुचित सत्कार करता; इस प्रकार वह धर्म्मपूर्वक अपने दिन बिताता था। एक समय दुर्दिन (१) उपस्थित हुआ पांच दिन पर्य्यन्त लगातार मूसलधार पानी बरसता रहा जिससे समस्त जीव जन्तुओं को बड़ाही कष्ट हुआ। पांचवें दिन की बात है कि वह वराह रात्रि के समय अपने मित्र उस कपि के साथ सोया था कि उसकी गुफा के द्वार पर एक सिंह अपनी स्त्री तथा पुत्र के साथ आया। सिंह अपनी भार्या से कहने लगा—"प्रिये! क्या किया जाय, ऐसे दुर्दिन में भोजन कहां मिले; ऐसी झड़ी लगी है कि बाहर निकलना भी कठिन हो गया है लो अहेर का पाना कहां! उसकी तो कुछ बातही नहीं; इधर भूख के मारे प्राण भी कण्ठगत हो गये हैं बस अब निश्चय जानो कि हम सभों की मृत्यु आ गयी अब इससे निस्तार नहीं है।" सिंह का ऐसा कथन सुन सिंही बोली—"नाथ! ठीक कहा, भूख से अब हम सभों का जीवन अन्त हुआही चाहता है, ऐसी अवस्था में मुझे एक उपाय सूझता है सो यह है कि मुझे खाकर तुम दोनों अपना जीवन धारण करो; तुम तो प्रभुही हो और यह पुत्र हम दोनों का प्राणसर्वस्व है; मेरी सी पत्नी तो तुमको और भी होती रहेंगी; सो मेरेही प्राण जांय तो जांय पर तुम दोनों तो बच जाओगे।"

इस प्रकार गुफा के द्वार पर सिंह और सिंहनी परस्पर अलाप कर रहे थे कि उसी समय दैवात् वराह महाशय की नींद खुल गयी सो वह उनका कथोपकथन विचारने लगा, फिर वह अति प्रसन्न हो अपने मनमें इस प्रकार चिन्ता करने लगा—"अहो भाग्य! भला कहां यह निशा और कहां ऐसा दुर्दिन फिर कहां ऐसे अतिथियों की प्राप्ति! आज मेरे पुण्यों का उदय हुआ है। सो यदि कोई विघ्न न आ पड़े तो अपने इस क्षणभङ्गुर शरीर से इन अतिथियों को क्यों न तृप्त कर देऊँ।" इतना सुन वह उठा और बाहर जाकर स्नेहमयी वाणी से सिंह से कहने लगा,—"भाई तुम विषाद मत करो, मैं तुम्हारा भक्ष्य उपस्थित हुआ हूं सो तुम तुम्हारी स्त्री और तुम्हारा पुत्र सब मिल के मुझे खाओ।" वराह की ऐसी उक्ति सुन वह केसरी अपनी भार्य्या से कहने लगा कि पहिले यह बच्चा खा ले,

(१) जब लगातार वृष्टि होती रहती है और कई दिन लों सूर्य्यनारायण के दर्शन नहीं होते, ऐसा समय दुर्दिन कहलाता है।

तब मैं खाऊँगा इसके पीछे तुम खाना। सिंहिनी ने कहा "बहुत अच्छा", तब सिंह के पोत ने इच्छापूर्ण भोजन किया, तिसके पीछे उस वराह का मांस वह सिंह खाने लगा। जब कि वह भकोस रहा था कि वराह ने कहा, "भाई सिंह झटपट मेरा यह रक्त पी जाओ नहीं तो धरती सोख जायगी और मेरे मांस से अपनी तृप्ति करलो फिर जो शेष रहे वह तुम्हारी प्रिया खावे।" इस प्रकार वह कह ही रहा था कि सिंह उसको चट कर गया उसकी हड्डीमात्र शेष रह गयी; यद्यपि सूकर इस दशा को पहुँच गया तथापि उसके प्राण न निकले मानों उसके धैर्य्य की चरमसीमा के निरीक्षणार्थ वे स्थित हो रहे। इतनेही में क्षुधा की असह्य वेदना से वह सिंही मर गयी और अपने सुत के साथ सिंह न जाने कहां चला गया और इसी अवसर में रात्रि भी बीत गयी।

अब वराह का मित्र वह मर्कट जागा, बाहर आकर देखे तो वह उस दशा में पड़ा हुआ है, देखतेही तो वह दंग हो गया कि यह क्या व्यापार है सो बड़े आश्चर्य्य से उससे पूछने लगा कि हे सखे! यदि कह सकते हो तो बतलाओ तुम्हें किसने इस दशा को पहुँचाया है।" अपने मित्र का ऐसा प्रश्न सुन वह धीर सूकर आद्यन्त सब वृत्तान्त सुना गया। तब तो वह कपि उसके पांवों पर गिर पड़ा और रोकर कहने लगा कि 'भाई तुम पशु नहीं हो, तुम तो कोई देवता हो तुम तो भले इस तिर्य्यक् योनि से मुक्त हो गये। अच्छा कहो अब तुम्हारे मनमें क्या अभिलाषा है जो हो सो निस्सङ्कोच कह डालो मैं उसकी सिद्धि का उपाय करूँ'। मर्कट की ऐसी बात सुन वह वराह बोला—"भाई! मेरे मनमें जो अभिलाषा है वह विधि से भी दुःसाध्य है, देखो तो सही मेरे देखते २ यह भूखी सिंही विचारी मर गयी। सखे! अब मेरा चित्त यही चाहता है कि मेरा शरीर पूर्ववत् हो जावे और यह सिंहनी जीकर उसे खाकर तृप्त हो।"

वराह अपने मित्र से इस प्रकार कहही रहा था कि उसी अवसर में भगवान् धर्म्म साक्षात् वहां उपस्थित हुए और अपना हाथ उस वराह पर फेर उन्होंने उसे दिव्य शरीरधारी मुनीन्द्र बना दिया और उससे कहा, "यह मेरीही माया है, सिंहादिक कुछ नहीं हैं; तुम बड़े परोपकारी हो इसी की परीक्षा मैं किया चाहता था सो मैंनेही यह माया रची थी कि देखूं तुम कहां लौं दृढ़ रहते हो; परन्तु

हां तुम तो स्थिर बने रहे टुक भी अपने धर्म्म से न हटे; बस इस परोपकारिता की पराकाष्ठा दिखा तुमने मुझ धर्म्म को जीत लिया और उसी के प्रभाव से यह मुनीन्द्रता प्राप्त की है।" धर्म्मराज की ऐसी बात सुन तथा उन्हें साम्हने खड़ा देख वह मुनि बोला, "भगवन्! मैं मुनीन्द्र बन गया, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि यह बड़े आनन्द का विषय है पर इससे मुझे किञ्चित् भी आह्लाद नहीं है, हां आह्लाद तब हो कि जब यह मेरा मित्र मर्कट भी तिर्य्यक् योनि से मुक्त हो जाय।" उसका इतना कथन सुन धर्म्म भगवान् ने उस मर्कट को भी मुनि बना दिया। इतना कर धर्म्म भगवान् अन्तर्धान हो गये और मरी सिंहनी भी लोप हो गयी। ठीकही कहा है—'कोहि न सुसंग बड़प्पन पावा॥'

इतनी कथा सुनाय वह भिक्षुक विनीतमति से फिर कहने लगा कि राजन्! देखा न आपने जो लोग अपने सत्वबल से निज धर्म्म पर दृढ़ बने रहते हैं उनकी सहायता देवता लोग करते हैं और वे लोग अपना अभीष्ट पाते हैं।

इस प्रकार उस भिक्षुक का उपदेश सुन दानशूर राजा विनीतमति ने रात्रि में उस स्वप्नमाणव का फिर अनुष्ठान किया और जो स्वप्न देखा प्रातःकाल होने पर अपने गुरु उस भिक्षुक को कह सुनाया। राजा बोला, "हे गुरो! आज मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि कोई दिव्य मुनि मुझसे कह रहा है कि "पुत्र! अब तू निष्पाप हो गया सो तू अब बोधिसत्त्व की चर्या कर।' उसके वचन सुनकर मैं जाग पड़ा और आज मेरा अन्तरात्मा भी प्रसन्न है।" इस प्रकार गुरु से निवेदन कर महीपति ने शुभ दिन में उनकी आज्ञा पाय उस महाचर्य्या का अवलम्बन किया। अब वह बैठकर अतिथियों को यथेष्ट धन देने लगे, अनवरत द्रव्य की वृष्टि करने लगे; जितना वह उठाते उतना बढ़ जाता उनका भण्डार अक्षय हो गया; ठीक है कि सम्पत्ति का मूल धर्म्मही है। क्याही उचित कहा गया है – !

तुलसी चिड़ियन के पिये सरिता घटे न नीर।
दान दिये धन ना घटे जो सहाय रघुबीर॥ १॥

एक समय एक अर्थी ब्राह्मण राजा विनीतमति के पास आया और कहने लगा, "राजन्! मैं पाटलिपुत्र का रहनेवाला ब्राह्मण हूं; मेरी अग्निशाला एक ब्रह्मराक्षस ने घेर रक्खी है मेरे पुत्र को भी उसने पकड़ लिया है; अब इस विषय

में मुझे कोई उपाय नहीं सूझता कि क्या करूँ क्योंकर उस दुष्ट से पिण्ड छूटे। आप अर्थियों के लिये कल्पवृक्ष हैं सो आपही से याचना करने आया हूं; आप सब दोषों को नाशनहारी यह अंगूठी मुझे दे देवें तो मेरा उद्धार हो नहीं तो और कोई उपाय नहीं है।" इस प्रकार उस अर्थी ब्राह्मण की प्रार्थना सुन महाराज विनीतमति कुछ भी नहीं हिचकिचाये, और बिना कुछ आगापीछा सोचे उन्होंने कालजिह्व से पाई हुई वह अंगूठी उस ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण जब अंगूठी लेकर चला गया तब राजा का यह यश दिग्दिगन्त में व्याप गया, चहुँओर उनके बोधिसत्व व्रत की प्रशंसा होने लगी।

इसके उपरान्त एक समय उत्तर दिशा से इन्दुकलश नामक एक राजपुत्र उनके यहां अतिथि आया। राजा को उसने बड़ी नम्रता के साथ प्रणाम किया, महाराज विनीतमति ने उससे वंशादि पूछा तो ज्ञात हुआ कि वह एक उत्तम कुल का राजकुमार है। तब महीपति ने उससे पुनः प्रश्न किया कि "कहो इन्दुकलश! किस अर्थ से चले? इसपर वह राजपुत्र अपने आने का कारण बतला चला, "महाराज! आप अर्थियों के चिन्तामणि हैं, यह बात धरातल पर प्रसिद्ध है; यदि कोई आपके प्राणों का भी प्रार्थी आवे तो वह विमुख होकर नहीं जाता। मेरा वृत्तान्त यह है कि मेरे भाई कनककलश ने मेरा राज्य छीन लिया और मुझे राज्य से बाहर निकाल दिया है; अब मैं आपके पास अर्थी होकर आया हूं। हे वीर! आपके पास एक घोड़ा और एक खड्ग अत्युत्तम रत्न हैं सो आप उन्हें मुझको दे देवें तो उन्हीं के प्रभाव से मैं अपने भाई को जीतकर अपने पिता का राज्य फिर हस्तगत कर लेऊँ।" इतना सुनतेही निज राज्य के रक्षामणिरूप खड्ग और अश्व राजा विनीतमति ने उस राजपुत्र को दे दिये और उनके मानस में किञ्चिन्मात्र विकल्प न हुआ कि भला यह क्या कर रहा हूं राज्य की रक्षा क्योंकर होगी यदि कभी टेढ़ा मेढ़ा समय आ गया तो प्रजा किसकी शरण लेगी। मन्त्रियों को तो यह बात बड़ी कसकी पर वश क्या था, वे नीचे मुंह करके लम्बी साँसें भरतेही रह गये और महाराज ने निःसङ्कोच वे रत्नयुगल राजपुत्र को दे डाले। राजकुमार ने अश्व और खड्ग पाकर अपने भाई पर चढ़ाई कियी और उनके प्रभाव से उसे जीत अपना राज्य पुनः हस्तगत कर लिया।

अब इन्दुकलश के भ्राता कनककलश को राज्य से च्युत हो जाने के कारण बड़ी ग्लानि हुई सो वह राजा विनीतमति की नगरी में चला गया और वहां उसने अग्निप्रवेश का उपक्रम आरम्भ कर दिया। महाराज के कानों में यह बात पड़ी सो उन्होंने अपने मन्त्रियों से कहा कि यह विचारा मेरेही अपराध से इस दशा को पहुँचा है सो अब मैं अपना राज्य उसे देकर उससे उऋण होता हूं। यदि मेरा राज्य पराये का उपकार न कर सका तो किस काम का! फिर मेरे कोई सन्तान तो हैही नहीं तो यही मेरा पुत्र होवे और राज्य धारण करे।" मन्त्रियों को यह बात भला कब रुचे, वे आनाकानी करने लगे पर महाराज विनीतमति ने एक भी न सुनी उन्होंने कनककलशको बुलाकर अपना राज्य देही तो डाला।

कनककलश को राज्य देकर महाराज विनीतमति बिना किसी प्रकार का विकल्प किये अपनी दोनों भार्य्याओं के साथ राज्य से निकल खड़े हुए। "हा! हा!! धिक्कार है; हा! यह सम्पूर्ण अमृतदीधिति * अभी उदय हुए और तुरत अकाण्डमेघ ने आकर उन्हें घेर लिया। यह महाराज समस्त देहधारियों की आशापूर्त्ति में प्रवृत्त हुए, प्रजाओं के लिये यह कल्पवृक्ष हैं सो विधि इन्हें कहां ले चला। हा! दैव की गति भी कुछ जानी नहीं जाती।" इस प्रकार भांति भांति के विलाप करते और रोते पीटते आंसुओं से धरती सींचते प्रजावर्ग राजा के पीछे हो लिये। राजा विनीतमति ने किसी प्रकार समझा बुझाकर अपनी प्रजा को लौटाया। इसके उपरान्त वह अकम्पित हो अपनी दोनों भार्य्याओं के साथ जङ्गल की ओर चले। कोई वाहन तो थाही नहीं तीनों जन पांवही पांव चले जाते थे।

चलते २ एक मरुभूमि में पहुँचे जहां न कहीं पानी और न कहीं कोई वृक्षही दिखाई पड़ता था, सूर्य्यनारायण की प्रखर किरणों से बालू भी उत्तप्त हो रही थी; मानो विधि ने उनके धैर्य्य की परीक्षा के हेतु उस मरुभूमि की सृष्टि की हो। भूख से तथा मार्ग चलने से तीनों जन व्याकुल हो रहे थे सो राजा विश्राम करने के हेतु पत्नी सहित एक स्थान में बैठ गये बैठतेही क्षणभर में सबको नींद आ गयी। जब नींद खुली तो राजा क्या देखते हैं कि साम्हने एक प्रशस्त और अद्भुत उद्यान विद्य-

* अमृत सी शीतल हैं चन्द्रिका जिसकी, अर्थात् चन्द्रमा।

मान है, जो कि उनके पुण्यप्रताप से बना था; जिसमें एक बावड़ी है जिसका जल शीतल और स्वच्छ, जिसमें पद्म विकसित हैं। बाटिका में जिधर दृष्टि फेरो उधरही नोली नोली और हरी हरी घासें दीख पड़ती हैं और सब वृक्ष फलों के बोझ से झुक गये हैं। कहीं २ पादपों की शीतल छाया में सुचिक्कण बड़ी बड़ी शिलायें बिछी हैं। उस उद्यान के निरीक्षण से ऐसी भावना मनमें उदित होती है मानो राजा के पुण्यप्रभाव से नन्दनवन स्वर्ग से खिंच पड़ा हो। बाटिका देख देख राजा बड़े अचम्भित होते और मनमें विचारते कि यह मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं अथवा मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हो गया है। इस प्रकार वह विस्मय में पड़े थे कि आकाश से दो हंसों के रूप में दो सिद्धों की वाणी उन्हें सुन पड़ी—"राजन्! यह तो तुम्हारे पुण्यप्रताप का परिणाम है इसमें तुम क्यों चमत्कृत हो रहे हो, सो इस फल पुष्प से परिपूर्ण कानन में यथेच्छ वास करो।" सिद्धों का ऐसा कथन सुन राजा विनीतमति का भ्रम दूर हुआ, वह अति प्रमुदित हुए और अपनी दोनों पत्नियों के साथ तपस्या करते हुए उस कानन में रहने लगे।

एक समय वह एक शिला पर बैठे थे तो एक ओर जो उनकी दृष्टि गयी तो क्या देखते हैं कि पासही में एक पुरुष पेड़ में फांसी लगाकर मरने की चेष्टा कर रहा है। राजा अति शीघ्र उसके पास दौड़ गये और प्रिय बचनों से उसे समझा बुझा वैसा अनर्थ करने से विरत कर उससे पूछने लगे कि भाई ऐसा अनर्थ तुम क्यों करने चले हो, कहो तो सही इस प्रकार प्राण देने का कारण क्या है? तब वह पुरुष बोला "महात्मन्! सुनिये मैं जड़ से सारा वृत्तान्त सुना जाता हूं।"

मैं सोमवंशी नागशूर का बेटा हूं, और नाम मेरा सोमशूर है। जब कि मेरा जन्म हुआ उस समय मेरे पिता ने जातक के ज्ञाता ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा कि आप लोग इस बालक के लक्षण बतलावें कि यह कैसा होगा? उन्होंने विचार कर कहा कि यह लड़का चोर निकलेगा। यह सुनतेही मेरे पिता को बड़ा दुःख हुआ पर वश क्या? तथापि उसके बचाव के लिये उन्होंने मुझे बड़े प्रयत्न से धर्म्मशास्त्र की शिक्षा दिलवाई। धर्म्मशास्त्र पढ़कर भी मैं दुष्ट संगति में फँसकर चोरी करने लगा, भला पूर्वजन्म के कर्म कौन अन्यथा कर सकता है। ठीकही कहा है—

करमरेख नहिँ मिटै करै कोइ लाखों चतुराई ॥

एक समय ऐसा हुआ कि नगर के रक्षकों ने चोरों के साथ मुझे पकड़ लिया बस अब क्या, वे शूली पर चढ़ाने के लिये बधस्थान को ले चले। इतने में क्या हुआ कि राजा का बड़ा हत्था मस्त हो गया सो सिक्कड़ तोड़ वह निकल भागा और मार्ग में जितने जीव जन्तु साम्हने पड़े उन्हें कुचलता चीड़ता फाड़ता वहीं आ पहुँचा। उसके त्रास से बधिक मुझे छोड़ इधर उधर भाग गये, बस इसी गड़बड़ी में मुझे भी अवसर मिल गया सो मैं भी वहां से निकल भागा। लोगों से मुझे विदित हुआ कि जब मेरे पिता ने यह जाना कि बधिक मुझे बध के निमित्त लिये जा रहे हैं तब शोक के मारे उन्होंने प्राण छोड़ दिये और माता मेरी उनकी अनुगामिनी हुईं। अब मेरे मन में यह भावना उठी कि जब मेरे माता पिता मेरे शोक से मर गये तो इस अधम शरीर को रख के क्या होगा बस इसका त्यागनाही श्रेय है; इसी विचार से घूमता घामता, कि कहीं निराला मिले तहां शरीर त्याग कर देऊं, मैं यहां पहुँचा। ज्योंही कि मैं इस कानन में पैठा कि एक दिव्य स्त्री अकस्मात् मेरे नेत्रों के समक्ष आ विराजी और मुझे बहुत कुछ समझा बुझा तथा शान्ति दे इस प्रकार कहने लगी—"हे पुत्र! अब तू राजर्षि विनीतमति के आश्रम में आ पहुँचा है, तेरा समस्त पाप नष्ट हो गया; अब तू उनसे ज्ञान प्राप्त करेगा।" इतना कह वह तो अन्तर्धान हो गयीं और मैं उन राजर्षि को खोज करने लगा, जब वह न मिले तब तो मुझे बड़ा शोक हुआ और फिर वही भावना हुई कि शरीर त्याग देऊँ सो यही मैं प्राणोत्सर्ग किया चाहता था कि आपने देख लिया।

इस प्रकार जब सोमशूर अपना वृत्तान्त सुना चुका तब राजर्षि विनीतमति उसे अपनी कुटी में ले गये, वहां उन्होंने उसे बताया कि जिसकी खोज तुम कर रहे हो वह मैंही हूं। इतना कह उन्होंने उसका आतिथ्य किया। जबकि वह खा पीकर सुचित्त हुआ तब अति नम्रता से हाथ जोड़ बोला कि महात्मन्! अब कुछ ऐसा उपदेश दीजिये कि मेरा अज्ञान दूर हो जाय; तब वह राजर्षि नाना प्रकार की धर्मकथायें उसे सुनाने लगे कि जिनके श्रवण से उसका अज्ञान जाता रहे। इसके उपरान्त वह फिर बोले—"वत्स! सुनो अज्ञान तो सर्वथा त्यागना ही चाहिये क्योंकि जिनकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती उनको वह दोनों लोकों से भ्रष्ट

कर देता है और यहां वहां दोनों स्थानों में वह उनके लिये दोषोत्पादक होता है। सुनो इसी विषय में मैं तुमको आगम की एक कथा सुनाता हूं।

पूर्वकाल में पञ्चाल देश में देवभूति नामक एक दैवज्ञ ब्राह्मण रहता था, उसको स्त्री भोगवती नाम्नी बड़ी पतिव्रता सती थी। एक समय की बात है कि जब ब्राह्मण स्नान करने गया था उसी समय भोगवती बाड़े में साग खोंटने गयी तो क्या देखती है कि किसी धोबी का गदहा साग चर रहा है। एक पटकन ले वह गदहे को भगाने लगी, गदहा भागा और दौड़ता २ एक गड़हे में गिर पड़ा जिस से उसका खुर टूट गया। यह बात धोबी को ज्ञात हुई सो वह क्रोध के मारे दांत पीसता हुआ लट्ठ लेकर दौड़ा और वहां पहुँचकर ब्राह्मणी को लट्ठ और लातों से लगा पीटने, उस दुष्ट ने ऐसा पीटा कि उस बिचारी गर्भिणी ब्राह्मणी का गर्भ गिर पड़ा। इतने में वह दुष्ट धोबी गदहे को लेकर अपने घर चला गया।

जब ब्राह्मण स्नान करके घर आया तो सब वृत्तान्त सुन तथा ब्राह्मणी को उस अवस्था में देखकर बड़ा दुःखित हुआ; सो उसने जाकर नगर के अध्यक्ष से आवेदन किया कि अमुक धोबी ने ऐसा ऐसा अत्याचार किया है। उस धोबी का नाम बलासुर था सो न्यायाधीश ने उसे पकड़ मंगाया। न्यायाधीश पूरा घनचक्कर था, वादी और प्रतिवादी का विवाद सुन उस मूर्खाधीश ने इस प्रकार का न्याय सुनाया—"गदहे का खुर टूट गया है इससे धोबी का बोझा अब कैसे ढोया जाय, सो जबलों उसका खुर अच्छा न हो धोबी का बोझा यह ब्राह्मण ढोवे; और इस धोबी ने ब्राह्मणी का गर्भ गिरा दिया तो यह उसमें दूसरा गर्भाधान कर देवे। बस यही दण्ड दोनों को दिया जाता है।" इस प्रकार का अद्भुत न्याय सुन ब्राह्मण और ब्राह्मणी को बड़ाही सन्ताप हुआ सो दोनों ने विष खाकर प्राण त्याग दिये। जब राजा को यह बात ज्ञात हुई कि अमुक न्यायाधीश ने ऐसा अनुचित न्याय किया जिससे ब्राह्मण और ब्राह्मणी के प्राण गये तो उन्होंने उस मूर्ख ब्रह्मघाती को प्राणदण्ड दिया, मरने के उपरान्त वह दुष्ट बहुत काल पर्य्यन्त तिर्य्यक्योनि में रहा।

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले कि पुत्र! इसी प्रकार के अज्ञान-रूपी अन्धकार में पड़े हुए लोग, अपनेही दोष से असन्मार्ग पर चलते हैं; शास्त्ररूपी प्रदीप उनके आगे रहताही नहीं बस वे भ्रष्ट हो जाते हैं;।

इस प्रकार राजर्षि का कथन सुन वह सोमशूर बोला "महात्मन्! ऐसेही ऐसे और उपदेश सुनाकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये, मैं आपकी शरण में आया हूं अब ऐसा उपदेश करें कि मेरी मुक्ति हो जाय।" उसकी ऐसी विनती सुन राजर्षि विनीतमति बोले —"वत्स! सुनो मैं तुमको क्रमानुसार विशुद्धज्ञान का उपदेश देता हूं, तुम ध्यान लगाकर सुनो।"

पूर्व समय की बात है कि कुरुक्षेत्र में मलयप्रभ नामक कोई राजा थे। एक समय उनके राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा सो राजा अपनी प्रजा को धन देने लगे। इस पर मन्त्रियों ने लोभवश उन्हें समझाया कि महाराज आप इस प्रकार से धन न उठा डालें इसमें भला न होगा सो राजा ने अपने मन्त्रियों की बात मान दान करने से हाथ खींच लिया।

राजा को इस प्रकार दान से विरत देख उनका पुत्र इन्दुप्रभ उनसे कहने लगा—"हे तात! इन दुष्ट मन्त्रियों की बात में आकर आप प्रजाओं की उपेक्षा क्यों करने लगे हैं; आप उनके कल्पद्रुम हैं और वे आपकी कामधेनु हैं।" इस प्रकार बारम्बार पुत्र का कथन सुन राजा को बड़ा खेद हुआ, वह तो मन्त्रियों के वश में थे सो खेदित हों न तो करें क्या। उन्होंने अपने पुत्र से कहा—"वत्स! तुम क्या समझते हो कि मेरे पास अक्षय कोष है; यदि बिना अक्षय धन के मैं प्रजावर्ग का कल्पवृक्ष हूं तो तुही इनकी कल्पवृक्षता क्यों नहीं धारण कर लेता।" पिता की ऐसी तीखी बात राजकुमार के हृदय में चुभ गयी उन्होंने अपने मनमें दृढ़ प्रतिज्ञा की कि या तो मैं तपस्या कर कल्पवृक्षत्वही सिद्ध करूँगा नहीं तो प्राणोत्सर्गही कर दूंगा। इस प्रकार विचारकर वह महासत्व तपोवन में चले गये, और ज्योंही राजकुमार वहां पहुँचे और तपश्चर्य्या में लीन हुए कि उनके राज्य में जलवृष्टि हुई और दुर्भिक्ष शान्त हो गया। उनकी कठोर तपश्चर्य्या से इन्द्र बड़ेही प्रसन्न हुए सो उनसे राजकुमार ने कल्पवृक्षत्व वर मांग लिया।

अब राजकुमार इन्दुप्रभ अपने नगर में आये और सचमुच कल्पवृक्ष के समान प्रजाओं पर अर्थवृष्टि करने लगे। थोड़ेही काल में उनका यश दिग्दिगन्त में फैल गया और चहुँओर से अर्थीगण उनके निकट आने लगे, मानो उस राजकुमार-रूपी कल्पवृक्ष की शाखाएँ दूर दूर से अर्थियों को बुलाने लगी हों और उक्त वृक्ष

पर के पक्षीगण अपने कलरव से यह उच्चारते हों कि हे अर्थकृच्छ्र से पीड़ित लोगो अब क्यों और दुःख सहते हो राजकुमार इन्दुप्रभ के समीप आओ और अपने कष्ट से छूट जाओ । राजकुमार अपनी प्रजाओं को दुष्प्राप्य अर्थ देकर अयाच करने लगे यहां लों कि अल्पकाल में उनकी प्रजा निराकांक्ष हो गयी और किसी को किसी प्रकार की आकांक्षा न रही, सबके मनोरथ परिपूर्ण रहते मानो सब लोग स्वर्ग में स्थित हों ।

जब बहुत दिन इस प्रकार बीत गये तब एक दिन महेन्द्र राजकुमार के पास आये और लुभाकर उनसे कहने लगे कि अब तो आपका परोपकार पूर्णावस्था को पहुँच गया अब आप मेरे साथ स्वर्ग को चले चलिये । इन्द्र का ऐसा कथन सुन कल्पद्रुमीभूत राजकुमार इन्दुप्रभ बोले "महेन्द्र! जहां देखिये ये वृक्ष स्वार्थ-निस्पृह हो दूसरों के उपकार के निमित्तही अपने पुष्प फल धारण करते और उनसे पराये का उपकार साधन करते हैं तहां सचमुच कल्पतरु होकर, दूसरों की आशा नाश कर अपने ही सुख के लिये कैसे स्वर्ग को चलूं।" राजकुमार का ऐसा उदार बचन सुन शक्र फिर बोले—"अच्छा, तो आपकी यह समस्त प्रजा स्वर्ग को चले।" तब फिर राजपुत्र ने उत्तर दिया "यदि आप तुष्ट हैं तो समस्त प्रजा को स्वर्ग ले जावें, मुझे इस कल्पवृक्षत्व की अब कुछ चिन्ता नहीं है, मैं परोपकार की सिद्धि के हेतु महत् तप करूँगा।" इस प्रकार इन्दुप्रभ की उक्ति सुन इन्द्र बड़ेही प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करने लगे । पश्चात् उनकी समस्त प्रजा को लेकर महेन्द्र स्वर्ग को चले गये। इधर राजपुत्र भी वृक्षता त्याग अपना रूप धर बनवास कर तपस्या में लीन हो गये थोड़ेही काल में बोधिसत्वता उनको प्राप्त हो गयी।

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति सोमशूर से कहने लगे कि जो लोग दान में लगे रहते हैं उनकी सिद्धि इसी प्रकार आप से आप हो जाती है। वत्स! यह तो तुमको दान की पराकाष्ठा की कथा सुनायी गयी । अब सुनो शील की पराकाष्ठा तुमको सुनाता हूं।

पूर्व समय की बात है कि सुगतांशजन्मा सुर्गों का एक राजा था नाम उसका हेमप्रभ था और वह आत्मवशी था तथा पूर्वजन्म का अभ्यस्तशील इस जन्म में भी

उसमें बना हुआ था। निवास उसका विन्ध्याद्रि में था। वह तो जातिस्मर था और धर्म्मोपदेश भी करता था परन्तु उसका जो एक चारुमति नामक सुग्गा प्रतीहार था सो बड़ाही रागद्वेष से परिपूर्ण था। एक समय उसकी भार्य्या शुकी किसी बहेलिये के जाल में पड़ गयी और मार डाली गयी इससे वह प्रतीहार उसके वियोग से उसी की चिन्ता में पड़े रहने से बड़ी दुरवस्था को प्राप्त हो गया, तब उसको शोक से निवृत्त करने के हेतु हेमप्रभ उसके हित के लिये इस प्रकार झूठ बात बना बोला—"भाई इतना शोक क्यों करते हो! वह तुम्हारी भार्य्या मरी नहीं वह तो उस बहेलिये के जाल से जीतीही निकल भागी यह मैं अपनी आंखों देख चुका हूं। चलो मैं तुम्हें उसे दिखा दूं।" इतना कह राजा उसे आकाशमार्ग से एक जलाशय पर ले गया; तहां जल में उसीकी परछांही दिखा बोला "देखो तुम्हारी भार्य्या यहां है।" यह सुन वह मूर्ख अपनाही प्रतिविम्ब देख अति प्रहृष्ट हुआ और उसी जल के भीतर घुसकर उसे आलिङ्गन कर चूमने चाटने लगा। उसे न तो स्पर्श का सुखही मिला और न तो कुछ शब्दही श्रवण में आया तब तो वह अति चिन्तित हुआ कि प्रिया न तो आलिङ्गनही करती है और न कुछ बोलतीही है इसका क्या कारण है। तब उसके मन में यह भावना उठी कि यह कुपित हो गयी है अच्छा इसे कुछ खानेको देना चाहिये ऐसा विचार वह कहीं से एक आंवला तोड़ लाया और स्त्री बुद्धि से अपनीही परछाहीं पर रखके बहुत कुछ चाटुकारता करने और पुचकारने लगा पर वह क्यों बोले। आंवला ऊपर से गिरतेही पहिले तो जल में डूब गया पर तुरतही उतिरा आया जिससे उस मूढ़ को यह ज्ञात हुआ कि प्रिया ने मेरा उपहार स्वीकार न किया; तब तो उसके शोक की चरम सीमा आ पड़ी वह बड़ाही खेदित हुआ और अन्त में जाकर अपने राजा से इस प्रकार कहने लगा—"देव! मेरी भार्य्या न तो मुझे छूतीही है न कुछ बोलती है, और कहां लों कहूं मैंने जो आंवला उसे दिया उसे भी उसने फेंक दिया।" उसका ऐसा कथन सुन राजा ने धीरे से उसके कान में कहा,—मानो उसके कहते उसे बड़ा कष्ट होता था; राजा ने कहा "भाई! यह कहने की बात नहीं है तथापि तुमपर मेरा ऐसा गाढ़ प्रेम है कि बिना कहे बनता भी नहीं इससे अगत्या कहना पड़ता है, सुनो बात यह है कि अब उसका मन दूसरे

से लग गया है तो भला तुमसे क्योंकर प्रीति कर सकती है; चलो न उसी जल के भीतर मैं दिखा देता हूं।" इतना कह राजा उसे वहां ले गया और उस सरोवर के निर्मल जल में उसने अपना तथा उस सुग्गे का दो प्रतिबिम्ब उसे दिखा दिये। उस दूसरे प्रतिबिम्ब के निरीक्षण से उस मूर्ख के मनमें यह निश्चय हो गया कि सचमुच यह दूसरे से फँस गयी है, सो वह अपने स्वामी के निकट लौट गया और इस प्रकार कहने लगा—"देव! मुझ मूढ़ ने जो आपका उपदेश नहीं सुना उसी का यह परिणाम है, अब आप यह बतलाइये कि मुझे क्या कर्त्तव्य है।" इस प्रकार जब वह अपना निर्वेद सुना चुका तब अपने उपदेश प्रदान का अवसर पाय राजा हेमप्रभ उससे इस प्रकार कहने लगा—"भाई चारुमति! क्या कहूं, हलाहल विष का पीना बरु अच्छा है तथा गले में सांप का लपेटना भला है किन्तु स्त्रियों का विश्वास किसी अंश में भला नहीं, क्योंकि मणिमन्त्रादि से सर्प और विष की शान्ति हो सकती है किन्तु स्त्रियों की कुटिलता की कोई औषधि नहीं है। स्त्रियां, सन्मार्ग पर चलनेवालों को दूषित कर डालती हैं पुन: उन्हें सब प्रकार से नष्ट भ्रष्ट कर छोड़ती हैं स्त्रियां आंधी की भांति अति चपल और रज से (१) परिपूर्ण रहती हैं। अत: बुद्धिमान् धीरसत्वों को उचित है कि उनमें लीन न होवें प्रत्युत ऐसे शील और सदाचार का अभ्यास करें कि वीतराग की पदवी मिल जावे।" इस प्रकार अपने राजा से स्त्री के विषय में उपदेश पाकर चारुमति स्त्री-वासना त्याग ऊर्ध्वरेता हो क्रमानुसार बुद्ध समान हो गया।

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले भद्र! यह तो तुमने शीलवान् की कथा सुनी अब तुमको क्षमाशील का वृत्तान्त सुनाता हूं सुनिये।

केदार पर्वत पर शुभनय नामक एक मुनि रहते थे, सदा मन्दाकिनी में स्नान करने और तपस्या में लीन रहने के कारण उनकी सब इन्द्रियां उनके वश में हो गयी थीं तथाच घोर तपस्या से उनका शरीर अति दुर्बल हो गया था। एक समय की बात है कि एक रात में कुछ चोर अपना काञ्चन खोद निकालने आये जो कि वे पहिले कभी गाड़ गये थे। जब उनका धन उन्हें न मिला तब तो वे बड़ी चिन्ता में पड़े कि निर्जन स्थान में कौन आया कि ले गया पश्चात् सभों ने यही

(१) स्त्री पक्ष में रजोगुण, आंधी पक्ष में धूलि।

निश्चय किया कि बस यह काम इसी मुनि का है, ऐसा ठहरा वे सब मुनि की मठिका में घुस गये और डांटकर कहने लगे—"अरे पापिष्ट पाखण्डी! बता हमारा धरती में गड़ा सोना तू कहां ले गया, अरे हम तो चोर हैं ही, फिर तू चोरों का चोर कहां से आया?" इस प्रकार उनके आक्षेपमय वचन सुनकर मुनि बोले—"भाई मैं क्या जानूं तुम्हारा सोना ओना; मैंने उसे नहीं लिया है और न देखाही है।" तब तो वे दुष्ट लट्ठों से मुनि की पूजा करने लगे, तब भी वह सत्यभाषी मुनि वही कहते रहे जो कुछ कि उन्होंने पहिले कहा था। तब तो उन चोरों का कोप और भी भड़का, "यह बड़ा क्रूर है," इतना कह उन्होंने मुनि महाराज के दोनों हाथ काट डाले, फिर दोनों पांव काट लिये यहां लों कि पीछे दोनों आंखें भी निकाल लीं। तब भी ऋषि अपने वचन से न टले, जो बात उनके मुंह से पहिले निकली वही अब भी थी और विशेषता यह कि हाथ पांव कट गये और आंखें निकल गयीं तथापि मुनि निर्विकार बने रहे। उनकी यह दशा देख चोरों के मनमें यह बात आई कि अस्तु कोई दूसरा चुरा ले गया होगा, इतना विचार वे वहां से चले गये।

दूसरेही दिन उस देश के राजा महाराज शेखरज्योति मुनिजी के दर्शनार्थ वहां आये, वह मुनिराज के शिष्य थे; वह आये और देखें तो मुनि उस दशा में पड़े हैं। इससे उनके शोक का पार न था, पूछने पर जब विदित हुआ कि चोरों ने व्यर्थही ऐसी गति की है तब राजा ने उन चोरों को खोजवा के पकड़वा मंगाया। जब कि महाराज ने आज्ञा की कि इनका बध किया जाय तब मुनि बोले—"महाराज यदि इन चोरों का बध किया जायगा तो मैं भी आत्महत्या कर डालूंगा। यदि यह कहा जाय कि शस्त्र के द्वारा मेरी ऐसी गति की गयी तब इन बिचारों का दोषही क्या रहा, हां ये उसके प्रेरक हुए तथापि ये निर्दोष हैं क्योंकि वहां कारण क्रोध है, क्रोध का भी कारण स्वर्णनाश है जिसका प्रधान कारण मेरे पूर्वजन्म का पाप है, तहां मराही अज्ञान मुख्य कारण है अतः मेरेही अज्ञान से मेरी ऐसी दुर्गति हुई। सो मेरा वही अज्ञान बध्य है। यदि यह कहा जाय कि ये जो अपकारी हैं अतः बध किये जावेंगे तो मेरा कहना होगा कि ये मेरे उपकारी हैं अतः इनकी रक्षा होनी चाहिये; क्योंकि यदि ये ऐसा न करते तो मोक्षफल

देनेवाली क्षमा का अवसर कहां मिलता, और मैं किसका अपराध क्षमा करता, सो इन चोरों ने मेरा उपकार किया है।" इत्यादि २ वचनों से क्षमा-तत्पर मुनि ने राजा को समझाया बुझाया और उन चोरों को निगड़बन्धन से छोड़वा दिया। महामुनि के तप:प्रभाव से उनका शरीर पूर्ववत् अक्षत हो गया और उन्हें सिद्धि भी प्राप्त हो गई।

इतनी कथा सुनाय विनीतमति बोले "भद्र! इस प्रकार से क्षमाशील जन इस संसारसागर से आप तो तरतेही हैं किन्तु औरों को भी तार देते हैं। अच्छा अब तुमको धैर्य्यशील की कथा सुनाता हूं।"

पूर्वकाल में मालाधर नामक एक ब्राह्मणकुमार था, उसने एक बार व्योम गामी सिद्धकुमार को देखा तो उसके मन में आया कि मैं भी क्यों न आकाश में उड़ूं सो वह तिनकों के पंख बना दोनों ओर बांध प्रतिदिन उड़ने लगा और इसी प्रकार वह आकाश में उड़ने की गति सीखता था। वह प्रतिदिन इतना परिश्रम उठाता पर कुछ उत्तम फल नहीं होता किन्तु उसने धैर्य्य का त्याग नहीं किया।

एक दिन की बात है कि वह इसी प्रकार उदुक फुदुक रहा था कि ऊपर से सिद्धकुमार की दृष्टि उसपर पड़ी, उसका अध्यवसाय निरख उनके मनमें दया आई कि देखो यह विचारा मेरे समान आकाशमें उड़ने को चेष्टा कर रहा है पर समर्थ नहीं होता तथापि इस व्यापार से विरत नहीं होता तो मुझे उचित है कि इस बालक पर अनुकम्पा करूँ। इतना विचार वह अपनी योगविद्या से उसे आकाश में उड़ा ले गये और अपनी शक्ति से उन्होंने उसे अपना सहचर बना लिया।

इतनी कथा सुनाय विनीतमति बोले कि देखा न तुमने धैर्य्य का ऐसा प्रभाव होता है। अच्छा यह तो धैर्य्यशील की कथा हुई अब तुमको ध्यानशील की कथा सुनाता हूं—

पूर्वकाल की बात है कि कर्णाटक देश में विजयमाली नामक एक अत्यन्त धनाढ्य बनिया रहता था। उसके एक पुत्र था जिसका नाम मलयमाली था। एक समय मलयमाली अपने पिता के साथ राजसभा में गया जहां उस युवा की दृष्टि राजा इन्दुकेसरी की कन्या इन्दुयशा पर पड़ी। वह इन्दुयशा क्या थी मानो कामदेव की मोहिनी लता थी; ज्योंही कि वणिक्पुत्र की दृष्टि उसपर पड़ी त्योंही

राजकन्या ने उसके हृदय में डेरा डाल दिया। जब वह घर गया तब उसकी वेदना और भी प्रबल हो गयी, रात भर उसे नींद न आती, जागताही रह जाता और दिन में सङ्कुचित रहता, इस प्रकार उसने कुमुद व्रत का (१) अवलम्बन किया और क्रमशः उसका शरीर पाण्डुवर्ण हो चला। उसे रात दिन राजकुमारी का ध्यान बना रहता. और २ व्यापारों को कौन चलावे भोजन से भी वह पराङ्मुख रहता, रहने लगा जब कोई इसका कारण उससे पूछता तो गूंगे के समान चुप हो किसी से कुछ भी न कहता था।

उसका एक बड़ा भारी मित्र मन्थरक था जो कि राजकीय चित्रकार था; उसने उसका यह हाल देख एक दिन एकान्त में उससे पूछा कि कहो मित्र! यह तुम्हारी क्या दशा हो गयी है? तुम सदा भीत पर ओठँगे बैठे रहते हो जैसे कोई चित्र हो, न हिलते हो न डोलते हो, और न कुछ खाते पीते हो, फिर न किसी की कुछ सुनते हो न समझाने से समझते हो और न किसी की ओर दृष्टि उठाकर देखते हो। सो कहो तो सही कि तुम्हारे हृदय में क्या वेदना है क्योंकि जबलों व्याधि जानी न जाय उसकी औषधि क्योंकर हो सकती है। इस प्रकार कहकर जब वह बार बार हठ करके पूछने लगा तब तो मलयमाली अपने मित्र से अपना अभिप्राय कह गया। यह सुन चित्रकार बोला—"सखे! यह बात तो अच्छी नहीं है, राजपुत्री पर दृष्टि लगाना तुम्हें उचित नहीं है; हंस और और सरोवर के सरोजों की मुखश्री का आनन्द लूटा करें परन्तु हरि भगवान् के नाभि ह्रद से जो कमल निकला है उसकी भोगलक्ष्मी का वह कौन है!" इस प्रकार की अनेक बातों से तो चित्रकार उसका मन उस ओर से न हटा सका, जब उसने देखा कि मलयमाली किसी प्रकार भी इस व्यापार से विरत नहीं होता तब उसने राजकुमारी का एक चित्र उरेहकर उसे दे दिया कि चित्र के दर्शनही से किसी प्रकार उसका समय कुछ शान्तिपूर्वक कटे। मलयमाली चित्रस्थिता अपनी प्रिया को पाकर बड़े ध्यान से उसे देखता, आलिङ्गन करता, और विविध आभूषणों से भूषित करता। उसकी यह भावना हो गयी थी कि यह वही इन्दु-

(१) कोई का यह नियम है कि वह रात में खिलती और दिन में संकुचित रहती है।

यथा राजकुमारी है, होते होते वह वणिक्पुत्र तन्मय हो गया, ऐसा कि जो कुछ कार्य्य करता उसी वृत्ति से। उसे किञ्चिन्मात्र यह विचार न था कि यह चित्र है; उसकी पूर्ण भावना थी कि राजदुलारी धीरे धीरे मुझसे बात करती हैं सो वह उस चित्र से आलाप करता; राजकुमारी चुम्बन लेती हैं, राजकुमारी का चुम्बन लेता। अब वह उसी भावना से अपनी कान्ता के साथ सम्भोग से सुस्थित रहने लगा, सांसारिक व्यापार से कुछ कार्य नहीं, रात दिन चित्रपट लिये आनन्दमग्न रहता।

एक दिन की बात है कि रात्रि के समय जब चन्द्रोदय हुआ तो उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि चलो अपनी प्रिया के साथ उद्यानविहार करूँ, सो वह चित्रपट ले घर से निकला और उद्यान में गया। वहां एक पेड़ की जड़ पर चित्र रख वह अपनी प्रिया के लिये फूल चुनने चला, फूल चुनता २ वह बहुत दूर निकल गया। उसी समय विनयज्योति नामक मुनि उसे देख दयार्द्र हो गये सो वह आकाश से उतरे कि अब इसका अन्धकार दूर कर उद्धार करूँ। उन्होंने क्या किया कि अपनी शक्ति से चित्र के एक भाग में सजीव कृष्णसर्प उरेह दिया, और उसे वहीं रख मुनि एक ओर छिप बैठे। इतने में मलयमाली फूल चुनकर आ गया देखे तो चित्र पर काला सांप विद्यमान है. देखतेही वह चिन्ता करने लगा "हाय हाय! यह सर्प यहां कहां से आया? क्या विधि ने तो रूपनिधान इस सुन्दरी की रक्षा के लिये बनाकर इसे यहां नहीं भेजा है!। इस प्रकार चिन्ता कर उसने अपनी प्रिया को फूलों से अलङ्कृत किया पश्चात् बड़े प्रेम से आलिङ्गन कर पूछा, इतनेही में मुनि की माया पहुँची तो उससे उसे ज्ञात हुआ कि सर्प के काट लेने से प्रिया तो मर गयी है यह मैं छाती से किसे लगा रहा हूं। तब तो वह पट भूल-कर हाहाकार कर विमोहित हो गया और धरती पर गिर पड़ा जैसे कोई विद्या-धर किसी विद्या के प्रभाव से पृथ्वी पर आ पड़े। कुछ कालोपरान्त जब वह सचेत हुआ, तो पुनः विलाप करने लगा, पश्चात् विचारा कि जब प्राणप्रिया ही मर गयी तो मैं जीकर क्या करूँगा, ऐसा स्थिर कर वह उठा और एक बड़े ऊँचे पेड़ पर चढ़ धड़ाम से पृथ्वी की ओर कूद पड़ा। धरती पर गिरने नहीं पाया था कि इतनेही में प्रगट होकर मुनि ने उसे लोक लिया और बहुत शान्ति दे उससे कहा—"हे मूढ़

तू यह भी नहीं जानता कि वह राजपुत्री तो अपने भवन में है वह यहां कहां से आई, यह तो उसका निर्जीव चित्र न है। सो यह तू बता कि किसको तू आलिङ्गन करता है और महा सर्प से कौन डँसी गयी है। यह तेरी भावना मात्र है, तेरा प्रेम अधिक है बस वैसेही सङ्कल्प से यह भावना उपजी है—अरे यह घोर भ्रम है। जैसा दृढ़ ध्यान तेरा इस ओर है वैसा कहीं तत्वजिज्ञासा में होता तो तू फिर दुःख का पात्र न होता। सुन किसी महात्मा ने क्याही अच्छा कहा है की—

जैसी प्रीति हराम से, जु पै राम से होय।
चला जाय बैकुंठ को, पल्ला गहै न कोय॥

इस प्रकार मुनि के उपदेश से मलयमाली की मोहनिशा का चय हो गया और वह जागा तब मुनि के चरणों पर गिर के इस प्रकार कहने लगा,—"भगवन्! आपके प्रसाद से मैं इस आपत्ति से पार हुआ अब ऐसी दया करिये कि मैं इस संसारसागर से भी पार हो जाऊँ।" उसका ऐसा अनुनय सुन बोधिसत्व मुनि उसे अपने विज्ञान का उपदेश कर अन्तर्धान हो गये।

अब मलयमाली बन में जाकर तपस्या करने लगा; कुछ कालोपरान्त उसका तप सिद्ध हुआ जिसये उसे तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया, जिसके द्वारा यह ज्ञात हुआ कि क्या क्या हेय (१) हैं तथा क्या क्या उपादेय (२) हैं और उसी तप के प्रभाव से उसने अर्हत्त्व (३) प्राप्त किया। इसके उपरान्त वह अपने नगर में लौट आया और राजा इन्दुकेसरी तथा उनकी प्रजा को ज्ञानोपदेश करने लगा, इसी ज्ञानोपदेश से सबको मुक्ति प्राप्त हो गयी। देखो क्याही ठीक कहा है—

सतसंगति मुदमंगल-मूला। सब सुखकरणि हरणि सब शूला॥

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले कि भाई इस प्रकार असत्य भी सत्य रूप में परिणत हो जाता है, जो ध्यान करनेवाला दृढ़ हो। देखा न तुमने कि मलयमाली असत्य का ध्यान लगाते २ किस पदवी को पहुँच गया। बस साधक हो तो ऐसा। अच्छा यह तो ध्यान की परा काष्ठा हुई अब तुमको प्रज्ञा की पराकाष्ठा सुनाता हूं।

(१) त्यागने के योग्य। (२) ग्रहण करने के योग्य। (३) जैनधर्म्म के देवता।

पूर्वकाल में सिंहविक्रम नामक एक चोर सिंहलद्वीप में रहता था, जन्मभर वह दूसरों का धन चुरा २ अपना शरीर पालता रहा। जब बुढ़ौती आई तब वह इस दुष्ट व्यापार से विरत हुआ और इस प्रकार अपने मनमें चिन्ता करने लगा, "हाय हाय! जन्म मेरा चोरी करते २ बीता अब क्या उपाय हो सकता है कि मेरा परलोक सुधरे; कभी सुकर्म तो बन न पड़ा, जब किया तब कुकर्मही, तो अब क्या आशा हो सकती है। अब मैं किसकी शरण जाऊँ कि मेरा निस्तार हो। यदि शम्भु अथवा शौरि (४) की शरण पकडूं तो भला मैं किस गिनती में होऊंगा, जहां बड़े २ देवता, मुनि और अन्यान्य सेवक लोग सेवा में निरत हैं वहां मेरी क्या पूछ है। अच्छा मैं चित्रगुप्त महाराज की सेवा करूँ क्योंकि वही सब जन्तुओं के शुभाशुभ कर्म लिखते हैं सो वह कदाचित् किसी उपाय से मेरी रक्षा करें। वह कायस्थ अकेलेही ब्रह्मा और रुद्र का काम सम्भालते हैं, वह सबके कर्म लिखते हैं, सारा विश्वमण्डल उनके हाथ में है, चाहें तो उलट पुलट कर डालें, बस उन्हीं की सेवा करनी।" ऐस बिचार वह चित्रगुप्त की भक्ति में तत्पर हुआ, उन्हीं की पूजा करता और उनकी प्रसन्नता के हेतु नित्य ब्राह्मणों को भोजन करवाता।

एक समय चित्रगुप्त महाराज के मन में आया कि वह चोर बड़ी भक्ति से मेरी पूजा अर्चा करता है तो चलकर देखूं तो सही कि उसका चित्त कैसा है, उसकी परीक्षा तो करूँ। इतना विचार वह अतिथि बन उसके घर गये। चोर ने बड़ी भक्ति से उस अतिथि की पूजा की और भोजन करा के दक्षिणा दी, पश्चात् हाथ जोड़कर यह कहा—"महाराज कहिये कि चित्रगुप्त तुमपर प्रसन्न होवें।" तब ब्राह्मणरूप चित्रगुप्त बोले—"भला कहो तो सही कि हरि हर आदि ऐसे प्रभावशाली महादेवों को छोड़ तुम चित्रगुप्त की आराधना क्यों करते हो, उनसे तुम क्या पाओगे?" उनका ऐसा कथन सुन वह सिंहविक्रम चोर बोला "देवता आप को इससे क्या, जिसकी इच्छा होगी उसीकी मैं आराधना करूँगा, मुझे दूसरे देवों से काम नहीं है मैं तो चित्रगुप्तजी की ही आराधना करूँगा, सो आप कह दीजिये कि चित्रगुप्त महाराज प्रसन्न हो जावें।" तब द्विजरूपी चित्रगुप्त फिर बोले "अच्छा, यदि तुम अपनी भार्य्या मुझे दे दो तो मैं ऐसा कह दूं।" इतना सुनतेही

(४) शम्भु = महादेव और शौरि = विष्णु अर्थात् भगवान् नारायण।

वह चोर सिंहविक्रम अति प्रसन्न हुआ और बोला—"महाराज अभीष्ट देवता की प्रीति के लिये मैंने अपनी पत्नी आपको दी। तब तो चित्रगुप्त प्रत्यक्ष हो गये और कहने लगे कि मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं सो कहो क्या करूँ। चित्रगुप्त का ऐसा कथन सुन वह चोर अति प्रसन्न हुआ और बोला कि महाराज यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मृत्यु मुझपर हाथ न डाल सके। तब तो चित्रगुप्त बोले—"यह बात तो अनहोनी है क्योंकि जीवमात्र पर मृत्यु का प्राबल्य है उससे कोई बचा नहीं है तथापि तुम मेरे भक्त हो, मैं तुम्हारे हेतु एक युक्ति करूँगा, सो सुनो मैं तुमको बतलाता हूं। श्वेतमुनि के निमित्त कुपित हो महादेवजी ने काल को भस्म कर दिया किन्तु उसके बिना संसार का कामही नहीं चल सकता अतः भगवान् ने पुनः उसकी सृष्टि की। तब से महाप्रभु ने उसे आज्ञा दे दी है कि जहां श्वेत बसतें है उसके आश्रम भर में तू न जाना और वहां के किसी जीव पर हाथ न डालना। इस प्रकार देव ने उसे यन्त्रित कर दिया। अब वह श्वेतमुनि पूर्व समुद्र के उस पार जहां तरङ्गिणी नदी है तपोवन में रहते हैं, उस तपोवन में मृत्यु का वश नहीं है। सो मैं ले चलकर तुमको उसी स्थान में रख देता हूं पर स्मरण रहे कि तुम तरङ्गिणी के इस पार कदापि न आना। और फिर कदाचित् भूल से इस पार आ भी गये तो अवश्य मृत्यु के वश में पड़ जाओगे, सो परलोक में जब आओगे तब मैं देख लूंगा। इतना कह अति प्रसन्न मन चित्रगुप्त सिंहविक्रम को श्वेत मुनि के आश्रम में ले गये और वहां उसे रख आप अन्तर्धान हो गये।

कुछ कालोपरान्त सिंहविक्रम के इस लोक से प्रस्थान करने का समय आया, किन्तु वह तो श्वेताश्रम में था इससे काल का वश उसपर नहीं चलता था, इस कारण उसके मनमें यह चिन्ता हुई कि किस उपाय से सिंहविक्रम को हाथ में लाऊँ। इतना सोच वह तरङ्गिणी के इस पार आ बसा और उपाय सोचने लगा। जब उसे कोई उपाय न सूझा तब उसने अपनी माया से एक अप्सरा निर्मित कीयी और उसे उसके समीप भेजा। उस मोहनी ने वहां जाकर अपना जाल फैलाया और अपने हावभाव कटाक्ष से सिंहविक्रम को अपने वश में कर लिया। अब दोनों आनन्द से रहने लगे।

इस प्रकार जब कुछ काल बीत गया तब उस मोहनी ने एक दिन कहा कि प्यारे भाई बन्धुओं के देखे बहुत दिन हो गये अब आज्ञा देते तो उनसे भेंट कर आती। उसकी सम्मति हो गयी। तब वह चली और नदी किनारे लों सिंहविक्रम उसे पहुँचाने आया। अब वह मोहनी पार न जाने निर्मित तरङ्गवती तरङ्गिणी में पैठी, सिंहविक्रम अपनी प्रिया को तीर पर खड़ा २ देख रहा था। जब कि वह मझ-धार में पहुँची तो उसने ऐसा दिखाया कि पांव फिसल गये और वह धारा में बह चली। तब तो वह चिल्लाकर कहने लगी—"आर्य्यपुत्र ! मैं बह चली, मैं मरी, मुझे बचाओ ! अरे मैं तो मरी और तुम तीर पर खड़े देख रहे हो ! अरे तुम तो शृगालविक्रम दीखते हो किस मूर्ख ने तुम्हारा नाम सिंहविक्रम रक्खा है।" प्रिया की इतनी बात सुनतेही सिंहविक्रम नदी में हल पड़ा और उसके बचाने के लिये चला। वह मनमोहनी ललना आगे २ बही जा रही है और पीछे २ सिंहविक्रम उसकी रक्षा के हेतु चला आ रहा है; इस प्रकार बात की बात में नदी के इस पार आ पड़ा। यहां तो पाश लिये काल पूर्वही से विराजमान था, उसने झट उसके गले में पाश डाल दिया और कहा—

"विषयिन के नित सीस पर नाचत काल कराल।"

अब वह असावधान सिंहविक्रम काल के द्वारा यमराज की सभा में पहुँचाया गया। चित्रगुप्त महाराज ने उसे पहिचाना, वह तो पूर्वही से उसपर सानुकूल थे सो एकान्त में ले जाकर उससे कहने लगे कि यदि तुमसे यह पूछा जाय कि पहिले नरक भोगोगे कि स्वर्ग तो तुम कहना कि मैं पहिले स्वर्ग भोगूंगा। स्वर्ग में जब रहने लगना तो वहां ऐसा पुण्य करना कि वह दृढ़ हो जाय, तब पीछे तपस्या करना तिससे समस्त पाप नष्ट हो जायगा। चित्रगुप्त महाराज का ऐसा कहना सिंहविक्रम ने स्वीकार कर लिया; वह डर तो गयाही था और मारे भय के उसका लक्षण विकृत हो गया था अत: अब इसके अतिरिक्त और उपाय क्या था सो वह चटपट चित्रगुप्त की बात पर सहमत हो गया, और इसमें उसका भला भी था।

थोड़ेही काल में वह महाराज धर्मराज के समक्ष उपस्थित किया गया, उस-को देखतेही उन्होंने चित्रगुप्त से पूछा कि कहिये तो सही इस चोर का कुछ पुण्य

भी है ? चित्रगुप्त ने उत्तर दिया—"हां महाराज! इसने कुछ पुण्य भी किया है, एक तो यह कि यह अतिथियों की बड़ी सेवा करता था, जहां कोई अभ्यागत इसके घर आया कि तन मन धन से उसकी परिचर्या में लीन हो जाता था दूसरा यह कि अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के हेतु इसने अर्थी को अपनी भार्या भी दे दी थी। सो प्रभो! एक दिव्य (१ दिन इसको स्वर्ग में रहना पड़ेगा कि अपने सुकृत का फल भोग लेवे।' इतना सुन धर्मराज ने सिंहविक्रम की ओर दृष्टि किई और उससे पूछा—"कह रे! शुभ और अशुभ में से पहिले क्या भोगेगा?" सिंहविक्रम बोला "महाप्रभो। मैं पहिले शुभ भोगूगा।" अब धर्मराज की आज्ञा से एक दिव्य विमान आया उसपर चढ़कर वह स्वर्ग को चला और चित्रगुप्त की बात स्मरण करता गया।

जब वह स्वर्ग में पहुँचा तब उसके लिये नाना प्रकार के भोग उपस्थित हुए परन्तु वह सबसे मन बटोर आकाशगङ्गा में स्नान कर जप और व्रत में लीन हो गया; इस पुण्य के प्रभाव से उसे एक दिन और भी रहने की आज्ञा हुई। इसी प्रकार वह तपस्यर्या में परायण रहने लगा इसी हेतु उसके स्वर्गवास की अवधि बढ़ती गयी; अन्ततोगत्वा ऐसा हुआ कि अपने तपोबल से उसने शङ्कर भगवान् को प्रसन्न कर उनसे ज्ञान प्राप्त कर लिया जिससे उसका समस्त पाप भस्म हो गया। अब नरक के दूतों का इतना सामर्थ्य कहां कि उसका मुंह भी निरख सकें; इधर चित्रगुप्त ने बही में जो उसके पाप लिख रखे थे उन्हें काट निकाला और महाराज यमराज भी कुछ न बोल सके, चुपचाप हो रहे।

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले कि सुना न तुमने इस प्रकार अच्छी बुद्धि के प्रभाव से सिंहविक्रम चोर भी सिद्ध हो गया। सो बुद्धि का ऐसा माहात्म्यही है, यह मैंने बुद्धि की पराकाष्ठा सुना दी। वत्स! मैंने तुम्हें बुद्धदेवोक्त छः उपदेश सुनाये इस उपदेश से षट्कर्पिणी नौका पर आरूढ़ हो बुध लोग संसार समुद्र के पार हो जाते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व के पदस्थ राजर्षि विनीतमति ने उस वन में सोमशूर को जो उपदेश दिये उन्हें श्रवण कर भगवान् भास्कर भी सन्ध्या के रंग से कषायवर्ण

(१) देवतों का एक दिन।

ही अस्ताचल की कन्दरा में पैठ गये । तब विनीतमति और सोमशूर ने उठकर सन्ध्यावन्दन किया और यथावत् रात बिताई। दूसरे दिन विनीतमति ने सोमशूर को बौद्धधर्म्म का ज्ञान रहस्य सहित सिखा दिया । सोम अपने गुरु विनीतमति की उपासना में तत्पर हो एक वृक्ष के नोचे झोपड़ी बनाय समाधिनिष्ट हुआ। क्रमानुसार गुरु और शिष्य दोनों ने योग की महासिद्धि पाकर परम बोध को प्राप्त किया।

इसी अवसर में राजा इन्दुकलश के मन में यह विचार हुआ कि महाराज विनीतमति मेरे भाई कनककलश को जो राज्य दे गये हैं वह भी उससे छीन लेना चाहिये। विनीतमति का दिया अजेय खड्ग तो उनके पास था ही सो उन्होंने राजा कनककलश पर चढ़ाई कियी और उन्हें जीत अहिच्छत्र के राज्य से भी निकाल दिया। अब राजा कनककलश अपने राज्य से च्युत हो दो तीन सचिवों के साथ निकल चले और चलते २ दैवात् विनीतमति के ही आश्रमकानन में पहुँचे। यहां वे लोग भूख प्यास से अति पीड़ित हो ज्योंही फलमूल की इच्छा करने लगे कि इतने में इन्द्र ने अपनी माया से उस जङ्गल को भस्म कर पूर्ववत् मरुस्थल कर दिया। उन्होंने विनीतमति के छलने की इच्छा से ऐसा काम किया क्योंकि महाराज राजर्षि विनीतमति अपने किसी अतिथि को विमुख नहीं फेरते थे सो उन्होंने सोचा कि जब फलमूल रहेंहोंगे नहीं तब देखें वह किस प्रकार इन अतिथियों का सत्कार करते हैं। अतिथिसत्कार तो दूर रहे अब महाराज विनीतमति वन के अकस्मात् मरुस्थल हो जाने से अति विस्मित हुए कि यह क्या हो गया। वह स्वयं इधर उधर घूमने लगे। थोड़ीही देर में राजा कनककलश अपने सचिवों के साथ उनके दृष्टिगोचर हुए, राजर्षि देखते हैं तो कुछ अतिथि आ गये फिर ऐसे नहीं कि कुछ काल भोजन की प्रतीक्षा में बिला सकें, यहां तो भूख के मारे प्राण कण्ठगत हो रहे थे । महाराज विनीतमति ने उनके समक्ष जाकर कुशल प्रश्न किया, जब उन्हें विदित हुआ कि ये अति क्षुधित हैं तब उन्होंने कहा—"हे महाभागो ! इस मरुस्थल अरण्य में आतिथ्य का बड़ा टोटा है और आप लोग क्षुधा से अति पीड़ित हो, आपको क्षुधानिवृत्ति करनीही होगी सो मैं आपको एक उपाय बतलाता हूं; यहां से आध कोस पर गढ़े में गिरकर एक मृग मर गया है सो

आप लोग वहां जाइये और उसके मांस से अपने प्राण बचाइये।" "बहुत अच्छा महाराज!" इतना कह वे अतिथि उस गढ़े की ओर चले; इधर बोधिसत्व विनीतमति पूर्वही वहां पहुँच गये और उस गढ़े पर जाकर योग से मृग बन गये तथा अतिथि के हेतु उसमें गिरकर उन्होंने प्राण त्याग दिये। धीरे २ चलते २ कनककलश आदि भी वहां पहुँचे और देखें तो मृग मरा पड़ा है; उसे निकाल, घास फूस में भूंजकर सब लोग उसका मांस खा गये।

इतने में बोधिसत्व की दोनों भार्य्याएँ आश्रम का विध्वंस देख तथा पति को न पाकर अति विकल हुईं; उन दोनों नागकन्या तथा राजसुता ने जाकर सोमशूर को समाधि से जगाया और यह दुर्घटना सुनाकर कहा कि हमारे स्वामी का भी पता नहीं लगता है कि वे कहां हैं। उसने ध्यान द्वारा अपने गुरु की करनी जान ली तब गुरुपत्नियों से गुरु की गति कह सुनाई। यद्यपि यह बात उनके असह्य दुःख की उत्तेजक हुई तथापि सोमशर्म्मा क्या करे, बिना कहे बनता नहीं अतः उसे कहनाही पड़ा। अब वह अपनी गुरुपत्नियों के साथ वहां गया जहां उसके गुरु ने अतिथियों के हेतु आत्मोत्सर्ग किया था। वहां नागतनया और राजसुता शृङ्गास्थिमात्रावशिष्ट मृगाकृति अपने पति को देखकर अत्यन्त शोकविह्वल हुईं, सो वे अपने आश्रम से लकड़ी बटोर लायीं और सींग तथा हड्डी लेकर दोनों पतिव्रतायें अग्नि में जलकर सती हो गईं।

राजा कनककलश अभी उस अरण्य से चले नहीं गये थे, इस वृत्तान्त से उनके हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा कि अहो! हमारी जीवन-रक्षा के निमित्त इस महानुभाव ने अपने शरीर का कुछ भी मोह न किया और तृणवत् उसे त्याग दिया, फिर हमारेही कारण इन दोनों पतिव्रताओं के प्राण गये तो हमारे इन अधम प्राणों से क्या? ऐसा विचार राजा कनककलश भी अपने सहचरों के साथ अग्नि में जल मरे।

यह सब व्यापार देखकर सोमशर्म्मा की जो गति हुई वह वर्णनातीत है, उसने भी यही निश्चय किया कि हमारे पथदर्शक गुरुजी महाराजही जब इस लोक में न रहे तो अब मैं रहकर क्या करूँगा, ऐसा विचार वह प्राणोत्सर्ग की अभिलाषा से दर्भ के आसन पर बैठ गया कि इसी अवसर में साक्षात् इन्द्र उसके पास आये

और कहने लगी—"सोमशूर! साहस मत कर, सुन प्राण त्याग न कर; यह तेरे गुरु की परीक्षा हुई है, सुन तू अपने प्राण मत त्याग क्योंकि मैंने अमृत सींचकर तेरे गुरु को दोनों पत्नियों तथा अतिथियों के सहित जिला उठाया है।" इस प्रकार इन्द्र का वचन सुन वह सोमशूर प्रणाम कर बड़े आनन्द से उठा और जाकर देखे तो उसके गुरु विनीतमति अपनी दोनों भार्य्याओं तथा कनककलश-प्रमुख अतिथियों के साथ जी उठे हैं। तब वह अपने गुरु के चरणों पर गिर पड़ा, वाक् पुष्पों से उनकी पूजा करने लगा और उनको निरखकर उसकी आखें तृप्त नहीं होती थीं। इस व्यापार के निरीक्षण से राजा कनककलश तथा उनके मन्त्रियों के हृदय में भक्ति का बड़ा उद्गार हुआ।

इसी अवसर में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव प्रभृति देव भी वहां आ विराजे, विनीतमति के सत्त्व से वे अति प्रसन्न हुए और दिव्यानुभाव वर देकर अन्तर्धान हो गये।

इसके उपरान्त सोमशूर ने जो कुछ उनके मरणोत्तर हुआ था सो सब विनीतमति को कह सुनाया। तब महानुभाव राजर्षि उन सोमशूरादि को साथ ले एक दूसरे दिव्य तपोवन में चले गये।

इतनी कथा सुनाय वह वृद्ध तापसी गुणाकर से फिर कहने लगी कि पुत्र! इस प्रकार जलकर भस्म हो गये लोग भी फिर मिल जाते हैं तो स्वच्छन्दचारी जीते मनुष्यों की क्या बात है। सो वत्स! तुम अपना शरीर मत त्यागो; तुम वीर हो, मृगाङ्कदत्त से तुम्हारा समागम अवश्य होगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय गुणाकर अपने स्वामी मृगाङ्कदत्त से पुनः कहने लगा कि देव! वृद्धा तापसी के मुंह से ऐसी कथा सुनकर मुझे विश्वास हुआ कि अवश्य मैं आपसे मिलूंगा। तब मैं अपना खड्ग उठा, उनको प्रणाम कर वहां से चला। चलते चलते इस अरण्य में पहुंचा और चण्डिका के हेतु उपहार ढूंढ़ते हुए इन लोगों ने मुझे पाया, मैं इनसे यथाशक्ति लड़ा अन्त में ये मुझे अतिशय आहत कर बांधकर यहां शबराधिपति मायावटु के समक्ष लाये। यहां दो तीन मन्त्रियों के साथ आप मिल गये; आपके प्रसाद से मेरा बड़ा सुपास हुआ मैं अपने घर के समान यहां हूं किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।

दोहा।

शबरेश्वर के भवन महँ, गुणआकर वृत्तान्त।
सुनि मृगाङ्कदत भूपसुत, पायो तोष नितान्त॥
युद्धाहत को होत है, चर्य्यादिक मन लाय।
लखि ढुरतो दिन सचिव सँग, सन्ध्या कीन्हो जाय॥
कछु दिन तहवां रहि गये, गुणआकर के हेत।
मन की चिन्ता (१) रोकि कै, श्रीशबरेन्द्र-निकेत॥

छठवां तरङ्ग।

अब गुणाकर के सब घाव भर आये और वह अच्छा हो गया, तब राजकुमार मृगाङ्कदत अपने मित्र शबराधिपति से पूछकर शशाङ्कवती की प्राप्ति के हेतु उज्जयिनी को चले। शबरेन्द्र मायाबटु अपने अनुचरवर्ग तथा अपने सखा मातङ्गपति दुर्गापिशाच के साथ उन्हें पहुँचाने चला। जब सब लोग बहुत दूर निकल गये तब मृगाङ्कदत्त ने बड़ी विनती कर शबरेन्द्र को लौटाया, वह अपने सहचरवर्ग के साथ अपनी पल्ली को लौट आया और मृगाङ्कदत्त अपने सहचरों के संग उज्जयिनी का ओर चले।

राजकुमार मृगाङ्कदत्त श्रुतधि, विमलबुद्धि, गुणाकर तथा भीमपराक्रम के साथ और सखाओं को ढूंढ़ते ढांढ़ते चले जाते थे कि चलते २ सब लोग विन्ध्याटवी में पहुँचे; जहां रात्रि के समय सब लोग किसी पेड़ के नीचे सो रहे। अकस्मात् जो मृगाङ्कदत्त की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि वहां एक दूसरा मनुष्य भी सो रहा है; ज्योंही उसका मुंह उघारकर देखते हैं तो उनका मन्त्री विचित्रकथ है; देखतेही तो वह पहिचान गये। इतने में विचित्रकथ भी जाग पड़ा सो वह अपने

(१) मन की चिन्ता यह थी कि प्रिया शशाङ्कवती की प्राप्ति के हेतु उज्जयिनी जाना है, और वहां पर सम्भवतः और सब बचे सचिव पहुचेंगे। यद्यपि यह चिन्ता मन में बनी रही तथापि गुणाकर को चिकित्सा के हेतु उनको शबरेन्द्र के घर में कुछ दिन और ठहरना पड़ा।

प्रभु मृगाङ्कदत्त को देखकर बड़ा आनन्दित हुआ और उनके चरणों पर गिर पड़ा। मृगाङ्कदत्त तो अकस्मात् मित्र की प्राप्ति से फूले नहीं समाते थे सो उन्होंने भी उसे अपने गले लगा लिया। इतने में और सब मन्त्री भी जाग पड़े परस्पर अभिनन्दन हुआ, सभों ने अपना २ वृत्तान्त उसे कह सुनाया। पश्चात् उससे पूछा कि कहो सखे ! तुम कैसे रहे, तुम अपना वृत्तान्त भी सुनाओ। इस प्रकार सभों से पूछा जाकर विचित्रकथ अपना वृत्तान्त सुनाने लगा।

उस समय जब कि पारावत नागराज के शाप से आप लोग छितर बितर हो गये, मेरे नेत्रों के समक्ष अन्धकार सा छाय गया, कुछ सूझही न पड़े अब मैं भी इधर उधर भटका फिरने लगा। इस प्रकार भटकता हुआ मैं बहुत दूर निकल गया, कुछ ज्ञान तो था नहीं कि कहां जा रहा हूं; सो किसी प्रकार जंगल के प्रान्तभाग में पहुँचा तहां एक दिव्य नगर मिला। भूख प्यास और थकावट से मैं लथपथ हो गया था, एक पग और चलना मेरे लिये पहाड़ था। भाग्यवश वहां एक दिव्य पुरुष से भेंट हुई जिसके साथ दो दिव्य स्त्रियां थी, उस पुरुष ने सुशीतल जल से मुझे स्नान कराया और बहुत कुछ समझा बुझाकर शान्ति दी। पश्चात् घर के भीतर ले जाकर उत्तमोत्तम दिव्य पदार्थ खिलाये। इसके पश्चात् उसने भोजन किया तदनु उन दोनों नारियों ने भी भोजन किया। खा पीकर जब वह सुचित्त हुआ और मैं भी विश्राम कर चुका तब मैंने उस पुरुष से कहा—"महात्मन्! आप कौन हैं कि मुझ मुमूर्षु के प्राणों की रक्षा की, आप ऐसा क्यों करने गये, मैं तो अपने प्रभु के बिना अपना शरीर अवश्यही त्याग देऊँगा।" इतना कह मैंने अपना सारा वृत्तान्त उसे सुना दिया। तब वह महात्मा अति प्रसन्न हुए और ऐसा बोले—"महाभाग! मैं यक्ष हूं, ये दोनों मेरी भार्य्याएँ हैं, तुम आज हमारे यहां अतिथि आये हो; गृहस्थों का धर्म्म है कि यथाशक्ति अतिथि की पूजा करे, इसी हेतु मैंने तुम्हारा इतना सत्कार किया है। पुनः तुम प्राण क्यों त्याग रहे हो, यह जो नाग के शाप से तुम लोगों का वियोग हुआ है कुछ काल में वह मिटही जायगा, फिर शाप के अन्त में तुम लोगों का समागम होवेहीगा। भाई कहो तो सही इस संसार में बिना दुःख का है कौन ? सुनो मैं तो यक्ष न हूं जो दुःख मेरे माथे पड़े हैं उन्हें तुमसे कहता हूं, सुनो—"

इस पृथ्वीवधू की शिरमौरि त्रिगर्ता नाम्नी एक नगरी है, जहां अनेक सज्जन और गुणीगण विद्यमान थे । उस नगरी में पवित्रधर नामक एक युवा ब्राह्मण रहता था, धन तो उसके पास कुछ था नहीं; हां खानेवालों की न्यूनता न थी, विचारे का कुटुम्ब बहुतही बड़ा था । श्रीमानों के बीच उसका रहना था और दरिद्रता ऐसी माथे पर बैठी थी, तिसपर वह विप्र बड़ा मानी था; सो वह अपने मन में इस प्रकार की चिन्ता करने लगा—"अहो ! मैं अपने धर्म्म कर्म्म से रहता हूं तौभी इन धनियों के बीच में शोभा नहीं पाता हूं, अच्छे काव्य के शब्दों के बीच जैसे निरर्थक कोई एक शब्द आ जाय तहां उसकी शोभा नहीं होती, वही दशा मेरी है, पुनः मैं मनस्वी भी ऐसा हूं कि न तो किसी की सेवाही कर सकता हूं और न दानही ग्रहण करूँगा । तो अब मैं क्या करूँ, संसार क्योंकर चलाऊँ । अच्छा एक बात तो है, मेरे गुरुजी ने मुझे एक मन्त्र बतलाया है जिससे यक्षिणी सिद्ध हो जाती है सो एकान्त में चलकर मैं उसी को सिद्ध करूँ ।" ऐसा विचार पवित्रधर जंगल में चला गया और भार्य्या प्राप्ति के हेतु सौदामिनी नामक यक्षिणी को सिद्ध करने लगा । कुछ दिनों के उपरान्त वह सौदामिनी यक्षिणी सिद्ध होकर उसकी भार्य्या बन गयी, तब वह विप्र उस यक्षिणी के साथ बड़े आनन्द से रहने लगा । घोर हिम के उपरान्त बसन्त की श्री पाकर वृक्ष की जैसी शोभा होती है, विपत्ति के घोर अनन्तर यक्षिणी से संयुक्त उस ब्राह्मण की भी वैसीही शोभा हुई । भला यक्षिणी को पाकर शोभा न हो, यह कैसे होवे ।

अब सब प्रकार के सुख हो गये तब ब्राह्मण को औरही चिन्ता हुई, उसके मनमें यह दुःख हुआ कि हाय ! मेरे कोई पुत्र नहीं है:— जिसके सन्तान नहीं उसके सब व्यर्थ हैं, संसार उसको सूना दीखता है । इस प्रकार सदा वह पुत्र की चिन्ता में ही लीन रहता; उसकी ऐसी दशा देख यक्षिणी उससे कहने लगी— "आर्य्यपुत्र ! आप चिन्ता न करें हमारे पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा; सुनिये मैं आपसे यह वृत्तान्त कहती हूं—

दक्षिण दिशा में एक तमालवन है, जहां सदा मेघ छाये रहते हैं जिससे वह अरण्य श्यामवर्ण बना रहता है, ऐसा भासता है मानो वह प्रावृट् की जन्मभूमि हो । उसमें पृथूदर नामक एक यक्ष रहता है उसकी मैं सौदामिनी नाम्नी एकलौती

बेटी हूं। मेरे पिता बड़े स्नेह से मुझे कुल पर्वतों पर ले जाकर घुमाते फिराते थे, सो मैं उन नगों के उपवनों में खेला करती थी। एक समय की बात है कि मैं अपनी सखी कपिशभ्रू के साथ खेल रही थी कि कैलास पर्वत के ऊपर अट्टहास नामक यक्षपुत्र पर मेरी दृष्टि पड़ी, वह भी अपने मित्रों के साथ विहार करने आये थे उनकी दृष्टि भी मुझपर पड़ी बस दोनों के नेत्र, रूप से आकृष्ट हो, परस्पर देखने लगे। यह बात मेरे पिताजी ताड़ गये सो उन्होंने तत्क्षण अट्टहास को बुलाकर हम दोनों का विवाह निश्चित कर दिया कि अमुक दिन विवाह होगा, तब पिताजी मुझे लेकर घर चले आये और अट्टहास भी अपने मित्रों के साथ अपने घर चले गये।

दूसरे दिन की बात है कि मेरी सखी कपिशभ्रू मेरे पास आई उस समय वह बड़ी उदास थी, मैं उसको चिन्तित देख उसकी उदासी का कारण पूछने लगी कि कहो आली तुम आज उदास क्यों हो? बार बार हठपूर्वक जो मैं पूछती रही तो उसको अगत्या अपनी उदासी का कारण बतलानाही पड़ा। वह बोली—"सखि! यह बात कहने योग्य नहीं है, यह अप्रिय भी है, पर बिना कहे काम भी नहीं चलता। सुनो आली! आज जब मैं आ रही थी तो तुम्हारे वह वर अट्टहास दीख पड़े, हिमालय पर्वत के चित्रस्थल नामक उद्यान में वह उस समय तुम्हारे ध्यान में मग्न थे। उनके साथी उनके चित्तविनोद के हेतु नाना प्रकार के उपाय करने लगे। अन्त में सभों ने यह एक नया खेल रचा कि उन्हें तो यक्षराट् बनाया और उनके भाई दीपशिख को यक्षराट् का पुत्र नडकूबर बनाया और स्वयं वे सब उनके मन्त्री बने। इस प्रकार तुम्हारे प्रियतम अपने मित्रों की मण्डली में चित्तविनोद कर रहे थे कि उसी समय नडकूबर अकस्मात् उसी मार्गसे आकाश में आ निकले। यहां जो यह लीला हो रही थी उसे देख धनाधिप के पुत्र को बड़ा क्रोध आया, उन्होंने अट्टहासको बुलाकर यह शाप दिया—"अरे दुष्ट! तू भृत्य होकर प्रभु की लीला करता है इससे तू मर्त्य हो जा, अरे दुर्मति! तू ऊर्द्ध लोक की कामना करता है तो नीचे जा।" उनका ऐसा शाप सुन अट्टहास बड़ेही व्याकुल हुए, सो हाथ जोड़ विनती करने लगे—"देव! मुझ मूर्ख ने चित्तविनोद के लिये ऐसा किया नकि अधिकारके अभिमान से, सो प्रभो मेरा अपराध क्षमा किया जाय,।" उनके

ऐसी आर्त्तवाणी सुन नड़कूबर ने ध्यान से सब बात जान ली तब उन्होंने शाप का अन्त इस प्रकार ठहरा दिया—"जिसमें तू उत्कण्ठित है उसी यक्षिणी में, मनुष्य होकर जब तू अपने इस भाई दीप्तशिख को पुत्र उत्पन्न कर लेगा तब इस शाप से छूट जावेगा और अपनी पत्नी के साथ अपना पद प्राप्त करेगा। तेरा यह भाई धरातल पर तेरा पुत्र होगा और कुछ काल राज्य करने के उपरान्त यह भी शाप से मुक्त हो जावेगा।" इस प्रकार शाप का अन्त ठहराय धनेश के सुवन तो चले गये और अट्टहास भी उसे शाप के प्रभाव से तत्क्षण न जानें कहां अन्तर्धान हो गये। सो हे सखि! यह निज नयनों से देख मैं यहां तुम्हारे समीप चली आई हूं, आली! मेरे उदास होने का यही कारण है और कुछ नहीं।

इतनी कथा सुनाय वह यक्षिणी पवित्रधर से फिर कहने लगी कि आर्य्यपुत्र! उस सखी का ऐसा कहना सुन मेरी जो दशा हुई उसका वर्णन मैं क्या करूँ। कुछ काल तो मैं शोकसागर में डूबी रही पश्चात् जाकर मैंने सारी कथा अपने पिताजी को सुनाय दी कि इस प्रकार उन्हें (अट्टहास को) नड़कूबर ने शाप दिया है और ऐसा शापान्त ठहराया है। अस्तु अब मैं उनसें पुनः मिलन की वाञ्छा से किसी प्रकार कालक्षेप करने लगी। सो आर्य्यपुत्र! आप वही अट्टहास उत्पन्न हुए हैं और मैं वही यक्षिणी हूं, अब हम दोनों मिले हैं आप चिन्ता न करें, थोड़ेही दिनों में हमारे पुत्र होगा।

इस प्रकार उस ज्ञानवती यक्षिणी सौदामिनी का कथन सुन वह पवित्रधर ब्राह्मण आनन्द के मारे फूला न समाया, उसे यह विश्वास हो गया कि अवश्य हमारे पुत्र होगा। कुछ कालोपरान्त उस यक्षिणी के गर्भसे उसको एक पुत्र हुआ, जिसके उत्पन्न होने से उन दोनों का घर और चित्त प्रकाशित हो गया। उस पुत्र का मुख निरीक्षण करतेही वह पवित्रधर ब्राह्मण दिव्याकृति अट्टहास यक्ष हो गया और अपनी भार्य्या उस यक्षिणी से कहने लगा—"प्रिये! हम दोनों का शाप छूट गया, देखो यह मैं अट्टहास हो गया सो चलो अब अपने लोक को चलें।" उसका ऐसा कथन सुन उसकी भार्य्या बोली—"आर्य्यपुत्र! यह आपके भाई पुत्र होकर जन्मे हैं, अभी शिशु हैं, सो इन्हें छोड़कर जो हम दोनों चले जांयगी तो इनकी क्या गति होगी, इनकी भी तो कुछ चिन्ता करनी चाहिये।" उसका

ऐसा कथन सुन, ध्यान कर देख अट्टहास बोला—"प्रिये ! इसी नगर में देवदर्शन नामक कोई ब्राह्मण रहता है, वह पञ्चाग्नि तापता है, इनके अतिरिक्त उसे दो अग्नियों का बड़ा सन्ताप है, एक तो उसकी तथा उसकी भार्य्या की जठराग्नि भूख से सदा जलती रहती है और दूसरी अग्नि प्रजा (सन्तति) का अभाव है। ब्राह्मण अग्निदेव का उपासक है, सो एक दिन भगवान् विभावसु ने अपने उस धन पुत्रार्थी तथा तपश्चर्य्या में लीन भक्त को स्वप्न में दर्शन देकर उससे कहा—"ब्रह्मन् ! औरस (१) पुत्र तो तुम्हारे लिखा नहीं है हां कृत्रिम (२) होगा और उसी से तुम्हारा दारिद्र्य भी नष्ट हो जायगा।" अग्निदेव के आदेशानुसार वह ब्राह्मण उसकी प्रतीक्षा कर रहा है सो यह शिशु उसीको दे दिया जाय, इसकी ऐसीही भवितव्यता है इसमें वश क्या है। इस प्रकार अपनी प्रिया से कह के अट्टहास ने एक कलश में सुवर्ण की मुद्रायें भरीं और ऊपर उसके मुंह पर बच्चे को रक्खा और उसके गले में दिव्य रत्नों की एक माला बांध दी। इतना कर वह रात्रि के समय बच्चे को ले जाकर उस ब्राह्मण के घर में छोड़ आया और पश्चात् अपनी भार्य्या के साथ निज लोक को चला गया।

कुछ कालोपरान्त वह देवदर्शन ब्राह्मण जागने पर क्या देखता है कि रत्नों के बीच में एक बालक पड़ा है, जैसे तारागणों के बीच चन्द्र। उस बालचन्द्र को देखकर दोनों प्राणी बड़ेही अचम्भित हुए कि यह क्या बात है पश्चात् उसे उठाकर उस घड़े की ओर जो दृष्टि करें तो लो वह तो सोने से भरा है। अब तो उनके अचभे का ठिकाना न रहा, उसी क्षण उन्हें अग्निदेव की बात स्मरण हुई तब तो दम्पती को जो आनन्द हुआ वह वर्णन क्योंकर हो सके। ब्राह्मण ने बड़े हर्ष से घड़े और बालक को ले लिया और विधि का दान समझ सानन्द रात बिताई। प्रातःकाल होने पर उसने बड़ा उत्सव किया। जब बालक ग्यारह दिन का हुआ तब ब्राह्मण ने उसका उचित नाम श्रीदर्शन रक्खा। अब दरिद्र देवदर्शन महा धनी हो गया और नाना प्रकार के भोग विलास कर आनन्दपूर्वक दिन काटने लगा। लोग जब धनी हो जाते हैं तब प्रायः अपने धर्म्मकर्म्म से बहिर्मुख हो जाते हैं पर ब्राह्मण देवदर्शन अपने नित्यकर्म्म में बराबर तत्पर रहा जिस प्रकार अग्निदेव के प्रसाद से उसने

(१) अपना जन्मा हुआ। (२ बनावटी अर्थात् गोद लिया हुआ पोष्यपुत्र।

अपना अभीष्ट पाया था वैसेही वह उनकी उपासना में सदा सर्वदा लीन बना रहता। ठीकही कहा है— "कर सेवा तो खा मेवा" जो इष्टदेव की आराधना ही न करेगा वह क्या पावेगा ! ।

इधर श्रीदर्शन अपने पिता के घर में बढ़ने लगा, क्रमानुसार वह बड़ा हुआ और वेदविद्या में सर्वश्रेष्ठ तथा अस्त्र-शास्त्र में भी अत्यन्त प्रवीण हुआ। समय पाकर जब वह युवा हुआ तब उसका पिता तीर्थ यात्रा करने गया किन्तु प्रयाग पहुँचकर परलोक का यात्री हो गया, उसकी माता को जब पति की मृत्यु का वृत्तान्त विदित हुआ तो वह अग्नि में जलकर सती हो गयी। श्रीदर्शन को माता पिता के मर जाने से शोक तो बहुत हुआ तथापि उसने शास्त्रोक्त विधि से उनकी सब क्रियायें कीं। कुछ कालोपरान्त, धीरे २ उसका शोक घट गया। संसार में श्रीदर्शन का अब कोई न रहा, माता पिता उसके अकाल में ही कालग्रसित हो गये, वे अपने पुत्र का उद्वाह कर पुत्रवधू का मुंह निरीक्षण न कर सके सो श्रीदर्शन क्वाराही रह गया। कहाही है 'परमस्वतन्त्र न सिरपर कोई। भावै मनहिं करै सोइसोई' सोही घटना श्रीदर्शन पर घटी। घर में धन बहुत, शिर पर कोई नहीं, भार्य्या होती तो भला एक प्रग्रह भी होता, सो श्रीदर्शन यद्यपि स्वयं बड़ा विद्वान् और ज्ञानी था तथापि स्वातन्त्र्यवश दैवात् द्यूतक्रीड़ा में फँस गया, द्यूत का दुर्दान्त दुर्व्यसन उसे लग गया अतएव थोड़ेही काल में उसकी सारी सम्पत्ति उड़ गयी और वह कौड़ी का तीन हो गया। अब यह दशा उपस्थित हुई कि भोजन का भी ठिकाना न लगता। कहां तो श्रीदर्शन यथार्थनामा श्रीदर्शनही था कहां ऐसी दारुण दशा हो गयी कि कोई उससे बात भी न करता और विचारा भूखों रह जाता। हा ! जूआ कैसा सर्वनाशक व्यसन है ! क्या कहा जाय।

एक समय की बात है कि द्यूतशाला में श्रीदर्शन तीन दिन और तिन रात निराहार पड़ा रह गया, एक तो पेट में अन्न नहीं, दूसरे तन पर वस्त्र नहीं, उधर शक्ति का अभाव इधर लाज की प्रबलता, अतः वह बाहर भी न निकल सका। जो लोग कुछ खाने को दें तो वह लेभी नहीं। इस प्रकार वह बड़े कष्ट में पड़ा रहा। उसकी ऐसी दशा देख उसका एक मित्र मुखरक नामक जुआड़ी उससे यों कहने लगा—"मित्र ! तुम ऐसा शोक क्यों करते हो, जूआ ऐसा पापही है क्या तुम नहीं

जानते थे कि दरिद्रा के कटाक्ष के पात्र अक्ष (१) ऐसे होते हैं। सुनो जुआड़ी के बाहुही आस्तरण (२) हैं, धूलिही शय्या है, चत्वर (३) ही घर है और विध्वस्तता ही (४) गृहिणी है। विधाता ने उसको ऐसीही गति ठहरा दी है। तुम तो विद्वान् हो सब जानते हो तो फिर क्यों इस प्रकार अपनी उपेक्षा करते हो, जो मिले जुले उसे खाकर अपना जीवन क्यों नहीं बचाते। जो धैर्य्य धर अपने जीवन की रक्षा करता है वह क्या अपना अभिमत नहीं पाता ? नहीं अवश्य अपना अभीष्ट सिद्ध करता है। सो तुम अपना शरीर सँभालो, जीते रहोगे तो बहुत धन हो रहेगा। सुनो इसी विषय में मैं तुमको भूनन्दन की विचित्र कथा सुनाता हूं।

इस धरातल पर पृथ्वी का आभरणस्वरूप कश्मीरमण्डल है, विधाता ने सुकृतियों के उपभोग के हेतु मानो एक दूसरा स्वर्गलोक बनाया हो। दोनों में भेद इतनाही है कि स्वर्ग का भोग श्रवणपथगामी है और कश्मीर का दृश्य है। "मैं यहां अधिक (प्रधान) हूं, तो क्या मैं नहीं हूं," इस प्रकार ईर्ष्या से कहती हुई सरस्वती और लक्ष्मी दोनों वहां विराज रही हैं। धर्म्मद्रोही कलि का प्रवेश न होने पावे इस हेतु तुहिनाद्रि (५) उसे चहुँओर से घेरे हुए हैं। जहां वितस्ता नदी अपनी वीचियों से हाथ पसार के मानो यह कह रही हैं कि यह देश देवतीर्थमय है, हे पाप ! तू यहां से दूर भाग तेरा यहां वश न चलेगा। जहां के अति उत्तुङ्ग (६) श्वेतवर्ण, मानो सुधा से धोये प्रासाद, आसन्नवर्ती हिमाद्रि के उन्नत शिखर की शोभा देते हैं।

ऐसे सुरम्य कश्मीर देश में भूनन्दन नामक एक महीपति थे, जो कि वर्णाश्रम के संरक्षक और प्रजावर्ग के आनन्दचन्द्र थे। राजा स्वयं आगम निगम में बड़े प्रवीण और पण्डितों के मानदाता थे। वे बड़े पराक्रमी थे उनके विक्रम के सूचक नखचिह्न कामिनियों के कुच युगल तथा शत्रुओं के मण्डल (७ पर विराजमान थे। वे बड़े ही नीतिमान् भी थे और उनकी प्रजाओं में किसी प्रकार की अनीति (८) नहीं थी, महाराज श्रीकृष्ण के एकान्त भक्त थे और उनकी प्रजायें सदा शुद्धमन थीं, उनमें किसी प्रकार के दुर्गुण नहीं थे।

(१) पासे। (२) बिछौने। (३) चौराहा। (४) बर्बादी।
(५) हिमालय। (६) बड़े ऊँचे ऊँचे। (७) राज्य। (८) यहां "विपत्ति" ऐसा

एक समय की बात है कि द्वादशी के दिन महाराज विधिपूर्वक भगवान् अच्युत की पूजादि क्रिया समाप्त कर सुख-नींद सोये थे कि स्वप्न में क्या देखते हैं कि एक दैत्य-कन्या आई है; राजा उसके संयोग के उपरान्तही जाग पड़े तो उन्हें विदित हुआ कि अङ्ग पर सम्भोग के चिन्ह विद्यमान हैं परन्तु वह सम्भोगदात्री नहीं है। अब तो उनके विस्मय का ठिकाना न रहा, महाराज अति विस्मित हो तर्कना करने लगे कि यह स्वप्न तो होही नहीं सकता क्योंकि यह सम्भोग तो प्रत्यक्ष जानपड़ता है, बस मैं यही समझता हूं कि किसी दिव्य नारी ने (१) मुझ धोखा दिया है। अब राजा का मन उसी की ओर लगा, सदा उसीका ध्यान बना रहता, उसके विरह से वह अत्यन्त व्याकुल रहते, होते २ सब राजकार्य्य से हाथ खींच बैठे। अब वह उसकी प्राप्ति के उपाय सोचने लगे, पर कोई उपाय ऐसा न बन पड़ा कि उस प्रियतमा से भेंट हो। अन्त में उन्होंने यह विचारा कि यह मेरा क्षणिक्सङ्गम उस अप्सरा के साथ बस भगवान् हरि के प्रसाद से हुआ है और किसी का ऐसा प्रताप नहीं हो सकता सो अब मैं एकान्त में चलकर उस प्रिया की प्राप्ति के हेतु उन्हीं भगवान् की आराधना करूँ। देखो यह राज्य जो कि पहिले मुझको बड़ा सुखद प्रतीत होता था वही अब नीरस (२) और पाश के (३) समान भासता है बस यह उसी देवकन्या के अभाव के कारण है। इस प्रकार सङ्कल्प कर राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाया और अपना अभिप्राय कह सुनाया तथा अपने भाई सुनन्दन को राज्य का भार सौंप दिया।

अब राजा भूनन्दन राजपाट त्याग राजभवन से निकल चले, चलते २ क्रमसर नामक तीर्थ में पहुँचे जहां पूर्वकाल में भगवान् बामन ने अपना पांव रखकर पवित्र स्थान निर्माण किया था। वहां पर्वत के तीन शृङ्गों के रूप में त्रिदेव (४) बास करते हैं, और वहीं विष्णु भवागन् के चरण से मानो वितस्ता के मत्सर से एक दूसरी सुरनदी विषुवती नाम्नी निकल के बहती है। वहां राजा भूनन्दन तपस्या करने लगे, सब रसों का त्याग कर चातक के समान नव्य रस की आकांक्षा कर ध्यानस्थ हुए (५)। इस प्रकार तपस्या करते २ जब बारह वर्ष हो गये तब

अर्थ भी निकलता है। (१) अप्सरा ने। (२) फीका। (३) बन्धन। (४) ब्रह्मा, विष्णु और महेश। (५) जिस प्रकार चातक सब रस (जल) त्याग नवीन स्वाती का जल

एक दिन ऐसा हुआ कि उसी मार्ग से कोई बड़े ज्ञानी तपस्वी आ निकले, जिनकी जटा पिङ्गलवर्ण थी, वे चीरवासा थे, जिनके पीछे पीछे शिष्यगण चले आ रहे थे, मानो उस शैलशिखर से साक्षात् भगवान् शिवजी गणों के साथ उतरे हों। राजा को देख उनके मनमें अति प्रीति उत्पन्न हुई सो वह उनके समीप जाकर अति नम्र वाणी से पूछने लगी; कि भद्र! अपना वृत्तान्त तो सुनाओ कि तुम कौन हो और क्यों तपस्या में तत्पर हो? जब राजा ने अपना वृत्तान्त सुनाया तब क्षणभर ध्यान कर मुनि फिर बोले—"राजन्! वह तुम्हारी प्रिया दैत्यकन्या है वह पाताल में रहती है; सो तुम धीरज धरो मैं तुम्हें उसके समीप पहुँचा देता हूं। मैं दाक्षिणात्य ब्राह्मण यज्ञ नामक यज्वा का भूतिवसु नामक पुत्र हूं और मैं योगियों का गुरु हूं। पिता ने मुझे अपना ज्ञान सिखाया, फिर मैंने पाताल शास्त्र से हाटकेशान (१) के मन्त्र तन्त्र की विधि सीख ली; तब मैं श्रीपर्वत पर चला गया और भगवान् अम्बक की आराधना में तपस्या करने लगा, आशुतोष तो महाप्रभु का नामही है सो वे थोड़ेही काल में सन्तुष्ट हो गये और साक्षात् दर्शन दे बोले "पुत्र! तू पाताल में जा और वहां दैत्याङ्गना से युक्त हो, विविध भांति के भोग भोगकर पीछे मेरे पास आवेगा। सुन उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुझे बताता हूं; भूतल में पाताल के अनेक विवर हैं पर वे सब गुप्त हैं परन्तु कश्मीर में जो मय का बनाया हुआ एक बिल है वह प्रत्यक्ष है जिसके द्वारा बाणसुता उषा अपने कान्त अनिरुद्ध को पाताल में ले जाकर दानवों की उद्यानभूमियों में विहार करती रही। तब प्रद्युम्न ने अपने पुत्र को वहां से बचा लेने के लिये गिरि शृङ्ग पर एक दूसरा प्रगट द्वार बनाया, और उस द्वार की रक्षा के हेतु सैकड़ों भांति से स्तुति और आराधना कर दुर्गा को वहां स्थापित किया और उनका नाम शारिका रक्खा; इससे आजकाल उसका नाम प्रद्युम्नशिखर पड़ा है, कोई २ उसे शारिकाकूट भी कहते हैं सो वह स्थान दोनों नामों से प्रख्यात है। उसी बिल से तू जाकर प्रवेश कर और अपने अनुचरों के साथ पाताल में जा, मेरे प्रसाद से वहां तेरा कार्य्य सिद्ध होगा।" इतना कह भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये और उन्हीं के प्रसाद के प्रभाव से मुझे समस्त ज्ञान

चाहता है उसी प्रकार राजा अब नवीन रस उस दैत्यकन्या की आशा करने लगी।

(१) महादेवजी का नाम है।

वहीं प्राप्त हो गये, बस अब मैं कश्मीर में आया हूं सो आओ राजन् हमारे साथ शारिकाकूट को चलो, फिर इष्टाङ्गना की प्राप्ति के निमित्त मैं तुमको पाताल में ले चलूंगा।" जब तपस्वी इतना कहकर चुप हुए तब राजा भूनन्दन उनके साथ शारिकाकूट को चले।

चलते २ सब लोग शारिकाकूट पर पहुँचे, वहां तपस्वी ने वितस्ता में स्नान कर विनायक तथा शारिका देवी की पूजा किया और दिशायें बांधीं। पश्चात् हर के अनुग्रहशाली उस महातपस्वी ने सरसों छींटकर, वह विवर प्रगट किया, और शिष्यों के सहित जब तपस्वी ने उसमें प्रवेश किया तब उनके साथ राजा भूनन्दन भी पैठे। इस प्रकार पाताल के मार्ग पर सब लोग चले और बराबर पांच दिन तथा पांच रात चलते गये। छठवें दिन सब लोग पातालवाहिनी गङ्गा पर पहुँचे, गंगा पार कर रजतमयी (१) भूमि में आये, तहां उनको एक दिव्य कानन (२) दीख पड़ा जिसमें मूंगे, कपूर, चन्दन और अगुरु के वृक्ष लगे थे। वह उद्यान प्रफुल्ल सौवर्णस्थलकमल की सुगन्धि से वासित था। उस उद्यान के बीच में उन्हें एक शिवालय दीख पड़ा जिसका प्रसार बहुत प्रशस्त था, जिसकी सीढ़ियां रत्नों की बनी थीं, उसकी भीतें सुवर्ण की थीं, जिसमें मणिमय खम्भे लगे थे जो बड़ी दूर से चमकते थे, इन सभारों से वह मन्दिर बहुतही शोभायमान था। उस मन्दिर के निरीक्षण से सब लोगों को बड़ा हर्ष तथा आश्चर्य हुआ। तब उस ज्ञानी तपस्वी ने अपने शिष्यों तथा राजा भूनन्दन से कहा—"यह वही पातालवासी देव हाटकेश्वर हैं जिनका गान तीनों लोकों में होता है सो तुम लोग इनकी पूजा करो।" तपस्वी का ऐसा कथन सुन सभोंने पातालगङ्गा में स्नान किया और पाताल के उन उन पुष्पों से देवादिदेव महादेव की पूजा की। पूजा के समय जो कुछ काल लगा उसीसे उन लोगों का विश्राम भी हो गया। इसके उपरान्त वे सब आगे बढ़े, कुछ दूर जाने पर उन्हें एक दिव्य बड़ा भारी जामुन का पेड़ मिला जिससे पके २ फल टपक रहे थे। उसे देख तपस्वी ने अपने अनुयायियों को वारण किया कि इस वृक्ष के फल मत खाइयो क्योंकि जो ये खाये जायँ तो विघ्न करते हैं इससे इनपर मन न चलाना। गुरुदेव का ऐसा वचन सुनकर भी भूख के मारे

(१) चांदी की। (२) उद्यान भी कह सकते हैं।

एक दिन ऐसा हुआ कि उसी मार्ग से कोई बड़े ज्ञानी तपस्वी आ निकले, जिनकी जटा पिङ्गलवर्ण थी, वे चीरवासा थे, जिनके पीछे पीछे शिष्यगण चले आ रहे थे, मानो उस शैलशिखर से साक्षात् भगवान् शिवजी गणों के साथ उतरे हों। राजा को देख उनके मनमें अति प्रीति उत्पन्न हुई सो वह उनके समीप जाकर अति नम्र वाणी से पूछने लगी; कि भद्र! अपना वृत्तान्त तो सुनाओ कि तुम कौन हो और क्यों तपस्या में तत्पर हो? जब राजा ने अपना वृत्तान्त सुनाया तब क्षणभर ध्यान कर मुनि फिर बोले—"राजन्! वह तुम्हारी प्रिया दैत्यकन्या है वह पाताल में रहती है; सो तुम धीरज धरो मैं तुम्हें उसके समीप पहुँचा देता हूं। मैं दाक्षिणात्य ब्राह्मण यज्ञ नामक यज्वा का भूतिवसु नामक पुत्र हूं और मैं योगियों का गुरु हूं। पिता ने मुझे अपना ज्ञान सिखाया, फिर मैंने पाताल शास्त्र से हाटकेशान (१) के मन्त्र तन्त्र की विधि सीख ली; तब मैं श्रीपर्वत पर चला गया और भगवान् त्र्यम्बक की आराधना में तपस्या करने लगा, आशुतोष तो महाप्रभु का नामही है सो वे थोड़ेही काल में सन्तुष्ट हो गये और साक्षात् दर्शन दे बोले "पुत्र! तू पाताल में जा और वहां दैत्याङ्गना से युक्त हो, विविध भांति के भोग भोगकर पीछे मेरे पास आवेगा। सुन उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुझे बताता हूं; भूतल में पाताल के अनेक विवर हैं पर वे सब गुप्त हैं परन्तु कश्मीर में जो मय का बनाया हुआ एक बिल है वह प्रत्यक्ष है जिसके द्वारा बाणसुता ऊषा अपने कान्त अनिरुद्ध को पाताल में ले जाकर दानवों की उद्यानभूमियों में विहार करती रही। तब प्रद्युम्न ने अपने पुत्र को वहां से बचा लेने के लिये गिरि शृङ्ग पर एक दूसरा प्रगट द्वार बनाया, और उस द्वार की रक्षा के हेतु सैकड़ों भांति से स्तुति और आराधना कर दुर्गा को वहां स्थापित किया और उनका नाम शारिका रक्खा; इससे आजकाल उसका नाम प्रद्युम्नशिखर पड़ा है, कोई २ उसे शारिकाकूट भी कहते हैं सो वह स्थान दोनों नामों से प्रख्यात है। उसी बिल से तू जाकर प्रवेश कर और अपने अनुचरों के साथ पाताल में जा, मेरे प्रसाद से वहां तेरा कार्य्य सिद्ध होगा।" इतना कह भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये और उन्हीं के प्रसाद के प्रभाव से मुझे समस्त ज्ञान

चाहता है उसी प्रकार राजा अब नवीन रस उस दैत्यकन्या की आशा करने लगे।

(१) महादेवजी का नाम है।

वहीं प्राप्त हो गये, बस अब मैं कश्मीर में आया हूं सो आओ राजन् हमारे साथ शारिकाकूट को चलो, फिर दृष्टाङ्गना की प्राप्ति के निमित्त मैं तुमको पाताल में ले चलूंगा।" जब तपस्वी इतना कहकर चुप हुए तब राजा भूनन्दन उनके साथ शारिकाकूट को चले।

चलते २ सब लोग शारिकाकूट पर पहुँचे, वहां तपस्वी ने वितस्ता में स्नान कर विनायक तथा शारिका देवी की पूजा किया और दिशायें बांधीं। पश्चात् हर के अनुग्रहशाली उस महातपस्वी ने सरसों छीटकर, वह विवर प्रगट किया, और शिष्यों के सहित जब तपस्वी ने उसमें प्रवेश किया तब उनके साथ राजा भूनन्दन भी पैठे। इस प्रकार पाताल के मार्ग पर सब लोग चले और बराबर पांच दिन तथा पांच रात चलते गये। छठवें दिन सब लोग पातालवाहिनी गङ्गा पर पहुँचे, गंगा पार कर रजतमयी (१) भूमि में आये, तहां उनको एक दिव्य कानन (२) दीख पड़ा जिसमें मूंगे, कपूर, चन्दन और अगुरु के वृक्ष लगे थे। वह उद्यान प्रफुल्ल सौवर्णस्थलकमल की सुगन्धि से वासित था। उस उद्यान के बीच में उन्हें एक शिवालय दीख पड़ा जिसका प्रसार बहुत प्रशस्त था, जिसकी सीढ़ियां रत्नों की बनी थीं, उसकी भीतें सुवर्ण की थीं, जिसमें मणिमय खम्भे लगे थे जो बड़ी दूर से चमकते थे, इन सम्भारों से वह मन्दिर बहुतही शोभायमान था। उस मन्दिर के निरीक्षण से सब लोगों को बड़ा हर्ष तथा आश्चर्य हुआ। तब उस ज्ञानी तपस्वी ने अपने शिष्यों तथा राजा भूनन्दन से कहा—"यह वही पातालवासी देव हाटकेश्वर हैं जिनका गान तीनों लोकों में होता है सो तुम लोग इनकी पूजा करो।" तपस्वी का ऐसा कथन सुन सभोंने पातालगङ्गा में स्नान किया और पाताल के उन उन पुष्पों से देवादिदेव महादेव की पूजा की। पूजा के समय जो कुछ काल लगा उसीसे उन लोगों का विश्राम भी हो गया। इसके उपरान्त वे सब आगे बढ़े, कुछ दूर जाने पर उन्हें एक दिव्य बड़ा भारी जामुन का पेड़ मिला जिससे पक्के २ फल टपक रहे थे। उसे देख तपस्वी ने अपने अनुयायियों को वारण किया कि इस वृक्ष के फल मत खाइयो क्योंकि जो ये खाये जायँ तो विघ्न करते हैं इससे इनपर मन न चलाना। गुरुदेव का ऐसा वचन सुनकर भी भूख के मारे

(१) चांदी की। (२) उद्यान भी कह सकते हैं।

एक शिष्य ने उस वृक्ष का एक फल खा लिया, खातेही वह निश्चेष्ट पत्थर बन गया। यह देखतेही सब लोग भयभीत हो गये अब किसी की भी इच्छा न रही कि फल खावे, भला अब किसे पड़ी है कि फल खाके पाषाण बने।

अब तपस्वी महाराज अपने उन शिष्यों के साथ महाराज भूनन्दन के संग आगे बढ़े। एक कोस दूर निकल गये होंगे कि साम्हने सद्रत्ननिर्मित एक बड़ा भारी द्वार मिला जिसके प्राकार सोने के बने और बड़े ऊँचे २ थे। द्वार के दोनों पार्श्वों में (१) लोहमयाङ्ग (२) दो मेढ़े थे जो द्वार में पैठनेवालों को सींग से मार मार दूर भगा देते थे। सबका रोकना और उक्त तपस्वी का रोकना क्या बराबर हो सकता है, तपस्वी क्या ऐसेवैसे थे, ज्योंही उन मेढ़ोंने उनको रोका कि तपस्वी ने मन्त्र पढ़ ऐसा दण्डा मारा कि वे जहां के तहां ठंढे हो गये। जैसे कोई वज्र का मारा फिर नहीं बहुरता, वैसेही दण्डाहत वे मेढ़े बिलाय गये। अब महाराज तपस्वी, उनके शिष्य और राजा भूनन्दन उस द्वार में पैठे, आगे ज्यों बढ़े त्योंही उनको दिव्य हेमरत्नमय गृह दीख पड़े; वहां वे क्या देखते हैं कि प्रत्येक द्वार पर रखवाले लोहे की दण्ड लिये विद्यमान हैं, जिनका रूप बड़ा उत्कट, और सबके सब अपने दांतों से अधरोष्ट काट रहे हैं। सब लोग एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और तपस्वी महाराज दुष्टनाशन योग का साधन करने लगे। उस साधन के प्रभाव से वे सब भयङ्कररूप द्वाररक्षक समस्त द्वारों से भाग भग कर लोप हो गये।

क्षण ही भर में उन द्वारों से दैत्यकन्याओं की दासियां दिव्य आभरण और वस्त्रों से विभूषित निकलीं, उन सभोंने पृथक् २ अपनी २ स्वामिनियों की ओर से सबसे तथा तपस्वी महाराज से प्रार्थना किये। तब व्रती तपस्वी ने उन सब अपने अनुगामियों को चिता दिया कि भीतर जाने को तो जाओ पर स्मरण रहे कि अपनी २ प्रिया का वचन कदापि उल्लङ्घन न करना। इस प्रकार अपने अनुचरों को समझाकर वह तपस्वी कतिपय दासियों के साथ एक सर्वोत्तम मन्दिर में पैठे जहां एक अति उत्तम दैत्यकन्या उन्हें मिली और उसके साथ उनके अभीष्ट भोग भी प्राप्त हुए। इसी प्रकार और २ लोग भी एक २ करके दिव्य वेश्मों में (३) पहुँचाये गये और सब लोग दैत्यसुताओं के सम्भोग के पात्र हुए।

---

(१) बगल में। (२) जिनके अङ्ग लोहे के बने थे। (३) घरों में।

राजा भूनन्दन को भी एक दासी अति नम्रतापूर्वक प्रणाम कर बाहर की एक मणिमय भवन में ले गयी, जिसकी मणिमय भीतों पर सुन्दरियों की छायायें जो पड़ा करती थीं उनसे यह भावना होती थी कि मानों उनपर सजीव चित्र बने हुए हैं। उस गृह के भूभाग (१) अति प्रकाशमान नीलम के बने थे, भवन क्या था मानों विमान को जीतने के लिये आकाशपृष्ठ पर आरूढ़ हो। पुनः वह भवन ऋषियों के निकेत के समान भासता था जहां सदाकुल बलराम विद्यमान हैं, सबके मनहरन करनेवाले प्रद्युम्न विराजमान हैं; जो गृह अच्युत के प्रभाव से सदा आढ्य (२) रहता था ३)। उस गृह में जो स्त्रियां रहती थीं उनके अंगों की उपमा उन पुष्पों से दी जा सकती है जो बाल सूर्य्य का आतप भी नहीं सह सकते। गृह सङ्गीतनाद से सदा निनादित रहता था। राजा भूनन्दन जब उस गृह में गये तो क्या देखते हैं कि वही पूर्वकाल की स्वप्न में देखी हुई असुरकन्यका विराजमान है; उसकी कान्ति से पाताल, जहां कि सूर्य्यादि के प्रकाश का अभाव है, प्रकाशित है, जिससे यह अनुमान होता था कि प्रजापति ने रत्नादि आलोक के (४) निर्माण में व्यर्थही श्रम किया।

उस अनिर्वाच्यरूपा (५) रमणीरत्न को देखतेही राजा के नेत्रों से हर्षाश्रु बह चले, नेत्रों ने जो दूसरों को देखा था उस देखने का मल मानों वह धो रहे हों। ठीकही है बहुत दिनों के उपरान्त वियोग के अनन्तर जब संयोग होता है उस समय की अग्नि अश्रु विना और किससे बुझायी जाय। उस दैत्यकन्या ने भी, कि जिसकी सखियां गुणगान कर रही हैं, और जिसका नाम कुमुदिनी था राजेन्दु (६) भूनन्दन को देखकर अकथनीय प्रमोद पाया। उन्हें देखतेही वह आसन से उठी और राजा का हाथ पकड़कर बोली—"प्यारे! मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया," इस प्रकार कह के उसने उन्हें ले जाकर आसन पर बैठाय दिया। जब वह कुछ

(१ गच। (२) अन्न धन लक्ष्मी से परिपूर्ण। (३) यहां श्लेष है—यथा, गृह पक्ष में जहां मदमादी रामायें (रमणियां) विराजती हैं, सबके मन को प्रेरणा की करनेहारे कामदेव, अविनाशी जो प्रभाव तिससे। ऋषियों के निकेत का अर्थ ऊपरही दिया हुआ है। (४) प्रकाशक द्रव्यों के। (५) जिसके रूप का विवरण नहीं हो सकता। (६) राजेन्दु पाठ होने से उपमा ठीक हो जाती है।

काल विश्राम कर चुके तब उठकर स्नान करने गये स्नानोत्तर उन्हें उत्तमोत्तम वस्त्र आभूषण पहिनाये गये, तदनन्तर असुराङ्गना उन्हें पान कराने के अर्थ उद्यान में ले गयी; वहां एक बावड़ी के किनारे वह उनके साथ बैठ गयी जिसके किनारे जो पेड़ लगे थे उनपर शव लटक रहे थे उन्हीं के रक्त, और चर्बी तथा मदिरा से वह बावड़ी भरी थी। अब वह उसी बावड़ी में से एक कटोरा चर्बी और मदिरा भर लाई और राजा भूनन्दन को देकर बोली "महाराज! पीजिये।" भला राजा ऐसा घृणित पदार्थ कब पीने के। तब तो वह असुराङ्गना चमककर बोली—"महाराज! यदि भला चाहो तो इसे पी लो, सिर मत हिलाओ; सुनो यदि इसे न पोओगी तो तुम्हारा कल्याण किसी प्रकार न होगा।" इस भांति जब वह बार बार कहने लगी तब राजा बोले, "सुनो जी यह अपेय पदार्थ में कभो न पीऊँगा चाहे जो हो सो हो," इतना कहना था कि दैत्यकन्या अपना रोष सम्भाल न सकी चट वह कटोरा राजा के माथे पर फेंक (उभिल) वहां से चली गयी। उस बसा और मदिरा से राजा के नेत्र और मुंह भर गये अब वह भली भांति देख भी नहीं सकते थे, इतने में उस दैत्यकन्या की एक दासी उन्हें उठाकर एक दूसरे तड़ाग में फेंक आयी।

उस तलाव में गिरना था कि राजा तत्काल अपने तपोवन में उसी क्रमसर तीर्थ में आ पहुँचे, अब वह देखते हैं तो वही स्थान वही हिम और वही हँसता हुआ जंगल पहाड़ है। राजा इस दृश्य से उदास तो हुए ही पर उन्हें आश्चर्य भी बड़ा हुआ सो वह अपने मनमें सोचने लगे कि ओः! मैं धोखे में पड़ गया; कहां दैत्य सुता का वह उद्यान कहां यह क्रमसर गिरि! अहो यह कुछ आश्चर्य है, या माया है अथवा मेरी बुद्धि में हो भांग पड़ गयी है!! बस २ समझा मैंने, सुनकर भी तपस्वीजी की बात जो मैंने न मानी, उसका उल्लङ्घन किया, यह उसी का परिणाम है। वह मदिरा भी नहीं थी, मेरी प्रिया मेरी परीक्षा करती थी, देखो न वह मेरे माथे पर जो पड़ी उसका सौरभ कैसा दिव्य प्रतीत होता है। ठीक है, भाग्यहीनों का भाग्यही ऐसा होता है कि कितना भी कष्ट उठावें पर परिणाम शून्यही मिलता है, बस विधाताही बाम है तो सिद्धि कैसे हाथ लगे।

राजा तो इधर इस प्रकार सोचही रहे थे कि उधर से एक दूसरी विपत्ति

उनके माथे पड़ी। असुरसुता ने जो पान (१) उनके ऊपर उँड़ेल दिया था उसकी सुगन्धि से बहुत से भौंरों ने उनको घेर लिया। अब राजा और भी घबराये कि भला यदि इतना परिश्रम उठाया उसका फल इष्ट न हुआ तो नहीं सही पर अनिष्ट फल माथे पड़ा, यह तो ठीक जैसे वेताल का उठाना (२) हुआ। भौंरों के बींधने से राजा अति व्याकुल और उद्विग्न हुए तब अपने मनमें उन्होंने विचारा कि अब इस शरीर का रखना ही अच्छा नहीं क्योंकि जब दुःखही भोगना है तो इस जीने से मरना ही उत्तम होगा।

इसी अवसर में उसी ओर एक मुनिपुत्र दैवात् आ पड़े, देखते हैं तो राजा बड़े व्याकुल हैं, और भौंरे भन २ कर चहुँओर से उनपर भूम रहे हैं और बींध भी रहे हैं। राजा की यह दुर्दशा देख मुनितनय के हृदय में करुणा का सञ्चार हुआ, उन्होंने भौंरों को भगाकर महीपति से उनका वृत्तान्त पूछा; जब उन्हें राजा अपना सारा वृत्तान्त सुना गये तब करुणामय ऋषितनय फिर बोले—"राजन्! जब लों यह देह है तब लों भला दुःख का क्षय कैसे हो सकता है इससे बुद्धिमानों को उचित है कि उद्वेग त्यागकर पुरुषार्थ करते रहें। जब लों अच्युत भगवान्, महादेव और ब्रह्मा में ऐक्य की मति न हो और इनकी उपासना में भेद की दृष्टि बनी रहे तब लों सिद्धि कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। सो हे महीपति! भेददृष्टि त्याग ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर का ध्यान करो तथा धीरज धर और बारह वर्ष यहीं तपस्या करो। तब तुम अपनी प्रियतमा को पाओगे और अन्त में तुम्हें शाश्वती सिद्धि भी प्राप्त होगी। तुम्हारी देह तो सिद्ध हो चुकी देखो न यह कैसी दिव्य सुगन्धि उससे निकल रही है। लेओ मैं तुम्हें मन्त्र सहित यह अपना कृष्ण मृगचर्म देता हूं जब इसे तुम लपेटे रहोगे तो भ्रमर तुम्हें न सतावेंगे।" इतना कह राजा को मन्त्र सहित अजिन दे मुनिकुमार चले गये और महीश भूनन्दन धैर्य्य धर उसी तपोवन में पुनः तपस्या करने लगे।

इस प्रकार भगवान् की आराधना करते २ जब राजा के बारह वर्ष व्यतीत हो गये तब उनके पास वह दैत्यकन्या कुमुदिनी स्वयं आयी; राजा भूनन्दन उसके

(१) मद्य। (२) जगाना।

साथ पाताल में गये और अपनी उस प्रिया के संग बहुत दिनों लों नाना प्रकार के भोग भोगते रहे; पश्चात् कुछ कालोपरान्त उन्हें सिद्धि भी प्राप्त हो गयी।

इतनी कथा सुनाय मुखरक श्रीदर्शन से फिर कहने लगा "भाई श्रीदर्शन! इसीसे मैं कहता हूं कि धीरज धरो, देखो न यह कथा जो मैं तुमको सुना चुका हूं, इस बात को साक्षी देती है कि बहुत दूर फेंके गये लोग भी जो धीरज रक्खें तो अपना स्थान पुनः प्राप्त कर लेते हैं। सखे श्रीदर्शन! तुम्हारे लक्षणों से ऐसा भासता है कि तुम्हारा कल्याण होनेवाला है सो तुम आहार त्याग क्यों इस प्रकार आत्मा को कष्ट पहुँचा रहे हो!" रात्रि के समय द्यूतशाला के मध्य अपने मित्र मुखरक का ऐसा वचन सुन वह निराहारी ब्राह्मणकुमार श्रीदर्शन बोला—"भाई तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, किन्तु यह बात भी तो तुम जानते हो कि मैं कैसा कुलीन हूं, फिर जूए के कारण मेरी क्या दुर्गति हो गयी है तो बाहर निकल मुंह दिखाने में लज्जा लगती है तुम्हीं कहो क्योंकर बाहर निकलूं, एकही उपाय है कि मैं बाहर चल सकता हूं और अन्न भी ग्रहण कर सकता हूं सो यह कि इसी रात्रि में निकलकर मैं कहीं विदेश चला जाऊँ, यदि इसको सम्मति तुम दे सको तो मैं भोजन करूँ।" "बहुत अच्छा मैं मना न करूँगा" इतना कह मुखरक ने कुछ भोजन लाकर उसे दिया और उसने भी अपने मित्र के कथनानुसार भोजन किया। भोजन कर चुकने पर श्रीदर्शन परदेश को चला और उसका मित्र मुखरक भी स्नेह के मारे उसके साथ लगा।

जाते २ जब दोनों कुछ दूर निकल गये तब मार्ग में श्रीदर्शन के माता पिता अर्थात् यक्ष यक्षिणी उन दोनों सौदामिनी और अट्टहास ने उन्हें देखा जो जन्मतेही उसे ब्राह्मणके घरमें छोड़ आये थे, देखतेही उन्होंने पहिचाना कि यह वही हमारा पुत्र है और कि जुए में सर्वस्व हार जाने से खिन्न हो विदेश जा रहा है, सो वे अदृश्य ही आकाश में से बोले—"हे श्रीदर्शन! तेरी माता देवदर्शन की भार्य्या अपने घर में धरती के भीतर आभूषण गाड़ रक्खे हैं, सो उन्हें तू खोदकर निकाल ले और मालवदेश में जा, वहां अति समृद्ध श्रीसेन नामक राजा है; बाल्यावस्था में जुए के फन्दे में पड़कर वह बहुत कुछ भोग चुका है अतः उसने जुआड़ियों के हेतु एक अच्छा मठ बनवा रक्खा है; वहां जुआड़ी रक्खे (बसाये) जाते हैं और उन्हें अभीष्ट

भोजन दिया जाता है। सो वत्स तू वहीं जा, तेरा कल्याण होगा।" ऐसी आकाश-वाणी सुन श्रीदर्शन अपने मित्र सहित घर गया वहां उसने धरती खोद सब आ-भरण निकाल लिये। अब तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा, इसे देवता का अनुग्रह मान, वह पुनः वहां से अपने मित्र के साथ मालव देश की ओर चला।

उस रात में दोनों बराबर चलते गये, और दिन भर भी चले गये, सायङ्काल को बहुशस्य नामक ग्राम में पहुँचे। गांव के समीपही एक तलाव था जिसका जल अति विमल था। दोनों रात दिन चलने से बहुत थक तो गयेही थे उसी तड़ाग के किनारे बैठ गये। क्षणभर के उपरान्त उन दोनों ने अपने पांव धोकर जल पान किया, फिर ऊपर आकर दोनों मित्र बैठकर विश्राम करने लगे। इसी अवसर में एक अति सुन्दरी कन्या वहां पानी भरने आई, उसके अङ्ग का क्या वर्णन किया जाय, नील उत्पल के वर्ण के सदृश उसके अङ्ग का रङ्ग, मानो रति अकेली रह गई हो और महादेवजी ने कामदेव को जलाय दिया हो उसी धूम से उसका अंग श्यामल हो गया है। श्रीदर्शन को देखकर उसके मनमें प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया सो प्रेमभरी चितवन से उसे निरीक्षण कर उसके पास जाय इस प्रकार कहने लगी— "कहो महाभागो! तुम दोनों कहां से यहां विपत्ति के मुंह में आ पड़े हो, क्या नहीं जानते थे कि जलती आग में पतंग के समान गिर पड़े हो?" उसका ऐसा कथन सुन घबड़ाकर मुखरक उससे पूछने लगा "कहो तो तुम कौन हो? और यह क्या कह रही हो, तुम्हारे कहने का क्या अभिप्राय है?" तब वह बोली— "इतना समय नहीं है कि मैं समस्त वृत्तान्त कहने बैठूं तथापि संक्षेप में कुछ सुनाये देती हूं; सुनो—"

"सुघोष नामक एक स्थान है जो कि राजा की ओर से ब्राह्मणों को मिला है, वहां वेदज्ञ पद्मगर्भ नामक एक ब्राह्मण रहता था, उसकी भार्य्या सत्कुल की जन्मी शशिकला नाम्नी थी। उस ब्राह्मणी से उस ब्राह्मण के दो सन्तान उत्पन्न हुए, एक पुत्र दूसरी कन्या, पुत्र का नाम मुखरक कन्या का पद्मिष्ठा सो वही पद्मिष्ठा मैं हूं। मेरा भाई मुखरक बड़ा जुआड़ी था, सो बालक अवस्थाही में, नहीं जानती कहां चला गया; उसी के शोक से मेरी माता का शरीरान्त हो गया। पुत्र के चले जाने से पिता दुःखी थेही अब उनपर दोहरा दुःख पड़ा इससे उन्होंने घरबार सब

छोड़छाड़ दिया । वह अकेले, घर छोड़ मुझे लेकर पुत्र की खोज में निकले, इधर उधर घूमते घामते विधिवश इसी ग्राम में पहुँचे। यहां डकुओं का सरदार वसुभूति नामक एक बड़ा भारी डाकू रहता है, कहने को तो वह ब्राह्मण है पर कर्म उसका बड़ा खोटा है । सो वह दुष्टात्मा यहां अपने सेवकों के साथ आया और मेरे पिता का बध कर उनके शरीर पर के सब आभूषण छीन ले गया तथा मुझे भी बन्दी कर लेता गया। घर ले जाकर उसने मुझे भी बन्दी कर रक्खा और यह कहा कि अपने पुत्र से इसका विवाह कर दूंगा। उसका पुत्र कहीं बटोहियों को लूटने गया था सो मेरे पुण्यों के प्रताप से आज लों तो नहीं लौटा है आगे अब भाग्य जाने। सो वह दुष्ट डांकू आकर तुम दोनों के भी प्राण ले लेगा इससे मैं कहती हूं ऐसा उपाय करो कि इस संकट से बच जाओ।"

उसका ऐसा कथन सुन मुखरक पहिचान भी गया कि यह मेरी भगिनी है सो वह उसे गले लगा रोने लगा और बोला, "हा पद्मिष्ठे ! यह बन्धुद्रोही तेरा भ्राता मुखरक मैंही हूं, हा मैं मारा गया।" इतना सुन बड़े भाई को देख पद्मिष्ठा अति व्याकुल हुई, मानों समस्त दुःखों ने उसे एकबेरही आ घेरा । इस प्रकार वे दोनों अपने मृत माता पिता का शोक कर विलाप कर रहे थे कि श्रीदर्शन ने उन्हें शान्ति देकर समझाया और कहा—"भाई यह अब शोक करने का समय नहीं है, अब तो वह उपाय करना चाहिये जिससे प्राण बचें, धन जो कुछ पास में है सो जाय तो कुछ चिन्ता नहीं पर प्राणों की रक्षा हो वही उपाय करना उचित है।" श्रीदर्शन का ऐसा कथन सुन दुःख त्याग वे दोनों सम्भले। अब धैर्य्य धर तीनों परामर्श करने लगे कि क्या विधेय है, सो परामर्श कर सभों ने यह उपाय निकाला।

श्रीदर्शन दिनभर का क्या कई दिनों लों भोजन न करने से अति दुर्बल तो होही गया था सो मांदा बन वहीं धरती पर तलाव के किनारे सो रहा और उसके पांव पकड़ मुखरक पुक्का फार २ रोने लगा और पद्मिष्ठा उनके यहां से चलकर डाकुओं के सरदार के पास पहुँची और कहने लगी "तलाव के किनारे एक जन बटोही मांदा पड़ा है, उसके साथ एक परिचारक है ।" इस प्रकार उसका कथन सुनतेही उस डाकू ने उसी क्षण अपने सेवक डाकुओं को भेजा कि जाकर पता तो लगाओ क्या बात है। उन्होंने जाकर देखा तो सब ठीक २ पाया और

कि मुखरक रो रहा है सो उन्होंने उससे पूछा "भाई इसके लिये क्यों इतना रो रहे हो।" उनका ऐसा प्रश्न सुन बड़ी नम्रता से मुखरक बोला—"यह मेरे बड़े भाई हैं, हम दोनों ब्राह्मण हैं; यह तीर्थयात्रा को निकले, साथ २ मैं भी चला; अब चलते २ यह मांदे हो गये, यहां पहुँचतेही इनका रोग बढ़ गया और चेष्टा इनकी बिगड़ गई तब इन्होंने मुझसे कहा कि उठो भैया झटपट कुशा बिछाके मुझे उनपर लिटा दो और जाकर इस गांव में से किसी ब्राह्मण को बुला लाओ तो जो कुछ मेरे पास है, उस ब्राह्मण को दान कर दूं क्योंकि अब रातभर मैं न चलूंगा। इनकी ऐसी बात सुन मेरा ज्ञान नष्ट हो गया, यह विदेश ठहरा कहां जाऊँ किससे क्या कहूं, फिर सूर्य्यनारायण भी अस्त हो गये हैं अब रात का समय ठहरा कुछ मुझसे करते नहीं बनता है इसीसे रो रहा हूं। सो आप लोग यदि किसी ब्राह्मण को जानते हों तो कृपाकर बुला लाइये तो जो कुछ हमारे पास है उसे यह अपने हाथ से दान कर देते। यह तो रातभर के पाहुने हैं, इसी रात्रि भर में मरही जावेंगे, और मैं इनका वियोग दुःख सहही न सकूंगा कल अग्नि में जलकर मैं भी प्राण त्याग कर दूंगा। सो आप लोग इतना कार्य्य कर देते तो हमपर आपकी बड़ी कृपा होती, अहोभाग्य हमारे कि आप लोग विदेश में अकारण बन्धु मिल गये।"

उसका ऐसा कथन सुन उन डाकुओं को बड़ी दया आयी सो उन्होंने जाकर अपने स्वामी वसुभूति से सारा वृत्तान्त कह दिया और यह भी कहा कि चलो उस ब्राह्मण से दान में सर्वस्व धन तुम्हीं ले लो। मार के भी तो धनही न लेते सो यह तो आपही सब दे देनेपर उतारू है इससे धन ले लेओ। उनकी ऐसी बात सुन वसुभूति बोला "हां यह तुम क्या कह रहे हो, बिना मारे धन ले लेना हमलोगों के पक्ष में अन्याय कहा गया है भला जिसका सर्वस्व छीन लिया जाय और वह बिना मारे छोड़ दिया जाय तो वह हमार अनिष्टन करेगा?" उस पापिष्ठ की ऐसी बात सुन भृत्य फिर बोले—"यह शङ्का कैसी? भला कहां छीनना कहां एक मरते हुए से दान लेना, हां एक बात हो सकती है कि वे दोनों ब्राह्मण यदि जीते जागते कल तक रह गये तो उन्हें मार डालेंगे नहीं तो व्यर्थ ब्रह्महत्या के पाप से क्या फल?" उन भृत्यों का ऐसा कथन सुन वसुभूति उनकी बात पर सम्मत हुआ

और रात को उनके साथ वहां गया। उनकी आहट पाय श्रीदर्शन लम्बी २ सांसें भरने लगा, अस्तु माता के गहनों में से कुछ तो उसने छिपा रक्खा और कुछ लड़खड़ाती जीभ से उसे दान कर दिया । तब कृतार्थ हो डाकुओं का वह अध्यक्ष अपने सेवकों के साथ घर चला गया।

जब वे सब डांकू सो गये तब रात्रिही में पद्मिष्ठा, श्रीदर्शन और मुखरक वे पास आयी और झटपट सम्मति ठहरा तीनों वहां से ऐसे मार्ग से भाग चले कि जहां डाकुओं का भय न हो। मालवा की ओर फिर चले । उस रातभर बराबर तीनों चलते हुये बड़ी दूर निकल गये, सबेरा होते २ सब एक घोर जंगल में पहुँचे जहां कांटों के कारण चलना बड़ा कठिन था उन कांटों से ऐसी भावना होती थी मानों वह जंगलही भय से कण्टकित (१) हो रहा है, फिर कृष्णसार मृग जो इधर से उधर चौकड़ियां भरते दौड़ रहे थे उनसे यह भासता था कि अरण्य के नेत्र भय के कारण अति चंचल हो गये हैं । लतायें सूख गयी थीं, इस दृश्य से यह भावना होती थी कि विभीषिका (२) के मारे उस वन का शरीर सूख गया है पुनः सूखे पत्ते जो गिरते थे सो यह प्रगट करते थे कि अरण्य चिल्ला २ रो रहा है। ऐसे भयङ्कर जंगल में वे तीनों दिनभर चलतेही गये, जब सांझ हुई मानों उनके दिनभर का क्लेश देख भगवान् सूर्यनारायण के हृदय में बड़ी दया आयी इससे वह अस्त हो गये। भूखे प्यासे तो वे थेही इस विषय में कुछ कहना हो नहीं है फिर थक भी गये थे सो सायङ्काल में एक वृक्ष के नीचे उतरे और विश्राम करने लगे। थोड़ीही दूर पर उन्हें आग की ज्वाला दिखाई पड़ी, तब श्रीदर्शन बोला कि ऐसा भासता है कि यह गांव है, अच्छा मैं जाकर देखता हूं इतना कह लवर देखता हुआ वह चला। वहां पहुँच कर क्या देखता है कि रत्ननिर्मित एक विशाल भवन है उसी की प्रभा ज्वाला सी दीख पड़ती है। वह निर्भय उस घर के भीतर घुस गया वहां जाकर देखता क्या है कि दिव्यरूप एक यक्षिणी विराजमान है और यक्ष उसे घेरे खड़े हैं जिनके चरण पीछे की ओर और नेत्र तिरछे थे। इतने में नाना प्रकार के अन्न पान लाये और उस यक्षिणी के समक्ष चुने गये, तब तो उसका ढाढ़स और बढ़ा, उस वीर ने यक्षिणी के समक्ष

(१) रोमाञ्चित। (२) भय।

जाकर कहा—"भद्रे ! अतिथिभाग भी कुछ दीजिये।" यक्षिणी उसके साहस से अति सन्तुष्ट हो गयी सो उसने उन तीनों को भोजन और जल दिला दिया । यक्षिणी की आज्ञा से वह उन सब पदार्थों को एक यक्ष के कन्धे पर रखवाकर ले चला और पद्मिष्टा तथा अपने मित्र के समीप आया। यक्ष को विदा कर उसने अपने मित्र तथा पद्मिष्टा के साथ वे नाना प्रकार के अन्न (भोजन) खाये और स्वच्छ शीतल जल पीया।

यह दृश्य देखकर मुखरक के हृदय में यह भावना हुई कि यह कोई देवांश है. मैं धन्य हूं कि यह मुझे मित्र मिला है; तब वह अति प्रसन्न हो श्रीदर्शन से कहने लगा —"मित्र ! अवश्य तुम कोई देवता हो, यह मेरी बहिन पद्मिष्टा लोक में एकही सुन्दरी है. यह तुम्हारेही योग्य है अतः मैंने आज इसे तुमको दे दिया"। इतना सुनतेही श्रीनन्दन फूला न समाया. अति प्रमुदित हो उसने अपने सुहृद से कहा. "भाई जो तुम कहते हो यही मेरी आकांक्षा पहिलेही से है, परन्तु जब ठिकाने पहुँच जाऊँ तो इससे विवाह करूँ।" इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर दोनों अति प्रमुदित हुए और सुख से सो रहे।

प्रातःकाल होने पर तीनों वहां से चले और चलते २ मालवेन्द्र राजा श्रीसेन के नगर में पहुँचे जहां एक वृद्धा ब्राह्मणी का घर मिला, थके तो ये थेही उसी के घर में उतरे पड़े। ब्राह्मणी ने इनका वृत्तान्त पूछा तो उन्होंने अपना वृत्तान्त सुनाय नाम भी बता दिये । ब्राह्मणी इसपर कुछ व्याकुल सी दीख पड़ी तब इन सभों ने पूछा कि माता तुम उदास क्यों हो गयीं कहो तो सही तुम्हारा क्या वृत्तान्त है ? तब वह वृद्धा अपना वृत्तान्त सुनाने लगी कि—

"मैं सत्कुलोद्भवा ब्राह्मणकन्या हूं नाम मेरा यशस्वती है; सत्यव्रत नामक विप्र से मेरा विवाह हुआ था, वे राजसेवक थे । पति मेरे परलोक पधार गये, कोई सन्तान भी न रहा जो मेरा प्रतिपालन करे सो दयालु राजा ने उनकी (पति के) जीवन की (१) चौथाई मेरी वृत्ति नियुक्त कर दी है । राजा बड़े दानी हैं पात्र पाकर समस्त भूमण्डल दान करदेनेवाले हैं सो वही राजचन्द्र अब मेरे पूर्वजन्म के पापों से यक्ष्मा (२) रोग से पीड़ित हो गये हैं । वैद्य लोग औषधि करते २ हार

(१) वेतन । (२) क्षयी ।

गये पर कुछ गुण नहीं होता । बहुतेरे यन्त्र मन्त्र करनेहारे भी आये और आते ही जाते हैं पर किसी का किया कुछ नहीं होता । अब एक ओझा आया है उसने प्रतिज्ञा की है कि मैं यह रोग छुड़ा दूंगा पर मुझे कोई एक ऐसा साहसी वीर सहायक दिया जाय जो वेताल के सिद्ध करने में सहायता देवे तो उसी वेताल को सिद्ध करके मैं महाराज को अच्छा कर दूंगा । राजा ने ढोंड़ी फेरवा दी है पर ऐसा कोई वीर नहीं मिला तब महाराज ने अपने मन्त्रियों को यह आज्ञा दी कि जुआड़ियों के लिये मैंने जो मठ बनवा रक्खा है उसमें जो आ जायें तो इस का विचार रखना कि कदाचित् उनमेंसे कोई वीर निकले क्योंकि जुआड़ी बड़ेही निरपेक्ष (१) होते हैं, अपनी स्त्री और बन्धुबान्धवों को छोड़ बैठते हैं, निर्भय तो ऐसे होते हैं कि जहां कहीं हो योगियों की नाईं वृक्ष की जड़ही पर सो रहते हैं। राजा की आज्ञा सिरपर रख मन्त्रियोंने मठाध्यक्ष को वैसी आज्ञा दे दी है। सो वह सदा इस बात की ताक में रहता है कि कोई वीर आ जावे। तुम सब भी जुआड़ी हो, सो हे श्रीदर्शन! जो तुमसे यह काम हो सके तो चलो तुम्हें उस मठ में ले चलूं। राजा से तो तुम उपहार पाओगेही फिर मेरा भी बड़ा उपकार हो जायगा क्योंकि यह मेरा प्राणान्त दुःख है यदि तुम्हारे द्वारा दूर हो जाय तो बड़ा काम हो।

बुढ़िया का ऐसा कथन सुन श्रीदर्शन बोला—"हां हां मैं यह काम कर सकता हूं, मुझे मठ में ले चलो।" इतना सुनकर वह बुढ़िया पद्मिश्रा और मुखरक के सहित श्रीदर्शन को मठाधिप के पास ले गयी और कहने लगी — "यह एक ब्राह्मण जुआड़ी है, राजा की रोगशान्तिके हेतु वह ओझा जो सहायक ढूंढ़ता है यह उसकी सहायता में समर्थ है। यह एक दूर देश से आया है।" यह श्रवण कर मठाधिपने उससे पूछा कि क्यों जी तुम ऐसा कर सकते हो? श्रीदर्शन बोला—"जी हां मैं करूँगा।" तब तो अति सत्कार कर मठाधिप उसे राजा के पास ले गया और महाराज से उसने निवेदन किया "पृथ्वीनाथ! यह एक ब्राह्मणकुमार है जो उस ओझे की सहायता किया चाहता है।" श्रीदर्शन ने महाराज को देखा तो वह पाण्डुरोग के कारण अति क्षीण हो गये थे जैसे नवीन चन्द्र।

(१) बेपरवाह।

श्रीदर्शन ने महाराज को प्रणाम किया, महीपति ने देखा कि यह भव्य (१) है सो वह उसकी आकृति से ही तुष्ट हो गये और उनके मनमें यह आश्वासन हुआ कि अब इसके करते मेरा रोग छूटा, तो वह बोले, "ब्रह्मन् ! तुम्हारे यत्न से मेरा यह रोग अवश्य छूट जायगा, क्योंकि तुम्हारे दर्शन ही से मेरी पीड़ा दूर हो गयी इसीसे भरोसा होता है, सो आर्य्य ! मेरा साहाय्य कीजिये।" राजा का यह कथन सुन श्रीदर्शन बोला —"राजन् ! यह कौन बड़ी बात है।"

राजा ने उस मन्त्रवादी को बुलाया और उससे कहा—"भद्र ! यह वीर तुम-को सहायक दिया जाता है, अब वह (काम) करो जो तुमने कहा था।" मही पति का ऐसा कथन सुन उस ओझे ने श्रीदर्शन से कहा कि भाई वेताल के बुलाने के कार्य्य में जो तुम सहायता दे सकते हो और इसमें समर्थ हो तो आज कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी है आजही रात्रि के समय श्मशान में मेरे पास आओ तो मैं उसे सिद्ध करूँ।" इतना कह वह मन्त्रसाधक तपस्वी चला गया। तत्पश्चात् महीपति की आज्ञा ले श्रीदर्शन भी मठ को गया, वहां उसने पद्मिष्ठा और मुखरक के साथ भोजन किया।

जब रात हुई तब श्रीदर्शन उठा और कृपाण हाथ में ले अकेला श्मशान की ओर चला और चटपट वहां जा पहुँचा; श्मशान, जहां अनेक प्रकार के भूत पिशाच डाकिनी शाकिनी वेताल नाच रहे हैं; महाभयङ्कर सन्नाटा छाया हुआ है, जहां किसी प्रकार धीरज साथ देही नहीं सकता है, फिर ऊपर से सियारों का महा भयंकर शब्द और भी भय बढ़ा रहा है; अन्धकार का तो कुछ पूछनाही नहीं स्वयं कृष्ण चतुर्दशी, फिर उसका प्रभुत्व न हो तो किसका हो; हां वहां कुछ २ प्रकाश है जहां कि चितायें जल रही हैं। ऐसे भयङ्कर समय में श्रीदर्शन अकेले उस महा भयङ्कर स्थान में पहुंचा, उसके मन में तनिक भी आशङ्का न हुई वह निधड़क उस मन्त्रसाधक को ढूंढ़ने लगा; खोजते २ क्या देखता है कि वह बीच श्मशान में बैठा है; समस्त शरीर में भस्म रमाये हुए है, केश का जनेऊ कन्धे पर विराजमान है, कफन की पगड़ी बाँध ली है और काला कपड़ा धारण किये हुए है। श्रीदर्शन उसके समक्ष निःशङ्क चला गया और बोला,—"महाराज ! मैं उप-

(१) होनहार।

स्थित हूं कहिये क्या करूं ?" तब तो वह श्रोभा बड़ा प्रमुदित हुआ और कहने लगा –"भाई ! यहां से पश्चिम की ओर सीधे चले जाओ, आध कोस पर अशोक का एक वृक्ष मिलेगा, जिसके पत्ते चिताओं की अग्नि के ताप से झुलस गये हैं; उसके मूल पर एक शव पड़ा है उसे उठा लाओ, देखना इस बात की बड़ी सावधानता रखना कि उसका अङ्ग भङ्ग न होने पावे।" "बहुत अच्छा."

इतना कह श्रीदर्शन वहां से झटपट चला, जब उस पेड़ के समीप पहुंचा तो क्या देखता है कि कोई दूसरा उस शव को उठाये लिये जा रहा है, दौड़ कर इसने उसे पकड़ा और कहा "छोड़ इसे कहां ले चला है, यह मेरा मित्र है मैं इसे ले जाकर जलाऊंगा तू कौन है जो ले चला है ?" इतना कह उसके कन्धे से शव खींचने लगा। तब वह दूसरा श्रीदर्शन से कहने लगा "भाई आप यह कह रहे हैं मैं तो इसे कभी न छोडूंगा. यह तो मेरा मित्र है। कहिये आप आकर बीच में क्यों कूद पड़े।" इस प्रकार कह के वह भी खींचने लगा सो दोनों में परस्पर खींचा खींची होने लगी। इसी खींचा खींची में बेताल से अनुप्रविष्ट (१) वह शव उठ बैठा और भयङ्कर शब्द करने लगा, उस भयङ्कर शब्द से दूसरा अति डर गया, उसका हृदय डर के मारे फट गया और वह ठांवही ठंढा हो गया और श्रीदर्शन शव को लेकर चलता हुआ।

अब इधर जो दूसरा पुरुष मर गया था वह बेतालाधिष्ठित (२) हो उठ बैठा उसने दौड़ कर श्रीदर्शन का मार्ग रोंका और उससे कहा "अरे खड़ा तो रह, तू मेरे मित्र को कन्धे पर रख कर कहां उठा ले चला है ? चेत आगे पांव न रखना।" श्रीदर्शन समझ गया कि इसमें भूत का आवेश हो गया है सो वह ठहर गया और बोला "भाई ! तुम इसे अपना मित्र बताते हो इसमें प्रमाण क्या रखते हो ? यह तुम्हारा मित्र नहीं है, मेरा मित्र है।" उसकी ऐसी उक्ति सुन वह दूसरा बोला यह शवही प्रमाण है, यही कह देगा किसका मित्र है, श्रीदर्शन ने कहा "हां हां भला कहा यही अपने मित्र को बता देगा। उस स्कन्धवर्ती शव में बेताल का आवेश हुआ सो वह बोला, "मैं और कुछ जानता नहीं मेरा यही कहना है कि मैं भूखा हूं जो मुझे भोजन दे वही मेरा मित्र है; जो यह

(१) (२) जिसमें बेताल पैठा हो।

काम कर सके वह मुझे जहां चाहे ले जावे।" इतना सुन बेतालाविष्ट वह दूसरा बोला "भाई मेरी शक्ति तो नहीं है कि तुम्हें इस समय भोजन दे सकूं यदि इससे बने तो यह दे।" सो सुन श्रीदर्शन ने कहा "हां हां मैं देता हूं," इतना कह उसने अपने कन्धे पर के बेताल के भोजन के लिये उस दूसरे पर खड्ग चलाया, इसी अवसर में वह बेतालविष्ट दूसरा शव लुप्त हो गया। अब कन्धे पर वाला शव श्रीदर्शन से कहने लगा "भाई तुमने भोजन देने को प्रतिज्ञा की है सो मुझे खाना दो।" अब क्या हो दूसरे का मांस तो मिल सकता नहीं और शव को भोजन देनाही चाहिये सो श्रीदर्शन ने चट अपने शरीर में से एक टुकड़ा मांस काट कर उसे खाने को दिया। इसका ऐसा साहस देख बेताल बोला, "हे महा सत्व! मैं तुम्हारे इस साहस से बड़ाही सन्तुष्ट हुआ, तुम्हारी देह अक्षत (१) हो जाय; अब मुझको ले चलो पर स्मरण रखो कि तुम्हारा काम तो हो जायगा किन्तु वह तपस्वी डरपोक है सो वह तो मर जावेगा। इसके इतना कहतेही श्रीदर्शन का शरीर पूर्ववत् हो गया, अब उसने लाकर वह शव उस साधक को समर्पण कर दिया। शव को पाय वह साधक अति प्रसन्न हुआ।

उसने पूर्वही से मनुष्य की हड्डियां कूंच कर चूर्ण बनाया था उसी से एक गोल बड़ी रेखारी खींच रखी थी, उसी गेंडुरी के एक कोने में एक घड़ा रक्खा था जिसमें रक्त भरा था, मण्डल के भीतर तैल का एक दीपक प्रज्वलित था। अब उस साधक ने रक्त की माला और अनुलेपन से (२) उस शव की पूजा की और उसे उस मण्डल के भीतर उतान लेटा दिया। इतना कर वह बेतालाविष्ट उस शव की छाती पर बैठ कर नरास्थि की स्रुवा से उस शव के मुंह में होम करने लगा। भक भक भक करके उस बेताल के मुंह से तीन बेर ज्वाला निकली जिससे डर के मारे वह साधक उसकी छाती पर से उठ भागा, उसका सत्व जाता रहा, हाथ से स्रुवा गिर पड़ी बिचारा अपना जी लेकर भागा। बेताल मुंह बाय उसके पीछे दौड़ा और पकड़ उसे खड़ाही निगल गया। यह दशा देख ज्योंही श्रीदर्शन खड्ग उठा उसके पीछे दौड़ा त्योंही वह बेताल बोला "श्रीदर्शन! मैं तुम्हारे इस धैर्य्य से अति सन्तुष्ट हूं सो तुम मेरे मुंह में से ये सरसों लेलो राजा इन्हें शिर पर बांधें

(१) जैसी की तैसी। (२) लोहू की माला और लोहूही के लेप से।

ओर हाथ में रखें बस उनका चयी रोग तुरन्तही अच्छा हो जायगा। और श्रीदर्शन तुम थोड़ेही दिनों में समस्त पृथ्वी के राजा हो जाओगे।" उसका ऐसा वचन सुन श्रीदर्शन बोला "भद्र! इस साधक के बिना मैं वहां कैसे जा सकता हूं राजा कहेंगे न, कि, स्वार्थवश इसने उसे मार डाला है।" श्रीदर्शन की ऐसी बात सुन वह बेताल बोला "सुनो श्रीदर्शन मैं तुम्हे एक उपाय बतलाये देता हूं उसी से राजा तुम्हारा विश्वास करेंगे और तब तुम्हारा दोष कोई न देगा और तुम शुद्ध प्रमाणित हो जाओगे। एक काम करना कि यहां तो यह शव पड़ा न रहेगा बस इसका पेट फाड़ कर भीतर तुम मुझसे निगले हुए इस साधक को दिखा देना।" इतना कह वह बेताल उस शव में से निकला और श्रीदर्शन को सरसों देखकर कहीं चला गया और वह तुरन्त धरती पर गिर पड़ा। सर्षप लेकर श्रीदर्शन अपने डेरे अर्थात् उस मठ को लौट आया जहां उसके साथी थे, और रात भर आनन्द से सोया।

प्रात:काल होने पर श्रीदर्शन राजा के समीप गया और रात्रि में जो कुछ हुआ था सो महीपति को आद्योपान्त सुनाय गया और राजमन्त्रियों को वहीं ले गया जहां श्मसान में वह शव पड़ा था वहां उसने उस मृतक का पेट फाड़ा और दिखा दिया कि देखिये यही वह बेताल निगीर्ण साधक है। इसके उपरान्त उसने राजा के हाथ और मस्तक पर सर्षप बाँध दिये, इस प्रकार राजा की व्याधि छूट गयी और वह भली भांति चंगे हो गये।

श्रीदर्शन के करते महीपति चयी रोग से निर्मुक्त हो गये, अब उनके हर्ष का थाह न रहा। महाराज यह विचार करने लगे कि क्योंकर इसका प्रत्युपकार किया जाय। महीपति अनपत्य थे सो उन्होंने यह विचारा कि श्रीदर्शन को ही गोद लेलूं; यह विचार उन्होंने श्रीदर्शन को अपना पालट पुत्र नियुक्त किया और उसे युवराज पद पर अभिषिक्त करदिया। ठीक है सुक्षेत्र में सुकृति रूपी बीज बोया हुआ उत्तम ही फल फलता है। तदुपरान्त श्रीमान् सुदर्शन ने पूर्व ही सेवार्थ साथ में आई हुई पद्मिष्टा का पवित्र पाणिग्रहण किया, उसके तथा उसके भाई मुखरक के साथ नाना प्रकार के भोगों का उपभोग करते हुए वह वीर श्रीदर्शन महाराज धर्म्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करने लगे।

एक समय की बात है कि उपेन्द्रशक्ति नामक एक बड़े महाजन को कहीं समुद्र किनारे गणेशजी की एक रत्नमयी मूर्त्ति मिली, उसने लाकर वह मूर्त्ति राजकुमार को उपहार में अर्पण कियी। युवराज ने बड़ी भक्ति से वह प्रतिमा ग्रहण कियी; एक वृहद् मन्दिर बनवाया उसमें रत्नविनायक का स्थापन किया और बहुत सा द्रव्य व्ययकर बड़ा भारी उत्सव मनाया। एक सहस्र गांव सङ्कल्प कर दिये कि उन्हीं की आय से गणाधिप के पूजन के समस्त कार्य्यों का निर्वाह हुआ करे। इसके उपरान्त एक दिन यात्रोत्सव मनाया गया, राज्यभर के लोग एकत्रित हुए, रातभर नाच गान होते रहे। इससे गणाधिप अति सन्तुष्ट हुए उन्होंने अपने गणों को यह आदेश किया कि यह श्रीदर्शन मेरे प्रसाद से भूमण्डलमें सम्राट् होगा। यहां से दूसरे समुद्रमें हंसद्वीप नामक एक सुप्रसिद्ध द्वीप है, जहां राजा अनङ्गोदय राज्य करता है, उसकी कन्या अनङ्गमञ्जरी स्त्रियों में एक अनुपम रत्न है। वह कुमारी मेरी भक्त है, प्रतिदिन मेरी पूजा कर मुझसे यह वर मांगती है कि हे देव! मुझे पृथ्वी भर का अधीश्वर पति मिले। सो मैं श्रीदर्शन से उसे संयुक्त कराया चाहता हूं, इसी प्रकार दोनों को भक्ति का फल प्राप्त हो जायगा। सो अब तुम लोग श्रीदर्शन को वहां ले जाओ और किसी युक्ति से दोनों को परस्पर दर्शन करा देओ। इतना कर श्रीदर्शन को लिये हुयेतुम लोग यहां चले आना फिर धीरे धीरे दोनों का संयोग होता रहेगा उसको शीघ्रता नहीं है। यह काम आज ही हो जाना चाहिये। फिर इस प्रतिमा लानेहारे उपेन्द्रशक्ति की भी कुछ उपक्रिया होनी चाहिये सो भी इसी प्रकार होगी।

गणेशजी की ऐसी आज्ञा पाय गण लोग उसी रात में तत्क्षण श्रीदर्शन को ले चले और अपनी सिद्धि के प्रभाव से बात की बात में हंसद्वीप में पहुँच गये; वहां अनङ्गमञ्जरी के वासभवन में ले जाकर उन्होंने श्रीदर्शन को राजकुमारी के पलङ्ग पर रख दिया। थोड़ीही देर में श्रीदर्शन की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि एक अनुपम भवन में जहां कि प्रज्वलित रत्न ही दीपक हैं, नाना प्रकार के द्योतमान मणियों के चंदोवे तने हैं, राजवर्त्त की गच है, तहां एक पलङ्ग पर, जिसपर कि अति श्वेत बिछौना बिछा है एक कन्या पौढ़ी है मानो स्वर्ग से अमृत की बूंद चू पड़ी हो, उसकी कान्ति जो चहुँओर छिटकी थी उससे यह

भावना होती थी मानो तारे छिटके हों, आकाश में धवल अम्भोद के टुकड़ों के मध्य शरत्काल के चन्द्रमा जैसे भासित होते हैं वह सुन्दरी मानो उसी शशाङ्क की मूर्त्ति है, जिसके दर्शन से नेत्रों को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता था। ऐसी शोभायमती मनोरमा अनङ्गमञ्जरी को देखकर राजकुमार श्रीदर्शन अति हर्षित और विस्मित हुए। वह विचारने लगे—"परमात्मन्! यह क्या है, मैं कहां सोया था, अब कहां जाग पड़ा हूं, यह बात क्या है? फिर यह स्त्री कौन है? यह निश्चय करके स्वप्न ही है अथवा ऐसा ही वरदान हो। अच्छा इसे जगाके देखूं क्या बात है।" इतना विचारकर वह उस ललनारत्नके कान्धे पर हाथ रख धीरे२ उसे जगाने लगे। जिस प्रकार इन्दुकर से कोईं खिल जाती है उसी प्रकार श्रीदर्शन के करस्पर्श से वह सुन्दरी अनङ्गमञ्जरी जाग पड़ी, देखतेही वह भी परम विस्मित हुई कि यह दिव्याकृति पुरुष कौन है, भला जहां वायु का भी प्रवेश कठिन है वहां यह कैसे आया, निश्चय यह कोई देवता है। इतना विचार वह चटपट उठ बैठी और पूछने लगी—"महासत्व! आप कौन हैं और यहां क्योंकर आये सो कहिये।" उसका ऐसा प्रश्न सुन श्रीदर्शन अपना नाम ग्राम सब बतलाय गये पश्चात् उन्होंने भी उसका वृत्तान्त पूछा, तब उस सुन्दरी ने भी अपना नाम तथा गोत्रादि सब बतला दिया।

अब क्या, अब तो बातही और चली, दोनों का स्वप्नभ्रम दूर हो गया; दोनों में परस्पर भूषणों का विनिमय (१) हुआ कि जब किसी समय पुनः संयोग हो तो उसीके द्वारा निश्चयात्मक ज्ञान हो। अब दोनों ने गान्धर्व विवाह का विचार किया, उसका उपक्रम होने लगा किन्तु हाय! उसी क्षण गणों ने मोहवश कर दोनों को निद्रित कर दिया, दोनों की लालसा मनही में रह गई, ठीक वही कहावत हुई—"ऊधो मन की मन मांह रही।" अस्तु जब श्रीदर्शन सो गया तो गणों ने उसे उठाके घर पहुँचा दिया।

जब निज भवन में श्रीदर्शन की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि शरीर पर स्त्री के आभरण विद्यमान हैं, यह कौतुक देख वह अति विस्मित हुए और मन में चिन्ता करने लगे कि यह क्या बात है; कहां तो मैं हंसद्वीपेश्वर की दुहिता

(१) परिवर्तन।

अनङ्गमञ्जरी के पलङ्ग पर सोया था, कहां उसका वासभवन कहां मैं फिर जहां का तहां, यह तो वही कहावत हुई 'पुनस्तत्रैवावलम्बितो वेतालः' (१) यदि कहो कि यह स्वप्न है तो स्वप्न कैसा ? यह देखो उसी के आभरण मेरे शरीर पर विद्यमान हैं और येही साक्षी देते हैं कि यह स्वप्न नहीं है तो भगवन् ! यह है क्या ? निश्चय यह विधि का विलास (२) है । श्रीदर्शन तो इसी प्रकार चिन्ता में मग्न थे कि इतने में उनकी पत्नी पद्मिष्ठा की नींद खुल गयी, उसने पूछा "प्राणनाथ ! आप उदासीन क्यों हैं कहिये क्या चिन्ता कर रहे हैं" अस्तु उस साध्वी ने बहुत कुछ समझाया बुझाया और धीरज बँधाया तब किसी प्रकार श्रीदर्शन की रात कटी ।

प्रातःकाल हुआ, राजकुमार की उदासीनता महाराज श्रीसेन के कर्णगोचर हुई, पूछापाछी होने लगी तब श्रीदर्शन ने रात्रि का समस्त वृत्तान्त महाराज को सुना दिया, अनङ्गमञ्जरी का नाम बता दिया और उसके चिन्हस्वरूप वे आभूषण दिखा दिये । महाराज राजकुमार का क्लेश कब सह सकते थे, उन्होंने ढौंड़ी फिरवा दी कि जो कोई हंसद्वीप का पता लगा दे उसे इतना पारितोषिक दिया जायगा, महीपति ने सब उपाय किये पर किसी प्रकार हंसद्वीप का पता न चला ।

इधर अनङ्गमञ्जरी के विरह से राजकुमार श्रीदर्शन निपट विकल हो गये । विरहाग्नि से उनका समस्त शरीर मानो जलने लगा, कामज्वर से अति पीड़ित हो गये, न दिन को चैन न रात को कल, सदा उसी प्रियतमा का ध्यान, सब उत्तमोत्तम भोग विलास विषवत् प्रतीत होने लगे, न कुछ खाते न पीते, आहार की क्या चिन्ता, सदा उसी का हार देखते रहते, उसी प्रिया के समस्त आभूषण निरखा करते; उसके मुखपङ्कज के रसपान की सदा अभिलाषा बनी रहती इसीसे निद्रा भी दूर हो गई । तात्पर्य्य यह कि सर्वतोभाव से राजकुमार तन्मय हो गये ।

उधर हंसद्वीप में राजकुमारी अनङ्गमञ्जरी प्रातःकाल होनेपर नगाड़ों का शब्द सुन कर जागीं, तब उन्हें रात्रि का वृत्तान्त स्मरण आया और शरीर पर जो दृष्टि पड़ी तो देखा कि देह पर श्रीदर्शन के आभूषण वर्त्तमान हैं तब तो वह अति विस्मित और चकित तथा उत्कण्ठित भी हुईं और मन में इस प्रकार चिन्ता करने लगीं,—

(१) फिर वेताल वहीं जा लटका । (२) खेल ।

"हा ! क्या यह बात कभी स्वप्न की हो सकती है, देखो न ये आभूषण तो शरीर पर विद्यमान हैं; हा प्रेम ! तू ने एक जन को मिलाया और फिर वह बिछुड़ गया: अब आभरणों के निरीक्षण से देखूं मैं जीवित रहती हूं अथवा परलोक का पन्थ पकड़ती हूं।"

राजकुमारी पुरुष के आभरणों से युक्त इसी प्रकार चिन्ता में मग्न थीं कि उसी अवसर में उनके पिता महाराज अनङ्गोदय अकस्मात् वहां आ पहुँचे, उनको देखते ही राजदुलारी ने साड़ी से अपना अङ्ग ढाँक लिया और लज्जा के कारण नीचे मुख कर सिकुड़ के बैठ रहीं। तब महाराज उन्हें गोद में बैठाकर अति प्रेम से पूछने लगे—"पुत्रि ! यह तुम्हारा पुरुष का सा वेश कैसे हुआ ? फिर कहो इतनी लाज आज क्यों ? इसका कारण तो बताओ। वत्से! यह तू विश्वास रख कि मेरे प्राण तेरेही में बंधे हैं, तेरा नँह भी पिराया कि मुझे प्राणान्त वेदना हुई; सो तू शीघ्र बता कि इस प्रकार अधोमुखी उदास क्यों बैठी है ?" राजा के इस प्रकार प्रियवचनों से राजकुमारी की लाज कुछ घटी तब वह आरम्भ से लेके सारा वृत्तान्त उन्हें सुना गयीं। सुनतेही राजा चकित हो गये कि परमात्मन् ! यह क्या विषय है, यह तो कोई अमानुषीय व्यापार बोध होता है। भला मनुष्य का ऐसा साध्य कहां ! अब बुद्धि कुछ काम नहीं दे रही है कि क्या करूँ।

उस देश में ब्रह्मसोम नामक एक परम सिद्ध योगी रहते थे जिन्होंने महाव्रत धारण किया था, और महाराज से तथा उनसे बड़ा सद्भाव भी था; महाराज उनके निकट गये कि इसका भेद पूछें। उन्होंने बड़ी नम्रता से सारा वृत्तान्त योगीश्वर को कह सुनाया और पूछा "महात्मन् ! यह एक बड़ा भारी सन्देह उपस्थित हुआ है, आपके अतिरिक्त, मेरा पूरा विश्वास है कि, अन्य कोई इसका अपनोदन नहीं कर सकता; कृपाकर बतलाइये कि यह क्या भेद है ?" महीपति का ऐसा कथन सुन तपस्वी ने ध्यान लगाया तो उन्हें सब बातें प्रगट हो गयीं, तब वह बोले "राजन् ! बात तो यह सत्य है। गजानन के गण मालवदेश से राजा श्रीदर्शन को यहां लाये थे; गणाधीश तुम्हारी पुत्री तथा उस राजा की भक्ति से बड़े सन्तुष्ट हुए हैं; उन्हीं के प्रसाद से वह राजा सार्वभौम होगा। अहोभाग्य कि तुम्हारी दुहिता को ऐसा भर्त्ता मिला। राजन् ! महीपति श्रीदर्शन बड़ा गुणी है

उसके सम्बन्ध से तुम कृतार्थ हो जाओगी ।" उस ज्ञानी की ऐसी उक्ति सुन राजा बोले "महाराज ! कहां मालवदेश और कहां यह हंसद्वीप ! इतनी दूर की बात ठहरी, मार्ग भी अगम्य है, फिर यहां तो यह दशा उपस्थित है कि एक क्षण युग सम बीतता है। भगवन् ! अब मेरी गति आपही हैं जो चाहें सो करें आपको छोड़ मेरा उपकारक इस प्रकरण में और कौन है । प्रभो ! प्रसाद कीजिये, मेरा यह कठिन कष्ट दूर कीजिये, मैं शरणागत हूं ।"

तपस्वी बड़े भक्तवत्सल और कृपालु थे; महीपति की ऐसी दीन वाणी सुन बोले "राजन् ! तुम कुछ चिन्ता मत करो तुम्हारा कार्य्य मैं अभी सिद्ध किये देता हूं ।" इतना कह महायोगी अन्तर्धान हो गये क्षणभर में मालवदेशान्तर्गत राजा श्रीसेन के नगर में जा विराजे। वहां पहुँच वह पहिले उस मन्दिर में गये जिसे श्रीदर्शन ने श्रीगणेशजी के हेतु बनवाया था। वहां योगीश्वर गणाधीश को प्रणाम कर बैठ गये और हाथ जोड़ उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे— !

सोरठा ।

बन्दौं तोहिँ गणराज, नखत-माल-भूषितशिर ॥
मेरु शिखर सम भ्राज, कल्याणों की मूर्त्ति जनु ॥ १ ॥
प्रणवौं तुम्हरो शुण्ड, त्रिभुवन को अवलम्ब जो ॥
सजल मेघ उत्तुण्ड, नृत्य समय यह राजतो ॥ २ ॥

दोहा ।

विघ्नराज तोहिँ नमत हौं, सर्वसिद्धि-आगार ॥
तुन्दिल थूल शरीर पर, सोहत पन्नगहार ॥ १ ॥

इस प्रकार तपस्वी महाराज, विघ्नराजजी की स्तुति कर रहे थे कि उसी समय उस प्रतिमा लानेहारे उपेन्द्रशक्ति बनिये का पुत्र महेन्द्रशक्ति अकस्मात् वहां आ पड़ा; वह बहुत दिनों से उन्मत्त हो सिक्कड़ तोड़ इधर उधर घूमा करता था, सो वह महेन्द्रशक्ति वहां आया और धड़ाधड़ मन्दिर में घुसही तो गया, और तपस्वी को पकड़ने दौड़ा, तपस्वी ने मन्त्र पढ़ एक थप्पड़ जमाय दिया। थप्पड़ का लगना कि उसके उन्माद का भागना, अब वह वणिक्पुत्र पूर्ववत् सुस्थ हो गया, इसके

पूर्व वह इधर उधर नंगा घूमा करता था, पर अब उन्माद के दूर हो जाने से उसे ज्ञान हो गया कि मैं नङ्गा हूं सो वह लाज के मारे हाथों से अपना अङ्ग छिपाय चट-पट वहां से निकल भागा और अपने घर की ओर चला गया। लोगों ने जाकर उसके पिता को सूचना दी कि तुम्हारा बेटा तो अच्छा हो गया, चल के देखो न वह घर को आ रहा है। यह सुन उसका पिता उपेन्द्रशक्ति फूला न समाया और घर से निकला कि चलकर पुत्र को लिवा लाऊँ, आके देखे तो सचमुच पुत्र आ रहा है बड़े आदर से पिता उपेन्द्रशक्ति अपने पुत्र महेन्द्रशक्ति को अपने घर ले गया। वहां उसको स्नान कराया गया और वस्त्र पहिनाये गये, इसके उपरान्त उपेन्द्रशक्ति अपने पुत्र के साथ उस सिद्ध तपस्वी महाराज ब्रह्मसोम के निकट उपस्थित हुआ; पुत्रदानदेनेवाले उक्त महानुभाव तपस्वी को वह बहुत कुछ उपहार देने लगा पर महात्मा ने कुछ भी ग्रहण न किया। क्योंकि वह तो स्वयं सिद्ध थे उन्हें कमी किस बात की थी।

होते होते यह बात महाराज श्रीसेन के कर्ण लों पहुँची सो वह तुरन्त श्रीदर्शन को साथ ले स्वयं उक्त तपस्वी महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और बड़ी नम्रता से प्रणाम कर बोले—"महात्मन्! आपने अमुक वणिक् के पुत्र को चंगा कर उस दीन का बड़ा उपकार किया, महाराज आपका आगमन हमलोगों के भाग्य से हुआ है, सो प्रभो अब इस दास पर भी कृपादृष्टि करें, स्वामिन्! मेरा भी कुछ उपकार करें; नाथ ऐसा कुछ उपाय कीजिये कि मेरे इस पुत्र श्रीदर्शन का कल्याण हो।" महीपति की ऐसी बात सुन तपस्वी हँसकर बोले, "राजन्! मैं इसका क्या उपकार करूं, जो रात्रि के समय राजपुत्री अनंगमञ्जरी के आभरण चुराकर हंसद्वीप से यहां चला आया। तौभी तुम्हारा अनुरोध रक्खूंगा।" इतना कह श्रीदर्शन को लेकर तपस्वी अन्तर्धान हो गये।

अब वह तपस्वी महाराज श्रीदर्शन को लिये हंसद्वीप में पहुँचे वहां पहुँच वह अनङ्गमञ्जरी के आभूषणों से युक्त श्रीदर्शन को महाराज अनङ्गोदय के राजभवन में ले गये। महीश्वर अनङ्गोदय श्रीदर्शन का दर्शन कर अति प्रसन्न हुए सो पहिले उन्होंने उक्त तपस्वी महाराज के चरणों पर गिर उनका बड़ा सत्कार किया पश्चात् एक शुभ दिन ठहराया कि जिस दिन अनङ्गमञ्जरी का विवाह श्रीदर्शन से कर

दिया जाय । अस्तु उक्त दिवस को महाराज अनङ्गोदय ने शुभ लग्न में रत्नों की माला से विभूषित, वसुधा के समान अनङ्गमञ्जरी का दान श्रीदर्शन के हाथ में कर दिया । इसके उपरान्त उन्होंने अपने जामाता को उस वधू के साथ उन्हीं तपस्वी की अलौकिक शक्ति के द्वारा मालव देश में पहुँचवा दिया । श्रीदर्शन जब वधू सहित अपने राज्य में पहुँचा तो महाराज श्रीसेन ने बड़ा आनन्द मनाया । तब श्रीदर्शन अपनी दोनों भार्य्याओं के साथ सुखपूर्वक रहने लगा ।

अब वह समय आया कि दुरतिक्रम काल ने महाराज श्रीसेन को आ घेरा । उनके परलोक सिधारने पर श्रीदर्शन महाराज हुए, समस्त पृथ्वी का विजय कर वह धर्म्मपूर्वक राज्यशासन और प्रजाओं का पालन करने लगे ।

कुछ कालोपरान्त महाराज श्रीदर्शन की पद्मिष्ठा और अनंगमञ्जरी दोनों रानियों के एक एक पुत्र हुआ; महीपति ने एक का नाम पद्मसेन और दूसरे का अनंगसेन रक्खा । दोनों राजकुमार शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिनोंदिन बढ़ने लगे ।

एक समय की बात है कि महाराज श्रीदर्शन अपनी दोनों महिषियों के साथ अन्तःपुर में विराजमान थे कि बाहर से किसी ब्राह्मण के रोने की भनक उनके कानों में पड़ी, सो उन्होंने उस विप्र को अपने समक्ष बुलाय मँगाया और बड़ी नम्रता से उससे पूछा—"देवता जी ! कहिये आप क्यों रो रहे हैं ?" तब वह ब्राह्मण बड़ी व्यग्रता दिखाय बोला—"राजन् ! दीप्तशिख नामक जो हमारी अग्नि है काल मेघ ने अट्टहास करके ज्योतिर्लेखा और धूमलेखा के सहित उसको नष्ट कर डाला ।" (१) इतना कह वह ब्राह्मण देखतेही देखते लोप हो गया । यह अपूर्व दृश्य देख महाराज को बड़ाही अचम्भा हुआ कि अहो यह क्या व्यापार है । वह इस प्रकार की चिन्ता कर ही रहे थे कि लो उनकी दोनों पत्नियां आंखों से आंसुओं की धारायें बहाती हुईं तत्क्षण परलोक के पथ पर जा रहीं । पत्नियों की पञ्चत्वप्राप्ति देख महीपति श्रीदर्शन "हाय हाय यह क्या हुआ यह वज्र कहां से गिरा" ऐसा कहते हुए सहसा धरती पर गिर पड़े और निश्चेष्ट हो गये; तब सेवक लोग उन्हें एक दूसरे स्थान में लेजाकर उनके सचेष्ट करने की चेष्टा करने

(१) आगे चलकर इसका अर्थ स्वयं खुल जायगा ।

लगी। इधर दोनों देवियों को लेजाकर मुखरकने उनका अग्निसंस्कार कर दिया जब महाराज सचेत हुए तब अपनी दोनों प्राणवल्लभाओं का स्मरण कर वे अति व्याकुल हो गये। पश्चात् धैर्य्य का अवलम्बन कर उन्होंने महारानियों का श्राद्धादिक कर्म्म निपटाया। इसके पीछे एक वर्ष पर्य्यन्त उन्होंने किसी प्रकार से राज-काज सम्भाला, उसके उपरान्त पृथ्वी का राज्य दो भागों में विभक्त कर दोनों पुत्रों को दे दिया और स्वयं वैराग्य का अवलम्बन किया। जब वैराग्य का उदय होता है तब और क्या सोहाय, सो महाराज मोहमाया तज, राजभवन से निकले, प्रजा उनके पीछे लगी, वह उन्हें लौटाय वनमें जाकर तपश्चर्य्या में लीन हुए।

कहां वे उत्तमोत्तम पक्वान्नभोजन कहां अब फलमूल का भक्षण, अस्तु महाराज इसी में सन्तुष्ट रह यदृच्छया विचरण करते। एक समय की बात है कि वह घूमते घामते किसी वटवृक्ष के नीचे पहुँचे; वहां एक आकस्मिक घटना हुई, ज्योंही कि महाराज वहां आये कि हाथ में फलमूल लिये दो दिव्यरूपिणी स्त्रियां उस वृक्ष से निकलीं और महाराज श्रीदर्शन से कहने लगीं "राजन्! आइये, हमारे (दिये) ये फलमूल आज ग्रहण कीजिये।" उनकी ऐसी अभ्यर्थना सुन महीपति बोले,—"पहिले यह तो बताओ कि तुम दोनों कौन हो तब पीछे फलमूल लिये जावेंगे।" तब उन दोनों ने उत्तर दिया कि यदि इस बात के जानने की अभिलाषा है तो इसमें प्रवेश कर हमारे घर चलें वहां हम दोनों आपको ठीक ठीक सब कथा सुना देवेंगी। श्रीदर्शन भूप उन दिव्याङ्गनाओं की बात पर सम्मत हुए और उनके साथ उस वृक्ष में पैठे, भीतर जाकर क्या देखते हैं कि एक दिव्य स्वर्णमयी नगरी है। वहां महाराज ने विश्राम किया और उनके दिये फल खाये। तब वे दोनों दिव्याङ्गनायें बोलीं—"राजन्! अब ध्यान देकर हमारा वृत्तान्त सुनिये, हम कहती हैं।"

पूर्वकाल की बात है कि प्रतिष्ठानपुर में कमलगर्भ नामक एक ब्राह्मण हुआ, उसकी दो भार्य्यायें थीं, एक का नाम पथ्या दूसरी का बला। तीनों में बड़ाही प्रेम था। समयानुसार तीनों वृद्ध हुए तब वे सब एकान्त स्थान में जाकर एक साथ अग्नि में प्रवेश कर परलोकगामी हुए। मरते समय उन्होंने अग्निदेव से यह वर मांगा कि कि जब २ हमलोग जन्मग्रहण करें तब २ पति पत्नी होवें। इसके उपरान्त वह

कमलगर्भ यक्षयोनि में प्रदीमाक्ष यक्ष का पुत्र होकर जन्मा, वहां उसका नाम दीप्तशिख पड़ा. वह अट्टहास यक्ष का छोटा भाई हुआ, पूर्वजन्म की तपस्या प्रबल थी इससे उसकी भार्य्यायें पद्मा और बला भी यक्षयोनि में धूमकेतु यक्ष की कन्या होकर जन्मीं, एक का नाम ज्योतिर्लेखा और दूसरी का धूमलेखा था।

समय पाकर दोनों बहिनें युवती हुईं तब अरण्य में जाकर पति के हेतु भगवान् उमापति की आराधना करने लगीं। भगवान् आशुतोष प्रसन्न हुए और दर्शन दे उन दोनों से कहने लगे—"पूर्वजन्म में एक संग अग्नि में प्रवेश कर जिसके साथ सब जन्मों में भार्य्यापतित्व का वरदान मांगा था वही तुम्हारा पति अट्टहास यक्ष का भाई दीप्तशिख होकर जन्मा है, अब स्वामी के शाप से वह फिर मर्त्य हुआ है, श्रीदर्शन उसका नाम है सो तुम दोनों भी मर्त्यलोक में जाकर उसकी भार्य्या बनो; जब शाप का क्षय हो जायगा तब तुम सब फिर यक्ष होकर भार्य्यापति हो जाओगे।

गौरीपति का ऐसा वचन सुन वे दोनों यक्षकन्याएँ भूतलपर पद्मिष्ठा और अनङ्गमञ्जरी होके जन्मीं और श्रीदर्शन को पति पाकर बहुत दिनों लों आनन्द से रहीं। एक दिन अट्टहास ब्राह्मण का रूप धर आया और युक्ति से उन दोनों के नाम उच्चारण कर उन्हें जाति का स्मरण दिलाय अन्तर्धान हो गया; इसी से वे दोनों तत्क्षण स्वयं शरीर त्याग यक्षिणी हो गयीं। सो वेही हम दोनों हैं, और आप वही दीप्तशिख हैं। उन दोनों दिव्य अङ्गनाओं की ऐसी बात सुनतेही श्रीदर्शन महाराज को अपनी पूर्व जाति का स्मरण हो आया सो वह तत्क्षण दीप्तशिख यक्ष हो गये और विधिपूर्वक उन भार्य्याओं से पुनः उनका संयोग हो गया।

इतनी कथा सुनाय वह यक्ष विचित्रकथ से पुनः कहने लगा "भाई! वही मैं दीप्तशिख यक्ष हूं और ये दोनों मेरी भार्यायें ज्योतिर्लेखा तथा धूमलेखा हैं। सो जब हम देवयोनियों को भी इस प्रकार सुख दुःख भोगने पड़ते हैं तो मानवों का पूछना ही क्या? वत्स! धीरज धरो, थोड़ेही दिनों में तुम सभों की भेंट स्वामी मृगाङ्कदत्त से हो जायगी, सो तुम विषाद मत करो। यह मेरा भौम (१) गृह है, मैं यहां इसी हेतु ठहरा हूं कि तुम्हारा आतिथ्य करूँ; सो भाई तुम यहां निर्द्वन्द्व

(१) पृथ्वी पर का।

रहो किसी प्रकार की चिन्ता मन में न करना; मैं सब प्रकार से तुम्हारा अभीष्ट साधन करूँगा, इसके उपरान्त मैं कैलास पर अपने धाम को चला जाऊँगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय बिचित्रकथ मृगाङ्कदत्त से कहने लगा कि प्रभो ! इस भांति अपनी इतिवृत्ति सुनाय वह यक्ष विविध भांति से मेरा उपचार करने लगी; आज उन्हें यह ज्ञात हो गया कि आप लोग यहां आये हैं सो रात्रि के समय सोये हुए आप लोगों के मध्य में मुझे रख गये, फिर आप लोगों ने मुझे देखा और मैंने आप लोगों को; बस यही मेरा वृत्तान्त है। जब सैं आप लोगों से पृथक् हुआ तो यही घटना हुई।

दोहा।

तब विचित्रकथ सचिव वर, नाम यथारथ जासु ॥
प्रभुसन निज वृत्तान्त कहि, पायो अधिक हुलासु ॥१॥
राजतनय जु मृगाङ्कदत, सुनि अद्भुत वृत्तान्त ॥
अपर सचिव संग रात महँ, आनन्द लह्यउ नितान्त ॥ २ ॥

वसन्ततिलकम्।

रात्री विताय अटवीमहँ नागशाप- ।
विश्लेषितान्य सचिवों कहँ ढूंढ़ते भे ॥
कैसे शशांकवति पाइय ध्यान याही।
पाये वयस्य सँग उज्जयिनी सिधारे ॥

सातवां तरङ्ग।

इसके उपरान्त राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने उन सचिवों के साथ जिनमें कि श्रुतधि पांचवां था, विन्ध्याटवी में क्रमानुसार चलते चलते एक कानन में पहुंचे जहां के सब वृक्ष फलों से लदे थे, जिनकी छाया बड़ी मनोहारिणी थी, वहां का जल शीतल और निर्मल था। वहां सब लोग उतरे, स्नान कर उन लोगों ने नाना प्रकार के फल भक्षण किये। उस समय एक ओर लतामण्डप में मृगाङ्कदत्त को कुछ आलाप सा सुन पड़ा, सो वह वहां चले गये और झांकने लगे तो उन्हें एक

गजेन्द्र दिखाई पड़ा जो कि एक थके अन्धे पुरुष को आश्वासन दे रहा था, सूंड़ से फल तोड़ लाकर उसे खाने को देता और उसी से पानी भर के उसे ला पिलाता और अपने कानों से उसे पङ्खा झलता । इतनी सेवा करता और बार २ उससे पूछता कि भाई अब कुछ शान्ति बोध होती है न? इस प्रकार साधुपुरुषवत् प्रीति वचनों से उसको आश्वासन देते उस गज को देखकर मृगाङ्कदत्त ने अति विस्मय से अपने मित्रों से कहा कि "देखो न भाइयो! कहां यह बनैला हाथी कहां इसका ऐसा मानुषोचित व्यवहार! अवश्य यह कोई महानुभाव है किसी कारण से इस गजयोनि में आ पड़ा है । और फिर यह पुरुष हमारे सखा प्रचण्डशक्ति के समान दीख पड़ता है. परन्तु यह अन्धा है । अच्छा अब देखा चाहिये क्या होता है ।" इस प्रकार अपने मित्रों से कहकर राजकुमार मृगाङ्कदत्त चुपके से उन दोनों का आलाप सुनने लगे ।

इतने में वह अन्धा पुरुष कुछ समाश्वस्त हुआ, तब वह वारणेन्द्र उससे पूछने लगा "भाई! तुम कौन हो यहां तुम्हारा आना कैसे हुआ है? सो सब समझाकर मुझसे कहो ।" तब वह अन्धा पुरुष उस गजेन्द्र से कहने लगा—"भाई सुनो, मैं अपना वृत्तान्त तुमसे कहता हूं—" ।

अयोध्यापुरी के राजा अमरदत्त हैं, उनके पुत्र मृगाङ्कदत्त सब गुणआगर हैं, शुभजन्मा उन राजकुमार का मैं सेवक प्रचण्डशक्ति हूं । किसी कारण से महाराज ने अपने देश से राजकुमार को निकाल दिया । हम दश मन्त्री उनके संगी हैं सो राजकुमारके साथ चले । हम सब लोग शशाङ्कवती की प्राप्ति के लिये उज्जयिनी को जा रहे थे । जङ्गल में एक नागके शाप से हमलोगों का वियोग हो गया । उस नाग के शाप से घूमता २ मैं अन्धा हो गया, अब यहां आ पड़ा हूं जो कुछ फलमूल मिल गया वही खा लेता हूं नहीं तो वैसेही रह जाता हूं । यदि मुझपर वज्र गिर पड़ता अथवा अनशन से मेरी मृत्यु हो जाती तो उत्तम होता परन्तु हाय! विधाता ने मेरा कष्ट भोगना ही अच्छा समझा है तो मृत्यु कैसे हो! मुझे तो ऐसा भासता है कि जिस प्रकार आज आपके प्रसाद से मेरी क्षुधापीड़ा दूर हुई है वैसेही मेरा यह अन्धापन भी छूट जायगा क्योंकि तुम कोई देवता जान पड़ते हो ।

उस अन्धे का ऐसा कथन सुन मृगाङ्कदत्त के हृदय में साथही साथ हर्ष और

रहो किसी प्रकार की चिन्ता मन में न करना; मैं सब प्रकार से तुम्हारा अभीष्ट साधन करूँगा, इसके उपरान्त मैं कैलास पर अपने धाम को चला जाऊँगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय विचित्रकथ मृगाङ्कदत्त से कहने लगा कि प्रभो! इस भांति अपनी इतिवृत्ति सुनाय वह यक्ष विविध भांति से मेरा उपचार करने लगे; आज उन्हें यह ज्ञात हो गया कि आप लोग यहां आये हैं सो रात्रि के समय सोये हुए आप लोगों के मध्य में मुझे रख गये, फिर आप लोगों ने मुझे देखा और मैंने आप लोगों को; बस यही मेरा वृत्तान्त है। जब मैं आप लोगों से पृथक् हुआ तो यही घटना हुई।

दोहा।

तब विचित्रकथ सचिव वर, नाम यथारथ जासु॥
प्रभुसन निज वृत्तान्त कहि, पायो अधिक हुलासु॥१॥
राजतनय जु मृगाङ्कदत, सुनि अद्भुत वृत्तान्त॥
अपर सचिव संग रात महँ, आनन्द लह्यउ नितान्त॥२॥

वसन्ततिलकम्।

रात्री विताय अटवीमहँ नागशाप-।
विश्लेषितान्य सचिवों कहँ ढूंढ़ते भे॥
केसे शशांकवति पाइय ध्यान याही।
पाये वयस्य सँग उज्जयिनी सिधारे॥

सातवां तरङ्ग।

इसके उपरान्त राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने उन सचिवों के साथ जिनमें कि श्रुतधि पांचवां था, विन्ध्याटवी में क्रमानुसार चलते चलते एक कानन में पहुँचे जहां के सब वृक्ष फलों से लदे थे, जिनकी छाया बड़ी मनोहारिणी थी, वहां का जल शीतल और निर्मल था। वहां सब लोग उतरे, स्नान कर उन लोगों ने नाना प्रकार के फल भक्षण किये। उस समय एक ओर लतामण्डप में मृगाङ्कदत्त को कुछ आलाप सा सुन पड़ा, सो वह वहां चले गये और झांकने लगे तो उन्हें एक

गजेन्द्र दिखाई पड़ा जो कि एक थके अन्धे पुरुष को आश्वासन दे रहा था, सूंड़ से फल तोड़ लाकर उसे खाने को देता और उसी से पानी भर के उसे ला पिलाता और अपने कानों से उसे पङ्खा झलता। इतनी सेवा करता और बार २ उससे पूछता कि भाई अब कुछ शान्ति बोध होती है न? इस प्रकार साधुपुरुषवत् प्रीति वचनों से उसको आश्वासन देते उस गज को देखकर मृगाङ्कदत्त ने अति विस्मय से अपने मित्रों से कहा कि "देखो न भाइयो! कहां यह बनैला हाथी, कहां इसका ऐसा मानुषोचित व्यवहार! अवश्य यह कोई महानुभाव है किसी कारण से इस गजयोनि में आ पड़ा है। और फिर यह पुरुष हमारे सखा प्रचण्डशक्ति के समान दीख पड़ता है, परन्तु यह अन्धा है। अच्छा अब देखा चाहिये क्या होता है।" इस प्रकार अपने मित्रों से कहकर राजकुमार मृगाङ्कदत्त चुपके से उन दोनों का आलाप सुनने लगे।

इतने में वह अन्धा पुरुष कुछ समाश्वस्त हुआ, तब वह वारणेन्द्र उससे पूछने लगा "भाई! तुम कौन हो यहां तुम्हारा आना कैसे हुआ है? सो सब समझाकर मुझसे कहो।" तब वह अन्धा पुरुष उस गजेन्द्र से कहने लगा—"भाई सुनो, मैं अपना वृत्तान्त तुमसे कहता हूं—"।

अयोध्यापुरी के राजा अमरदत्त हैं, उनके पुत्र मृगाङ्कदत्त सब गुणआगर हैं, शुभजन्मा उन राजकुमार का मैं सेवक प्रचण्डशक्ति हूं। किसी कारण से महाराज ने अपने देश से राजकुमार को निकाल दिया। हम दश मन्त्री उनके संगी हैं सो राजकुमारके साथ चले। हम सब लोग शशाङ्कवती की प्राप्ति के लिये उज्जयिनी को जा रहे थे। जङ्गल में एक नागके शाप से हमलोगों का वियोग हो गया। उस नाग के शाप से घूमता २ मैं अन्धा हो गया, अब यहां आ पड़ा हूं जो कुछ फलमूल मिल गया वही खा लेता हूं नहीं तो वैसेही रह जाता हूं। यदि मुझपर वज्र गिर पड़ता अथवा अनशन से मेरी मृत्यु हो जाती तो उत्तम होता परन्तु हाय! विधाता ने मेरा कष्ट भोगना ही अच्छा समझा है तो मृत्यु कैसे हो! मुझे तो ऐसा भासता है कि जिस प्रकार आज आपके प्रसाद से मेरी क्षुधापीड़ा दूर हुई है वैसेही मेरा यह अन्धापन भी छूट जायगा क्योंकि तुम कोई देवता जान पड़ते हो।

उस अन्धे का ऐसा कथन सुन मृगाङ्कदत्त के हृदय में साथही साथ हर्ष और

शोक का प्रादुर्भाव हुआ, कि मित्र तो मिला पर हाय ! वह अन्धा हो गया है अब उसकी आंखें क्योंकर खुलें, सो वह अपने साथ के सचिवों से कहने लगे कि भाइयो ! यह है तो प्रचण्डशक्तिही, परन्तु हाय ! यह अन्धा कैसे हो गया। अब झटपट इससे परिचय कर लेना भी उचित नहीं भासता क्योंकि कदाचित् यह हाथी हो उसकी आखों का भी कुछ उपाय कर देवे और हमलोगों को देख कदाचित् वह चल दे तो कठिन हो, सो अब हमलोगों को उचित है कि छिपे २ सब व्यापार देखें। इतना कह राजकुमार अपने मित्रों के साथ उन दोनों का आलाप सुनने लगे।

इतने में प्रचण्डशक्ति ने उस वारणेन्द्र से कहा, "गजेन्द्र ! मैंने अपना वृत्तान्त तुम्हें सुना दिया, अब महात्मन् ! आप अपना वृत्तान्त भी कह सुनावं, आप गजयोनि में कैसे आये और इस योनि में भी आपकी वाणी ऐसी नम्र क्योंकर है ?' उसका ऐसा प्रश्न सुन लम्बी सांस भर वह गजेन्द्र बोला –"सुनो भाई मैं अपना वृत्तान्त जड़ से तुम्हें सुनाता हूं।"

एकलव्यापुरी में पहिले श्रुतधर नामक एक राजा राज्य करते थे, उनकी दो भार्य्यायें थीं, प्रत्येक से राजा को एक एक पुत्र हुआ । बड़े का नाम शीलधर छोटे का सत्यधर था। राजा के परलोकवास करने पर उनके छोटे पुत्र सत्यधर ने अपने जेठे भाई शीलधर को राज्य से निकलवा दिया । शीलधर को इससे बड़ी ग्लानि हुई सो वह जाकर भगवान् शङ्कर की आराधना में तपस्या करने लगे। भगवान् आशुतोष अतिशीघ्र प्रसन्न हो गये और बोले—"पुत्र। वर मांग।" शीलधर ने वर मांगा—"हे देवाधिदेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दें कि मैं गन्धर्व्व हो जाऊँ तब आकाशचर होकर अपने दायाद सत्यधर को बात की बात में मार डालूं।" उसकी ऐसी प्रार्थना सुन भगवान् शङ्कर बोले—"सो सब तो होगा पर तेरा शत्रु तो स्वयं मर गया, अब वह राढ़ा नगरी के राजा उग्रभट का पुत्र होके फिर जन्म ग्रहण करेगा तहां उसका नाम समरभट होगा, और वह अपने पिता का प्यारा होगा और तू उसका सौतेला बड़ा भाई होके जन्मेगा, वहां तेरा नाम भीमभट होगा सो तू उसे मार राज्य करेगा । फिर एक बात और है कि तू ने यह तपस्या शुद्ध मन से नहीं की है किन्तु पलटा लेने की कामना से

तपस्या की, इसहेतु तुझे कोई मुनि शाप देंगे, उस शाप के प्रभाव से तू बनैला हाथी होवेगा। उस योनि में भी तुझे अपने जन्म का स्मरण बना रहेगा और तेरी वाणी बहुत व्यक्त रहेगी। जब किसी दुर्गति अतिथि को तू अपना वृत्तान्त कह सुनावेगा तो तेरा शाप छूट जायगा और तू गज शरीर से मुक्त हो पुन: गन्धर्व हो जायगा और तब उस अतिथि का भी उपकार होगा। इतना कह भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये और शीलधर ने यह देखकर कि यह शरीर तपस्या से चीण हो गया है, गङ्गा में गिर वह तन त्याग दिया।

इसी अवसर में कथाप्रकरण से जिस उग्रभट राजा का पहिले नामोल्लेख हो चुका है उन्हीं को यह बात है कि वह महीपति अपनी नगरी राढ़ा में अपनी प्रियतमा मनोरमा नाम्नी भार्य्या के साथ सुखपूर्वक कालयापन करते थे कि एक दिन कोई लाशक नामक नट कहीं दूरदेश से उनकी सभा में आया, उसने महाराज को वह नाट्यप्रयोग कर दिखाया जब कि स्त्रीरूप धारण कर भगवान् नारायण ने दैत्यों से अमृत हर लिया था। तहां नाट्यशाला में राजा ने जो उस नर्त्तक की बेटी लास्यवती को नृत्य करती देखा तो वह उस पर मोहित हो गये, उसका रूप भी क्या ही अपूर्व था कि उस समय ठीक वैसीही भावना होती थी कि जिस रूप से दानव मोहित हो गये थे; राजा को वह सची अमृता ही ज्ञात हुई सो वह कामवश हो गये। जब नृत्य समाप्त हुआ तो राजा ने उसके पिता को बहुत सा धन दे लास्यवती को अन्त:पुर में भेज दिया। शुभ मुहूर्त्त में राजा ने लास्यवती का पाणिग्रहण किया; अब महीपति उसी में आशक्त हो सदा उसी का मुंह निरखा करते।

एक समय राजा ने अपने पुरोहित यजु:स्वामी से कहा, "महाराज! मेरे पुत्र नहीं है सो आप पुत्रेष्टि (१) कराइये।" "बहुत अच्छा, जैसा महाराज कहते हैं वैसाही किया जायगा," इतना कह पुरोहित ने विद्वान् ब्राह्मणों के साथ यज्ञ का आरम्भ किया। यज्ञमन्त्र से अभिमन्त्रित जो चरु का पहिला भाग था सो तो महीपति ने अपनी प्रियतमा भार्य्या मनोरमा को खिलाया क्योंकि उक्त महारानी पूर्वही से उनकी बहुत कुछ आराधना कर चुकी थीं, और जो शेष भाग था सो

(१) वह यज्ञ जिसके अनुष्ठान से पुत्रफल प्राप्त होता है।

भूपति ने दूसरी भार्य्या लास्यवती को दिया । अब पूर्वोक्त शीलधर और सत्यधर दोनों रानियों के गर्भ में आये । प्रसवकाल आने पर रानी मनोरमा एक शुभ लक्षण पुत्र जनी । "यही पुत्र भीमभट नामक प्रख्यात राजा होगा" उस समय यह आकाशवाणी हुई । तदुपरान्त दूसरे दिन लास्यवती के गर्भ से भी एक पुत्र हुआ, पिता ने उसका नाम समरभट रक्खा। दोनों राजकुमारों का यथावत् संस्कार किया गया और दोनों क्रमशः बढ़ने लगे। ज्येष्ठ कुमार भीमभट कनिष्ठ कुमार समरभट से सब बातों में बढ़कर निकले, इसी से दोनों भाइयों में वैमनस्य बढ़ने लगा।

एक समय की बात है कि दोनों भाई मल्लयुद्ध का खेल खेल रहे थे, भीमभट तो सहज स्वभाव से अपने दांव पेंच कर रहे थे किन्तु समरभट के मन में कल्मष था; वह अवसर ढूंढ़ते रहे कि कब घात मिले और ऐसा आघात लगाऊँ कि यह यहां से फिर न उठे। सो खेलते २ उन्होंने भीमभट के गले पर अपनी भुजा से घोर आघात लगाया; भीमभट इस चोट से अपना क्रोध सम्भाल न सके, उन्होंने चट उन्हें भुजाओं से उठा धरती पर पटक ही तो दिया; इस पटकान से समरभट चकनाचूर हो गये और उनके सब द्वारों से लोहू बहने लगा । उनकी यह दशा देख उनके सेवक उन्हें उनकी माता के समीप उठा ले गये। महारानी पुत्र की यह दशा देख अति व्याकुल हुईं और जब कि उन्हें यह ज्ञात हुआ कि पुत्र की इस दुर्दशा के कारण राजकुमार भीमभट हैं तब तो उनके शोक का अन्त ही न रहा, लगीं वह अपने पुत्र के मस्तक पर माथा पटक २ रोने और विलाप करने। इसी अवसर में महाराज उग्रभट वहां आ गये और यहां का ऐसा व्यापार देख व्याकुल हो पूछने लगे कि कहो तो सही व्यापार क्या है, यह क्या और कैसे हुआ ? महाराज के ऐसे प्रश्न सुन महारानी लास्यवती बोलीं,—"आर्य्यपुत्र! भीमभट ने मेरे पुत्र की यह अवस्था कर डाली है, वह सदा सर्वदा इसे इसी प्रकार कष्ट पहुँचाया करता है, मैं आपसे नहीं कहती कि जाने दो दोनों बालक हैं लड़ते भिड़ते रहते हैं इनकी बातों पर क्या ध्यान दिया जाय; पर जब उसने मेरे पुत्र को इस दशा में पहुँचाय दिया तब तो बड़ी आशङ्का होती है, फिर पुत्र की चिन्ता तो जो है सो है ही एक बड़ी भारी आशङ्का तो यह होती है कि जब वह पुत्र ऐसा उद्धत और उद्दण्ड है तो आपका कल्याण कैसे होगा। इसका बि-

चार आप स्वयं कर सकते हैं मैं क्या करूं।" प्रिया की ऐसी बात महाराज उग्रभट के हृदय में धँस गई। उनका क्रोध एकाएक भड़क उठा सो उन्होंने भीमभट को अपनी सभा से निकलवा दिया और आज्ञा कर दी कि यह मेरे समक्ष न आने पावे; उनके सब अधिकार छीन लिये और राज्य से जो वृत्ति उन्हें मिलती थी सो भी बन्द कर दी। इसके उपरान्त समरभट को कोषाध्यक्ष बना दिया और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि उनके साथ सदा सौ राजपूत रक्षक बने रहते कि कोई उनका एक बाल भी बांका न कर सके।

जब भीमभट की माता मनोरमा ने सुना कि मेरे पुत्र के साथ ऐसा बर्त्ताव किया गया है तब उन्होंने भीमभट को अपने समीप बुला भेजा और उन्हें बहुत कुछ समझाया और कहा—"पुत्र! तुम्हारे पिता इस समय उस नर्त्तकी के बड़े अनुरागी हैं इसीसे उन्होंने तुमको निकाल दिया है सो तुम कुछ चिन्ता मत करो; सुनो तुम पाटलिपुत्र में अपने नाना के घर चले जाओ, उनके कोई पुत्र नहीं है वह अपना राज्य तुम्हें दे देंगे बस तुम राजा के राजा बने रहोगे। और जो तुम मोहवश यहां पड़े रहोगे तो तुम्हारा भला न होगा, क्योंकि समरभट तुम्हारा परम बैरी हो गया है, वह इस समय प्रबल और सहायवान् है और तुम निस्सहाय हो वह तुम्हें अवश्य मरवा डालेगा। इससे मैं कहती हूं कि तुम यहां से भाग जाओ इसी में तुम्हारा कल्याण है।" माता का ऐसा कथन सुन राजकुमार भीमभट बोले—"माता मैं क्षत्रिय हूं, भला क्षत्रियपुत्र होकर देश त्याग कैसे भाग जाऊँ, यह डरपोक का काम है, क्षत्रियों को भय नहीं व्यापता। अम्ब तू धीरज धर भला ऐसी किस बापुरे की शक्ति है जो मेरा कुछ कर सके।" उनका ऐसा बचन सुन माता फिर बोली, "तो बेटा तुम अपनी रक्षा के लिये कुछ रक्षक नियुक्त कर लो जो सदा तुम्हारी रखवाली किया करें, द्रव्य की तुम कुछ चिन्ता न करना मैं तुम्हें धन देऊँगी।" माता की ऐसी बात सुन भीमभट फिर बोले,—अम्ब! तुम्हारा कहना तो ठीक है पर ऐसा करना पिता का घोर विरोध समझा जायगा इससे यह कार्य्य शोभन न होगा; और कल्याण का क्या पूछना, वह तो तुम्हारे आशीर्वाद ही से होगा। तुम चिन्ता न करो, धैर्य्य धरो।" इतना कह भीमभट वहां से चले गये।

जब महाराज का भीमभट के साथ ऐसा व्यापार पुरवासियों को विदित हुआ तब सब लोग बड़े व्यथित हुए और परस्पर कहने लगे कि राजा ने भीमभट के साथ बड़ाही अनुचित व्यवहार किया है; फिर समरभट का यह काम भी अच्छा नहीं हुआ कि जेठे भाई का राज्य छीन आप भोग करें। अस्तु जो हुआ सो हुआ अब हमलोगों को भी उचित है कि भीमभट की सेवा करें, उनकी सहायता करें। इस प्रकार विचारकर समस्त प्रजा गुप्तरूप से भीमभट की ऐसी सहायता करने लगी कि राजकुमार भीमभट अपने भृत्यवर्गों के साथ सुखपूर्वक कालयापन में समर्थ हो गये। प्रजा तो ज्येष्ठ राजकुमार को इतना प्यार करती पर उनका छोटा भाई सदा इस चेष्टा में रहता कि क्योंकर उसका बध करूँ। महाराज तो स्वयं भीमभट के प्रतिकूल थे, उन्हीं के नियुक्त किये कतिपय योद्धा समरभट की रक्षा करते इससे समरभट और भी निःशङ्क और उद्दण्ड हो गये और इसी हेतु उनका इतना साहस भी हुआ कि भीमभट के बध करने का अवसर ढूंढ़ने लगे।

दोनों राजकुमारों का एक प्रगाढ़ मित्र शङ्खदत्त नामक ब्राह्मण था, वह युवा शूर और लक्ष्मीपात्र भी था सो वह समरभट के निकट जाकर उन्हें समझाने लगा "प्रिय वयस्य! तुम्हें उचित नहीं है कि अपने जेठे भाई से वैर करो, यह धर्म नहीं प्रत्युत घोर अत्याचार है; फिर वह तुमसे बड़े हैं इससे तुम किसी प्रकार उन्हें बाधा पहुँचाय ही नहीं सकते, उलटी अकीर्त्ति ही तुम्हारी लोक में होगी, सब लोग तुम्हारी निन्दा ही करेंगे।" शङ्खदत्त की बात राजकुमार समरभट को अच्छी न लगी, उलटे वह अति क्रुद्ध हो उसे गाली देने और डाँटने लगे। ठीक ही है मूर्ख को हित उपदेश देना मानों उनका क्रोध भड़काना है, उससे उनको शान्ति कदापि नहीं हो सकती।

शङ्खदत्त को इस पर क्रोध तो बड़ा हुआ पर वह धीर था इससे और उत्तर प्रत्युत्तर करना उचित न समझ वह वहां से उठकर चला गया पर उसके मनमें आंट पड़ गयी. उसने दृढ़प्रतिज्ञा की कि अब किसी न किसी प्रकार इन्हें हरा-कर छोड़ना: इतना विचार कर वह भीमभट के निकट गया और उनका एकान्त सुहृद् हो गया।

इसके उपरान्त ऐसा हुआ कि किसी देश से मणिदत्त नामक एक व्यापारी

एक अत्युत्तम घोड़ा लेकर राजा उग्रभट के राज्य में बेचने लाया । घोड़ा अनिर्वचनीय था कहां लौं उसका वर्णन किया जाय, चन्द्र के समान उसका शुभ्रवर्ण, शुद्ध शङ्खध्वनि सी उसकी ध्वनि, उसकी गति ऐसी चञ्चल जैसी क्षीरसागर की लहरें, यथास्थान उत्तमोत्तम भूषणों से सुसज्जित, वे भूषण ऐसे प्रतीयमान होते थे मानो गन्धर्वलोक के बने हों । शङ्खदत्त ने जाकर भीमभट से उस हयरत्न का वर्णन किया सो उन्होंने उस वणिक् से उस घोड़े को बहुत सा धन देकर मोल ले लिया । उसी अवसर में समरभट को भी उस उत्तम अश्व की सूचना मिली, वह भी उक्त व्यापारी के पास पहुँचे और कहने लगे कि मुझसे दूना दाम ले लो और घोड़ा मुझे दे दो। वणिक् बोला "महाराज! मैं तो घोड़ा बेंच चुका, अब मैं क्योंकर फेर सकता हूं।" इसपर समरभट ने बलपूर्व्वक घोड़ा छीन लेना विचारा, क्योंकि उनके मनमें तो डाह भरा था कि कैसे भीमभट मुझ से बढ़ जांय । चलो दोनों राजकुमारों में तलवार खिंच गयी, और भृत्य भी टूट पड़े, घोर युद्ध होने लगा । भीमभट के प्रचण्ड दोर्दण्ड के प्रहार से समरभट के सब सेवक भाग गये और समरभट भी घोड़ा छोड़ प्राण ले भाग चले । शङ्खदत्त के मनमें तो खार जमी ही थी उसने उन्हें रगेदकर पकड़ा और केश पकड़ ज्योंही चाहा कि शिर धड़ से अलग कर दे कि दौड़कर भीमभट ने उसे रोका और कहा—"भाई! इस समय इसे छोड़ दो, ऐसा करनेसे पिताजी को बड़ा दुःख होगा।" अब शंखदत्त से छुटकारा पाय समरभट लहूलोहान भागकर अपने पिता के पास चले गये।

घोड़ा लेकर विजयी वीर भीमभट अपने आवास पर पहुँचे ही थे कि थोड़ी ही देर में उनके पास एक ब्राह्मण आया और उन्हें एकान्त में लेजाकर उनसे इस प्रकार कहने लगा "राजकुमार! तुम्हारी माता मनोरमादेवी, पुरोहित यजुःस्वामी तथा पिता के मन्त्री सुमति ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है और यह सन्देश कहा है कि वत्स! तुम जानते हो कि राजा कैसे तुम्हारे प्रतिकूल हैं, फिर इस घटना से उनका कोप और अधिक भड़का है, अब वह तुम्हारे पूरे शत्रु हो गये हैं; सो तात! यदि अपनी, और अपने धर्म्म तथा यश की रक्षा किया चाहते हो, और भविष्य सुधारने की इच्छा रखते हो, और जो यह मानते हो कि हम तुम्हारे हितैषी हैं तो

आजही सूर्य्यास्त होने पर चुपचाप यहां से निकलकर नाना के घर चले जाओ। इस समय इसीमें तुम्हारा कल्याण है। यह तो उनका सन्देश है, और मेरे हाथ रत्नपूर्ण यह डब्बा उन्हींने भेजा है सो लेओ। उस ब्राह्मण से ऐसा सन्देश सुन भीमभट अति प्रमुदित हुए, और बोले मैं ऐसाही करूँगा, इतना कह बड़ी नम्रता से उन्होंने वह रत्नभाण्ड ले लिया और अपनी ओर का सन्देश दे उस ब्राह्मण को विदा किया।

अब राजकुमार भीमभट अपना खड्ग लेकर उस श्रेष्ठ अश्व पर आरूढ़ हुए और एक दूसरे घोड़े पर हेमरत्नादि लेकर शंखदत्त चढ़ा, और दोनों जने वहां से चलते हुए। राजकुमार अपने मित्र के साथ ताबड़तोड़ घोड़ा दौड़ाये रातोरात चले जा रहे थे, आधी रात के समय महाघोर सर्कंडों के वन में पहुँचे। घोड़ों की टाप से उस वन में महा शब्द हुआ, उससे सिंहों का एक जोड़ा जाग पड़ा और बच्चे भी जागे; उन सभों ने पहिले घोड़ों पर आक्रमण किया और नीचे से उनके पेट फाड़ डाले। राजकुमार अपने मित्र सहित उन सिंहों पर टूट पड़े, उन्होंने उन सिंहों को काट कूटकर छिन्न भिन्न कर डाला। इसके उपरान्त दोनों जन अपने २ घोड़ों पर आरूढ़ हुए, इतने ही में उन घोड़ों की अँतड़ी निकल पड़ीं और वे दोनों धरती पर गिर पड़े। घोड़ों की यह दशा देख राजकुमार भीमभट को बड़ा विषाद हुआ सो वह अपने मित्र से कहने लगे—"सखे! हमारे स्वजन विरुद्ध हो गये पर उनसे बचने को हम दोनों किसी युक्ति से निकल भागे, कहो न अब क्या किया जाय? सैकड़ोंयत्न क्यों न किये जायँ पर भाग्य से कोई कहां भाग सकता है, वह तो सदा पिछियाये फिरता है; देखो न हम यहां भागकर आये, दैव से वह भी न सहा गया, हमारे वाहन क्या मारे गये मानो हमही मारे गये। देखो तो सही जिसके कारण हमारा देश छूटा वह घोड़ा भी मर गया, अब ऐसी रात और ऐसा घोर जंगल, पैदल क्योंकर चल सकेंगे?" राजकुमार की ऐसी करुणाभरी बातें सुन वह मित्र शंखदत्त बोला—"प्रिय वयस्य यह कोई नई बात नहीं है, यह निर्द्वन्द्व विधि इसी प्रकार पौरुष का विध्वंस किया करता है, परन्तु उसका यह नैसर्गिक गुण भी है कि वह धैर्य्य से जीता जाता है, जैसे वायु पर्वत का कुछ नहीं कर सकता वैसेही जो पुरुष धैर्य्य रख अपने कार्य्य की धुन लगाये रहता

है दैव भी उसका कुछ नहीं कर सकता। अब धैर्यही हमारे अस्त्र हैं, बस धैर्य्य का अवलम्बन कर हम लोग चलें।" उसको ऐसी सान्त्वनामयी वाणी सुन राजकुमार भीमभट कुछ आश्वस्त हुए और उसके साथ आगे चले।

राजकुमार भीमभट अपने मित्र शंखदत्त के साथ चले जाते थे, सरकण्डों से उनके पांव क्षत विक्षत हो गये। अस्तु किसी प्रकार रात बीती और रात्रि के अन्धकार के नाशक जगत् के दीपक दिननाथ का उदय हुआ। मार्ग के पार्श्ववर्त्ती सब कमल खिल गये, जिनके ऊपर भँवर झंकार करने लगे जिससे यह भावना होती थी कि उन्हें देख वे परस्पर कह रहे हैं कि अहोभाग्य जो यह महानुभाव सिंहादि हिंस्र जन्तुओं से व्याप्त इस जङ्गल को पार कर आये।

चलते २ राजकुमार अपने मित्र के साथ पतितपावनी जन्हुकन्या भगवती जान्हवी के तट पर पहुँचे जहां अनेक ऋषि मुनि तपस्या कर रहे थे। वहां महादेव जी के शिरपर रहने के कारण चन्द्रमा के सम्पर्क से अमृतमय जल में उन्होंने स्नान किया जिससे थकावट दूर हुई। व्याधे हरिणों का आखेट कर उस मार्ग से उन्हे लिये जाते थे जिनमे से शंखदत्त ने उनसे कुछ मोल ले लिया और भूनकर राजकुमार को दिया कि भोजन करें। उन्होंने उसी का भक्षण कर सन्तोष किया।

आगे अगाध जल से भरी भागीरथी प्रखर धाराओं से बह रही थीं, जिनमें ऊँचे २ पर्वत-सन्निभ तरङ्ग उठकर यह सूचित करते थे कि हे राजकुमार उतरने का साहस न करना। जब उन्हें यह भली भांति निश्चित हो गया कि गङ्गाजी का पार करना असाध्य है और कोई नाव बेड़ा भी नहीं तब वह भगवती के किनारे ही किनारे चले। जब कुछ दूर आगे निकल गये तब एक विजन स्थान में क्या देखते हैं कि एक ब्राह्मणकुमार कुटी में बैठा वेद पढ़ रहा है। भीमभट उसके समीप चले गये और उससे पूछने लगे—"भाई तुम कौन हो, और इस निर्जन प्रदेश में क्या कर रहे हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं काशी का रहनेवाला ब्राह्मण, द्विजन्मा श्रीकण्ठ का पुत्र नीलकण्ठ हूं, पिता ने मेरे संस्कार निष्पन्न किये, तब मैं गुरुकुल में विद्या पढ़ने गया; जब समस्त विद्या सीखकर मैं देश को लौटा तो क्या देखता हूं कि मेरे घर में कोई नहीं है, सब बन्धु बान्धव मर बिलाये; अब मैं अनाथ हो गया, धन कुछ था ही नहीं कि गार्हस्थ्य का अवलम्बन करूँ इससे मेरे

मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई, सो मैं यहां आकर घोर तप करने लगा। तब स्वप्न में देवी गङ्गाजी ने मुझे फल दिये और कहा कि पुत्र तू ये फल खाकर यहीं रह। जब लों तेरा अभिवाञ्छित न मिले इन्हीं फलों से निर्वाह कर। इतना सुनते ही मेरी नींद टूट गयी और मैं जाग पड़ा, जब रात बीती तब प्रात:काल गंगाजी में स्नान करने गया जहां भगवती जान्हवी के जल में मुझे कुछ फल मिले, उन्हें लेकर मैं अपनी कुटी में आया, जब मैंने उन्हें खाया तो अच्छा स्वादी अमृततुल्य मीठे थे। बस वे फल मुझे प्रतिदिन मिलते हैं और वही खाकर मैं यहां रहता हूं।"

उस ब्राह्मण का ऐसा कथन सुन भीमभट ने शङ्खदत्त से कहा—"भाई यह ब्राह्मण गुणी है, इसको मैं इतना धन दिये देता हूं जितने से इसकी गृहस्थी भली भांति चले।" शङ्खदत्त ने जब इसका समर्थन किया, तब राजकुमार ने माता का भेजा सब धन उस द्विजन्मा को दे दिया। ठीकही है, महात्माओं के अलुप्त सत्व और कोष का महत्व ही क्या जो दूसरे की आर्त्ति सुन तत्क्षण उसे नष्ट न कर दे।

ब्राह्मण को कृतार्थ कर राजकुमार आगे बढ़े और गङ्गा में उतरकर पार जाने का ठांव देखने लगे पर ऐसा एक भी स्थल न मिला कि जहां से हलकर पार हो जावें, अन्त में असिरूपी विभूषण मस्तक पर बांध वह सुरनदी में उतर पड़े। जब दोनों जन बीच धारा में पहुँचे तो वहां के प्रखर जलवेग में शङ्खदत्त तो बह गया और वह लहरों से टकराते धोकराते गोते खाते पार लगे। तब वहां अपने मित्र को ढूंढ़ने लगे पर वह मिले कहां, वह तो न जानें कहां बह गया था, इस प्रकार उनके खोजते २ भगवान् सूर्य्यनारायण अस्ताचल पर जा विराजे; तब तो वह निराश हो गये कि अब शङ्खदत्त नहीं मिलने का; सो अति दु:खित हो वह गङ्गा में गिर प्राण त्यागने पर उतारू हुए। "हे देवि गङ्गे! मेरा जीवन सर्वस्व वह मित्र तो तुमने लेही लिया तो अब यह मेरा शून्य शरीर भी ग्रहण करो," इतना कह ज्योंही वह गङ्गाजी में कूदा चाहते थे कि इतनेही में भगवती प्रत्यक्ष हो कहने लगीं, "पुत्र! साहस न कर, तेरा वह सखा जीवित है, थोड़ेही दिनों में वह मिलेगा, ले मैं तुझे प्रतिलोम और अनुलोम नाम्नी विद्या देती हूं; अनुलोमा के पाठ से मनुष्य अदृश्य हो जाता है और प्रतिलोमा के पढ़तेही जैसा रूप चाहे बन जाय। यह विद्या सातही अक्षर की तो है पर इसका प्रभाव ब

ड़ाही प्रबल है, फिर इसी विद्या के प्रभाव से भूतल पर तू राजा हो जावेगा।" इतना कह विद्या देकर भगवती जान्हवी तो अन्तर्धान हो गयीं। अब भीमभट को मित्र की प्राप्ति में आस्था हुई सो वह मरण से विमुख हुए। मित्रप्राप्ति के उत्साह में कमल के समान उन्होंने किसी प्रकार वह रात वितायी।

प्रात:काल होने पर वह अपने मित्र शंखदत्त को ढूंढ़ते हुए चले, चलते २ लाट नामक देश में पहुँचे जहां मिश्रित वर्ण की बसति नहीं थी तथापि लोगों की स्थिति स्वच्छ और उज्ज्वल थी; वह देश सब कलाओं का आकर था तथापि दोषाकर शब्द उसके विषय में अप्रयुक्त था (१) उस देश के एक नगर में देवालयों के दर्शन करते हुए घूमते घामते वह एक द्यूतशाला में पहुँचे, तहां भीतर जाकर देखते क्या हैं कि अनेक जुआरी वहां पड़े हैं जिनकी कटि में लगोंटी के अतिरिक्त और अङ्ग पर कुछ वस्त्र न था, तौभी उनकी आकृति से विदित होता था कि वे उच्च घराने के हैं। उनके समस्त अङ्ग गठीले और पुष्ट थे जिनसे यह प्रतीत होता था कि वे व्यायामशील हैं, उनके देखने से यह भी अनुमान होता था कि उन सभों के पास माल है, सारांश, वे भेष बनाये पड़े रहते थे। भीमभट को आभरण सहित देखकर उन सभों के मन में यह बात उदित हुई कि आज अच्छा भोजन हाथ लगा, ऐसा विचार वे सब राजकुमार भीमभट से आलाप करने लगे; चलो जूए की बात छिड़ी और खेल आरम्भ हुआ। राजकुमार सीधेसादे थोथा राजपुत्र न थे वे परम प्रवीण और द्यूतकुशल भी थे, बात की बात में उन्होंने उन धूर्त्तों का सर्वस्व जीत लिया जो उन दुष्टों ने दूसरों को ठग ठगकर एकत्रित किया था।

जब कि वे सब अपना सर्वस्व हार अपने २ घर जाने लगे तब भीमभट द्वार रोककर खड़े हो गये और बोले—"तुम लोग चले कहां, लेओ अपना यह धन, इस धन से मुझे क्या? मैं अपने मित्रों को यह धन देऊँगा ही तो क्या तुम मेरे मित्र नहीं हो? भला तुम सरीखे मित्र मुझे कहां मिलेंगे।" राजकुमार तो अपना जीता धन उन्हें दे रहे थे पर वे सब लाज के मारे लेने पर सम्मत नहीं होते थे। इतने में अच्चक्षपणक नामक एक जुआरी बोला—"भाई द्यूत को

(१) यहां, वर्ण, कला और दोषाकर शब्दों का श्लेष है।

परिभाषा ही यह है कि जो हारा गया वह हारा गया । फिर जीता हुआ धन कोई किसी को देता नहीं, तौभी जो यह मित्र होकर अपनी इच्छा से अपना जीता हुआ धन हमें दे रहे हैं तो हमलोग क्यों न ले लेवें।" उसका ऐसा कथन सुन और सब जुआरी बोले—"यदि यह शाश्वत सख्य (१) करके ऐसा करें तब तो हमलोग इनका अनुरोध स्वीकार कर सकते हैं अन्यथा नहीं।" उनका ऐसा वचन सुन भीमभट ने जाना कि ये सब भी वीर हैं, ऐसा स्थिर कर उन्होंने उनसे मैत्री कर ली और उन्हें वह धन दे दिया।

अब क्या सब लोग मित्र हो गये, तब उन जुआरियों ने यह अनुरोध किया कि आओ चलें किसी उद्यान में आज विहार किया जाय। अस्तु राजकुमार भीम· भट उनके साथ एक उद्यान में गये जहां उन जुआरियों के कुटुम्बी भी एकत्रित हुए, अनेक प्रकार के व्यञ्जन और अन्नपानादि का समाहार हुआ तब भीमभट ने भी उनके आमोद से आनन्दित हो उनके साथ विहार का आनन्द लूटा । इसके उपरान्त अक्षक्षपणक आदि ने उनसे उनका पता पूछा जिसके उत्तर में भीमभट ने अपना वंश, नाम और वृत्तान्त कह सुनाया और तत्पश्चात् उनका वृत्तान्त भी पूछा। तब अक्षक्षपणक उन्हें अपना हाल इस प्रकार सुनाने लगा—

हस्तिनापुर में शिवदत्त नामक एक ब्राह्मण था, उसका पुत्र मैं वसुदत्त ना· मक हूं। पिता मेरे बड़े धनी थे। बाल्य अवस्था में मैंने वेदविद्या और शास्त्रविद्या सीखीं तब पिता ने अपने बराबर कुल से मेरा विवाह करा दिया । माता मेरी बड़ी रौद्रा (२) ऐसी कोपना कि उनका मनाना दुराध्य था। उनके कारण मेरे पिता नितान्त उद्विग्न हो गये, मैं विवाहित तो होही गया था, भार्य्या मेरी मेरे पासही रहती थी इससे पिता को किसी प्रकार की चिन्ता भी न थी सो वह घर छोड़ न जानें कहां चले गये। पिता का ऐसा व्यापार देख मेरे मन में बड़ा भय उपजा सो माता जिस प्रकार प्रसन्न रहें वही बात मैं सोचने लगा । मैंने अपनी भार्य्या को जननी की सेवा शुश्रूषा में नियुक्त कर दिया; भार्य्या भी बहुत डरती रहती तथापि सदा सचेष्ट रहती कि कभी सासु जी अप्रसन्न न हो जावें । माता उससे भी असन्तुष्ट रहतीं और सदा कलह करती ही रहतीं; जब वह चुपचाप रह

(१) सदा के लिये मैत्री। (२) महा कोपना, अति कोप करनेवाली।

जाती तो माता अपना अपमान समझतीं और कहतीं कि यह बात बहटिया जाती है; और जब मेरी पत्नी बड़ी नम्रता से उनसे कुछ बोलती तब वह कहतीं कि यह तो इसका बनौआ है; और जब वह उनको शान्त करने के लिये कुछ समझाती तब माता कहतीं यह तो झगड़ा कर रही है। माता का हृदय स्वयं दुष्ट था इसीसे सब व्यापार उन्हें दुष्टही भासते; ठीकही है वह्नि की दहनशीलता कौन दूर कर सकता है। माता के ऐसे विरुद्ध आचरण से मेरी भार्य्या का भी चित्त बड़ा खिन्न हो गया सो वह भी घर छोड़ न जानें कहां चली गयी।

मेरा मन भी उबियाय गया. मैं भी गृह त्याग कहीं चला जाया चाहता था परन्तु भाई बन्धुओं ने मिलकर बलात् मेरा दूसरा विवाह करा दिया। मेरी माता ने उसको इतना सताया कि उस विचारी ने फांसी लगा आत्महत्या कर डाली। अब तो मेरा चित्त नितान्त उद्विग्न हुआ, मैं विदेश चलने पर उतारू हो गया, बन्धु भाइयों ने बहुत निवारण किया, तब तो मैंने अपनी जननी की सारी करनी उन्हें कह सुनायी। उन्होंने पिता के चले जाने का कारण कुछ और ही बता दिया और मेरी बात का विश्वास न किया। तब तो मैंने विचारा कि अब जिस प्रकार इनको विश्वास हो जाय कि मेरा कथन सत्य है मैं वही चेष्टा करूँगा। इतना विचार मैंने एक कठपुतली बनवायी, और झूठही कह दिया कि मैंने एकान्त में इससे विवाह किया है, और लाकर उसे दूसरे घर में रख द्वार पर ताला बन्द कर दिया और लौंड़ी की आकृति की रक्षिका बनवाकर उसके घर में रख दी। माता से मैंने कह दिया कि अब मैंने तीसरा विवाह किया है और भार्य्या को दूसरे घर में रख दिया है, तुम और मैं दोनों इस घर में रहेंगे, तुम वहां मत जाना और वह यहां न आवेगी (आवे), वह अभी नयी आयी है तुम्हारी आराधना वह क्या जाने, इसीसे ऐसा प्रतिबन्ध कर दिया है। चलो माता भी इस पर सम्मत हुईं।

इस प्रकार कुछ दिन बीते, पर मेरी जनयित्री सदा इस बात की चेष्टा में लगी रहतीं कि क्योंकर यह नवीन बहू भी हाथ में आवे तो उसे भी सताऊँ पर वह क्योंकर आ सकती थी वह तो घर के भीतर ताले में बन्द थी। अस्तु माता की इस विषय में सब चेष्टायें निष्फल हुईं। तब एक दिन माता ने यह ढोंग रचा कि एक पत्थर से अपना कपार फोड़ लिया; जब उसमें से रुधिर की धारा बहने लगी

तब मेरी जननी आंगन में बैठ चिल्ला २ रोने लगी। उनका रोना सुन मैं भीतर गया और बहुतेरे बन्धुबान्धव भी बटुर आये और उनसे पूछने लगे कि अरे यह क्या हुआ है? तब वह डाह से इस प्रकार बोलीं,—"क्या कहूं बहू ने आकर मेरी यह दुर्दशा की है, राम जानें जो मैं कुछ बोली होऊँ, बिना कारण उसने मुझे इतना कष्ट दिया है, अब मरनेही से मेरा निस्तार है और कोई उपाय नहीं सूझता।" इतना सुनतेही बान्धव लोग कोप से लाल हो गये, माता को लेकर वे मेरे साथ वहां गये जहां घर के भीतर वह कठपुतली बन्द थी। ताला खोल द्वार उघाड़ जो वे भीतर गये तो वहां कठपुतली के अतिरिक्त और कोई न दीख पड़ा, तब तों माता की करनी पर वे हँसने लगे, और समझ गये कि यह ऐसीही है। माता तो अपनी इस चाल से बहुत ही लज्जित हुईं। अब बान्धवों को मेरी बात का विश्वास हो गया। इसके उपरान्त वे अपने २ घर चले गये।

अब मैं अपना देश त्याग वहां से निकला। इधर उधर घूमता घामता इस प्रदेश में पहुँचा और दैवात् इस द्यूतशाला के भीतर आया। यहां मैंने इन पांचों जनों को जूआ खेलते देखा, यह चण्डभुजङ्ग है, वह पांसुपट है, यह श्मशानवेताल है फिर वह कालवराटक है और यह शारिप्रस्तर है, ये पांचों शूर और तुल्य-पराक्रम हैं। मैं यहां इनके साथ जूआ खेलने लगा, पण यह ठहरा कि जो हारे वह जीतनेवाले का दास होवे, ये पांचों हारकर मेरे दास हो गये परन्तु सच पूछिये तो इनके गुणों से मैंही मोहित हो इनका दास हो गया हूं। इनके साथ रहते २ मैं अपना दुःख भूल गया, जैसी अवस्था होती है वैसाही नाम भी चाहिये बस इसीसे मेरा नाम अचलपणक है। ये सब भी सत्कुलोत्पन्न हैं, पर छिपे पड़े हैं, इन्हीं के साथ मैं भी यहीं पड़ा हूं, अहोभाग्य जो आज आप मिल गये। अब तो आप हमारे प्रभु हैं यही समझकर हमने आपका वह धन स्वीकार किया क्योंकि हमलोग गुण के बड़े अनुरागी हैं।

इस प्रकार जब अचलपणक अपना वृत्तान्त सुना चुका तब दूसरे सब भी क्रमानुसार अपना २ वृत्तान्त भीमभट को सुना गये। इसके उपरान्त भीमभट के मन में यह निश्चय हो गया कि ये सब के सब वीर हैं किन्तु धन अर्जन करने के हेतु ऐसा ढोंग रचे बैठे रहते हैं, सो उन्होंने अपना भाग्य धन्य माना कि ऐसे ऐसे

शूर मित्र मिले । तब वह उनके साथ नाना प्रकार की कथा वार्त्ता करने लगे और बड़े आनन्द से विहार करके सब लोगों न वह दिन बिताया । इतन में पूर्व दिशा सब प्रकार से शृङ्गार किये चन्द्र का टीका लगाये विराजमान हुई तब भीमभट उस उद्यान से उठकर उन छ: अच्चचपणकादिकों के साथ उनके घर गये।

राजकुमार भीमभट उनके साथ रहते थे कि उसी अवसर में वर्षा ऋतु आ विराजी जिसके जलवर्षण और घोर गर्जन से उनको मित्रप्राप्ति की सूचना मानो हुई । उस समय, वहां पर विपाशा नाम्नी जो नदी थी सो मानों मतवाली हो गयी क्योंकि उसका जल तो जाकर समुद्र में गिरता है परन्तु एक तो वह निज बाढ़ से स्वयं मर्य्याद तोड़ चली थी दूसरे उधर से समुद्र के ज्वार होने के कारण वह नदी उलटी बहने लगी । महावारि पुर से जब वह अपने तट के ऊपर बहने लगी इतने में समुद्र भाटा होने से वह निम्नगा फिर निम्नगाही हो गयी । उसी समय ऐसा हुआ कि तरङ्ग में एक महामत्स्य बह कर आया, बड़ा भारी था इससे फिर बह न गया किन्तु नदी किनारे आ लगा । उसे देख वहां के लोग दौड़े और नाना आयुधों से उसे पीटने लगे, पीटते २ सभों ने उस का पेट फाड़ डाला इतने में उसमें से एक जीता जागता युवा ब्राह्मण निकल पड़ा, इस अद्भुत दर्शन से सब लोग कोलाहल करने लगे । कोलाहल सुन राजकुमार भीमभट उन मित्रों के साथ वहां गये कि देखें बात क्या है । क्या देखते हैं कि वह जो मछली के पेट से निकला है प्रियसुहृद् शङ्खदत्त है। दौड़ कर उससे लिपट वह रोने और अश्रुधाराओं से उसे सींचने लगे, मानों मीन के उदर में रहने से जो उनके शरीर में मलिनता लग गई थी उसे धोने लगे । शङ्खदत्त भारी बिपत्ति से उद्धार पाय अपने मित्र को गाढ़ आलिङ्गन कर बड़ाही आनन्दित हुआ अब उसके हर्ष का अन्तही न था । तब भीमभट ने बड़े कौतुक से उसका वृत्तान्त पूछा जिसे शङ्खदत्त इस प्रकार सुनाने लगा ।

जब मैं गङ्गा की धारा में पड़ आपकी दृष्टि से बाहर हुआ तब इस महामत्स्य ने मुझे अशङ्कित निगल लिया, उसकी उदररूपी बड़े भवन में मैं पैठा, मुझे वहां बहुत दिन रहना पड़ा । मैं खाता क्या, बस छुरी से उसी का मांस काट २ कर खाकर कालयापन करने लगा, आज बिधाता उसे यहां लाये, और इन

लोगों ने उस मत्स्य को मारा तो मैं इसके पेट से निकल पड़ा, तब सूर्य्यसम आप मिल पड़े आज मेरी सब दिशायें प्रकाशित हो गयीं। बस मित्र! यही मेरा वृत्तान्त है इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानता।

उसका ऐसा अद्भुत वृत्तान्त सुन भीमभट और वहां के सब लोग अति विस्मित हुए और कहने लगे, कहां गङ्गा में मत्स्य से निगला जाना, कहां उसका समुद्र में जाना फिर उस मार्ग से कहां विपाशा में प्रवेश; कहां उसका मारा जाना फिर कहां उसके पेट से इसका जीता जागता निकलना। अहो! अद्भुत कर्म है विधाता की गति जानी नहीं जाती," इस प्रकार सब लोग कह रहे थे कि भीमभट अश्वक्षपणकादिकों के साथ उसे अपने डेरे पर ले गये, जहां उन्होंने बड़ा उत्सव मनाया और उसको स्नान कराके उत्तम वस्त्रादि पहिनाये। उसी शरीर से मानों वह मछली के पेट से पुनः उत्पन्न हुआ हो।

जब भीमभट शङ्खदत्त के साथ उस देश में रहते थे कि उसी समय उस देश में नागराज वासुकि का उत्सव आया। राजपुत्र भी अपने मित्रों के साथ उनके दर्शन करने गये, जहां नागराज के मन्दिर में अनेक महाजन आये थे। वहां उन्होंने मन्दिर में नागराज की मूर्ति के दर्शन किये। मन्दिर का वर्णन क्या किया जाय, महा अर्णव, पाताल में जो भोगिपुरी है उसकी छाया आ जाती. मूर्त्ति के चहुँओर नागों के फण के आकार की मालायें पहिनायी थीं। वहां नागराज की मूर्त्ति को प्रणाम कर राजकुमार मन्दिर के दक्षिण ओर गये जहां उन नागराज का महान् ह्रद उन्हें दीख पड़ा जिसमें फणों के रत्न की प्रभा के पुञ्ज समान रक्त कमल खिले हुए थे, नील कमल भी व्याप्त थे, जिनकी नीलिमा का यह कारण प्रतीत हुआ कि नागों के विष की ज्वाला से वे नीलवर्ण हो गये हों। वायु के झकोरे से जो पादप हिलते थे उनसे फूल झरते थे जिससे यह भावना होती थी कि वे वृक्ष भी उनकी पूजा करते हैं। उस ह्रद के निरीक्षण से भीमभट के हृदय में यह भावना हुई कि इस अमुद्र ह्रद के समक्ष वह समुद्र (सागर) किस गिन्ती में है, उसकी श्री तो नारायण ने निकालकर ले ली है और इसकी श्री, भला किसकी शक्ति है कि ले सके।

राजकुमार इसी प्रकार ह्रद की अनुपम शोभा निरख विस्मित और अचम्भित

हो रहे थे कि उसी क्षण वहां एक कन्या स्नान करने आई, वह सुन्दरी तत्रत्य महाराज लाटेश्वर चन्द्रादित्य की पुत्री थी जो उनकी महिषी कुवलयावली से उत्पन्न हुई थी, राजकुमारी का नाम हंसावली था । उनके समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग दिव्याङ्ग की भावना देते थे, केवल आंखों के भँजने से यह प्रत्यय होता था कि यह मर्त्य हैं, नहीं तो किसी प्रकार मर्त्य नहीं प्रतीत होती थीं । अङ्ग उनके फूल से जो कि करोड़ों गुणों के आकर, कमर ऐसी कि मुट्ठी में आ जाय, सच तो यह कि राजकुमारी मानो कामदेव की धनुर्लता थीं । उनकी तिरछी चितवन राजकुमार के हृदय में वाण सी विंध गई, वह तत्क्षण आहत हो मोहित हो गये । यह भी क्या ऐसे वैसे थे, यह तो स्वयं कन्दर्परूप थे, जोही देखे मोह जाय, जगत् के सौन्दर्य्यतस्करस्वरूप इनका सौन्दर्य्य निरख राजकुमारी की भी अपूर्व दशा हो गयी; नेत्रों के मार्ग से उनके हृदय में पैठकर इन्होंने उनका धैर्य्य हर लिया । भाव यह कि राजकुमारी सर्वतोभाव से इनपर आसक्त हो गयीं, अब वह इनका पता लगाने लगीं, गुप्तरूप से दासियां भेज उन्होंने इनका नाम धाम सब पुछवा लिया । इसके उपरान्त राजकुमारी को सब सखियां राजभवन में ले गयीं, वहां उनका शरीरमात्र गया, मन तो राजकुमार भीमभट में लगा रह गया; खान पान सब से अरुचि हो गयी, कुछ भी न सोहावे, चित्त उधरही लगा रहा । इधर भीमभट भी अपने मित्रों के साथ डेरे पर गये, प्रिया के प्रेम से उनको भी कुछ सुधि न थी किसी प्रकार लुढ़कते पुढ़कते घर पर पहुँचे ।

क्षणभर के उपरान्त राजकन्या हंसावली ने सन्देशा देकर एक दूती को राजकुमार भीमभट के समीप भेजा, चेरी उनके पास जाकर बोली—"देव ! राजकुमारी हंसावली यह प्रार्थना करती हैं, कि "कामदेवरूपी घोर ओघ में बहते हुए इस जन को देखकर बिना उद्धार किये तट पर बैठे रहना आपको उचित नहीं है ।" दूती से इस प्रकार दयिता का वचनामृत सुन, मानो जीवन पाकर, अति प्रहृष्ट हो भीमभट बोले, मैं तो स्वयं ओघ में पड़ा बहा जा रहा हूं, क्या यह बात प्रिया नहीं जानतीं; अस्तु अब कुछ अवलम्बन मिल गया तो जैसा वह कहती हैं मैं वैसाही करूँगा, आज रात को अन्तःपुर में आकर उनका मन रख दूंगा; मुझे एक विद्या आती है उसके प्रभाव से मैं वहां पहुंच जाऊँगा और कोई भी

मुझको न देख सकेगा ।" उनकी ऐसी उक्ति सुन चेरी ने जाकर राजकुमारी से प्रतिसन्देश कह दिया सो सुन वह अति प्रहृष्ट हो उनके सङ्गम की प्रतीक्षा करती हुईं तन्मय हो रहीं ।

जब सायङ्काल हुआ राजकुमार भली भांति सज धज कर राजकुमारी हंसावली से मिलने चले; भगवती गङ्गा ने जो विद्या दी थी उसका अनुलोम्य पाठ कर वह अदृश्य हो गये और जाकर अन्तःपुर में जहां कि राजकुमारी का भवन था, जिसे वह पूर्वही व्यक्तिरहित कर चुकी थीं, उसमें पैठे, जहां कि अगुरु की गन्धि समस्त भवन को वासित कर रही थी, जहां रति को भी आनन्द का अनुभव होता है, जहां पांच प्रकार के पुष्प अपनी २ निराली छटा दिखा रहे थे ऐसे कामदेव के उद्यान सदृश उस भवन में उन्होंने अपनी प्रिया को देखा जो दिव्य सौरभ से सुगन्धमय हो रही थीं, वह गाङ्गविद्यावल्ली की कली के समान उन्हें देख पड़ीं। तब वह उस विद्या का प्रातिलोम्य पाठ कर प्रत्यक्ष हुए, उनके निरीक्षण से राजकुमारी आनन्द से पुलकित हो गयीं; उनके अङ्ग अङ्ग कुछ कम्पित हो गये और आभरण सब झनझनाने लगे, जिसमें यह भावना हुई मानो राजकुमारी अपने प्राणप्यारे को देखकर नाचने लगी हैं । अबलों उन्होंने अपने प्यारे से कुछ कहा नहीं न उठकर उन्हें आलिङ्गन ही किया प्रत्युत कन्यका भाव की लज्जा के कारण वह नीचे शिर कर बैठ रहीं मानो अपने हृदय से पूछ रही हैं कि कहो अब क्या करना उचित है ? अब तुम क्या चाहते हो ? राजसुता की यह दशा देख भीमभट बोले, "मुग्धे ! तुम्हारे चित्त का व्यापार तो प्रकाशित होही गया है अब उसमें कौन सा तत्व है जो लज्जा छिपा रही है; ये तुम्हारे अङ्ग क्यों कांप रहे हैं, तुम्हारे वस्त्र क्यों हिल रहे हैं, सुनो अब छिपने छिपाने से काम न चलेगा ।" इत्यादि २ नाना प्रकार के वाक्यों से राजकुमार ने हंसावली की लाज छुड़ा दी, वह सुमुखी उनकी ओर अपना चन्द्रवदन उठा मुस्कुराई, बस अब क्या था राजकुमार भीमभट ने गान्धर्व विधि से उनका पाणिग्रहण कर लिया । दोनों पतिपत्नी रात भर आनन्दसागर में मग्न रहे, इसके उपरान्त जब रात्रि के प्रयाण का समय आया तब प्राणप्यारे ने अपनी प्रियतमा से कहा कि प्रिये ! फिर रात्रि के समय इसी प्रकार आऊँगा अब जाने की आज्ञा दो । हा ! कैसा कठिन वचन, और

कैसा निदारुण समय ! अस्तु राजकुमारी की आज्ञा पाय राजकुमार अपने डेरे पर लौट गये।

इधर प्रात:काल के समय कञ्चुकी प्रभृति अन्त:पुरचारी जो आये तो क्या देखते हैं कि राजकुमारी की दशा ही आज भिन्न है, उनके शरीर पर संभोग के लक्षण विद्यमान हैं; केशपास ढीला हो गया है, दांत और नख के टटके चिन्ह विराजमान हैं जिनसे यह भावना होती थी कि साक्षात् मन्मथ महाराज ने अपने बाणों के आघात किये हैं उन्हीं की असह्य वेदना से राजकुमारी अति व्याकुल हैं। उनकी यह दशा देख उन सभों ने महाराज को जाकर जैसी की तैसी सूचना दी। महाराज सुनतेही सन्न हो गये कि यह कैसा अनर्थ है! तब उन्होंने गुप्तरूप से चारों को नियुक्त किया कि इसका निरीक्षण करें कि बात क्या है।

उधर भीमभट ने अपने मित्रों के साथ सुखपूर्वक दिन बिताया और जब रात हुई तो पुन: राजकुमारी के भवन में आ पहुंचे। अपनी विद्या के प्रभाव से वह अलक्षित रूप से राजकन्या के समीप आ विराजे, और कोई भेदुआ उन्हें देख न सका, इस घटना से उन चारों को भी बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ, वह अपने मन में यह विचार करने लगे कि हो न हो यह कोई सिद्ध हैं, ऐसा विचार उन सभों ने जाकर महाराज से कहा कि देव ! बात ऐसी २ है; बड़ा आश्चर्य्य होता है कि हमलोग पहरा देही रहे थे और वह महापुरुष राजकुमारी के समीप पहुंच ही गये। तब महीपति ने उनसे कहा कि निस्सन्देह यह आश्चर्य्य की बात है क्योंकि ऐसे गुप्तस्थान में आजाना कुछ ठट्ठा नहीं है, यह मनुष्य का साध्य नहीं है, अच्छा तुम लोग जाकर उन्हें यहां बुला लाओ और बड़ी नम्रता से उनसे यह कहियो, "तुमने प्रगट में क्यों नहीं राजकुमारी को मुझसे मांग लिया, ऐसा रहस्य क्यों किया, तुम सा गुणवान् वर भला कहां पाइये।" राजा का ऐसा कथन सुन चारों ने जाकर द्वारपर खड़े हो भीमभट को वैसाही कह सुनाया। भीतरही से राजपुत्र भीमभट, यह जानकर कि अब तो राजा को पता लग ही गया है, तो चिन्ता क्या, इतना विचार निर्भय स्वर से बोले—"तुम लोग मेरी ओर से महाराज से जाकर कह दो कि इस समय रात अँधेरी है इससे आने का कुछ फल न होगा, प्रात:काल आपकी सभा में स्वयं उपस्थित हो तत्व विषय निवेदन करूंगा।" उ

न्होंने जाकर महाराज से प्रतिसन्देश कह सुनाया सो सुन महीपति चुप हो रहे। प्रात:काल होने पर राजकुमार भीमभट अपने मित्रों के पास चले गये।

अब राजकुमार भीमभट भली भांति सज धज कर अपने मित्रों के साथ महाराज चन्द्रादित्य की सभा की ओर चले, ज्योंही राजसभा में पहुंचे त्योंही उनके तेज से राजसभा एकाएक चमक उठी, उनका सहज धैर्य्य और अपूर्व सौन्दर्य्य देख महाराज चन्द्रादित्य चमत्कृत हो गये; उन्होंने उनका यथोचित सम्मान कर उत्तम आसन पर बैठाया। जब भीमभट बैठ गये तब उनका मित्र शंखदत्त राजा से यह कहकर बोला, "राजन्! राढ़ापति राजा उग्रभट के यह पुत्र भीमभट हैं, इनकी अतर्क्य विद्या के माहात्म्य से इनका पराक्रम अपरिमेय है सो यह आपकी कन्या के हेतु यहां आये हैं।" इतना सुनतेही राजा को रात की बात स्मरण आगई सो वह बोले,—"अहोभाग्य! मैं परम धन्य हूं", इतना कह वह विवाह करने पर सम्मत हो गये।

विवाह के सब उपक्रम होने लगे, मङ्गल बाजे बजने लगे, नगर में चहुंओर आनन्द छा गया। शुभ मुहूर्त्त में राजा चन्द्रादित्य ने अपनी कन्या हंसावली का दान राजकुमार भीमभट के हाथ में कर दिया; कन्यादानोत्तर महीपति ने यौतुक में बहुत से द्रव्य रत्नादि उन्हें दिये; हाथी, घोड़े, गांव तो अनगिनतिन दिये। इतना विभव पाय राजकुमार भीमभट हंसावली तथा लक्ष्मी के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों के उपरान्त उनके ससुर महाराज चन्द्रादित्य जब वृद्ध हुए और कोई पुत्र तो उनके थाही नहीं तो लाटराज्य भीमभट को सौंप आप तपस्या करने के लिये वनमें चले गये। भीमभट राज्य पाय अति कृतकृत्य हुए और शङ्खदत्तादि अपने सातों मित्रों के साथ धर्म्मपूर्वक शासन करने लगे।

कुछ काल बीतने पर एक वार महाराज भीमभट ने चारों के द्वारा यह सुना कि पिता उग्रभट प्रयाग स्नान करने गये सो वहां परलोक सिधार गये और कि मरते समय उन्होंने नर्त्तकी के बेटे अपने कनिष्ठ पुत्र समरभट को राढ़ाराज्य पर अभिषिक्त कर दिया। पिता का मरण सुन उन्हें शोक तो बहुत हुआ, फिर उन्होंने उनकी और्द्धदैहिकी क्रिया कर समरभट के पास एक दूत भेजा और लिखकर एक पत्र दिया कि, "रे मूर्ख नर्त्तकीपुत्र! पिता के सिंहासन पर तेरी क्या यो-

यता जो तू बैठे; यद्यपि मैं लाटराज्याधीश हूं तथापि अपना सत्व नहीं छोड़ सकता, उसके योग्य मैंही हूं, सो तू उस राजासन से पृथक् हो जा इसी में तेरा भला है।" दूत ने जाकर वह पत्र राजा समरभट को दिया और कहा कि, "महाराज! मैं लाटेश्वर महाराज भीमभट का दूत हूं उन्होंने यह पत्र आपके पास भेजा है।" महाराज भीमभट का नामाङ्कित वह पत्र खोलकर पढ़ते ही राजा समरभट की आंखें लाल २ हो आयीं, और भौंहें चढ़ाकर बोले,—"जिसको अयोग्य समझ पिता ने देश से निकाल दिया उस दुर्विनीत को ऐसी मिथ्या अभिमानता नहीं सोहती। सियार भी अपनी मांद पर बैठकर सिंह के समान अपने को समझता है पर जब सिंह का दर्शन हो तब न उसे विदित होवे कि सिंह क्या तत्त्व है।" इस प्रकार गर्ज के महाराज समरभट बोले और यही सन्देशा लिखवाकर अपने दूत के हाथ उन्होंने भी भीमभट के समीप भेज दिया।

प्रतिदूत चला २ लाटेश्वर की सभा में पहुँचा और बड़ी नम्रता से प्रणाम कर उसने समरभट का पत्र उनके समक्ष रख दिया, भीमभट वह पत्र पढ़कर ठहठहाकर हँसे और दायाद के उस प्रतिदूत से कहने लगे—"रे दूत! जा उस नर्त्तकीसुत से कह देना कि वह बात भूल गयो घोड़ा लेते समय जब शंखदत्त के पञ्जे में आ गया था, अरे वह तो तुझे मारही डालता पर बालक और पिता का लाड़ला समझ मैंने तुझे छोड़ा दिया। अब मैं तेरे अपराध न क्षमा करूँगा, निश्चय जान कि अब मैं तेरे वत्सल पिता के समीप तुझे भेजकर ही छोडूंगा। अब तू सजग रह और थोड़े ही दिनों में मुझे वहां आया जान।" इतना कह उन्होंने प्रतिदूत को विदा किया और इधर प्रयाण का उपक्रम भी कर दिया।

जब उदयोज्ज्वल महाराज राजेन्द्र भीमभट अद्रि समान गजेन्द्र पर आरूढ़ हुए तब उनके सैन्य भी समुद्र के समान क्षुभित हो गर्जन करते उठ खड़े हुए। चारों ओर से असंख्य सामन्त राजपूतगण अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित हो अपनी अपनी सेना ले आ मिले। हाथी घोड़े तथा पदातियों के भार से पृथ्वी दहल उठी और कांपने लगी मानो इस डर से त्रस्त हो रो रही है कि कहीं मैं फट न जाऊँ। इस प्रकार अपनी सेना लिये महाराज भीमभट राढ़ा की सीमा पर आ विराजे, उनके सेना से जो धूलि उठी उससे सूर्य्य ढँक गये और आकाश धूसरित हो गया।

महाराज समरभट को यह सूचना मिली कि भीमभट सीमा पर आ गये, वह कब ऐसा घर्षण सह सकें सो झटपट अपनी सेना सजाय युद्ध के लिये गढ़ से निकले। पूर्व पश्चिम सागर के समान दोनों सेनायें भिड़ गयीं और शूरों का महा युद्धरूपी प्रलय आरम्भ हुआ। दोनों दलों में शङ्खध्वनि होने लगी, अस्त्रशस्त्रों की संघर्षण से आग की चिनगारियां निकलने लगीं जिनसे आकाश व्याप्त हो गया, ऐसी भावना होती थी मानो क्रुद्ध हो कृतान्त ने जो अपने दांत पीसे सो उनसे अग्नि निकली। पैने फणवाले वाण कैसे छूटते और शोभित होते थे मानो वीरों की प्रतीक्षा में खड़ी हुई अप्सराओं की आंखों की पुतलियां हों। खटाखट वीर कटने लगे, हाथी घोड़े और रथों से ऐसी धूलि उड़ी कि सूर्य्य का दर्शन अप्राप्य हो गया; सैन्यों में महा भयङ्कर कोलाहल मच गया, कोई किसी का कुछ सुने ही नहीं, मारो २ काटो २ भागने न पावे, यह मारा वह गिरा, हाय २ ओः आंह आंह इत्यादि नाना प्रकार के शब्द गगनमण्डल में गूंज उठे। अब कबन्ध उठे उनके नृत्य से रणभूमि की एक अद्भुत शोभा हो गयी। इतने में रक्त की नदी बह चली, कहीं धड़ बहे चले जा रहे हैं, कहीं मुण्ड की माला धारा में प्रवाहित है, वह नदी कालरात्रि की भांति प्रतीत होने लगी कि जिसमें जीवधारियों का असंख्य मरण होने लगता है।

क्षणही भर में महाराज भीमभट ने शङ्खदत्त, अक्षक्षपणक तथा चण्डभुज प्रभृति बड़े बलवान् तथा दुर्मद हाथियों के समान अपने मित्रों के साथ शत्रु का सैन्य भंग कर दिया। जब सेना भाग चली तब महाराज समरभट रथ पर बैठ दौड़े और शत्रु के सैन्य में आकर मन्दराचल के समान उसका मथन करने लगे। उधर से भीमभट मत्त मातङ्ग पर आरूढ़ उनके सामने आ डटे, समरभट का धनुष काट उन्होंने चार वाणों से उनके चारों घोड़ों को मार डाला। महाराज समरभट विरथ हो गये तब वह तोमर लेकर दौड़े, उन्होंने हाथी के कुम्भ पर ऐसा तोमर प्रहार किया कि वह गजेन्द्र घुमर के गिर पड़ा और ठंढा हो गया।

अब दोनों वीर पदाति हो ढाल तलवार से परस्पर युद्ध करने लगे; एक दूसरे पर वार करते और पैंतरा खेल आत्मरक्षा भी करते थे। भीमभट को अदर्शन विद्या जो आती थी उससे अदृश्य होकर वह चाहते तो एक पल में शत्रु का सं-

हार कर डालते, पर ऐसा कार्य धर्मविरुद्ध होता यही विचार उन्होंने उसका अवलम्बन न कर प्रत्यक्ष में द्वन्द्वयुद्ध किया । इतने में युद्ध करते २ धीर भीमभट सचमुच भीमभट ही हो गये, उन्होंने बड़े लाघव से शत्रु के ऊपर प्रबल हो उसका मस्तक उसके धड़ से पृथक् कर दिया; महाराज समरभट समरभूमि में सनातन के लिये सो गये। इतने में आकाश से सिद्ध चारण और गन्धर्व महाराज भीमभट की जय २ कहने और पुष्पवृष्टि करने लगे।

संग्राम जब शमन हो गया तब महाराजाधिराज भीमभट अपने मित्रों के साथ राढ़ापुरी में पैठे, आगे २ बन्दीजन यश गाते, मागध गुणकीर्त्तन करते, सैनिक लोग जयजयकार मचाते थे। जब महाराज राजभवन में आये तब पहिले अपनी जननी के निकट गये। जिस प्रकार लंका जीतकर श्रीभगवान् कोशलेन्द्र रामचन्द्र ने चिरकाल से उत्कंठित कौशिल्यादेवी को आनन्दित किया था उसी प्रकार महाराज भीमभट ने बहुत दिनों से उत्कण्ठित अपनी माता मनोरमादेवी को आनन्दित किया। इसके उपरान्त समस्त पुरवासियों ने आकर उनका अभिवादन किया। तत्पश्चात् गुणप्रिय सचिवों ने महाराजाधिराज भीमभट को राढ़ाराज्य-सिंहासन पर अभिषिक्त किया। महाराज ने अपनी सब प्रजा का यथोचित सन्मान किया और उस दिन बड़ा भारी उत्सव किया गया जिसमें सब लोगों ने परम आनन्द मनाया।

इसके उपरान्त शुभमुहूर्त में महाराज ने शङ्खदत्त को लाटराज्य दान करदिया, और उस देश की सेना दे उसे वहां भेजा। पश्चात् अचक्षपणक प्रभृति को भी बहुतेरे गांव तथा धन दिये। अब वह अपने उन मित्रों के साथ आनन्दपूर्वक रहके लाटेन्द्र कन्या हंसावली के संग सुख भोग करते पिता के राज्य का शासन करने लगे। इसके पश्चात् दिग्विजय के हेतु निकले क्रमानुसार सब देश जीत अनेक नृपकन्यायें व्याह लाये अब महाराज भीमभट मन्त्रियों पर राज्य का भार छोड़ रनिवास में रहकर सब रानियों के साथ क्रीड़ा करने लगे, नाना प्रकार के आमोद प्रमोद होते। सदा वह अन्तःपुर ही में बने रहते एक घड़ी के लिये भी बाहर नहीं आते थे।

एक समय ऐसा हुआ कि उत्तङ्ग मुनि उनसे भेंट करने आये मानों पूर्वकाल

में महादेवजी ने जो काल बताय दिया था वही पाक काल आ पहुँचा । जब मुनि द्वार पर आये तब द्वारपालों ने जाकर महाराज भीमभट को उनका आना निवेदन किया पर महाराज तो रागमद तथा ऐश्वर्य के दर्प से अन्धे हो रहे थे वह कब सुनने के । तब तो मुनि को बड़ा कोप हुआ, उन्होंने चट वाग्वज्र का प्रहार कियर "रे मदान्ध, तू राग में ऐसा मत्त हो सुनी बात अनसुनी कर रहा है इस से जा तू बनैला हस्ती हो जायगा।" ऐसा शाप सुनते ही राजा का मद उतर गया, अब तो वह भय के मारे थर २ कांपने लगे, चट रनिवास से निकले और मुनि के चरण पकड़ बड़ो चिरौरी और विनती करने लगे । तब मुनि का कोप शान्त हुआ, वह कहने लगे, "राजन् ! हाथी तो तुम होओगे ही, यह तो अन्यथा होहो नहीं सकता, किन्तु एक बात है कि मं इसका परिहार बताये देता हूं, जब कि राजकुमार मृगाङ्कदत्त का मन्त्री प्रचण्डशक्ति नागशाप के वश से अपने स्वामी से पृथक् हो जाने से अति विकल होकर इधर उधर भटकते २ अन्धा हो पड़ रहेगा तब तुम उस अतिथि की सेवा शुश्रूषा कर उसे शान्ति प्रदान करोगे; और उसे पश्चात् अपना वृत्तान्त सुनाओगे तब इस शाप से तुम्हारा छुटकारा होगा; तब तुम प्रथम महादेवजी के बतलाये गन्धर्वत्व को प्राप्त हो जाओगे और तब तुम्हारा वह अतिथि भी चक्षुष्मान् हो जावेगा।" इतना कह उत्तङ्क मुनि जहां से आये थे तहां चले गये । इसके उपरान्त महाराजाधिराज भीमभट राज्य से च्युत हो हाथी हो गये।

इतनी कथा सुनाय वह हाथी फिर बोला कि सखे ! मैं वही भीमभट हूं, अब मुनीन्द्र के शाप से गज होकर अपने किये का फल भोग रहा हूं और तुम भी वही प्रचण्डशक्ति हो । अब मैं जानता हूं कि मेरे शाप का अन्त आ पहुँचा। इतना कहतेही भीमभट का गजेन्द्रत्व छूट गया और वह तत्क्षण दिव्य विभव-सम्पन्न गन्धर्व हो गये । उसी समय प्रचण्डशक्ति के नेत्र खुल गये और वह उस गन्धर्व को देखने लगा।

यह उन दोनों का वार्त्तालाप राजकुमार मृगाङ्कदत्त लतामण्डप के भीतर से सुन रहे थे और इनका वृत्त भी देख रहे थे, सो उन्होंने सुअवसर जान दौड़कर अपने मन्त्री प्रचण्डशक्ति को कण्ठ से लगा लिया, अकस्मात् सुधावृष्टि से सिक्त के

समान हो प्रचण्डशक्ति भी अपने प्रभु को देखकर उनके चरणों पर गिर पड़ा । अब दोनों जन चिरकाल के वियोगजन्य दुःख के अनन्तर जो मिले तो दोनों जनों की आंखों से अश्रु की धारा बह चली और वे रोने लगे, तब भीमभट गन्धर्व ने उन दोनों को बहुत कुछ समझाया बुझाया और शान्ति दिलाई । इसके उपरान्त मृगाङ्कदत्त ने प्रणाम कर उक्त गन्धर्व से कहा, "भद्र ! जो हमारे यह मित्र हम-लोगों को पुनः मिल गये और कि इन्होंने अपनी दृष्टि पाई यह तुम्हारा ही माहात्म है, तुमको नमस्कार है ।" यह सुन भीमभट गन्धर्व भी राजपुत्र से कहने लगे "हे कल्याण ! थोड़ेही दिनों में तुम्हारे और सब भी सचिव मिले जाते हैं तुम धीरज धरो, तुम शशाङ्कवती भार्य्या को भी प्राप्त करोगे इतनाही नहीं वरन् पृथ्वी पर तुम्हारा साम्राज्य भी होगा । फिर मैं तुमसे एक प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तुम मुझे स्मरण करोगे तब मैं तुम्हारे पास आ विराजूंगा और तुम्हारा कार्य्य करूँगा ।"

छन्द ।

इहि भांति शापविमुक्त है, कल्याण लहि सन्तुष्ट भो ।
सखिभाव प्रगटि सुराजपुत्रहिँ बात ऐसी कह्यउ सो ॥
तेहि छन सकल दिसि निज सुभूषण कणित परिपूरित कियो ।
गन्धर्व्व चढ़ि आकाश गवनत भयो अति प्रमुदित हियो ॥

सोरठा ।

पाइ शुमंत्रि प्रचण्ड-शक्ति अपर सचिवन सहित ॥
लह्यो प्रमोद अखण्ड, राजसुवन जु मृगाङ्कदत ॥ १ ॥

दोहा ।

तहँ उत्सव मनवत भयो, तेहि दिन राजकुमार ॥
सब के मन महँ व्यापि रह, मोदप्रमोद अपार ॥ १ ॥

आठवां तरङ्ग ।

(वैताल पचीसी)

दोहा ।

विघ्नराज जय जाहि के, न्रत्यत शुण्डाघात ।
पुष्पवृष्टि सम गगनते तारावलि के पात ॥

अब राजकुमार मृगाङ्कदत्त रात्रि विताकर प्रातःकाल होने पर प्रचण्डशक्ति प्रमुख अपने सचिवों के साथ उस जङ्गल से निकलकर अपने अवशिष्ट मन्त्रियों को ढूंढ़ते हुए शशाङ्कवती के निमित्त उज्जयिनी की ओर चले । जाते २ मार्ग में क्या देखते हैं कि मन्त्री विक्रमकेसरी को एक महा बिकराल पुरुष आकाश में ढोये (उठाये) लिये जा रहा है, वह उसे अपने अन्य मन्त्रियों को बड़े आश्चर्य से दिखाने लगे तो इतने में वह मन्त्री स्वयं गगन से उतरा, और उस पुरुष के कन्धे से उतरकर आंखों में आंसू भरकर मृगाङ्कदत्त के चरणों पर गिर पड़ा, मृगाङ्कदत्त ने उसे उठाकर गले लगा लिया । इसी प्रकार सब मन्त्रियों ने क्रमानुसार उसे आलिङ्गन किया। इसके उपरान्त विक्रमकेसरी ने उस पुरुष से कहा "अच्छा इस समय तुम जाओ, जब मैं स्मरण करूँगा तब आना ।" इतना कह उसने उस पुरुष को विदा किया। इसके अनन्तर मृगाङ्कदत्त ने उससे पूछा कि कहो मित्र तुम्हारा वृत्तान्त क्या है? तब वह बैठकर अपना इतिवृत्त सुनाने लगा ।

विक्रमकेसरी बोला,—

उस समय नाग के शाप से जब कि मैं आप लोगों से पृथक् हुआ तब तो बहुत दिन लों भटकता फिरता रहा; जब कोई भी न मिला तब मैंने अपने मन में यह विचार किया कि अच्छा चलो उज्जयिनी चलूं अन्ततोगत्वा सब लोगों को वहीं जाना है तो वे सब भी वहीं जावेंगे ही, इतना विचार मैं उज्जयिनी की ओर चला। चलते २ मैं उसके निकट पहुँचा, तहां ब्रह्मस्थल नामक एक गांव मिला सो मैं बावड़ी किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगा । तहां सांप का डँसा एक बड़ा व्याकुल वृद्ध ब्राह्मण आया और मुझसे कहने लगा, "पुत्र! यहां से उठ जाओ नहीं तो मेरी सी तुम्हारी भी गति होवेगी, सुनो इस स्थान में

एक बड़ा भयङ्कर सर्प रहता है, उसने मुझे डँस लिया है अब उससे मुझे विषम पीड़ा हो रही है सो मैं इस बावड़ी में डूब मरने पर उतारू हूं ।" ब्राह्मण की ऐसी करुणवाणी सुन मुझे बड़ी दया आयी सो मैंने उसे मरने से बरजा और विषविद्या से उसका विष उतार दिया । तब तो वह ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ और मेरा वृत्तान्त पूछ बड़े आदर से मुझसे इस प्रकार कहने लगा—"हे वीर ! तुमने मेरे प्राण बचाये हैं सो मैं तुमको बैताल के सिद्ध करने का मन्त्र बतलाता हूं, यह मेरे पिता ने मुझको दिया है सो तुमको देता हूं इसे ग्रहण करो । तुम सरीखे सत्वशालियों के बड़े काम का यह मन्त्र है, मेरे से डरपोक ने इससे क्या लाभ उठावेंगे ।" उस द्विजोत्तम की बात सुन मैंने उससे कहा, "महाराज ! मैं तो सम्प्रति अपने स्वामी मृगाङ्कदत्त से अलग हूं सो बैताल मेरे किस काम के ?" मेरा ऐसा वाक्य सुन वह ब्राह्मण हँसकर फिर बोला कि भाई तुम क्या यह नहीं जानते हो कि बैताल से सब अभीष्ट सिद्ध हो जाता है । और कहां लों कहूं क्या तुम नहीं जानते कि राजा त्रिविक्रमसेन ने बैताल ही के प्रसाद से विद्याधर का ऐश्वर्य्य प्राप्त किया । अच्छा सुनो मैं तुमको उनकी कथा सुनाता हूं ।"

गोदावरी नदी के किनारे प्रतिष्ठा नामक देश है. तहां पूर्वकाल में विक्रमसेन के पुत्र शक्र के समान पराक्रमी त्रिविक्रमसेन नामक राजा होते भये, राजा त्रिविक्रमसेन की कीर्त्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त थी । राजा जब कि सभा में बैठे रहते उस समय प्रतिदिन क्षान्तिशील नामक एक भिक्षुक आता और बिना कुछ कहे सुने राजा को एक फल देकर चला जाता राजा भी वह फल लेकर समीपवर्त्ती कोशाध्यक्ष के हाथ पर रख दिया करते । इस प्रकार होते २ दश वर्ष बीत गये; एक दिन की बात है कि राजा को फल देकर जब भिक्षुक सभा से चला गया था कि दैवात् रखवालों के हाथ से छूटकर एक क्रीड़ामर्कटपोत (१) वहां आया सो राजा ने वह फल उस बानर को दे दिया और वह फल तोड़कर खाने लगा; ज्योंही कि फल फूटा उसमेंसे एक बहुमूल्य रत्न टपक पड़ा । यह देख राजा ने वह रत्न ले लिया और उस भाण्डकारिक (२) से पूछा कि भिक्षुक के लाये फल जो मैं तुमको प्रतिदिन देता गया उन्हें तुम कहां रखते हो ? राजा का ऐसा क-

(१) पालतू बन्दर का बच्चा । (२) कोषाध्यक्ष, भण्डारी ।

थन सुनतेही वह कोशाध्यक्ष सभय बोला "महाराज! मैं तो बिना केवाड़ खोले मोखेही मेंसे उन्हें कोशागार में फेंक दिया करता हूं आज्ञा हो तो केवाड़ खोलकर देखूं।" महीपति ने कहा "जाओ देखो" प्रभु की ऐसी आज्ञा पाय कोशाध्यक्ष कोशागार में गया और क्षणभर में ही वहां से लौट आकर नरेश से इस प्रकार कहने लगा—"प्रभो! फल तो सब सड़ गल गये किन्तु चमचमाते रत्नों की ढेरी लगी है।" कोशाध्यक्ष के ऐसे वचन से राजा अति सन्तुष्ट हुए, उन्होंने वह रत्नराशि उस कोशाध्यक्ष को दे दी।

दूसरे दिन अपने नियमानुसार जब वह भिक्षुक आया तो महीश्वर ने उससे पूछा, "भिक्षो! इतना धन व्ययकर जो तुम प्रतिदिन मेरी सेवा करते हो इसका क्या कारण है? जब लों कारण न बतलाओगे तुम्हारा फल अब न ग्रहण करूँगा" राजा का ऐसा वचन सुन भिक्षु उन्हें एकान्त में ले जाकर बोला "महाराज, मैं एक मन्त्र सिद्ध किया चाहता हूं उसमें एक वीर की सहायता अपेक्षित है, सो हे वीरेन्द्र! उसी की सिद्धि में मैं आप से सहायता चाहता हूं।" राजा उसकी बात पर सम्मत हुए; तब वह श्रमण अति सन्तुष्ट हुआ और पुनः कहने लगा, "महाराज! तो आप आगामिनी कृष्ण चतुर्दशी को रात्रि के समय मेरे पास आइयेगा; मैं श्मशान में उस वट के नीचे बैठा प्रतीक्षा करता रहूंगा, वहीं आप आवें।" "बहुत अच्छा, मैं ऐसाही करूँगा," राजा के इतना कहने पर अति प्रसन्न हो वह क्षान्तिशील श्रमण अपने घर चला गया।

जब कृष्णपक्ष की चतुर्दशी आई तब महासत्त्व महाराज त्रिविक्रमसेन को स्मरण आया कि आजही के लिये वह भिक्षु मुझसे प्रतिज्ञा करा गया था तो अब चलकर उसकी सहायता करनी चाहिये। इतना विचार रात्रि के समय नीलवस्त्र पहिन माथे पर तमाल का भूषण धारण कर हाथ में खड्ग ले अकेलेही राजधानी से निकले और निःशङ्क श्मशान की ओर चले और क्षणभर में वहां पहुँच गये, श्मशान की भयङ्करता वर्णनातीत है, अन्धकार अपना पूर्ण आधिपत्य जमाये राज्य कर रहा है, चहुओर चितायें जल रही हैं जिनकी लपलपाती ज्वालाओं से भय को भी भय लगता है; असंख्य कङ्काल, कपाल, हाड़ चहुओर बिखरे हैं; अत्यन्त हर्ष से भूत, प्रेत, बैताल इत्यादि नृत्य कर रहे हैं, और क्या मानों भैरवजी का

दूसरा अति गम्भीर और भीषण रूप हो; चहुंओर सियारिनें फेंकर रही हैं। ऐसे महाभयङ्कर मसान में पहुंचकर राजा उस भिक्षु को ढूंढ़ने लगे, अन्त में बटवृक्ष के नीचे वह श्रमण मिला, उस समय वह मण्डल बना रहा था। राजा उसके स-मीप चले गये और बोले—"कहो, भिक्षु महाराज! मैं तो आ गया, अब जो आज्ञा हो सो करूँ।" राजा की ऐसी उक्ति सुन भिक्षु अति प्रमुदित हुआ और बोला—"राजन्! जो आपने इतनी कृपा की तो अब आप मेरा इतना कार्य्य करिये, यहां से अकेले सीधे दक्षिण की ओर चले जाइये, बहुत दूर पर एक अ-शोक का पेड़ मिलेगा, उस पर एक शव लटक रहा है सो आप उसे उतार लावें बस यही मेरी सहायता, हे वीर, आप करें।"

वीर शिरोमणि राजा त्रिविक्रमसेन इतना सुनते ही वहां से दक्षिण ओर चले। अँधेरी रात में मार्ग क्योंकर जान पड़े इस हेतु चिता की एक जलती लुआठी ले ली थी। चलते २ वह किसी प्रकार उस शिंशपा वृक्ष के नीचे पहुँचे जहां वह शव लटक रहा था। वहां पहुंचकर क्या देखते हैं कि चिता के धूएँ से वह वृक्ष झुलस गया है और उसमें से कच्चे मांस की दुर्गन्धि आ रही है, उसकी पींड़ल पर एक शव लटक रहा है मानो भूत के कन्धे पर लोथ। वृक्ष पर चढ़ जाकर उन्होंने रस्सी काट शव को नीचे धरती पर गिरा दिया, गिरतेही वह अकस्मात् चिल्लाया जैसे उसे कुछ व्यथा हुई हो। तब तो राजा के हृदय में बड़ी करुणा हुई, वह समझते थे कि यह जीता है और गिरने से अति पीड़ित हो चिल्लाया है, सो वह वृक्ष से उतरकर उसका शरीर सुहराने लगे। इतने में वह मृतक अट्टहास कर हँसा, तब तो राजा समझ गये कि इसमें बेताल का आवेश है, सो उससे निःशङ्क कहने लगे—"क्यों हँसते हो आओ चलें न।" इतना उनका कहना कि वेताला-वशिष्ट शव लोप हो गया, देखते हैं तो वह फिर उसी प्रकार जाकर लटक रहा है। तब उन्होंने उस वृक्ष पर पुनः आरोहण कर उसे नीचे उतारा। ठीकही है वीरों का हृदय वज्र से भी कठोर होता है। अब राजा त्रिविक्रमसेन मौन धारण कर उस वेतालाधिष्ठित शव को कन्धे पर रख ले चले। तब वह बेताल जो शव में पैठा और राजा के कन्धे पर था राजा से कहने लगा—"राजन्! सुनो तुमसे एक कथा कहता हूं, जिसमें तुम्हारा मनोविनोद हो और मार्ग चलने का कष्ट न प्रतीत हो।"

(पहिला वेताल)

पुण्यजनों से सेवित वाराणसी नाम्नी एक पावनपुरी है जहां पुरारि भगवान् शङ्कर स्वयं विराजमान रहते हैं, वह नगरी कैलास पर्वत की स्थली के समान भासती है। प्रचुरजलपूर्ण स्वर्णदी भगवती गङ्गा उस पुरी के कण्ठहार के समान उपकण्ठ में सदा लगी हुई प्रवाहित होती हैं। उस पुरी में निज प्रतापरूपी अनल से नितरां दग्ध कर दिया शत्रुकुलकानन जिसने, ऐसे एक राजा प्रतापमुकुट नामक पूर्वकाल में हुए। उनके पुत्र वज्रमुकुट हुए, जिनके रूप के आगे कामदेव का दर्प दलन हो जाता और उनका शौर्य्य ऐसा कि शत्रु जिसके समक्ष ठहर ही न सकें। बुद्धिशरीर नामक महामति मन्त्रिपुत्र राजकुमार का सखा था जिसे वह अपने से अधिक मानते थे।

राजकुमार को मृगया का बड़ा व्यसन था सो वह एक बार आखेट के लिये निकले साथ में बुद्धिशरीर को भी लेते गये। इस प्रकार आखेट करते २ बहुत दूर निकल गये। सिंहों के केशरयुक्त मस्तक काटते हुए उनके शौर्य्य के चमत्कृत रूप हो गये, राजकुमार एक महा वन में जा पड़े जो कामदेव का आवासस्थान सा प्रतीत होता था, जहां कोयलों की कुहुक से यह भावना होती थी कि बन्दीजन यश गान कर रहे हैं, लता सहित वृक्ष जो वायु के झकोरे से लहरा रहे हैं, मानो चमर डोला रहे हैं। मन्त्रिपुत्र के साथ आगे जाकर राजकुमार ने एक सरोवर देखा जिनमें विचित्र २ कमल खिले हुए थे और जो स्वयं एक अपर सागर के समान भासता था।

उसी समय उस सरोवर में स्नान करने के लिये दिव्याकृति एक कन्या अपनी सहेलियों के साथ आयी, उसके सौन्दर्यरूपी निर्झर से वह सरोवर मानो परिपूर्ण हो गया और दृष्टिपातों से मानो एक नया उत्पलवन बन गया। इन्दु के पराभवकारी उसके मुख के समक्ष कमल लज्जित होता था। राजपुत्र की दृष्टि उसपर पड़ी कि तत्क्षण उस कन्या ने उनका मन हर लिया, युवा राजकुमार ने भी दृष्टि मात्र से उसके नेत्र इस प्रकार अपने वश में कर लिये कि वह कन्या न तो अपनी लज्जाही देख सकी और न अपने अलङ्कारही की ओर दृष्टि कर सकी, सब सुधि बुद्धि भूल गयी। राजकुमार बड़े आश्चर्य से उसकी ओर देखते और विचार करते

रहे कि भगवान् यह कौन है, मन्त्रिपुत्र भी उसकी ओर देख रहा था । इतने में उस बाला ने अपने देशादि ज्ञापनार्थ कुछ चिन्ह बतलाये कि मैं कौन हूं और कहां रहती हूं नाम क्या है इत्यादि २ जिनसे राजपुत्र पता लगा के वहां पहुंचे कि दोनों का समागम हो जावे । पहिले उसने अपनी कमलों की माला में से एक उत्पल निकाला और उसे कान पर धरा फिर वहां से उतार बहुत देर लों दन्तरचना दिखाती रही । इसके उपरान्त फिर एक कमल उठाया और उसे मस्तक पर धरा पश्चात् हृदय पर हाथ रक्खा । उसने यद्यपि इतने चिन्ह बतला दिये परन्तु राजकुमार के मन में उसका कुछ भी अर्थ बोध न हुआ, उनका मन तो तन्मय हो रहा था वह समझें विचारें क्या, किन्तु मन्त्रिपुत्र सब बड़े ध्यान से देखता रहा वह सब समझ गया । इसके उपरान्त वह कन्या अपनी सखियों के साथ निज गृह चली गयी, घर पहुंच वह पर्यङ्क पर पड़ रही, उसका शरीरमात्र पलङ्ग पर पड़ा रहा मन तो राजकुमार के संग संज्ञा के निमित्त बना रहा । उधर राजकुमार भी अपनी नगरी में पहुंचे, उनकी दशा बहुत बिगड़ गयी; जिस प्रकार विद्या के नष्ट हो जाने से विद्याधर हतप्रभ हो जाता है उसी प्रकार उस कन्या के बिना राजकुमार की चेष्टा नष्ट हो गयी ।

राजकुमार वज्रमुकुट की ऐसी दुःसह अवस्था देख मन्त्रिपुत्र बुद्धिशरीर एकान्त पाकर उनके पास गया और बहुत प्रकार से शान्ति दे समझा बुझाकर उनसे कहने लगा कि मित्र ! उस कुमारी के लिये इतने व्यस्त और व्याकुल क्यों हो रहे हो उसका पाना कुछ असाध्य तो है ही नहीं फिर इतनी व्यग्रता क्यों ? अपने सखा का इतना सान्त्वना-वचन सुन राजकुमार धैर्य तजकर बोले "सखे ! यह तुम क्या कह रहे हो भला जिसका नाम ग्राम वंश कुछ भी विदित नहीं उसके मिलने की क्या आशा की जाय सो तुम क्यों मुझे व्यर्थ आश्वासन दे रहे हो ? उनकी ऐसी बात सुन मन्त्रिपुत्र फिर बोला "मित्र ! यह तुम्हारा भ्रम है, क्या तुमने नहीं देखा कि उसने संकेत से क्या २ सूचित किया ? जो उसने कान पर उत्पल रक्खा उससे यह सूचित किया कि मैं कर्णोत्पल राजा के राज्य में रहती हूं, फिर जो उसने दन्तरचना किई इससे यह बतलाया कि वहां मैं दन्तघाटक की (१) बेटी हूं ; सित पद्म उठाने से उसने अपना नाम पद्मावती सूचित

(१) दन्तघाटक = दांत बनानेवाला ।

किया; हृदय पर हाथ रख के उसने यह सूचित किया कि तुम मेरे प्राण में बस गये हो। राजकुमार ने कहा सखे! मैंने सुना है कि कलिङ्गदेश में कर्णोत्पल नामक राजा हैं, उनके पास उनका कृपापात्र एक दन्तघाटक संग्रामवर्धन नामक है, उसके एक कन्या है जो तीनों जगत् की रत्न है जिसे वह दन्तघाटक अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता है। मंत्रीपुत्र ने उत्तर दिया देव! ये बातें तो तुम्हें विदितही हैं फिर उसने जो जो चिन्ह करके अपने देशादि का पता बताया सो तो मैं वहीं अर्थ लगा चुका था।" मन्त्रिपुत्र की ऐसी उक्ति सुन राजपुत्र वज्रमुकुट अति प्रमुदित हुए और उसकी बुद्धि की प्रशंसा कर कहने लगे "फिर तो तुम मित्र! बुद्धि के शरीर ही ठहरे, भला तुम न अर्थ लगाओगे तो और कौन लगावेगा; धन्य तुम्हारी बुद्धि और परम धन्य तुम!"।

अस्तु, अब राजकुमार को उस कन्या के मिलने का भरोसा हो गया सो मंत्री के पुत्र से सम्मति कर फिर वह मृगया के बहाने से उसे साथ ले अपनी प्रिया की खोज में गढ़ से निकले और उसी ओर चले। आधी दूर गये होंगे कि उन दोनों ने यह सिद्धान्त किया कि अब किसी उपाय से सैनिकों को यहीं छोड़ देना चाहिये क्योंकि जब लों ये लोग संग रहेंगे हमारा उद्देश्य सिद्ध न हो सकेगा, इतना ठहराय दोनों ने अपने २ घोड़े ऐसे शीघ्र दौड़ाये कि अश्व बात की बात में वात समान उड़ गये और सब सैनिक पीछे छूट गये। राजकुमार और मन्त्रिकुमार घोड़े दौड़ाते २ कलिङ्ग देश में पहुंचे; अब कर्णोत्पल राजा के नगर में पहुंच वे उस दन्तघाटक का पता लगाने लगे। जब उसका घर भी मिल गया तब उसी के समीप एक बुढ़िया के गृह में दोनों जने उतरे। मन्त्रिपुत्र ने घोड़ों को घास खिला जल पिला एक सुरक्षित सुगुप्त स्थान में बांध दिया।

इसके उपरान्त बुद्धिशरीर ने राजपुत्र के समक्ष उस वृद्धा से पूछा, "अम्ब! यहां कोई संग्रामवर्धन नामक दांत बनानेवाले रहते हैं, उन्हें तुम जानती हो?" यह सुनतेही वह बुढ़िया बड़ी श्रद्धा से बोली, "हां २ मैं भली भांति जानती हूं, मैं तो उसकी दाईही हूं, अब मैं बहुत बुड्ढी हो गयी हूं इसलिये उसने अपनी कन्या पद्मावती के समीप मुझे रख दिया है। मैं प्रतिदिन वहां नहीं जाती क्योंकि मेरे पास कुछ वस्त्र नहीं है, जब कभी मैं किसी प्रकार वहां जा पहुंचती हूं तो

मुझे अच्छे २ वस्त्र मिलते हैं, सो क्या कहूं बेटा मेरा पुत्र ऐसा कुपूत है कि उन्हें चुरा ले जाता और बेंचकर जूआ खेल डालता है।" उसका ऐसा कथन सुन मंत्रि-पुत्र ने अति प्रसन्न हो अपना दुपट्टा तथा और भी कईएक वस्त्र उसे दिये और सन्तुष्ट कर उससे फिर कहा, "तुम हमारी माता हो इसीसे तुमसे एक गुप्त बात कहते हैं; तुम इतना कार्य हमारा कर दो, उस दन्तघाटककीसुता से जाकर कह दो कि सरोवर किनारे जिस राजपुत्र को तुमने देखा था सो आये हैं और उन्होंने ही मुझे तुमसे सन्देशा कहने को भेजा है।"

दान का ऐसाम तत्व ही है, भला उससे कौन वशीभूत नहीं हो सकता, इस से देवता भी वश में हो जाते हैं तो मर्त्यों की क्या गिन्ती। अस्तु मन्त्रिकुमार के इस प्रकार के दान से वह वृद्धा अति प्रसन्न हुई और बोली "अच्छा मैं तुम्हारा काम कर देती हूं," इतना कह वह पद्मावती के पास गयी और क्षणभर में वहां से लौट आयी, पूछने पर इस प्रकार उनसे कहने लगी, "तुम दोनों का आना मैंने चुपके से उससे जाकर कहा, सुनतेही वह मुझे डांटने लगी और दोनों हाथों में कपूर मल मेरे दोनों गालों पर थपेड़े मारे; इससे मेरा मन बड़ा दुःखित हुआ, रोती २ मैं यहां चली आ रही हूं, देखो मेरे मुख पर उसकी अङ्गुलियां उपट आयी हैं।"

इतना सुनतेही राजपुत्र के मुखड़े पर उदासी छा गयी, वह बड़ेही उद्विग्न हो गये तब मन्त्रिपुत्र उन्हें एकान्त में समझाने लगा, "सखे! तुम विषाद न करो इसे डांटकर जो उसने कपूर लगी दश अंगुलियों के चिन्ह किये हैं इनसे यह सूचित किया है कि आजकल शुक्ल पक्ष है दस रात्रि रह गयी हैं सो ये चन्द्रवती दश रात्रियां बीत जाने दो क्योंकि इनमें मिलना नहीं हो सकता।" राजकुमार को इस प्रकार समझा बुझाकर मन्त्रितनय ने प्रफुल्लित किया, फिर अपने हाथ का सोने का आभूषण ले जाकर बाजार में बेंचा और भोजन की उत्तम २ सामग्रियां लाकर उसी बुढ़िया से भोजन बनवाया और मिलजुलकर तीनों ने एक साथ भोजन किया।

इस प्रकार दश दिन बीत गये तब मन्त्रिपुत्र ने फिर उस बुढ़िया को हाल चाल लेने को भेजा। मीठे २ उत्तमोत्तम भोजन के द्वारा वह उनके वश में होही

गयी थी भला नाहीं कब कर सकती थी, नाहीं करे तो भोजन में बाधा पड़े बस वह चट उद्यत हो गयी और उनके अनुरोध से पद्मावती के वासगृह में गयी किन्तु उसी प्रकार तत्क्षण वहां से लौट आयी और यों कहने लगी, "यहां से जो मैं चली तो वहां जाकर बैठी बस इतनेही में तुम्हारे आने की बात का जो अपराध मुझसे बन पड़ा था उसी पर वह बड़बड़ाती हुई आयी, आज उसने अंगुलियों में महावर लगाया था सो तीन अंगुलियों से मारकर उनकी बिन्दियां मेरी छाती पर लगा दीं, देखो न ये लगी हुई हैं। बस उसके पास से उठकर मैं चली आई।"

इतना सुनतेही राजकुमार के मुखड़े पर फिर उदासी छा गयी किन्तु मन्त्रिपुत्र उन्हें निराले में ले जा समझाकर कहने लगा—"मित्र ! उदास क्यों होते हो तुम्हारा कार्य्य तो सिद्धही है पर बीच में थोड़ी रुकावट पड़ गयी है। ये जो महावर रंगी अंगुलियों की तीन बिन्दियां उसने इस बुड्ढी की छाती पर दी हैं उनसे यह सूचित किया है कि मैं रजस्वला हो गयी हूं अब तीन रात और प्रतीक्षा करो। सो सखे ! अब चिन्ता का त्यागन करो आमोद का दिन निकट आ गया है।" इस प्रकार मन्त्रिपुत्र की उक्ति सुन राजकुमार का चित्त स्थिर हुआ।

तीन दिन बीतने पर मन्त्रिपुत्र ने पुनः उस वृद्धा को पद्मावती के पास भेजा। आज तो बातही और हुई. उसने बुढ़िया का बड़ा आदर सम्मान किया और उत्तमोत्तम भोजन खिलाये और बड़ी प्रीति से उसे पानादि द्रव्यों से दिनभर विनोदित रक्खा। सायङ्काल में जब वह वृद्धा घर जाने लगी कि उसी समय बाहर एक महाभयङ्कर कोलाहल सुनाई पड़ा; सब लोग चिल्ला रहे थे कि हा ! हा !! यह मत्त हाथी सिकड़ तोड़ाकर भागा, लोगों को कुचलता पीसता इधर उधर दौड़ रहा है। तब पद्मावती ने उस बुड्ढी से कहा कि अब इस मार्ग से तो तुम्हारा जाना उचित नहीं होगा क्योंकि उधरही हाथी का उत्पात है सो एक काम करो पीढ़े में रस्सी बांध उसपर तुम्हें बैठा खिड़की से नीचे वाटिका में उतरवाय देती हूं, उस वृक्ष पर चढ़ प्राकार डांक दूसरे वृक्ष से उतरकर अपने घर चली जाओ। इतना कह पीढ़े पर बैठाय दासियों से उसने उस वृद्धा को खिड़की के द्वारा वाटिका में उतरवाय दिया।

अब वृद्धा अपने घर आयी. राजपुत्र और मन्त्रिपुत्र दिनभर उसकी बाट जो

रहे थे, आतेही उसने वहां का सारा वृत्तान्त सुनाय दिया। तब मन्त्रिकुमार ने राजकुमार से कहा "सखे! लो तुम्हारा काम हो गया, उसने इसी युक्ति से मार्ग दिखा दिया है, सो रात्रि के होने पर इसी पथ से जाओ और अपनी प्रिया के मन्दिर में प्रवेश करो।"

मन्त्रितनय की ऐसी उक्ति सुन राजकुमार उसके साथ उस वृद्धा के बतलाये हुए मार्ग से चले और उसी प्रकार प्राकार डांकते डूंकते उद्यान में पहुंचे। वहां पहुंचकर क्या देखते हैं कि पीढ़ा सहित रस्सी लटक रही है और ऊपर बहुत सी दासियां बैठी बाट जोह रही हैं। राजपुत्र पीढ़े पर बैठ गये और दासियों ने देखतेही चटपट उन्हें ऊपर खींच लिया। वह खिड़की के द्वार से अपनी प्रिया के भवन में पैठे और मन्त्रिपुत्र डेरे पर लौट आये।

राजपुत्र पद्मावती के वासगृह में पहुंचकर क्या देखते हैं कि वह चन्द्रवदनी अपनी कान्ति से चहुंओर प्रकाशित करती हुई गृह के एक भाग में अवस्थित है मानो कृष्णपक्ष की आशङ्का से पूर्णमासी यहां आ छिपी हो। बहुत दिनों के उपरान्त अपने प्रीतम को पाय वह बिधुवदनी अति प्रमुदित हो झट अपने आसन से उठी और उन्हें गले लगा नाना प्रकार के उपचारों से उनका सत्कार करने लगी। अहा, क्याही सौभाग्य दोनों का है और कैसा आनन्द दोनों के हृदय में छाया हुआ है। इसके उपरान्त राजकुमार उसके साथ गन्धर्व विवाह कर सुगुप्त स्थान में रात्रिभर आनन्द करते रहे; इतने दिनों का मनोरथ उनका आज पूर्ण हुआ अब उनके आनन्द का ठिकाना नहीं।

इस प्रकार कई दिन व्यतीत हो गये, तब एक दिन रात्रि के समय राजकुमार वज्रमुकुट ने अपनी प्रिया पद्मावती से कहा कि प्रिये! हमारे मन्त्री का पुत्र मेरा परम प्रिय मित्र मेरे साथ यहां आया है, वह तुम्हारे पिता की दाई उसी वृद्धा के घर में अकेला रहता है सो हे तन्वि! मैं जाता हूं और उससे कुशल मंगल पूछ शीघ्रही लौट आऊँगा, पद्मावती महाधूर्त्ता वह कब चूके और वियोग दुःख क्यों सहे, बोली, "अच्छा आर्य्यपुत्र! एक बात पूछती हूं कि जो २ संकेत मैंने किये थे उन्हें आपने समझा अथवा आपके सखा उस मन्त्रिपुत्र ने?" उसका ऐसा प्रश्न सुन राजपुत्र बोले, "नहीं प्रिये! मैं तो कुछ भी न समझ सका सबका अर्थ उसीने

लगाया और मुझे समझाया, वह बड़ा बुद्धिमान् है, और दिव्य ज्ञान रखता है।" इतना सुनतेही वह बड़ी चिन्तित हुई किन्तु तत्क्षण अपना छन्नत भाव दबाकर बोली "आर्य्यपुत्र ! यह काम तो अनुचित हुआ, आपने पहिलेही क्यों न यह बात कही, भला वह आपके मित्र ठहरे तो मेरे भाई के तुल्य हैं यदि और नहीं तो ताम्बूलादि से तो उनका सत्कार प्रतिदिन हो जाया करता, अस्तु जो हो गया सो हो गया अब उसकी चिन्ता मे लाभही क्या, आप जाइये और उनकी सम्भावना भली भांति कीजिये पर चेत रखियेगा शीघ्रही लौटियेगा।" उसकी अनुमति पाय वज्रमुकुट रात्रि के समय उसी मार्ग से अपने मित्र के पास पहुंचे और अपनी प्रिया के यहां का समस्त वृत्तान्त सुना गये। और २ बातों के मध्य उन्होंने संज्ञाज्ञान की जो बात हुई थी सो भी कह सुनाई। मन्त्रिपुत्र बोला, "मित्र ! यह तो अच्छा नहीं हुआ, इस विषय का प्रगट करना तुम्हें उचित नहीं था।" इस प्रकार दोनों जन बातें कर रहे थे कि इतने में रात बीत गयी।

अब दोनों मित्र आह्निक कार्य्य से निवृत्त हो बैठे वार्त्तालाप कर रहे थे कि उधर से पक्वान्न भरे थाल और ताम्बूल हाथ में लिये पद्मावती की सखी आ पहुंची और मन्त्रिपुत्र से कुशल पूछ उसे पक्वान्न देकर राजकुमार को उसके भक्षण से मना करने के हेतु युक्तिपूर्वक इस प्रकार कहने लगी, "राजकुमार! चलिये हमारी स्वामिनी भोजन के लिये आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं," इतना कह वह चटपट वहां से चली गयी।

उस सखी के चले जाने पर मन्त्रिपुत्र ने राजकुमार से कहा, "देव ! देखो अब तुम्हें एक कौतुक दिखाता हूं," इतना कह उसने उस पक्वान्न में से थोड़ा सा निकालकर एक कुत्ते को दे दिया, वह खातेही मर गया। यह देख राजकुमार को बड़ा आश्चर्य्य हुआ, उन्होंने मन्त्रिपुत्र से पूछा कि कहो भाई यह क्या व्यापार है ? उसने उत्तर दिया "मैंने जो पद्मावती के सब संकेतों का अर्थ लगाय लिया इससे वह मुझको परम धूर्त्त समझती है और सोचती है कि जब लों यह रहेगा राजकुमार मुझ में एकाग्र होकर न रहेंगे, और उसे इस बात का भी खटका है कि राजकुमार इसके वश में हैं तो कहीं ऐसा न हो कि मुझे छोड़ चले जावें; इसी से मित्र ! उसने मेरे मारने के लिये विषमय अन्न भेजा है कि मैं खातेही

ठण्ढा हो जाऊँ और तुम एकान्त उसके अधीन हो जाओ। फिर यह भी प्रार्थना करता हूं, सखे! कि इस पर क्रोध मत करो यह स्त्री बड़ी चतुर प्रतीत होती है सो इसका हरण करना चाहिये, सुनो इस विषय में जैसी युक्ति मैं बताऊँ वैसा करो तब उसको लेकर हम दोनों अपने देश में चले चलें।"

उसका ऐसा कथन सुन राजपुत्र उसकी प्रशंसा करने लगे कि भाई तुम सचमुच बुद्धिशरीर ही हो, बुद्धि का अक्षय भण्डार तुम में भरा है। राजकुमार इस प्रकार अपने मित्र की प्रशंसा कर रहे थे कि बाहर हाहाकार सुन पड़ा, "हाय! हाय! महा अनर्थ हुआ, राजा का बालक पुत्र मर गया," इस प्रकार का कोलाहल चारों ओर होने लगा; नगर में विषाद का बसेरा हो गया।

"किसी का दुःख किसी का आनन्द," संसार का अद्भुत ढंग है; राजा का तो पुत्र मर गया जिससे समस्त नगर व्याकुल और विषस हो गया किन्तु मन्त्रिपुत्र को उससे बड़ाही हर्ष हुआ, उसने इसे अपनी मनोरथसिद्धि का द्वार समझा। बुद्धिशरीर ने वज्रमुकुट से कहा "राजकुमार! आज रात में तुम पद्मावती के घर जाओ और उसे इतनी मदिरा पिला देना कि जिससे वह अचेत हो जावे, जब वह निश्चेष्ट हो ऐसी प्रतीयमान हो कि मानो मर गयी है तब तुम एक काम करना कि त्रिशूल लालकर उसकी कटि पर दाग देना और उसके सब आभूषण लेकर उसी खिड़की से रस्सी पकड़ उतरकर सीधे यहां चले आना पीछे जो होगा मैं देख लूंगा।" इतना कह मन्त्रिपुत्र ने एक सूअर के बाल के समान पैने नोक का त्रिशूल बनवाकर राजपुत्र को दे दिया।

अब राजपुत्र काले लोहे का बना वह कुटिल और कर्कश कान्ता और वयस्य का चित्तस्वरूप त्रिशूल लेकर पद्मावती के गृह की ओर चले और पूर्ववत् वहां पहुंच गये। ठीकही है प्रभुओं को अपने शुद्धात्मा मन्त्रियों का वचन बिना विचारे मानना चाहिये, उसपर असमंजस करना ही कांटा रूँधना है। अस्तु राजकुमार अपनी प्रिया के पर्य्यङ्क पर प्रतिष्ठित हुए, वहां उन्होंने अपने परम प्रेमी और हितैषी मन्त्रिपुत्र के वचनानुसार कार्य्य आरम्भ कर दिया; पहिले पद्मावती को बहुत सी मदिरा पिलायी और जब वह मदिरा से निश्चेष्ट हो गयी तब राजकुमार उस त्रिशूल से उसकी कटि पर चिन्ह कर उसके सब गहने लेकर अपने मित्र के पास

लौट आये । तब राजपुत्र ने अपनी प्रिया के आभरण मन्त्रिपुत्र को दे वहां जो कुछ कार्य्य किया था सो सब कह सुनाया जिसे सुन मन्त्रिपुत्र ने अपना मनोरथ सफल समझा ।

प्रातःकाल होने पर मन्त्रिपुत्र राजकुमार को लेकर श्मशान की ओर चला, वहां पहुंच उसने अपना वेष तो तपस्वी का सा रचा और राजकुमार को चेला बनाया फिर उनसे कहा कि इन आभरणों में से यह मोती की माला लेकर हाट में जाओ और कहना कि मैं इसे बेंचा चाहता हूं; जो कोई मूल्य पूछे तो इतना बतला देना कि कोई लेही न सके, केवल इतनाही उद्देश्य है कि तुम्हारे हाथ में वह लोग वह माला देख लेवें । और जब पुलिस के सिपाही पकड़ें तो निडर होकर कह देना कि मेरे गुरुजी महाराज ने मुझे यह माला बेंचने के लिये दी है बस इसके अतिरिक्त तुम और कुछ न कहना ।

अच्छा अब राजकुमार मन्त्रिपुत्र की आज्ञा से माला हाथ में लिये हाट की ओर चले और सबको दिखाकर उसके बेंचने की बात कहने लगे । माला तो किसी ने न ली प्रत्युत पुलिस के सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया, क्योंकि दन्तघाटककी कन्या के आभूषणों के चोरी चले जाने की सूचना थाने में हो चुकी थीसो सिपाही लोग चोर की खोज में घूमही रहे थे। अस्तु सब उन्हें पकड़ नगराध्यक्ष के पास ले गये। नगराध्यक्ष ने उन्हें तापस के भेष में निरख उनसे पूछा, "भगवन्! यह मोतीमाला आपने कहां से चुराई, आज रात में क्या आपही ने दन्तघाटक की कन्या के आभूषण चुराये हैं?" तब तापसाकृति राजपुत्र ने उत्तर दिया,— "महाशय! मैं और कुछ तो जानता नहीं मेरे गुरुजी ने मुझे यह माला दी है और कहा है कि जाकर बेंच लाओ सो मैं बेंचने आया हूं, फिर जो हुआ सो तो आप जानतेही हैं, आपको विश्वास न हो तो चलकर मेरे गुरुजी महाराज से पूछ लें, वही इसका पूरा उत्तर दे सकेंगे।" तब नगराध्यक्ष उस तापस के पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे "हे भगवन्! आपके चेले के हाथ में यह मोतीमाला कहां से आयी?" तब उस धूर्त्त तपस्वी ने उनसे कहा "महाराज! यह एक बड़ी गुप्त बात है, एकान्त में आपसे कह सकता हूं । सब लोग तुरत हटा दिये गये, तब मन्त्रिपुत्र ने नगराध्यक्ष से कहा, "महात्मन्! बात ऐसी है कि मैं तो तपस्वी

ठहरा सदा अरण्य में इधर उधर भ्रमण करता फिरता हूं, सो आज रात घूमता घामता मैं यहां श्मशान में पहुंचा और यहीं टिक रहा। इसके उपरान्त मैं क्या देखता हूं कि चहुँओर से योगिनीचक्र उमड़ आया, उनके बीच में एक योगिनी ने राजपुत्र को लाकर उनका हृदय विदीर्ण कर हृत्कमल भैरवजी को चढ़ा दिया। मैं उस समय बैठा जप करता था और वह योगिनी मद से छकी थी सो मेरी माला छीनने चली उस काल में उसके विकराल मुख की आकृति मुझसे वर्णन नहीं की जाती। जब मैंने देखा कि यह और किसी उपाय से निवृत्त न होगी तब मन्त्र से चटपट त्रिशूल उत्तप्त कर उसके कटिदेश पर चिन्ह कर दिया और उसके कण्ठ स यह मोती की माला निकाल ली। फिर मैंने सोचा कि यह माला तपस्वियों के किस काम की, इसीसे विक्री के लिये भेज दी।

उस तपस्वी का ऐसा कथन सुन नगराध्यक्ष ने राजा से ज्यों का त्यों कह सुनाया, सुनकर राजा ने भी यह समझा कि यह मोतीमाला तो दन्तघाटक की कन्या ही की है सो उन्होंने एक दूती भेजी कि जाकर देख आवे कि उसकी कटि पर त्रिशूल का चिन्ह है या नहीं। दासी विश्वस्त थी, उसने आकर कहा कि महाराज बात सत्य है सचमुच उसकी कटि पर त्रिशूल का चिन्ह विद्यमान है। बस सुनतेही राजा को निश्चय हो गया कि इसी दुष्टा ने मेरे बच्चे के प्राण लिये हैं। सो वह (मन्त्रिपुत्र) तपस्वी के निकट स्वयं गये और हाथ जोड़ बड़ी विनती कर बोले—"महाराज कहिये इस दुष्टा को क्या दण्ड दिया जाय ?" (मन्त्रिपुत्र) तपस्वी ने कहा "राजन् ! इसे नगर से निकाल दीजिये।" बस तत्क्षण पद्मावती नगर से निकलवा दी गयी और उसके माता पिता रोते और बिलबिलाते रह गये कुछ करते धरते न बना।

जब पद्मावती नगर से निकलवाकर जंगल में छोड़वा दी गयी तब वह बड़ी ही उद्विग्न हुई किन्तु यह सोचकर कि मन्त्रिपुत्र ने मेरी प्राप्ति का यह उपाय रचा है, उसने अपना शरीर त्याग न किया।

सायङ्काल होने पर मन्त्रिपुत्र और राजकुमार तापस वेश त्याग दो अश्वों पर चढ़ वहीं आ पहुँचे जहां पद्मावती शोकमग्न बैठी थी। बहुत कुछ समझा बुझा घोड़े पर चढ़ा वे उसे अपने देश को ले गये। अब राजपुत्र वज्रमुकुट सब शोक सन्ताप त्याग अपनी प्रिया पद्मावती के सङ्ग आनन्दपूर्वक रहने लगे।

उधर पद्मावती के पिता का सन्ताप दिनोदिन असह्य होता चला उसने सोचा कि मेरी बेटो को हिंसक जन्तु खा गये होंगे—हाय ! मैं कैसा अभागा हूं। इसी शोक से वह दुखिया यमपुरी का पथिक हो इस लोक से चल बसा, उसकी भार्या भी पति के संग सती हो गयी।

इतनी कथा सुनाय बैताल ने राजा से पूछा कि कहिये तो महाराज ! इन दोनों के मरने का पातक मन्त्रिपुत्र को हुआ कि राजपुत्र को अथवा पद्मावती को हुआ ? आप बुद्धिमानों में बड़े श्रेष्ठ गिने जाते हैं इसीसे आपसे यह पूछ रहा हूं कृपा कर मेरा यह संशय दूर कीजिये। राजन् ! यदि जान बूझकर आप मुझसे ठीक ठीक न कह देंगे तो आपका सिर चूर २ हो जायगा।

बैताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा त्रिविक्रमसेन जो बड़े ज्ञाता थे शाप के भय से बोले, "योगीश्वर ! इसमें क्या सन्देह हो सकता है यह तो प्रत्यक्ष बात है; उन तीनों में से कोई भी पातकी नहीं हुआ किन्तु राजा कर्णोत्पल को यह पाप लगा। इतना सुन बैताल फिर बोला कि उस राजा को कैसे पाप लगा, कारण तो वे तीनों हुए। यह तो बड़ेही आश्चर्य्य की बात है; भला हंस तो शालि खा जाँय और दोष लगे कौवों पर ! तब राजा फिर बोले कि उन तीनों का दोष कुछ भी नहीं क्योंकि मन्त्रिपुत्र ने जो कुछ किया वह अपने स्वामी का कार्य्य किया, उसे पातक क्यों लगे ! और राजपुत्र तथा पद्मावती का भी दोष नहीं, वे दोनों तो कामाग्नि से सन्तप्त हो रहे थे, अपनी आग बुझायाही चाहें; स्वार्थसाधन में तत्पर होने से वे दोनों निर्दोष ठहरे; फिर राजा कर्णोत्पल कैसे कि इसका तत्व न निकाल सके, धूर्त्तों की धूर्त्तता का कुछ भी पता उन्हें न लगा और उन्होंने बिना विचारे ऐसा न्याय कर दिया इसलिये वही दोषी ठहरे।

छन्द।

या भांति दै उत्तर उचित नृप मौन निज तोर्‍यो जबै।
नृकलेवरान्तरगत बेताल जु दार्ढ्य परखन हित तबै॥
ता कन्ध ते चट उतरि कै नहिँ जानिये कित चलि गयो।
निष्कम्प भूपति रह्यो, मन महँ लेन पुनि ठानत भयो॥

नवां तरङ्ग ।

(दूसरा वैताल)

अब राजा त्रिविक्रमसेन उस वैताल को लाने के लिये फिर उस अशोक वृक्ष के समीप गये, वहां पहुँचकर चिता के प्रकाश से क्या देखते हैं कि वह शव धरती पर पड़ा कुछ भुनभुना रहा है; बस मृत देह में स्थित उस वैताल को कन्धे पर उठाकर राजा चुपचाप ले चले, और अबकी वार कुछ शीघ्र २ चलते थे कि झटपट उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच जावें। तब कन्धे पर से वह वेताल फिर महीपति से कहने लगा—"राजन् ! आप व्यर्थ क्लेश में पड़ गये हैं, यह एक बड़ा अनुचित व्यापार आपको सौंपा गया है, अच्छा सुनिये आपके चित्तविनोदार्थं एक कथा सुनाता हूं कि मार्ग आनन्द से कट जाय !"

श्री यमुनाजी के किनारे ब्राह्मणों का ब्रह्मस्थल नामक एक देश है, वहां वेद-वेदाङ्ग पारग अग्निस्वामी नामक कोई ब्राह्मण रहता था। उसके एक कन्या हुई जिसका नाम उसने मन्दारवती रक्खा। उस नवीन और अमूल्य लावण्यमयी कन्या को बना कर ब्रह्मा अपनी पूर्वकृति अर्थात् अप्सराओं की सृष्टि से बहुत लजाये।

जिस समय वह कन्या यौवनावस्था को प्राप्त हुई, उसी काल में तीन ब्राह्मण-कुमार सब गुणों के आगर कुल मर्य्यादा में बराबर कान्यकुब्ज देश से वहां आये। उनमेंसे प्रत्येक ने ब्राह्मण से उसकी कन्या की याचना की और कहा कि प्राण जांय तो जांय पर जीते जी किसी दूसरे से इसका विवाह न होने देंगे। उसके पिता ने उनमेंसे किसी को भी वह कन्या न दी, उसको इस बात का भय हुआ कि यदि एक के साथ इसका विवाह कर देता हूं तो दूसरे दोनों व्यर्थही मारे जावेंगे, इस से वह कन्या क्वारीही रह गयी। वे तीनों ब्राह्मणकुमार चकोर की भांति उसका चन्द्वदन निरखते वहीं रहने लगे, रात दिन उसका मुख निरीक्षण ही मानो उनका काम हुआ।

एक समय ऐसा हुआ कि मन्दारवती अकस्मात् ज्वराक्रान्त हुई, अनेक उपाय किये गये पर ज्वर अच्छा न हुआ, वह प्राणके संगही गया। इस दुर्घटना से उन

तीनों ब्राह्मणकुमारों की जो दशा हुई सो वर्णनातीत है। अस्तु किसी प्रकार छाती पर पत्थर रख उन्होंने अपना शोक दबाया और बांधबूंध ले जाकर उसे श्मशान पर जलाय दिया। उनमेंसे एक तो वहीं झोपड़ी बनाय उसकी राखी बिछाय रहने लगा और मांग यांचकर अपने दिन बिताता। दूसरा उसकी हड्डियां चुन गङ्गाजी में प्रवाह करने चला और तीसरा यगी हो देश २ घूमने लगा।

वह तपस्वी घूमताघामता एक दिन वक्रोलक नामक किसी गांव में पहुँचा वहां अतिथि हो किसी ब्राह्मण के घर में गया। गृहस्वामी ब्राह्मण ने उसका यथावत् आदर सत्कार किया और उसे भोजन के लिये उत्तमोत्तम व्यञ्जन दिये। जब कि वह ग्रास उठानेही को था कि वहां एक बालक रोने लगा, कितना भी मनाया गया पर वह किसी प्रकार मानताही नहीं था, तब तो ब्राह्मणी को बड़ा क्रोध आया, उसने उसे उठाकर दहकती आग में झोंक दिया गिरतेही वह सुकुमार बच्चा जलकर भस्म हो गया। यह नृशंस व्यापार देख उस अतिथि से न रहा गया, वह रोमाञ्चित हो उठा और कहने लगा, "हा! बड़े कष्ट की बात है, मैं कहां से आज इस ब्रह्मराक्षस के घर में आ पड़ा! यह मूर्त्तिमान् पाप अन्न अब न खाऊँगा।" उसका ऐसा वचन सुन वह गृहस्थ बोला, "भाई तुम यह क्या कह रहे हो, कुछ चिन्ता न करो, देखो मैं अपने पढ़े तथा सिद्ध मन्त्र की मृतसञ्जीवनी शक्ति तुम्हें दिखाता हूं।" इतना कह उसने मन्त्रों की पोथी निकाल एक मन्त्र पढ़ा, और थोड़ी सी धूलि अभिमन्त्रित कर भस्म पर फेंकी कि उस में से जीता जागता वह बालक निकल उठा। तब उस ब्राह्मण तपस्वी का सन्देह दूर हुआ और उसने भोजन किया। वह गृहस्थ भी खूंटी पर पोथी रख भोजनादि सम्पादित कर उसी के साथ सो रहा।

उस मृतसञ्जीवनी पोथी के अवलोकन-कालही से उसके पेट में मेंडक उछलने लगे, वह यह सोचने लगा कि कब घात लगे और पुस्तक ले भागूं और चलकर अपनी प्राणवल्लभा को जिलाऊँ। अस्तु, खा पी के वह गृहस्थ तो सो रहा, पड़ते ही उसे नींद आ गयी, पर इस विरही तापस को निद्रा कैसे आवे। अवसर पाय वह धीरे से उठा, और शङ्कित चित्त से उस खूंटी के पास पहुँचा जहां पोथी रक्खी थी, धीरे से पोथी उतार वहां से निकल ताबड़तोड़ भागा और रात दिन बराबर

चलता २ वहां पहुँचा जहां श्मशान में उसको प्रिया जलायी गयी थी । उसी समय वहां वह भी आ पहुंचा जो हड्डियां चुनकर गङ्गा में डालने गया था । तब इसने उससे तथा उस पहिले से जो कि उस कन्या के भस्म पर शयन करता था, यों कहा "यह झोपड़ी ओपड़ी हटाओ यहां से, मैं एक ऐसा मन्त्र सीख आया हूं कि उसके प्रभाव से अपनी प्रिया को जिला उठाता हूं ।" इतना उन दोनों से कह उस तापस विप्र ने हठपूर्वक झोपड़ी गिरवा दी और पोथी खोल वह मन्त्र पढ़ा, मन्त्र पढ़कर ज्योंही कि उसने धूली भस्म पर फेंकी कि चट मन्दारवती उस में से जीती उठ खड़ी हुई । जिस प्रकार अग्नि में पड़ने से काञ्चन की द्युति और बढ़ जाती है वैसेही मन्दारवती की शोभा अब एक अद्वितीय हो गयी ।

एक तो वह स्वयं रतिस्वरूपा थी दूसरे अब सौन्दर्य्य में वृद्धि हो गयी तो फिर क्या पूछना है । वे तीनों ब्राह्मणकुमार उसी के हेतु इतने दिनों से लालायित थे भला अबकी क्या पूछना है सो तीनों कामबाण से विद्ध हो परस्पर कलह करने लगे । एक बोला कि यह मेरीभार्य्या है क्योंकि मैंने इसे निज मन्त्रबल से जिलाया है; दूसरे ने कहा कि मैं जो इसकी हड्डियां तीर्थ में फेंक आया उसी के प्रभाव से यह जो उठी है बस यह मेरी पत्नी है; तीसरे ने कहा कि मैंने भस्म की रक्षा कर तपस्या बल से इसे जिलाया है सो यह मेरी गृहिणी है, तुम दोनों कौन हो ।

इतनी कथा सुनाय बैताल बोला कि राजन् ! अब इस विवाद के निर्णय में आपही समर्थ हैं, कहिये वह किसकी भार्य्या हुई ? आप जानकर यदि इसका उत्तर न देंगे तो आपका सिर कट जायगा ।

वैताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा बोले, "सुनो, जिसने इतना क्लेश उठाय, मन्त्रशक्ति से उसे जिला उठाया वह तो उसके पिता को नाईं ठहरा, वह पति नहीं हो सकता; और जो हड्डियां बटोर गङ्गा में फेंक आया उसने पुत्र का काम किया इससे वह पुत्र ठहरा, बस जो भस्म की शय्या आलिङ्गन किये तपस्या में लीन था और उसकी प्रीति में फँस श्मशान में ही पड़ा रहा वही उसका पति ठहरा क्योंकि पति का जो कार्य्य गाढ़ानुरागी होना है वह उस ब्राह्मणकुमार ने सत्य कर दिखाया इससे वह मन्दारवती उसी की भार्य्या ठहरी ।

दोहा।

कूद्यो मौन महीश कर, जब किय उत्तर दान ॥
कन्धे से बैताल भो, तुरतहिं अन्तर्धान ॥ १ ॥
भिक्षु अर्थ निर्वाह हित, नृप रहे अबहुं तनात ॥
प्राण जांय तो जांय पर, धीर न छाड़त बात ॥ २ ॥

दसवां तरङ्ग।

(तीसरा बैताल)

अब राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस बैताल के लाने के लिये उसी अशोक वृक्ष के निकट गये, वहां पहुंच मृतदेह में स्थित उस बैताल को कन्धे पर उठाकर चुपचाप चलते हुये। तब बैताल उनसे कहने लगा—"राजन्! बड़े आश्चर्य्य की बात है कि रात के समय आप आ जा रहे हैं तौभी कुछ उद्विग्न नहीं होते, अच्छा सुनिये आपके मनोविनोदार्थ फिर एक कथा सुनाता हूं।"

भूमण्डल में पाटलिपुत्र नामक एक प्रसिद्ध नगर है, वहां पूर्वकाल में विक्रमकेसरी नामक एक राजा हुए थे; महीपति जैसे सम्पत्तिपूर्ण थे वैसेही गुणपूर्ण भी थे, मानो विधाता ने उन्हें रत्नों और गुणों का आकर बनाया था। उनके पास विदग्धचूड़ामणि नामक सब शास्त्र में पारङ्गत एक सुग्गा था, केवल इतनाही नहीं वह शुक दिव्यज्ञानसम्पन्न भी था, किसी कारण शापवश शुकयोनि में उसका जन्म हो गया था। उसी सुग्गे के उपदेश से राजपुत्र ने मगधदेशोद्भवा समानवंशजा राजकुमारी चन्द्रप्रभा से विवाह किया। उक्त राजपुत्री के पास सब विज्ञानों में कुशल सोमिका नाम्नी एक सारिका (मैना) थी। दोनों शुक और सारिका एकही पिंजड़े में रहते और अपने विज्ञानों से अपने स्वामी तथा स्वामिनी, राजा और रानी की सेवा किया करते।

एक समय की बात है कि सुग्गे के मनमें एक दूसरीही अभिलाषा उठी अतः उसने सारिका से कहा, "हे सुभगे! हमदोनों एकही साथ सोते बैठते और भोजन करते हैं सो यदि तुम मुझे भजतीं तो बड़ा काम हो जाता।" सारिका ने उत्तर दिया कि पुरुष बड़ेही दुष्ट और कृतघ्न होते हैं इससे मैं पुरुष का संसर्ग नहीं चाहती। यह

सुन सुग्गा बोला, "तुम यह क्या कहती हो? पुरुष दुष्ट नहीं होते प्रत्युत स्त्रियां बड़ी कठोर, दुष्टा और नृशंस होती हैं।" जब शुक ने ऐसा प्रत्युत्तर दिया तब तो दोनों में विवाद होने लगा। अन्त में उन दोनों पक्षियों ने यह विचार सिद्ध किया कि अब इसका निर्णय महाराज से कराना चाहिये क्योंकि वे न्याय चुकाने में अति प्रवीण हैं। उनमें यह पण भी ठहरा कि यदि सुग्गा हारे तो मैना का दास हो और जो मैना हारे तो सुग्गे की भार्य्या बने। अस्तु दोनों का विवाद राजपुत्र के समक्ष उपस्थित हुआ। वह उस समय अपने पिता के न्यायभवन में विराजमान थे सो पहिले उन्होंने सारिका से प्रश्न किया कि अच्छा तूही पहिले बता कि पुरुष कैसे कृतघ्न होते हैं? तब सारिका अपने पक्ष की पुष्टि के हेतु पुरुषों के दोष-प्रकाशनार्थ यह कथा कहने लगी। "सुनिये महाराज, मैं एक कथा कहती हूं उसीसे सिद्ध हो जायगा कि पुरुष कैसे कृतघ्न होते हैं।"

पृथ्वी पर कामन्दिका नामक जो एक महानगरी है उसमें अर्थदत्त नामक एक महाजन रहता था; उस बनिये के एक पुत्र हुआ जिसका नाम उसने धनदत्त रक्खा। जब धनदत्त युवा हुआ उस समय उसका पिता परलोक चल बसा। एक तो युवा अवस्था, दूसरे अचल धन, तीसरे सिर पर कोई नहीं इसलिये वह धनदत्त बड़ा उच्छृङ्खल हो गया। उसे जूए का व्यसन लगा, जिसमें उसे वैसेही बड़े २ धूर्त मिल गये जिन्होंने अल्पही काल में उसे भ्रष्ट कर डाला, सब धन उसका नष्ट हो गया, कौड़ी का तीन हो जाने पर कोई उससे बात भी न पूछे। ठीक है, दुर्जनों की संगति सब व्यसनों की जड़ है, जब दुर्जन संगतिही हुई तब मान मर्य्यादा धन सम्पत्ति कहां! महात्मा तुलसीदासजी ने क्याही ठीक कहा है कि—

"रहै न नीचमते गरुआई।"

पास में कौड़ी नहीं तो कौन बात पूछे, अब उस बनिये के लड़के की बड़ी दुर्गति हुई, लाज के मारे वह अपना मुंह भी किसी को न दिखावे इससे और भी कठिनता पड़ी सो वह अपना देश त्याग परदेश घूमने को निकला। चलते चलते चन्दनपुर नामक नगर में पहुँचा, वहां भूख से अति पीड़ित हो कुछ भोजन पाने की आशा से एक वणिक् के गृह में गया। गृहस्वामी के पूछने पर विदित हुआ कि यह भी बनिया है सो दैवयोग से उसने उसे बड़े आदर मान से ग्रहण किया

और रत्नावली नाम्नी अपनी कन्या उसे व्याह दी तथा यौतुक में बहुत सा धन उसे दिया। अब धनदत्त अपने श्वसुर के घर में आनन्द से रहने लगा।

व्यसनी तो वह था ही, फिर इधर धन भी बहुत मिला कि कुछ कहा नहीं जाता, सुख पड़ने से वह दुर्गति अब भूल गयी और उसका मन कुलबुलाया; उसकी इच्छा हुई कि अब देश चलना चाहिये। उस दुष्ट ने अपने ससुर को इधर उधर की कुछ उलटी सीधी सुझा दी जिससे उसने इसे जाने की आज्ञा दे दी। अस्तु अब वह दुष्ट उस बनिये की एकमात्र सन्तान उस कन्या को, जो नखशिख पर्य्यन्त भूषणों से सुसज्जित थी, लेकर अपने नगर की ओर चला, पिता ने अपनी कन्या के प्रेमवश अपनी एक विश्वस्त बुढ़िया दासी को भी उसके संग भेज दिया। अब तीनों वहां से चले।

चलते २ जब कुछ दूर निकल गये तब एक बड़ा भयङ्कर घोर जङ्गल पड़ा, तहां उसने अपनी भार्य्या से कहा कि प्रिये! यहां चोर और डाकुओं का भय है सो अपने आभूषण उतार लो और मुझे दे दो कि मैं बांधकर अपने पास रख लूं। इतना कह उस दुष्ट धनदत्त ने अपनी पत्नी के समस्त आभरण उतरवाकर अपने पास रख लिये। अब वह पापिष्ठ इस बात की चिन्ता में लगा कि क्योंकर इन दोनों की जान मारूँ। हा! देखो द्यूत तथा वेश्यादि के व्यसनवालों का हृदय कैसा दुष्ट होता है! हा! इन कृतघ्न पुरुषों का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वज्र भी उसके समक्ष सिर नीचा कर लेता है! शोक!!

आगे चलते २ एक मँड़ार पड़ा बस उस दुष्ट ने अपनी गुणवती रत्नावली भार्य्या को उस बुढ़िया के सहित उसी मँड़ार में झोंक दिया और फेंककर अपने देश की राह पकड़ी। गिरते ही बुढ़िया तो ठांवही शान्त हो गयी किन्तु रत्नावली लता गुल्मों में अँटक रही इससे बच गयी उसकी आयु अभी कुछ बाकी थी उसी के भोग के लिये उसके प्राण न निकले। अस्तु लता गुल्मों के सहारे से किसी प्रकार कराहती २ ऊपर आयी, अङ्ग तो चत विचत और चूर २ होही गये थे प्राण मानो बच गये थे सो सुस्ता उस्ता कर जब कुछ चैतन्य हुई तब उठकर वहां से चली और जिस मार्ग से आयी थी उसी मार्ग से पूछती पाछती अपने पिता के घर पहुँची। उसको अकस्मात् आयी तथा चत विचत देख माता पिता पूछने लगे कि

बेटी यह क्या बात है? तब वह सती साध्वी रोती हुई इस प्रकार कहने लगी। "डाकुओं ने मार्ग में हमलोगों को लूट लिया, मुझे और बुढ़िया को मँडार में झोंककर वे दुष्ट मेरे पति को बांध ले गये, बुढ़िया तो गिरतेही मर गयी और मैं कर्म्मभोग भोगने को जीती बच गयी। उसी मार्ग से एक बटोही आ रहा था, मेरा कराहना और रोना सुन वह वहां रुक गया, उसे दया आयी सो उस कृपालु ने मुझे उसमेंसे निकाला। अब मैं किसी प्रकार दैवसंयोग से जीती जागती यहां पहुँची हूं, न जानूं उन दुष्टों ने उनकी क्या गति की होगी।" उसका इस प्रकार कहना सुन माता पिता ने बहुत कुछ शान्ति दी और समझाया बुझाया; तब रत्नावली सती अपने पिता के घर में रहने लगी पर उसका चित्त सदा प्राणनाथ ही में लगा रहता था।

उधर धनदत्त अपने नगर में पहुँचा और पत्नी के गहने बेंच २ जुआ खेलने लगा। भला जुआ खेलने में धन कहां ठहर सकता है, अति अल्पकालही में सब उड़ गया, तब वह दुष्ट अपने मन में इस प्रकार की चिन्ता करने लगा—"चलो, फिर ससुराल चलूं, ससुरजी से कुछ धन फिर झँस लाऊँ; उनसे कह दूंगा कि आपकी पुत्री मेरे घर में है।" इस प्रकार की भावना कर वह ससुराल को चला, चलता २ कुछ दिनों में वहां जा पहुँचा; वह घर से कुछ दूरही रहा कि उसकी पत्नी ने उसे देखा, देखतेही वह साध्वी दौड़ी और उस पतित के चरणों पर गिरकर विलपने लगी। पति कैसा भी दुष्ट क्यों न हो पर साध्वी स्त्रियों के पक्ष में वह देवता सा पूज्य है, उनका मन कभी विकार ग्रहण नहीं करता। देखिये पतिव्रता के धर्म्म के विषय में गोस्वामी तुलसीदासजी क्या कहते हैं—

वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पतिकर किये अपमाना। नारि पाव यमपुर दुख नाना॥
एकइ धरम एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥
बिनु श्रम नारि परमगति लहई। पतिव्रत धरम छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई॥

बस इसी पातिव्रतरूपी पैने आरे पर सुगमता से चलकर उस साध्वी रत्नावली ने पतिकृत वह विषम अपकार कुछ न गिना प्रत्युत उसके अपराध छिपाने के हेतु

मिथ्या भाषण का पाप अपने सिर पर ओढ़ लिया। पुन: जब उस पतित के दर्शन हुए तब देवता समझ वह दौड़कर उसके चरणों पर गिर पड़ी।

वह तो रत्नावली को मृतक समझ चुका था और बात बनाकर ससुर को फँसने आया था किन्तु यहां रत्नावली जीती जागती मिली इससे अपना पाप स्मरण कर वह पापी थर.२ कांपने लगा। पति की ऐसी दशा देख साध्वी रत्नावली बोली—"प्राणनाथ! आप कुछ चिन्ता न करें, भय की कोई भी बात नहीं है, मैंने ऐसा २ कह रक्खा है," इतना कह वह सब कथा सुना गयी जैसी बात, डाकुओं के द्वारा मँड़ार में गिराने और पति के बांध ले जाने की झूटमूठ अपने माता पिता से कह चुकी थी। यह सुन वह दुष्ट अति हर्षित हुआ और उसके साथ २ ससुर के घर आया। उसे देखतेही सास ससुर मारे आनन्द के फूले न समाते, उन्होंने भाई बन्धुओं को बुलाके उस दिन बड़ा भारी उत्सव मनाया कि अहो भाग्य, डाकुओं के हाथ से यह जीता बच आया है। अब वह धनदत्त ससुर की सम्पत्ति का उपभोग करता हुआ अपनी पत्नी रत्नावली के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

क्रूर अपनी क्रूरता छोड़ता ही नहीं चाहे वह इन्द्रासन पर क्यों न अधिष्ठित हो जाय; धनदत्त परम दुष्ट और क्रूर था। हाय! एक दिन रात्रि के समय उस दुष्ट ने ऐसा नृशंस कार्य्य किया कि कहते नहीं बनता; ऐसे पतितों की कथा का उपकथन भी पातक है पर किया क्या जाय कथा के अनुरोध से कहना ही पड़ता है। उस दुष्ट ने अङ्क में सोई हुई भार्य्या को मार डाला और उसके समस्त आभरण ले लिये। इतना नृशंस कार्य्य कर वह पापी चुपचाप अपने देश को भाग गया।

इतनी कथा सुनाय सारिका बोली कि महाराज! पुरुष ऐसे नृशंस होते हैं और उपकार के पलटे अपकार करते हैं।

सारिका की कही यह कथा सुन राजपुत्र ने शुक से कहा कि अब तुम सुनाओ तुम्हारा वक्तव्य क्या है? तब सुगा बोला, "देव! स्त्रियों का साहस बड़ा भयङ्कर होता है, स्त्रियां अति दुश्चरित्रा और पापिनी होती हैं, उनका कभी विश्वास नहीं करना। सुनिये इसी विषय में एक कथा आपको सुनाता हूं।"

हर्षवती नाम्नी एक नगरी है, वहां सब बनियों का मुखिया बहुकोटीश्वर

धर्मदत्त नामक एक वणिक् था । वसुदत्ता नाम्नी उसकी कन्या थी, रूप में जिसके समान कोई ललना उस समय थी ही नहीं । पिता अपनी पुत्री को प्राणों से बढ़कर मानता था । जब वह कन्या युवती हुई तब उसके पिता ने अति स्वरूपवान् तथा गुणवान् वर खोजा, ऐसा कि जिसके सौन्दर्य्य का निरीक्षण ललनायें यों करतीं कि चकोरी जैसे चन्द्रमा को निरखा करती । वह साधुस्वभाव वणिक्पुत्र आर्य्यों से सेवित ताम्रलिप्ती नगरी का रहनेवाला, नाम उसका समुद्रदत्त था । धर्म्मदत्त ने अपनी कन्या वसुदत्ता का विवाह उसी के साथ कर दिया ।

एक समय की बात है कि वसुदत्ता का पति अपने देश गया था और वह अपने पिता के घर रही । उस वणिक्सुता की दृष्टि किसी पुरुष पर पड़ गयी जो कि युवा और सुरूपवान् भी था, देखतेही वह कामवाण से विद्ध हो अति व्याकुल हो गयी, सो वह गुप्तरूप से सखी के द्वारा उसे बुलवाकर उसके साथ रमण करने लगी । अब यह नित्य का काम ठहरा, सदा वह गुप्तभाव से रात्रि के समय उसे बुलवा भेजती और रातभर उस कान्त के संग रतिसुख भोगा करती । यद्यपि रातभर उस पुरुष के अङ्क में लगी सोई रहे तथापि दिन में उसे चैन नहीं दिन भर उसी की चिन्ता में मग्न रहती । देखनेवाले तो यही समझते ही रहे कि यह अपने पति के विरह से व्यथित और चिन्तित बनी रहती है ।

एक दिन ऐसा हुआ कि उसका पति अपने देश से आया वसुदत्ता के माता पिता उसे देख बड़े आनन्दित हुए, उस दिन बड़ा उत्सव मनाया गया । दिन भर बड़े आनन्दमङ्गल से बीता, रात हुई तब माता ने वसुदत्ता को उसके पति के निकट भेजा । वसुदत्ता के पक्ष में तो आज जगत् निरालोक है, उसका आत्मा जल रहा है, पति अपना है पर सोहाता नहीं क्योंकि वहां तो यार की चिन्ता थी । जाने को तो वह गयी पर पलङ्ग पर दूसरी ओर मुंह कर सो रही । पति ने बहुत कुछ उपाय किये पर सब निष्फल हुये; अन्त में दिन की थकावट तथा मदिरा के प्रभाववश वह भी निद्रित हो गया ।

जब सब लोग खा पीकर सुचित्त हो सो गये तब उसी रात वसुदत्ता के घरमें सेंध फोड़ एक चोर पैठा । वसुदत्ता को चोर तो न देख पड़ा किन्तु सेंध देख उसके मन में यह भावना हुई कि "बिनु औषधहिँ व्याधि बिधि खोई ।"

सो वह चट उसी मार्ग से निकली और सीधे उस स्थल पर पहुँची जहां यार से मिलने का संकेत कर दिया था । उसके निकल जाने पर विघ्न समझ वह चोर अपने मन में विचारने लगा कि जिन आभूषणों के लोभ से मैं यहां आया उन्हें पहिने पहिनाये तो यह यहां से निकल गयी; ऐसी घोर निशा में यह कहां जा रही है, अच्छा चलो देखूं यह कहां जाती है इतना सोच वह चोर उसके पीछे पाछे चला ।

वसुदत्ता की सखी भी बाहर हाथ में माला फूल इत्यादि सौम्य पदार्थ लेकर प्रतीक्षा करही रही थी और वह उक्त स्थान को भलीभांति जानती थी जहां दोनों का समागम होनेवाला था । अब आगे २ सखी सहित वसुदत्ता चली और पीछे २ वह चोर चला । चलती २ वह बाहर अति समीपही एक उद्यान में पहुंची जहां वह यार पहिलेही से आया हुआ था। वहां पहुंचतेही उस ललना की औरही दशा हो गयी उसके मनोरथ का सर्वनाश हो गया, हाय ! हाय ! महा अनर्थ ! ! देखती क्या है तो यार पेड़ पर लटक रहा है । सङ्केत के अनुसार वह तो ठीक समय पर वहां आया पर नगर के रक्षकों ने उसे चोर समझ पकड़ के फाँसी लगाय वृक्ष पर लटकाय दिया, वह मरा हुआ लटक रहा था । तब तो वसुदत्ता के मानो प्राण निकल गये, "हा ! मैं मारी गयी, ऐसा कह अति विकल हो धड़ से पृथ्वी पर गिर पड़ी, फिर विलख २ सिर पीट २ रोने लगी । जब कुछ धैर्य्य हुआ तो उस मृतक को पेड़ पर से उतार लाई और बैठाकर उसके शरीर में चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य लगा के माला पहिनाय दृढ़ आलिङ्गन कर कामताप बुझाने लगी। कामदेव के प्रताप से उसका ज्ञान तो शून्यही हो गया था वह उसे जीवित ही समझतीथी सो उसका मुख उठाकर ज्योंही चुम्बन करने लगी कि त्योंही निर्जीव उस परपुरुष में बेताल आ घुसा उसने दांतों से उसकी नाक काट ली । तब तो वह विह्वल हो उसे छोड़ हट गयी पर फिर उसके पास जाकर निरखने लगी कि कदाचित् प्यारे जी गये हों; पर वहां जीव कहां! बैताल था, सो एक कौतुक कर चला गया। अब तो वह अति भयभीत हुई कि अब क्या करूँ, अस्तु रोती हुई धीरे २ घर को लौटी ।

चोर तो छिपा २ सब कार्य्य निरख रहा था वह भी पीछे २ चला आता था, वह तस्कर अपने मन में विचारता था कि अहो ! देखो तो इस पापिनी ने कैसा

कार्य किया । अहो ! स्त्रियों का हृदय घोर अन्धकार से छाया रहता है, बड़ा भारी अन्धकूप सा होता है जिसमें बिना विचारे लोग गिरकर प्राणविसर्जन करते हैं। अच्छा जो कुछ इसने किया सो तो देखा अब देखा चाहिये क्या करती है। यह विचार वह तस्कर उसके पीछे २ उसके घर लों गया।

वसुदत्ता उस घर में पहुंची जहां उसका पति निश्चेष्ट सो रहा था। तब वह दुष्टा चीख मार चिल्लाकर रो २ कहने लगी—"अरे ! बचाओ ! बचाओ ! ! इस दुष्ट ने मेरी नाक काट ली, अरे मैंने इसका क्या बिगाड़ा था, यह पति है कि शत्रु है। इस प्रकार वह बार २ कह चिल्ला २ रोने लगी कि उसका आक्रन्दन सुन, पति, पिता तथा कुटुम्ब के लोग जाग पड़े । पिता आके देखे तो बेटी की नाक कटी है, यह देख उसे बड़ाही क्रोध आया, उसने कहा कि यह बड़ा दुष्ट है भार्य्याद्रोही है, भला इस अबला ने इसका क्या बिगाड़ा था कि इस निगोड़े ने इसकी नाक काट डाली। इतना कह उसने उसे बँधवा डाला। वह विचारा इस व्यापार से दङ्ग हो गया कि हाय राम यह क्या है ! यह मैं किस बिपति में पड़ा, इस प्रकार सोचता रहा कुछ बोल न सका, उसे कठमुर्री लग गयी कि मैंने कुछ किया तो हैही नहीं इसकी नाक कसे कटी। अब सब लोग घर के उसे चहुँओर से गालियां सुनाय रहे हैं और वह कुछ न बोलता । ऐसे कोलाहल में चोर को भी अवसर मिला वह भी वहां से खसक गया, इतने में रात भी बीत गयी।

अब प्रातःकाल वह वणिक् अपनी नककटी उस बेटी तथा उस दामाद को लिये राजा के न्यायालय में पहुंचा और निवेदन कर कहने लगा—"धर्म्मावतार! यह मेरे जामाता हैं और यह मेरी कन्या है, इस दुष्ट ने व्यर्थही इस बिचारी की नाक काट डाली।" राजा ने भी यही न्याय किया कि यह दारद्रोही है अतः दण्ड्य है। वह दीन अपनी निरपराधता के प्रमाण देताही रह गया पर राजा ने एक न सुना और आज्ञा दे दी कि इसका वध किया जाय ।

अब डिंडिम बजाते और उसका दोष ख्यापन करते बधिक लोग उस निर-पराध को बध्यभूमि को ले जा रहे थे कि उधर से वह चोर आया और राजपुरुषों से कहने लगा, "भाइयो ! निष्कारण इसका बध करना उचित नहीं है, इसमें एक रहस्य है राजा के पास मुझे ले चलो तो मैं सब वृत्तान्त सुनाऊँगा।" उसका

ऐसा कथन सुन वे उसे महीपति के समक्ष ले गये, तब अभय दान पाकर वह चोर रात्रि का वृत्तान्त आदि से लेकर अन्त पर्य्यन्त सुना गया। उसने यह भी कहा कि देव! यदि मेरे वचन का विश्वास न हो तो देखा जाय कि उस मृतक के मुख में (इसकी) नाक है कि नहीं। चोर का ऐसा कथन सुन राजा ने सेवकों को भेजकर तत्वानुसन्धान कराया तो चोर की बात ठीक निकली। तब राजा ने उस वणिक्पुत्र को बधबन्धन से मुक्त करवा दिया और उस दुष्टा वसुदत्ता के दोनों कान भी कटवा के उसे देश से निकलवा दिया तथा उस वणिक्पुत्र के श्वशुर और सास का सर्वस्व अपहरण करवा लिया। महीश चोर के इस व्यापार से अति सन्तुष्ट हुए सो उन्होंने उसे नगराध्यक्ष नियुक्त किया।

इतनी कथा सुनाय सुग्गा बोला कि राजन्! इस प्रकार स्त्रियां स्वभावतः विषम और दुष्टा होती हैं अतः उनका विश्वास कदापि न करना चाहिये।

सुग्गा इतना कहते ही दिव्यरूप गन्धर्व हो गया, वह चित्ररथ नामक गन्धर्व था ही, इन्द्र के शाप से सुग्गा होकर जन्मा था, अब शाप का अन्त हो गया इससे पुनः अपने रूप में होकर निज लोक को चला गया। सारिका भी तिलोत्तमा नाम्नी अप्सरा थी वह भी शापान्त हो जाने से झट अप्सरा हो आकाश को उड़ गयी। दोनों अपने लोक को सिधारे और सभा में उनका जो विवाद विद्यमान था उसका कुछ निर्णय हुआही नहीं, वह वैसाही रह गया।

इतनी कथा सुनाय वेताल फिर बोला "राजन्! आप बड़े नीतिज्ञ हैं कहिये तो सही पुरुष पापी होते हैं कि स्त्रियां पापिनी होती हैं। आप जान बूझकर यदि उत्तर न देंगे तो आपका सिर टूक २ हो जायगा।"

दोहा—स्कन्धारूढ़ वेताल के, सुनि इमि वचन नरेश॥
बाल्यो, तिय हैं पापिनी, सच जानहु योगेश॥ १॥
कबहुँ कतहुं केहि काजवश, दुराचार नर कोइ॥
पै तिरिया तिहुंकाल में, दुराचारिनी होइ॥ २॥
इतनी सुनि नृप कंधते, उतरि भज्यो बैताल॥
पुनि तेहि लावन हेत हिय, ठान्यो मत महिपाल॥ ३॥

ग्यारहवां तरङ्ग।

(चौथा वेताल)

ऐसी घोर निशा में राजा त्रिविक्रमसेन पुनः उसी अशोक वृक्ष के नीचे पहुंच, उन्हें देखतेही बैताल अट्टहास करके हँसा पर महीपति कुछ भी भयभीत न हुए प्रत्युत नर शरीरव्यापी उस बैताल को कन्धे पर उठा चुपचाप वहां से चलते हुये। अब बैताल उनको चुपचाप चलता देखं फिर बोला—"राजन्! इस कुभिक्षु के हेतु क्यों इतना श्रम उठा रहे हो, मुझे तो ऐसा भासता है कि आपका विवेक नष्ट हो गया है नहीं तो इस प्रकार प्रयास निष्फल होनें पर भी आप पुनः आयास उठाते जाते हैं। अच्छा सुनिये आपके चित्तविनोदार्थ एक कथा सुनाता हूं।"

भूलोक में शोभावती नाम्नी एक नगरी है, जो सचमुच अपने नाम की सार्थकता प्रगट करती है। उसमें शूद्रक नामक एक राजा हुए जो अपने विक्रम से प्रख्यात थे। जिसने जगत् विजयी को बन्दी किये हुए शत्रुओं की ललनाओं के निश्वास रूपी मारुत से आधूत प्रतापज्वलन सदा जलता रहा करता था (१)। राजा के धार्मिक व्यापार ऐसे अक्षुण्ण (२) थे कि वसुन्धरा उनके राजत्वकाल में राम इत्यादि भूपतिओं को भी भूल गयी।

एक समय की बात है कि मालव देश का रहनेवाला वीरवर नामक एक शूर ब्राह्मण, यह सुनकर कि राजा शूरवीरों का बड़ा सम्मान करते हैं, महीपाल के निकट सेवा के हेतु आया। उसकी पत्नी धर्म्मवती नाम्नी थी, पुत्र का नाम सत्यवर तथा कन्या का नाम वीरवती था बस इतना ही (यही) उसका कुटुम्ब था। ये तो उसके कुटुम्बी हुए, सेवक भी उसके तीनही थे, कटि में खड्ग, एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल। परिवार तो ऐसा छोटा था किन्तु वेतन मांगा उसने प्रतिदिन पांच सौ दीनार। राजा शूद्रक भी गुणज्ञ थे, आकारादि से उन्हें ज्ञात हो गया कि यह व्यक्ति शूर तो है इस हेतु उन्होंने उसको वह मुंहमागी वृत्ति (३) उसे दी।

---

(१) बन्दी किये हुए शत्रुओं की स्त्रियां चमर डोलाकर उसका प्रबल प्रतापानल सदा प्रज्वलित रखती थीं, ऐसा भाव है। (२) बाधारहित। (३) जीविका, वेतन।

यद्यपि पृथ्वीनाथ ने उसका ऐसा भारी वेतन स्वीकार कर लिया तथापि उनको इस बात का सन्देह हुआ कि इतनी अशर्फियां लेकर यह करेगा क्या; यह दुर्व्यसनी तो नहीं है कि उसमें व्यय करता हो अथवा यह पुण्य धर्म करता है। ऐसा विचार उन्होंने उसके पीछे गुप्तचर (१) नियुक्त कर दिये कि वे छिपे २ उसके समस्त व्यापार देखा करें। अब वीरवर तो अपनी दिनचर्य्या में लगा और राजदूत गुप्तरूप से उसके कार्य्यों की आलोचना करने लगे।

वीरवर की दिनचर्य्या इस प्रकार थी। वह प्रातःकाल उठकर पहिले राजसभा में जाकर महाराज को जुहार करता फिर सिंहद्वार पर जाकर खड्ग खींचे पहरा देता। यह कार्य्य वह मध्याह्न पर्य्यन्त करता। इसके उपरान्त वह अपनी वृत्ति के दीनार लेकर घर जाता और उनमें से एक सौ अशर्फियां तो पत्नी को दे देता कि भोजन की सामग्री सिद्ध की जाय; पश्चात् स्नान कर भगवान् विष्णु और शङ्कर की पूजा करता, सौ मुहरें इसमें व्यय करता; शेष दो सौ अशर्फियां ब्राह्मणों को तथा दीन दुःखियों को दान कर देता। इस प्रकार वह पांच सौ दीनारों का हिसाब प्रतिदिन लगा डालता था। इतने कार्य्य करके तब वह हवन करता तिस पीछे भोजन करता था; इतने में रात हो जाती बस अकेला अपनी तलवार लिये राजा के सिंहद्वार पर डँट जाता और पहरा देने लगता। दूतों के मुख से वीरवर की यह दिनचर्य्या सुन राजा शूद्रक अति प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए तब उन्होंने उन चारों को निवारण कर दिया और कहा अब उसके कार्य्यों के निरीक्षण करने की कोई आवश्यकता नहीं है, और उन्होंने अपने मन में यह भी समझ लिया कि यह पुरुषरत्न विशेष पूजा का (२) पात्र है।

अब कहते सुनते वीरवर के उष्णकाल बीत गया जब कि सूर्य्य का तेज अति प्रखर था; इसके उपरान्त वीरवर की ईर्षा से मानो विद्युत्‌रूपी खड्ग धारण किये मूषलधार वृष्टि करते हुए मेघ आ विराजे। घोर गर्जन के साथ मेघ रात दिन बरसते थे, ऐसे दुर्दिन में भी कर्मवीरवर अपने कार्य्य से टुक भी विचलित न हुआ। जिस प्रकार सिंहद्वार पर अविचल रूप से उपस्थित रहता था वैसाही दत्तचित्त बना रहा। राजा शूद्रक दिन के समय अपने प्रासाद से उसे देखते तो

(१) भेदुए, सेवक, दूत। (२) सत्कार का।

उसी प्रकार द्वार पर वर्त्तमान पाते, किन्तु वह एक दिन रात्रि के समय भी उसकी परीक्षा के हेतु प्रासाद पर चढ़े कि देखें इस समय भी वह उसी प्रकार अपने कार्य पर उपस्थित है या नहीं । महाराज ने ऊपर से पुकारा,—"सिंहद्वार पर कौन है ?" यह सुन वीरवर बोला, "मैं हूं पृथ्वीनाथ !" महाराज ने विचारा "अहो ! यह पुरुष बड़ा दृढ़सत्व है, वीरवर यथार्थ में वीरवरही है, मैं अवश्य इसे ऊँचे पद पर पहुंचाऊँगा," ऐसा विचार करते हुए राजा शूद्रक प्रासाद से उतरे और अन्तःपुर में जाकर सो रहे ।

दूसरे दिन जब कि घोर वृष्टि हो रही थी, काली २ घटाओं के छा जाने से अन्धकार का प्रबलप्रताप प्रसारित था, समय भी रात्रि का था तो अन्धकार के प्राबल्य का क्या पूछना । उस समय राजा शूद्रक वीरवर के सत्व की जिज्ञासा के हेतु पुनः प्रासादारूढ़ हुए और पुकार कर बोले, "सिंहद्वार पर कौन है ?" वीरवर ने उसी प्रकार सन्नद्धता से उत्तर दिया, "मैं हूं पृथ्वीनाथ !" राजा को उसके ऐसे उत्तर से बड़ा विस्मय हुआ, वह विचारने लगे कि अहो ! वीरवर का धैर्य्य बड़ाही अद्भुत है । महाराज शूद्रक इस प्रकार आश्चर्य्य करही रहे थे कि थोड़ीही दूर पर से किसी स्त्री के विलाप की आहट आयी जो विषाद के कारण विलख २ रो रही थी । राजा को उसका सकरुण विलाप सुनकर बड़ी दया आयी, वह अपने मन में विचारने लगे कि अहो ! मेरे राज्य में तो कोई ऐसा नहीं है जिस पर कोई बलात्कार कर सके, फिर ऐसा कोई दरिद्र अथवा दुःखित भी नहीं है तो यह कौन स्त्री है जो रात्रि के समय अकेली रो रही है । इतना सोच उन्होंने वीरवर को पुकारा जो अकेला पहरे पर विद्यमान था और कहा—"वीरवर ! सुनो, जाकर देख तो आओ कि कुछ दूर पर यह कौन सी स्त्री रो रही है, वह कौन है और उसके रोने का क्या कारण है सो जाकर निर्णय तो करो ।"

"बहुत अच्छा महाराज."—इतना कह वीरवर कटि में खड्ग बांध हाथ में तलवार-ले वहां से चल पड़ा । ऐसे मेघान्धकाररूपी घोर राक्षस को वह कुछ भी नहीं गिनता जिसके जाज्वल्यमान नेत्रयुग्म विद्युत्प्रकाश, और जो मूसलधार वृष्टि मानो शिला बरसाता था । ऐसी घोर रजनी में यथार्थनामा वीरवर अपने प्रभु के आदेशानुसार चला । जब वीरवर अकेला ही ऐसे घोर अन्धकार में चल खड़ा

हुआ, तो यह देख राजा शूद्रक को बड़ी करुणा आयी और साथही यह बड़ा कुतूहल भी हुआ कि चलकर देखं यह वीरशिरोमणि क्या २ करता है, सो वह हर्म्यपृष्ठ से उतरे और तलवार ले अकेले चुपचाप उसके पीछे २ छिपे २ चले।

वीरवर सीधे उसी ओर चला जिधर से रोने की ध्वनि आ रही थी, चलते २ वहां पहुँचा, जहां नगर के बाहर एक सरोवर था; वहां क्या देखता है कि बीच तलाव में एक स्त्री बिलख २ रो रही है "हा शूर! हा कृपालो! हा त्यागिन्! तुमसे रहित होकर मैं क्योंकर रह सकूंगी!" वीरवर ने, कि जिसके पीछे २ महाराज भी वहां पहुँच गये थे, बड़े आश्चर्य से उस स्त्री से पूछा, "भगवति! आप कौन हैं और किस हेतु इस प्रकार बड़ी करुणा से विलाप कर रही हैं?" तब वह स्त्री इस प्रकार उत्तर दे बोली—"वत्स वीरवर! मैं वसुन्धरा हूं; आजकल मेरे पति राजा शूद्रक बड़े धर्म्मात्मा हैं; परसों उक्त राजा की मृत्यु हो जावेगी सो मैं ऐसा दूसरा राजा कहां पाऊँगी इसीसे रो रही हूं। उनका शोच कर जब मैं अपनी ओर दृष्टि करती हूं तो मुझे हठात् रुलाई आ जाती है, भला ऐसे महीपति का वियोग मैं कैसे सह सकती हूं। पुत्र! इसी विरहानल से मेरा आत्मा सन्तप्त है, बस विलाप का यही हेतु समझो।" इतना सुनतेही वीरवर बड़ा खिन्न हुआ पर अपना शोक सम्भाल उसने फिर पूछा, "देवि! तो ऐसा भी कोई उपाय है कि जगत् के रक्षक शिरोमणि हमारे प्रभु की मृत्यु न हो।" यह सुन धरित्री बोली, "हां पुत्र! एक उपाय तो है, और अकेले तुमसे ही वह हो सकता है।" वसुधा की ऐसा वचन सुनतेही वीरवर बोला कि माता तो शीघ्र बताओ, मैं अभी उसे सिद्ध करूँ, भला मेरे प्राण और किस काम में आवेंगे। यह सुन पृथ्वी बोली "तुम्हारे समान स्वामिभक्त दूसरा कौन वीर है, सुनो मैं इसकी शमन का उपाय बतलाती हूं। वत्स! राजभवन के समीपही महाराज ने जो चण्डिका की मूर्त्ति स्थापित कियी है, जो कि राजकुल की अधिष्ठात्री देवी हैं, उन्हीं को यदि तुम अपना पुत्र सत्त्ववर उपहारस्वरूप चढ़ाओ तो राजा न मरें, प्रत्युत एक सौ वर्ष और जीवेंगे। यदि तुम आजही यह काम सिद्ध कर डालो तो अच्छी बात है नहीं तो तीसरे दिन उनको मृतक जानना।" पृथ्वी देवी की ऐसी उक्ति सुन वीरवर ने उत्तर दिया, "मातः! मैं अभी जाकर यह कार्य्य सम्पन्न करता हूं।" "तुम्हारा

कल्याण हो,"—इतना कह वसुधा देवी अन्तर्धान हो गयीं। उन दोनों की यह सब बात राजा शूद्रक छिपे २ सुन रहे थे।

राजा शूद्रक अपने सेवक वीरवर की चर्य्या के अवलोकनार्थ उसके पीछे लगे थे, और वीरवर अपने कार्य्य में व्यापृत था, भगवती वसुन्धरा का उतना कहना सुन वह झपटा हुआ अपने घर पहुँचा और अपनी पत्नी धर्म्मवती को जगाकर उससे कहने लगा कि ऐसा २ भगवती धरित्री का आदेश है कि राजा के बचाने के लिये अपने पुत्र का उपहार चढ़ाओ तो महाराज और सौ वर्ष जीवेंगे। धर्म्म-परायणा धर्म्मवती पति का ऐसा वचन सुन बोली,—"नाथ! प्रभु का जिसमें कल्याण हो वह तो हमें अवश्य करना चाहिये सो आप बच्चे को जगाकर उससे कह देवें।" तब वीरवर ने अपने सत्त्ववर पुत्र को जगाया और सारा वृत्तान्त सुनाकर उससे यह कहा "पुत्र! जो तुम्हें चण्डिका देवी को उपहार चढ़ा दें तो राजा जीवेंगे नहीं तो तीसरे दिन उनकी मृत्यु हो जावेगी।" पिता की ऐसी बात सुन सत्त्ववर, जो कि बालकही था, कुछ भी न हिचकिचाया किन्तु दृढ़तापूर्वक अपने नाम की सार्थकता प्रदर्शित कराता हुआ बोला, "हे तात! मैं तो कृतार्थ न हो गया, यदि मेरे प्राण जांय और महाराज बचें तो मैंने उनका जो अन्न खाया है उसकी निष्कृति हो जाय, अब आप विलम्ब क्यों करते हैं बस चटपट मुझे ले चलकर भगवती के समक्ष चढ़ाय दीजिये, मुझसे प्रभु की शान्ति हो जाय।" सत्त्ववर की ऐसी सत्त्वमयी उक्ति सुन वीरवर बोला, "धन्य बेटा धन्य, है तो तू मेराही पुत्र न, क्यों न ऐसा कहेगा।" राजा शूद्रक द्वार पर बाहर खड़े २ उन लोगों का एतादृश कथोपकथन सुन रहे थे, वह उन सभों के ऐसे व्यापार से चकित हो अपने मनमें विचार करने लगे—"अहो! इन सभों का एक सा सत्त्व है, क्या बात है!!"

इसके उपरान्त प्रभुभक्त वीरवर ने पुत्र सत्त्ववर को अपने कन्धे पर उठाया और उसकी भार्य्या धर्म्मवती ने वीरवती को ले लिया; दोनों ऐसी घोर रजनी में देवी के मन्दिर की ओर चले; महाराज शूद्रक भी उनके पीछे २ चुपचाप लगे चले गये।

देवी के मन्दिर में पहुँचकर वीरवर ने अपने पुत्र सत्त्ववीर को कन्धे पर से उतारा तब देवी चण्डिका के समक्ष खड़ा हो यथार्थनामा धैर्य्यराशि सत्त्ववर देवी

को प्रणाम कर इस प्रकार विनय करने लगा, "हे देवि ! मेरे मूर्धोपहार से राजा शूद्रक और सौ वर्ष जीवें और अकण्टक राज्य करें ।" पुत्र का ऐसा कथन सुन वीरवर बोला "धन्य है पुत्र ! धन्य ! !" इतना कह उसने तलवार निकाली और यह कह कि मेरे पुत्र के उपहार से राजा जीवें, एकही प्रहार में पुत्र का सिर काटकर भगवती को अर्पण कर दिया। उसी समय यह आकाशवाणी हुई, "वीरवर ! धन्य हो, तुम्हारे समान स्वामिभक्त और कौन होगा कि प्रभु की हितचिन्ता से तुमने अपना एकलौता और साधुपुत्र बलिदान चढ़ा दिया; राजा शूद्रक को तुमने जीव और राज्य भी दिया।" राजा शूद्रक छिपे हुए सब व्यापार निज नयनों से देख रहे थे और सब बातें अपनी कानों से सुन रहे थे । तब वीरवर की कन्या वीरवती उठी और अपने हत भाई का सिर लेकर चीख मार बिलख २ रोने लगी; उसके हृदय पर ऐसा आघात पहुँचा कि वह फट गया और बिचारी बाला शान्त हो गयी।

तब वीरवर की भार्य्या धर्म्मवती उससे इस प्रकार कहने लगी, "प्राणनाथ ! राजा का कल्याण तो सिद्ध हो गया, अब मैं जो कहती हूं सो सुनिये; देखिये यह अज्ञान बालिका मेरी प्राणप्यारी वीरवती भाई का शोक न सँभाल सकी, तत्क्षण उसके साथ चल बसी; जब मेरे दोनों बच्चे मर गये तो अब मैं जीकर क्या करूँगी। चाहिये था कि मैं पहिलेही अपना सिर राजा के कल्याणार्थ देवी को उपहार कर देती, सो तो मुझ मूढ़ा से बन न पड़ा; अब आप आज्ञा दें, मैं अपने बच्चों के कलेवर लेकर अग्नि में प्रवेश करूं।" इस प्रकार धर्म्मवती का आग्रह पूर्वक से कहना सुन वीरवर ने कहा, "हे मनस्विनि ! सन्तानों की मृत्यु से निःसन्देह तुम्हारा जीवन दुःखमय हो गया है यह मैं भली भांति जानता हूं; मैं अब यही श्रेय समझता हूं कि ऐसा दुःखद जीवन रखकर तुम क्या करोगी सो जैसा तुम कहती हो वैसा ही करो जिसमें तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने मन में यह चिन्ता मत करो कि मैंनेही अपना सिर क्यों नहीं चढ़ाय दिया; भला, यह तो समझो कि यदि यह कार्य्य और किसी उपायसे साध्य होता तो मैं क्यों उठा छोड़ता; मैं अपनाही मस्तक न चढ़ाय देता बच्चेका बध क्यों करता ! अस्तु अब इस से क्या लाभ; प्रिये ! टुक ठहर जाओ, मैं इन लकड़ियों की, जो कि देवी के म-

न्दिर के बनाने के लिये यहां लायी गयी हैं, चिता बनाये देता हूं।" इतना कह धीरचित्त वीरवर ने उन लकड़ियों की चिता वहां बना दी और उसपर दोनों बच्चों के शव रखकर दीपक की टेम से उसमें आग लगा दी। चिता धः धः कर जलने लगी।

जब चिता भली भांति धधकी तब पतिव्रता धर्म्मपरायणा साध्वी धर्म्मवती अपने पति के चरणों पर गिर पड़ी पश्चात् देवी चण्डी को प्रणाम कर इस प्रकार विनय करने लगी, "हे जगदम्ब! यही आर्य्यपुत्र जन्मजन्मान्तर में मेरे पति होवें और इनके प्रभु महाराज का मेरे इस शरीर से कल्याण होवे," इतना कह वह साध्वी उस चिता की दहकती आग में यों कूद पड़ी जैसे कोई जल में कूदे।

अब सत्यवीर प्रभु का हितैषी वीरवर अपने मन में विचारने लगा कि महाराज का कार्य्य तो निष्पन्न होही गया, क्योंकि आकाशवाणी तो कहही चुकी है; मैंने प्रभु का जो अन्न खाया था उसका ऋण चुका ही दिया; और अब मैं अकेला बच रहा हूं सो इस पतित जीवन की क्या लालसा? कहते हैं कि सब कुछ व्यय करके भी कुटुम्ब का भरणपोषण करना चाहिये सो अब कुटुम्ब रहा कहां! अब ऐसी अवस्था में मुझ सा कौन ऐसा पुरुष होगा जो अकेला प्राण धारण कर शोभा पावे। सो मैं अब आत्मोपहार करके भगवती अम्बिका को क्यों न प्रसन्न कर दूं। ऐसा विचार कर भगवती देवी के समक्ष खड़ा हो हाथ जोड़ इस प्रकार स्तुति करने लगा—

"जय महिषासुरमारिणि दारिणि रुरुदानवस्य शूलकरे।
जय विबुधोत्सव कारिणि धारिणि भुवनत्रयस्य मातृवरे॥
जय जगदर्चित चरणे शरणे निःश्रेयसस्य भक्तानाम्।
जय धृतभास्कर किरणे हरणे दुरितान्धकार वृन्दानाम्॥
जय कालि जय कपालिनि जय कङ्कालिनि शिवे नमोऽस्तु ते।
शूद्रक नृप पै अधुना प्रसीद मन्मस्तकोपहारेण॥"

इस प्रकार देवी की स्तुति कर वीरवर ने चट तलवार से अपना उत्तमाङ्ग (१) काट गिराया।

(१) उत्तम=श्रेठ, अङ्ग=शरीर का भाग, अर्थात् शिर।

महाराज शूद्रक भी गुप्तरूप से यह सब वृत्त निज नयनों से देख रहे थे सो उनके हृदय में एकसाथही आकुलता, दुःख और आश्चर्य का प्रादुर्भाव हुआ, वह इस प्रकार चिन्ता करने लगे "अहो! इस महात्मा ने मेरे हेतु सकुटुम्ब वह लोकोत्तर कार्य्य कर दिखाया कि वही कहावत चरितार्थ हुई—'जो नहिँ देखा नहिँ सुना जो चितहूँ न समाय'। यद्यपि संसार विचित्र है पर इसमें ऐसा दूसरा पुरुष कहां! जो कि बिना कहे परोक्ष में अपने प्रभु के लिये प्राण दे देवे। यदि इस उपकार का पलटा मैं न चुका दूं तो धिक्कार है मेरी प्रभुता को और परम धिक्कार है मेरे पशु सम जीवन को!

इस प्रकार राजा शूद्रक अपने मन में चिन्ता कर म्यान से तलवार निकालके देवी के समक्ष जाकर हाथ जोड़ विनती करने लगे "हे देवि! जो मैं मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारा अनन्य भक्त हूं तो मेरे मस्तकोपहार से यह अनुग्रह कीजिये कि यह यथार्थनामा, यथार्थगुणधारी, मन्निमित्त सकुटुम्बप्राणत्यागी वीरवर विप्र अपने कुटुम्ब सहित जी उठे।" इतना कह राजा तलवार से अपना सिर काटाही चाहते थे कि यह आकाशवाणी हुई -"हे पुत्र! साहस मत कर, तेरे इस सत्व से मैं सन्तुष्ट हुई हूं, मैं वरदान देती हूं कि यह वीरवर ब्राह्मण अपने बच्चों तथा पत्नी के सहित जी उठे।" इतना कह ज्योंही आकाशवाणी थँभी त्योंही वीरवर अपने पुत्र कन्या और भार्य्या के साथ जी उठा, ऐसा कि मानों किसी के शरीर में लेशमात्र चोट नहीं थी। यह देख राजा शूद्रक झटपट फिर छिप गये कि कोई देख न ले और टकटकी लगाय उनकी ओर देखने लगे; आनन्द के मारे उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

जैसे कोई सोए से उठे उस प्रकार वीरवर अपनी स्त्री, तथा बालकों को देख कर पृथक् २ नाम ले लेकर उनसे पूछने लगा कि अहो! तुम सब तो भस्म हो गये थे फिर जीते क्योंकर उठ खड़े हुए? मैंने भी अपना सिर काटकर देवी को चढ़ा दिया था सो मैं जीता कैसे हूं! यह बड़ा आश्चर्य्य है! यह भ्रम है अथवा स्पष्ट श्रीदेवीजी का अनुग्रह है। इस प्रकार वह अचम्भे में पड़ा था कि उन सभों ने उससे कहा -"यह महामाया देवी का ही अनुग्रह है जो हमलोग जीते हैं।" वीरवर ने इसे भगवती का अनुग्रहही समझा। इसके उपरान्त वह जगदम्बा को

प्रणाम कर स्त्री तथा बच्चों को लेकर सिद्धार्थ हो अपने घर चला गया, वहां भार्य्या पुत्र तथा कन्या को घर में रखकर वह पूर्ववत् राजा के सिंहद्वार पर जा विराजा।

राजा शूद्रक तो निज नयनों से यह सब व्यापार देखही चुके थे सो वह अलक्षित रूप से झटपट वीरवर के पहुँचने से पूर्वही अपने राजभवन में पहुंच गये; वह पुनः अपने प्रासाद पर चढ़ गये और पुकारकर बोले "सिंहद्वार पर कौन है?" वीरवर ने उत्तर दिया "देव! मैं हूं, प्रभु की आज्ञा से मैं उस स्त्री के पास गया था, परन्तु जैसे कोई राक्षसी अदृश्य हो जाय वैसेही वह मुझे देखतेही लुप्त हो गयी।" राजा तो उसका सारा वृत्तान्त देख चुके थे फिर ऐसा प्रस्तुत उत्तर सुन अति विस्मित हो मन में विचारने लगे "अहो! मनस्वी लोगों का चित्त समुद्र से भी गम्भीर होता है कि ऐसे २ लोकोत्तर कार्य करके भी अपने मुंह से नहीं कहते।" इस प्रकार चिन्ता कर राजा शूद्रक प्रासाद से उतरे और अन्तःपुर में जाकर सो रहे।

प्रातःकाल जब सभा लगी और महाराज शूद्रक अपने सिंहासन पर विराजमान हुए तब अपने नियमानुसार वीरवर भी दर्शन करने को उपस्थित हुआ; उस समय राजा अति प्रसन्नता से वीरवर का रात्रिवृत्तान्त आद्यन्त अपने मन्त्रियों को सुना गये। यह सुन सब लोग आश्चर्य से मोहित हो गये। वीरवर के ऐसे लोकोत्तर कार्य्य से अति सन्तुष्ट हो राजा शूद्रक ने सपुत्र उसको लाट तथा कर्णाट देशों का राज्य दे दिया। अब तुल्यविभव दोनों महीपति वीरवर और शूद्रक परस्पर उपकार प्रत्युपकार करते हुए सुखपूर्वक राज्यशासन करने लगे।

ऐसी अद्भुत कथा सुनाय वेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से फिर पूछा "राजन्! कहिये तो सही इन सभों में कौन श्रेष्ठ वीर ठहरा? जान बूझकर यदि आप न उत्तर देंगे तो पूर्वही का शाप आपके माथे पड़ेगा।" उसका ऐसा प्रश्न सुन राजा ने उत्तर दिया कि इन सभों में राजा शूद्रक ही प्रकृष्ट वीर ठहरे। यह सुन वेताल ने फिर प्रश्न किया "महाराज! वीरवर क्यों नहीं? भला इस पृथ्वी में उसकी जोड़ी का कौन हो सकता है जो ऐसा दुःसाध्य क्या असाध्य काम करे। फिर उसकी पत्नी क्यों न अधिक मानी जाय कि स्त्री होके भी ऐसी बात पर तत्क्षण सम्मत हो गयी और आंखों के साम्हने पुत्ररत्न का बलिप्रदान होना देखकर कुछ

भी न बोली। वीरवर का पुत्र सत्ववर ही क्यों न श्रेष्ठ ठहरे कि बालक होकर भी उसका सत्त्वोत्कर्ष ऐसा हो। राजन्! आप यह क्यों कहते हैं कि उन सभों से राजा शूद्रक ही श्रेष्ठ ठहरे?" बेताल का ऐसा कथन सुन राजा त्रिविक्रमसेन ने पुनः उत्तर दिया, "ऐसा मत कहो, राजा शूद्रक ही श्रेष्ठ हैं, धन्य हैं; सुनो मैं तुमको इसका कारण बतलाता हूं—वीरवर एक उच्चवंशज और सुपूत है; उस कुल का यह नियम है कि प्राण, सुत तथा भार्य्या जायँ तो जाँय पर स्वामी की रक्षा होय; सो वीरवर ने अपना कर्त्तव्य कुलोचित पालन किया; फिर उसकी पत्नी भी सत्कुलोद्भवा ठहरी, सती साध्वी वह अपने पति को ही देवता समझती है सो वह भी अपने पति के अनुसार धर्म्म पर दृढ़ बनी रही सो उसकी भी क्या विशेषता? सत्त्ववर तो उन्हीं दोनों का पुत्र न ठहरा वह तो उनके समान होवे-होगा, जैसे सूत होंगे कपड़ा वैसाही होगा सो उसकी भी इस कार्य्य में प्रशंसा नहीं हो सकती। बस प्रशंसा के पात्र ठहरे राजा शूद्रक। राजाओं की रक्षा तो भृत्यों के प्राणों से होतीही है सो उन्हीं के अर्थ जो शरीर त्याग देवे वही धन्य है। इससे राजा शूद्रक ही श्रेष्ठ ठहरे।"

शार्दूलविक्रीड़ितम्।

इतनी बात महीश की श्रकनि कै खसक्यौ तुरत कान्ध तें।
माया के बल ह्वै अलक्ष्य तबही जा कै टँग्यो रूख पै॥
राजा भी फिर लावने कहँ चले वाही पथा सो तहाँ।
पूर्वै निश्चित काज धारि मन में राखौ समै ह्वै निडर॥

बारहवां तरङ्ग।

पांचवां बेताल।

अब महाराज त्रिविक्रमसेन लौटकर फिर उसी शिंशिपा वृक्ष के निकट पहुँचे, देखें तो मनुष्य के शरीर में आविष्ट वह बेताल उसी प्रकार पेड़ पर लटक रहा है। बेताल को उन्होंने उतारा और इस बार अपने मन का कुछ विकार भी दर्शाया कि खेद प्रकाशित हो जाय। अब महीपति उसी प्रकार उसे कान्धे पर उठाकर

झटपट वहां से चले। पूर्ववत् महाश्मशान में वह कन्धे पर बेताल को लिये चुपचाप चले जा रहे थे कि बैताल उनसे बात कर कहने लगा, "राजन्! आप बड़े कष्ट में पड़ गये हैं, परन्तु आप पर मेरा बड़ा प्रेम है इसीसे आपके चित्तविनोदार्थ एक कथा कहता हूं ध्यान देकर श्रवण कीजिये।

उज्जयिनी में पुण्यसेन नामक राजा का अनुजीवी हरिस्वामी नामक एक ब्राह्मण रहता था, वह विप्र महीपति का अमात्य था जिसे वह अत्यन्त प्यार करते थे। ब्राह्मण बड़ा गुणी भी था। उसकी भार्या बड़ी अनुकूल रहती, उससे उक्त ब्राह्मण के एक पुत्र हुआ जो कि गुणों में पिता के तुल्य निकला, उसका नाम देवस्वामी पड़ा। उसी प्रकार अति सुन्दरी एक कन्या भी जन्मी जिसके रूप और लावण्य की जोड़ी उस समय उस देश में न थी, नाम उसका सोमप्रभा, सो यथार्थ में सोमप्रभा ही थी। वह अपने रूप के घमण्ड से फूली न समाती थी, जब विवाहने योग्य हुई तब उसने अपनी माता के द्वारा पिता के पास यह सन्देशा कहला भेजा कि आप यदि मेरा भला चाहते हैं तो ऐसा कीजिये कि मेरा विवाह किसी शूर, ज्ञानी अथवा विज्ञानी से (१) हो; यदि ऐसा न हुआ तो मेरा जीवनान्त समझना। पुत्री का ऐसा सन्देशा सुन हरिस्वामी बड़ी चिन्ता में पड़ गया कि बेटी जैसा वर चाहती है वैसा कहां मिले।

हरिस्वामी इधर चिन्ता में मग्न था कि उधर से दक्षिण देश के राजा ने उसके प्रभु राजा पुण्यसेन पर चढ़ाई कर घोर युद्ध की बात प्रगट की। महाराज पुण्यसेन ने हरिस्वामी को दूत बनाय उक्त राजा के पास भेजा कि जाकर सन्धि स्थापित कर दे। हरिस्वामी वहां गया और उसका काम भी हो गया, दोनों राजाओं के मध्य सन्धि स्थापित हो गयी।

जब कि हरिस्वामी दाक्षिणात्य महाराज के समीप ही था कि एक ब्राह्मण बहुत दूर से उसकी कन्या के रूप की चर्चा सुन उसके पास आया और बोला, "ब्रह्मन्! मैं बड़ी दूर से आपकी कन्या के हेतु आया हूं सो मेरे साथ उसका विवाह कर दीजिये।" "भद्र! विज्ञानी, ज्ञानी अथवा शूर के अतिरिक्त मेरी कन्या

(१) शूर = योद्धा; ज्ञानी = भूत भविष्यत् का ज्ञान रखनेवाला; विज्ञानी = मायावी, माया के द्वारा सब दिखानेवाला।

किसी अन्य को पति नहीं किया चाहती सो कहो इन में से तुम कौन हो?" हरिस्वामी का ऐसा उत्तर सुन भार्य्यार्थी वह ब्राह्मण बोला, "मैं तो विज्ञान जानता हूं।" हरिस्वामी ने पुनः कहा "तो अपनी शक्ति देखाओ।" । तब उस विज्ञानी ने अपनी माया के बल से एक ऐसा रथ प्रस्तुत किया जो आकाश में चल सके; इतना कर हरिस्वामी को उस रथ पर बैठाय वह उड़ा और क्षण भर में स्वर्गादि लोक दिखा कर फिर वहीं दाक्षिणात्य राजा के कटक में आ विराजा जहां कि अपने राजा के कार्य्य से हरिस्वामी गया था । हरिस्वामी उस विज्ञानी के विज्ञान से बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने उक्त ब्राह्मणतनय से प्रतिज्ञा कर दी कि मैं अपनी कन्या का विवाह तुम्हीं से करूंगा; सातवें दिन विवाह का लग्न ठहराया गया ।

उधर उज्जयिनी में एक दूसरे ब्राह्मण ने जाकर देवस्वामी से उसकी बहिन की याचना की, देवस्वामी ने उत्तर दिया कि ज्ञानी विज्ञानी अथवा शूर के अतिरिक्त किसी अन्य से मेरी स्वसा उद्वाह किया नहीं चाहती । उसका ऐसा वचन सुन वह प्रार्थी ब्राह्मण बोला, "भाई मैं तो शूर हूं ।" इतना कह उसने अपनी शूरता का परिचय दिया । तब तो देवस्वामी ने अति प्रसन्न हो उससे विवाह कर देने की प्रतिज्ञा कर दी । ज्योतिषी से पूछ पाछकर इसने भी विवाह का दिन स्थिर कर दिया और यह दिन वही सातवां दिन था जो पिता स्थिर कर चुका था। यहां देवस्वामी ने विवाह तो निश्चय कर दिया पर माता को इसकी सूचना ही नहीं ।

फिर घरपर एक घटना और भी हुई कि हरिस्वामी की भार्या से किसी तीसरे ब्राह्मण ने आकर उसकी कन्या की प्रार्थना की। उसने उत्तर दिया कि ज्ञानी हो, शूर हो अथवा विज्ञानी हो वही तो मेरी पुत्री का भर्त्ता हो सकता है अन्यथा इसकी चर्चा से ही परे रहे। उसकी ऐसी बात सुन वह बोला, "माताजी मैं तो ज्ञानी हूं।" इसपर हरिस्वामी की भार्या ने भूत तथा भविष्यत् की जो जो बातें पूछीं वह प्रार्थी ब्राह्मण सबका उत्तर देता गया। चलो उसने भी कन्यादान की प्रतिज्ञा कर दी और उसी सातवें दिन विवाह करना निश्चय ठहरा।

दूसरे दिन हरिस्वामी अपने घर आया, कुशल प्रश्न के उपरान्त उसने अपने

पुत्र तथा स्त्री से कहा कि अमुक ब्राह्मण को कन्यादान की प्रतिज्ञा कर चुका हूं और अमुक दिन विवाह स्थिर हुआ है । उधर वे दोनों भी अपनी २ कन्यादान की प्रतिज्ञा कह सुना गये । यह सुन हरिस्वामी बड़ा व्याकुल हुआ कि अब क्या किया जाय, तीन २ वर उस दिन आन उपस्थित होंगे तो किसके साथ सोमप्रभा का विवाह होगा ।

अब विवाह के दिन ज्ञानी विज्ञानी और शूर तीनों वर हरिस्वामी के घर आ उपस्थित हुए । यह विवाद तो उपस्थित ही था कि कन्या किसको व्याही जाय कि इतनेमें एक आश्चर्य घटना आ घटी कि वधू सोमप्रभा अकस्मात् न जाने कहां चली गयी, कितनी भी चेष्टा की गयी पर उसका पता न लगा; हलचल मच गयी, सब लोग व्याकुल और अचम्भित होगये कि परमात्मन्! यह क्या हुआ उस समय हरिस्वामी ने उस ज्ञानी वर से कहा कि ज्ञानिन् ! अब तुम बतलाओ तो मेरी दुहिता कहां चली गयी है ? । यह सुन ज्ञानी ने अपने ज्ञानबल से बतलाया कि धूमशिख नामक राक्षस उसे हरकर अपने स्थान विन्ध्याटवी को ले गया है ! ज्ञानी की इतनी बात सुन हरिस्वामी अति विलाप कर रोने लगा और बोला हाय ! बेटी अब कैसे मिलेगी ! हा ! अब विवाह भी कैसे होगा । यह कौतुक देख विज्ञानी बोला,—"आप ऐसे अधीर क्यों होते हैं धीरज रखिये मैं अपनी विद्या के बल से आप लोगों को अभी वहां पहुंचाता हूं जहां कि यह ज्ञानी बतला रहे हैं कि कन्या है ।" इतना कह उसने एक आकाशचारी रथ बनाया, उस पर सब प्रकार के अस्त्रशस्त्र रक्खे गये और हरिस्वामी और ज्ञानी तथा शूर उस पर आरूढ़ हुए, बस विज्ञानी अपनी विद्या के बल रथ उड़ा ले चला, बात की बात में वह रथ वहां पहुँच गया जहां ज्ञानी ने उक्त राक्षस की बस्ती बतलायी थी । वह राक्षस उनका आना सुन अति क्रुद्ध हो निकला तब हरिस्वामी ने उस शूर से कहा कि अब यहां तुम्हारी विद्या की पारी है तुम अपनी विद्या का परिचय दो । चलो मानुष और राक्षस के बीच युद्ध प्रारम्भ हो गया; नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्र चलने लगे; क्षण भर में सङ्ग्राम का रूप बड़ा भयङ्कर हो गया । स्त्री के हेतु उन दोनों का युद्ध ऐसा घोर हुआ जैसा कि राम और रावण का हुआ था । राक्षस बड़ा दुर्मद था किन्तु क्षण भर में ही उस शूर ने अर्धचन्द्राकार बाण से

उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। जब राक्षस मारा गया तब सोमप्रभा को उसके घर से निकाल उसी रथ पर बैठाय सब लोग घर लौट आये।

अब लग्न भी उपस्थित हुआ उधर मंगल गाम के पलटे हरिस्वामी के घर में उन तीनों ब्राह्मणकुमारों का विवाद उपस्थित हुआ। ज्ञानी कहे कि यदि मैं न बतलाता कि यह कहां है तो ऐसे गूढ़ स्थान से यह कन्या क्योंकर पायी जाती इससे इस कन्या का विवाह मेरे ही साथ होना चाहिये। विज्ञानी का कथन था कि यदि मैं ऐसा रथ न प्रस्तुत कर देता तो क्षणभर में देवता के समान तुमलोगों का जाना और आना कैसे होता; और राक्षस तो रथ पर से युद्ध करता था जो रथ हमारे पास न होता तो युद्ध कैसे हो सकता। अब उचित तो यही है कि यह कन्या मुझे ही दी जाय और फिर मेरे करते हो लग्न के समय में सब कार्य्य सध गये इससे कुछ विचार तो करना अवश्य है। अब शूर बोला, "तुम दोनों का कहना ठीक है पर एक बात पूछता हूं कि युद्ध कर यदि रण में मैं उस राक्षस को न मार डालता तो तुम दोनों के बतलाने और रथ प्रस्तुत कर वहां जाने ही का काम होता कन्या क्योंकर आती? तब तो तुम दोनों के प्रयास निष्फल हो न थे; सो मुझको ही यह कन्या मिलनी चाहिये।" उन तीनों का इस प्रकार विवाद सुन हरिस्वामी भौंचक हो गया, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो वह बिचारा चुपचाप उनका मुंह निरखता रह गया।

इतनी कथा सुनाय बैताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा कि राजन्! अब आप बतलाइये कि वह कन्या किसको दी जाय? जान बूझकर यदि आप उत्तर न देंगे तो आपका शिर टूक टूक हो जायगा।

बैताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा त्रिविक्रमसेन को अपना मौन तोड़नाही पड़ा, वह बोले, "योगीन्द्र! वह कन्या तो शूरही को मिलनी चाहिये क्योंकि उसने अपने प्राण हथेली पर रखकर उस राक्षससे युद्ध किया और अपने बाहुबल से राक्षस को मारकर उस कन्या को प्राप्त किया। ज्ञानी विज्ञानी दैवयोगसे कार्य में सहायक हो गये; गणक और तक्षा (१) का कार्य दोनों ने सम्पादन किया सो ये

(१) गणक = ज्योतिषी; तक्षा = बढ़ई।

दोनों तो मनुष्य के उपकार के लिये बनाये ही गये हैं उन दोनों ने तो परोपकार किया और यह उनका धर्म्म ही था सो इससे क्या होता है ।"

दोहा ।

नृप को अस उत्तर अकनि, खसकि पर्‍यो बेताल ॥
निज पद गा लटकत भया, सोइ असोक की डाल ॥ १ ॥
राजा पुनि तेहिँ लावने, चले वाहि तरु ओर ॥
सन्त वचन निज पालहीं, सहि अनेक झकझोर ॥ २ ॥

तेरहवां तरङ्ग ।

छठाँ बेताल ।

राजा त्रिविक्रमसेन उस अशोक वृक्ष के समीप पहुँचे और उस बेताल को उतार कन्धे पर रख पूर्ववत् चुपचाप चले। ज्योंही कि वह झपटे हुए अपने निर्दिष्ट स्थान को जा रहे थे कि मार्ग में वह बेताल उनसे इस प्रकार फिर वार्त्तालाप करने लगा, "राजन् ! आप बड़े बुद्धिमान् तथा सत्त्वशाली प्रतीत होते हैं इसीसे आप पर मेरा बड़ा प्रेम है; अच्छा आपके चित्तविनोदार्थ एक और कथा कहता हूं, मेरा यह प्रश्न सुनिये ।

भूमण्डल पर यशःकेतु नामक एक राजा थे, शोभावती नाम्नी पुरी उनकी राजधानी थी । उस नगरी में भगवती गौरी का एक उत्तम मन्दिर था जिसके दक्षिण गौरीतीर्थ नामक एक सरोवर शोभायमान था । प्रति वत्सर आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को वहां मेला लगता था. उस समय नाना दिशाओं से बड़े २ महाजन तथा अनेक लोग स्नान करने आया करते थे ।

एक समय की बात है कि ब्रह्मस्थल नामक ग्राम से धवल नामक एक युवा धोबी उक्त तिथि को स्नानार्थ वहां आया, उसी दिन शुद्धपट नामी एक दूसरे धोबी की कन्या मदनसुन्दरी नाम्नी आयी थी, चन्द्र के लावण्य को अपहर्त्री उस मदनसुन्दरी को देखते ही धवल का मन उसपर लुभाय गया; कामवाण से अति व्यथित हो उसके कुल और नाम का पता लगाय वह अपने घर लौट गया । घर

आया तो सही पर उस प्रेयसी के प्रेम से उन्मत्त सा रहता, खान पान विसार सदा उसी के ध्यान में लवलीन बना रहता। माता अपने पुत्र की ऐसी व्यग्रता देख अति अकुलायी और उसके पास जाकर पूछने लगी, "मेरे लाल ! कहो तो सही तुमको क्या हो गया है ? तुम अन्न जल क्यों छोड़ बैठे हो, यह तुम्हारी दशा उन्मत्त सी क्यों हो गई है ?" माता के ऐसे प्रश्न सुन धवल उसे अपना मनोगत सुनाय गया। उसने जाकर अपने पति विमल से पुत्र कि वेदना का व्योरा कह सुनाया, वह दौड़ा हुआ पुत्र के पास आया और उसको वैसी अवस्था में देख इस प्रकार कहने लगा —"पुत्र ! यह तुम्हारा अभीष्ट कुछ दुष्प्राप्य तो है नहीं" फिर तुम इतना विषाद किस हेतु करते हो ? सुनो, मैं जाकर जो शुद्धपट से उसकी बेटी की याचना करूंगा तो वह अपनी कन्या तुम्हें व्याह देगा । हम तो उससे कुल में अथवा धन में किसी प्रकार घट कर नहीं हैं। हमारा काम भी आज कल अच्छा चला हुआ है। फिर मैं उसे जानता हूं और वह मुझे जानता है इस हेतु यह काम तो मुझे किसी भांति दुष्कर नहीं ज्ञात होता।" इस प्रकार समझाय बुझाय उसने पुत्र को भोजन करवाया।

अब दूसरे दिन विमल अपने पुत्र धवल को साथ ले शुद्धपट के घर गया, और उसने उसकी कन्या अपने पुत्र के हेतु मांगी, उसने भी उसकी प्रार्थना सुन वचनदान किया। लग्न धराया गया, शुभ मुहूर्त में शुद्धपट ने अपनी कन्या मदनसुन्दरी का विवाह धवल से कर दिया। विवाह हो जाने पर धवल कृतकार्य हो अपनी भार्या को लेकर अपने पिता के घर गया।

अब दोनों प्राणी आनन्द मङ्गल से रहने लगे। जिसके ऊपर धवल देखनेही से आसक्त हो गया था उसे पाकर अब उसके आनन्द की सीमा न रही; वह अपने को धन्य मानता और सदा प्रफुल्लित बना रहता।

कुछ दिन बीतने पर ऐसा हुआ कि धवल का साला अर्थात् मदनसुन्दरी का भाई आया; सब लोगों ने बड़े सम्मान से उसे ग्रहण किया; बहिन आकर भेंटी मिली; समधियों के कुशल प्रश्न के अनन्तर वह बैठकर विश्राम करने लगा। विश्रामोपरान्त उसने कहा कि हमारे यहां देवी की पूजा है सो पिता ने बहिन बहिनोई को बुलाने के लिये मुझे भेजा है । धवल के माता पिता ने उसकी बात मान ली और उत्तमोत्तम खान पान से उसका सत्कार किया।

प्रात:काल होने पर धवल अपनी भार्या मदनसुन्दरी तथा साले के साथ ससुराल को चला । चलते २ सब लोग शोभावतीपुरी में पहुँचे । नगर में पैठते ही गौरी देवी का मन्दिर पड़ा तहां धवल ने अपनी भार्य्या और साले से कहा कि आओ भगवती का दर्शन कर लें तब चलें । साला उसे रोका चाहता था अत: बोला कि सबके सब एकसाथ क्योंकर चल सकते हैं, फिर इस समय हमलोग खाली हाथ हैं सो कैसे दर्शन करने चलें, चलो फिर कभी दर्शन कर लिया जायगा । तब धवल बोला, "अच्छा तो मैंही दर्शन कर आऊँ, तुम दोनों यहीं बैठे रहो" इतना कह धवल देवी के दर्शनार्थ मन्दिर में गया ।

जब वह मन्दिर में पैठा तब अष्टादश भुजाओं से उद्दण्ड दानवों की नाशकर्त्री, पादतल में पटक कर महिषासुर की मर्दिनी, भगवती चण्डिका के दर्शन से अति कृतकृत्य हुआ, प्रणाम कर सन्मुख खड़ा हो विचारन लगा, विधिवश उसके मनमें यह भावना उठी कि विविध जीवों का उपहार चढ़ाय लोग जगदम्बा की पूजा करते हैं तो मैं आत्मोपहार चढ़ा क्यों न आत्यन्तिकी सिद्धि प्राप्त कर लूं । इतना विचार कर वह मन्दिर के अभ्यन्तर गया कि वहां कदाचित् कोई खड्गादिक मिल जाय और भाग्यवश वैसा होही गया; दैवात् वहां कोई जन न था और एक कोने में एक खड्ग भी मिल गया जो कोई यात्री देवी को चढ़ा गया था । बस घण्टे की सिकड़ी में बाल बांधकर उसने उस खड्ग से ऐसा कस के मारा कि एक ही छेव में उसका सिर धड़ से अलग हो धरती पर आ गिरा ।

जब धवल के आने में विलम्ब हुआ तब उसका साला घबराया कि बात क्या है कि अबलों वह न आया, सो देखने के लिये वह भी मन्दिर में पैठा तो क्या देखता है कि वह सिरकटा पड़ा है । यह देख उसकी मति भी वैसीही हो गयी सो इसने भी उसी खड्ग से अपना मस्तक काट डाला ।

जब यह भी न लौटा तब तो मदनसुन्दरी बड़ी घबड़ायी कि बात क्या है कि जो जाता है वहां से लौटताही नहीं ; चलूं देखूं तो क्या है । ऐसा विचार कर ज्योंही वह मन्दिर में गई देखती क्या है कि पति और भाई दोनों शिरकटे धरती पर पड़े हैं । "हाय ! यह क्या अनर्थ हुआ" इस प्रकार कह अति व्याकुल हो विलाप करती हुई वह धड़ से धरती पर गिर पड़ी । क्षणभर में उठी

और चिन्ता करने लगी, "यहां तो कोई है भी नहीं जो इनको मार डाले, इन दोनों ने किसी का कुछ बिगाड़ा ही क्या था कि कोई इन्हें मारे, फिर अकस्मात् ये कैसे छिन्नमस्तक हो गये; अब मेरे इस हतजीवन से क्या लाभ ?" इस प्रकार मन में विचार कर वह श्रीदेवीजी की ओर अभिमुख हो हाथ जोड़ यों प्रार्थना करने लगी—"हे देवि ! हे सौभाग्यदायिनि ! हे चारित्रविधायिनि ! मार रिपु के अर्द्ध शरीर पर शासनकर्त्री समस्त ललनाओं की एकमात्र शरण्ये ! हे दुःख-हारिणि मातः तुमने अकस्मात् एक साथ मेरे भर्त्ता और भ्राता को क्यों हर लिया ? मैं तो सदा से तुम्हारी भक्ता हूं सो अम्ब ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं है। हे जगच्छरण्ये ! मैं तुम्हारी शरण हूं ; मैं अपना यह हतभागा शरीर त्याग करती हूं सो अब मेरी यह विनती सुनो । हे देवि ! दूसरे जन्म में जहां कहीं मैं जन्मूं तहां येही दोनों मेरे पति और भाई होवें ।"

इस प्रकार प्रार्थना और स्तुति तथा देवी को पुनः प्रणाम कर उसने लता की फँसरी बनाकर अशोक वृक्ष पर लटकायी और ज्योंही वह फँसरी में अपना सिर डाला चाहती थी कि आकाशवाणी हुई, "पुत्रि ! साहस मत कर, अबलौं तू बाला है पर तेरा सत्व बड़ा उत्कृष्ट है; मैं तेरे इस सत्त्वोत्कर्ष से अति सन्तुष्ट हूं; सो अब तू इस पाश का परित्याग कर; अपने भर्त्ता और भ्राता का शिर उनके प्रत्येक के शरीर से जोड़ दे और ये मेरे वरदान से जी उठेंगे ।"

यह आकाशवाणी सुन वह फूली न समायी, फँसरी तोड़ताड़ झटपट फेंक उतावली में उसने भर्त्ता का शिर तो भाई के धड़ से और भाई का मस्तक पति के शरीर से जोड़ दिया। विधियोग से ऐसा विपर्य्यय हो गया। भगवती की कृपा से दोनों अक्षत शरीर जी उठे परन्तु शिरों के फेरफार से दोनों के कार्य्य में बड़ा विपर्य्यय हो गया । अब अपना २ वृत्तान्त कह तीनों बड़े आनन्दित हुए और शर्वाणी देवी को प्रणाम कर जहां जाना था चले गये । जब तीनों चले तब उस समय मदनसुन्दरी को ज्ञात हुआ कि ओः मेरी भूल से इन दोनों के शिरों में तो हेरफेर हो गया; अब क्या किया जाय, यह सोच वह बड़ी व्याकुल हुई ।

इतनी कथा सुनाय बैताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा कि राजन्! आ

आप बतलाइये कि इन दोनों सङ्कीर्णों में से (१) उसका भर्त्ता कौन है? जान-कर भी यदि आप न बतलावेंगे तो वही पूर्वोक्त शाप आप पर पड़ेगा। वेताल की कथा तथा उसका ऐसा प्रश्न सुन राजा त्रिविक्रमसेन बोले, "जिस शरीर से उसके पति का शिर जोड़ा गया था सोही उनमें से उसका पति है क्योंकि समस्त अङ्गों में शिरही प्रधान है और उसीसे प्रत्यभिज्ञा (२) भी होती है।"

दोहा।

तब वेताल नृपवचन अस, सुनि भो अन्तर्धान ॥
पुनि ताकहँ आनयन हित(३), नरपति कीन्ह पयान॥ १॥

चौदहवां तरङ्ग।

सातवां वेताल।

अब राजा त्रिविक्रमसेन लौटकर उसी शिंशपातरु के नीचे पहुँचे तो वह वे-ताल उसी प्रकार लटका हुआ मिला सो महीश्वर उसे उतार कन्धे पर रख उसी प्रकार फिर ले चले। मार्ग में वह चुपचाप चले जा रहे थे कि वेताल ने उनसे कहा "राजन्! मैं एक कथा कहता हूं जिससे आपको मार्ग की थकावट न अनु-भूत हो, ध्यान देकर श्रवण कीजिये।"

पूर्वसागर के तटपर ताम्रलिप्तीपुरी है, उस नगरी में चण्डसेन नामक राजा हुए जो कि परस्त्रियों से सदा पराङ्मुख रहते किन्तु संग्रामभूमि में कदापि शत्रुओं ने उनकी पीठ न देखी; महीपति शत्रुओं की लक्ष्मी का अपहरण करते पर पराये की सम्पत्ति पर कदापि हाथ न लगाते।

एक समय की बात है कि दक्षिण देश से सत्वशील नामक कोई राजपुत्र, जो कि जनप्रिय था, उनके सिंहद्वार पर आ उपस्थित हुआ। राजा के समीप अपनी निर्धनता के प्रकाशनार्थ वह फटे पुराने वस्त्र पहिने अन्यान्य राजपुत्रों के साथ उप-

(१) सङ्कीर्ण = मिश्रित; दूसरे से दूसरे का संयोग "सङ्कर" कहलाता है।

(२) प्रत्यभिज्ञा = पहिचान।

(३) आनयन = लाना, हित = हेतु = लिये; आनयनहित = लाने के लिये।

स्थित हुआ; अब आज्ञा हो गई और वह राजसेवा में नियुक्त होकर रहने लगा। राजसेवा में वह बराबर लीन रहता परन्तु कानी कौड़ी से भेंट नहीं।

इस प्रकार जब बहुत वर्ष बीत गये और उसे कुछ भी प्राप्त न हुआ तब वह अतिचिन्तित हुआ और अपने मनमें सोच करने लगा कि अहो! कहां तो मैं राजघर में जन्मा और कहां ऐसी दरिद्रता मेरे माथे पड़ी। यद्यपि ऐसी निर्धनता में कालयापन कर रहा हूं तथापि विधाता ने मेरा मन ऐसा उन्नत बनाया है। मैं राजा की इतनी सेवा और इतने वर्षों से कर रहा हूं पर महाराज की टुक भी कृपादृष्टि मुझपर नहीं हुई है, उन्हें यह विदित नहीं कि मैं भूखों मर रहा हूं, मेरे बालबच्चे अन्न को तरसते हैं। हाय!

वह इसी प्रकार चिन्ता में मग्न था कि उसी समय महाराज चण्डसेन आखेट के अर्थ निकले, बस वह कार्पटिक तत्क्षण लाठी उठाय आगे २ दौड़ा तिस पीछे राजा और राजा के पीछे सारी सेना और अनेक घुड़सवार। सब लोग मृगयार्थ मृगाटवी की ओर चले। आखेट करते २ एक मत्त शूकर मिला राजा ने अपना घोड़ा उसके पीछे छोड़ा; इस प्रकार घोड़ा दौड़ाते हुए महाराज बहुत दूर एक दूसरे वन में निकल गये। तहां मार्ग बड़ा बीहड़ पड़ा, पत्ते और घास फूसों से मार्ग ऐसा आवृत था कि कुछ दिखाई ही न पड़े, उन्हीं के मध्य पड़ शूकर उनकी दृष्टि के अगोचर हो निकल गया। इतनी दूर की दौड़ से राजा थक तो गये ही थे फिर इधर भोजन की वेला भी आ गयी सो भूख की प्रबलता हुई; ऊपर से यह कि मार्ग भी भूल गये; अब करें क्या।

राजा तो अपना घोड़ा उड़ाये चले गये पर उस कार्पटिक ने उनका साथ न छोड़ा, वह भूखा प्यासा अपने प्राणपण पर उनके पीछे पांव २ दौड़ता चला आया। राजा लौटे तब वह भी उनके साथ लौटा। राजा ने उसे उस प्रकार चुपचाप पीछे पीछे आता हुआ देखकर बड़े स्नेह से उससे पूछा (१) "क्या तुम जिधर से आये

(१) इसके आगे किसी २ पुस्तक में ऐसा अधिक पाठ भी मिलता है:—
"राजा ने उससे पूछा कि भाई तुम कौन हो और क्योंकर यहां आये?" तब उसने उत्तर दिया "देव! मैं दक्षिण देश का रहनेवाला आपका अनुचर हूं।" उसका ऐसा वचन सुन महाराज ने बड़ी नम्रता और प्रीति से उससे कहा "तो भाई कहो तुम जानते हो?"

हो वह मार्ग जानते हो?" महाराज का ऐसा प्रश्न सुन वह कार्पटिक हाथ जोड़कर बोला, "महाराज! मैं मार्ग तो जानता हूं किन्तु प्रभु यहां क्षण भर विश्राम कर लेते तो अच्छा होता, क्योंकि द्युवधू की मेखला के मणिस्वरूप सूर्य्य अपने प्रखर तेज से देदीप्यमान हो रहे हैं।" उसका ऐसा कथन सुन महाराज बोले,—"भाई! तो एक काम करो कि कहीं पानी हो तो उसका पता लगाओ।" भूपति का ऐसा कथन सुन वह कार्पटिक एक अति ऊँचे तरु पर चढ़ गया, वहां से उसे एक नदी दिखाई पड़ी सो वह उस पेड़ से उतरा और राजा को नदीकिनारे ले गया। राजा के घोड़े की पीठ से चारजामा उतारके उसने उसे लोटाया पोटाया और पश्चात् उसे घास पानी देकर उसका भी श्रम दूर किया। इतने में महीपति स्नान कर चुके तब वह कार्पटिक अपने वस्त्र में से खोलकर कईएक सुस्वादु आँवले निकाल, जल में धोकर उन्हें राजा के समक्ष लाया। महाराज ने पूछा—"ये कहां से आये?" तब वह घुटने टेक हाथ में आँवले लिये हुए अञ्जलि जोड़ इस प्रकार निवेदन करने लगा—"देव! प्रतिदिन इन्हीं आंवलों से मेरा निर्वाह होता है, इन्हीं का भक्षण कर मैं दश वर्ष से प्रभु की सेवा कर रहा हूं, यह पक्का मेरा मुनिव्रत है।" उसका इतना वचन सुनते ही राजा को बड़ी दया आयी, तब वह बोले, "भाई! क्या बात है तुम्हारा नाम सत्वशील है सो सचमुच तुम यथार्थनामा ही हो।" इतना कह भूपति मस्तक नवा अपने मन में चिन्ता करने लगे—"धिक्कार है ऐसे राजाओं को जो अपने भृत्यों में से दुःखी को नहीं जानते हैं, जिन्हें यह ज्ञात नहीं कि हमारा कौन सा भृत्य कैसी दुर्दशा भोग रहा है; फिर धिक्कार है उन परिजनों को जो दीनों का दुखड़ा उन राजाओं के कर्णगोचर नहीं कराते।" इतना अपने मनमें सोचकर राजा ने उस कार्पटिक के हाथ के आंवलों में से दो ठो ले लिये और उन्हें खा जल पीकर क्षण भर विश्राम किया। उस कार्पटिक ने भी आंवले खाकर जल पिया और विश्राम किया।

इसके उपरान्त वह कार्पटिक घोड़े को सुसज्जित कर महाराज के समक्ष लाया, महाराज उसपर चढ़े और उससे कहने लगे कि भाई तुम भी मेरे पीछे चढ़ लो पर वह न चढ़ा प्रत्युत मार्ग दिखाता हुआ घोड़े के आगे २ चला। मार्ग में राजा के समस्त सैनिक मिल गये और वह सबके साथ अपनी नगरी में आ

विराजे। तहां महीश ने उस कार्पटिक की भक्ति लोगोंको कह सुनायी; इसके उपरान्त उन्होंने उसे बहुत धन गांव गिरांव देकर सन्तुष्ट किया। इतना देकर भी भूपति अपने को ऋणमुक्त नहीं मानते थे। अब सत्वशील अपने सब गूदड़गादड़ फेंक अति कृतार्थ हो महाराज चण्डसेन के समीप रहने लगा।

एक समय राजा ने उसे सिंहलद्वीप में भेजा कि जाकर वहां के राजा की कन्या उनके हेतु मांगे। तब वह इष्टदेवता की पूजा कर राजा के भेजे ब्राह्मणों के साथ अर्णवपोत पर आरूढ़ हुआ। कुछ दूर लों तो अर्णवपोत निर्विघ्न चला गया किन्तु जब वह समुद्र के मध्य भाग में पहुँचा, सागर में से एक बड़ी भारी ध्वजा अकस्मात् निकली; जिसके देखतेही लोग भौंचक हो गये। उसकी चोटी आकाश से बातें करती थी, और वह ध्वजा सुवर्ण की बनी थी, नाना वर्ण की पताकायें उसमें फहरा रही थीं जिनसे उसकी शोभा और भी विचित्र हो रही थी। उसी समय सहसा आकाश में मेघ छा गये और मूषलधार वृष्टि होने लगी ऊपर से अति प्रबल मारुत बहने लगा। वर्षा और वायु के झकोरों से वह जहाज उस ध्वजा के स्तम्भ में जा सटा जैसे महावत हाथी को खम्भे में बांध देवे। अब वह ध्वजा प्रवहण लिये दिये समुद्र में धँसने लगी। यह दशा देख अत्यन्त भयभीत हो उस जहाज पर के ब्राह्मण महाराज चण्डसेन की दुहाई देने लगे और चिल्ला २ कर कहने लगे कि महा अनर्थ हो रहा है, ब्राह्मणों के प्राण व्यर्थही जाया चाहते हैं। ब्राह्मणों का ऐसा आर्त्तनाद वह सत्त्वशील न सह सका, वह तो पक्का स्वामिभक्त था भला अपने प्रभु के नाम की दुहाई कैसे सुन सके; चट वह कमर कस खड्ग खींचके समुद्र में कूद पड़ा कि देखूं तो क्या कारण है उसका प्रतिविधान करूँ। उसका समुद्र में मग्न होना कि अन्धड़ और लहरों के झकोरों से जहाज बहुत दूर चला गया और टूक २ हो गया और उसपर के लोग जलजन्तुओं के भोजन हो गये।

अब सत्त्वशील जो समुद्र में डूबा तो क्या देखता है कि एक दिव्य पुरी है समुद्र न जानें कहां चला गया; उस नगरी का वर्णन क्या करें, उसके समस्त मन्दिर स्वर्णनिर्मित थे, जिनके खम्भे रत्नों के बने थे। अतिरम्य अनुपम उद्यान सुशोभित थे जिनमें अति मनोहर बावंड़ियां जिनके सोपान सद्रत्ननिर्मित थे, जिनके कारण उस पुरी की शोभा ही कुछ अनूठी थी। उस नगरी में उसे एक पर्वत के

समान ऊँचा, देवी का एक मन्दिर दीख पड़ा जिसकी भीतें मणियों से जटित और जिनपर नाना प्रकार के झण्डे फहरा रहे थे। वह देवी की स्तुति तथा प्रणाम कर उनके साम्हने बैठ गया और अपने मनमें विचार करने लगा कि यह क्या व्यापार है, कुछ इन्द्रजाल का बखेड़ा तो नहीं है!

इतने में एक और आश्चर्यघटना हुई। देवी के साम्हनेही, केवाड़ खोलकर एक दिव्य कन्या प्रभामण्डल से निकली। उसके नेत्रों के साम्हने कमल लजाते थे, प्रफुल्ल पद्म सा वदन और जिसकी मुस्कुराहट कुसुम की शोभा को लज्जित कर देती थी, जिसके समस्त अङ्ग मृणाल से भी कोमल; वह दिव्याङ्गना क्या थी मानो जङ्गम सरोजिनी थी। उसकी परिचर्य्या में साथ साथ सहस्रों ललनायें लगी थीं। वह मनोहारिणी देवी के अभ्यन्तर मन्दिर में पैठी और साथही सत्त्वशील के हृदय में धँसी। कुछ कालोपरान्त जगदम्बा को अर्चापूजा करके वह मन्दिर के बाहर निकली किन्तु सत्त्वशील के हृदय से बाहर न हुई।

अब वह उसी प्रभामण्डल में पैठी, सत्त्वशील भी उसके पीछे लगा और वह भी उसमें घुस गया। भीतर जाकर वह एक दूसरा अत्युत्तम नगर देखता है जो समस्त भोग और सम्पदाओं का मानों सङ्केतउद्यान है। उस पुरी में सत्त्वशील क्या देखता है कि वह मनोहारिणी कन्या एक सुरम्य भवन में मणिमय पर्य्यङ्क पर बैठी है; सो उसे देखतेही वह निःशङ्क उसके समीप चला गया और पार्श्व में बैठ रहा। बैठकर वह टकटकी लगा उस ललनाललाम का चन्द्रवदन निरखने लगा मानों चित्र में लिखा हो। उसके ईषत्कम्पित और पुलकित अङ्ग आलिङ्गन के हेतु ललच रहे थे। उसका यह भाव उस कन्या को विदित हो गया, वह समझ गयी कि यह स्मरशर से विद्ध है सो वह अपनी चेटियों की ओर निरखने लगी। चेटियों ने अपनी स्वामिनी का इङ्गित समझ लिया और सत्त्वशील से कहा "महात्मन्! आप मेरी स्वामिनी के अतिथि प्राप्त हुए हैं, सो जो हमारी स्वामिनी सत्कार करें उसे ग्रहण कीजिये; उठिये चलिये स्नान कीजिये तत्पश्चात् भोजन करिये।" चेटियों के मुख से इतना सुनतेही उसके हृदय में आशा का अङ्कुर उठा, सो वह किसी प्रकार कांख कूँखकर उठा और उनकी दिखाई हुई एक उद्यानवापिका के समीप स्नानार्थ गया। उसमें जो स्नान करने को पैठा और निकला तो क्या

देखे कि ताम्रलिप्ती में महाराज चण्डसेन के उद्यान की बावड़ी में से निकला है, यह देखतेही वह भौंचक हो गया, और अकस्मात् अपने को वहां प्राप्त देख मन में चिन्ता करने लगा—"अहो! यह क्या आश्चर्य्य है! कहां यह उद्यान और कहां वह दिव्य नगर! कहां उसके अमृतरस से दर्शन और कहां अब उसका वियोगरूपी विष! यह स्वप्न तो मैं देख नहीं रहा हूं, क्योंकि सम्प्रति निद्रित तो हूं नहीं और यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभूत विषय है; बस अब मैंने जाना कि उन पाताल कन्याओं ने निश्चय करके मुझ मूढ़ को धोखा दिया है।" इस प्रकार ध्यान करते करते वह उस कन्या के विरह में उन्मत्त की भांति उसी वाटिका में इधर उधर घूमने लगा और कामार्त तो थाही मनमें जो कुछ आवे सोही बड़बड़ावे।

उस समय वायु के चलने से पुष्पों की रेणु जो उसके शरीर में लगी इससे उसका समस्त शरीर पीतवर्ण हो गया; धूलि का लगना क्या था मानो उस कन्या का विरहानल उसके अङ्गों में लगकर उसे भस्म करने का उपक्रम बांधने लगा। इससे उसकी दशा कुछ और बिगड़ गयी और उन्माद कुछ और बढ़ा और वह पूर्वापेक्षा अधिक उत्पात मचाने लगा। उसकी यह दशा देख माली सब बड़े भयभीत और कौतुकाक्रान्त हुए सो उन्होंने जाकर महाराज चण्डसेन को उसका वृत्तान्त सुनाया।

महाराज चण्डसेन को भी बड़ा कौतुक हुआ सो वह स्वयं उस उद्यान में आ विराजे कि देखें बात क्या है। उसको उस अवस्था में देखकर उन्होंने बहुत कुछ समझाया बुझाया और धीरज दिया पश्चात् उससे इस प्रकार पूछा—"सखे! कहो तो सही यह तुम्हारी क्या दशा हो गयी है? यह बात क्या है? तुम कहां और किस निमित्त गये थे फिर यहां कैसे आ पड़े? तुमने कहां बाण चलाया और वह कहां गिर पड़ा?" महाराज के इस प्रकार सान्त्वनापूर्वक पूछने पर उसका चित्त कुछ शान्त हुआ तब उसने अपना सारा वृत्तान्त महाराज चण्डसेन को सुना दिया। सत्वशील का वृत्तान्त सुन महीपति भी अपने मनमें विचार करने लगे कि देखो तो सही यह वीर कैसा निःशङ्क था और अब कामदेव के बाणों से विद्ध हो किस दशा को पहुँच गया है; मैं समझता हूं मेरे पुण्यों का उदय हुआ है जो इसकी ऐसी दशा हो गयी है; अब अच्छा अवसर हाथ लगा है बस

इसी समय तो इसके ऋण से मुक्त होने का अवसर है। इस प्रकार अपने मन में विचारकर महाराज चण्डसेन बोले, "मित्र! अब तुम यह व्यर्थ का शोक त्याग करो, चलो मैं तुमको उसके निकट ले चलता हूं; सुनो तुम चिन्ता मत करो मैं इसी मार्ग से तुमको तुम्हारी प्रिया असुरकन्या के पास पहुँचाऊँगा।"

दूसरे दिन महाराज चण्डसेन अपने राज्य का भार मन्त्रियों पर रख सत्त्वशील के साथ प्रवहण पर आरूढ़ हुए और उसी के दिखाये मार्ग से समुद्र में जहाज चला। जब अर्णवपोत ठीक बीचोबीच पहुँचा तो उसी प्रकार पताका सहित ध्वजा निकली, उसे देख सत्वशील ने राजा से कहा, "महाराज! यह वही दिव्य-प्रभावसम्पन्न ध्वजा निकली है; देखियेगा, इसके साथ ज्योंही कि मैं डूबूं त्योंही आप भी डूबियेगा। इतना कह डूबती ध्वजा के समीप पहुँच सत्वशील चटपट कूद पड़ा उसके पीछे ही राजा भी कूदे। जल में मग्न हो दोनों जन उसी दिव्य नगर में पहुँच गये। वहां नगर की अपूर्व शोभा निरख महाराज कौतूहलाक्रान्त हो गये और पार्वती देवी को प्रणाम कर सत्वशील के साथ वहीं बैठ गये।

इतने में वह दिव्यकन्या अपनी सखियों के साथ उसी प्रभामण्डल से रूपिणी प्रभा के समान निकली, उसे देखते ही सत्वशील ने राजा से कहा "महाराज! यही वह मेरी मनोहारिणी है।" उसका ऐसा कथन सुन राजा ने अपने मन में कहा कि इसमें इसका प्रेम तो युक्तही हुआ है। उस कन्या ने भी राजा को देखकर अपने चित्त में चिन्ता कियी कि यह कोई अपूर्व पुरुषातिशय हैं, इतना विचार वह चण्डिका देवी के मन्दिर में पूजा करने चली गयी, राजा भी उसकी अवज्ञा कर सत्वशील को साथ लेकर वाटिका में जाकर टहलने लगे।

क्षणभर में देवी की पूजा कर और यह वरदान मांग कि हे जगदम्ब! मुझे सत्पति मिले, वह दैत्यकन्या देवी के मन्दिर से निकली और अपनी सखी से बोली कि आली! टुक उन महात्मा का पता तो लगाओ, जिन्हें मैंने यहां देखा था, कि कहां रहते हैं। उनको ले चलकर उनका आतिथ्य करो; तुम इतनी कृपा तो करो। यह कोई श्रेष्ठ पुरुष हैं जो हमारे पूजार्ह हैं सो उन्हें ले चलकर उनकी अभ्यर्थना करो। अपनी स्वामिनी की ऐसी आज्ञा पाय वह चेटी पता लगाती २ वहां पहुँची जहां उद्यान में सत्वशील के साथ राजा विराजमान थे; सो उसने बड़ी

नम्रता से अपनी स्वामिनी का सन्देशा कह सुनाया। उसका कथन सुन राजा ने अवहेला के साथ उत्तर दिया कि इतनेही से हमारा आतिथ्य हो गया अब और क्या चाहिये । राजा का ऐसा कोरा २ उत्तर उस सखी ने जाकर दैत्यकन्या से कह दिया सो सुन उसने अपने मन में विचार किया कि यह कोई बड़े माननीय और उदार व्यक्ति हैं ।

मनुष्य को जो आतिथ्य प्राप्य नहीं है उसमें भी राजा चण्डसेन निस्पृह रहे, उनकी इस धैर्यरूपी रज्जु से आकृष्ट होकर मानों, वह असुरपुत्री, पति के प्रार्थ्यर्थ, जो कि भगवती पार्वती की सेवा से समर्पित है, ऐसा जानकर स्वयं उस उद्यान में गयी जहां राजा चण्डसेन और सत्वशील थे। वायु से सञ्चलित वृक्षों और लताओं से नाना प्रकार के शकुनों का अनुभव होने लगा, उनसे फूल जो गिरते थे तिनसे उन वृक्षों और लताओं का आह्लाद सूचित होता था । इस दर्शन से असुरकन्या के हृदय में आनन्द का सागर उमड़ रहा था। वहां पहुँचकर दैत्यकन्या ने अति नम्रता से महाराज से आतिथ्य ग्रहण की प्रार्थना किई । तब सत्वशील की ओर देखकर राजा ने दैत्यकन्या को उत्तर दिया कि मैं इनके मुख से देवी का वर्णन सुन उनके दर्शनों को आया; ध्वजा के मार्ग से इस अद्भुत नगरी में पहुँचा; परम अद्भुत मन्दिर में विराजमान महामाया के दर्शन हुए, पश्चात् तुम दीख पड़ी, अब और क्या आतिथ्य चाहिये ? तब दैत्यकन्या बोली "अच्छा अब चलकर मेरा दूसरा नगर भी देख लीजिये और अपना कौतुक शमन करिये क्योंकि मेरा यह नगर तीनों जगत् के बीच एक अनूठा नगर है ।" तब महाराज हँसकर बोले कि उसका वर्णन भी इन महात्मा के मुंह से सुन चुका हूं , हां २ वही स्नानवापिका न ? तब उस दैत्यसुता ने उत्तर दिया "देव ! ऐसा न कहिये, मैं विडम्बना नहीं करती हूं ; भला पूज्य के साथ धोखा कैसा ? आपके सत्वोत्कर्ष से मैं किङ्करी हो गयी हूं सो मेरी प्रार्थना का भङ्ग करना आपको उचित नहीं है ।"

राजा उस दैत्यकन्या की बातों से स्थगित से हो कुछ न कह सके अन्ततोगत्वा उन्हें उसकी अभ्यर्थना स्वीकार ही करनी पड़ी सो वह उस सत्वशील को संग ले दैत्यकन्या के साथ उस प्रभामण्डल के उपान्त भाग में गये । किवाड़ खुल गये तब वह उसी प्रकार उसके भीतर पहुंचाये गये; भीतर जाकर उन्होंने उसका

दूसरा दिव्य नगर देखा, जहां सब काल में सकल ऋतु वर्त्तमान रहते, वहां के वृक्ष सदा पुष्प और फल से लदे रहते; समस्त नगर रत्न और काञ्चन का निर्मित था मानो सुमेरु पर्वत का पृष्ठ भाग हो । वहां दैत्यकन्या ने महाराज चण्डसेन को रत्नसिंहासन पर बैठाया, पश्चात् यथोचित अर्घ्यादि देकर इस प्रकार कहा, "महाराज ! मैं असुरेन्द्र महात्मा कालनेमि की बेटी हूं ; भगवान् चक्रायुध ने मेरे पिता को स्वर्ग भेज दिया । विश्वकर्म्मा ने मेरे पिता के लिये ये दोनों नगर बना दिये थे; यहां रहने से जो मन चाहे सो पावे, बुढ़ौती और मृत्यु का यहां कुछ भी वश नहीं चलता । अब आप मेरे पिता हैं और मैं आपकी बेटी हूं और अपने दोनों नगरों के साथ आपके वश में हूं जो आज्ञा हो सो करूँ ।"

इस प्रकार जब वह कालनेमिसुता सर्वतोभाव से आत्मसमर्पण कर चुकी तब महाराज चण्डसेन बोले—"हे आनन्दिते पुत्रि ! यदि ऐसी बात है तो मैंने इस वीर सत्वशील के हाथ में तुझे दान किया, यह सचमुच सत्वशील ही है और मेरे सुहृद और बन्धु हैं।" देवी के मूर्त्तिमान् प्रसादरूपी राजा चण्डसेन की ऐसी बात सुन उस गुणज्ञ दैत्यसुता ने अति विनीतभाव से उनकी आज्ञा शिर चढ़ाई । चलो दोनों का शुभ पाणिग्रहण हो गया; सत्वशील का मनोरथ पूर्ण हुआ; आज वह कृतार्थ हो गया ।

जब विवाह हो जाने के उपरान्त कृतार्थ सत्त्वशील असुरराज के दोनों नगरों का अधीश्वर हो चुका तब महाराज चण्डसेन ने उससे कहा,—"भाई सत्वशील ! तुमने जो मुझे दो आंवले खिलाये थे उनमेंसे एक का तो ऋण मैंने आज चुका दिया, अब रहा दूसरा सो उसका मैं अबलों ऋणी बना ही हूं ।" महाराज का ऐसा कथन सुन सत्वशील शिर झुकाये खड़ा हो रह गया, मारे स्नेह के उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला । इसके पश्चात् महीपति ने उस दैत्यसुता से कहा,— "कल्याणि ! अब मुझे मार्ग बताओ जिससे मैं अपने नगर में पहुँचूं ।" तब दैत्यसुता ने महीश को अपराजिता नामक एक खड्ग तथा एक भक्ष्यफल दिया कि जिसके भक्षण से जरा और मृत्यु का भय जाता रहता है । ये अमूल्य रत्न देकर उसने वह बावड़ी दिखा दी, सो महाराज वे दोनों रत्न लिये उस बावड़ी में डूबे और देखो अपने नगर में जा निकले । क्रमानुसार उनके सब कार्य्य सिद्ध हो गये। उधर सत्वशील भी दैत्यकन्या के उन दोनों नगरों का शासन करने लगा ।

इतनी कथा सुनाय वेताल ने त्रिविक्रमसेन से पूछा कि राजन्! कहिये इन दोनों मेंसे समुद्रपन में किसका सत्व अधिक ठहरा? राजा यदि उत्तर नहीं देते तो शाप पाते हैं, इसी भय से वह बोले, "मेरी समझ में सत्वशील का सत्व अधिक है क्योंकि बिना आगा पीछा सोचे वह निधड़क सागर के गर्भ में कूद पड़ा और राजा तो तत्व जानकर विश्वास करके समुद्र में पैठे; और दैत्यकन्या को जो उन्होंने नहीं चाहा इसका यह कारण है कि वह समझ बैठे थे कि स्पृहा करने से होता ही क्या है।"

सोरठा।

यहि विधि छूट्यो मौन, खसकि भज्यो वेताल सों।
जा लटक्यो तरु तौन, जो अशोक तिहि केर घर॥
पुनि वेतालहिं लेन, तत्क्षण तेहि पादप तरे।
नृपति त्रिविक्रम सेन, पहुंचे निर्भय चित्त सों॥
सुजन जो कारज लेत, अवशि करैं भोगैं विपति।
परैं जु व्यत्यय केत, विना किये नहिं छोड़ते॥

पन्द्रहवां तरङ्ग।
(आठवां वेताल)

राजा त्रिविक्रमसेन उस शिंशपा पेड़ के नीचे पहुँचे और वेताल को पाय, कन्धे पर रखकर उसी प्रकार चलने लगे। जब वह लिये चले जा रहे थे कि वेताल बोला, "राजन्! फिर आपसे एक प्रश्न करता हूं, जिससे आपको मार्ग का श्रम प्रतीत न हो, ध्यान देकर सुनिये।"

अङ्गदेश में कुछ धरती है जो ब्राह्मणों को दी हुई है, उस भूखण्ड का नाम है वृक्षघट; तहां एक बड़ा धनवान् यज्वा विष्णुस्वामी करके रहता था। उसकी पत्नी उसके समान उच्चकुल की थी, उस पत्नी से उक्त ब्राह्मण के क्रमानुसार तीन पुत्र हुए, तीन के तीनो जब बड़े हुए तब वे सब बड़ेही विद्वान् निकले। एक समय की बात है कि वह ब्राह्मण यज्ञ करने चला, अपने पुत्रों को उसने भेजा कि जा-

कर समुद्र मेंसे एक कछुआ पकड़ लाओ, सो वे तीनों भाई समुद्र किनारे गये। वहां कछुआ मिला, तब बड़े भाई ने दोनों छोटे भाइयों से कहा कि तुम दोनों मेंसे एक इसे पकड़कर पिता के यज्ञार्थं ले चलो मैं तो इसे पकड़ नहीं सकता क्योंकि इसमें कीचड़ लगा है। उसका ऐसा वचन सुन उन दोनों ने उत्तर दिया, "यदि तुमको छूने में घृणा होती है तो हम दोनों को क्यों न लगे।" सो सुन जेठरा बोला "ऐ मूर्खो! कछुआ ले चलो, नहीं तो यदि तुम्हारे करते पिता का यज्ञ भङ्ग हुआ तो तुम दोनों तो नरक में गिरोहीगे तुम्हारे कारण पिता को भी नरक में जाना पड़ेगा।" उसका ऐसा कथन सुन वे दोनों हँस के बोले,—"क्या बात है, ठीक कहा, हमारा ही धर्म्म जानते हो क्या अपना धर्म्म भी कुछ ज्ञात है?" तब जेठरा बोला "अरे क्या तुम नहीं जानते हो कि मैं कैसा चगड़ हूं, मैं भोजन में बड़ाही प्रवीण हूं इससे मैं घृणित का छूना अच्छा नहीं समझता हूं।" जेठरे की ऐसी उक्ति सुन मझले ने कहा, "मैं तुमसे बढ़कर चगड़ हूं, मैं स्त्रियों में बड़ा प्रवीण हूं।" मझले के इतना कहने पर जेठरा फिर बोला "तो यह लहुरा कछुआ ले चले," तब लहुरा भौंह चढ़ाकर बोला, "हे मूर्खो! ऐसा न कहो मैं तुम दोनों की अपेक्षा में बढ़कर चगड़ हूं सुनो मैं बिछौने में बड़ा प्रवीण हूं।" इस प्रकार तीनों भाइयों में कलह होने लगा और इतना बढ़ा कि निपटेरा होना दुस्तर हो गया।

अन्ततोगत्वा वे तीनों कूर्म को वहीं छोड़ विटङ्कपुर में उस देश के अधिपति राजा प्रसेनजित् के समीप न्याय के निमित्त गये; वहां पहुंच प्रतीहार के द्वारा उन्होंने अपने आने का वृत्तान्त महाराज के पास भेजा। महीपति ने उन्हें भीतर न्यायालय में बुलाया सो तीनों ने जाकर उन्हें यथावत् अपना २ वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने कहा कि अच्छा तुम सब यहीं ठहरो तो क्रम से सबकी परीक्षा करलूंगा। महाराज की ऐसी बात सुन तीनों वहीं टिके।

जब भोजन का समय हुआ तो राजा ने उन तीनों भाइयों को बुला भेजा और पहिले उनके समक्ष उत्तमोत्तम राजार्ह पक्वान्न षट्रस सुस्वाद भोजन रखवाये इसके उपरान्त अन्यान्य लोगों के सामने भोजन चुने गये, और सब लोग खाने लगे केवल वह भोजनचङ्ग नहीं खाता था, घृणा के साथ नाक सिकोड़ा करता था।

तब राजा ने उससे पूछा, "ब्रह्मन्! ऐसे २ स्वादिष्ट और सुगन्धित षट्रस भोजन आपके सामने साम्हने परोसे गये हैं आप उन्हें पाते क्यों नहीं हैं ?" तब ब्राह्मण ने धीरे से उत्तर दिया "महाराज! जिस चावल का यह भात बना है, उस धान में शव जलाने का धूवां लग गया था उसी की गन्धि इस भात में आती है. इसी कारण इस स्वादिष्ट भोजन के भक्षण करने की रुचि मेरी नहीं होती है।" उसका ऐसा कथन सुन राजा ने औरों से पूछा परन्तु सभों ने सूंघ के उत्तर दिया कि महाराज इसमें तो किसी प्रकार की दुर्गन्धि नहीं ज्ञात होती है प्रत्युत भली सुगन्धि आ रही है। परन्तु राजा को कब चैन पड़े उन्हें तो इसका निर्णय करना था सो वह लगे खोज करवाने अन्त में उन्हें पता लगा कि गांव के निकट श्मशान के समीपवाले खेत के धान के वे चावल थे। इसपर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उस ब्राह्मणकुमार के प्रति बोले "भाई तुम सचमुच भोजन के विषय में बड़े ही प्रवीण हो, अच्छा इसे मत खाओ. दूसरा कुछ खा लो।"

भोजन करके तीनों विप्र जब अपने डेरे पर चले गये तब महाराज ने अपनी एक उत्तम गणिका को बुलवाया और सायङ्काल उस सर्वाङ्गसुन्दरी को उस ब्राह्मण के पास भेजा जो कि नारीचङ्ग था। वह शरच्चन्द्रमुखी रतिस्वरूपा राजा के एक सेवक के साथ उस ब्राह्मण के वासभवन में पहुंची। उसके घरमें आतेही वह भवन उसकी प्रभा से देदीप्यमान हो गया किन्तु उस नारीचङ्ग की दशा तो कुछ और ही हो गयी; वह तो मूर्छित सा होने पर हो गया; बायें हाथ से अपनी नाक बन्द कर उसने राजा के सेवकों से कहा, "अरे २ इसे चटपट यहां से निकालो नहीं तो मैं मरा; अरे इसके शरीर से तो बकरी की दुर्गन्धि निकलती है मैं सह नहीं सकता; झट इसे यहां से ले जाओ।" उसके ऐसे वचनों से वह वारवधू तो दङ्ग हो गयी इस अवसर में सेवकों ने राजा के समक्ष ले जाकर उसका वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने उस ब्राह्मण को बुलाया और उससे कहा "ब्रह्मन्! इस ललनाललाम के शरीर में श्रीखण्ड कपूर और कालागुरु लगी हैं, जिनकी सुगन्धि से समस्त दिशाएँ वासित हो रही हैं भला उसके शरीर में बकरी का गन्ध कहां से आया।" राजा का ऐसा वचन सुनकर भी ब्राह्मण को विश्वास न हुआ तब तो महाराज को बड़ी चिन्ता हुई वह लगे विचारने। अन्त में उन्हें उस वेश्या ने ही

बतलाया कि महाराज! जब मैं बहुत नन्हीं थी उसी समय, सुनती हूं, मेरी माता और धाई से वियोग हो गया और मैं बकरी का दूध पिलाकर पाली गयी।" उसके ऐसे कथन से राजा बड़े विस्मित हुए और उस नारीचङ्ग की पटुता की प्रशंसा करने लगे।

इसके उपरान्त नृपति ने सेजचङ्ग की परीक्षा का उपक्रम किया; उन्होंने एक पलङ्ग बिछवाया तिसपर सात गद्दे लगे तिनके ऊपर अति स्वच्छ पयःफेननिभ अति चिक्कण चादरा बिछाया गया और उस पलङ्ग पर पलङ्गचङ्ग महाराज को सोने की आज्ञा मिली और वह ब्राह्मण उसपर सोया। कोई आधा पहर बीता होगा कि वह विप्र उस पलङ्ग पर से हाथ बांधे उठ खड़ा हुआ और व्यथा के मारे कराहने लगा। जो राजपुरुष वहां विद्यमान थे उन्होंने उसके शरीर पर बाल का टटका चिन्ह देखा जो उस समय लाल था। सो उन्होंने जाकर राजा से वह वृत्तान्त कह सुनाया; उन्होंने उनको आज्ञा दी कि देखो तो सही गद्दों के नीचे कुछ है तो नहीं। सेवक सब जाकर एक एक गद्दा उठाकर देखने लगे तो सबके नीचेवाले गद्दे के नीचे पर्यङ्क के पृष्ठ भाग पर एक बाल चिपका था, सो उन्होंने ले जाकर राजा को दिखा दिया। राजा ने उस ब्राह्मण को बुलाकर देखा तो सचमुच उसके शरीर पर बाल का चिन्ह मिला, तब तो वह बड़े अचम्भित हुए कि सात गद्दे भेदकर इसके शरीर में यह बाल कैसे लगा; बड़ाही आश्चर्य है। इसी चिन्ता में महाराज की रात बीती। प्रातःकाल होने पर राजा ने उन तीनों को सभा में बुलाया और सभों से कहा कि इनकी सुकुमारता बड़ीही अद्भुत है; सचमुच ये अत्यन्त सुकुमार हैं। इतना कह उन्होंने प्रत्येक को एक एक लक्ष रुपये देकर विदा किया। अब वे बड़े आनन्द से वहीं रहने लगे। किस काम के लिये आये थे इसका स्मरण भी किसी को न रहा तो इसकी कब चिन्ता हो सकती है कि पिता का जो यज्ञभङ्ग हुआ उसका कितना पाप हुआ था।

ऐसी अद्भुत कथा महाराज त्रिविक्रमसेन को सुनाय वह वेताल कन्धेपर ही से पूछने लगा 'महाराज! पूर्वशाप का विचार करके इस बात का उत्तर दे दीजिये कि इन भोजन नारी शैयाचङ्गों में से किसको चङ्गता सबसे अधिक ठहरी।" वेताल का ऐसा प्रश्न सुनतेही अति धीमान् महाराज त्रिविक्रमसेन बोले "भाई मेरे

विचार में तो यह आता है कि सेजचंग की चंगता सर्वश्रेष्ठ ठहरी जिसके अंग में कि बाल का प्रत्यक्ष चिन्ह दीख पड़ा। उन दोनों की बात भी पक्की उतरी पर इसमें उनकी प्रवीणता का ऐसा प्रबल प्रमाण नहीं जैसा कि इसका। हो सकता है कि प्रमाण पाते पाते उनका अनुभव ऐसा हो गया था इससे वे चट जान गये पर इसकी सुकुमारता तो असीम ठहरी इससे यही सर्वश्रेष्ठ चंग समझा जायगा"।

दोहा।

इमि कहते नृपकन्ध ते खसक्यो सो वेताल।
राजाहू पिछियाय के जा पहुंचे तत्काल॥

सोलहवां तरङ्ग।

(नवम वेताल)

राजा त्रिविक्रमसेन फिर उसी अशोकवृक्ष के नीचे पहुंचे और वेताल को उस पर से उतार कन्धे पर रख पूर्ववत् चले, तब वेताल ने उनसे कहा "राजन्! कहां राज्य और कहां ऐसी घोर निशा में श्मशान का घूमना! क्या आप नहीं देखते हैं कि यह श्मशान कैसा भयङ्कर है; भूत प्रेत पिशाच नाच रहे हैं, चिता से जो धूम उठता है उससे अन्धकार का आधिपत्य छाय रहा है। हा! कैसे कष्ट की बात है! एक भिक्षुक के कारण आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा है, आपका हठ भी तो बड़ा अनूठा है। अच्छा सुनिये आपके चित्तविनोदार्थ एक प्रश्न उठाता हूं, ध्यान देकर सुनिये।"

अवन्ती में एक नगरी है जो युग के आदि में देवताओं के द्वारा बनाई गयी थी; वह नगरी मानो शिवीतनु है जहां उद्दामभोगी विभूषणवत् थे। सत्ययुग में जो पद्मावती नाम से विख्यात थी, त्रेता में उसका नाम भोगवती पड़ा, द्वापर में उसका नाम हिरण्यवती था सोही अब कलियुग में उज्जयिनी नाम से ख्यात है।

उस नगरी में नृपमुकुटमणि वीरदेव नामक राजा हुए, उनकी पटरानी का नाम पद्मरति था। राजा के कोई पुत्र न था सो इससे वह बड़ेही उद्विग्न रहा करते थे। एक समय उनके मनमें आया कि भगवान् शङ्कर की आराधना करें तो

पुत्र हो, बस महाराज इसी अभिलाषा से पत्नी सहित मन्दाकिनी के तट पर गये और वहां भगवान् शङ्कर की आराधना में तपस्या करने लगे। इस प्रकार तपस्या करते २ जब कुछ दिन व्यतीत हो गये तो आशुतोष भगवान् उनपर प्रसन्न हुए, और जब कि एक दिन वे स्नान तथा देवार्चनादि विधि से सुचित्त हो चुके थे कि उनको यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी, "राजन्! तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा जो कि बड़ा शूर और कुलदीपक होगा और एक कन्या भी होगी जिसके रूप के आगे अप्सरा भी हार मानेगी।" यह आकाशवाणी सुन राजा वीरदेव कृतार्थ हो गये और अभीष्ट की सिद्धि जान पत्नी सहित अपनी नगरी को लौट आये।

कुछ कालोपरान्त रानी पद्मरति के एक पुत्र हुआ जिसका नाम राजा ने शूरदेव रक्खा, पश्चात् समय पाकर एक कन्या भी उत्पन्न हुई। राजकुमारी का सौन्दर्य ऐसा कि अनङ्ग के भी रति होती इस हेतु उनका नाम महाराज ने अनङ्गरति रक्खा।

क्रमानुसार राजकुमारी सयानी हुईं और उनके उपयुक्त वर की चिन्ता महाराज के हृदय में समायी सो वह सदा इसी बात का चिन्तवन किया करते थे कि क्योंकर मेरी दुलारी अनङ्गरति को उपयुक्त वर मिले। इस हेतु, पृथ्वी में जितने राजा महाराज थे, महाराज वीरदेव ने सबके चित्र मँगवाये। सुन्दर से सुन्दर भूपतियों के चित्र आये पर राजकुमारी के योग्य एक भी पात्र न ठहरा तब तो राजा बड़े ही उदास हुए, उन्होंने वात्सल्य से अपनी पुत्री से कहा, "बेटी मैं तो तेरे योग्य एक भी वर नहीं देखता हूं सो अब तू एक काम कर कि सब राजाओं को बुलाकर स्वयंवर करले; जिसको तू प्रसन्न करे वही तेरा पति होवे।" पिता का ऐसा वचन सुन राजदुलारी बोली "तात! यह लज्जा की बात है, इससे मैं ऐसा उत्साह नहीं कर सकती, पर हां यदि कोई युवा किसी अपूर्व विज्ञान का ज्ञाता मिल जाय बस उसी के साथ आप मेरा विवाह कर देवें, बहुतों के बुलाने की क्या आवश्यकता है।" अपनी कन्या अनङ्गरति का तादृश वचन सुन महाराज उक्त गुणसम्पन्न वर की खोज में उसी दिन से प्रवृत्त हुए। और यह बात भी दिग्दिगन्त में व्याप्त हो गयी कि राजकुमारी अनङ्गरति एतादृश वर चाहती हैं।

यह बात जब चहुंओर व्याप्त हो गयी तब दक्षिण देश से चार पुरुष वीर,

विज्ञानी और अति सुन्दर राजकुमारी के हेतु वहां आये; राजा वीरदेव ने सभों का समुचित सत्कार किया, तब उन चारों ने महाराज से यह कहा कि हम राजकुमारी के प्रार्थी हैं इतना कह अपना २ वृत्तान्त कहने लगे। उनमेंसे एक ने कहा कि मैं जाति का तो शूद्र हूं नाम मेरा पञ्चपट्टिक है; मैं अकेले प्रतिदिन पांच जोड़े वस्त्र प्रस्तुत करता हूं; उनमेंसे एक तो देवता को चढ़ा देता हूं, एक ब्राह्मण को दान करता हूं और एक आप पहिनता हूं और एक अपनी भार्य्या के हेतु रख छोड़ता हूं, यदि यह मेरी भार्य्या हो जाय तो पावेगी। पांचवां जोड़ा बेंचकर अन्नपानादि का व्यापार चलाता हूं। सो मैं एक विज्ञानी हूं अब अनङ्गरति मुझे दी जांय।

जब एक पुरुष अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुना चुका तब दूसरा बोला, "राजन्! मैं भाषाज्ञ नामक वैश्य हूं, सब पशु पक्षियों का रव मैं समझता हूं, तो अब राजकुमारी मुझे मिलें।

दूसरे के इतना कह चुकने पर तीसरा बोला, "राजन्! मैं अपनी भुजाओं के प्रभाव से संसार में विख्यात खड्गधर नामक क्षत्री हूं, जगतीतल पर खड्गविद्या में मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई हैही नहीं सो महाराज यह अपनी कन्या मुझे व्याह दीजिये"

इतना कह तीसरा जब चुप हो गया तब चौथा बोला, 'महाराज! मैं जीवदत्त नामक ब्राह्मण हूं, मेरी विद्या ऐसी है कि मृत जीवों को लाकर जीवित दिखा देता हूं सो वीरचर्य्या में सिद्ध मुझको यह राजकुमारी अपना पति बना लेवें"

दिव्यवेष तथा आकृतिसम्पन्न उन चारों की ऐसी उक्ति सुन राजा वीरदेव तथा राजकुमारी का मन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया कि अब क्या किया चाहिये।

इतनी कथा सुनाय वेताल ने राजा त्रिविक्रमसेन से पूछा कि महाराज! अब आप बतलाइये कि राजकुमारी अनङ्गरति का विवाह किसके साथ होना चाहिये, यदि आप न बतलावें तो पूर्वशाप आप पर पड़ेगा। उसका ऐसा प्रश्न सुन महीपति त्रिविक्रमसेन बोले, "योगेश्वर! यह केवल मौनभङ्ग करा करा आप कालक्षेप करा रहे हैं नहीं तो यह प्रश्न ही क्या गहन है। भला आपही कहिये कि क्षत्रियाशूद्रपट्टकार को कैसे दी जा सकती है? फिर क्षत्रिया!वैश्य ही को क्योंकर दी जावे? जो वह पशुओं की भाषा जानता था तो जाना करे उससे साध्यही

क्या है ? फिर वह तीसरा जो ब्राह्मण था उसे तो पतित समझना चाहिये क्योंकि यह काम तो इन्द्रजाल का है, उसीसे वह अपने को वीर मान बैठा था तो क्या वह वास्तव में वीर हो सकता है ! सो उसके साथ भी राजकुमारी का विवाह नहीं हो सकता। हां चतुर्थ जो क्षत्रिय है बस उसी के साथ अनङ्गरति का विवाह होना चाहिये क्योंकि एक तो वह अपनी जाति का ठहरा पुनः खड्गधर जो विद्या उसके कुल की ठहरी।"

शार्दूलविक्रीडितम्।

या भांति नृपकेर वाक्य सुनिकै खसक्यो तुरत कन्ध तें।
जा बेताल पस्यो जु योगबल तैं आस्थान में आपही॥
राजा भी वहि भांति लेन तिहि को पाछे चले वाहि के।
है उत्साह जहां विषाद तहवां कैसे भला रह सके॥

सत्रहवां तरङ्ग।

(दशम वेताल)

अब महाराज फिर उसी शिंशपा वृक्ष के नीचे पहुँचे और वेताल को उतार कन्धे पर रख पूर्ववत् वहां से चले। तब वेताल कन्धे पर से इस प्रकार राजा से कहने लगा, "महाराज आप थक गये हैं, सुनिये आपको एक कथा सुनाता हूं इससे आपका श्रम कुछ दूर हो जायगा।

भूपालशिरोमणि वीरबाहु करके एक बड़े प्रतापी राजा हो गये हैं, उनका ऐसा प्रचण्ड प्रताप था कि समस्त राजन्यवर्ग उनकी आज्ञा शिरोधार्य्य करता था। अनङ्गपुर नामक उनका नगरोत्तम राजनगर था, तहां अर्थदत्त नामक एक बड़ा धनी महाजन रहता था। उस वणिक्पति के दो सन्तान थे जिनमें धनदत्त नामा जेठा पुत्र था और लहुरी एक कन्या थी जिसका नाम मदनसेना था और वह कन्या रत्न थी।

एक समय की बात है कि वह मदनसेना अपनी सखियों के साथ निज उ-द्यान में क्रीड़ा कर रही थी कि उसके भाई के मित्र धर्मदत्त नामक वणिक्पुत्र

की दृष्टि उसपर पड़ी । लावण्यरस परिपूर्ण निर्भरिणीस्वरूपा उस ललनाललाम को देखतेही उसकी गति विपरीत हो गई; जिसके उठते कुचकुम्भ युगल दोनों तट से शोभायमान थे, त्रिवलितरङ्ग सदृश, जिसमें यौवनरूपी मत्त द्विरद क्रीड़ा कर रहा है । बस स्मर के वाणों से विद्ध हो वह बनिये का पुत्र अति सन्तप्त हो गया उसकी चेतना सब नष्ट हो गयी । कुछ कालोपरान्त वह सचेत हुआ तब सोचने लगा, "अहो ! इसके सौन्दर्य्य का कहां लों वर्णन किया जाय, यह चमकती चपला है अथवा कामदेव का अति तीक्ष्ण वाण है जो मेरे हृदय के छेदने को बनाया गया है । इत्यादि २ अनेक प्रकार की भावनायें वह करता रहा और ऐसा विकल था जैसे चकवा । इसी प्रकार की चिन्ता में वह दिन तो किसी प्रकार बीता, सन्ध्या हुई । मदनसेना अपने भवन में पैठी और धर्म्मदत्त के चित्त में उसके न देखने की व्यथा । उस ललना के अदर्शन की व्यथा जो उस वणिक्तनय के हृदय में थी उस दुःखाग्नि के सन्ताप से सन्तप्त हो लोहितवर्ण भगवान् भास्वान् भी मानों पश्चिम समुद्र में डूब गये और उस सुमुखी के मुखाब्ज के निरीक्षण से मानो लज्जित हुआ चन्द्रमा उसे महान्तर्गता जान धीरे २ निकला ।

अब धर्म्मदत्त अछताता पछताता विलपता अपने घर गया और उसी प्रियतमा की चिन्ता में पलङ्ग पर लेट गया और व्याकुलता के मारे करवटें बदलने लगा। उसके भाई बन्धु और इष्ट मित्र इस विकलता का कारण पूछने लगे पर वह कुछ उत्तर ही न देवे; स्मरग्रह उसपर चढ़ा था जिससे उसकी मति मारी गयी थी वह उत्तर दे तो क्या देवे । अतः किसी प्रकार उसे नींद आई तब स्वप्न में भी उसी प्रियतमा को देखता है और अति उत्कण्ठित हो क्या २ अनुनय नहीं करता है।

अब वह वणिक्पुत्र प्रातःकाल जो उठा तो उसी उद्यान में गया तहां क्या देखता है कि एकान्त में बैठी वह अपनी सखी की प्रतीक्षा कर रही है, बस वह निर्भय हो उसके पास चला गया और चाहता था कि आलिङ्गन कर ले किन्तु कुछ समझ उसके चरणों पर गिर के गिड़गिड़ाकर विनती करने लगा । उसकी तादृश विनती सुन वह बोली, "मैं कन्या हूं और दूसरे की स्त्री हूं तो तुम्हारी स्त्री अब क्योंकर हो सकती हूं ; सुनो इसमें कारण यह है कि पिताजी मुझे समुद्रदत्त वणिक् को दे चुके हैं अब दो चार दिनों में मेरा विवाह होनेवाला है सो तुम

चुपचाप यहां से चले जाओ नहीं तो कोई देख लेगा तो बड़ा दोष होगा। जब उसने बारबार ऐसा कह कहकर विनती कियी तब धर्म्मदत्त उससे कहने लगा, "प्रिये! जो कहो सो सब सही पर तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता।" उसका ऐसा कथन सुन वह सहम गयी कि कहीं ऐसा न हो कि यह बलात्कार कर बैठे अतः यह उपाय रचकर बोली कि "अच्छा २ मेरा विवाह तो हो जावे, मेरे पिता बहुत दिनों से कन्यादान करने की लालसा करते आये हैं सो उसका फल वह पा लेवें. फिर तो मैं तुम्हारी ही हूं तुम्हारे प्रेम से मैं मुग्ध हो गयी हूं बस विवाह हो जाने की देरी है मैं तुम्हारे पास अवश्य आऊँगी यह तुम निश्चय कर रखो।" यह सुन वह बोला "भला यह कब हो सकता है कि मेरी प्रिया का भोग दूसरा ही पहिले करे, भला पराये से उपभुक्त कमल में क्या अलि की रति हो सकती है?" उसके ऐसे कथन पर उस कन्या ने उत्तर दिया "अच्छा तो मैं ऐसा करूँगी कि विवाह हो जाने पर पहिले तुम्हारे ही पास आऊंगी पश्चात् उस पति के निकट जाऊंगी।" उसके इतना कहने पर भी वह वणिक्पुत्र उसका पांव नहीं छोड़ता था, वह सोचता था कि क्योंकर इसका विश्वास किया जाय हां यह शपथ करे तो और बात ठहरी; अन्ततोगत्वा मदनसेना ने शपथ किया तब उस दुष्ट ने उसका पिण्ड छोड़ा।

अब उससे मदनसेना छूटी तो सही पर उसका चित्त बड़ा उद्विग्न रहा कि हाय! क्योंकर वचन निबाहूंगी और क्योंकर इस दुष्ट से पिण्ड बचाऊंगी। अस्तु विवाह का दिन भी आ गया और शुभ लग्न में मदनसेना का विवाह समुद्रदत्त से हो गया और वह अपने ससुराल गयी।

दिन भर तो मङ्गल और उत्सव में बीता, रात आयी और मदनसेना अपने पति के शयनागार में गयी। एकही पलंग पर दोनों विराजमान हुए, अब समुद्रदत्त आनन्द के मारे फूला नहीं समाता था कि ऐसी रतिस्वरूपा मदनसेना समक्ष आयी है। बड़ी उत्कण्ठा उसके हृदय में थी कि कब समागम हो। वह तो संगम चाहता था पर मदनसेना उसपर सम्मत नहीं होती थी, उसके मन में तो यह चिन्ता विद्यमान थी कि उस वणिक्पुत्र से जो वचन बांध चुकी हूं वह ऋण कैसे पटे। वह विचारा समुद्रदत्त विनती करने लगा किन्तु उसकी विनती पर इसकी

आंखों से आंसू की धारा बह चली । तब समुद्रदत्त ने अपना माथा ठोंका और मनमें यह विचार किया कि मैं इसका अभिमत नहीं हूं। उसने कहा, "सुन्दरि! यदि मैं तुम्हारा अभिमत नहीं हूं तो मुझे तुमसे कुछ काम नहीं, जाओ, जो तुम्हारा प्यारा हो उसके पास जाओ।" इतना सुनतेही मदनसेना ने अपना शिर झुका लिया और बड़े मन्द स्वर से उससे निवेदन किया, "आर्यपुत्र ! आप मुझे प्राणों से अधिक प्यारे हैं पर मेरी एक विज्ञप्ति है सो सुन ली जाय। आप हर्ष के साथ उठिये और मुझे अभयदान देवें तथा शपथ करें तो मैं निवेदन करूं। 'अच्छा कहो,' जब वह इतना वचन बड़ी कठिनता के साथ बोला तब मदनसेना लज्जा विषाद और भय के साथ फिर कहने लगी, "आर्यपुत्र ! एक दिन की बात है कि मेरे भाई के मित्र युवा धर्मदत्त ने मुझे उद्यान में अकेली देखा, देखतेही वह स्मरातुर हो गया और मुझे रोक के खड़ा हो रहा और मेरा साध्वी धर्म्म बिगाड़ना चाहता था; उस समय मैंने उसे बहुत समझाया पर वह क्यों माने; तब मैंने विवाह की बात उसे कह सुनायी कि अच्छा मेरे पिता को कन्यादान का फल पा लेने दो, पर वह अपना हठ न छोड़े तब मैंने शपथ किया कि विवाहोत्तर मैं पहिले तुम्हारे ही पास आऊँगी। सो प्रभो ! मुझे अपना वचन सत्य करना उचित है इससे आपसे विनती करती हूं कि मेरी प्रतिज्ञा पूरी करने दीजिये । बस मैं उसके पास जाकर तुरन्त चली आऊँगी; बालकपन से जो सत्य मैं पालती आयी उसका छोड़ना उचित नहीं है।" उसका यह निवेदन क्या था मानों समुद्रदत्त पर वज्र टूट पड़ा; वह तो भकुआ बन गया परन्तु कर क्या सकता था क्योंकि वचनबद्ध तो पहिलेही हो चुका था अब क्या हो। वह अपने मनमें विचारने लगा, "हा ! धिक् हा ! यह तो किसी दूसरे के प्रेम में अनुरक्त है, इससे यह जावेगी तो अवश्य, तो मैं अपना सत्य क्यों छोड़ूं, यह पराये की स्त्री है हा ! इसके विवाह से मुझे क्या लाभ हुआ।" इतना विचार उसने जाने की अनुमति दी।

अब मदनसेना उठी और पति के घर मेंसे निकली, इतने में उदयाचल पर शितांशु का शुभागमन हुआ, जिसके कर स्पर्श से पूर्व दिशा हँसने लगी; अन्धकार अपनी प्रिया के आलिङ्गनार्थ गिरिकन्दरा में जा घुसा और भृङ्ग दूसरे कुसुमवन में चले गये। इस रात्रि में मदनसेना अकेली चली जा रही है; इसी अवसर में एक

चोर आ पहुंचा और दौड़कर उसका अञ्चल पकड़ रोककर खड़ा हो गया और पूछने लगा कि तुम कौन हो बोलो कहां जाती हो? अब तो वह थर थर कांपने लगी तथापि धैर्य धर बोली "तुम्हें क्या, छोड़ो मुझे, मैं किसी काम से जाती हूं।" चोर ने कहा "भला मुझ चोर के हाथ से तुम कब बच सकती हो।" इतना सुन वह बोली "तो क्या करोगे, मेरे आभरण ले लो।" चोर बोला "हे मुग्धे! यह तुम क्या कह रही हो? इन पत्थरों से मुझे क्या? आहा! ऐसा चन्द्रकान्त मणि सा मुख, तार्क्ष्यरत्न से काले २ केश, हीरे सी कटि, सुवर्ण से अङ्ग, पद्मराग समान चरण; ऐसे रत्नों की खानि जगत् की आभरणस्वरूपा तुमको तो मैं कदापि नहीं छोड़ने का।" चोर की ऐसी बात सुन वह वणिक्सुता बड़ी घबड़ायी, पर विवश है कर क्या सकती है, अन्ततोगत्वा जब कुछ उपाय न सूझा तो अपना सारा वृत्तान्त सुना गयी पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना कर कहने लगी "अच्छा तो एक काम करो, क्षणभर के लिये मुझे जाने दो कि मैं अपने सत्य का पालन कर लूं, तुम यहीं ठहरे रहो मैं तुरन्त लौटूंगी। मेरी बात का विश्वास करो, मैं अपना वचन कभी भंग न करूँगी। चोर को उसकी बात का विश्वास हो गया कि यह सत्य-पालनेवाली है सो उसने उसे छोड़ दिया।

उधर धर्मदत्त उसी स्थान में मदनसेना के आने की प्रतीक्षा कर रहा था और इधर से यह पहुंच ही गयी। अभीष्ट प्रिया को ऐसे एकान्त में पाकर उसने पूछा कि कहो तो तुम क्योंकर आने पाई?" इसपर मदनसेना अपना वृत्तान्त आद्यन्त सुना गयी। तब तो धर्मदत्त की आंखें खुल गयीं, क्षणभर कुछ सोच विचार वह बोला, "भद्रे! तुम्हारे सत्य से मैं बड़ा सन्तुष्ट हो गया हूं, तुम अब पराये की स्त्री हो तुम्हें लेकर मैं क्या करूंगा सो जबलों कोई देखता नहीं जैसे आई हो वैसेही चली जाओ।"

चलो धर्मदत्त ने तो अपना धर्म निबाहा और उससे मदनसेना का पिण्ड छूटा सो वह लौटकर उस चोर के पास पहुंची जो कि मार्ग में उसकी बाट जोह रहा था। उसको आयी देख चोर ने उससे पूछा कि कहो जब तुम वहां गयी तब क्या हुआ? उसके प्रश्न पर मदनसेना सब वृत्तान्त सुना गयी कि क्योंकर उस धर्मदत्त से मुक्ति मिली। यह सुन वह चोर भी चेत गया और बोला, "यदि यह

बात है तो मैंने भी तुम्हें छोड़ दिया, मैं तुम्हारे सत्य से बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ सो तुम अपने आभरणों सहित अपने घर चली जाओ।"

इस प्रकार उसका सतीत्व बच गया और वह अपने घर को चली. पीछे पीछे वह चोर उसकी रखवाली करता घर लौं पहुंचा गया। मदनसेना गुप्तरूप से अपने पति के समीप आकर उपस्थित हो गयी, पति ने उसका वृत्तान्त पूछा, तब वह आद्यन्त समस्त वृत्तान्त सुना गयी। समुद्रदत्त ने भी उसको देखकर समझ लिया कि इसका सतीत्व भंग नहीं हुआ क्योंकि उसके मुख की छवि कुछ भी बिगड़ी नहीं थी न तो अंग पर सम्भोग के कुछ लक्षणही प्रतीत होते थे। तब वह अपनी सत्यवती और अदुष्टमन भार्य्या को पाकर अति प्रसन्न हो गया और कहने लगा प्रिये तुम क्यों न ऐसी हो, तुम्हारा कुल कैसा है आहा! धन्य भाग्य। अब समुद्रदत्त अपनी प्रिया मदनसेना के साथ सुख से आनन्द लूटता हुआ रहने लगा।

दोहा।

इहि विधि कथा सुनाय कै, तबहिं पितृवन ठौर (१)।
बोल्यो अस बेताल पुनि, सुनहु भूप सिरमौर ॥ १ ॥
इन तीनों के (२) मध्य है, कौन विशेष उदार (३)।
नहिँ उत्तर जो देहि तौ, जानिय सीसहिँ छार ॥ २ ॥
मौन त्यागि बोल्यौ नृपति, सुनहु बचन अवधूत।
त्यागी चोर विशेष है, नहिँ दोउ बनियापूत ॥ ३ ॥

सोरठा।

पति त्याग्यो यह जान, यहि कर मन लग आन सों।
राखे पाप महान, जानि बूझि किमि रखि सकत ॥ १ ॥

चौपाई।

दूजो त्यहि त्याग्यो यहि हेता, गहि है तापति राजनिकेता (४) ॥
पाइ काल पुनि वेग थंभान, छोड़ि दियो सो रहो सुजान ॥ २ ॥

(१) श्मशान। (२) दोनों वणिक् और चोर के बीच। (३) त्यागी। (४) घर-न्यायालय।

चोर गुप्तचारी निरपेख (१) पाप कर्म्म में सदा सरेख (२) ॥ ३ ॥
रतन सहित लहि सुन्दर नार, त्यागि दियो सो बड़ो उदार ॥४॥

छन्द।

खसकि पद्यो नृप कंध तैं वेताल इतना सुनतही ।
राजा त्रिविक्रमसेन तिहि के चले अनुपद (३) तुरतही ॥
'सागर न तज मरजाद निज लहरें अनेकन आवहीं'।
तिमि धैर्य्यसिन्धु न धैर्य्य त्यागत लाख दुःखहिं पावहीं ॥

अठारहवां तरङ्ग।

(ग्यारहवां वेताल)

तब महाराज त्रिविक्रमसेन पुनः उसी अशोकवृक्ष के नीचे पहुंचे और वेताल को उतार कन्धे पर रख उसी प्रकार चले; तत्पश्चात् वेताल उनके कन्धे पर से बोला, "महाराज सुनिये आपको एक विचित्र कथा सुनाता हूं।"

पूर्वकाल की बात है कि उज्जयिनी में धर्मध्वज नामक एक राजा थे; जिनके तीन भार्य्याएं थीं जो कि उनको प्राणों से भी प्रिय थीं। उनमेंसे एक रानी का नाम इन्दुलेखा, दूसरी का तारावली और तीसरी का मृगाङ्कवती; तीनों रानियां असामान्य वपु और गुणसम्पन्न थीं। राजा अपने समस्त शत्रुओं को जीतकर उन तीनों महिषियों के साथ आनन्द से रहते थे।

एक समय वसन्त ऋतु में वसन्तोत्सव मनाने के लिये महाराज अपनी भार्य्याओं के साथ उद्यान में विहार करने गये, तहां फूली हुई लतायें झुक गयी थीं जिनपर झुण्ड के झुण्ड भौंरे टूटे पड़ते थे जिनकी शोभा उस समय ऐसी भासती थी कि लतायें क्या हैं मानों अनंग की चापयष्टियां हैं जिनकी प्रत्यञ्चा वह भ्रमरश्रेणियां हैं, ये मानों मधु से सज्जित की गयी हैं। वृक्षों की डालों पर कोयलें कुहुकें कर रही हैं, मानों मानसजन्मा (४) का आदेश है क्योंकि वह तो स्वयं

(१) अपेक्षारहित। (२) चतुर। (३) पीछे। (४) कामदेव।

सम्भोगैक रस है, सबको उसी में प्रवृत्त किया चाहता है। वासव समान राजा ने रानियों के साथ मद्यपान किया जोकि मानों कन्दर्प का जीवन है। रानियों की नि:श्वास की गन्धि से सुगन्धित, तथा उनके होंठों की लालिमा से रक्तवर्ण, पुन: उनके पीने से बची मदिरा राजा पीते और उनके संग रमण करते।

केलि के समय आनन्द में लीन महारानी इन्दुलेखा ने राजा का जो केश पकड़ा तो उस झकझोरी में उन्हीं के कान का कर्णोत्पल उनकी जांघ पर गिर पड़ा; उसकी चोट ऐसी प्रतीत हुई कि रानी हाहाकार करके मूर्छित हो गयीं। राजा ने चट उन्हें गोद में उठा लिया, परिचारिकायें दौड़ीं, चहुंओर घबराहट छाय गयी, रङ्ग में भङ्ग पड़ा; कोई शीतल जल छिड़के, कोई पंखे झाले। राजा समाश्वासन देने लगे; बहुत करते धरते रानी को चेतना आयी। राजा उन्हें लेकर राजधानी को लौट आये, वैद्यराज बुलाये गये और चोट पर पट्टी बांधकर उसकी चिकित्सा होने लगी।

रात्रि के समय जब रानी इन्दुलेखा कुछ स्वस्थ हुईं तो राजा दूसरी रानी तारावली को लेकर चन्द्रप्रासाद पर गये। रानी महाराज के अङ्क में सोई थीं कि निद्रावस्था में उनका वस्त्र अङ्ग पर से उतर गया और उधर हिमांशु जो कुछ ऊपर चढ़े तो गवाक्ष में से उनकी चन्द्रिका रानी के उसी अङ्ग पर पड़ी। "हा! मैं जली" इस प्रकार कहती हुई रानी पर्यङ्क से उठ खड़ी हुईं और अपना वह अंग सुहराने लगीं। राजा उचक पड़े और कहने लगे हां क्या हुआ? देखें तो रानी के अंग पर छाले पड़ गये हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता से पूछा "प्रिये! क्या हुआ कहो तो सही ये छाले कैसे पड़ गये?" देवी ने उत्तर दिया कि खुले अंग पर चन्द्र की किरणें पड़ीं उन्हीं से छाले पड़ गये हैं। इतना कह वेदना के मारे रानी रोने लगीं; राजा ने तुरत परिजनों को बुलाया बड़ी हड़बड़ी पड़ गयी; लोग इधर उधर दौड़ने लगे। जल छिड़के नलिनीदलों से पंखे झलने लगे; श्रीखण्ड की शय्या बिछी और उनके समस्त शरीर में उसी का लेप किया गया।

इतने में ऐसा कोलाहल सुन तीसरी रानी मृगाङ्कवती जाग पड़ीं और राजा के पास जाने के लिये अपने मन्दिर से निकलीं; रात सन्नाटी थी; दूर पर कहीं धान कूटा जाता था उसकी ध्वनि रानी के कानों में पड़ी। सुनतेही "हा! मैं

मरो" इतना कह हाथ मींजती मार्गही में धरती पर गिर पड़ीं; दासी दौड़ी और उन्हें उनके भवन में उठा ले गयो तहां पर्य्यङ्क पर पड़ी महारानी मृगाङ्कवती कलहने लगी दासी महारानी के समस्त अंग सुहराने और मलने लगी कि देखें कहीं चोट तो नहीं आयी, इतने में करकमल पर जो उसकी दृष्टि पड़ी तो क्या देखती है कि काले २ छाले पड़ आये हैं मानों कमल पर भौंरे बैठे हैं। उसने आकर महाराज को इस दुर्घटना की सूचना दी, वह आप दौड़े चले आये और विह्वल हो रानी से पूछने लगे "प्रिये! तुमको क्या हो गया है, कहो तो सही क्या रोग है?" इसपर महारानी मृगाङ्कवती ने अपने दोनों हाथ फैलाकर दिखा दिये और कहा कि मूसल का शब्द सुनतेही इनमें छाले पड़ गये। राजा के विषाद का ठिकाना न रहा, अस्तु रानी के हाथों में दाहशमनार्थ चन्दनादि शीतल द्रव्यों का लेप लगाया गया।

अब राजा धर्म्मध्वज बड़े चिन्तित हुए और मनमें शोचने लगे "अहो! यह कैसा अनर्थ आ पड़ा है कि एक रानी के तो उत्पल की चोट से घाव हो गया, दूसरी के चन्द्रिका से फफोले उपट आये तीसरी की यह दशा कि मूसल के शब्द से छाले पड़ गये। अहो! मेरी इन प्यारियों को एकसाथ ही यह क्या हो गया। हा! मेरी प्रियाओं की कैसी सुकुमारता है; यह भी एक गुण है किन्तु इस समय दोषरूप में परिणत हुआ है। ठीकही कहा है "अति सर्वत्र वर्जयेत्।" अति सौकुमार्य्य का यह फल है। इस प्रकार की चिन्ता में महाराज का चित्त डांवांडोल रहा, वह रातभर अन्त:पुर में डोलते फिरते रह गये कहीं चैन नहीं, त्रियामा शतयामा (१) सी हो गयी, किसी प्रकार बड़े कष्ट से बीती। प्रात:काल वैद्य और चिकित्सक बुलाये गये, अनेक उपाय के उपरान्त सब रानियां सुस्थ हुईं।

ऐसी अद्भुत कथा सुनाय कन्धे पर स्थित वेताल महाराज त्रिविक्रमसेन से पूछने लगा कि राजन्! कहिये तो सही इन तीनों रानियों में से अति सुकुमारी कौन ठहरीं? जान बूझकर यदि उत्तर न देंगे तो पूर्वोक्त शाप आप पर पड़ेगा। सो सुन राजा बोले कि वही रानी अति सुकुमार ठहरीं जिनके कर में मूसल को

(१) त्रियामा = त्रि = तीन, याम = प्रहर; तीन पहरवाली अर्थात् रात्रि, सो, शतयामा (सौ पहरवाली) सी प्रतीत हुई।

धमक मात्र से छाले पड़ गये । कमल और चन्द्रिका तो उन दोनों रानियों के अंगों से स्पर्श हुआ यह कुछ आश्चर्य नहीं व्रण और छाले पड़ सकते हैं किन्तु परम आश्चर्य तो यह कि बिना स्पर्श शब्दमात्र से कर में छाले उपट आवें; इससे वे दोनों रानियां इनके समान नहीं हो सकतीं ।

सोरठा ।

इतना सुनि वेताल, खसकि चल्यो निज आसपद (१) ।
पिछियाने ततकाल, राजा दृढ़ निश्चय किये ॥

उन्नीसवां तरङ्ग ।

(बारहवां वेताल)

महाराज त्रिविक्रमसेन पुनः उसी शिंशपा तरु के नीचे पहुँचे, वहां वेताल मिला, बस राजा ने चुपचाप उसे उतारकर कन्धे पर रख लिया । अब वह चुपचाप उसे उठाये हुए चलते भये कि कन्धे पर से बेताल बोला, "राजन् ! अबलों भी आप न जबे इससे आप पर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; अच्छा सुनिये, आपको एक अति मनोहर कथा सुनाता हूं जिससे आपका चित्तविनोद हो।"

अङ्गदेश में यशःकेतु नामक राजा हुए थे, मानों दूसरा कामदेव, जो कि दग्ध नहीं हुआ, अङ्गगुप्त्यर्थं (२) भूमण्डल पर आया हो । राजा ने अपने बाहुबल से समस्त वैरिवर्ग को जीत लिया । उनके मन्त्री दीर्घदर्शी नामक थे जो कि नामानुरूप गुणसम्पन्न थे; जैसे शक्र के बृहस्पति वैसेही वह दीर्घदर्शी यशःकेतु महाराज के थे । राज्य में किसी प्रकार का कांटा अब थाही नहीं क्योंकि सब शत्रु जीतेही जा चुके थे, सो राजा समस्त राजकार्य दीर्घदर्शी पर छोड़ सुखभोग की ओर प्रवृत्त हुए; युवावस्था तिसपर स्मरसारूप, फिर पूछना क्या । सदासर्वदा अन्तःपुर में रानियों के बीच पड़े रहते, राजासन पर नहीं । राग रङ्ग के गान सुना करते किन्तु हितैषियों की बात पर तनिक भी कान न देते । जालीदार झरोखों में

---

(१) आसपद = आस्पद = स्थान ।

(२) अङ्ग छिपाने के अर्थ, अङ्गदेश की रक्षा के हेतु ।

उनका मन विशेष लगता राजकार्य में तनिक भी न लगता यद्यपि उसमें भी बहुत से छिद्र (१) थे।

महामन्त्री दूरदर्शी, उधर, राज्य का भार उठाके रात दिन उसी की चिन्ता में लीन रहता। अब एक अपवाद उठा कि दीर्घदर्शी राजा को इधर उधर की भड़ी पट्टी बताय व्यसन में फँसाकर निर्द्वन्द्व राज्य भोग रहा है अब राजा नाममात्र को नृपति हैं राज्य तो करता है दीर्घदर्शी। जब यह जनरव उसके कानों में पड़ा तब तो वह अति घबराया; एकान्त में मेधाविनी नाम्नी अपनी भार्य्या से इस प्रकार कहने लगा, "प्रिये! हमारे महाराज तो निश्चिन्त हो सुख भोग रहे हैं, उनका बोझ मैं अपने ऊपर उठाकर किसी प्रकार निबाहे जाता हूं, रात दिन मेरे चित्त में इसकी चिन्ता बनी रहती है; तिसपर से यह एक बड़ा जनरव उठा है कि यह राज्य भक्षण कर गया। लोकापवाद मिथ्या होके भी महान् पुरुषों का बड़ा अनिष्टकारक हो जाता है। इसी अपवाद ने रामचन्द्र से जानकी का परित्याग करवाया। तो अब कहो ऐसी अवस्था में मुझे क्या करना उचित है?" दीर्घदर्शी की ऐसी बात सुन उसकी भार्य्या धीरा मेधाविनी अन्वर्थ बात बोली, "महामते! मैं तो यह सोचती हूं कि महाराज से तीर्थयात्रा का बहाना कर युक्ति से कुछ काल के लिये आप विदेश में चले जावें; इससे आपकी निस्पृहता सिद्ध होगी और जनापवाद भी दूर हो जावेगा; फिर आपकी अनुपस्थिति में राजा को स्वयं राज्य का भार उठाना पड़ेगा; इससे धीरे २ इनका व्यसन भी दूर हो जायगा और जब आप आवेंगे तो उस समय आपकी मन्त्रिता शुद्ध रहेगी, किसी प्रकार का दोषारोपण उसपर न होगा।

भार्य्या की ऐसी सम्मति सुन दीर्घदर्शी महाराज यशःकेतु के निकट गया, वहां कथाप्रसङ्ग में उसने अपना अभिप्राय भी कह सुनाया और निवेदन किया कि महाराज! मेरा मन चाहता है कि कुछ धर्म्म करूं सो मैं तीर्थयात्रा करने जाता हूं अब आप मुझे अनुमति दीजिये। मन्त्री का इतना कहना सुन राजा सुन्न हो गये, बोले "मन्त्रीजी आप ऐसा न कहें आप घर बैठे दानादि धर्म्म को-

(१) गवाक्ष में अनेक छिद्र (जाल में) होते हैं वैसेही राज्य में अनेक छिद्र अर्थात् उत्पात विद्यमान हो गये थे।

जिये, क्या इससे आपको स्वर्ग न मिलेगा ?" मन्त्री बोला "राजन्! दानादि में अर्थशुद्धि की अपेक्षा होती है किन्तु तीर्थ स्वयं शुद्ध हैं। जब लौं शरीर है तब लौं बुद्धिमान् को उचित है तीर्थयात्रा कर लेवे फिर इस शरीर का कुछ विश्वास नहीं इससे जहां लौं हो शीघ्र कर ले।

मन्त्री बराबर इसी प्रकार कहता जाता था और राजा बराबर निषेध करते जाते थे कि इतने में प्रतीहार आया और बोला "महाराज! भगवान् अंशुमाली व्योमसर के मध्य में स्नानार्थ उपस्थित हुए हैं सो आप अब उठें आपके स्नान की बेला बीती जा रही है।" इतना सुनकर महाराज घटपट स्नान के हेतु उठे और यात्रोन्मुख मन्त्री प्रणाम कर घर चला गया।

मन्त्री जब घर पहुंचा तो क्या देखता है कि उसकी भार्य्या तीर्थयात्रा का उपक्रम कर रही है और स्वयं भी साथ चलने पर प्रस्तुत है। अस्तु मन्त्री ने बहुत कुछ समझा बुझाकर उसे घर में छोड़ा और ऐसी युक्ति से प्रस्थान किया कि उसके भृत्यों को भी पता न लगा कि वह कहां गया।

अब दृढ़ निश्चय दीर्घदर्शी अकेला देशदेशान्तरों में भ्रमण करता हुआ नाना तीर्थस्थानों के दर्शन करता २ पौण्ड्रदेश में पहुंचा। वहां समुद्र के अति निकटवर्त्ती एक नगर में आया तहां एक शिवालय मिला सो वह उसके प्राङ्गण में बैठ गया। बहुत दूर से आने से उसके समस्त शरीर पर धूलि भर गयी थी और सूर्य्य के घाम से वह अति क्लान्त हो गया था। वहां शिवालय में निधिदत्त नामक एक बनिया पूजन करने आया, उसकी दृष्टि इस पर पड़ी, देखतेही वह समझ गया कि यह उत्तम ब्राह्मण है क्योंकि जनेऊ साक्षी दे रहा था और उसके लक्षण भी ब्राह्मण के थे। बस निधिदत्त उसे थका जान, शान्तिमय वचनों से समझा बुझा अपने घर ले गया। वहां आतिथेय निधिदत्त ने दीर्घदर्शी विप्र का सत्कार किया, स्नान कराके उत्तमोत्तम भोजन कराये; पश्चात् जब वह खा पी के सुचित्त हो विश्रान्त हुआ तब पूछा, "देवताजी! आप कौन हैं और कहां जाते हैं ?" "मैं दीर्घदर्शी नामक ब्राह्मण अङ्गदेश का रहनेवाला हूं; तीर्थयात्रा करता २ यहां आया हूं।" यह उत्तर दीर्घदर्शी ने बड़ी गम्भीरता से दिया। तब निधिदत्त ने उससे कहा, "मैं तो इस समय सुवर्णद्वीप जाने को प्रस्तुत हूं, वहां जाकर व्यापार

फेंआऊँगा । सो जब लों मैं लौट न आऊं तबलों आप मेरे घरमें रहैं, इतने दिनों में आपकी थकावट भी दूर हो जायगी फिर जाइयेगा।" उसका ऐसा कथन सुन दीर्घदर्शी ने कहा "तो, सार्थवाह ! मैं यहां रहकर क्या करूंगा मैं भी तुम्हारे संग क्यों न चलूं।" चलो दोनों के चलने की बात पक्की हो गयी और मन्त्री उसी के घर बहुत दिनों के उपरान्त एक पलङ्ग पर आज सोया और उसकी रात सुख नींद में बीत गयी।

दूसरे दिन दीर्घदर्शी उसी बनिये के साथ समुद्रतट पर गया, वहां निधिदत्त का अर्णवपोत लदा लदाया प्रस्तुत था सो वह उसपर उसके संग आरूढ़ हुआ। अद्भुत और भयङ्कर समुद्र की शोभा निरखता वह क्रमानुसार स्वर्णद्वीप में पहुंचा। कहां वह प्रधान मन्त्रित्व और कहां यह अध्व का उल्लङ्घन करते २ समुद्र पार करना ! अपयश के भीरु साधु लोग क्या नहीं करते । उस द्वीप में वह मन्त्री उस बनिये के साथ सुखपूर्वक रहने लगा और वह महाजन अपने व्यापार में लीन हुआ।

कुछ कालोपरान्त दोनों वहां से लौटे, प्रवहण चला जाता था कि इतने में तरङ्ग उठने लगी तिनके पश्चात् अकस्मात् समुद्र से कल्पवृक्ष निकल पड़ा; जिसकी अति सुभग डालियां मूंगे की थीं, और स्कन्ध सोने से चमकीले, उत्तमोत्तम मणियों के अति मनोहर कुसुम और फल लगे थे। उसके एक स्कन्ध पर रत्नजटित एक पर्य्यङ्क बिछा था तिसपर अद्भुतरूपिणी एक कमनीय कन्या सुशोभित थी। उसका अद्भुत सौन्दर्य निरख वह अपने मन में चिन्ता करने लगा कि परमात्मा यह क्या व्यापार है कि इतने में वह कन्या बीणा बजाकर इस प्रकार गाने लगी।

जगत में करम अहै परधान ॥ टेक ॥
बीज बयो जो पूर्वजन्म में भयो सो वृक्ष महान।
ताकर फल सब खान परत हैं नाहीं कोउ बंधान ॥
ऐसी गति है करम-रूख की विधिहु न पार मिटान।
लक्ष्मीनारायण पुकारि कहैं कर्म महा बलवान ॥

इतना गाकर वह दिव्यकन्यका कल्पतरु और पर्यङ्क के सहित देखते २ क्षणभर में वहीं की वहीं उसी सागर में लीन हो गयी। इस अद्भुत दृश्य से दीर्घदर्शी अत्यन्त चमत्कृत हुआ और अपने मन में चिन्ता करने लगा कि आज यह क्या

मैंने महा आश्चर्य देखा है, कहां यह सागर और कहां यह तरु जिसपर दिव्याङ्गना बैठी गा रही हो! यदि ऐसाही है तो ऐसे २ पदार्थों का आकर यह सागर बन्दनीय है। क्यों न हो लक्ष्मी, चन्द्रमा और पारिजात आदि चौदह रत्न इसी में से न निकले हैं। इस प्रकार उसे विस्मित देख नाविक सब बोले "महात्मन्! यह सनातन बात है; इसी प्रकार यह कन्या सदैव निकला करती है और पुनः तत्क्षण जलधि में डूब जाती है, आपही आज इस घटना के नवीन दर्शक हैं।" इस प्रकार उनका कथन सुन मन्त्री चित्रलिखित सा रह गया। इतने में अर्णव पोत समुद्रतीर पर पहुंचा और सब लोग उसपर से उतरे, निधिदत्त की सब सामग्री उतारी गई।

अब निधिदत्त के सेवक अति हर्ष से सब माल उसके घर ले चले, निधिदत्त के साथ २ दीर्घदर्शी मन्त्री भी उसके गृह गया; उस दिन का आनन्द वर्णनातीत हुआ, बड़ा उत्सव मनाया गया। कुछ थोड़े दिनों के उपरान्त दीर्घदर्शी ने निधिदत्त से कहा, "सार्थवाह! मैं आपके घर में बड़े सुख से रहा किसी बात का अभाव मुझको न हुआ; अब मेरी इच्छा है कि अपने देश को जाऊं, आपका कल्याण हो अब मुझे आज्ञा देवें तो बड़ी कृपा हो।"

वणिक्पति की इच्छा न थी कि उसे बिदा करे पर मन्त्री अब वहां नहीं रहा चाहता था सो वहां से चला; सत्यही उसका एकमात्र सहायक था सो वह चलता चलता दूर का मार्ग पार कर अपने देश अङ्गदेश में पहुंचा।

जब कि मन्त्री तीर्थयात्रा के हेतु गृह से प्रस्थित हुआ था उसी समय महाराज यशःकेतु ने उसके अन्वेषण के निमित्त दूतों को भेजा था; बहुत पता लगाने पर भी दीर्घदर्शी का पता न लगा तब तो वे सब अपने प्रभु के पास लौट आये। आज दीर्घदर्शी जब अपने नगर के समीप पहुंचा तब उन चारों ने उसे देखा और दौड़कर महाराज यशःकेतु को सूचना दी कि मन्त्रीजी आये हैं; राजा सुनतेही उसके स्वागतार्थ नगर के बाहर लों आये और गले से लग गये; बहुत दिनों के विश्लेष से वह अति दुःखित हो गये थे, अब राजा अपने हितैषी मन्त्री को पाराये उनके आनन्द की सीमा न रही। उसके आगमन से उनके आनन्द का थाह नहीं, बड़े गाढ़ प्रेम से अपने मन्त्री को उसी क्षण, उसी दशा में निज गृह ले गये। अ-

पने प्रासाद में ले जाकर महाराज मन्त्री से इस प्रकार कहने लगे "भला हमलोगों को छोड़कर यह आपने अपना मन कहां लगाया और ऐसी कठोर दशा में शरीर पहुंचाया ? अथवा भवितव्यता की गति जानी नहीं जाती ! अकस्मात् आपकी इच्छा तीर्थयात्रा की हो गयी यह बड़े आश्चर्य की बात है । अच्छा कहिये किन २ देशों में आप गये और क्या नया दृश्य देखा ?" तब दीर्घदर्शी अपनी यात्रा का वृत्तान्त सुनाने लगा, सुवर्णद्वीप पर्यन्त अपनी यात्रा का वृत्तान्त सुनाके बीच में निकलनेवाली उस दिव्यकन्या का वृत्तान्त भी सुना गया । वर्णनक्रम में दीर्घदर्शी ने यह भी कह दिया कि कल्पतरु पर बैठी जो वह गा रही थी उसका स्वर कैसा मधुर था कि वर्णन नहीं हो सकता, सौन्दर्य की बात क्या कही जाय मानों तीनों जगतों के बीच जो सौन्दर्यराशि है उसकी सारांशरूपा वह है ।

अब क्या ! उसकी कथा सुनतेही राजा की गतिही निराली हो गयी; वह तो कामवश हो ऐसे हो गये कि उसके बिना राज्य और जीवन निष्फल मानने लगे। अपने मन्त्री को एकान्त में ले जाकर वह उससे कहने लगे, "महात्मन् ! मैं आप से अपनी दशा का क्या वर्णन करूं बस इतनेही से समझ लीजिये कि उसके बिना मेरा जीवन मुझे अपार है; जो उसे न देखूं तो जान रखिये कि मैं नहीं । जो मार्ग आपने बताया है उसी मार्ग से अब मैं भवितव्यता को प्रणाम कर चलता हूं ; आप मुझे न रोकें और न साथ चलें; मैं अकेलाही छिपकर जाऊंगा; आप मेरे राज्य की रक्षा कीजिये । सुनिये अब नाहीं करने का अवसर नहीं है; मैं आपको अपने प्राणों का शपथ दिलाता हूं इसमें प्रतिबन्धक न होइये ।" मन्त्री कुछ कहा चाहता था पर महाराज ने उसकी बात न सुनी प्रत्युत उसे घर भेज दिया और कहा कि जाइये अपने कुटुम्ब के लोगों को देखिये, आप बहुत दिनों पर आये हैं सो यहां विरमिये मत । मन्त्री अपने घर गया, उसके आगमन के उपलक्ष में बड़ा भारी उत्सव मनाया गया पर दीर्घदर्शी की वही दशा थी—

सम्पति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनसार ॥

ठीकही है स्वामी जब असाध्य व्यसन में पड़ जाय तब सज्जनमाश्रयों को सुख कहां !

दूसरे दिन राजा यशःकेतु ने राज्य का भार अपने मन्त्री दीर्घदर्शी पर रक्खा और अपना वेष तपस्वी का बनाय रात्रि के समय चुपके से प्रस्थान किया। चले जा रहे थे कि मार्ग में कुशनाभ नामक मुनि से भेंट हुई, उन्हें प्रणाम किया; मुनि ने उन्हें तपस्वी के भेष में देखकर कहा "वत्स! व्याकुल मत होओ, लक्ष्मीदत्त बनिये के अर्णवपोत पर आरूढ़ होकर तुम जाओ, अवश्य उस अभीष्ट कन्या को प्राप्त करोगे।" ऋषि के वचन से राजा अति प्रसन्न हुए और प्रणाम कर आगे बढ़े। नाना देश, नदियां और पहाड़ डांकते डूंकते समुद्र किनारे पहुंचे। समुद्र मानों अतिथि को आया जान नेत्र फाड़ २ उन्हें निरखने लगा, ऊँची २ लहरें उठती थीं वेही तो भौंहें, और तिनके मध्य जो शङ्ख दीख पड़ते थे वेही ढेंढ़र से प्रतीत होते थे। चलो उसी समय मुनि का बतलाया हुआ वही लक्ष्मीदत्त बनिया भी वहीं पहुंच गया; वह अपना पोत लदाये हुए स्वर्णद्वीप को जा रहा था सो उससे इनकी संगति हो गयी। राजा के पदचिन्ह में चक्रादि की मुद्रा देखकर वह समझ गया कि यह किसी देश के भूपाल हैं अतः बड़ी नम्रता से उसने उन्हें प्रणाम किया अस्तु महाराज यशःकेतु उसके प्रवहण पर आरूढ़ हो समुद्र में चले।

जब कि अर्णवपोत अर्णव के ठीक बीचोबीच पहुंचा कि कल्पवृक्ष पर बैठी वह कन्या निकली। राजा चकोर की भांति उसका चन्द्रवदन निरखने लगे; इतने में वह वीणा बजाय मधुर स्वर से गाने लगी।

जगत में करम अहै परधान ॥ टेक ॥
बीज बयो जो पूर्वजन्म में भयो सो वृक्ष महान।
ताकर फल सब खान परत हैं नाहीं कोउ बँधान ॥
ऐसी गति है करम-रूख की विधिहु न पार मिटान।
लक्ष्मीनारायण पुकारि कहैं कर्म महा बलवान ॥

और भी—

तुलसी जस भवितव्यता तैसे मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पहँ ताहि तहां लै जाय ॥

इस प्रकार भव्य अर्थ का सूचक उसका गान सुन राजा उस दिव्य कन्या के विषय में नाना प्रकार की भावना करने लगे। स्मरशराहत हो इस समय उस-

की भावना में ऐसे लीन हो गये कि तनिक भी हिलते डोलते न थे । पश्चात् कुछ चैतन्य हुए तो मस्तक नवाय सरित्पति की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

सोरठा ।

रत्नाकर नम तोहिं, अति अगम्य जाको हृदय ।
यहि छिपाय के जोहि, श्री दै हरि कहँ छलि लियो ॥
देव न पावैं अन्त, हैं सपक्ष गिरिवर जहाँ ।
तुम्हरी शरण गहन्त, इष्ट सिद्ध मेरो करो ॥

महाराज यशःकेतु इस प्रकार पयोधि की स्तुति करही रहे थे कि इतने में वह कन्या समुद्र में वृक्ष सहित डूब गयी, यह देखतेही राजा भी अपनी कामाग्नि की शान्ति के हेतु वारिधि में कूद पड़े । राजा को समुद्र में डूबते देख लक्ष्मीदत्त अपने मनमें बड़ा दुःखी हुआ और विचारने लगा कि मेरे मित्र तो नष्ट ही हो गये अब मैं रहकर क्या करूंगा । इतना सोच अत्यन्त दुःखी हो वह भी समुद्र में डूबने को उद्यत हुआ । इतने में आकाशवाणी हुई कि पुत्र ! तू साहस मत कर, यह तपस्वी के भेष में राजा यशःकेतु हैं, समुद्र में मग्न होने पर भी इनको कुछ भय नहीं है; यह तो यहां इस कन्या के हेतु आये हैं, यह इनकी पूर्वजन्म की भार्य्या है, इसे पाकर यह पुनः अङ्गराज्य में लौट जावेंगे । ऐसी आकाशवाणी सुन वह वणिक् शान्त हुआ और अपनी इष्टसिद्धि के हेतु चला गया ।

उधर राजा यशःकेतु जो समुद्र में डूबे तो क्या देखते हैं कि एक दिव्य नगर है, उसे देखतेही वह अति विस्मित हो गये । नगर का वर्णन क्योंकर हो सकता है, जहां मणियों के जड़े खम्भे खड़े थे, भीतें काञ्चन की और अति उज्ज्वल; अति रमणीय प्रासाद सुशोभित हैं जिनकी खिड़कियों में मोतियों के जाल लगे थे । नाना प्रकार के देदीप्यमान मणियों से जटित पटियाओं से बंधी जिनकी सीढ़ियां ऐसी बावड़ियों से युक्त नाना उद्यान निरालीही शोभा दे रहे थे ।

यद्यपि वह नगर अति समृद्धिशाली था तौभी जनशून्य था । अब राजा प्रत्येक भवन में भ्रमण कर २ अपनी प्रिया को ढूंढ़ने लगे पर उसका कहीं पता न लगा । इतने में ढूंढ़ते २ वह एक अति उत्तङ्ग मणिमय मन्दिर के समीप पहुंचे, उस पर चढ़ द्वार खोल भीतर गये । अभ्यन्तर भाग में जो पहुंचे, तो क्या देखते हैं कि

रत्ननिर्मित पर्य्यङ्क पर वस्त्र ओढ़े कोई सोया है । उसे देखते ही राजा के मनमें यह भावना हुई कि कहीं यही मेरी प्यारी न हो, इतना विचार जो उसका मुंह बड़ी उत्कण्ठा से उघारें तो वही अभीप्सित अङ्गना है; वस्त्र के हटतेही उसका हंसमुख दीख पड़ा उस समय उसके मुख की शोभा वर्णनातीत थी, उसका चन्द्र-वदन कैसा शोभायमान था मानों शुक्लपक्ष की उजियाली रजनी दिन के समय पाताल में आ विराजी हो। उसके दर्शन से महाराज यशःकेतु की वही दशा हुई कि जो मरुस्थल के बटोही की नदी दर्शन से होती है।

उस कन्या की जो आखें खुलीं तो क्या देखती है कि कल्याण आकृति तथा लक्षणसम्पन्न कोई महापुरुष आ विराजे हैं; अकस्मात् उन्हें वहां प्राप्त देख वह चट पर्य्यङ्क से उतर नीचे खड़ी हो गयी। आतिथ्य कर शिर नवा खड़ी हो रही मानों प्रफुल्ल इन्दीवरसदृश नयनों से उनके चरणों की पूजा कर रही हो। अब धीमे स्वर से इस प्रकार पूछने लगी, "महात्मन्! आप कौन हैं ? ऐसे अगम्य रसातल में क्योंकर आपका आगमन हुआ ? आपके समस्त अङ्गों में तो राजचिन्ह विद्यमान हैं फिर यह तापस व्रत कैसा ? हे महाभाग! यदि मुझ पर आपकी कृपा है तो मेरे इन प्रश्नों के उत्तर देवें।" उसका ऐसा वचन सुन राजा बोले, "सुन्दरि! मैं अंगदेश का राजा यशःकेतु हूं, मेरे एक आप्त ने तुम्हें देखा और उन्होंने मुझे यह भी बतलाया कि तुम प्रतिदिन यहां समुद्र में देख पड़ती है। बस तुम्हारेही कारण राजकाज तज तपस्वी बन मैं यहां आया और तुम्हारे पीछे २ समुद्र में पैठकर यहां उपस्थित हुआ हूं। यह तो मैं अपना वृत्तान्त सुनाय गया अब हे मनोरमे! तुम भी बतलाओ कि कौन हो ?" महाराज का ऐसा कथन सुन लज्जा, अनुराग और आनन्द के साथ वह इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाने लगी—

श्रीमान् मृगाङ्कसेन नामक विद्याधरों के एक अधिपति हैं, मैं उनकी सुता हूं नाम मेरा मृगाङ्कवती है । यह मेरे पिता का नगर है सो मेरे पिता मुझे यहां अकेली छोड़, न जानें क्यों सब पुरवासियों को लेकर कहीं चले गये । इस शून्य भवन में रहते २ मेरा चित्त ऊब गया इसी कारण यन्त्रनिर्मित कल्पवृक्ष पर बैठ-कर समुद्र में से निकलती हूं और भवितव्यता का गान करती हूं।

उसका इस प्रकार कथन सुनतेही राजा को उस मुनि का वचन स्मरण आ

गया, अब उन्होंने मृदु और मधुर वचनों का ऐसा जाल फैलाया कि वह ललना उनपर अनुरक्त हो गयी और तत्क्षण ऐसी विवश हुई कि तत्क्षण उनसे विवाह कर लेने पर सन्नद्ध हो गयी परन्तु उसने एक पण यह ठहराया और कहा,— "आर्य्यपुत्र ! प्रतिमास के शुक्ल और कृष्णपक्षों की चतुर्दशी और अष्टमी इन चार दिनों में मैं बँधी नहीं रह सकती, जहां कहीं जाऊँ आप न तो यह पूछें कि कहां जाती हो और न रोकें; इसमें एक कारण है।" इस प्रकार उसका पण सुन कर राजा उसपर सहमत हुए और उन्होंने गान्धर्व विधि से उसका पाणिग्रहण किया। अब दोनों के सम्भोग सुख ऐसे हुए कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता; कामदेव की गतिही कुछ और हुई। केशपाश के कुसुम गिर पड़े और कचग्रहण की नखावली प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई, लाल अधरों पर दांतों के क्षत उपट आये मानों उनका रंग पी लिया गया; कुचों पर नखों के खरोंच और उनपर की मा-णिक्यमाला टूट गयी; अंग पर का अंगराग लुप्त हो गया अब गाढ़ आलिंगन की रंगत दीख पड़ने लगी। इस प्रकार दोनों दम्पती प्रतिदिन सम्भोगसुख अनुभव कर आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन मृगाङ्कवती ने दिव्य भोग भोगी उक्त राजासे कहा, "आर्य्यपुत्र ! आप यहीं बैठे रहिये मैं किसी कार्य्य के निमित्त कहीं जाती हूं आज वही कृष्णचतु-र्दशी है। इतनी बात आप चेत रखना कि एक तो बिल्लौर के घर में न जाना और दूसरे इस बावड़ी में मत उतरना नहीं तो भूलोक में पहुंच जावेंगे। इस प्र-कार राजा से कह उनकी अनुमति लेकर वह उस नगर से बाहर निकली और राजा भी उसके व्यापार के दर्शनार्थ खड्ग हाथ में ले छिपे २ उसके पीछे २ चले।

इतने में राजा क्या देखते हैं कि अन्धेरी रात सा श्यामवर्ण एक राक्षस गुहा समान मुंह बाये चला आ रहा है मानों पाताल ही राक्षस के आकार में है। आते ही बड़े भयङ्कर गर्जन के साथ मृगाङ्कवती को मुख में रखकर निगल गया। यह व्यापार देखते राजा क्रोध से जल उठे, कृष्णसर्प समान तलवार म्यान से निकाल उसपर दौड़े; वह राक्षस भी दांत कटकटाता महीपति पर चढ़ आया इतने में राजसिंह ने उस राक्षस का शिर काटकर धड़ से अलग कर दिया। उस राक्षस के कबन्ध से निकले हुए रुधिर से राजा की क्रोधाग्नि तो बुझ गयी किन्तु

कान्तावियोगजनित अग्नि क्योंकर शान्त होवे। राजा मोहनिशा के अन्धकार में भटकने लगे।

इतने में अकास्मात् मेघ समान उस राक्षस का शरीर फाड़कर मृगाङ्कवती जीती जागती अक्षताङ्गी निकल आयी मानों दिशाओं का अन्धकार दूर करती स्वच्छ चन्द्रमूर्त्ति निकली हो। अब सङ्कट से उत्तीर्ण अपनी प्रिया को देख राजा दौड़े और "आ प्रिये, आ प्यारी" इतना कह उसे आलिङ्गन कर कहने लगे,—"प्राणप्रिये ! यह क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं अथवा माया है ?" इस प्रकार राजा का प्रश्न सुन वह विद्याधरी बोली,—"आर्य्यपुत्र ! सुनिये, यह न तो स्वप्न हो है और न तो कुछ माया है; यह विद्याधरेन्द्र मेरे पिता का दिया हुआ शापहो ऐसा है, सुनिये मैं इसका वृत्तान्त सुनाती हूं।

पूर्वकाल में मेरे पिता यहीं रहते थे, यद्यपि उनके कई पुत्र थे, परन्तु मुझ पर उनका ऐसा स्नेह था कि वात्सल्य के कारण मुझे बिना साथ लिये कभी भोजन नहीं करते थे। मैं भी भगवान् शङ्कर की पूजा में ऐसी लीन रहती कि दोनों पक्षों की अष्टमो और चतुर्दशी को यहां निर्जनदेश में आती।

एक समय की बात है कि मैं चतुर्दशी को यहां पूजा करने आई, और भगवती की पूजा में ऐसी लीन हो गयी कि यह न ज्ञात हुआ कि दिन कब बीता और दिवस का अन्त हो गया। उधर मेरे पिता मुझ बिना भोजन कैसे करें सो दिन भर वह बिना कुछ खाये पिये रह गये और मुझपर इस कारण बड़े ही क्रुद्ध हुए। रात्रि के समय जब मैं पहुंची, अपराध तो मेरा था ही उससे मैं तो नीचे मुख कर खड़ी हो थी, भवितव्यता की बात ! मेरे पिता ने मुझे शाप दिया, "हे दुष्टे ! तेरे कारण आज मैं भूखों मरा इसका दण्ड तुझे यह मिलेगा कि प्रति मास की चतुर्दशियों और अष्टमियों को जब तू महादेव की पूजा करने जावेगी तो यहां नगर के बाहर कृतान्तसन्त्रस नामक राक्षस तुझे निगल जायगा फिर तू उसका हृदय फाड़ फाड़कर निकल आया करेगी और शाप की बात तथा निगल जाने की व्यथा तुझे प्रतीत न होगी। तू यहीं रहा करेगी।" इतना कह जब मेरे पिता चुप हुए तब मैं उनसे बड़ी चिरौरी और विनती करने लगी तब कुछ ध्यान कर मेरे पिता ने इस शाप का अन्त इस प्रकार ठहराया कि अङ्गदेश के

नृपति राजा यशःकेतु जब तेरे पति होंगे तो उक्त राक्षस से निगली गई तुझे देख कर उसका बध करेंगे तब तू शाप से मुक्त होगी और उस राक्षस के हृदय से निकलने पर तुझे शाप की बात स्मरण होगी और उसी समय तेरी सब विद्यायें स्मरण हो आवेगी।" इतना कह, शाप का अन्त ठहराय, मेरे पिता अपने परिच्छद के साथ भूलोक में निषधाद्रि पर चले गये और मुझे यहीं छोड़ गये, मैं शाप के मोह में पड़ी यहीं रहने लगी। आज मेरा शाप दूर हो गया और सब बातें स्मरण भी हो आयीं, अब मैं अपने पिता के पास निषधाद्रि पर जाती हूं। हमलोगों में यह नियम है कि शाप के अन्त होने पर अपने पद पर पहुंच जांय बस वहां से सब लोग विद्याधरलोक को चले जावेंगे। आप अब स्वतन्त्र हो गये चाहे यहां रहें अथवा अपने राज्य में चले जावें।

प्यारी के मुख से ऐसे वचन सुन राजा यशःकेतु थर्रा उठे, भला ऐसे निठुर वचन कब सह सकते हैं, बड़े ही दुःखित हुए और उस दिव्य कन्या से विनय करने लगे, "सुमुखि! अच्छा जाना ही है तो एक काम करो कि सात दिन ठहर जाओ भला अब सात दिवस तो तुम्हारे साथ इस उद्यान में विहार कर लूं फिर तो कहां तुम और कहां यह मेरा पतित शरीर! प्यारी! सात दिवस के उपरान्त तुम अपने पिता के घर चली जाइयो और मैं अपने गृह चला जाऊँगा।" महीश का ऐसा अनुनय सुन मुग्धा मृगाङ्कवती उनके कथन पर सम्मत हो गयी।

अब राजा अपनी प्रिया मृगाङ्कवती के साथ वहां के रम्य उद्यानों में रमण करते हुए विहार करने लगे; जहां की बावड़ियों में उत्पलरूपी नेत्र सजल थे; हंसों और सारसों के निःस्वन होते थे; जिनसे यह भावना होती थी कि वे सब उन दोनों का वियोग नहीं सह सकते और प्रार्थना कर रहे हैं कि हमको त्याग कर तुम दोनों यहां से मत चले जाओ। इस प्रकार विहरते बात की बात में छः दिन व्यतीत हो गये। सातवें दिन राजा किसी युक्ति से मृगाङ्कवती को उस घर में ले गये जहां भूलोक में पहुंचानेवाली यन्त्रद्वार वापिका थी तहां अपनी प्रणयिनी को कण्ठ में लगाकर राजा उसी बावड़ी में कूद पड़े और उसे साथ लिये दिये अपने नगर के उद्यान की बावड़ी में से निकल पड़े।

मालियों ने देखा कि हमारे प्रभु आ पहुंचे और कि साथ में एक ललना-

लगाम भी लेते आये सो उन्होंने जाकर उनके मन्त्री दीर्घदर्शी को यह शुभसम्वाद सुनाया । वह पुरवासियों के साथ महाराज के स्वागत के निमित्त आया और उनके चरणों पर गिरा पश्चात् ईप्सिताङ्गना के साथ उनको राजभवन में ले गया। मन्त्री अपने मन में विचारने लगा कि अहो वह दिव्याङ्गना इन्हें कैसे मिल गयी, विधाता जिसके ललाट पर जो लिख देते हैं, चाहे वह कैसा ही असम्भव क्यों न प्रतीत हो पर उसे मिलता ही है। नगर भर में जहां सुनो यही चर्चा कि महाराज एक दिव्याङ्गना व्याह लाये हैं, सब लोग बड़े आश्चर्य्य से इसी विषय में परस्पर कथोपकथन किया करते थे । उस दिन महाराज के स्वागत में बड़ा भारी उत्सव मनाया गया।

इसी प्रकार सातवां दिन भी बीत गया, और राजा भी निज नगर में पहुंच गये; अब मृगाङ्कवती की इच्छा हुई कि अपनी विद्याधरी गति को पहुंच जाऊँ। सो वह अपनी उत्पतिनी विद्या स्मरण करने लगी पर वह स्मरण न हुई तब तो वह घबराई कि ओः मैं ठगी गयी, उसके विषाद का थाह नहीं रहा।

उसको विषण्ण देख राजा ने उससे पूछा, "प्रिये ! कहो तो सही तुम अकस्मात् उदास क्यों दीख पड़ती हो ? तुम्हारी उदासी का कारण क्या है ?" राजा का ऐसा प्रश्न सुन वह विद्याधरी बोली, "महाराज ! क्या कहूं , शाप छूट जाने पर भी जो मैं आपके स्नेह से इतने दिन आपके साथ रह गयी इससे मेरी विद्या भ्रष्ट हो गयी और वह दिव्या गति भी जाती रही ।" उसका ऐसा कथन सुन राजा यशःकेतु बड़ेही प्रसन्न हुए कि चलो यह विद्याधरी अब सिद्ध हो गयी सो उन्होंने पूर्ण उत्सव मनाया ।

यहां राजभवन में तो चहुंओर उत्सव छाय रहा है पर मन्त्री की गति कुछ निराली ही हुई। दीर्घदर्शी रात के समय जब अपने घर गया तो जाके शयनीय पर पड़ रहा पड़तेही उसका हृदय फट गया और वह इस लोक से चल बसा।

मन्त्री के मर जाने से राजा यशःकेतु को बड़ा शोक हुआ। अबलों उसी के भरोसे वह निश्चिन्त हो सदा सर्वदा विहार में लीन रह आनन्द लूटा करते थे, अब राजकाज कौन सम्भाले, अस्तु अपने ऊपर ही अगत्या उनको भार लेना पड़ा सो वह राज्य का भार उठा मृगाङ्कवती के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

इतनी कथा सुनाय उस वेताल ने कन्धे परही से राजा त्रिविक्रमसेन से प्रश्न किया कि राजन् ! कहिये तो सही जब कि स्वामी का ऐसा अभ्युदय हुआ कि अलभ्या दिव्य कन्या मिली तो ऐसी अवस्था में उस महामन्त्री का हृदय तत्त्वण क्यों फट गया ? क्या वह उस दिव्याङ्गना की प्राप्ति स्वयं चाहता था और वह न मिली इसी शोक से उसका हृदय फट गया अथवा राज्य की लिप्सा रखता था सो राज्य के अधिकारी स्वयं राजा आ गये और वह राज्य न पा सका इससे उसकी ऐसी दशा हुई ? राजन् ! आप बड़ेही ज्ञाता हैं और इसका भेद आप जानते हैं सो समझ रखिये कि जानबूझकर भी जो आप मुझसे इसका कारण न बतलावेंगे तो आपका धर्म तो नष्ट होवेहीगा ऊपर से आपका शिर भी टूक टूक हो जावेगा ।

वेताल का ऐसा कथन सुन राजा त्रिविक्रमसेन बोले, "योगिराज। उस शुभ चरित मन्त्रिवर में ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिए; इन दोनों में से एक को भी दोष नहीं लगाया जा सकता है; किन्तु उसके मरण का कारण ही दूसरा था, सुनो मैं बतलाता हूं। राजा यशःकेतु स्त्रियों के रस के आस्वाद से राज्य का देखना भालना त्याग बैठे थे, सदा ललनाओं का आनन्द भोगते रहे उन्हें अब दिव्य अङ्गना मिल गयी तो अब राज्य की क्या दशा होगी । इसी की चिन्ता उस मन्त्री के हृदय में भयङ्कररूप से पैठी, वह विचारता था कि मैंने इतना कष्ट भी उठाया उसका फल क्या हुआ कि दोष ही प्रगट हुआ । बस इसी चिन्ता से उस मन्त्री का हृदय फट गया और वह परलोक को सिधारा ।

दोहा ।

इहिविधि नरपति बयन सुनि, मायावी बेताल ।
निज पद कहँ गवनत भयो, खसकि बहुरि ततकाल ॥
राजा हूं पुनि तासु हित, दौड़े ताके संग ।
धीरचित्त चितकाज धरि, कबहुँ न करते भंग ॥

बीसवां तरङ्ग।

(तेरहवां बेताल)

अब राजा त्रिविक्रमसेन फिर उसी अशोकवृक्ष के नीचे पहुंचे सो वेताल को को उतार कन्धे पर रख ले चले। जब कि वह चले जा रहे थे वेताल उनसे इस प्रकार कहने लगा, "राजन्! सुनिये आपको एक छोटी सी कथा सुनाता हूं।"

वाराणसी नाम्नी एक नगरी है, जहां भूतभावन भगवान् हर साक्षात् निवास करते हैं। तिस पुरी में देवस्वामी नामक एक राजमान्य ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा वित्ताढ्य था। एक पुत्र उसके था जिसका नाम हरिस्वामी था, उसकी भार्य्या लावण्यवती जो कि यथार्थनाम्नी अत्युत्तमा थी। उसके सौन्दर्य्य के दर्शन से ऐसा अनुमान होता है कि तिलोत्तमादि अप्सराओं के निर्माण से विधि बड़े प्रवीण हो गये पश्चात् उसी कौशल से इसकी सृष्टि की।

एक समय की बात है कि हरिस्वामी रतिश्रान्त हो अपनी उस कान्ता के साथ चन्द्रांशुशीतल हर्म्य पर सोया था। उसी समय आकाश में उसी मार्ग से कामचारी विद्याधरकुमार मदनवेग जा रहा था; उसकी दृष्टि लावण्यवती पर पड़ी जो अपने पति के अङ्क में सोई हुई थी। वह भी रति के श्रम से थक गयी थी इससे अङ्ग के वस्त्र को सुध बुध भूल सुखनींद सो रही थी और अङ्ग पर का वस्त्र हट गया था जिससे उसके अनुपम अङ्ग प्रत्यङ्गों की शोभा निराली ही छटा दिखा रही थी।

उसके रूप के निरीक्षणमात्र से मदनवेग ऐसा मोहित हुआ कि अपने को न सँभाल सका, चट उतरा और उसे सोतीही उठाकर आकाश में उड़ गया।

क्षणभर में ही उसके पति हरिस्वामी की नींद टूटी तो क्या देखता है कि अङ्क में सोयी लावण्यवती नहीं है; अपनी प्राणेश्वरी को न देख वह ससम्भ्रम उठ पड़ा और मनमें विचारने लगा कि हा! यह क्या वज्रपात हुआ! मेरी प्रिया कहां चली गयी? क्या वह कुपित तो नहीं हो गयी अथवा मेरे चित्त की परीक्षा के हेतु कहीं छिप रही है, यह उसने हँसी तो नहीं की है। इस प्रकार अनेक विकल्परूपी अगाध जल में वह गोते खाने लगा। अब वह अपनी व्याकुलता

सम्भाल न सका वहां से उठ खड़ा हुआ और उसे ढूंढ़ने चला; अटारी अटारी, प्रासाद और कंगूरे कंगूरे सर्वत्र रातभर ढूंढ़ता रहा; घर के उद्यान पर्य्यन्त ढूंढ़ आया पर वह कहीं न मिली। तब तो उसको शोकाग्नि और भी धधक उठी और वह अश्रुगद्गद हो विलाप करने लगा—।

"हा! चन्द्रविम्बवदने (१)! हा! ज्योत्स्नागौरि (२)! हा प्रिये! यह रात्रि द्वेष से तेरे गुणों का सहन न कर सकी। तेरी कान्ति से पराजित हो डरता हुआ मानों, जो चन्द्रमा चन्दन सी शीतल निज किरणों से मुझे आनन्द प्रदान करता था, सो वह शीतांशु तुझ बिना अब अवसर पाकर मुझे बेध रहा है; प्रिये! उसकी किरणें विपरीत प्रतीत हो रही हैं! कहां तो तब शीतल प्रतीत होती थीं कहां अब वेही धधकते अङ्गारों का काम कर रही हैं; और विष में बुझी प्रतीत हो रही हैं।"

इस प्रकार बड़े शोक से विलपते और रोते २ हरिस्वामी की वह रात बड़े कष्ट से बीती किन्तु विरहव्यथा दूर न हुई। रात बीती प्रातःकाल हुआ; जगत् के प्रदीप्त दीपक भगवान् सूर्य्य अपने प्रखर तेज से उदित हुए, अपनी किरणों से उन्होंने विश्वभर का घोर अन्धकार दूर कर दिया पर इसके हृदय का मोहान्धकार वह भी न दूर कर सके। उसके करुणाक्रन्दन की ध्वनि ऐसी बढ़ी जिससे यह भावना होती थी जगत् भर के सब चकवे, जो रातभर अपनी प्रियाओं से पृथक् रहे, अब निशावसान से अपने विलाप प्रलाप इसे दे स्वयं आनन्द भोगने चले गये। इतना ही नहीं किन्तु उसका क्रन्दन उनके क्रन्दन से सौगुना बढ़कर हो गया।

उसका ऐसा आक्रन्दन सुन कुटुम्ब के सब लोग बटुर आये और विलाप का कारण जान उसे समझाने बुझाने लगे, किन्तु वह काहे को माने, उसका विरह दूना ही होता गया। वह युवा द्विज अपनी प्रेयसी के बिना किसी प्रकार धीरज नहीं धर सका। "यहां मेरी प्यारी बैठती थी; यहां स्नान करती थी; यहां शृङ्गार करती थी; यह स्थान मेरी प्राणेश्वरी के विहार का है; यहां से मेरी प्यारी चली गयी इत्यादि २;" इसी प्रकार बकता वह रोता फिरा करता था किसी की कुछ सुनता ही नहीं था।

(१) चन्द्रमा के विम्ब समान जिसका मुंह। (२) जोन्हाई के समान गोरी।

उसे लोग समझाते कि अरे अधीर ! तू इतना व्याकुल क्यों हुआ जा रहा है! वह मर तो गयी नहीं है सो तू क्यों अपना शरीर नष्ट किये डालता है, क्यों स्वयं मरा जा रहा है ? जो तू जीता जागता रहेगा तो कहीं न कहीं उसे अवश्य पावेगा मर जायगा तो कहां से पावेगा । इससे कहना मान, धीरज धरके उसे कहीं ढूंढ़; सुन, धीर और व्यवसायी को कुछ भी अप्राप्य नहीं है ।

इस प्रकार भाई बन्धुओं के समझाने बुझाने पर कुछ दिनों के उपरान्त उसका शोक कुछ दूर हुआ और मनमें धीरज का अंकुर उगा । तब वह अपने चित्त में इस प्रकार चिन्ता करने लगा—"अवश्य यह मेरे पूर्वजन्म के पापों का प्रतिफल है; सो अब मैं ऐसा करूँ कि अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान कर दूं और तीर्थ यात्रा किया करूँ जिससे मेरे अघ क्षीण हो जावें । जब मेरे पातक नष्ट हो जावेंगे तब घूमता घामता कहीं न कहीं अपनी प्रिया को पाही जाऊँगा ।" इतना विचार वह पूर्ववत् उठा और स्नानादि क्रिया में व्यापृत हुआ ।

इस प्रकार की भावना कर दूसरे ही दिन उसने सत्र खोल दिया, ब्राह्मणों को बुला २ विचित्र अन्नपानादि से छकाछक कर दिया । सारांश यह कि अपना सर्वस्व धन ब्राह्मणों को दान कर दिया । अब उसके पास ब्राह्मण्य के अतिरिक्त और कुछ न रह गया ।

अब हरिस्वामी अकिञ्चन हो अपने देश से निकला और प्रिया की प्राप्ति के हेतु तीर्थयात्रा करने चला । उसके भ्रमण करते २ महा भीम ग्रीष्मर्तुकेसरी आ पड़ा, प्रचण्ड आदित्य जिसका मुंह और उसकी किरण जिसका केसर । वायु भी अति उष्ण बहता था, मानों प्रियाओं के विरह से सन्तप्त जो पथिक यात्रा कर रहे हैं उनके मुखों से जो निःश्वास निकलता है उससे वह और अधिक गरम हो गया है । कड़े घाम के लगने से समस्त जलाशय सूख गये हैं तिनमें के पङ्क सूख जाने से दरारें पड़ गयी हैं मानों हृदय फट गये हैं । मार्ग के वृक्षों पर झींगुरों के झङ्कार के कारण यह भावना होती थी कि मानों सब वृक्ष रो रहे हैं; वसन्त की श्री के विरह से वे कलप रहे हैं; ताप से दलरूपी उनके अधर सूख रहे हैं एक तो ऊपर से घोर घाम, वियोगाग्नि हृदय में धधकती, इधर क्षुधाग्नि पेट में भीषभकी ऊपर से तृषा ने उसका साथ दिया, सो इन कष्टों का सहन करता

हुआ विचारा थका मांदा ब्राह्मण बराबर चला गया; धूल समस्त शरीर पर पड़ी थी इससे सारा अङ्ग धूलिमय हो गया था।

इस प्रकार भ्रमण करता हुआ हरिस्वामी एक गांव में पहुंचा। उस गांव में पद्मनाभ नामक एक ब्राह्मण रहता था, उसके यहां उस दिन भोजन था; हरिस्वामी भूखा तो था ही सो भोजन की लालसा से उसके घर गया। वहां उसने देखा कि भीतर बहुत से ब्राह्मण भोजन कर रहे हैं सो वह द्वारपर ओठंगकर खड़ा हो रहा, न कुछ हिला न डोला। गृहस्वामी पद्मनाभ की गेहिनी की दृष्टि उसपर पड़ी उसे चुपचाप मन मारे खड़ा देख उसके मनमें दया का संचार हुआ वह साध्वी विचारने लगी "अहो! भूख कैसी बुरी और भारी वस्तु है, यह किसकी लघुता नहीं कर देती। देखो न, यह द्वारपर कोई शिर नीचा किये खड़ा है, यह कोई दूर से आया हुआ और श्रान्त प्रतीत होता है, इस समय भूख से इसकी सब इन्द्रियां व्याकुल हो रही हैं, सो यह अन्नदान का पात्र है।" इस प्रकार विचार कर वह साध्वी एक पात्र में परमान्न (१) भर उसमें घी और शर्करा छोड़कर उसके पास आई और बोली, "यह लो और कहीं जलाशय के किनारे जाकर भक्षण करो, इस स्थान में ब्राह्मण लोग भोजन कर रहे हैं इससे यहां कुछ भी ठौर नहीं है।"

"बहुत अच्छा," इतना कह उस ब्राह्मण ने अन्नपात्र ले लिया और थोड़ीही दूर जाकर बड़ के नीचे एक बावड़ी के किनारे रख दिया कि हाथ मुंह धो आऊँ तो भोजन करूं। ब्राह्मण तो उधर हाथ मुंह धोने गया इधर मरा सांप लेकर एक चील उसी पेड़ पर आ बैठी; उस सांप के मुंह से विषमय लार टपकती थी सो उस पात्र में पड़ती गयी जिसमें पायस था। हरिस्वामी हाथ मुंह धोकर आया और बड़ी प्रसन्नता से खीर खाने लगा, उसे क्या विदित कि इसमें क्या हुआ है। भूख में सुधि किस बात की, झटपट वह सब खीर भकोस गया। खातेही विष चढ़ा तब तो वह व्याकुल हो अपने मनमें सोचने लगा कि यह कैसा उत्पात, मैंने तो शर्करा और घृत पड़ा अन्न खाया है फिर यह वेदना कैसी! ठीक है भाग के पलटते अन्न भी पलट गया, विधि प्रतिकूल हुए तो उत्तम पायस भी विष हो गया।

(१) उत्तम अन्न = पायस = खीर।

इस प्रकार विष की वेदना से बड़बड़ाता और लड़खड़ाता हुआ हरिस्वामी उस सत्री (१) ब्राह्मण के घर पहुंचा और उसकी गेहिनी से कहने लगा, "तुम्हारे दिये अन्न के भक्षण करतेही मेरे समस्त शरीर में विष व्याप गया, सो अति शीघ्र किसी मन्त्रवेत्ता (२) को बुलाओ जो झारफूंक कर विष उतार देवे, नहीं तो तुम्हें ब्रह्महत्या होगी।" हरिस्वामी के मुंह से इतना सुनतेही वह साध्वी ब्राह्मणी भौंचक हो गयी कि राम। यह क्या उत्पात हुआ; इतने में हरिस्वामी गिर पड़ा उसकी आखें पथरा गयीं और प्राण निकल गये।

कहावत है, "होम करते हाथ जले," ठीक वही घटना हुई, विचारी ब्राह्मणी तो धर्म्म करने चली उलटे पाप लगा; इतना ही नहीं, उसके स्वामी ने क्रोधवश उसे अतिथिघातिनी समझ घर से निकाल दिया। अब वह साध्वी क्या करे, शुभ कर्म्म का फल उसे अशुभ मिला, और चारों ओर से निन्दा की बौछाड़ आने लगी, पति ने भी अपमान से त्याग दिया सो वह निर्विण्ण हो तप करने के निमित्त किसी तीर्थ में चली गयी।

इतनी कथा सुनाय वेताल फिर बोला "महाराज त्रिविक्रमसेन। सुनिये, धर्म्मराज के समक्ष यह विवाद उपस्थित हुआ कि उन चारों (सर्प, चील, ब्राह्मण ब्राह्मणी) में से ब्रह्महत्या किसको हुई, जो आप न बतलावेंगे तो उसी पूर्वोक्त शाप के भागी होंगे।"

वेताल का ऐसा प्रश्न सुन, शाप के भय से राजा त्रिविक्रमसेन को अपना मौन तोड़कर उत्तर देना ही पड़ा। वह बोले "योगिराज! सुनो, इसमें सर्प का क्या अपराध, वह तो विवश पुनः शत्रु से भक्ष्यमाण था; फिर चील का दोष भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह तो अपना भक्ष्य अनायास पा गयी सो खा रही थी; अब अन्नदाता उन दम्पती का अथवा उनमें से एक का ही क्या दोष! कुछ दोषदृष्टि से उन दोनों का दान तो हुआ नहीं था, उन्होंने तो धर्म्ममार्ग पर प्रवृत्त हो उपकारार्थ दान दिया था। सो मैं तो उसी मूर्ख को ब्रह्मघाती मानूंगा जो इन चारों में से किसी पर दोष लगावे।"

(१) सत्र देनेवाला, ब्राह्मणों को भोजन करानेवाला। (२) गुणी = ओझा।

दोहा।

यहि विधि नृप को वचन सुनि, खसकि गयो वेताल।
पहुंच्यो निज पद, भूप पुनि, पछियायो ततकाल॥

एकीसवाँ तरङ्ग।

(चौदहवां वेताल)

अब राजा त्रिविक्रमसेन फिर उसी शिंशपातरु के पास पहुँचे और उसी प्रकार वेताल को उतार कन्धे पर रख ले चले। महाराज चले जा रहे थे कि कन्धे पर से वेताल उनसे इस प्रकार कहने लगा, "राजन्! आप थक गये हैं, अच्छा, सुनिये मैं आपको एक कथा सुनाता हूं—"

अयोध्या नाम्नी एक नगरी है, जो कि राचसकुलकृतान्त भगवान् रामचन्द्र की राजधानी थी। उस नगरी में एक राजा वीरकेतु नामक हुए जो इस पृथ्वी को ऐसी रचा करते थे जैसे प्राकार पुरी की रचा करता है। उनके राजत्वकाल में रत्नदत्त नामक एक बड़ा धनवान् बनिया उस नगर में रहता था, वह वणिक् सब महाजनों का प्रधान था। कुछ दिनों के उपरान्त देवताओं की बड़ी बड़ी आराधना से उसकी स्त्री नन्दयन्ती के एक कन्या हुई जिसका नाम उसने रत्नवती रक्खा। अब वह कन्या ललाम अपने पिता के घर में क्रमशः बढ़ने लगी उसके साथही साथ उसके स्वाभाविक रूपलावण्य तथा विनयादि गुण भी बढ़ते जाते थे। जब वह यौवनस्था हुई तब रत्नदत्त से न केवल बड़े २ महाजन ही उसको याचना करते किन्तु राजा लोग भी उसके प्रार्थी थे। उधर की बातही कुछ निराली थी, रत्नवती बड़ी पुंद्वेषिणी (१), यहां तक कि यदि इन्द्र भी हों तो वह उन्हें अपना पति न बनावे, तो औरों की क्या गिनती! प्राणत्याग का सहन कर सकती पर विवाह की कथा वह कदापि नहीं सह सकती थी। पिता का प्रेम उसपर बहुत था, वात्सल्य के कारण कुछ कह नहीं सकता था तौभी रत्नदत्त उसके इस हठ से दुःखी था। यह चर्चा अयोध्या में सर्वत्र फैल गयी।

इसी अवसर में नगर में चोरी बहुत होने लगी, चोरों के उत्पातों से सब

(१) पुरुष से घृणा करनेवाली।

नगरनिवासियों ने गोष्ठी की कि क्या करना चाहिये कि इस विपत्ति से पिण्ड छूटे। अन्ततोगत्वा यह ठहरा कि चल के राजा को इस विपद् की सूचना दी जाय। इतना विचार सब लोग राजा के समक्ष उपस्थित हुए और अपनी विपत्ति का वृत्तान्त सुनाने लगे, "महाराज! रात्रि २ हमलोग लुटे जा रहे हैं, प्रभो! चोरों के उपद्रव से अब हमलोगों की बड़ी दुर्दशा हो रही है; धन के धन जाते ऊपर से जो कष्ट होते हैं वे सूद में समझिये; फिर वे चोर न जाने कैसे प्रवीण हैं कभी दीख भी नहीं पड़ते सो अब हमलोग देव की शरण में आये हैं जैसा आप उचित समझें करें।" पौरों की (१) ऐसी विनति सुन महाराज वीरकेतु ने रात्रि के समय पुरी के चहुंओर ठौर २ गुप्तचर नियुक्त कर दिये कि उन चोरों को पकड़ें।

पहरुए बड़ी सतर्कता के साथ चोरों के पकड़ने की घात में लगे थे पर चोर पकड़े न जाते थे और चोरी बराबर उसी प्रकार हुआ ही करती थी; तब एक दिन राजा रात्रि के समय चुपचाप शस्त्र ले स्वयं निकले और नगर के चारों ओर पहरा देने लगे। इतने में क्या देखते हैं कि प्राकार से दबका हुआ कोई पुरुष दबे पांव जा रहा है; उसके पदप्रक्षेप की गति ऐसी अद्भुत कि तनिक भी आहट न सुन पड़ती थी नेत्र शङ्का के कारण अति चञ्चल दीख पड़ते थे क्योंकि रह२ कर वह पीछे को निहारता जाया करता था। उसको देखते ही, राजा ताड़ गये कि बस यही दुष्ट चोर है, यही हमारी नगरी में प्रजा के धन मूसता है।" इतना मनमें विचार कर राजा उसके निकट गये। चोर राजा को समीप आया देख पुकार उठा, कौन है रे?" राजा ने उत्तर दिया, "भाई मैं तो एक चोर हूं।" इतना सुनते ही वह तस्कर बोला "तब क्या चिन्ता हम दोनों एकसे ठहरे, आओ भाई तुम तो मेरे मित्र हो, मेरे घर चलो तो कुछ मित्र का सत्कार किया जाय। महीपति ने कहा कि चलो भाई। इतना कह राजा उस चोर के साथ २ चले।

चलते चलते जङ्गल के मध्य में पहुंचे, तहां धरणी में एक बड़ी भारी कन्दरा खोदी मिली उसी के भीतर उसका गृह बना हुआ था। नाना प्रकार के भोग विलास वहां विद्यमान थे, अति प्रज्वलित दीपक जल रहे थे, मानों यह दूसराही एक नया पाताल है जहां राजा बलि नहीं हैं। घर में ले जाकर उस तस्कर ने

(१) पुरवासियों को।

महाराज को एक स्थान पर पर बैठाया, जब महीपति सुस्थिर हो बैठ गये तब चोर अपने भीतरी घर में गया ।

इसी अवसर में एक दासी राजा के समीप आयी और कहने लगी, "महा-भाग ! भला आप यहां मृत्यु के मुख में कैसे आये, यह एक चोर बड़ाही पापिष्ठ और विश्वासघाती है अब वह आवेगा और आपका काम शेष कर डालेगा सो यहां से आप झटपट निकल भागें कुशल इसी में है, विलम्ब मत करिये उठिये और भागिये ।"

उस दासी का इतना कथन सुन राजा तत्क्षण वहां से निकल भागे और रात ही रात दौड़ते २ अपनी राजधानी में आ पहुंचे । महाराज ने अपनी सेना प्रस्तुत कीयी और जाकर उस दस्यु का भूगृहद्वार-विवर घेर लिया; सैनिकों का कलरव और अस्त्रशस्त्रों के खन २ शब्द होने लगे । ये सब कलकल शब्द सुन वह चोर ताड़ गया कि ओ: धोखा हुआ, गृह तो घिर गया अब मरण हुआ । इतना वि-चार वह शूर अस्त्रशस्त्र ले युद्ध के लिये बाहर निकला ।

महीपति वीरकेतु की सेना पर अकेला वह चोर भयङ्कर रूप से टूट पड़ा और लगा अपनी तलवार से योद्धाओं के शिर काटने; हाथियों की सूंड़ें काट गिराने लगा, घोड़ों की जांघें काट २ भूमि पर पाटने लगा; क्षणभर में देखते २ उसने अमानुषकर्म्म कर दिखाया । इस प्रकार सैन्यसंहार देख महाराज स्वयं युद्धस्थल में उतर पड़े, चोर उनके ऊपर टूटा किन्तु महीपति तो युद्धविद्या में बड़े प्रवीण थे, उन्होंने बड़े लाघव से उस दस्यु के हाथ से उसकी तलवार और छुरी छीन ली। चोर के पास अस्त्र न रहा और निरस्त्र पर प्रहार करना नीतिविरुद्ध है अतएव भूपति ने भी अपने शस्त्र त्याग दिये । अब दोनों में बाहुयुद्ध होने लगा, इतने में महाराज ने उस चोर को धरणी पर पटक दिया और जीता जागता पकड़ लिया। उस डाकू को बांध तथा उसका सब धन लेकर महाराज अपनी राजधानी को पधारे । प्रात:काल महाराज ने उसका न्याय यह सुनाया कि यह चोर शूल पर चढ़ाया जाय ।

अब आगे २ डुग्गी बजती चली और वधिक उस चोर को बांधकर वध्यभूमि की ओर ले चले; इसी अवसर में वणिक्कन्या रत्नवती ने अपनी अटारी पर से उसे

देखा। यद्यपि उसके सब अङ्ग चत विचत हो गये थे जिनमें से लहू बह रहा था और समस्त शरीर में धूलि लग रही थी तथापि वह वणिक्सुता उसे देखते ही उसपर मोहित हो गयी और दौड़ के अपने पिता के समीप पहुंची और उससे विनती कर कहने लगी, "हे तात! यह जो लोग उस पुरुष को बध करने के लिये लिये जा रहे हैं मैं उसी को अपना भर्त्ता बनाया चाहती हूं सो जैसे बने वैसे राजा से इसे छोड़वा लो नहीं तो, पिता, मैं इसी के साथ सती हो जाऊँगी।

उसका ऐसा अनुनय सुन उसका पिता उसको समझाने लगा, "बेटी, यह तू क्या कह रही है; बड़े बड़े भूपाल तेरी कामना करते हैं उन्हें तो तू चाहती ही नहीं तो इस पापी तस्कर को, जो कि विपत्ति में स्वयं पड़ा है, क्यों पति बनाया चाहती है? (१) इस प्रकार पिता ने समझाया तिसपर भी वह वणिक्सुता अपने निश्चय से न हटी। तब उसका पिता राजा के पास गया और बड़ी विनती कर कहने लगा, "पृथ्वीनाथ! मेरा सर्वस्व ले लिया जाय और यह तस्कर बध से मुक्त कर दिया जावे।" राजा करोड़ों स्वर्णमुद्रा लेकर भी उसे छोड़ने पर सम्मत न हुए क्योंकि अपने प्राणों पर खोजकर वह उसे पकड़ लाये थे सो भला क्योंकर त्याग सकते हैं। तब तो वह बनिया अपना सा मुंह लेकर लौट गया।

जब पिता विमुख हो लौट आया तब तो वह कन्या हताश हो गयी और सती होने के हेतु प्रस्तुत हुई; घर के लोग समझाने बुझाने लगे पर उसने किसी का कहना न माना, अन्ततोगत्वा, झटपट स्नान कर एक पालकी पर बैठ उसी स्थल पर पहुंची जहां पर वह दस्यु बध किये जाने को था, पीछे २ रोते हुए पिता माता और घरकुटुम्ब के लोग भी चले जाते थे। इतने में वधिक उस चोर को शूल पर चढ़ा चुके थे। उस चोर ने उस कन्या को देखा कि अपने कुटुम्बियों के साथ आई है और लोगों से उसका वृत्तान्त भी सुना कि इस हेतु इसका आगमन यहां हुआ है; तब तो वह भी रोने लगा, चणभर रोने के उपरान्त कुछ हंसा इसके उपरान्त शूल की विषम वेदना से उसके प्राण निकल गये।

(१) "जो तू पूर्व में बड़े २ गुणी कामदेव सदृश वरों को नहीं चाहती थी सो आज इस निन्दित चोर को पति क्यों बनाया चाहती है?" किसी २ पुस्तक में ऐसा पाठान्तर भी है।

जब वह दस्यु मर गया तब बधिकों ने उसका शव शूल पर से उतार दिया, तब वह साध्वी वणिक्सुता उस चोर की लोथ लेकर चिता पर आरूढ़ हुई। इतने में श्मशानवासी भगवान् भैरव अदृश्यरूप से आकाश में से बोले, "हे पतिव्रते! इस वर को तू ने स्वयं चुना और इसपर ऐसी दृढ़ भक्ति लगाई; तेरी इस पतिभक्ति से मैं अति सन्तुष्ट हूं सो जो मन चाहे मुझसे वर मांग ले।" भूतनाथ भैरव देव की ऐसी वाणी सुन उसने प्रणाम कर यह वर मांगा. "हे देव! यदि आप प्रसन्न हो वर देते हैं तो यह वरदान देवें कि मेरे पिता के सौ पुत्र होवें जिससे कि मेरे पिता मेरे विरह में प्राण न त्याग देवें; उनके कोई सन्तान नहीं है सो वह सौ पुत्रों के पिता हों और मेरे वियोग में मरने से बचें।"

जब वह इस प्रकार वर मांगकर चुप हो रही तब भगवान् भैरव फिर बोले, "अच्छा मैंने यह वरदान दिया, तेरे पिता को सौ पुत्र होंगे; अब दूसरा वर मांग क्योंकि तुझ सी दृढ़सत्वा के निमित्त इतना ही वर नहीं है।" यह सुन वह बोली "नाथ! यदि मुझपर ऐसी कृपा है तो यह वर देवें कि यह मेरा पति जी उठे और अब से सदा के लिये धार्मिक हो जावे; इस प्रकार इसके सब घाव अच्छे हो जावें और यह जी उठे; यह धर्मी हो जावे और महाराज वीरकेतु इसपर प्रसन्न हो जावें।" इस प्रकार अलक्ष्यरूप से भगवान् भैरव के कहते ही वह चोर जीता जागता जी उठा. शरीर में एक भी घाव नहीं मानों कहीं चोट लगीही नहीं है।

अब रत्नदत्त के विस्मय और हर्ष का ठिकाना नहीं; भगवान् भूतभावन भैरव के प्रसाद से पुत्रों का वरदान भी मिला ऊपर से मृत जामाता भी जी उठा सो वह आनन्द के सागर में गोते खाने लगा। अपनी रत्नवती सुता तथा उस चोर जामाता को लेकर अपने भाई बन्धुओं के साथ वह घर चला; घरपर आने के उपरान्त उसने बड़ा भारी उत्सव मनाया। जैसा उसका आनन्द था उसी के अनुसार उत्सव भी हुआ।

जब महाराज वीरकेतु को यह वृत्तान्त विदित हुआ तब वह भी अति सन्तुष्ट हुए; उन्होंने तत्क्षण उस चोर को बुलाकर अपना सेनापति नियुक्त किया।

उस चोर एक वीर का चोरपना जाता रहा, एक तो भगवान् भैरव के वरदान से उसका स्वभाव पलट हो गया था दूसरे अब राजसेवक हुआ, सो भी साधारण

नहीं किन्तु सेनानायक; सो वह उस वणिक्तनया रत्नवती का पाणिग्रहण कर सुखपूर्वक रहने लगा और महीपति के यहां उत्तरोत्तर उसका मान बढ़ता गया।

दोहा।

यहि विधि कथा सुनाइ कै, पूर्व्व शाप भय देइ।
अंसस्थित वेताल सो, नृप सन पूछ्यो एइ॥
कहिय भूप! पितु सहित साइ, वणिकसुता कहँ देखि।
शूल चढ़ायेहु चोर तव, रोइ हँस्यो का लेखि॥

सोरठा।

बोल्यो तब भूपाल, मौन त्यागि भय शाप के।
सुनु योगीश वेताल, चोर रुदन कर हेतु अब॥
बन्धु अकारन मोर, अहो धन्य यह बनिक है।
यहि दुख रोयो चोर, यहिकर ऋण पटयो नहीं॥

चौपाई।

हँसिबे महँ यह कारन रह्यऊ। चोर हृदय अस अचरज भयऊ॥
यह कन्या राजन कहँ त्यागि। मो सम अधम के पीछे लागि॥
अति विचित्र है नारि सुभाऊ। ऊंच नीच समुझै नहिँ काऊ॥

दोहा।

राजा को अस वचन सुनि, खसकि भज्यो वेताल।
जा लटक्यो तेहि रूख पै, चट पहुंच्यो महिपाल॥

(पन्द्रहवां वेताल)

बाईसवां तरङ्ग।

अब महाराज त्रिविक्रमसेन फिर उसी शिंशपातरु के समीप पहुंचे और उसी प्रकार वेताल को उतार कन्धे पर रख चले। वह चले जा रहे थे कि स्कन्धस्थित वेताल बोला "महाराज! सुनिये, फिर आपकी एक कथा सुनाता हूं—

नेपाल में शिवपुर नामक एक नगर था, तहां पूर्वकाल में यश:केतु नामक राजा हुए थे जिनका कि जैसा नाम था वैसेही गुण भी उनमें विद्यमान थे अर्थात् महीपति सचमुच यश:केतु ही थे। सो राजा प्रज्ञासागर नामक निज मन्त्री पर राज्य का भार छोड़ आप अपनी रानी चन्द्रप्रभादेवी के साथ भोग विलास करने लगे। कुछ कालोपरान्त रानी के गर्भ से एक कन्या हुई जिसका नाम शशिप्रभा पड़ा, राजकुमारी सचमुच शशिप्रभा ही थीं। राजदुलारी दिनोंदिन बढ़ने लगीं और कुछ कालोपरान्त यौवनवस्था हुई।

एक समय की बात है कि मधुमास में अपनी सखियों और सहेलियों के साथ राजकुमारी शशिप्रभा यात्रोत्सव के दर्शनार्थ उद्यान में गयीं। उसी समय किसी धनवान् ब्राह्मण का पुत्र मन:स्वामी नामा उस वाटिका में यात्रोत्सव देखने आया था। राजकुमारी एक ओर फूल चुन रही थीं, फूल तोड़ने में उनका हाथ जो ऊपर को उठा तो उनका एक स्तन दृष्टिगोचर हुआ। ब्राह्मणतनय की दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी देखतेही वह मन:स्वामी कहलाने पर भी उसे रोक न सका और कामशर से विद्ध हो मोहित हो गया। वह अपने मनमें विचारने लगा कि यह साक्षात् रति है कि मनोभव के वाणनिर्माणार्थं वसन्तर्तुसम्भूत फूल चुन रही है। अथवा यह साक्षात् वनदेवी हैं जो माधव की पूजा के निमित्त यहां आयी हैं। द्विजन्मा इस प्रकार भावना कर ही रहा था कि शशिप्रभा की दृष्टि भी उसपर पड़ी, वह उन्हें साङ्ग कामदेव सा प्रतीत हुआ। अब कहां फूल का चुनना! राजकुमारी उसपर ऐसी मोहित हो गयी कि उन्हें अपनी देह की भी सुधि न रही प्रेम में तन्मय हो गयीं।

इस प्रकार नवीन प्रेमरस में दोनों छकाछक हो रहे थे कि हाहाकार का महा कोलाहल सुन पड़ा। "यह क्या है" इसके देखने के हेतु दोनों शिर उठाकर देखने लगे तो क्या देखते हैं कि एक मस्त हाथी किसी दूसरे हाथी के मदगन्ध से उन्मत्त हो सिक्कड़ तोड़ाय दौड़ा चला आ रहा है। मार्ग में जितने पेड़ पड़े हैं उसके धक्के से चर चर हो गये हैं, महावत गिर गया है और हाथी उसी ओर दौड़ा चला आ रहा है।

गजराज को सरुष आता देख राजकुमारी के साथ की सब सहेलियां भाग के तितर बितर हो गयीं और राजकुमारी वहां अकेली रह गयीं। इतने में मन:-

स्वामी दौड़ा और राजकुमारी को उठाकर ऐसे सुदूर स्थान में ले गया जहां हाथी की पहुँच न थी। राजदुलारी शशिप्रभा गज के भय से व्याकुल तो थीं ही ऊपर से लाज का बोझ पड़ा प्रेमाङ्कुर जगा ही था सो वह मनःस्वामी के अङ्क में कुछ लपट रही थीं। इसी अवसर में राजसुता के साथ के लोग वहां पहुंच गये और सब उस द्विजोत्तम की प्रशंसा करने लगे कि भाई तुमने बड़ा काम किया. तुम्हारे ही करते आज राजकुमारी के प्राण बचे नहीं तो आज बड़ा अनर्थ हो चुका था। तदुपरान्त सब सखियां घेरकर राजकुमारी को राजमन्दिर में ले गयीं। राजकुमारी चली तो जाती थीं पर लौट लौटकर उस ब्राह्मणतनय को निरखती जाती थीं। उनका मन्दिर में जाना बड़ा दुःखद हुआ। भवन में उनका शरीर मात्र पहुंचा मन तो उसी मनःस्वामी के आधीन हो गया। इन्हें उस प्राणदाता ही का ध्यान बना रहता, दिनोंदिन शरीर क्षीण हो चला, स्मराग्नि के आंवें में पच्यमान होने लगीं।

जब कि राजकन्या उद्यान से चली तब मनःस्वामी भी उनके पीछे २ चला, जब कि वह अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट हुईं उस समय मनःस्वामी की जो दशा हुई वह तो वही जानेगा जिसका कभी प्रियतमवियोग हुआ होगा, वर्णन करने से उसका अनुभव नहीं हो सकता। मनःस्वामी ने जब देखा कि अब तो मेरे नेत्रों की तारा गृह में लीन हो गयी तब तो उसकी उत्कण्ठा और बढ़ी और वह अपने मनमें सोचने लगा, "हाय! उसके बिना मैं क्योंकर जीऊंगा; अथवा जी करके ही क्या करूँगा। कहां जाऊँ क्या करू कुछ सूझता नहीं। अच्छा श्रीमूलदेव जी धूर्त्तसिद्ध यहां रहते हैं चलूं उन्हीं की शरण पकड़ूं; वह गुरु हैं कुछ उपाय करही देंगे।"

इसी चिन्ता में किसी प्रकार उसका वह दिन बीता, दूसरे दिन बड़े प्रातःकाल वह मूलदेव गुरु के पास पहुंचा, वहां क्या देखता है कि वह गुरु अपने मित्र शशी के साथ सदा रहता है और सिद्धों की माया के अद्भुत पथ शरीरधारी आकाश का मानों वह गुरु है। अब वह हाथ जोड़ इन्हें अपनी अभिलाषा सुना गया, मूलदेव ने भी मुस्कुरा के प्रतिज्ञा की कि अच्छा मैं तुम्हारा काय कर दूंगा

अब धूर्तपति मूलदेव ने योगवती गोली अपने मुंह में डाली और उसी

प्रताप से वृद्धब्राह्मण के समान अपनी आकृति बना ली। दूसरी गोली उसने मनःस्वामी के मुंह में डालकर उसे अति सुन्दर एक कन्या के रूप में बनाया। अब वह धूर्त्तराट् उस मनःस्वामीरूपिणी कन्या को लेकर उसकी प्रिया के पिता की राजसभा में पहुंचा और भूपति से विनयपूर्वक कहने लगा, "धर्मावतार! मेरे एक पुत्र है, उसी के हेतु इस कन्या को मैं बड़ी दूर से मांग लाया हूं, मैं तो यहां उसके लिये दुलहिन लाया पर न जानें वह कहां चला गया, अब मैं उसको ढ़ूंढ़ने जा रहा हूं, इस कन्या को कहां रख जाऊँ मनमें यही जँचा कि आप पृथ्वीनाथ हैं बस आपही के पास आपही की रक्षा में इसे छोड़ जाऊं; सो जब लौं मैं अपने पुत्र को लेकर न आऊं तब लौं आप इसकी रखवाली कीजियेगा।" योगी की इतनी बात सुन राजा यशःकेतु शाप के भय से तुरत उसके कथन पर सम्मत हो गये। उन्होंने अपनी पुत्री शशिप्रभा को बुलाकर यह कहा कि पुत्रि! इस ब्राह्मणकन्या को अपने गृह में ले जाओ और सदा इसे अपने साथ २ रखना कहीं पृथक् न होने पावे, अपने ही साथ इसे खिलाना पिलाना और अपने ही पास सुलाना। पिता का ऐसा कथन सुन राजपुत्री कन्यारूपी मनःस्वामी को अपने अन्तःपुर में ले गयीं। इसके उपरान्त ब्राह्मण बना हुआ मूलदेव जहां मनमें आया तहां चला गया और मनःस्वामी कन्यारूप में अपनी प्रिया के समीप रहने लगा। कुछ दिनों में दोनों की प्रीति बढ़ गयी और राजकुमारी का उसपर बड़ा विश्वास हो गया।

राजकुमारी की यह दशा थी कि उस ब्राह्मणकुमार के विरह में उनका शरीर दिनोंदिन क्षीण हुआ चला जाता था, शय्या पर लेटतीं तो करवटें भरती रात भर रह जातीं आंखपर आंख न पड़ती। सारांश यह है कि विरहवेदना से उनका शरीर अति पीड़ित रहता।

एक समय की बात है कि रात्रि में कन्यारूप में प्रतिच्छन्न मनःस्वामी राजकुमारी के शयनीय के समीप बैठा था; वहां कोई दूसरा जन न था सो एकान्त पाय उसने राजकन्या से पूछा,—"सखि! ऐसी क्या वेदना है कि तुम दिनोंदिन पीली हुई चली जा रही हो, शरीर क्षीण हुआ जा रहा है; ऐसी प्रतीत हो रही हो कि मानों कान्त का वियोग हो गया है। सखि शशिप्रभे! इसका हेतु तो

बतलाओ मुझसे कुछ छिपाओ मत। जब दो जनों का मन मिलाव हो जाता है तो बीच में कुछ छिपा न रहना चाहिये सो अब तुम मुझसे दुराव न रक्खो बताओ क्या बात है। जो तुम न बतलाओगी तो आज मैं भोजन न करूँगी।"

उसकी ऐसी उक्ति सुन राजसुता लम्बी सांस भरकर धीमे स्वर से बोलीं,— "सखि! तुमसे क्या छिपा है सुनो मैं तुमको बताती हूं!— एक समय मधुमास की यात्रा में मैं अपने उद्यान में गयी, वहां एक अति सुभग ब्राह्मणतनय मुझको देख पड़े। वह साक्षात् मधुमास के अवतार प्रतीत हुए जिनकी शोभा हिमनिर्मुक्त स्वच्छ कमलिनीनायक सी थी, उनकी शोभा से समस्त कानन प्रकाशित था. जिनके दर्शनमात्र से मदन अनङ्ग होने पर भी साङ्ग से भी प्रबल हो उद्दीप्त हो जाता। उनका चन्द्रमा सा मुखमण्डल क्या हो शोभमान था कि मेरी आंखें चकोर सी उसपर टुट गयीं और अमृतपान की लालसा से ऐसी दृढ़ लग गयीं कि हटाये न हटती थीं। इसी अवसर में महागज सिक्कड़ तोड़ा, अकाल मेघ सा गर्जता वहां दौड़ता आ पहुंचा। उस समय मेरे साथ की सब सखियां भय से व्याकुल हो तितर बितर भाग गयीं मैं अकेली वहां रह गयी। वह ब्राह्मणकुमार चट मुझे उठा बहुत दूर ले गये जहां गज न पहुंच सकता था। उनके अङ्ग का स्पर्श जो हुआ मानों मुझपर सुधावृष्टि हुई; उस समय मेरी जो दशा थी उसका वर्णन मैं स्वयं नहीं कर सकती, वह आनन्द मुझसे वर्णन नहीं किया जा सकता। क्षण भर में सब सखियां जुड़ आयीं और विवश मुझको यहां आना पड़ा, मानों स्वर्ग से मैं भूतल पर आ गिरी। तब से लेकर मेरे मनमें जो २ भावनायें उपजती हैं उन्हें पूर्ण करते अपने प्राणदाता पति को अपने समीप ही देखती हूं, और जब नींद लग जाती है तो क्या देखती हूं कि वह मुझसे हँसी ठट्ठा कर रहे हैं, कभी चूमा लेते और आलिङ्गन कर लज्जा छुड़ाते हैं। सखि ये सब तो भावनायें हैं पर उन्हें पाना कहां। मैं अभागिन यह भी नहीं जानती कि उनका नाम क्या है और रहते कहां हैं। बस अपने प्राणेश के विरहानल में मैं झुलसी रहती हूं।"

अहा! इस वचनामृत से कन्यावपुर्धर मनःस्वामी के श्रवण और उदर परिपूर्ण हो गये, मारे आनन्द के वह गद्गद हो गया; अपने को कृतार्थ मान मनमें विचारने लगा कि अब यही अवसर प्रगट होने का है। इतना विचार मुंह से गोली

निकाल वह प्रगट हो गया और राजकुमारी से कहने लगा, "हे चञ्चलाक्षि! उस दिन उस उद्यान में तुमने जिसको देखा था, तुम्हारे दर्शन का मोल लिया हुआ वही तुम्हारा अनन्यदास हूं तुमसे उस दिन जब मैं पृथक् हुआ तब से जो क्लेश मैं सह रहा हूं सो मेरा चित्त ही जानता है; बस उसीका परिणाम यह है कि मुझे कन्यारूप बनना पड़ा। हे तन्वङ्गि! विरह की ऐसी विषमवेदना जो मैं सह रहा हूं और तुम स्वयं भुगत रही हो उसे अब सफल करो; और आगे अब कामताप सहा नहीं जाता।"

इस प्रकार कहते हुए सहसा अपने प्राणेश को देख राजसुता तत्क्षण स्नेह, आश्चर्य और लज्जा में मग्न हो गयीं। इसके उपरान्त दोनों जनों की उत्कण्ठा अति बढ़ी, बस तत्क्षण दोनों में गान्धर्व विवाह हो गया और जैसा उन दोनों का प्रेम था वैसाही रतोत्सव भी सम्पन्न हुआ। अब मनःस्वामी कृतकृत्य हुआ और दो रूप धारण कर रहने लगा, दिन में तो गोली मुंह में रख कन्या के रूप में रहता और रात्रि में गोली मुंह से निकाल पुरुष बन आनन्द भोगता।

कुछ दिनों के बीतने पर एक बेर ऐसा हुआ कि राजा यशःकेतु के साले मृगाङ्कदत्त की कन्या मृगाङ्कदत्ता का विवाह पड़ा मृगाङ्कदत्त ने अपनी कन्या मृगाङ्कवती का विवाह ब्राह्मण महामन्त्री प्रज्ञासागर के पुत्र से स्थिर किया और विवाह भी हो गया। उस विवाह में निमन्त्रित होकर राजसुता शशिप्रभा अपने मामा के घर गयी थीं, उनके साथ उनकी सब सखियां सहेलियां गयीं और कन्यारूपधारी विप्रपुत्र मनःस्वामी भी गया था। वहां औरही बात हुई; मन्त्रिपुत्र की दृष्टि जो कन्यारूपधर उस मनःस्वामी पर पड़ी तो अब क्या। वह तो स्मररूप व्याध के शर से आहत हो व्याकुल हो गया। विवाह की सब विधि समाप्त हुई और मन्त्री का पुत्र अपनी नवोढ़ा वधू को लेकर अपने घर गया, पर उसका मन तो उस कपटकन्या ने चुरा लिया था; शरीर तो घर गया किन्तु मन उसी कपटकन्या में लग रहा था।

घर तो पहुंचा पर उस कन्यारूपी मनःस्वामी के मुखलावण्य में उसका ध्यान लगा रहा, तीव्र प्रेमरूपी महाव्याल के डँसे जाने से वह निश्चेष्ट हो गया। हाहाकार मच गया, रंग में भंग हो गया, सब लोग चहुँओर से दौड़े कि बात क्या है।

उसके पिता प्रज्ञासागर को यह वृत्तान्त विदित हुआ, वह दौड़ा हुआ वहां आया और पुत्र की ऐसी गति देख वह भी घबरा गया; अस्तु लगा समझाने बुझाने और शान्ति देने। तब तो वह मोह से जागा और पिता के पूछने पर बड़े प्रलाप के साथ अपना मनोगत सुनाय गया। सुनकर मन्त्री तो सन्न हो गया कि अब क्या किया जाय! यह बात मेरे वश की न ठहरी इसमें क्या करें।

होते होते राजा के कान लों यह बात पहुँची वह भी वहीं आ उपस्थित हुए। राजा देखते हैं कि कामवाण से पीड़ित हो वह मदन की सातवीं अवस्था को (१) पहुँच गया है, तब वह अपनी प्रजा को सम्बोधन कर कहने लगे, "सुनो भाइयो! यह कन्या तो ब्राह्मण की धरोहर है मैं क्योंकर इसे दे सकता हूं, और यह बात भी निश्चित है कि उसके विरह में यह अवश्य मर जायगा। जब यह मर गया तो इसके पिता मेरे मन्त्री विनष्ट हो जावेंगे; बस, इनके नाश से मेरे राज्य का नाश समझना सो कहो अब क्या किया जाय?" महीपति का ऐसा कथन सुन प्रजावर्ग बोले "महाराज! राजा का धर्म्म तो यही कहा गया है कि प्रजाओं को धर्म्मपूर्वक रक्षा करे। उसका मूल मन्त्र है और वह तो मन्त्रीमें ही स्थित है; बस मन्त्री का नाश होना मानो मूलही का नाश हुआ सो धर्म्म की रक्षा सब भांति से करनी चाहिये। पुत्र सहित जब मन्त्री ब्राह्मण की मृत्यु हुई तो बड़ा पातक समझना। सो महाराज! यह धर्म्मविप्लव अति आसन्न आ पड़ा है इसकी रक्षा अवश्य आपको कर्त्तव्य है। बस अब आप इस मन्त्रिपुत्र को उस ब्राह्मण की धरोहर वह कुमारिका दे दीजिये; जब कुछ कालोपरान्त वह ब्राह्मण आवेगा और कोप करेगा तब उसका प्रतिविधान कर दिया जायगा।" प्रजावर्ग की ऐसी उक्ति सुन राजा मन्त्रिपुत्र को उस कूटकन्या के देने पर सम्मत हुए।

लग्न निश्चित किया गया; तब कन्यारूप वह मनःस्वामी राजसुता के घर से बुलाया गया; उसने महीपति से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया, "राजन्! दूसरा कोई किसी दूसरे के निमित्त मुझे ले आया, अब आप किसी अन्य के हाथ में मुझे दान करते हैं तो यही सही, आप धर्म्मावतार कहे जाते हैं धर्म्म अधर्म्म दोनों आपके हाथ में है। आप इनके साथ मेरा विवाह कर दीजिये, कुछ चिन्ता नहीं

(१) निर्लज्जता।

पर मैं एक प्रतिज्ञा करा लूंगी कि जब लों यह मेरे पति छः मास पर्य्यन्त घूम घूमकर तीर्थयात्रा न कर लें तब लों बलात् मुझे अपनी शय्या पर न बैठावें और यदि हठात् इन्होंने ऐसा किया तो मैं दांतों से अपनी जीभ काटकर अपने प्राण त्याग कर दूंगी इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह न रखियेगा।" कन्यावपुधारी उस युवा की ऐसी प्रतिज्ञा सुन, महाराज के समझाने बुझाने पर वह मन्त्रिपुत्र किसी प्रकार शान्त हुआ और उसके पण पर सन्नद्ध हुआ। चलो झटपट दोनों का विवाह भी सम्पन्न हो गया तत्पश्चात् वह मूढ़ अपनी आद्या बधू मृगाङ्कवती को तथा इस नवोढ़ा कूटबधू को एक सुरक्षित भवन में रख, अपनी कान्ताके प्रियाचरणार्थ तीर्थयात्रा के निमित्त निकला और मनःस्वामी स्त्री के रूप में मृगाङ्कवती के साथ एकही गृह में रहने लगा, एकही साथ भोजन करता और एकही संग शयन करता।

एक समय की बात है कि रात्रिमें जब कि मृगांङ्कवती और मनःस्वामी एक साथ शय्यागृह में थे और घर के और सब लोग बाहर सोये थे उस समय एकान्त पाय मृगाङ्कवती ने मनःस्वामी से कहा "सखि। कुछ कथा सुनाती तो भला करती क्योंकि मुझे नींद नहीं आ रही है।" "बहुत अच्छा, सुनो," इतना कह स्त्रीरूप युवा मनःस्वामी वही प्राचीन कथा सुनाय गया जब कि सूर्य्यवंशोद्भव राजर्षि इला का भगवती गौरी के शाप से विश्वमोहन स्त्रीरूप हो गया, और देवोद्यान में बुध से साक्षात्कार होते ही दोनों में जो प्रीति उपजी जिससे तत्क्षण संयोग हुआ जिसका फल राजा पुरूरवा हुए। यह कथा सुनाय वह धूर्त्त फिर बोला, "सखि! सो तुम जान रक्खो कि देवता के आदेश से अथवा मन्त्र और औषधि के वश से पुरुष भी कभी २ स्त्री हो जाते हैं और स्त्री पुरुष भाव को प्राप्त होती है और फिर बड़े २ लोगों के भी इसी प्रकार कामकर्तृक संयोग हो जाते हैं।"

एक तो मृगाङ्कवती का पति विवाहोत्तर ही तीर्थयात्रा को निकल गया था, दूसरे अब अवस्था दूसरी आ पहुंची तीसरे इला की कथा। अब विचारी कितना सम्भाले! सहवास के कारण स्त्रीरूपधारी मनःस्वामी के साथ मन पट गया था सो वह मुग्धा उससे कहने लगी, "सखि। इस कथा के सुनते ही न जानें मेरा समस्त शरीर क्यों कनकना उठा है, हृदय में बड़ी व्यथा प्रतीत होती है सो कहो

तो सही यह बात क्या है?" उसका ऐसा कथन सुन स्त्रीरूपी वह विप्र बोला, "सखि! ये कामदेव के चिन्ह हैं, पहिले इनका अनुभव तुमको नहीं हुआ होगा अब तुम समझ सकती हो। मुझे तो इनका अनुभव भली भांति है पर किया क्या जावे किसी प्रकार दबाकर रह जाती हूं। सखि! तुमसे अब क्या छिपाऊं इन्हीं के कारण मेरी बड़ी दुरवस्था हो जाती है।" उसकी ऐसी उक्ति सुन मृगाङ्कवती धीरे से उससे कहने लगी, "सखि! तुम तो कालज्ञा हो सब बातें सब अवस्था की बूझ सकती हो, फिर तुम मेरी प्राणसमा हो अब तुमसे क्या छिपाऊं सो आलि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे किसी पुरुष का प्रवेश यहां होवे।"

मृगाङ्कवती का ऐसा आशय पाय धूर्त्तपति का वह शिष्य बोला "सखि! यदि यही बात है तो मैं एक उपाय बताता हूं; मुझे भगवान् विष्णु का यह वर है कि रात्रि के समय अपनी इच्छा से पुरुष बन जाऊं सो लो तुम्हारे लिये मैं पुरुष बन जाता हूं।" इतना कह मनःस्वामी ने अपने मुंह से गोली निकाल ली और अति सुन्दर अपना युवा रूप प्रगट कर दिखाया। अब क्या पूछना! सब यन्त्रणा छूट गयी उन दोनों में जो आमोदप्रमोद हुए उनका वर्णन लेखनी के बाहर है। इस प्रकार वह मनःस्वामी दिन में तो नारी बना रहता और रात्रि के समय पुरुष होकर उस मन्त्रिसुतभार्या के साथ आनन्द उड़ाता; इस भांति दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे। जब मन्त्रिसुत के आने का दिन निकट आया तब एक दिन चुपकेसे वह धूर्त्त मृगाङ्कवती को लेकर रात्रि के समय वहां से भाग गया।

होते होते यह बात मनःस्वामी के गुरु मूलदेव धूर्त्तराज के कानों में पहुंची वह चटपट वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारणकर अपने साथी शशी को तरुण द्विजरूप बनाय राजा यशःकेतु के समक्ष उपस्थित हुआ और बड़ी नम्रता से विनय कर कहने लगा, "महाराज! मैं अपने पुत्र को ढूंढ़ लाया अब मेरी पतोह्न मुझे मिल जाय।" अब क्या हो, राजा तो घबरा गये कि अब क्या करें कहीं यह विप्र शाप दे दे तो मेरा सर्वस्व गया; सो मन्त्री से परामर्श कर उन्होंने कहा, "ब्रह्मन्! वह तुम्हारी पतोह्न तो न जानें कहां चली गयी, मेरा अपराध क्षमा कीजिये; इस अपराध के पलटे मैं आपके पुत्र के निमित्त अपनी बेटी आपको देता हूं।" इतना

सुनतेही वह धूर्त्तराज मिथ्या क्रोध कर बड़बड़ कुछ बकने लगा। अस्तु महाराज यशःकेतु ने बड़ी चिरौरी विनति से उसे शान्त किया और उसके मित्र शशी के साथ, जो कपटरूप से द्विज बनकर आया था, अपनी कन्या मृगाङ्कवती का विवाह यथाविधि कर दिया। अब मूलदेव इस प्रकार से दोनों वधूवरों को लेके राजा की सम्पत्ति में बिना कुछ लिप्सा दिखाये अपने आश्रम को चला गया।

उधर क्या हुआ कि यह वृत्तान्त सुन मनःस्वामी ने आ घेरा और मूलदेव के समक्ष शशी का और उसका बड़ा विवाद होने लगा। मनःस्वामी ने कहा, "यह जब कन्या ही थी जभी मैंने गुरु के अनुग्रह से इसके साथ विवाह कर लिया था, सो यह मेरी भार्य्या ठहरी, मुझे दे दे।" शशी बोला "मूर्ख! सम्भलकर नहीं बोलता, तू इसका कौन! यह तो मेरी भार्य्या है, इसके पिता ने अग्नि को साक्षी रख मुझे इसका दान दिया है।"

इतनी कथा सुनाय, वेताल बोला, "राजन्! इस प्रकार मायाबल से प्राप्त उस राज्यकन्या के निमित्त उन दोनों का विवाद बहुत ही बढ़ गया किन्तु निर्णय कुछ भी न हो सका। अब मैं आप से पूछता हूं कि कहिये तो सही न्यायानुसार वह किसकी भार्य्या ठहरी। जो मेरा संशय दूर न करेंगे तो वही पूर्व का शपथ समझ रखिये।"

स्कन्धाग्रवर्त्ती वेताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा त्रिविक्रमसेन मौन छोड़ बोले, "सुनो योगिराज! मैं तो समझता हूं कि न्यायानुसार वह राजदुहिता शशी की ही भार्या ठहरी क्योंकि धर्म्मानुसार राजा यशःकेतु ने उसीके हाथ में उसका दान किया था। मनःस्वामी तो चोरी से उसके पास गया था और उसने गुप्तरूप से उसके साथ गान्धर्व विवाह किया था; सो यह कभी न्याय नहीं है कि दूसरे के स्वत्व पर चोर का अधिकार हो जाय।"

चौपाई।

सुनि इमि भूप-वचन बेताल। खस्यो कान्ध परते तत्काल॥
जा सिमस्यो अपनो ही धाम। पछितायो भूपती ललाम॥

तेईसवां तरङ्ग।

(सोलहवां वेताल)

अब महाराज त्रिविक्रमसेन पुन: उसी अशोक वृक्ष के नीचे पहुंचे और उस पर से वेताल को उतार कन्धे पर रख चुपचाप चले। जब कि वह चले जा रहे थे कि वेताल उनसे कहने लगा, "राजन्! सुनिये, एक अति उत्तम कथा आपको सुनाता हूं—"

हिमवान् नाम करके सब पर्वतों के राजा हैं, जो समस्त रत्नों के आकर हैं और हर की कान्ता गौरी तथा गङ्गा के समान प्रभव (१) हैं। इस भूमण्डल पर बड़े से बड़े शूर हो गये हैं पर एक भी ऐसा न हुआ जो उनकी चोटी लों पहुंच सका हो। समस्त कुलपर्वतों के मध्य जिनका ऐसा घमण्ड और औन्नत्य है कि तीनों भुवनों में जिनका गान होता है। उनकी तराई में काञ्चनपुर नामक वह नगर है जहां की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता मानों आदित्य देव ने अपनी किरणों की राशि वहीं धरोहर रख दी हो।

पूर्वकाल में विद्याधरेश्वर जीमूतकेतु वहां के अधीश्वर थे जैसे मेरु के शतक्रतु (२)। उनके गृहोद्यान में पूर्व पुरुषों के समय से चला आता हुआ कल्पवृक्ष था जो याचकों के मनोरथदान में यथार्थनामा था अर्थात् प्रार्थी कभी उससे विमुख नहीं फिर जाते थे। देवतात्मा उस कल्पवृक्ष से मांगकर राजा ने बोधिसत्वांशसम्भव जातिस्मर एक पुत्र पाया, जो कि बड़े दानवीर, महासत्त्व सब प्राणियों पर दयालु निकला, गुरुओं की शुश्रूषा उसका परम धर्म्म ठहरा। उस पुत्र का नाम विद्याधरेन्द्र ने जीमूतवाहन रक्खा। जब राजकुमार युवा हुए तब उनके गुण ऐसे हुए कि सब लोग उनसे अति प्रसन्न रहते। पुत्र के सद्गुणों और मन्त्रियों की प्रेरणा से विद्याधरेश्वर जीमूतकेतु ने राजकुमार जीमूतवाहन को युवराज बनाया।

जब जीमूतवाहन युवराज पद पर अधिष्ठित हुए तब उनके पिता के मन्त्री जो कि उनके परम हितैषी थे उनके समीप आये और कहने लगे, "देव। यह जो कल्पतरु आपलोगों का सर्वकामप्रद है उसे सब प्राणी नहीं पा सकते हैं सो आप सदा उसकी पूजा करते रहियेगा। जब लों यह हमारे पास रहे तब लों

(१) उत्पत्तिस्थान। (२) इन्द्र।

इसके प्रभाव से शक्र भी हमारा कुछ नहीं कर सकते फिर दूसरों की क्या चलाई"। मन्त्रियों की ऐसी उक्ति सुन राजकुमार जीमूतवाहन अपने मनमें विचार करने लगे कि अहो! इतने दिनों से एतादृश प्रभावसम्पन्न यह पादपश्रेष्ठ हमारे पूर्वजों के अधिकार में चला आता है किन्तु किसी ने इसकी महिमा न जानी; किसी ने एतदनुरूप फल प्राप्त नहीं किया। हां! कृपणों की भांति धन सम्पत्ति भले ही मांगकर वे लोग समृद्ध हो गये पर और कुछ उनसे भी न करते बन पड़ा; व्यर्थ ही उन्होंने अपनी तथा इस महात्मा की लघुता कियी। अच्छा यदि वे कुछ न कर सके तो क्या, मैं क्यों न अपना मनोगत अभीष्ट सिद्ध कर लूं। इतना निश्चय कर वह महात्मा अपने पिता के समीप गये।

पिता ने अपने पुत्र को आया देख उचित सत्कार कर बैठने को आज्ञा दी। जब जीमूतवाहन सुखपूर्वक बैठ गये तब एकान्त पाय अपने पिता से इस प्रकार कहने लगे, "पितः! आप जानते ही हैं कि इस भवसागर में जितने पदार्थ दृश्य-मान हैं वे सब पानी के बुलबुले हैं, और क्या, अपने शरीर का भी ठिकाना नहीं रहता कि कब क्या होगा। समुद्र की लहरों की भांति समस्त पदार्थ चञ्चल हैं। विशेषकर सन्ध्या, विद्युत् और लक्ष्मी का एकही स्वभाव है ये तीनों चणस्थायिनी हैं, इनके दर्शन के उपरान्त ही ऐसा शीघ्र "अदर्शनं लोपः" हो जाता है कि कुछ कहने की बात नहीं है; भला मैं पूछता हूं कि कभी ऐसा भी अवसर आया है कि इन तीनों की स्थिरता दृष्टिगोचर हुई हो? सारांश यह कि इन तीनों की चञ्चलता से समस्त सांसारिक विषयों की चञ्चलता सिद्ध है। जहां लों मैं दृष्टि फैलाकर देखता हूं कोई भी स्थिर नहीं पाया जाता, पर हां परोपकार एक ऐसा तत्व है जो अनश्वर (१) है; इस भवसागर के बीच यही एक अनुत्तम रत्न है जि-सका नाश कभी नहीं सुना गया है; यही धर्म्म और यश का प्रभव है जो कि युगयुगान्त पर्य्यन्त साक्षी बने रहते हैं। सो हे तात! अब मैं आप से पूछता हूं कि जब समस्त भोग विलास क्षणिक ठहरे तो कहिये ऐसे मोघ कल्पतरु की रक्षा हमलोग किसके लिये कर रहे हैं? "मेरा, मेरा" करके जो मेरे पूर्वज बड़े आग्रह से इसको बचाते आये वे अब कहां हैं और यह कहां पड़ा हुआ है! अब यह

(१) अनश्वर, अर्थात् जिसका नाश कभी नहीं होता।

उनका कौन और वे इसके कौन? सो हे पितः! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इस कामद कल्पपादप को परोपकार के फल सिध्यर्थ लगाऊँ।"

जीमूतकेतु ने उत्तर दिया, "बेटा! जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो; जाओ कल्पवृक्ष को परोपकार में लगाओ।"

पिता की अनुमति पाय जीमूतवाहन अति प्रसन्न हुए और तत्क्षण कल्पवृक्ष के समीप पहुँचे और हाथ जोड़ उससे निवेदन करने लगे, "देव! हमारे पूर्वजों के सब अभीष्ट आपने परिपूर्ण किये हैं, अब मेरी भी एक कामना है उसे आप पूरी करें। बस आप यही करें कि जिससे मैं पृथ्वी को अदरिद्रा (१) देखूं; आपका कल्याण हो, जाइये अर्थार्थी लोक के निमित्त मैंने आपको दे दिया।"

जीमूतवाहन का ऐसा अनुनयवचन सुन उस वृक्ष से यह वाणी निकली,— "अच्छा जो तुमने मेरा त्याग किया तो अब मैं जाता हूं।"

इतना कह कल्पवृक्ष आकाश में उड़ गया और वहां से वसु बरसने लगा, ऐसा बरसा कि धरती पर एक भी दरिद्र अथवा दुर्गत न रहा। जीमूतवाहन के इस सत्कर्म रूपी वृक्ष के प्रसूनों की गन्धि गिग्दगन्त में व्याप गयी, तीनों लोकों में उनका जयजयकार होने लगा, सब लोग बखान करने लगे कि राजकुमार जीमूतवाहन धन्य हैं कि समस्त प्राणियों की दरिद्रता के दूरीकरणार्थ परम्परागत कल्पवृक्ष का त्याग कर दिया; अहो! उनकी भूतानुकम्पा धन्य है।

अब गोत्रजों के कान खड़े हो गये, वे भला जीमूतवाहन की त्रिभुवनव्यापिनी कीर्त्ति कब सह सकते हैं। डाह से भरकर वे आपस में बिचार करने लगे कि आओ अब हमलोग जीमूतकेतु पर चढ़ाई करें और उन्हें राज्य से निकालकर समस्त राज्य आत्मसात् कर लें। इस समय अवसर अच्छा हाथ आया है क्योंकि जीमूतवाहन कल्पवृक्ष को तो त्याग ही कर चुका है अब उस वृक्ष के अभाव में इन दोनों का साथी कौन होगा, बस इस समय उनका राज्य छीन लेना चाहिये। इस प्रकार मन्त्रणा कर सब गोत्रज युद्ध करने के लिये सज्ज हुए।

गोत्रजों का ऐसा उपक्रम जान जीमूतवाहन अपने पिता जीमूतकेतु से कहने लगे, "पितः! आप जानते ही होंगे कि हमारे गोती लोग क्या करने पर उतारू

(१) नहीं है दरिद्र जिसमें, अर्थात् पृथ्वी में एक भी दरिद्र न रहे।

हैं। मैं तो यह भली भांति जानता हूं कि जब आप आयुध ग्रहण करेंगे तो कौन यम का प्रेरा होगा जो आपके साम्हने खड़ा रह सकेगा? परन्तु मैं यह सोचता हूं कि यह शरीर एक न एक दिन नष्ट होवेगाही, सदा तो साथ देवेगाही नहीं तो इस पापी के लिये कौन ऐसा निर्दय होगा जो अपने बन्धुओं का नाश करेगा और उन्हें नष्ट कर आप राज्य भोगने की अभिलाषा रक्खेगा। सो ऐसा राज्य लेकर हम क्या करेंगे, हमें राज्य नहीं चाहिये हमलोग कहीं अन्यत्र जाकर रहेंगे और अपना धर्म्म कमावेंगे जिससे दोनों लोक हमारे बनें, ये राज्य के लोभी दायाद लें राज्य, और भोगें।" पुत्र का ऐसा कथन सुन पिता जीमूतकेतु बोले, "पुत्र मैं जो राज्य की इच्छा रखता हूं सो तुम्हारे ही लिये, जब तुम्हीं कृपा के कारण उसका त्याग कर रहे हो तो मुझ वृद्ध को उस राज्य से क्या?"

इस प्रकार जब पिता की सहमति हो गई तब राजकुमार जीमूतवाहन अपने माता पिता को संग ले राज्य त्यागकर मलयाद्रि पर चले गये, तहां चन्दन वृक्षों की सुशीतल छाया में एक कन्दरा में कि जिसके समीप ही से झरना बह रहा था, रहकर वह अपने जनकजननी की शुश्रूषा करने लगे। थोड़ेही दिनों में तत्रत्य सिद्धराज विश्वावसु के पुत्र मित्रावसु से उनकी मित्रता भी हो गयी।

एक समय जीमूतवाहन इधर उधर घूमते घामते उपवन में पहुँच गये जहां भगवती हिमालयनन्दिनी गौरी का मन्दिर था; सो वह दर्शनार्थ मन्दिर के भीतर गये। वहां क्या देखते हैं कि महामाया के समक्ष एक अति सुन्दरी कन्या वीणा बजाती शैलराजतनया की आराधना में लीन है और उसकी सखियां उसे घेरकर खड़ी हैं। उसके संगीत से मुग्ध हो मृग बड़े ध्यान से वीणा का रव सुन रहे थे, वे ऐसे निश्चल थे कि जिससे यह भावना होती थी कि मानों उसके लोचन का लावण्य देख वे लज्जित होकर स्थगित हो गये हैं। उसके नेत्रों की कृष्ण पुतलियां अति मनोरम और नेत्र ऐसे तीक्ष्ण और बृहत् कि कर्णमूलपर्य्यन्त पहुंचे (१)। अति उन्नत और पीन स्तनयुगल ऐसे ऊंचे उठे थे मानों उनका मुखचन्द्र निरखने के लिये अति उत्सुक हो उसी ओर टकटकी लगाये देख रहे हों। उसको

(१) यहां कृष्ण अर्जुन और कर्ण का श्लेष है।

कटि ऐसी पतली कि मुट्ठी में आ जाय, उदर में त्रिवली पड़ी थी मानों निर्माण के समय में ब्रह्मा की अंगुलियों की रेखा पड़ गयी है।

उस तन्वी को देखते ही राजकुमार जीमूतवाहन का भाव और का और हो गया सुन्दरी उनके नेत्रमार्ग से हृदय में जा विराजी जिससे उनका मन पराये के हाथ में चला गया। उद्यान के भूषणस्वरूप कि जिसके दर्शन से उत्तरोत्तर उत्कण्ठा को वृद्धि ही होती जाती थी, जिसके सौन्दर्य से ऐसी भावना होती थी कि मानों कामदेव के भस्म हो जाने पर वैराग्य धारण कर मधु (१) वहां आश्रय लेने के निमित्त आया हो। एतादृश सौन्दर्यसम्पन्न राजकुमार जीमूतवाहन को देखकर उस दिव्य कन्या की भी एक अनिर्वचनीय दशा हो गयी; वह अनुराग के कारण ऐसी विवश हो गयी कि अपनी सुधि बुद्धि पर्य्यन्त भूल गयी; हाथ की वीणा जो सखीस्वरूपा थी व्याकुलता के वश आन का तान अलापने लगी।

तब जीमूतवाहन ने उस वर-कन्या की सखी से पूछा कि भद्रे। कहो तो सही इस तुम्हारी सखी का धन्य नाम क्या है? और कौन सा वंश इससे अलङ्कृत किया गया है? सो सुन सखी बोली, "महाभाग! इनका नाम मलयवती है, यह मित्रावसु की बहिन और सिद्धराज विश्वावसु की पुत्री हैं। इसके उपरान्त सहृदया उस सखी ने जीमूतवाहन के साथ आये हुए मुनिपुत्र से उनके नाम और अन्वयादि पूछ लिये, तब मलयवती से मधुराक्षरों में कहा, "सखि। विद्याधरेन्द्र का आतिथ्य क्यों नहीं करती हो, यह जगत्पूज्य अतिथि तुम्हारे यहां आये हैं।" सखी का इतना कहना सुन विद्याधरसुता ने लज्जा से शिर नीचा कर लिया। इतने में एक सखी बोली, "महाभाग! यह तो लजाती है, आइये मैं आपका आतिथ्य करती हूं, मुझसे अर्चा ग्रहण कीजिये," इतना कह वह अर्घ्य और माला लाई। जीमूतवाहन ने प्रेमनिर्भर हो वह माला ग्रहण कर मलयवती के कण्ठ में पहिना दी; तब मलयवती भी जीमूतवाहन की ओर प्रेमभरी तिरछी चितवन से देखा जिससे मानों नीलोत्पलमयी माला उनके गले में पहिना दी। इस प्रकार बिना बोले चाले दोनों में स्वयंवर का कार्य्य सम्पन्न हो गया।

इतने में एक चेरी आई और उस दिव्य सिद्धकन्या से कहने लगी, "राजपुत्रि।

(१) वसन्त।

आपको माताजी स्मरण करती हैं सो शीघ्र चलिये"। इतना सुनतेही मलयवती ने बड़ी कठिनता से अपने प्रियतम के मुख पर से दृष्टि फेरी, वह दृष्टि मानों कामदेव के बाणों को कील थी, सो वह अत्यन्त उत्कण्ठित तो थीही, इधर प्रेम उधर माता की आज्ञा! अस्तु किसी प्रकार वह वहां से चली गयी। इधर जीमूतवाहन भी किसी प्रकार अपने आश्रम में पहुचे। यद्यपि दोनों जन अपने २ आश्रम को पहुँच गये तथापि दोनों का मन एक दूसरे में लगा था। मलयवती अपने गृह पहुंची और माता के दर्शन कर जाकर शयनीय (१) पर पौढ़ रही।

मलयवती अपने प्राणेश्वर के विरह में शय्या पर पड़ी थी आंखों से अश्रु की धारा बह रही थी, भीतर कामाग्नि जो सुलग रही थी उससे जो धूम निकलता था तिससे उसकी आंखें अति विकल हो रही थीं इसी कारण नेत्रों से आंसू बह रहे थे और उसी अग्नि के सन्ताप से उसका समस्त अङ्ग भुर्ता हो रहा था। सखियों ने उसके शरीर में चन्दन का लेप किया, कोई २ नलिनीदल से पंखे झालतीं तौभी वह छटपटाती ही रही; शय्यापर से उठकर भूतलपर पड़ रहती वहां भी उसे शान्ति न मिलती, तब सखियां अपनी गोदी में रखतीं तब भी चैन नहीं; भाव यह कि किसी प्रकार उसे शान्ति न प्राप्त होती।

इतने में किसी प्रकार दिन व्यतीत हुआ और सायङ्काल की लालिमा की अपूर्व शोभा हुई। थोड़ीही देर में प्राची दिशा का हँसता हुआ मुख चन्द्र ने चुम्बन किया। इस समय मलयवती की कामवेदना और बढ़ी, अब अपना जीवन भी उसे अपार हो गया। यद्यपि कामाग्नि से भस्म हुई जाती थी तथापि लज्जा के कारण दूती न भेज सकती थी। कमलिनी के समान किसी प्रकार अपना हृदय संकुचित कर, जिसमें कि मोहरूपी अलि बद्ध था, उसने बड़ी कठिनता से वह निशा, जो चन्द्रमा के कारण अति विषम हो रही थी, बितायी।

उधर जीमूतवाहन की दशा भी उस दिव्य कन्या के वियोग में अति विषम हो रही थी, बिचारे कुसुमधन्वा के हाथ में फँसकर अपने शयनीय पर पड़े करवटें भर रहे थे। यद्यपि शरीर के ऊपर दूसरा ही रंग प्रतीयमान होने लगा था और वह प्रिया के वियोग में पीले पड़ गये थे, प्रेम की नवीन चोट उन्हें लगी थी,

(१) पलङ्ग।

ऊपर से लाज अपना प्रभाव डाल बैठी थी, तथापि वह कामजन्य पीड़ा में करा-हते २ रातभर रह गये, किसी प्रकार वह निशा बीती।

प्रात:काल होनेपर, इनका मन अत्यन्त उत्कण्ठित हुआ कि चलो वहीं भगवती गौरी के मन्दिर में चलें, वहीं प्रिया के दर्शन हो जावेंगे तो इन तरसती आंखों की जलन तो बुझेगी। इतना विचार वह वहीं गौरी देवी के मन्दिर में गये जहां सिद्धाधिप की पुत्री मलयवती के दर्शन हुए थे । उनका मित्र वह मुनिपुत्र भी उनके पीछे २ आया और मदनानल से सन्तप्त जीमूतवाहन को सान्त्वना देने लगा।

इधर से मलयवती भी चुपचाप अकेली अपने भवन से निकली कि जाकर कहीं प्राण त्याग कर देवे, विरह असह्य हो गया था अतएव वह ऐसे दुष्कर्म पर प्रवृत्त हुई। वह भी चली २ वहीं पहुँची कि कदाचित् प्राणेश्वर के चन्द्रवदन के दर्शन हो जांय। वहां आयी तो सही किन्तु उस समय जीमूतवाहन एक वृक्ष की आड़ में थे इससे वह उन्हें देख न सकी; तब तो उसका विरहानल और भी धधक उठा आंखों में आंसू भर आये और वह भगवती गौरी से इस प्रकार निवेदन कर कहने लगी, "हे महामाये। मैं तुम्हारी भक्ति सदा से करती आयी, उसका फल यदि यह न मिल सके कि जीमूतवाहन इस जन्म में मेरे पति होवें तो हे देवि! ऐसा वरदान देवें कि यही जीमूतवाहन दूसरे जन्म में मेरे पति होवें ।" इतना कह अपनी ओढ़नी उतार उसी से अशोक वृक्ष की डाली में भगवती गिरिजा के समक्षही फांसी प्रस्तुत कियी। "हा नाथ! देव जीमूतवाहन! तुम्हारी करुणा तो विश्वभर में विख्यात है तो वह करुणा कहां गयी कि मेरा परित्राण नहीं करते," इतना कह वह गले में फांसी लगाया ही चाहती थी कि देवी की कही आकाश-वाणी हुई, "पुत्रि! साहस मत कर, विद्याधरेन्द्र चक्रवर्ती जीमूतवाहन ही तेरे पति होंगे।" देवी की ऐसी वाणी सुन जीमूतवाहन अपने वयस्य के साथ तत्क्षण अपनी प्रहृष्ट प्रिया के पास दौड़ आये, उस समय वह मुनिपुत्र कहने लगा, "देखो भगवती का कहना सत्य ही हुआ, यह तुम्हारे वर यहीं उपस्थित हो गये हैं।" इतने में जीमूतवाहन ने प्रणय वचनों से सान्त्वना दे मलयवती के गले से फांसी निकाल दी। दोनों अपने २ मन में बिचारने लगे कि यह अकस्मात् सुधावृष्टि कहां से हो गयी और तब मलयवती लज्जा से धरती की ओर निरखने लगी।

इतने में मलयवती की सखी उसको ढूंढ़ती वहीं आ पहुँची और उससे कहने लगी, "सखि ! कल्याणिनी हो, तू बड़ी भाग्यवती है तेरे भाग्य सहायक हुए हैं कि तेरा अभीष्ट सिद्ध हुआ। अभी की बात है कि कुमार मित्रावसु ने मेरे साम्हने ही तुम्हारे पिता विश्वावसु महाराज से कहा कि पित: आप जानते ही हैं कि कल्पतरु के दाता जगन्मान्य विद्याधरेन्द्रतनय जीमूतवाहन यहां आये हैं सो यह हमारे अतिथि हैं अत: पूज्य हैं सो मेरी सम्मति है कि मलयवती कन्यारत्न से उनकी पूजा की जाय। महाराज ने इसपर हुंकारी भरी, तब तुम्हारे भाई मित्रावसु उसी हेतु (इन) महाभाग के आश्रम को गये हैं। मैं तो समझती हूं कि आजही तुम्हारा उद्वाह हो जायगा सो चाओ अपने मन्दिर को चलो और यह महाभाग भी अपने स्थान को जावें।"

सखी का इतना कहना सुनते ही मलयवती के हर्ष का ठिकाना न रहा, उनकी उत्कण्ठा और बढ़ी। तब वह धीरे २ अपनी भवन की ओर चली और पुन: २ शिर घुमा घुमा कर जीमूतवाहन की ओर निरखती जाती थी। जीमूतवाहन भी अपने आश्रम में पहुंचे और देखें तो राजकुमार मित्रावसु आये हैं सो उनसे यथाभीष्ट कार्य्य सुन वह अति प्रसन्न हुए। वह जातिस्मर तो थे ही, पूर्वजन्म की सब बातें उन्हें स्मरण आ गयीं सो वह बोले कि भाई मित्रावसु तुम पूर्वजन्म में मेरे मित्र थे और तुम्हारी बहिन मेरी पत्नी थी। यह सुन मित्रावसु अति प्रसन्न हुए और जीमूतवाहन के माता पिता से आज्ञा ले निज मन्दिर को सिधारे तहां सब सुसमाचार सुन कर उनके माता पिता भी अति प्रहृष्ट हुए।

राजकुमार मित्रावसु ने श्रीमान् जीमूतवाहन को अपने गृह बुलवा भेजा और अपने वैभव के अनुसार बड़ा भारी और उचित समारोह और उत्सव किये। उसी दिन मध्यान्ह के समय विद्याधरेन्द्र जीमूतवाहन और अपनी बहिन मलयवती का विवाह उन्होंने सम्पादन करा दिया। जीमूतवाहन का मनोरथ सिद्ध हो गया और वह अपनी नवोढ़ा पत्नी मलयवती के साथ अति आनन्द और आमोदप्रमोद के सुख अनुभव करते हुए रहने लगे।

एक समय की बात है कि जीमूतवाहन मित्रावसु के संग भ्रमण करने को निकले और मलयाद्रि पर घूमते २ समुद्र किनारे की वन में पहुंचे। वहां उन्हें

हड्डियों की ढेरी दीख पड़ी सो वह मित्रावसु से पूछने लगी, "कहो मित्र! ये हड्डियों के संघात किन प्राणियों के हैं ?" तब उनके श्याल मित्रावसुजी अति कारुणीक अपने बहनोई जीमूतवाहन से कहने लगी, "भाई! इसका वृत्तान्त ऐसा है, सुनिये मैं आपको संक्षेप में सुनाता हूं।"

पूर्वकाल की बात है कि नागों की माता कद्रू ने गरुड़ की माता विनता को किसी बहाने से जीतकर दासी बनाय लिया। वही वैर गरुड़ के मन में समाया; उन्होंने अपनी माता को दासीपन से मुक्त किया और उसी दिन से कद्रू के पुत्र नागों का खाना आरम्भ कर दिया। वह बली सदा निर्भय और निःशङ्क पाताल में घुस जाते और नागों को पकड़ २ भकोसने लगते, बहुतों को धरकर पीस डालते, कुछ विचारे तो डर के मारे स्वयं मर जाते। नागों का ऐसा संहार देख नागराट् वासुकि बड़े व्याकुल हुए और मनमें विचार करने लगे कि इस प्रकार तो थोड़े ही दिनों में नागों का नाम भी न रह जायगा सो अब कुछ उपाय करना चाहिये। यह विचार उन्होंने तार्क्ष्य के साथ विनतिपूर्वक एक नियम ठहराया और प्रार्थना कर उनसे कहा, "खगेन्द्र। आपके आहारार्थ दक्षिण समुद्र के तट पर हम प्रतिदिन एक नाग को भेज दिया करेंगे आप उसी को खाकर सन्तुष्ट रहा कीजिये; पर आप पाताल में कभी न आइयेगा, भला एकसाथ नागों का संहार कर आप क्या लाभ उठावेंगे ?" नागराज की ऐसी उक्ति सुन अति पराक्रमी और स्वार्थदर्शी गरुड़ उस पण पर सम्मत हुए और बोले "तथास्तु"। तबसे लेके प्रतिदिन नागराज वासुकि के भेजे नाग को गरुड़ यहां अम्बुधि के पुलिन पर खाते हैं, और प्रतिदिवस का यही काम ठहरा अद्यावधि अगणित दिवस व्यतीत हो गये। बस उन्हीं नागों की हड्डियों के ये पहाड़ लगे हुए हैं।

मित्रावसु के मुख से इस प्रकार नागों के संहार की कथा सुन दयाधैर्य्यनिधि जीमूतवाहन बोले "शोक है राजा वासुकि पर, वह बड़े डरपोक ठहरे जो प्रतिदिन अपने हाथ से अपनी प्रजाओं को शत्रु के भोजनार्थ भेजते हैं; भला उनके सहस्र आनन न ठहरे, सो किस काम के जब कि उनमें से एक आनन भी यह न बोल सका कि तार्क्ष्य! मुझे पहिले भक्षण कर लो। कैसे उन सत्वहीन से अपना कुलक्षय मांगा गया, यद्यपि प्रतिदिन नागाङ्गनाओं का आक्रन्दन सुनते हैं तिसपर

भी उनके हृदय में दया न आयी। और गरुड़ को क्या कहूं! कश्यप के सन्तान, और वीर, पुनः कृष्ण के अधिष्ठान से अति पावन हो गये हैं, सो ऐसे होकर भी वह ऐसा पाप करते हैं! हाय! कैसा गाढ़ा मोह!!

इतना कह वह महासत्त्व जीमूतवाहन अपने मनमें विचारने लगे, "यह मेरी असार देह किस काम आवेगी, भला इससे तो मैं कुछ सारतत्व अर्जित कर लेता। आज किसी एक भी अबान्धव तथा भयभीत नाग के प्राणरक्षणार्थ मैं गरुड़ को आत्मसमर्पण कर क्यों न यश लूट लूं।"

वह इस प्रकार मनोरथ कर ही रहे थे कि मित्रावसु के पिता के यहां से एक दूत यह सम्बाद लाया कि महाराज आप दोनों महानुभावों को बुला रहे हैं। इस प्रकार बुलावा सुन जीमूतवाहन ने मित्रावसु से कहा, "भाई! आप चलिये मैं पीछे अभी आता हूं," इतना कह उन्होंने मित्रावसु को विदा किया। अब वह अपने अभीष्ट की सिद्धि के निमित्त इधर उधर भ्रमण करने लगे।

वह इसी चिन्ता में भ्रमण कर रहे थे कि थोड़ी दूर पर उन्हें सकरुण रुदनकी ध्वनि सुन पड़ी, जाकर उधर जो देखते हैं तो एक अति रूपवान् युवा पुरुष उत्तुङ्ग शिला के समीप बैठा है उसके मुखड़े से यह ज्ञात होता था कि उसके मन में कुछ सन्ताप है। उसके निरीक्षण से यह भावना होती थी कि मानों कोई राजभट उसे वहां अभी छोड़ गया है। वह युवा एक रोती वृद्धा से लौट जाने की प्रार्थना कर रहा है और बड़ी विनति कर रहा है पर वह न मानती थी। यह दशा देख करुणावरुणालय जीमूतवाहन का हृदय दया के कारण अति व्याकुल हो गया, वह विचारने लगे कि अब तो अवश्य इनका पता लगाना चाहिये कि इनके हृदय में क्या वेदना है किस बात का दुःख इन्हें है अथवा किस हेतु ये यहां आये हैं। सो वह वहीं एक ओर छिपकर उनकी बात सुनने लगे।

इतने में दुःखभार से अति पीड़ित वह वृद्धा स्त्री उस युवा को देख देखकर शोक करने लगी।" हा! शङ्खचूड़! हा गुणसम्पन्न! हा मैंने सैकड़ों क्लेश उठाकर तुझे पाया! हा कुल के एकमात्र तन्तु! हा पुत्र! फिर मैं तुझे कहां देखूंगी। जब तुम्हारा यह चन्द्रमुख अस्त हो जायगा तब शोकान्धकार में पड़े तुम्हारे वृद्ध पिता की क्या दशा होगी? पुत्र! कहां तो तुम्हारा शरीर ऐसा सुकुमार कि सूर्य

की किरणों का सहन नहीं कर सकता था सो तार्क्ष्य के भक्षण से जो पीड़ा होगी उसे क्योंकर सह सकेगा । नागलोक तो ऐसा विस्तीर्ण है, उसमें नाग भरेही हैं सो मुझ अभागिन के अभाग्य से तुम्हीं चुने गये, विधाता और नागाधिप को कोई दूसरा न मिला ! मेरे एकलौते तुम्हीं मिले ! हा दुर्भाग्य !

इस प्रकार विलपती उस वृद्धा को वह युवा पुत्र करुणामय वाक्यों से समझाकर कहने लगा, "अम्ब ! मैं तो स्वयं दुःखार्त्त हूं, तुम्हारे वियोग से मेरी छाती फटी जाती है फिर मुझे और क्यों दुःखित करती हो ? अब तुम घर को लौट जाओ, यह मेरा अन्तिम प्रणाम है। जाओ घर चली जाओ अब गरुड़ के आनेकी बेला आ पहुंची है।"

पुत्र का ऐसा दुःखमय वचन सुन वह वृद्धा पुनः आर्त्तनाद कर रो रो कहने लगी कि हाय! मेरे पुत्र की कौन रक्षा करेगा । इतना कह वह चहुंओर आंखें फाड़ फाड़ देखने और चिल्लाने लगी ।

यह दृश्य देख बोधिसत्त्वांशसम्भव जीमूतवाहन का हृदय कृपा से आर्द्र हो आया, उनके हृदय पर इस दृश्य से बड़ा आघात पहुंचा; सो वह विचार करने लगे—"हन्त। यह तपस्वी शङ्खचूड़ ही आज तार्क्ष्य के भोजन के लिये वासुकि से भेजा गया। इसकी यह माता है जो इसके पीछे २ स्नेह के मारे दौड़ती हुई चली आयी है । हा। इस वृद्धा का यह एकमात्र पुत्र है और इसी हेतु यह दुःखिनी विशेषकर विलख २ रो रही है। अन्त में मेरा शरीर एक न एक दिन नष्ट होवेहीगा तो उससे क्यों न इस एकले आर्त्त नाग की प्राणरक्षा करूं ? यदि ऐसा न हो सका तो मेरा जन्म धिक् है ! उसका होना न होना एकसा ठहरा।" इतना सोच वह आनन्द से आगे बढ़े और जाकर उस वृद्धा से कहने लगे "मातः ! तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे पुत्र की रक्षा करूंगा ।" इतना सुनते ही वह वृद्धा भय के मारे व्याकुल हो गयी, गरुड़ की आशङ्का कर वह कहने लगी, "तार्क्ष्य ! हे तार्क्ष्य ! पहिले मुझे भक्षण करो, सुनो मुझे खा लो, मेरे बच्चे को छोड़ दो।" तब शङ्खचूड़ ने कहा, "मातः! डरो मत डरो मत यह तो तार्क्ष्य नहीं है; कहां यह चन्द्र के समान आह्लादकारी और कहां वह तार्क्ष्य अति भयङ्कर !" शंखचूड़ के ऐसे कथन पर जीमूतवाहन बोले, "अम्ब ! मैं विद्याधर हूं तुम्हारे पुत्र की

रक्षा के हेतु यहां आया हूं। मैं कपड़ा ओढ़कर पड़ रहूंगा और गरुड़ को अपना शरीर देऊंगा, वह भूखे तो रहेंहीगी कैसे पहिचान सकेंगे कि कौन सोया है फिर मैं कपड़ा ओढ़ेही रहूंगा सो और भी वह न पहिचान सकेंगे बस भकोसने लगेंगे, सो अब तुम अपने पुत्र को लेकर घर चली जाओ।"

जीमूतवाहन की ऐसी उक्ति सुन वह वृद्धा बोली, "बेटा यह तो नहीं होने का। तुम मेरे शंखचूड़ से अधिक ठहरे क्योंकि ऐसे कुसमय में तुमने हमपर ऐसी मया दिखाई।' वृद्धा का ऐसा उत्तर सुन जीमूतवाहन फिर बोले, "तुम दोनों को उचित है कि मेरा मनोरथ भङ्ग न करो।" इस प्रकार जब वह बड़े आग्रह से बार बार कहने लगे तब शंखचूड़ ने उनसे कहा "महासत्व! कृपालुता क्या है सो तुमने प्रत्यक्ष कर दिखाई! मैं तो तुम्हारे शरीर से अपने शरीर की रक्षा कभी न करूंगा, भला ऐसा कौन मूर्ख होगा कि रत्न देकर पाषाण की रक्षा करेगा। माता का प्रेम तो पुत्रों पर होताही है, ऐसे मेरे समान मातृवत्सलों से तो जगत् भरा है किन्तु आप से जगत् पर अनुकम्पाकरनेवाले विरलेही जन मिलेंगे। हे सन्मते! मैं तीक्ष्णांशुविम्ब सदृश निष्कलङ्क तथा पवित्र शंखपाल के कुल में कलङ्क न लगाऊंगा आप अधिक निर्बन्ध मत करिये, मैं ऐसा कदापि नहीं करने का!"

इस प्रकार जीमूतवाहन को निषेध कर शङ्खचूड़ अपनी जनयित्री से कहने लगा कि अम्ब! अब तुम यहां से पहिलेही दुर्ग में चली जाओ। तुम नहीं देखती हो कि कृतान्तलीलापर्यङ्कसदृश यह भयङ्करी वध्यशिला कैसी रौद्र है। जिसपर नागों के लहू से कीचड़ हो रहा है। मैं तो अब समुद्रतट पर जा रहा हूं जबलों गरुड़ न आ जांय गोकर्ण के दर्शन कर अति शीघ्र यहां लौट आऊंगा। इतना अपनी माता से कह उससे बिदाई ले शङ्खचूड़ उसे रोतीही छोड़ गोकर्ण के दर्शनार्थ चला गया।

इतने में जीमूतवाहन अपने मन में विचार करने लगे कि इसी अवसर में यदि गरुड़ आ जावें तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो जावे और मैं अपना कार्य कर डालूं।

इसी अवसर में पक्षीन्द्र के पङ्खों के पवन से वृक्ष हिलने लगे मानों जीमूतवाहन को मना कर रहे हैं कि ऐसा निदारुण कार्य्य मत कीजिये। उसी घोर

पवन से उदधि में ऊँची २ लहरें उठने लगीं, मानों वह अपने रत्नमय चमकीले नेत्रों से उनकी ओर बड़े आश्चर्य से देख रहा है। यह देख जीमूतवाहन ने मन में विचारा कि अब पक्षिराट् के आगमन की बेला आ गयी। यह विचार वह चटपट उसी वध्यशिला पर जा पड़ रहे। इतने में आकाश ढँक गया और गरुड़ आ पहुँचे और झपट लपककर उन महासत्व को चोंच में पकड़ उठा ले उड़े। चोंच के आघात से जो घाव हुआ था उसमें से लहू की धारा बह चली और उनका शिरोरत्न गिर पड़ा। पक्षिराट् उन्हें मलयाद्रि के शृङ्गपर ले जाकर भकोसने लगे। विद्याधरेन्द्र जीमूतवाहन अपने मन में विचार करते थे कि जिस २ योनि में और जब २ मैं जन्म ग्रहण करूं तब २ इसी प्रकार मेरा शरीर परोपकार के काम में आवे; यदि स्वर्ग और मोक्षपदों में परोपकृति न हो सके तो ऐसे पद मुझे अभीष्ट नहीं हैं। तात्पर्य्य से इस प्रकार नोच २ खाये जाते थे तब भी उनके मनमें ऐसी भावना थी इससे अति प्रसन्न हो देवता गण स्वर्ग से फूल बर्साने लगे।

जीमूतवाहन के मस्तक से जो वह मणि खसका तो जाकर उनकी पत्नी मलयवती के समक्ष गिरा, लहू में भीगा वह चूड़ारत्न देख और पहिचानकर कि यह तो मेरे प्राणनाथ का है मलयवती अति उद्विग्न हुई और उसे लियेदिये अपने सास ससुर के समीप दौड़ गयी और रो रोकर दिखाने लगी। वे दम्पती भी अपने पुत्र का शिरोरत्न पहिचान, "यह क्या है," ऐसा कह अति विस्मित हो गये। तब राजा जीमूतकेतु और रानी कनकवती ने अपनी विद्या के प्रभाव से जान लिया कि बात ऐसी २ है सो वे बहू मलयवती को साथ ले वहां गये जहां गरुड़ और जीमूतवाहन थे।

उधर गोकर्ण के दर्शन कर शङ्खचूड़ भी अपनी वध्यशिला पर आया तो क्या देखता है कि वह लहूलोहान है, यह देख वह भी अति उद्विग्न हुआ और बोल उठा. "हाय! मैं मारा गया! निश्चय उस कृपालु महात्मा ने मेरे निमित्त गरुड़को आत्मसमर्पण किया, सो अब मैं पता लगाऊंगा कि अहिशत्रु उन्हें कहां उठा ले गया; यदि उन महात्मा को जीता पा जाऊं तो अपयश के कीचड़ में न फसूंगा," इस प्रकार विचार वह रोता २ धरती पर पड़ी लहू की उन धाराओं का निरीक्षण करता हुआ चला।

इधर की यह बात हुई कि गरुड़ जीमूतवाहन को भकोसे जाते थे और जीमूतवाहन चूं भी नहीं करते थे प्रत्युत अति प्रहृष्ट थे यह देख पक्षिराट् को भी बड़ा आश्चर्य हुआ सो वह सोचने लगे, "अहो! यह तो कोई अपूर्व जीव प्रतीत होते हैं कि मैं भक्षण करता जाता हूं और यह महानुभाव अति प्रहृष्ट हैं और इनके प्राण नहीं निकलते हैं; आनन्द से बार बार रोमाञ्चित हो जाते हैं और मेरी ओर देख देख ऐसे प्रसन्न होते हैं मानों मैं इनका उपकार कर रहा हूं। सो यह नाग नहीं है यह तो कोई महात्मा हैं; अच्छा अब मैं इन्हें न खाऊंगा और पूछूंगा कि महात्मन्! आप कौन हैं।" इस प्रकार तार्क्ष्य को चिन्ता करते देख जीमूतवाहन बोले, "पक्षीन्द्र! रुक क्यों गये, क्या मेरे शरीर में अब मांस लहू न रहे? अथवा आप सन्तुष्ट हो गये? खाइये २।" उनका ऐसा कथन सुन पक्षि-राट् और भी आश्चर्यित हुए और उन्होंने जीमूतवाहन से पूछा, "महात्मन्! आप नाग नहीं प्रतीत होते हैं सो कहिये आप कौन महानुभाव हैं?"। "नागही हूं, यह आप क्या पूछते हैं, अपना काम कीजिये, यह कैसा प्रश्न? यह तो बालकों का सा व्यापार है कि प्रस्तुत विषय का परित्यागकर अप्रस्तुत की चर्चा करें, बुद्धि-मान् लोग ऐसा नहीं करते।" जीमूतवाहन ने ऐसा उत्तर दिया।

जीमूतवाहन तार्क्ष्य से ऐसा कह ही रहे थे कि उधर से दौड़ता और दूर ही से चिल्लाता हुआ शङ्खचूड़ आ पहुंचा, "हे विनता के पुत्र! अनर्थ मत करो, सुनो ऐसा महापातक मत करो। तुम कैसे भ्रम में पड़ गये हो, यह तो नाग नहीं हैं. मैं नाग हूं, मैं तुम्हारा भक्ष्य हूं," इतना कहकर वह दौड़ता आया और उन दोनों के बीच में बैठ गया। जब उसने देखा कि गरुड़ विस्मित हो गये हैं तब पुनः कहा, "वैनतेय! क्यों चकपका गये हो क्या सोच रहे हो? क्या मेरी फण और दोनों जीभें नहीं देख रहे हो? और पुनः इन महानुभाव विद्याधर की सौम्य आकृति नहीं दीख पड़ती है?"

इस प्रकार शङ्खचूड़ गरुड़ से कह रहा था कि इसी अवसर में जीमूतवाहन के माता पिता और भार्या सब लोग अति शीघ्र आ पहुंचे। पुत्र को क्षत विक्षत और लहूलोहान देखकर माता पिता रोने लगे, "हा पुत्र! हा जीमूतवाहन! हा कारुणीक! हा वत्स! हा! परार्थजीवनदेनेवाले! हा वैनतेय! तुमने यह कैसा विना विचारा काम कर डाला!"

इतना सुनतेही तार्क्ष्य के हृदय में बड़ा अनुताप हुआ, वह अपने मनमें विचारने लगे, "हा ! कैसे कष्ट की बात है ! अरे मोहवश मैं बोधिसत्वांश को भकोस गया ! अरे यह तो जीमूतवाहन हैं जिन्होंने दूसरे की रक्षा में अपने प्राण दिये हैं ! हा यह वही महात्मा हैं जिनकी कीर्त्ति की घोषणा तीनों लोकों में हो रही है। हा यह महात्मा तो अब चल बसे तो इस पाप की मार्जना मैं क्योंकर करूं ? मुझे अग्नि में जलमरना उचित है। ठीक है अधर्मरूपी विषवृक्ष का फल कभी स्वादिष्ट हो सकता है ? हा कैसा दुष्कर्म मुझसे बन पड़ा।"

इस प्रकार गरुड़ अनुताप कर रहे थे कि इसी अवसर में जीमूतवाहन अपने माता पिता और भार्य्या को देखकर व्रणों की असह्य पीड़ा से अति व्याकुल हो परलोक सिधारे। जीमूतवाहन के माता पिता के शोक का ठिकाना न रहा वे हाहाकार करके विलाप करने लगे और शङ्खचूड़ अपने को कोंस २ बार २ अपनी निन्दा करने लगा।

जीमूतवाहन की भार्य्या मलयवती का यह व्यापार था कि वह आकाश की ओर देख अश्रुगद्गद हो पूर्वप्रसन्न भगवती अम्बिका देवी को इस प्रकार उलाहना देने लगी, "देवि गौरि ! तुमने तो कहा था कि तेरा पति विद्याधरों का चक्रवर्ती अधिप होगा सो यह मैं क्या देख रही हूं, क्या तुम भी मुझसे झूठ बोली थीं ? यदि नहीं तो तुम्हारा वचन अन्यथा क्यों गया।"

मलयवती के इतना कहतेही भगवती गौरी प्रत्यक्ष हुईं और बोलीं, "पुत्रि ! मेरा वचन कदापि मिथ्या नहीं हो सकता !" इतना कह उन्होंने अपने कमण्डलु से जल निकाल जीमूतवाहन पर छिड़का मानों अमृत सींचा। सींचते ही जीमूतवाहन के सब घाव भर आये और वह तत्क्षण जी उठे मानों मरे ही नहीं थे, शरीर पर कहीं घाव के चिन्ह नहीं, प्रत्युत पूर्व की अपेक्षा उनका शरीर और भी सौम्य हो गया। उठकर उन्होंने देवी को प्रणाम किया और सभों ने भी महामाया के समक्ष अपना २ शिर झुकाकर प्रणाम किया तब अति प्रसन्न हो देवी बोलीं, "पुत्र ! जीमूतवाहन ! मैं तुम्हारे इस शरीरदान से अति सन्तुष्ट हुई सो अब अपने हाथ से तुम्हें विद्याधरों के चक्रवर्ती पद पर कल्पपर्य्यन्त राज्य करने के लिये अभिषिक्त करती हूं।" इतना कह भगवती शर्वाणी ने कलश के जल से जीमूत-

वाहन का अभिषेक कर दिया और सभों ने जगज्जननी की बड़ी पूजा की। इसके उपरान्त देवी अन्तर्धान हो गयीं । इसी समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी, नभमण्डल में देवता लोग दुन्दुभि बजाने लगे।

अब गरुड़जी ने बड़ी नम्रता से जीमूतवाहन से इस प्रकार कहा, "चक्रवर्तिन्! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूं. तुमने वह काम किया जो कोई न कर सकेगा। तुमने ब्रह्माण्डरूपिणी भित्ति पर यह एक अपूर्व चित्र उरेहा है जिसका निरीक्षण कर संसार के सब लोग अति विस्मित होंगे और तुम्हारी उदारता की प्रशंसा करेंगे। अब मुझे भी कुछ शिक्षा दो और सुनो मुझसे अभीप्सित वर मांग लो।" इस प्रकार गरुड़ का कथन सुन महात्मा जीमूतवाहन बोले, "सुनिये गरुड़जी! आप अनुताप के कारण अब कभी नागों का भक्षण न करें, और जिन नागों को आप भकोस गये हैं, जिनकी हड्डियांमात्र बच रही हैं वे भी जी उठें।" गरुड़ बोले, "एवमस्तु, मैं अब नागों के भक्षण से विरत हुआ, आज से मैं कभी उनका भक्षण न करूंगा; और जिन्हें मैं पूर्व में खा गया वे भी जी उठें ।" बस गरुड़ के अमृतरूपी वरदान से सब भक्षण किये गये अस्थिमात्रावशेष नाग जी उठे । अब सुर, नाग और मुनि बड़े आनन्दित हो मलयाद्रि पर आये सो मलयाचल को लोकत्रय की पदवी प्राप्त हुई। उसी समय गौरी देवी के प्रसाद से सब विद्याधरेश्वरों को जीमूतवाहन के सदाचरण के समाचार विदित हुए सो वे सब भी मलयाद्रि पर उपस्थित हुए और जीमूतवाहन को साष्टाङ्ग प्रणाम कर मुदित बन्धु बान्धव सहित उन्हें, जिन्हें कि भगवती पार्वती ने निज करकमल से सचक्रवर्त्ति पद पर अभिषिक्त किया और जिन्होंने कि तार्क्ष्य को विसर्जन दिया था; लेकर हिमाद्रि पर गये।

छन्द।

तहँ जनकजननी, श्याल मित्रावसु, मलयवति संग में,।
निज गृह से लीन्यो शङ्खचूड़ाहिँ पाइ पूर्ण उमङ्ग में ॥
जीमूतवाहन, लोक-उत्तर-चरित अद्भुत सिंधि भस्यो।
रत्नोपचित विद्याधरों का चक्रवर्ती पद धस्यो ॥

दोहा।

इहि विधि कथा उदार कहि, पूछत भो वेताल।
नृपति त्रिविक्रमसेन सों, कहिय महामहिपाल॥

सोरठा।

शङ्खचूड़ जीमूत—वाहन में है अधिक को।
किहिकर सत्व अकूत, पूर्वशाप चित धारिये॥
सुनि वेताल के बैन, मौन त्यागि भय शाप के।
नृपति त्रिविक्रमसैन, निरुद्वेग बोलत भयो॥

छन्द।

जीमूतवाहन के विषय, वेताल सुनु, अचरज कहा।
बहु-जन्म-सिद्ध अहै जु यह गुन, शङ्खचूड़ै यश लहा॥
वह धन्य है, जो मृत्यु से बचि, आइ पुनि शत्रुहिं दयो।
निजतनु, जो आनहिं लेइ तहँ से दूर अति थो चलि गयो॥

दोहा।

तब नृप को अस बचन सुनि, खसक्यो सो वेताल।
जा पहुंच्यो निज धाम पै, पिछियायो महिपाल॥

चौबीसवां तरङ्ग।

(सत्रहवां वेताल)

अब राजा त्रिविक्रमसेन उस शिंशपातरु के नीचे पहुँचें और पुनः वेताल को उसपर से उतार कन्धे पर रख ले चले। वह चले जा रहे थे कि अंसस्थित वेताल उनसे इस प्रकार कहने लगा, "महाराज! सुनिये मैं आपको एक कथा सुनाता हूं जिससे आपको थकावट का अनुभव न होगा।"

पूर्वकाल में कलिकलुषविनाशिनी भगवती जान्हवी गङ्गा के तटपर कनकपुर नामक एक नगर था, जहां धर्म्म भगवान् अखण्डरूप से विराजमान थे, इस हेतु कलि का प्रवेश भी वहां नहीं हो सकता था। वहां यशोधन नामक भूपाल राज्य

करते थे, वह वसुधाधिप अन्वर्थ थे अर्थात् जैसा उनका नाम था वैसाही उनका धन यश ही था; वह महिपाल आसमुद्रान्त वसुधा का पालन करते थे। जगत् के आह्लादकारी राजा यशोधन चन्द्रतुल्य समझे जाते थे और उनका प्रताप ऐसा अखण्ड था कि जिससे वह तपन (१) समझे गये; मानों विधि ने चन्द्र और सूर्य्य को एकही में रख के उन्हें बनाया हो। पराये के अपवाद में वह मूर्ख थे किन्तु शास्त्रार्थ में वैसे नहीं थे; दोष में दरिद्र थे परन्तु कोष और दण्ड में दरिद्र न थे; राजा पाप से अति डरते थे किन्तु शूरता के प्रदर्शन में नहीं चूकते थे, यश के लोभी थे किन्तु कञ्जूस नहीं प्रत्युत बड़े उदार थे; यद्यपि अति सुन्दर थे तथापि परस्त्री के पक्ष में षण्ढ (२) थे।

उनके नगर में एक बड़ा भारी महाजन रहता था, उसके उन्मादिनी नाम्नी एक सुता थी। जो कोई ही उसको देखता वही उसके मोहनरूप से मोहित हो उन्मत्त हो जाता था। जब कि वह यौवनवस्था हुई तब उसका पिता जो कि नीतिशास्त्र में बड़ा प्रवीण था, राजा यशोधन के पास गया और हाथ जोड़कर निवेदन करने लगा, "देव! मेरे एक कन्या है जो त्रैलोक्यसुन्दरी है, अब वह विवाह के योग्य हुई सो विना आपको जनाये मैं किसी दूसरे को उसे नहीं दे सकता। आप भी सब रत्नों के प्रभु हैं, इस समस्त भूतल पर आप सा सुन्दर कोई विरला ही होगा, भूमण्डल के उत्तमोत्तम रत्न आपके समीप विद्यमान हैं सो इस कन्यारत्न को ग्रहण कर अथवा त्याग कर मुझे अनुगृहीत कीजिये।" उस बनिये की ऐसी उक्ति सुन राजा ने अपने ब्राह्मणों को बड़े आदर से यह आदेश दिया कि आपलोग जाकर उसे देख आवें तब तैसा किया जाय।

ब्राह्मण लोग उस बनिये के साथ उसके गृह गये और उस त्रैलोक्यसुन्दरी को देखकर सबका धीरज जाता रहा; कुछ कालोपरान्त जब सभों का मन ठिकाने हुआ तब आपस में सलाह करने लगे कि कहीं राजा इसे पा जावें तब तो राज्य चौपट! भला जब इसमें राजा का मन लग जावेगा तब क्या राज्य उन्हें भावेगा? इससे राजा से यह न कहना चाहिये कि यह सुलक्षणा है। इतना परामर्श कर वे विप्र महीपति के पास लौट गये और महाराज को उन्होंने कह सुनाया कि

(१) सूर्य्य। (२) नपुंसक।

देव ! वह कन्या तो बड़ी कुलक्षणा है आप उससे विवाह मत कीजिये । यतो महाराज यशोधन ने उस वणिक्सुता को ग्रहण नहीं किया।

तब राजा यशोधन से आज्ञा ले उस बनिये ने अपनी बेटी उन्मादिनी का विवाह महाराज के सेनापति बलधर से कर दिया। यद्यपि उन्मादिनी को इससे बड़ी चोट लगी कि राजा ने मुझे कुलक्षणा कहके त्याग किया इससे मेरा अपमान हुआ तथापि वह अपने पति के साथ बड़े आनन्द से सुखपूर्वक रहने लगी।

कुछ कालोपरान्त फुल्लकुन्दलता जिसके दन्त और जिसने नलिनी वन का मथन कर डाला था ऐसे हेमन्त हस्ती का हनन कर, पुष्प की मञ्जरियां जिसके केसर और आम की मञ्जरियां जिसके नख ऐसा वसन्तकेसरी क्रीड़ा करता हुआ काननों में आ विराजा । नगर भर में वसन्तोत्सव मनाया जाने लगा, चहुँओर लोग मधु का स्वागत करने लगे । उस समय राजा यशोधन हाथी पर चढ़कर उत्सवदर्शनार्थ निकले । ढौंड़ी फिरवा दी गयी कि समस्त कुलललनायें घरों के भीतर छिपी रहें कोई अँटारी अथवा खिड़की पर से न झांके; क्योंकि राजा का सौन्दर्य्य ऐसा मनोहर था कि जिसके निरीक्षण करते ही कैसी ही कोई रमणी क्यों न हो मुग्ध हो जाती थी इसी निमित्त वारणार्थ डिंमडिमघोष फिरवा दिया गया था। उन्मादिनी को इस घोष से परम आनन्द हुआ कि अब पलटा लेने का अच्छा अवसर मिला; राजा ने मुझे कुलक्षणा कहके त्याग न किया था सो अब मैं अपने को दिखाकर उनपर प्रगट किये देती हूं कि मैं कैसी कुलक्षणी हूं; बस उसी परित्याग की अपमानना की मार्जना के निमित्त वह अपनी अँटारी पर जा बैठी और वैसा ही हुआ कि महाराज यशोधन की दृष्टि उसपर पड़ही तो गयी।

अब क्या ! मधु और मलयानिल से प्रज्वलित कियी गयी कामाग्नि की ज्वाला स्वरूपा उस उन्मादिनी को देखते ही महाराज यशोधन के पेट में मछली उछलने लगी, उनका मन चञ्चल हो गया । वह उसके सौन्दर्य्य का निरीक्षण करते ही रह गये मुंह से कुछ बात भी न निकली, मनही मन उसकी प्रशंसा करने लगे कामदेव का वह जैत्र (१) अस्त्र उनके हृदय में ऐसा चुभा कि वह तत्क्षण मूर्छित हो गये। भृत्यवर्ग समझाने बुझाने और शान्ति धराने लगे। अब कहां का उत्स

(१) जयशील; जो सबको जीत लेता है।

निरीक्षण और कहां का उत्सव मनाना । राजा वहीं से लौटे और अपने राज-प्रासाद में आये । पूछपाछ करने से ज्ञात हुआ कि यह तो वही रमणीरत्न है जिसे पाकर भी महाराज ने त्याग दिया था । हाय ! हाय ! अब वह अपनी मूर्खता का पश्चात्ताप करने लगे पर होना क्या था ? उन्होंने उन ब्राह्मणों को देश से निकलवा दिया जिन्होंने कहा था कि वह कुलक्षणा है। ब्राह्मणों का ऐसा शासन कर महाराज रातदिन उसी उन्मादिनी के ध्यान में निमग्न रहने लगे। कहां का राज्य कहां का पाट ! राज्यव्यवस्थादि करे कौन ! मन तो उन्मादिनी के वश में पड़ा उन्मत्त हो गया है।

"अहो ! यह निर्लज्ज चन्द्र कैसा ढीठा है, भला इसे लज्जा नहीं आती कि जगत् के नेत्रोत्सवसमान उसके निष्कलङ्क मुख रहते भी प्रतिदिन उदय होता है; हा ! सोने के कलश और गजकुम्भ बड़े कर्कश होते हैं भला वे उसके उन्नत और पीन पयोधरों की उपमा कैसे पा सकते हैं ! हा काञ्चीमाला से सुशोभित उसका जघनस्थल कैसा सौम्य है. कन्दर्पमातङ्गमस्तकसदृश(१) वह किसका मन क्षुभित न करेगा।" बस अब राजा के मनमें इसी प्रकार की चिन्ता सदा विद्यमान रहती, वह इन्हीं सब बातों का ध्यान किया करते। अस्तु इसी प्रकार उसके ध्यान में मग्न रहने से कामाग्नि के आंवें में पकते २ राजा यशोधन दिनोंदिन क्षीण होने लगे। यद्यपि अन्तःसन्ताप से जल रहे थे पर प्रगट नहीं करते थे, अपनी भूल कहें किससे और कहें भी तो लोकनिन्दा, नामपर धब्बा, सो लाज निगोड़ी के प्रभाव से वह मनही मन और भी भुर्त्ता हुए जाते थे। वह चाहे कहें न पर लक्षण तो कहे देते न थे कि राजा की क्या दशा है । उनके आप्त जन हठकर पूछने लगे, अन्ततोगत्वा उन्हें बतलाना ही पड़ा सो वह अपनी पीड़ा का कारण सुनाय गये। तब उन्होंने कहा, "महाराज ! तो इतना सन्ताप क्यों कर रहे हैं, उसे अपने अन्तःपुर में मंगवा लीजिये और निर्द्वन्द्व उसके साथ रमण कर आनन्द से रहिये क्यों इतना कष्ट और सन्ताप भोग रहे हैं।" राजा धार्मिक तो थे ही, धर्म्म से भी डरते थे अतः उनका ऐसा कथन सुन वह उसपर सम्मत न हुए।

(१) कन्दर्प = कामदेव, मातङ्ग = हाथी, मस्तक = कुम्भ, सदृश = समान; अर्थात् कामदेवरूपी हाथी के कुम्भसमान।

अब सेनापति बलधर को महाराज के क्लेश का सम्वाद विदित हुआ, सो वह प्रभुभक्त तो था ही, चट अपने स्वामी के समक्ष उपस्थित हुआ और चरणानत हो निवेदन करने लगा कि महाराज ! आपके दास की स्त्री आपकी दासी ही ठहरी, वह पराङ्गना नहीं हो सकती और फिर मैं स्वयं अर्पण करता हूं सो स्वामी उसे ग्रहण करें; अथवा यदि देव को इसमें कुछ आगापीछा हो तो मैं उसे किसी मन्दिर में छोड़ आऊं फिर वहां से उसके मंगा लेने में आपको कुलललना के ग्रहण का दोष न होगा।

इस प्रकार से अति विनति करते हुए सेनापति का अनुनयवाक्य सुन महाराज यशोधन के हृदय में बड़ा कोप हुआ और वह बोले, "भला ! राजा होकर मैं ऐसा अधर्म्म क्योंकर कर सकता हूं ? जब मैंने ही मर्य्यादा का उल्लङ्घन किया तो अपने मार्ग पर रहेगा कौन ? देखो गीता में भगवान् ने क्या कहा है—:

यद्यदाचरति श्रेष्ठ-स्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥

तुम मेरे भक्त हो इससे ऐसा कह रहे हो, सो भक्त होकर तुम मुझे क्यों ऐसे घोर पाप में प्रवृत्त कराते हो जिससे परलोक में महादुःख होगा और यहां प्राप्त क्या होगा कि क्षणभर का आनन्द ! यदि तुम अपनी धर्म्मगृहीता पत्नी को त्याग करोगे तो मैं यह न सह सकूंगा; भला मुझ सा व्यक्ति कैसे एतादृश धर्म्म का संहार सह सकेगा। ऐसे पाप से मेरे लिये मृत्यु श्रेय है।" इतना कह राजा ने उसे निषिद्ध किया। ठीकही है उत्तम जन प्राण त्याग देते हैं किन्तु सत्पथ का परित्याग नहीं करते। ठीकही कहा है—"बड़े न लोपैं लाज कुल, बरु समूल बिनसाहिँ"।

इसके उपरान्त और २ पुरवासी और जनपदवासी महाराज यशोधन के समक्ष उपस्थित हुए और हाथ जोड़ २ कर उनसे निवेदन करने लगे कि महाराज ! क्यों शरीर तपाया जाता है उसे ग्रहण कर लीजिये और भली भांति राजकाज देखिये। यद्यपि उन लोगों ने बहुतेरा समझाया किन्तु राजा अपने धर्म्मपर अचल बने रहे उन्होंने किसी का भी कहना न माना और इस विषय में जो कोई जो कुछ कहे वह उसका तिरस्कार ही करते गये।

अस्तु राजा यशोधन ने अपना नाम सार्थक कर तो दिखाया किन्तु अन्तज्वराग्नि में भुनकर वह दिनोंदिन भुर्त्ता होते गये अन्ततोगत्वा शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया और प्राणपखेरू तनरूपी पिंजड़े से उड़ गया और उनका यशमात्र इस लोक में रह गया। सेनापति बलधर अपने स्वामी का ऐसा वियोग न सह सका वह भी अग्नि में जल मरा। भक्तों का व्यापार अनिर्वचनीय होता है। ठीकही कहा है—"जानि न जाइ भक्तगति भाई।"

ऐसी अद्भुत कथा सुनाय वेताल ने महाराज त्रिविक्रमसेन से कहा, "राजन्! अब कहिये इन दोनों अर्थात् राजा और सेनापति में से किसका सत्त्व उत्तम ठहरा; जो उत्तर न देंगे तो वही पूर्वोक्त शाप समझ रखियेगा।" वेताल का ऐसा प्रश्न सुन महीपति त्रिविक्रमसेन मौन त्यागकर बोले, "उन दोनों में से तो राजा यशोधन ही अधिक सत्त्ववान् ठहरे।" उनका ऐसा कथन सुन वेताल ने पुनः बड़े आक्षेप से पूछा कि महाराज! सेनापति क्यों न श्रेष्ठ ठहरा? भला कहिये तो ऐसा कौन व्यक्ति होगा कि ऐसी सुलक्षणा और त्रैलोक्यसुन्दरी पत्नी पाकर फिर जिसके साथ इतने दिन लों आनन्दपूर्वक रह आमोदप्रमोद के साथ सुख भोग करे फिर उसी का परित्याग करे। सो उस सेनापति ने किया कि महाराज को अपनी धर्मपत्नी का देना स्वीकार किया। फिर स्वामी के मर जाने पर वह आप भी जल मरा अब इससे बढ़कर कुलभूषण का और क्या प्रमाण होगा। वेताल का ऐसा साक्षेप वचन सुन महाराज त्रिविक्रमसेन हँसकर बोले, "योगिराज! तुम्हारा कहना ठीक है सेनापति कुल का सुपूत ठहरा; स्वामी का वह दृढ़ भक्त था इसी हेतु उसने ऐसा किया परन्तु यह भी स्मरण रखना कि भृत्यों का कर्त्तव्य है कि प्राण देकर भी स्वामी का संरक्षण करें। राजा लोग तो स्वभावतः मदान्ध और निरङ्कुश रहते हैं; विषयवासना में पड़कर वे धर्म की शृङ्खला तोड़ उच्छृङ्खल हो जाते हैं। जब कि उनका अभिषेक होता है उसी समय अभिषेक के जल से उनका विवेक बह जाता है जैसे धारा में पड़कर समस्त पदार्थ बह जाते हैं; जब चँवर झलने लगे तब उन्हीं के वायु से वृद्धों का बताया हुआ समस्त ज्ञान उड़ जाता है जैसे पङ्खे के बतास से मक्खी मच्छड़; राजछत्र जो ऊपर लगा बस उससे यही न होता है कि सूर्य्य का आतप न लगे किन्तु उसके साथ ही सत्य भी चला

जाता है और आलोक के न पहुँचने से जानतेही हो कि पथ पर चलनेवालों की क्या गति होती हैं सो आतपत्र से प्रकाश तो जाता रहा और उधर से विभव की आंधी आयी उससे दृष्टि मन्द हो गयी अब वह मार्ग का निरीक्षण कैसे कर सके, तुम जानतेही हो कि जगद्विजयी नहुषादि राजाओं की गति काम के कारण कैसी हो गयी तो राजा यशोधन की कौन चलावे; पर हां धन्य राजा यशोधन कि उन्मादिनी तथा लक्ष्मी का प्रभाव उनपर न पड़ा, वह धर्म्मात्मा प्राणों से वियुक्त हुए किन्तु धर्म्ममार्ग से विचलित न हुए, कुमार्ग पर उन्होंने पांव न रक्खे अतएव मेरे विचार में तो वही और सत्त्वाधिक ठहरे।"

शार्दूलविक्रीड़ितम्।

राजा को इतनो कह्यो जु सुनिकै फिर कान्ध पर सो तुरत्।
खसक्यो सो वेताल जाइ अँटक्यो वा शिंशपा वृक्ष पै॥
भूपौ ह्व पुनि लेन हेत तिहिके पीछे फिरे ताहि छन।
दुष्कर कर्म्म आरम्भि श्रेष्ठ जनको विश्राम है फिर कहां॥

पच्चीसवां तरङ्ग।

(अठारहवां वेताल)

अब उस श्मशान में, जहां कि अनेक भूत प्रेत पिशाच नाच रहे थे, चिता की ज्वाला जिनकी जिह्वाये हैं, और जड़ भूतादिक अधजला तथा कच्चा मांस नोच २ कर खाते हैं ऐसे भूत प्रेत पिशाचों से व्याप्त उस भयङ्कर मसान में महाराज त्रिविक्रमसेन निश्चलचित्त उपस्थित हो उस शिंशपावृक्ष के नीचे पहुंचे। वहां देखते हैं तो अति भयङ्करकाय विकृतानन अनेक वेताल उस वृक्ष पर लम्बमान हैं, यद्यपि वे अति भयङ्कर थे तथापि राजा उन्हें देख कुछ भी भयभीत नहीं हुए।

अब राजा उन सभों को देखकर अपने मन में विचार करने लगे कि अहो! अबकी वार तो अनेक वेताल लटक रहे हैं मैं नहीं पहिचान सकता कि इनमें से वह कौन है जिसे मैं उठा ले जाता हूं; मुझे तो ऐसा भासता है कि वह मायावी ऐसी २ माया करके किसी प्रकार कालक्षेप करना विचार बैठा है; इस भांति कालातिपात हो जाने से मेरा कार्य्य असिद्ध हो जायगा और कृतकार्य्य न होने

से मैं अग्नि में अवश्य जल मरूंगा, भला जीकर हंसी क्योंकर सह सकूंगा; बस रात्रि बीती कि मैं अग्नि में जल मरा। राजा त्रिविक्रमसेन का ऐसा सुदृढ़ निश्चय देख वेताल उनके धैर्य्य से अति प्रसन्न हुआ सो उसने तत्क्षण अपनी माया बटोर ली। अब राजा देखते हैं तो केवल एक वेताल लटक रहा है सो वह उसे उतार कन्धे पर रख ले चले। जब कि महाराज चुपचाप उसे लिये हुए चले जा रहे थे कि वेताल उनसे कहने लगा "राजन्! आप धन्य हैं, टुक भी आप उद्विग्न नहीं हो रहे हैं, अच्छा सुनिये मैं आपको एक विचित्र कथा सुनाता हूं—:

उज्जयिनी नाम्नी एक पुरी है, भगवती गौरी के कठिन तपःक्लेश से प्राप्त भगवान् त्रिपुरारि जिस पुरी के असामान्यगुणोत्कर्ष से प्रसन्न हो स्वयं चुनकर जहां आ विराजे। यह नगरी भोगवती और अमरावती की तीसरी समझनी चाहिये अर्थात् उन दोनों नगरियों से किसी अंश में न्यून नहीं है। उस पुरी में कड़ाई और कठोरता का नाम कहीं नहीं, हां उनका परिचय तत्रत्य कामिनियों के कुचों से प्रतीत होता है अर्थात् कामिनियों के कुचों के अतिरिक्त और कहीं कड़ाई और कठोरता नहीं विद्यमान हैं; टेढ़ापन यदि है तो उन्हीं ललनाओं की भौंहें साची देती हैं और चपलता कहीं है तो उन्हीं प्रमदाओं के विलोचनों में। अन्धकार केवल रात्रि में प्रतीत होता, वक्रत्व कवियों की उक्ति में, मद हाथियों में, और जाड्य (१) मोती चन्दन तथा चन्द्रमा में प्रतीत होता है।

वहां किसी समय में, चन्द्रप्रभ नामक महीपति राज्य करते थे, तिनके मन्त्री देवस्वामी नामक एक विप्रवर थे जो कि अनेक यज्ञ कर चुके थे और जो बड़े धनवान् भी थे। कुछ कालोपरान्त उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम उन्होंने चन्द्रस्वामी रक्खा। चन्द्रस्वामी क्रमशः बढ़ने लगा और युवा होते २ सब विद्याओं में प्रवीण हो गया; यद्यपि वह युवक विद्वान् तो हुआ पर उसे द्यूत का बुरा व्यसन लग गया; यदि उसमें व्यसन था तो केवल यही।

एक समय की बात है कि वह द्विजसूनु चन्द्रस्वामी किसी द्यूतालय में गया कि वहां जूआ खेले। अब द्यूतालय का वर्णन यह है कि वह सदा इस बात की प्रतीक्षा करता रहता है कि आज किसका आलिङ्गन कर उसे विपत्ति में झोंकूं,

(१) जड़ता; शैत्य अर्थात् ठंढापन भी।

पासों का गिरना क्या है मानों कृष्णसार मृग के चञ्चल और मनोहर नेत्र हैं, द्यूतालय में जुआड़ियों का जो कोलाहल है सो मानों उसका कथन है कि ऐसा कौन है जिसको अकिञ्चन न कर छोड़ूं, अलकापति ही क्यों न हो किन्तु मैं उसे भिखमंगा बना डालूं । सो चन्द्रस्वामी वहां बैठकर और २ जुआड़ियों के साथ जूआ खेलने लगा, खेलते २ अपने पास का सब द्रव्य हार गया यहां लों कि अपने शरीर पर के समस्त वस्त्र भी पण पर लगाके हार गया । अब वह उधार लेकर खेलने लगा किन्तु हारता ही गया। जब द्यूतालय के स्वामी के बहुत रुपये उसपर चढ़ गये तो वह मांगने लगा। यह दे कहां से यहां तो कौड़ी पास नहीं । तब उसने लाठी से इसकी पीठ की अच्छी पूजा की; ऐसा पीटा कि समस्त शरीर में लाठियों के चिन्ह पड़ गये और सारी देह चूर २ हो गयी । अब वह ब्राह्मण-तनय पत्थर के समान निश्चल हो गया मानों मर ही गया । इसी अवस्था में वह वहां दो तीन दिन पड़ा रह गया। अब द्यूतालय के स्वामी ने जुआड़ियों से कहा कि यह निगोड़ा यहां पत्थर हो पड़ा है सो तुम लोग इसे ले जाकर किसी अन्धेरे कूएँ में डाल आओ मैं तुम सभों को इतने रुपये देऊँगा।

अब वे सब जुआड़ी चन्द्रस्वामी को उठाकर जङ्गल की ओर चले कि कहीं अन्धकूप मिले तो फेंककर चल देवें। उनमें एक बूढ़ा था सो औरों से कहने लगा, "भाइयो! यह तो स्वयं मृतक है फिर कूएँ में फेंकने से क्या लाभ होगा सो आओ इसे यहीं छोड़कर हमलोग लौट चलें; उससे चलकर कह देंगे कि कूएँ में फेंक आये। "हां २ ठीक तो कह रहे हैं," ऐसा कह सब उसकी बात पर सम्मत हो गये।

जब कितव सब चन्द्रस्वामी को छोड़कर चले गये तब वह उठा और पासही में एक शून्य शिवालय था उसमें गया; वहां कुछ सुस्ताकर जब विश्राम ले चुका तब इस प्रकार अपने मन में अति दुःखित हो चिन्ता करने लगा, "हा। मैं उन जुआड़ियों का विश्वास कर कैसे सङ्कट में पड़ा, हा! उन धूर्त्तों ने छलकर मेरा सर्वस्व लूट लिया! अब मेरी यह अवस्था है कि तन पर एक चिथड़ा नहीं, नङ्गा हो गया हूं, शरीर पर धूल पुत रही है और जाऊँ तो कहां जाऊं? पिता, बन्धु बान्धव तथा इष्टमित्र देखेंगे तो क्या कहेंगे। अस्तु अब रात भर यहीं बिताऊं फिर

प्रातःकाल में जैसा होगा वैसा देखा जायगा, किसी प्रकार कुछ भोजन को टहो लगाऊँगा।"

वह क्लान्त और दिगम्बर (१) चन्द्रस्वामी इसी प्रकार चिन्ता कर रहा था कि इसी अवसर में सूर्यनारायण अस्ताचल पर जा विराजे। इतने में समस्त शरीर में विभूति पोते हुए महाव्रती जटा और शूलधारी एक तपस्वी वहां आये मानों दूसरे शङ्कर हो हों। चन्द्रस्वामी को देखकर उन्होंने पूछा, "बेटा तुम कौन हो?" उनका ऐसा प्रश्न सुन चन्द्रस्वामी अपना सारा वृत्तान्त बड़ी नम्रता से सुनाय गया। उसका वृत्तान्त सुन वह तपस्वी उससे इस प्रकार कहने लगे, "पुत्र! तुम अचिन्त्य अतिथि मेरे आश्रम में आ गये हो फिर भूखे भी हो सो उठो स्नान करो और मेरे भिक्षागत अन्न में भाग लेओ।" उन व्रती महाराज का ऐसा कथन सुन वह चन्द्रस्वामी बोला "भगवन्! मैं ब्राह्मण हूं तो क्योंकर आपका भिक्षाभाग ग्रहण कर सकूं।" इतना सुनतेही अतिथिवल्लभ वह व्रती अपने मठ के भीतर गये और वहां उन्होंने अपनी इष्टसम्पादिनी विद्या का स्मरण किया, तत्क्षण वह उपस्थित हो बोली, "महाराज! क्या आज्ञा होती है?" व्रती ने कहा, "यह हमारे अतिथि प्राप्त हुए हैं इनका आतिथ्य करो," "बहुत अच्छा, जो आज्ञा महाराज," वह बोली।

इतने में चन्द्रस्वामी क्या देखता है कि साम्हनेही सुवर्ण का एक अति मनोहर नगर है और उसी के सटे अति रमणीय एक उद्यान भी है। नगर में अति सुन्दरी नारियां इधर से उधर चपला सी चमकती फिरती हैं। यह व्यापार देख चन्द्रस्वामी भौंचक सा हो रहा, इतने में वे वाराङ्गनायें उसके पास आकर बोलीं,—"महाराज! उठिये, चलिये और स्नान भोजनादि कर श्रम दूर कीजिये।" इतना कह उस ब्राह्मणतनय को वे ललनायें भीतर ले गयीं और उसको स्नान कराके उन्होंने उसके शरीर पर सुगन्ध अनुलेप लगाये, तत्पश्चात् उत्तमोत्तम वस्त्र पहिनाकर एक अत्युत्तम प्रासाद में उसे पहुंचाया। वहां पहुँचकर वह युवा क्या देखता है कि सर्वाङ्गसुन्दरी एक ललनाललाम महार्ह आसन पर विराजमान है, वह सब प्रमदाओं की प्रधान थी; उस सुन्दरी के रूप का वर्णन क्या किया जाय मानों विधिना ने अपने गुण की परीक्षा के हेतु कौतुक से उसे बनाया है। वह सर्वाङ्गसुन्दरी उसे देखतेही अभ्यर्थनार्थ बड़ी उत्कण्ठा से उठी, आगे बढ़कर उसका स्वागत कर उसने उसे ले जाकर अपने आधे आसन पर बैठाया; वहां उसने उस

(१) दिक् = दिशा; अम्बर = वस्त्र, जिसके वस्त्र दिशायें हैं अर्थात् नंगा।

ललनाललाम के साथ दिव्य आहार भोजन किया । भोजनोत्तर उत्तम सुगन्ध द्रव्य-मिश्रित ताम्बूल भक्षण किया फिर जब रात हुई तो पर्यङ्क पर रात्रिभर उसके साथ सम्भोग कर अत्यन्त आनन्द और सुख का अनुभव किया ।

प्रात:काल जागा तो क्या देखता है कि वही शिवालय है, न तो वह दिव्याङ्गना ही है न तो उसकी सब सहेलियां हैं और न नगरही है । तब तो वह अति उद्विग्न हो गया, इतने में वह तापस मठ में से निकले और हँसकर पूछने लगे, "कहो रात्री कैसी बीती ?" उस तपस्वी का ऐसा प्रश्न सुन चन्द्रस्वामी ने कहा— "भगवन् ! आपके प्रसाद से मैं रातभर तो आनन्दसागर में मग्न था, अति उत्कृष्ट सुख अनुभव करता रहा, परन्तु महाशय ! अब उस दिव्य अङ्गना के विरह में मेरे प्राण जाया चाहते हैं ।" उसकी एतादृश उक्ति सुन वह कारुणीक तपस्वी विहँसकर बोले, "पुत्र ! ढाढ़स बांध, व्याकुल मत हो, फिर रात होगी और पुन: वेही बातें तेरे समक्ष उपस्थित होंगी ।" व्रती के ऐसे कथन पर वह शान्त हुआ। अब उन तपस्वी के प्रभाव से प्रतिरात्रि में वेही भोग उपस्थित होते और चन्द्रस्वामी उन भोगों का भोग करता ।

अब चन्द्रस्वामी का भली भांति ज्ञात हो गया कि यह इन्हीं तपस्वी की विद्या का प्रभाव है, सो वह एक समय विधि का प्रेरा उन तापसेन्द्र को प्रसन्न कर इस प्रकार उनसे विनति करने लगा, "भगवन् ! यदि आपकी कृपा सचमुच मुझ शरणागत पर है तो मुझे भी यह विद्या सिखला दीजिये जिसका प्रभाव एतादृश है ।" इस प्रकार जब वह हठकर वार २ कहने लगा तब वह तापस बोले, "पुत्र ! साहस मत कर, यह विद्या बड़ी असाध्य है क्योंकि इसकी साधना जल के भीतर होती है सो तुझसे हो न सकेगी । जब साधक किसी प्रकार जल के अन्त: पैठके साधना करने लगता है तब वह ऐसी मायाजाल फैलाती है कि साधक मोह में फँस जाता है और सिद्धि नहीं होती । पहिले तो यह जाल फैलाती है कि साधक अपने को बालक सा देखता है, फिर युवा हो जाता है और पश्चात् विवाहित हो गृहस्थी के जाल में फँस जाता है, बालबच्चे हो जाते हैं उनके लालन पालन में व्यस्त होकर खिन्न होने लगता है । इस मायाजाल में ऐसा अस्तव्यस्त हो जाता है और भ्रम में पड़कर जिस किसी को शत्रु और अपर व्यक्ति विशेष को मित्र समझते

लगता है । इतना ही नहीं किन्तु अपने जन्म का स्मरण नहीं रखता है और साथही विद्यासाधन की क्रिया भी भूल जाती है। इसी अवस्था में जब वह अपनी चौबीस वर्ष की अवस्था में पहुँचता है उस समय अपने गुरु की विद्या से प्रबुद्ध होता है अर्थात् गुरुदेव के उपदेश से उसका यह अज्ञान दूर हो जाता है और तब वह अपने जन्म का स्मरण करता है तब वह धीर हो जाता है। यद्यपि अबनों माया का जाल भली भांति दूर नहीं हो जाता और उसी के वश में पड़ा हुआ वह अग्नि में प्रवेश करता है; बस यही उसकी विघ्नरूपा माया की अन्तिम क्रिया है। इसके उपरान्त वह जल में से निकलता है और परमार्थ के (१) दर्शन से कृतार्थ हो जाता है। जो कहीं शिष्य इस साधन में कृतकार्य्य न हुआ और किसी कारण से भयभीत हो अथवा मोहवश विचलित हो गया तो उसकी विद्या तो असिद्ध हुई हो और अयोग्य पात्र में स्थापन करने से गुरु की विद्या भी जाती रहती है। सो पुत्र! अब मैं तुझे समझाकर कहता हूं कि तू इतना आग्रह क्यों करता है? जो कहीं मेरे हाथ से भी यह विद्या गयी तो बस तेरे इस आनन्द में भी बाधा पड़ी, सो तू हठ त्यागकर मेरी ही विद्या के प्रभाव से मानवों को अप्राप्य दिव्य भोगों का उपभोग कर और हठवश कार्यविघातक न हो।"

यद्यपि उन तापस महोदयने इस प्रकार की विभीषिकादि दिखाके बहुत कुछ समझाया बुझाया पर वह स्वार्थपर चन्द्रस्वामी कब माननेका, वह अपने हठपर आरूढ़ ही रहा और बड़े आग्रह से कहता गया, "नहीं, महाप्रभु, बतलाय ही दीजिये, मैं सब सीख लूंगा और ऐसी सावधानी से सब कार्य्य साधन करूंगा कि किञ्चित् भी व्याघात न होने पावेगा; आप कुछ भी चिन्ता न करें। अस्तु उसके ऐसे आग्रह से तपस्वी का हृदय पिघल गया, वह विद्या के बतला देने पर सम्मत हुए। ठीकही है आश्रितों के अनुराग से साधु लोग क्या नहीं करते?

अब तपस्वी महाराज उस चन्द्रस्वामी को एक नदी के किनारे ले गये और उससे बोले, "सुन बेटे, मैं तुझे यह मन्त्र देता हूं, इसका जप तू अनवरत करते रहना माया चटपट आ घेरेगी पर सम्भल के रहना; जब मैं प्रबोधित कराऊं तब तत्क्षण उसी मायाग्नि में कूद पड़ना; कुछ आगापीछा न करना; और एक बात

(१) सत्य ज्ञान।

यह भी है कि मैं भी नदीकिनारे बैठा हुआ तेरी रक्षा करता रहूंगा।" इतना कह उन व्रतिवर ने चन्द्रस्वामी को आचमन कराया और आप भी आचमन कर भली भांति वह विद्या उसे सिखा दी।

इसके उपरान्त गुरुदेव तो दीक्षा देकर नदीतट ही पर रहे और चन्द्रस्वामी अपने गुरु को प्रणाम कर उस विद्या के साधनार्थ अति शीघ्र नदी में उतरा। ज्योंही कि वह नदी के अन्तर्जल में उस मन्त्र का जप करने लगा कि वह माया आ पहुँची उससे उसकी बुद्धि मोहित हो गयी और वह अपना यह जन्म भूल गया; देखता क्या है कि किसी दूसरी पुरी में एक ब्राह्मण के गृह में जन्मा हूं; धीरे २ बढ़ा, जनेऊ हुआ, समस्त विद्यायें सीखीं, फिर विवाह हुआ; संसारी जाल में फँस गया, क्रमानुसार कुछ दिनों के उपरान्त बालबच्चे होने लगे; कईएक लड़कों का पिता हो गया, कोई कहता "बाप ! मुझे अमुक पुस्तक दिला दो," कोई मिठाई मांगता, कोई कहता "खिलौने दिला दो," इत्यादि २। बस वह विचारा चन्द्रस्वामी इन्हीं सभों के स्नेह में फँसा हुआ अपने माता पिता तथा बन्धु बान्धवों के साथ रहने लगा।

इस प्रकार जब वह उस मायाजाल में फँसा हुआ नाना प्रकार के मिथ्या सुखों और दुःखों का अनुभव कर रहा था कि समय जानकर उस तापस गुरु ने प्रबोधिनी विद्या का प्रयोग किया; बस उस विद्या के प्रयोग से चन्द्रस्वामी तत्क्षण जागा और अपने पूर्वरूप और गुरुदेव का स्मरण कर उस मिथ्या ज्ञान को, जिसे कि सत्य करके मान बैठा था, मिथ्या ही मानने लगा। अब दिव्य फल की प्राप्ति के लिये वह अग्नि में प्रवेश करने पर उद्यत हुआ, किन्तु आप्त गुरुजनों ने तथा बन्धुबान्धवों ने उसे बर्जा कि हां यह क्या करने चले हो? अरे यह अग्नि है इसमें पड़कर जल मरोगे भला इन बालकों का मुंह तो देखो इत्यादि २। यद्यपि बहुतेरा समझाते रहे पर वह नहीं मानता था। भला वह माने कैसे उसे तो उ[illegible] दिव्यफल की लालसा लगी थी। अस्तु वह अपने उन बान्धवों के साथ नदीतट प[illegible] गया जहां चिता सज्जित थी। जब वह वहां पहुंचा तब उसके वृद्ध माता पि[illegible] तथा बालक करुणस्वर से विलपने लगे और पत्नी तो उसका वियोग न स[illegible] सकी अतः मरने पर उद्यत हो गयी। यह व्यापार देख साधक चन्द्रस्वामी पि[illegible]

मोह में फँस गया और चिल्ला करने लगा कि हाय! ये मेरे स्वजन मेरा अग्नि-प्रवेश देखकर मर रहे हैं, बड़े कष्ट की बात है कि मेरे जलते ही ये सब भी मर जावेंगे; अब मैं क्या करूं? क्या जाने गुरुदेव का वह वचन सत्य है वा नहीं; सो अग्नि में प्रवेश करूं अथवा नहीं? अथवा गुरुदेव ने जैसा २ कहा था वैसा २ तो हुआ सो उनका वचन मिथ्या क्योंकर हो सकता है सो अब जो हो अनल में प्रवेश करना ही श्रेय है। इस प्रकार विमर्श कर वह ब्राह्मण चन्द्रस्वामी अग्नि में पैठही तो गया परन्तु अग्निदेव उसे हिमवत् शीतल अनुभूत हुए। बस अब समस्त माया दूर हो गयी और वह ब्राह्मण नदी से निकलकर ऊपर गया। वहां गुरुदेव वैसेही विराजमान थे सो वह उनके चरणों पर गिरा।

गुरु ने पूछा कि कहो क्या २ देखा और क्या किया? तब उसने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कहा कि जब मैं अग्नि में कूदा तब मुझे उष्णता नहीं बोध हुई प्रत्युत शैत्य का अनुभव हुआ। यह सुनते ही गुरुदेव समझ गये और बोले, "पुत्र! मैं समझता हूं तुमसे अपचार बन पड़ा नहीं तो भला अग्नि शीतल कैसे हो सकती है; इस विद्या के साधन में ऐसा न तो कभी देखा ही गया और न सुना ही गया। अस्तु जो हुआ सो हुआ अब वश क्या?" गुरु का ऐसा कथन सुन चन्द्रस्वामी बोला, "महाराज! अपचार तो मुझसे कुछ भी नहीं बन पड़ा।" इतना सुन गुरु ने इसकी जांच के हेतु उस विद्या का स्मरण किया किन्तु वह न उपस्थित हुई, न उसके शिष्यही की विद्या आयी और न गुरु ही की विद्या आयी। तब तो विद्या के नष्ट हो जाने से दोनों अति विषण्ण हुए और वहां से चले गये॥

सोरठा।

यहि विधि कथा सुनाय, अंसस्थित (१) वेताल सो।
वाही शपथ दिवाय, नृपसन अस पूछत भयो॥ १॥
कहिय महो के राय, कर्म्म किये उद्दिष्ट (२) हू।
विद्या गयी विलाय, किहि कारण उन दुहुन कर॥ २॥

(१) अंस = स्कन्ध = कन्धा; स्थित = बैठा। अर्थात् कन्धे पर बैठा।
(२) रीत्यनुसार बतलाये हुए।

बरवै।

सुनि वेताल के बयना, कह्यो महीश।
जानौं, काल बितावत, हौ योगीश ॥ १ ॥
अस्तु, तथापी देहौं, उत्तर तोहिं।
दूहि कर हेतु कहौं जस, सूझत मोहिं ॥ २ ॥
कैसहु दुष्कर कर्म्म, करै जो कोय।
केवल करने ही से, सिधि नहिं होय ॥ ३ ॥
सिद्धि हेतु तो चाहिय, मन अति शुद्ध।
तब वह होवै काज, कठिन यह युद्ध ॥ ४ ॥

वसन्ततिलकम्।

वा विप्रसूनु कर चित्त प्रबुद्ध होके,
हू, लाग संशय विकल्प करै, एही से।
विद्या नहीं फलवती उसकी हुई औ,
अस्थानदानकरणात् (१) गुरुहू गँवायो ॥ १ ॥

दोहा।

नृप कर ऐसो बचन सुनि, पुनि वेताल तजि अंस (२)।
अपने पद पर जा टंग्यो, फिरे भूपअवतंस (३) ॥ १ ॥

छब्बीसवां तरङ्ग।

उन्नीसवां वेताल।

अब महाराज त्रिविक्रमसेन फिर उसी शिंशपावृक्ष के नीचे पहुँचे और वेताल को उतारकर चटपट वहां से चले। जब कि वह चले जा रहे थे कि वेताल उनसे वार्तालाप करके बोला, "अच्छा महाराज! सुनिये मैं आपको एक बहुत अच्छी कथा सुनाता हूं—"

---

(१) अस्थान = अयोग्यस्थान, उसमें दान करने के हेतु।
(२) = कन्धा। (३) श्रेष्ठ, भूषण।

वक्रोलक नामक एक नगर है, उसकी उत्तमता और श्रेष्ठता का वर्णन इसीसे समझ लीजिये कि उस नगर की उपमा सुरपुर से दी जा सकती है। तहां राजा सूर्य्यप्रभ राज्य करते थे। जब कि नगरी सुरपुर सी ठहरी तो समझ लेना चाहिये कि राजा भी सुरेश समान होंगे फिर इसमें सन्देह ही क्या ? महाराज सूर्यप्रभ सचमुच इन्द्र समान ही थे। राजा भूमि का भार अपने ऊपर उठाकर इस भांति उसका प्रतिपालन करते थे कि समस्त प्रजा अति प्रमुदित थी, किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था; इससे राजा को भी राज्यशासन में ऐसा सौकर्य्य (१) था कि मानों वह मूर्त्तिमान् होकर उनके समक्ष विराजमान था। यह देख यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार हरिभगवान् ने पृथ्वी का उद्धार किया था उसी प्रकार इन्होंने उसके पालन का भार उठाया है । जिस प्रभु के राज्य करते समय अश्रुपात को कोई अवसर ही नहीं रहा, हां जहां धूम का सम्पर्क था वहां तो अवश्य उसकी प्रवृत्ति थी; मार (२) का नाम भी नहीं सुना जाता था प्रत्युत शृङ्गार विषय में उसकी प्रवृत्ति अवश्य थी; दण्ड क्या तत्व है कोई जानता न था पर हां द्वारपालकों के हाथों में हेमदण्ड अवश्य थे। इससे सहसा सब लोग समझ सकते थे कि राजा सूर्यप्रभ के राज्य में किस प्रकार सत्यधर्म्मराज्य विराजमान था। राजा कैसे प्रजाप्रिय थे और कैसे सम्पन्न थे इस प्रश्न का अवसर भी न रहा । यद्यपि महीपति सब समृद्धियों से सदा सेवित थे तथापि उनको एक मानस सन्ताप था, सो यह कि अनेक रानियों के रहते भी राजा के कोई पुत्र न था।

इसी कथाप्रसङ्ग में एक कथा यह भी है कि ताम्रलिप्ती नाम्नी पुरी में धनपाल नामक एक भारी धनवान् बनियां रहता था, वह उस नगर के सब बनियों का चौधुरी था। उसके भी कोई सन्तति न थी। कुछ कालोपरान्त उसकी भार्य्या एक कन्या जनी, जिसका नाम धनपाल ने धनवती रक्खा। उस कन्या का सौन्दर्य्य कहांलों बखाना जाय, मानों कोई विद्याधरी अपने सौन्दर्य्य के घमण्ड से फूली नहीं समाती थी सो शाप पाकर उस लोक से च्युत हुई हो। जब कि वह कन्या यौवनस्था हुई धनपाल परलोक को सिधार गया; गोतियों ने उसका धन लूट खाया और उस देश के राजा ने इसमें कुछ भी हस्तक्षेप न किया।

(१) सुभीता। (२) मरण, शृङ्गार पक्ष में कामदेव।

उस बनिये की स्त्री, जिसका नाम हिरण्यवती था, यह अनर्थ देख अत्यन्त उद्विग्न हुई; कुछ रत्न और आभरण उसने गाड़ रक्खे थे, सो उन्हें खोद निकाल अपनी कन्या के साथ वह रात्रि के समय अपने दायादों के भय से निकल भागी। चारों ओर उस घोर रजनी में अन्धकार छाया हुआ था और अन्तःकरण भी उसका दुःखान्धकार से व्याप्त था, बड़ी कठिनता से वह अपनी दुहिता का हाथ पकड़े नगर के बाहर निकल गयी । अन्धाधुन्ध वह चली जा रही थी कि विधि योग से उसके कन्धे का एक चोर को धक्का लग गया जो कि शूलपर चढ़ाया गया था। वह मर नहीं गया था। एक तो यातना से वह स्वयं पीड़ित था, दूसरे इसका धक्का लगा इससे उसकी पीड़ा और बढ़ी सो वह चींख कर बोला, "आह! किसने मेरे घाव पर निमक छोड़ा ?" यह सुन बनिये की स्त्री ठमक गयी और पूछने लगी "कहो तो सही तुम कौन हो ?" चोर ने उत्तर दिया, "मैं तो चोर हूं, यहां मैं सूली पर चढ़ाया गया हूं, मैं ऐसा पापी हूं कि शूल पर चढ़ाये जाने पर मेरे प्राण नहीं निकलते हैं; अच्छा आर्य्ये! अब तुम बताओ कि कौन हो और कहां जाती हो ?"

सो सुन वह वणिग्भार्या अपनी बीती सुनाय ही रही थी कि इसी अवसर में पूर्वदिशा के मुखड़े के तिलकस्वरूप चन्द्र का उदय हुआ और चहुँओर प्रकाश प्रसरित हो गया। उसी प्रकाश में चोर ने उस वणिक्सुता धनवती को देख लिया और उसकी माता से कहा, "माताजी मेरी एक बात सुन लीजिये, मैं आपको एक सहस्र स्वर्णमुद्रा देता हूं सो आप इस अपनी कन्या को मुझे दे देवें। "अब इससे तुम्हारा क्या होने का ?" इतना जो उसने हँसकर कहा, इसपर चोर फिर बोला, "मैं निष्पुत्र मर रहा हूं, और यह बात तो आप जानती ही हैं कि पुत्र के बिना आत्मा की सद्गति नहीं होती, इसी हेतु मैं इसे ग्रहण किया चाहता हूं; जहां कहीं जिस किसी से, मैं आज्ञा देता हूं, यह पुत्र उत्पन्न करा लेगी बस वह मेरा क्षेत्रज पुत्र हो गया; बस यही मेरी प्रार्थना आपसे है सो कृपाकर पूर्ण कीजिये।" इतना उस चोर का कथन सुन वह वणिग्वधू उसपर सम्मत हो गयी और कहीं से जल लाकर उसने सङ्कल्प कर कि यह कन्या मैंने तुझे दी, वह जल चोर के हाथ पर छोड़ दिया । इसके उपरान्त उस चोर ने धनवती को यथेष्ट आज्ञा

देकर उसकी जनयित्री से कहा, "मातः जाइये, उस बड़ के पेड़ के नीचे वह द्रव्य गड़ा है सो आप खोदकर ले लेवें। और इतना करना कि जब मेरे प्राण निकल जावें तो किसी युक्ति से मेरा मृतक शरीर जलाकर हड्डियां तीर्थस्थान में छोड़ देना। इसके उपरान्त अपनी पुत्री के साथ वक्रोलकपुर में जाना, तहां राजा सूर्य-प्रभ धर्म्मराज्य कर रहे हैं, उनके शासन से समस्त प्रजा निर्द्वन्द्व आनन्द से रहती है सो वहीं आप दोनों निश्चिन्त रहेंगी।" इतना कह उस चोर ने पुनः कहा,—"अम्ब! बड़ी पिपासा लगी है सो अति शीघ्र थोड़ा जल पिला दीजिये," उसने लाकर जल पिलाया और उसी क्षण असह्य वेदना से उस चोर का जीव शरीर से निकल गया।

अब वह वणिग्भार्या अपनी कन्या के साथ उस बड़ के वृक्ष की नीचे गयी और वह द्रव्य खोदकर लेकर अपने पति के एक मित्र के गृह चुपकेसे जा टिकी। वहां रहके उसने किसी युक्ति से उस चोर का कलेवर जलवाय दिया और उसकी हड्डियां तीर्थ में फेंकवा दीं। दूसरे दिन उस गड़े पाये द्रव्य तथा अपनी कन्या की साथ वह वहां से चली, और चलती २ वक्रोलकपुर में पहुंची, तहां वसुदत्त नामक एक महाजन से एक गृह मोल लेकर अपनी कन्या धनवती के साथ रहने लगी।

उसी नगर में एक उपाध्याय रहता था जिसका नाम विष्णुस्वामी था; मनः-स्वामी नामक एक ब्राह्मण उसका शिष्य अति स्वरूपवान् था। वह बड़ा कुलीन था और विद्या पढ़कर अच्छा विद्वान् निकला; किन्तु युवावस्था के मद में आकर हंसावली नाम्नी तत्रत्य एक वेश्या पर आसक्त हो गया। वह वेश्या पांच सौ दीनार मांगती थी किन्तु यह ब्राह्मण इतना द्रव्य कहां पावे इससे बड़ा दुःखी रहता था, रातदिन उसका आत्मा सन्तप्त रहता था।

अब एक दिन की बात है कि धनवती अपनी अँटारी पर खड़ी थी, उसी समय वह ब्राह्मण उसी मार्ग से जा रहा था। यद्यपि वह मनःस्वामी अपने मन-स्ताप से क्षीण हो गया था तथापि उसका वपु और भी देदीप्यमान था; उसे देख-तेही धनवती का मन मोहित हो गया, और तत्क्षण उसे अपने पति उस चोर का वचन भी स्मरण हो आया; तब वह अपनी माता से, जो कि समीप ही में बैठी थी, कहने लगी, 'माता, देखो तो सही इस ब्राह्मण के रूप और यौवन

कैसे मनोरम हैं; समस्त विश्व के नेत्रों में मानों अमृत बर्साते हैं।" उसका तादृश वचन सुन उसकी जननी समझ गयी कि इसके मन में क्या भावना है, सो वह विचारने लगी, "मेरी दुहिता को उसके पति की आज्ञा है ही कि किसी से पुत्र उत्पन्न करा लेना सो इसपर इसका मन लग भी गया है सो इसी को क्यों न बुला लें।" इतना सोच उसने एक चेटी के द्वारा उस ब्राह्मण के पास सन्देशा भेजा कि आकर मेरी कन्या का मनोरथ सफल करे। चेरी उसके पास गयी और एकान्त में ले जाकर वणिग्वधू का सन्देशा सुना गयी । सो सुन वह व्यसनी द्विज युवा बोला, "हंसावली से मिलने के लिये मुझे पांच सौ दीनार अपेक्षित हैं सो यदि वह देना स्वीकार करें तो एक रात उनकी सुताके पास रह दूं"। दूती ने जाकर ज्यों का त्यों प्रतिसन्देश कह सुनाया, सो बनिये की स्त्री ने उसी के हाथ से तत्क्षण पांच सौ दीनार उस ब्राह्मण के यहां भेजवा दिये। मनःस्वामी अति प्रमुदित हुआ और उसी चेटी के साथ धनवती के घर चला आया । वहां आकर क्या देखता है कि भूतल की भूषणस्वरूपा वह अति मनोरमा चन्द्रवदनी कान्ता अति उत्कण्ठित विराजमान है; उसका ऐसा अनुपम सौन्दर्य्य निरख वह अति प्रमुदित हुआ और चकोर की भांति उसका चन्द्रवदन निरखने लगा । अस्तु रात्री भर उसके साथ सम्भोगलीला का सुख अनुभव कर प्रातःकाल होनेपर जहां से आया था तहां चला गया।

अब धनवती गर्भिणी हो गयी और समयपर एक अति सुलक्षण पुत्र जनी। पुत्र की उत्पत्ति से माता और बेटी दोनों अति प्रसन्न हुईं । उस समय रात्री में स्वप्न में भगवान् हर ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनसे कहा, "इस बालक को हिंडोले में रखकर बड़े तड़के ले जाकर राजा सूर्य्यप्रभ के सिंहद्वारपर धर दो और इसके साथ सहस्र सुवर्ण मुद्रायें भी रख देना । इस प्रकार करने से कल्याण होगा। शूली भगवान् शङ्कर की आज्ञा ऐसी पाय वह वणिक्सुता तथा वणिग्वधू जाग पड़ीं और परस्पर अपना २ स्वप्न कहने लगीं। भगवान् शङ्कर के वचन पर उन्होंने विश्वास किया कि भगवान् जो कह रहे हैं वह अवश्य मङ्गलप्रद है; इतना विचार वे बच्चे को मुद्राओं के साथ महाराज सूर्य्यप्रभ के सिंहद्वार पर रख आयीं।

इधर तो यह व्यापार हुआ, उधर महादेवजी ने सुतचिन्तातुर राजा सूर्य्यप्र-

को भी स्वप्न में दर्शन दिया और कहा, "राजन्! तुम्हारे द्वारपर काञ्चनसहित एक बालक को हिंडोले में धरकर कोई छोड़ गया है, उस बच्चे को तुम ग्रहण करो, बालक बड़ा सुलक्षण है।" इतना कह भगवान् वृषध्वज अन्तर्धान हो गये। जब प्रात:काल में राजा की नींद टूटी तो वही सूचना द्वारपालों ने भी महाराज को दी जैसी की शङ्कर भगवान् स्वप्न में उन्हें दे गये थे। द्वारपालों का ऐसा कथन सुन धरणीपति स्वयं सिंहद्वारपर उपस्थित हुए, देखते हैं तो कनक के समेत एक बालक शुभलक्षण पड़ा है, जिसके हाथ तथा पांव में छत्र, ध्वजा आदि चिन्ह विद्यमान हैं; उसे देख वह अपने मन में विचार करने लगे "अहो! भगवान् आशुतोष ने स्वयं शुभलक्षणसम्पन्न यह पुत्र दिया है, इतना कह बच्चे को उठाकर राजभवन में चले गये।

अब उत्सव मनाया जाने लगा; मङ्गलामुखियां मङ्गलगान करने लगीं, द्वार पर नौबत झरने लगी। महाराज धन लुटाने लगे; पुत्रोत्सव में उन्होंने इतना द्रव्य लुटाया कि दरिद्र शब्द निरर्थक हो गया। इस प्रकार नृत्य वाद्य के साथ बड़े उत्सव में बरही हुई; उस दिन महाराज सूर्य्यप्रभ ने अपने पुत्र का नामकरण किया और चन्द्रप्रभ नाम रक्खा। राजा सूर्यप्रभ के कुमार शुक्लपक्ष के चन्द्र के समान दिनोंदिन बढ़ने लगे; जैसे २ उनका शरीर बढ़ता था वैसे ही वैसे उनके गुण भी बढ़ते जाते थे। जब राजकुमार बढ़े तो अपने आश्रितों को दानमानादि से भली भांति सम्मानित करने लगे।

क्रमश: राजकुमार चन्द्रप्रभ युवा हुए, और साथही शौर्यऔदार्य और वेद शास्त्र में बड़ेही प्रवीण हुए; और पृथ्वी के भारधारण में पूर्णतया समर्थ हो गये। जब महाराज सूर्यप्रभ ने देखा कि राजकुमार राज्यपालन में भली भांति समर्थ हो गये, और अपनी वृद्धावस्था के कारण भारवहन में असमर्थता देखी तब उन्होंने उन्हें युवराजपदपर अभिषिक्त कर दिया। राजकुमार को राज्याभिषेक दे महाराज सूर्यप्रभ वाराणसी में जाकर तपस्या करने लगे; और जब कि उनके कुमार पृथ्वी का शासन कर रहे थे कि इसी अवसर में वह तपस्या करते २ शरीर त्याग कैलासवासी हो गये।

पिता का मरण सुन राजकुमार चन्द्रप्रभ अत्यन्त दु:खी हुए; अस्तु शोक दबाय

उन्होंने पिता की क्रिया कियी । तदुपरान्त वह धार्मिक राजा अपने सचिवों से कहने लगे, "पिताजी तो कैलास सिधारे मैं उनकी सेवा शुश्रूषा कुछ न कर सका; कैसे उऋण होऊंगा ? हां, एक उपाय तो मेरी बुद्धि में आता है कि निज हाथ से उनकी हड्डी गङ्गा में (१) डाल देऊं और तब वहां से गया जाऊं और पितरों को पिण्ड देकर उनका उद्धार करूं । इसी बहाने से तीर्थयात्रा भी हो जायगी और गङ्गासागरपर्यन्त स्नान कर आऊंगा।" राजा का ऐसा प्रस्ताव सुन मन्त्रियोंने निवेदन किया. "देव ! राजाओं को इन बखेड़ों से क्या काम, ऐसा कभी न करना चाहिये, राज्य छोड़कर बाहर तीर्थयात्रा करने जाना उचित नहीं है; क्योंकि वे तो तीर्थयात्रा करने चले और राज्य पड़ा सूना और राज्य में छिद्र अनेक विद्यमान रहते हैं, सो महाराज। राजाओं के लिये राज्यही तीर्थ है उसी की सर्वतोभाव से रक्षा करनी उचित है। जो आपका मन इस प्रकार पिता के उपकार करने का है तो आप यह कार्य्य किसी दूसरे के हाथ से भी करा सकते हैं, आपके स्वयं जाने की क्या आवश्यकता है ? राज्यपालन कीजिये बस इसीसे आपकी समस्त तीर्थयात्रा हो जायगी । भला सोचिये तो सही कि मार्ग में कैसे २ कष्ट मिलते हैं, कहां मार्ग के असह्य कष्ट और कहां राजाओं के अति सुकुमार फूल से अङ्ग। भला वे क्योंकर ये निदारुण क्लेश सह सकेंगे। सो प्रभो ! आप यह भावना त्याग कीजिये और दत्तचित्त होकर पिता का दिया राज्य पालन करें इसीसे उनका ऋण भर जायगा, सुनिये तीर्थयात्रा का नाम भूलके भी न लीजियेगा।" मन्त्रियों का एतादृश कथन सुन राजा चन्द्रप्रभ बोले, "ऐसी २ बातें मैं नहीं सुनने का, मैं तो पिता के निमित्त अवश्य तीर्थयात्रा करूंगा, क्या जानें कब क्या हो जाय, इस क्षणभङ्गुर शरीर का कुछ ठिकाना ही नहीं तो जब लों शक्ति चले तीर्थस्थानों के दर्शन तो कर आऊं। और आप लोग क्या करें कि जब लों मैं लौट न आऊं तब लों राज्य

(१) यहां कवि कुछ भ्रम में पड़ गये, ऐसा भासता है; क्योंकि जब महाराज सूर्य्यप्रभ का शरीरान्त वाराणसी में हुआ तो पुनः गङ्गा में हड्डियों के फेंकने की चर्चा क्यों चलाई । यदि भ्रम न माना जाय तो देशप्रथा के अनुरोध से उसका निराकरण हो सकता है।

का पालन करें।" महीपति का ऐसा निश्चय सुन सब मन्त्री लोग चुप हो रहे और राजा चन्द्रप्रभ यात्रा का सम्भार (१) प्रस्तुत करने लगे।

अब शुभ दिन में महाराज चन्द्रप्रभ ने स्नान किया और अग्नि में हवन कर ब्राह्मणों की पूजा कियी; नियम धारण किया और भली भांति सज्जित रथ पर आरूढ़ हो शान्त भाव से राजधानी से प्रस्थान किया। सामन्त राजपुत्र और पुरवासी और जानपद महाराज को पहुंचाने चले। सिवाने पर पहुंच महाराज ने बड़े अनुनय और अभ्यर्थना से उन लोगों को लौटाया। और सचिवों को पुनः चिताय दिया कि आप लोग राज्य की रक्षा भली भांति से करियेगा। तत्पश्चात् रथारूढ़ ब्राह्मणों को साथ ले पुरोहितसहित महीपति तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थित हुए।

मार्ग में अनेक देश ग्राम लांघते और तत्रत्य लोगों के भिन्न २ वेष देखते विचित्र २ भाषायें सुनते २ महीश चले जाते थे; इसी प्रकार जाते २ कलिकलुषविनाशिनी जह्नुनन्दिनी भगवती जाह्नवी के तटपर उपस्थित हुए, जहां अनेक प्रकार के जन्तुजल कल्लोल कर रहे हैं, भगवती भागीरथी में जो लहरें उठ रही हैं सो मानों सांसारिक जीवों के तरने के लिये स्वर्ग जाने की सीढ़ियां हैं। हिमालय से निकलने तथा भूतभावन शिवजी की जटा में विहार करने के हेतु मानों महामाया अम्बिका की क्षति का अनुकरण कर रही हैं। अनेक देवर्षि और महर्षिगण जिसकी वन्दना कर रहे हैं। ऐसी पुण्यसलिला पापनाशिनी गङ्गा के दर्शन कर महाराज चन्द्रप्रभ रथ से उतरे, उन्होंने अपने सहचरवर्गसहित पुण्यजल में स्नान किया और मृत महाराज सूर्य्यप्रभ की हड्डियां उस पावन पाथ (२) में डाल दीं। पिता का श्राद्ध किया और ब्राह्मणों को दान दिया।

अब महाराज रथपर आरूढ़ हुए और वहां से प्रस्थित हुए और चलते २ क्रमशः प्रयाग में पहुंचे जहां अनेक ऋषि मुनि चतुर्वर्ग की सिद्धि के हेतु तपस्या कर रहे हैं। जहां यज्ञ के धूम और लवर ऊपर आकाश की ओर उठ रहे हैं और उधर आकाश की ओर से गङ्गा और यमुना जो उतरी हैं उनसे यह भावना

(१) सामग्री। (२) जल, अर्थात् गङ्गाजी में। अनुमान होता है कि यह पवित्र तीर्थ हरद्वार है।

होती है कि ये दोनों नदियां स्नान करनेवालों के ग्रहणार्थ हाथ बढ़ाये सदा उनको सुगति के लिये प्रस्तुत हैं । वहां महाराज ने उपवास किया और स्नान कर ब्राह्मणों को दानमान से सन्तुष्ट किया ।

तदुपरान्त महीपति चन्द्रप्रभ वहां से चले और क्रमानुसार भगवान् शङ्कर की पुण्यपुरी वाराणसी में पहुंचे, जहां देवालयों के शिखरपर फरहरे जो फहरा रहे हैं सो उनके द्वारा भगवती वाराणसी मानों दूरवर्ती मानवों को बुला रही हैं कि हे सांसारी बोझ से दबे हुए लोगो । आओ और मैं तुम्हारे भार उतार तुम्हें मुक्ति के अधिकारी कर देऊंगी ।" अहा । वाराणसी की कैसी शोभा है,—

सवैया ।

"चारहु आश्रम बर्न बसैं मनिकञ्चनधाम अकासविभासिका ।
सोभा नहीं कहि जाय कछू विधिने रची मानों पुरीन की नासिका॥
आपु बसैं गिरिधारन जू तट देव नदी वरबारि विलासिका ।
पुन्यप्रकासिका पापविनासिका होय हुलासिका सोहति कासिका॥"

कवित्त ।

"बसैं विन्दुमाधव विसेसरादि देव सबै दरसनही तें लागै जममुख मसी है । तीरथ अनादि पञ्चगङ्गा मनिकर्निकादि सात आवरण मध्य पुन्यरूप धसी है ॥ गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार तोरै आसु कर्मरूप रसी है । ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी वाराणसी है ॥"

कवित्त ।

"रचित प्रभासी खासी अवली मकानन की जिनमें अकासी फबै रतन नकासी है । फिरैं दासदासी विप्र गृही औ सन्यासी लसैं बर गुनरासी देवपुरीहू न जासी है ॥ गिरिधरदास बिस्वकीरति विलासी रमा हांसी लौं उजासी जाकी जगत हुलासी है । खासी परकासी पुनवांसी चन्द्रिकासी जाके बासी अबिनासी अघनासी ऐसी कासी है ॥"

सवैया।

"जम की सब त्रास विनास करी मुखते निज नाम उचारन में।
सब पाप प्रतापहिं दूर दस्यो तुम आपन आप निहारन में॥
अहो गंग अनंग के सत्रु करैं बहु नेकु जलै मुख डारन में।
गिरिधारन जी कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में॥" (१)

अस्तु, महाराज चन्द्रप्रभ भगवान् विश्वनाथ की पवित्र पुरी काशी में तीन दिन रहे और उन तीन दिनों में उन्होंने उपवास किया और स्नान कर भूतनाथ के दर्शन करके ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के अन्न वस्त्राभूषण द्रव्य तथा रत्नादि दान दिये और मानादि से सबको सन्तुष्ट किया।

अब वह वहां से गया की ओर चले; मार्ग में जितने वृक्ष मिले सो सब फल भार से झुके थे, जिनपर विहङ्ग मञ्जु गुञ्जार कर रहे थे; जिनसे यह भावना होती थी कि पद पद पर वे पादप महाराज की स्तुति गा रहे हैं। उन वृक्षों से जो फूल गिरते थे तिनसे यह भाव होता था कि वायु उनकी पूजा कर पुष्प चढ़ाता है। इस प्रकार वन के उपरान्त वन का अतिक्रमण करते हुए महाराज चन्द्रप्रभ गया-शिरपर पहुंचे, वहां उन्होंने बड़े उत्साह से हृदय खोल श्राद्ध किया और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकार के दान दिये। इसके उपरान्त महाराज धर्मारण्य में गये। जब कि वह गयाकूप में पिता को पिण्ड देने लगे तो उसमें से मनुष्य के तीन हाथ पिण्ड लेने को निकले। यह दृश्य देख महाराज चन्द्रप्रभ चकपका गये कि यह क्या है! उन्होंने अपने साथ के ब्राह्मणों से पूछा कि किसके हाथ में पिण्ड रक्खें? उन्होंने उत्तर दिया, "देव इनमें से एक हाथ तो चोरही का है, देखिये, जिसमें लोहे की कील है अवश्य वह चोर का हाथ है; यह दूसरा हाथ, जिसमें कि पवित्री है, ब्राह्मण का हाथ है; और यह सुलक्षण कर, जिसमें कि अंगूठी है राजा का हाथ है। सो महाराज हमलोग भी चकित हो गये हैं और नहीं जानते कि यह क्या व्यापार है इससे नहीं कह सकते कि किस हाथ में पिण्ड देना चाहिये।" राजा उन ब्राह्मणों की ऐसी उक्ति सुन और भी चकित हो गये और कुछ भी निश्चय न कर सके।

(१) गोलोकवासी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता स्वर्गवासी बाबू गोपालचन्द्र कृत, जो कि कविता में अपना नाम गिरिधरदास लिखते थे।

इतनी कथा सुनाय कन्धेपर से वेताल फिर बोला, "अब, महाराज! आपही निर्णय कर बतलाइये कि किस हाथ में पिण्डा रक्खा जाय? पूर्व का शपथ भी समझ रखियेगा।" वेताल का ऐसा प्रश्न सुन मौन त्याग धर्म के ज्ञाता महीपति त्रिविक्रमसेन बोले, "चोर ही के हाथ में पिण्ड देना चाहिये क्योंकि राजा चन्द्रप्रभ उसीके क्षेत्रज पुत्र ठहरे अपर दोनों के नहीं। विप्र के पुत्र वह इसलिये नहीं हो सकते कि उसने तो द्रव्य लेकर एक रात के लिये अपने को बेंच दिया था। हां राजा सूर्यप्रभ ने पालन पोषण तथा सब संस्कार कराये थे सो उनके यह पुत्र हो सकते हैं सो भी तब जब कि इनके पालनपोषण के लिये धन न दिया गया होता, सो तो हुआ नहीं, सहस्र दीनार उनके साथ इसी हेतु रख दिये गये थे सो वह सूर्यप्रभ महीपति के भी पुत्र न ठहरे। जिसके हाथ में उनकी माता जल देकर दान कर दी गयी थी, और जिसकी आज्ञा ही से और जिसने द्रव्य देकर उसने पुत्र उत्पन्न कराया बस वही उनका पिता ठहरा। सो योगीश! महाराज चन्द्रप्रभ मेरी समझ में तो, उस चोर ही के क्षेत्रज पुत्र ठहरे, बस उसी चोर के हाथ में पिण्ड देना चाहिये।"

नरपति को अस वचन सुनि कन्धे से बैताल।
जा पहुंच्यो निज सदन पै, पुनि लौट्यो भूपाल॥

आगे शेष ग्यारहवें भाग में देखिये।

सत्ताईसवाँ तरङ्ग।

(बीसवाँ वेताल)

अब महाराज त्रिविक्रमसेन फिर उसी अशोकवृक्ष के नीचे पहुंचे और वेताल को उतार कन्धेपर रख चले। जब कि वह चुपचाप चले जा रहे थे कि कन्धेपर से वेताल उनसे कहने लगा "राजन्! आप किस बखेड़े में पड़े हैं, जाइये आनन्द से शयन कर रात बिताइये व्यर्थ कष्ट किस निमित्त उठा रहे हैं। उस कुभिक्षु के समक्ष मुझे ले जाना आपको उचित नहीं है। अच्छा, यदि आपका ऐसा हठ ही है तो सुनिये आपको एक कथा सुनाता हूं।"

चित्रकूट नामक एक नगर है, जो कि सचमुच यथार्थनामा है; जहां ब्राह्मणादि चारों वर्ण अपने २ जातिधर्म्म से रेखामात्र भी विचलित नहीं होते। तहां राजाओं के शिखामणि राजा चन्द्रावलोक राज्य करते थे जोकि प्रणयीजनों के नेत्रों में अमृतवर्षण तुल्य थे। विद्वान् लोग उनकी प्रशंसा में इस प्रकार वर्णन करते हैं कि राजा चन्द्रावलोक शौर्य्यरूपी करी के आलान (१) थे, त्याग के उद्गम स्थान (२) और सौन्दर्य्य के विलासवेश्म (३)। यद्यपि महाराज सर्वगुणसम्पन्न थे तथापि उनके हृदय में एक बड़ी भारी चिन्ता थी सो यह कि उन्हें आत्मानुरूप गुणवती भार्य्या नहीं मिली थी। ऐसी युवावस्था और भार्य्या की अप्राप्ति भला चिन्ता न हो तो क्या हो? राजा इसी चिन्ता में उद्विग्न रहते।

एक समय की बात है कि महाराज मृगया के निमित्त चले कि चलो किसी प्रकार चित्तविनोद तो कर आवें। सो घोड़े पर आरूढ़ हो आखेट करने के निमित्त महाटवी की ओर चले। तहां पहुंच सूअरों के समूह पर बाणवृष्टि कर उन्हें तीखे बाणों से छेदने लगे जैसे श्यामल अम्बर में (४) शोभायमान तिग्मांशु (५) अपनी तीक्ष्ण किरणों से अन्धकार का भेदन करते हैं। अर्जुन से भी अधिक

(१) हाथी के बांधने का स्तम्भ, अर्थात् जैसे हाथी खम्भे में बांधा जाता है वैसेही शौर्य्य उनमें बँधा था। (२) निकलने का स्थान, उत्पतिभूमि; मानों त्याग उन्हीं से उत्पन्न हुआ; अर्थात् बड़े दानी। (३) आनन्द का भवन, अर्थात् सौन्दर्य भी जहां आनन्द मनाता था। (४) आकाश। (५) सूर्य।

बलवान् वह नृप समरदुर्मद मृगेन्द्रों को शरशय्या पर सुलाने लगे। इन्द्र के समान वह नृपेन्द्र पर्वताकार शरभों के (१) पक्ष काट २ वज्रप्रहार समान प्रासप्रहार (२) से धरती पर गिराने लगे। राजा चाहते थे कि अति शीघ्र अरण्य के अभ्यन्तरभाग में पहुंच जावें और तत्रत्य पशुओं का आखेट करें, इस हेतु उन्होंने घोड़े को ऐड़ी मारी और आगे बढ़ाया। कोड़े के आघात और एड़ी से घोड़ा भनका और कनौती उठा ऊभड़ खाभड़ का बिना विचार किये सरपट दौड़ा, ऐसे वेग से दौड़ा कि वायु भी हार मान जाय और क्षणभर में राजा को लियेदिये दस योजन के पार (३) एक दूसरे वन में पहुंच गया। राजा की इस दौड़ान में सब इन्द्रियां ढीली पड़ गयीं।

उस वन में पहुंचकर बाजी रुक गया; घोड़ा तो भन्नाटे के साथ सरपट दौड़ता आया कि जिस दशा में राजा को आत्मरक्षा कठिन हो रही थी किसी प्रकार सम्भले रहे, अब जो यहां पहुंचे तो दिशाभ्रम हो गया; यह निर्णय न कर सके कि हम किधर से किधर आ पड़े हैं। कुछ देर तो उनका माथा घूमता रहा जब ठहरा तो इधर उधर दृष्टि फैलाकर देखने लगे तो समीप ही में एक बड़ा भारी सरोवर दृष्टिगोचर हुआ, जिसमें कमल खिले हुए थे, और उधरही से बतास जो बहती थी तिससे उनके दल बार २ झुकते और उठते थे मानों हाथों से यह सङ्केत करते थे कि राजन्! इधर आइये। महीपति वहां गये, वहां पहुंच उन्होंने घोड़े को छोड़ दिया, अश्व लोटपोट करने लगा, जब वह लोटपोट कर चुका तब महीपति ने उसे जल पिलाके एक पेड़ की छाया में बांध दिया और उसके खाने के लिये थोड़ीसी घास उसके सामने छोड़ दी। इसके उपरान्त उन्होंने स्वयं स्नान कर जलपान किया इससे श्रम दूर हुआ। तब राजा चन्द्रावलोक उन रम्य प्रदेशों में इधर उधर की रमणीयता देखने लगे।

महाराज अरण्य की शोभा निरख रहे थे कि एक ओर अशोकवृक्ष के नीचे एक मुनिकन्या दीख पड़ी और उसके साथ उसकी एक सखी भी थी। मुनिकन्या क्या थी कि मानों सुन्दरता स्वयं मूर्तिमती होकर तपस्या करने आयी हो, पुष्प के

(१) आठ पांव के पशु विशेष। (२) खड्गाघात। (३) चार कोस का एक योजन होता है।

आभरण यथादेश शोभायमान हैं, शिरपर जटाजूट विराजमान है जिससे औरही शोभा हो रही थी; शरीर पर वल्कल अद्भुत छटा दिखा रहा है। राजा उसका ऐसा अद्भुतरूप निरख अति विस्मित हुए और तत्क्षण पञ्चशर के शरों से आहत हो मनमें इस प्रकार विचारने लगे, "अहो! विधातः यह कौन है? क्या साविची तो स्नान करने नहीं आयी हैं? अथवा भूतनाथ के अङ्ग से पृथक् हो भगवती गौरी तो नहीं फिर तपस्या करने चली आयी हैं? अथवा दिन में चन्द्रमा तो अस्त रहते हैं तो यह उनकी कान्ति तो नहीं यहां व्रत धारण कर आ बैठी है?। अच्छा जो हो, अब चलके इससे पूछना चाहिये," इतना सोच राजा धीरे २ उस कन्या के निकट गये।

उस मुनिकन्या ने राजा को जो आते देखा तो उसकी दृष्टि उनके मुखारविन्द पर ऐसी डट गयी कि उसका ज्ञान हो जाता रहा और वह माला का गुथना भूल गयी और सतत एक दृष्टि से उनकी ओर देखती ही रह गयी। अब वह भी इनका अपूर्व रूप निरख मनमें चिन्ता करने लगी, "अहो! यह कोई सिद्ध हैं अथवा कोई विद्याधर हैं! अहो इनका रूप कैसा मनोहर है कि जिसके अवलोकन से जगत् के नेत्र कृतार्थ हो जाते हैं।" इस प्रकार वह तापसकन्या मनमें विचारती जाती थी और लज्जाभरी तिरछी चितवन से महीपति की ओर निरखती भी जाती थी। इतना विचार वह चलने के हेतु उठी, परन्तु पांव शिथिल हो गये थे इससे चलना कठिन था तथापि जाने लगी।

इतने में नागर राजा सम्मुख आगये और कहने लगे, "सुन्दरि! दूर से आये और पहिले पहिल देखे गये जन का स्वागत दूर रहे, तुम्हारे दर्शनों हो से उसका स्वागत सम्पन्न हो गया अब उसे इस अनुपम रूप के निरीक्षण से वञ्चित करना तुमको उचित नहीं है; आश्रमवासियों का यह कैसा धर्म्म कि अतिथि आवे और उसका सत्कार विना किये भाग जावें।" राजा का ऐसा कथन सुन वह सखी, जो, उसके साथ में थी बोली, "नहीं २ आप बैठिये अवश्य आपका आतिथ्य किया जायगा;" इतना कह उसने उसे बैठाय महाराज का आतिथ्य सत्कार किया।

राजा को तो उस मुनिकन्या के विषय में जिज्ञासा की बड़ी उत्कण्ठा थी सो उन्होंने बड़े प्रेम से उसकी सखी से पूछा, "भद्रे! कौन वंश ऐसा पुण्यवान् है जिसे

तुम्हारी सखी ने अलङ्कृत किया है ? श्रवणों में अमृत घुलानेवाले इनके नाम के क्या २ अक्षर हैं ? भला कहां इनका पुष्प से भी सुकुमार अङ्ग और कहां यह घोर तपस्या ! सो किस हेतु यह इस विजन वन में तापसवृत्ति से अपना सुकुमार शरीर तपा रही हैं ?" राजा के ऐसे वचन सुन उसकी सखी बोली, "महाभाग ! यह मेनका से उत्पन्न है, कण्व मुनि पुत्री की भांति उसका लालन पालन करते हैं सो यह उन्हीं के आश्रम में पली और बढ़ी है, नाम इसका इन्दीवरप्रभा है। पिता की आज्ञा से यहां सरोवर में स्नान करने आयी है। यहां से थोड़ो ही दूर पर इसके पिता महर्षि कण्व का आश्रम है।" उसका ऐसा कथन सुन राजा के मनमें आया कि ठीक है अ : कुछ २ आशा है अच्छा चलकर उन महर्षि से इसकी याचना करें, इतना विचार वह अपने घोड़े पर आरूढ़ हुए और उस कन्या के हेतु महर्षि कण्व के आश्रम को गये।

जब आश्रम के पास पहुंचे तो घोड़े को बाहर ही बांध बड़े विनीतभाव से आश्रम में घुसे, जो आश्रम कि जटा और वल्कलधारी तपस्वियों से परिपूर्ण था और जहां फलों के बोझ से दबे वृक्ष अपनी शोभा पृथक् ही दिखा रहे थे। उन वृक्षों के मध्य भाग में महात्मा कण्व ऋषि ऋषियों से परिवेष्ठित अपने तेज से देदीप्यमान सुशोभित हैं जैसे ग्रहों से घिरे हुए चन्द्रमा। महीपति आगे बढ़ मुनि के चरणों पर गिरे, मुनि ने आशीर्वाद देकर उन्हें आसन ग्रहण करने का आदेश दिया और उनका आतिथ्य सत्कार किया। जबकि आतिथ्य पाकर राजा स्वस्थ हुए तब महर्षि कण्व ने उनसे इस प्रकार कहा, "वत्स चन्द्रावलोक ! सुनो मैं यह तुम्हारे हित की बात कहता हूं; तुम जानते हो कि इस संसार में प्राणियों को सदा मृत्यु का कैसा भय बना रहता है सो इन बपुरे मृगों को (१) व्यर्थ क्यों मारते हो ? विधाता ने क्षत्रियों को शस्त्र इस निमित्त दिये हैं कि उनसे भयभीतों की रक्षा करें नकि निर्दोष प्राणियों का घात करें। सो तुमको उपदेश देता हूं कि इस जघन्य व्यापार से निवृत्त होओ और धर्म्मपूर्वक प्रजाओं का पालन करो तथा कण्टकों का (२) उन्मूलन करो; हाथी घोड़े तथा अस्त्र ऐसे साधो कि जिनसे तुम्हारा यश यहां बना रहे; राजलक्ष्मी चञ्चल है, ऐसा उपाय करो कि वह स्थिरा

(१) मृग = पशु। (२) कण्टक = कांटे अर्थात् क्लेश; शत्रु भी।

हो तुम्हारी कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त करती रहे। आनन्दपूर्वक निर्द्वन्द्व राज्य का सुख भोगो, दीन दुःखियों को धन धान्य देकर उन्हें सन्तुष्ट रक्खो और सब दिशाओं में अपना यश विस्तारो और कृतान्त के क्रीड़ारूप (१) मृगयाव्यसन का त्याग करो। देखो जब कोई आखेट करने चलता है तो आखेटी वध्य तथा दूसरे सेना के सब लोग अस्तव्यस्त रहते हैं सो इस अनर्थकारी व्यसन से लाभ ही क्या? क्या तुमने महाराज पाण्डु की दुर्घटना का इतिहास नहीं सुना है?"

राजा चन्द्रावलोक बड़े अर्थज्ञ तो थे ही, कण्व मुनि का ऐसा उपदेश सुन अति प्रमुदित हुए और बोले. "भगवन्! यह आपकी बड़ी कृपा है जो आपने इस प्रकार मुझे शिक्षा दी है, बहुत ही अनुगृहीत हुआ। अच्छा अब मैं मृगया से निवृत्त हुआ, अब समस्त प्राणी निर्भय होके विचरें।" राजा की ऐसी उक्ति सुन मुनि बोले, "वत्स! मैं तुम्हारे प्राणियों के इस अभयदान से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, अब मैं यह आज्ञा देता हूं कि जो इष्ट हो वह वर तुम मुझसे मांग लो।" राजा अपने मनमें विचारने लगे कि बस यही अच्छा अवसर है, सो वह मुनि के इतना कहते ही बोले, "भगवन्! यदि आप सन्तुष्ट हैं तो अपनी यह कन्या इन्दीवरप्रभा मुझे दे देवें।" राजा की ऐसी अभ्यर्थना सुन महर्षि उसके पूर्ण करने पर सम्मत हुए, और उसी समय वह कन्या स्नान करके आ भी गयी, बस महर्षि कण्व ने तत्क्षण अप्सरःसम्भवा (२) उस कन्या का विवाह राजा चन्द्रावलोक से कर दिया; वह इन्दीवरप्रभा इनके योग्य ही थी। मुनियों की भार्य्याओं ने जिसका शृङ्गार किया था ऐसी उस इन्दीवरप्रभा से विवाह कर महीपति चन्द्रावलोक कृतकृत्य हुए और अब निज राजधानी की यात्रा पर सन्नद्ध हुए और नवोढ़ा भार्य्या इन्दीवरप्रभा को घोड़े पर चढ़ाकर वहां से प्रस्थित हुए; तपस्वियों ने अपने आश्रम के सिवान लौं उन्हें पहुँचाया। राजा चले जाते थे, उनका यह गमनपरिश्रम देख मानों सूर्य्यनारायण को बड़ा खेद हुआ सो वह अस्ताचल के मस्तक पर जा विराजे। सन्ध्या हो गयी और क्रमानुसार अन्धकार बढ़ने लगा और रात्री देवी का पूर्ण प्रताप जम गया।

(१) यमराज के खिलौने। अर्थात् एक न एक दिन यमराज के हाथ में अवश्य पड़नेहारे जीव हैं ही सो उनका आखेट तुम क्यों करते हो। (२) अप्सरा से जन्मी।

इसी अवसर पर मार्ग में एक बट का पेड़ पड़ा जो कि एक सरोवर के किनारे लगा था, सरोवर का जल ऐसा स्वच्छ जैसे सज्जनों का हृदय । वह बड़ शाखा और पत्तों से भली भांति सम्पन्न तथा छतनार था जिसके नीचे मानों अन्धकार ने डेरा डाला हो। उसे देख राजा ने कहा कि अब रात में यहीं टिक रहूं। इतना विचार वह घोड़े से उतरे, इधर उधर से घास एकत्रित कर उन्होंने घोड़े को दी और उसे जल पिलाकर एक ओर बांध दिया । आप भार्य्यासहित उस वापी के तटपर गये और बैठकर विश्राम करने लगे। शीतल, मन्द, सुगन्ध बतास जो चल रही थी उससे थोड़ेही समय में उनकी थकावट दूर हो गयी। अब उसी बड़ की घनी छाया में पुष्पशय्या पर अपनी प्रिया उस मुनिकन्या के साथ राजा चन्द्रावलोक सो रहे। इसी अवसर में तिमिर के पट हटाय शशाङ्क ने बड़े प्रेम से प्राची दिशा का मुख चुम्बन किया । चन्द्रमा की शीतल किरणों से मान त्याग सब दिशाएँ प्रकाशमय हो गयीं। इसी समय लता और गुल्मों के बीच से चन्द्र की किरण उस स्थान में पहुँची जहां राजा रानी सो रहे थे, वे किरण उस घटाटोप में मानों रत्नदीपक थे। अब राजा ने इन्दीवरप्रभा को गाढ़रूप से आलिङ्गन किया और जिस कार्य्य के लिये लालायित थे उसके सम्पादन की चेष्टा की । धीरे से उसकी नीवी हटाई मानों लाज का त्याग कराया; दांतों से अधरों को काटा मानों मुग्धभाव का खण्डन किया। यौवनरूपी मत्तमातङ्ग के कुम्भ समान स्तनों पर नखों के आघात के चिन्ह डाले मानों आकाशमण्डल में नये नये उत्तम रत्नों के नक्षत्रों की मालिका प्रकाशित कर दी। महीपति बार बार मुख, कपोल और नयनों का चुम्बन लेने लगे मानों लावण्यरूपी अमृत के कुण्ड में मग्न हो चहुँओर से पीने लगे। इस प्रकार राजा चन्द्रावलोक अपनी कान्ता के साथ विविध भांति की क्रीड़ाओं का अनुभव करते रति-सुख में मग्न थे कि वह क्षपा क्षणभर सी प्रतीत हुई।

प्रातःकाल होनेपर शयन त्याग पृथ्वीपति उठे और सन्ध्यावन्दनादि आह्निक कार्य सम्पादन कर अपने सैन्य के ढूंढ़ने के हेतु ज्योंहो चला चाहते थे कि अति भयङ्कराकृति श्याम मेघ समान एक ब्रह्मराक्षस उनपर दौड़ा। पङ्कजों की शोभा के विलुप्तकारी चन्द्र भय से मानों अस्ताचल की खोह में जा छिपे और अपनी प्र-

खर किरणें पसार क्रोध से लाल २ नेत्र कर मानों मार्तण्ड उन्हें मारने चले हों। इसी भांति वह ब्रह्मराक्षस अकस्मात् राजापर आ टूटा। बिजली के समान पिशङ्ग जिसके केश, काजल के समान रङ्ग, काले मेघ सा आकार जिसका, गले में अन्तड़ियों की माला डाले, केशों का यज्ञोपवीत धारण किये, मनुष्यों के शिरों का मांस खाता हुआ और खोपड़ी से लहू पीता हुआ; बड़ा घोर अट्टहास कर, मुख से आग निकालता हुआ बड़े क्रोध से भयङ्कर दाढ़ खोल वह राजा को दपेटकर इस प्रकार कहने लगा, "ऐ पापिष्ठ! जान रख, मैं ज्वालामुख नामक ब्रह्मराक्षस हूं, यह अश्वत्थ मेरा निवास है, इसपर देवों का भी कुछ वश नहीं है। उनका भी इतना अधिकार नहीं कि इस मेरे भवन में कुछ अत्याचार कर सकें, सो दुष्ट! तूने उस स्थान में प्रवेश कर स्त्री के साथ सम्भोग किया। अब ले मैं तुझे तेरे इस अविनय का फल देता हूं। ऐ दुराचार! तेरी ऐसी ढिठाई! अब मैं तेरी छाती फाड़ तेरा हृदय खाऊँगा और तेरा शोणित पीऊँगा। तू ऐसा कामातुर था सो उसका फल भोग।" उसके ऐसे वचने सुन दम्पती अति भयभीत हो गये, वह राक्षस अवध्य भी था इससे राजा चन्द्रावलोक उससे अति विनीतभाव से इस प्रकार कहने लगे, "भगवन्! यह अपराध मुझसे अनजानते बन पड़ा अतः आप क्षमा कीजिये; देखिये एक तो मैं आपके यहां अतिथि होकर आया दूसरे शरणार्थी हूं सो मुझपर क्षमा करनी चाहिये। जो आप विना मानवमांस खाये तृप्त न हों तो मैं आपको एक पुरुष पशु (१) अर्पण करूँगा इससे आपको तृप्ति भी हो जावेगी सो आप क्रोध त्याग कीजिये।" राजा की ऐसी विनति सुन, "अच्छा क्या दोष है," इतना विचार वह ब्रह्मराक्षस बोला, "अच्छा तेरा कहा मैं मानता हूं पर देख, पशु ऐसा हो, ब्राह्मण का सात वर्ष का लड़का हो, जो बड़ा विवेकी और सत्त्वसम्पन्न हो और तेरे निमित्त आत्मसमर्पण करने में तनिक भी आगा पीछा न करे। जब बलि का समय आवे तब पृथ्वीपर वह गिरा दिया जावे, उसकी माता उसके दोनों हाथ पकड़े और पिता दोनों पांव और तू स्वयं अपने हाथ से उसका बलिदान करे तब तो ठीक है। और भी चेत रख कि यह काम सात दिनों के भीतरही होना चाहिये। यदि तू ऐसा करे तब तो मैं तेरा यह धर्षण

(१) बलि।

सह सकता हूं नहीं तो अभी स्त्री सहित तेरा विनाश किये डालता हूं । जो तू प्रतिज्ञा कर यहां से बच निकल जा! और सप्ताह के भीतर ऐसा न कर सके तो चेत रखना कि राज्यपाटसहित मैं तुझे चौपट कर छोड़ूंगा।" इस प्रकार उसका कथन सुन भय के मारे राजा चन्द्रावलोक उसके प्रस्ताव पर सम्मत हुए और वह ब्रह्मराक्षस तत्क्षण वहां से अन्तर्धान हो गया।

अब राजा चन्द्रावलोक इन्दीवरप्रभा के साथ घोड़ेपर आरूढ़ हुए और अपनी सेना ढूंढ़ने चले किन्तु उनका मन अति सन्तप्त था । वह अपने मनमें विचारते चले जाते थे कि हाय! मृगया से मेरी मति ऐसी हो गयी और मदन ने मुझे ऐसा मोह लिया, ठीक मेरी दशा महाराज पाण्डु की सी हुई कि अकस्मात् विनाश के मुंह में पड़ गया। हा! मैं कैसा मूर्ख हूं! अब इस राक्षस के निमित्त ऐसा उपहार कहां पाऊँगा। अच्छा अब नगर में चलना चाहिये देखूं क्या होता है। इस प्रकार वह सोचते विचारते सेना ढूंढ़ते ढांढ़ते चले जा रहे थे कि इतने में उनकी सेना मिल ही तो गयी। अस्तु अपने सैन्य और रानी इन्दीवरप्रभा के साथ वह अपनी राजधानी चित्रकूट नगरी में जा विराजे। भार्य्यासहित महीपति को आया देख राज्य भर में बड़ा उत्सव होने लगा, घर २ मङ्गल मनाया जाने लगा; परन्तु राजा के मनमें जो दुःख था उसे तो वही न जानते थे । अस्तु इसी प्रकार वह दिन बीत गया।

दूसरे दिन उन्होंने अपने सब मन्त्रियों को एकान्त में बुलाया और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब सुमति नामक एक मन्त्री ने कहा, "देव! आप विषाद मत करिये, ऐसा उपहार मैं कहीं से ढूंढ़ लाऊँगा, पृथ्वी में ऐसा क्या पदार्थ नहीं है जो न मिले, आप इसकी रत्तिकमात्र चिन्ता मत कीजिये मैं सब सम्पन्न कर दूंगा।" राजा को इस प्रकार सान्त्वना दे उस मन्त्री ने अति शीघ्र सात वर्ष के बालक की एक सोने की प्रतिमा बनवायी, उसे रत्नों से अलङ्कृत किया और एक रथपर रखा सब नगर गांव और खेड़ों में घुमवाया और आगे २ यह डुग्गी फिरती जाती थी कि जो कोई सात वर्ष का ब्राह्मण का पुत्र सब प्राणियों की रक्षा के हेतु ब्रह्मराक्षस को आत्मसमर्पण करे और सत्त्व सम्भाले रहे कि तनिक भी न मिनके और माता पिता उसको अनुमति दे देवें और इतना ही नहीं किन्तु

जब वह बलि किया जावे तब माता पिता हाथ पांव पकड़ें तो उसे राजा यह सोने की हेमरत्नमयी प्रतिमा देंगे और ऊपर से सौ गांव भी देंगे। जो कोई बालक अपने माता पिता का इतना उपकार किया चाहे वह इस कार्य्य में प्रवृत्त होवे।

इस प्रकार की घोषणा के साथ वह रत्नमयी स्वर्णप्रतिमा एक गांव में पहुँची जहां ब्राह्मण रहते थे। तहां सात वर्ष का एक ब्राह्मणकुमार अति धीर गम्भीर तथा बाल्यावस्था ही से परोपकारी था वह देखने में भी अति सुन्दर था। परोपकार में तो ऐसा तत्पर रहता मानों प्रजाओं के पुण्य का प्रतिफल साक्षात् रूप धर के आया हो। उसके कानों में यह घोषणा पड़ी सो वह उन घोषकों के समीप आकर कहने लगा, "तुम्हारे कार्य्य के निमित्त मैं अपने को देता हूं; तुम लोग यहीं ठहरे रहो मैं जाकर अपने माता पिता से कहकर अभी आता हूं।" उस बालक का ऐसा कथन सुन वे राजपुरुष अति प्रमुदित हुए और बोले,— "अच्छा जाइये।" अब वह ब्राह्मणकुमार अपने माता पिता के पास जाकर हाथ जोड़ इस प्रकार उनसे कहने लगा, "हे माता, हे पिता! सब सत्त्वों की रक्षा के निमित्त मैं अपना नश्वर शरीर दान किया चाहता हूं सो आप दोनों मुझे आज्ञा दीजिये और समझ रखिये कि आपकी आपत् अब दूर हुई। अपनी प्रतिकृति एक सुवर्ण की प्रतिमा और उसके साथ राजा से सौ गांव आप दोनों को दिला देता हूं। इस प्रकार मैं आपके ऋण से मुक्त हो जाऊँगा और परोपकाररूपी जो मेरा परम धर्म्म है सो सिद्ध हो जावेगा और आप दोनों का दारिद्र्य भी नष्ट हो जावेगा और ऐसे ऐसे पुत्र बहुत होते रहेंगे।" उसका एतादृश वचन सुन माता पिता बोले, "पुत्र! यह तू क्या कह रहा है क्या पागल तो नहीं हो गया है? अथवा ग्रह के घेरे में पड़ गया है नहीं तो भला ऐसा क्यों कहता। भला ऐसा कौन पुरुष होगा कि अर्थ के लोभ से पुत्र का घात करावेगा और ऐसा कौन बालक ही होगा कि अपनी देह देगा।" माता पिता की ऐसी उक्ति सुन वह बालक फिर बोला, "सुनिये, मेरी बुद्धि में कुछ हो नहीं गया है, मैं व्यर्थ बकवाद नहीं कर रहा हूं मैं जो कहता हूं वह यथार्थ वचन है; सुनिये यह शरीर है क्या तत्त्व; सब प्रकार से निन्द्य है, अपवित्र है, मलिनता इसमें भरी है, और जन्म से ही दूषित है; समस्त दुःखों का क्षेत्र है; और फिर एक न एक दिन अवश्य नष्ट

होवेहीगा। सो इस असार तत्व से यदि अचल सुकृत प्राप्त हो जावे तो इस संसार में यही सार तत्व है, ऐसा विद्वानों का कथन है। सब प्राणियों का जिसमें भला हो, भला इससे बढ़कर और कौन सा पुण्य होगा, फिर तहां भी माता और पिता की भक्ति सोने में सुगन्ध तो इसके अतिरिक्त इस देह का और क्या फल देख पड़ता है?" इस प्रकार दृढ़निश्चय उस बालक ने अनेक प्रकार के ज्ञानमय वाक्यों से अपने माता पिता से अपना अभीष्ट स्वीकार करा लिया और राजपुरुषों से मांग लाकर वह रत्नसज्जित स्वर्णप्रतिमा जिसके साथ सौ ग्राम सङ्कल्पित थे, उन्हें दे दी।

अब वह ब्राह्मणकुमार माता पिता को साथ ले वहां से चला और राजभृत्यों के साथ चित्रकूट को चला और क्रमानुसार राजा चन्द्रावलोक के समक्ष आ उपस्थित हुआ। अब राजा चन्द्रावलोक अखण्डित तेज धारी उस बालक को देखकर मानों रत्नारत्न पाकर अति प्रमुदित हुए। अब उस ब्राह्मणतनय की पूजा की गयी उसे मालायें पहिनायी गयीं। तदुपरान्त महीपति चन्द्रावलोक उसे पिता मातासहित हाथी पर चढ़ाकर उस ब्रह्मराक्षस के आवासस्थान को ले गये।

वहां पहुँच पुरोहित ने उस अश्वत्थ वृक्ष के समीप एक मण्डल बनाया और यथोचित विधि के अनुसार अग्निस्थापन कर उसमें हवन किया। इसी अवसर में अट्टहास कर वह ब्रह्मराक्षस बार बार जम्हाता हुआ आ पहुँचा; आंखें उसकी लाल २ और मुख से उसके रक्त आसव की दुर्गन्धि निकलती थी, आंखों से मानों ज्वालाएँ निकलती थीं। देह की छाया से सब दिशायें अँधियारी हो गयीं, उसके मुख से ज्वालायें निकलती थीं और उसका आकार महा भयङ्कर था।

अब अति दीन वचनों में महाराज चन्द्रावलोक ने उससे कहा, "भगवन्! यह मैं आपके लिये नरोपहार लाया हूं, आपके ठहराये हुए दिनों में आज सातवां दिन भी है सो अब आप प्रसन्न हो विधिपूर्वक यह उपहार ग्रहण कीजिये।" राजा की ऐसी अभ्यर्थना सुन वह ब्रह्मराक्षस अपनी जिह्वा से सृक्किणियां (१) चाटता हुआ उस ब्राह्मणकुमार की ओर देखने लगा।

उस समय वह महासत्व द्विजतनय बालक अति प्रसन्न हुआ और अपने मनमें विचार करने लगा—इस स्वदेह दान से जो पुण्य मुझे मिलेगा उसका प्रतिफल है

(१) ओठों के दोनों छोर।

स्वर्ग नहीं चाहता अथवा मोचही मुझे न मिले क्योंकि तब हुआ क्या केवल निष्क्रिय हो जाऊँगा परन्तु मैं तो यह चाहता हूं कि मैं वार २ जन्म ग्रहण करूँ और जब २ जन्मूं तब २ मेरा शरीर परोपकार ही में जाय। वह अपने मन में इस प्रकार का विचार कर ही रहा था कि देवगण अपने २ विमान पर चढ़ २ कर आकाश में सुशोभित हो गये और लगे उस बालक के ऊपर फूल बरसाने। उन अमरों से आकाश भर गया।

अब बालक उस ब्रह्मराचस के समच उपस्थित किया गया, माता ने उसके दोनों हाथ पकड़े और पिता ने दोनों पांव; और राजा चन्द्रावलोक खड्ग खींचकर ज्योंही उसपर आघात किया चाहते थे कि वह बालक ऐसा खखाकर हँसा कि सबके सब यहां लो कि वह ब्रह्मराचस भी अपना २ कर्म छोड़ अत्यन्त अचम्भित हो अति नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर उसका मुंह निरखने लगे।

ऐसी विचित्र रस से पूर्ण कथा सुनाय वेताल ने महाराज त्रिविक्रमसेन से पूछा कि महाराज! कहिये तो सही कि ऐसे प्राणान्त समय में बालक क्यों हंसा? इस बात का मुझे बड़ा कौतुक है। यदि आप जानबूझकर न बतलावेंगे तो आप का शिर चूर २ हो जायगा। वेताल का ऐसा प्रश्न सुन महाराज त्रिविक्रमसेन बोले, "सुनो, बालक के हँसने का क्या अभिप्राय था सो मैं तुम्हे बतलाता हूं; जो कोई दुर्बल जीव होता है वह भय आने पर "बाप रे बाप, माई रे माई," कहके रोता है अर्थात् उन्हें अपनी प्राणरचा के निमित्त पुकारता है; और जिसके माता पिता नहीं रहते वह आत्मत्राण के हेतु राजा को शरण लेता है; यदि कदाचित् किसी कारण से राजा की भी अनुकूलता न प्राप्त हुई तब वह जीव इष्टदेव को पुकारता है। परन्तु उस बालक के विषय में एक अद्भुत बात हुई कि सबके सब एकत्र विद्यमान थे पर उनके आचरण विपरीत हुए। माता पिता का काम है कि अपने पुत्र की सब भांति से रचा करें सो यहां तो बध के लिये वे उसके हाथ पांव पकड़े हुए थे। माता पिता की सहायता जब अप्राप्य हुई तो प्राणी राजा की शरण लेता है सो राजा स्वयं यहां खड्ग खींचे बलिदान करने को उद्यत हैं। राजा की बात भी विपरीत निकली। अब इष्टदेव की रही कि जिसकी प्रसन्नता उसपर हो कि जिसकी प्रसन्नता के निमित्त वह अपने को बलि चढ़ाने

पर प्रस्तुत था इस अवसर पर उस ब्रह्मराक्षस को उस ब्राह्मणतनय की महानुभावता से प्रसन्न होना चाहिये था सो नहीं प्रत्युत वह भक्षण करने को उद्यत था। शरीर क्षणभङ्गुर है, सो यह भी नहीं कि कब नष्ट हो जायगा, उसमें अनेक प्रकार के मल भरे हैं और आधिव्याधि का तो वह आकर है ही; बस ऐसे शरीर का जो मोह करे उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा। जहां ब्रह्मा इन्द्र, विष्णु और रुद्र इत्यादि सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभु भी नाशशील हैं तहां इस शरीर के स्थैर्य की वासना कैसी। यह मोह की परम विचित्रता और अपना अभीष्ट सिद्ध हुआ, इन्हीं दोनों बातों से उस ब्राह्मणकुमार को आश्चर्य और हर्ष का एकही समय में समावेश हुआ बस इसी से वह हँसा।

शार्दूलविक्रीड़ितम्।

राजा को इतनो वचन सुनतही फिर कन्ध तें ताहि छन।
अन्तर्धान भयो वेताल अपनी माया से जा ह्वां (१) टँग्यो॥
राजा हू अविकल्पचित्त (२) तिहि के पीछे चले शीघ्रही।
अम्भोधी के समान धीरजन का अक्षोभ्य हो तो हियो ॥

अठाईसवां तरङ्ग।

(एकीसवां वेताल)

अब महाराज त्रिविक्रमसेन पुनः उसी अशोकवृक्ष के नीचे पहुंचे और वेताल को उतार कन्धे पर रख उसी भांति प्रस्थित हुए। जब कि वह चले जा रहे थे कि वेताल बोला, "राजन्! सुनिये अब आपको एक प्रेममयी कहानी सुनाता हूं—"

विशालाख्या नाम्नी एक नगरी है, जो सुकृती अपने पुण्यों के क्षय हो जाने से स्वर्ग से च्युत हो जाते हैं उन्हीं के निवासार्थ विधाता ने मानों दूसरी इन्द्रपुरी पृथ्वी पर बनायी हो। उस नगरी में बड़े विख्यात एक राजा पद्मनाभ हुए, जो

---

(१) ह्वां = वहां अर्थात् निज आस्पद उस शिंशपावृक्ष पर।

(२) जिसके चित्त में किसी प्रकार का विकल्प अर्थात् आगापीछा नहीं।

थि सज्जनों के आनन्ददाता और ऐसे श्रीमान् कि बलि को भी अतिक्रान्त कर गये। उनके राजत्वकाल में उस नगरी में अर्थदत्त नामक एक बनियां रहता था जो ऐसा समृद्ध था कि जिसके साम्हने कुबेर भी अपना मद त्याग बैठते थे। उसके एक कन्या हुई जिसका नाम अनङ्गमञ्जरी पड़ा। वह मानवी नाम मात्र को थी, उसकी समस्त प्रकृति और प्रवृत्ति स्वर्ग की ललनाओं की सी थी मानों विधि ने इसकी सृष्टि उन्हीं तत्वों से की जिनसे वह अप्सराओं को बनाते हैं। जब कि वह विवाह के योग्य हुई तब उसके पिता ने ताम्रलिप्तीपुरी के निवासी एक महाजन के पुत्र मणिवर्मा नामक से उसका विवाह कर दिया। यह कन्या ही अर्थदत्त को एक सन्तति थी इसी कारण वह अति वात्सल्य से उसे छोड़ नहीं सकता था सो उसने सुता और जामाता दोनों को अपने यहां रक्खा। अनङ्गमञ्जरी को उसका पति मणिवर्मा किञ्चित् भी नहीं भावता था, जैसे रोगी को औषधि तीती लगती है वैसे ही वह उसे विषवत् समझती थी, इसके विपरीत अनङ्गवर्मा उसे अपने प्राणों से अधिक समझता था जैसे कृपण अपना धन नहीं अलग करता वैसे ही वह उसे एक क्षण के लिये भी आंखों से ओझल नहीं होने देता था।

बहुत दिनों के उपरान्त मणिवर्मा के मनमें यह लालसा उठी कि अब चलकर माता पिता को देख आऊँ सो वह अपनी प्रिया से अति कष्ट के साथ पृथक् हुआ और माता पिता के दर्शनार्थ अपने घर गया।

कुछ दिनों के अनन्तर संसार के समस्त प्राणियों का उपतापन (१) उष्णकाल आया जिसमें सूर्य्य की प्रखर किरणों के कारण बटोहियों का मार्ग चलना बन्द हो गया। अत्यन्त उष्ण पवन बहने लगे मानों वसन्त के विरह में सब दिशायें निश्वास फेंक रही हों उन पवनों में मल्लिका और पाटल की सुगन्धि मिश्रित थी। आंधी की उड़ाई धूली आकाश में भर गयी मानों अत्यन्त सन्तप्त पृथ्वी ने मेघ को बुलाने के लिये दूती भेजी हो कि अति शीघ्र आके मेरा सन्ताप दूर करो। कठोर आतप से श्रान्त पथिक वृक्षों की छाया की आकांक्षा से व्यस्त रहते और जब जहां कहीं छाया पा जाते तो वहां से उठना उनको अपार हो जाता और उठते भी तो बड़े धीरे २ चलते। इसी प्रकार बड़े विलम्ब से दिन व्यतीत होते मानों

(१) तपानेवाला।

पहाड़ हो गये। चन्द्र की किरणों से पाण्डु हो गयी कान्ति जिनकी ऐसी निशायें गाढ़ आलिङ्गन के सुखप्रद हेमन्त के चले जाने से दुर्बल हो गयीं।

इसी समय वह वणिक्सुता अनङ्गमञ्जरी शरीर में चन्दन का आलेप लगाय कौशेय वस्त्र पहिन अति शृङ्गार पटार कर अपनी आप्त सखी के साथ अपनी प टारी की खिड़की पर एक वार अकस्मात् जा पहुँची; वहां से जो झांके तो एक अति सुन्दर विप्रसुत युवा पर उसकी दृष्टि पड़ी। जिसके देखने से ऐसी भावना होती थी कि रति की खोज में मानों कामदेव इधर उधर घूम रहा है। उ ब्राह्मणयुवक का नाम कमलाकर और वह राजपुरोहित का पुत्र था। उसने भी जो ऊपर देखा तों इन्दु की मूर्त्ति सी उस मनोरमा पर उसकी दृष्टि पड़ी, अब व कमलाकर उस चन्द्रवदनी का चन्द्रवदन देख मारे आनन्द के कुमुदाकर हो गया अब परस्पर के निरीक्षण मात्र से दोनों के मन में स्मर की आग प्रज्वलित हुई दोनों की लज्जा दूर जा भगी चित्त स्मराग्नि से विक्षिप्त सा हो गया। अब कम लाकर काम की पीड़ा से अति दुःखित हुआ और अपने को सम्भाल न सक और बड़ी कठिनता से अपने मित्र के साथ जो कि संग में था किसी प्रकार अप घर गया और अनङ्गमञ्जरी भी उसके नाममात्र से उसका पता लगाकर अपनी सखी के साथ वासभवन में गयी।

अब अनङ्गमञ्जरी अपने कान्त के विरहानल से सन्तप्त कामज्वर में भुनती हु अपने पर्य्यङ्क पर लोटपोट करने लगी किसी प्रकार चैन नहीं। इस प्रकार दं तीन दिन बीत गये और उसका विरहानल और भी धधकता गया जिससे कि वह दुबली और पीली पड़ गयी। न कुछ सुनती न कुछ बोलती। प्यारे का सङ्ग असम्भव जान पड़ा इससे वह निराश हो गयी। अब उसने इस निराशा में मरन ही निश्चय किया। इसी समय गवाक्ष से चन्द्रमा की किरण भीतर आयी उसी आकृष्ट हो मानों वह रात्री के समय जब कि सब लोग सो गये थे तब चुपचा अपने भवन से निकली कि कहीं जाकर प्राण त्याग कर देवे। घर से निकलक वह अपने गृहोद्यान की बावड़ी के पास गयी जहां तरु और लताओं से ए कुञ्ज बना हुआ था। वहां उसके पिता की स्थापित कुलदेवता चण्डिका दे की मूर्ति थी सो देवी के समक्ष जाकर प्रणाम कर उसने भगवती की स्तुति कि

पश्चात् हाथ जोड़ इस प्रकार विज्ञाप्ति किई कि हे देवि! यदि इस जन्म में कमलाकर पति करके मुझे न प्राप्त हुए तो हे मातः! दूसरे जन्म में वह मेरे पति होवें। इतना कह उसने भगवती के साम्हने अशोक वृक्ष में अपनी ओढ़नी का पाश सज्जित किया। इसी अवसर में उसकी सखी की नींद जो उधर टूटी तो उसे पर्य्यङ्क पर न पाय घबराकर उठी और ढूंढ़ती ढांढ़ती अकस्मात् उसी उद्यान में आ पहुंची। देखती क्या है कि अनङ्गमञ्जरी गले में फांसी लगाया ही चाहती है, "हां हां, अरी यह क्या कर रही है, देख ऐसा न कर," इस प्रकार कहती हुई वह दौड़ी और पहुंचते ही अति शीघ्र उसने उसकी फांसी काट दी। जब अनङ्गमञ्जरी ने देखा कि सखी आयी है और इसी ने फांसी काट दी है तब उसको देखतेही उसका दुःख और बढ़ा और वह पछाड़ खा धरती पर गिर पड़ी। सखी उसको उठा धूल पोंछ समझाने बुझाने लगी और फिर पूछने भी लगी कि सखि! तुमको, कहो तो सही, क्या हो गया है? भला ऐसा निदारुण कर्म तुम क्यों करने चली, कहो क्या कारण है?। तब तो वह कुछ समाश्वस्त हुई और अपने दुःख का कारण साद्यन्त सुना गयी और पश्चात् इस प्रकार कहने लगी, "सखि मालतिके! मैं माता पिता के अधीन ठहरी तो इस दशा में प्यारे का सङ्गम दुर्लभ ठहरा; तो तुम स्वयं विचार सकती हो कि मेरी कैसी दुर्दशा है इस अवसर पर मरण से बढ़कर मेरा सुख क्या हो सकता? बस वही मृत्यु मेरी शरण है। इतना कहते २ अनङ्गमञ्जरी की अनङ्गशराग्नि और भी धधकी और नैराश्य के कारण वह वेदना असह्य हो गयी इससे वह मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़ी।

"हा! कामदेव का अनुशासन भी एक कैसा असह्य कष्ट है कि जिससे मेरी सखी की यह दशा हो गयी है। भला कहां वे दिन थे कि यह अविनीता (१) नारियों का उपहास करती थी कहां अब परपुरुषके विरहमें स्वयं मर रही है। हा कामदेव! तुम धन्य हो!," इस प्रकार अपने मनमें विचार कर मालतिका उस विलपती हुई अनङ्गमञ्जरी को सान्त्वनामय वाक्यों से समझाने लगी और शीतल जल उसके मुंहपर छिड़क नलिनीदल से पङ्खा झालने लगी। जिससे उसका ताप शान्त हो इस हेतु उसने नलिनीदल बिछाय उनपर उसे पौढ़ाया और उसके हृदय पर तुहिनशीतल (२) हार (पहिना) रख दिया। तब आंखों में आंसू भरकर

(१) कुलटा। (२) हिम के समान ठंढा, अथवा हिमनिर्मित शीतल।

अनङ्गमञ्जरी बोली, "सखि! तुम यह क्या करती हो इस हार से क्या मेरा भीतरी दाह शान्त हो सकता है ?, जिससे कि वह शान्त हो अब उसका उपाय अपनी बुद्धि से करो; बस यही कि जो मेरा जीवन चाहती हो तो मेरे उस प्राणप्यारे से मिला दो।" उसकी ऐसी उक्ति सुन बड़े स्नेह से मालतिका कहने लगी, "सखि। इस समय तो रात बहुत बीत गयी है, इस समय क्या हो सकता है अब तो धीरज धरो प्रात:काल होनेपर मैं इस बात की चेष्टा में लगूंगी और जैसे होगा वैसे तुम्हारे प्रणयी को यहीं उद्यान में ले आऊंगी। धीरज धरो और घर चलो।" अनङ्गमञ्जरी अपनी सखी का एतादृश कथन सुन अति प्रसन्न हुई और उसी प्रसन्नता में उसने अपने कण्ठ का हार उतारकर उसे पारितोषिक दे दिया। "अच्छा अब अपने घर जाओ और प्रात:काल होतेही मेरे कार्य्य की चिन्ता में लगना," मालतिका से इतना कह अनङ्गमञ्जरी अपने भवन में चली गयी।

प्रात:काल होतेही उसकी सखी मालतिका चुपके से कमलाकर के भवन में पहुंची जब वहां वह न मिला तब पता लगाती उसके उद्यान में पहुंची तहां क्या देखती है कि एक वृक्ष के नीचे नलिनीदल की शय्या पर पड़ा वह लोटपोट कर रहा है। वह तो कामाग्नि से दग्ध हो रहा और पास में उसका एक हार्दिक मित्र बैठा केले के पत्ते से पवन कर रहा है और शान्त्वनामय वाक्यों से उसे शान्ति भी दिलाता जाता है। "बस उसी के बिना इसकी यह दशा हो रही है ऐसा भासता है, अस्तु अब इसका निश्चय भी हुआ जाता है," इतना विचार वह मालतिका आड़ में से उन दोनों की बात सुनने लगी।

उस मित्र ने कमलाकर से कहा, "सखे! टुक इस आराम की मनोहरता पर भी तो दृष्टि करके देखो कैसा सुहावना है, अपना मन विनोदित करो और ऐसी विकलता त्यागो, धीरज धरो धीरज से सब कार्य्य सिद्ध हो जाते हैं।" सो सुन वह विप्रसूनु अपने मित्र से कहने लगा, "सखे! तुम यह क्या कह रहे हो ? मैं कुछ समझ नहीं सकता उस वणिक्सुता अनङ्गमञ्जरी ने तो मेरा मन चुरा लिया है तो अब मैं विनोदित किसे करूँ और कहां ले जाऊँ कि उसे आनन्द मिले। मेरा हृदय तो कामदेव ने सूना कर दिया है और मुझे अपनी बाणों

का तूणीर (१) बना डाला है तो कहो अब शून्याशय (२) में क्या करूँ, अब मित्र! यही करो जिससे कि उस मन की चुरानेहारी को पाऊँ।" इतना सुनते ही मालतिका का सन्देह दूर हो गया और वह अति प्रमुदित हो उसके समक्ष जाकर इस प्रकार कहने लगी "हे सुभग! अनङ्गमञ्जरी ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है, सुनो मैं उसका सन्देश तुमसे कहती हूं भला यह कैसी शिष्टता है कि हृदय में प्रविष्ट होकर बलात् किसी का मन चुराके मन कठोर कर वहां से चल देना। यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि वह वामलोचना अपने प्राण और देह तुम मनोहर को दिया चाहती है। तुम्हारे विरह में वह रात दिन सन्तप्त श्वास छोड़ती रहती है मानों हृदय में जो कामाग्नि प्रज्वलित है उसी का धूम बाहर निकलता हो। वह रोती रहती है उसके नेत्रों से आंजन सहित जो अश्रुविन्दु ढुरकते हैं उनसे यह भावना होती है कि उसके वदनाम्भोज (३) के सौगन्ध से लुब्ध भौंरे टूट पड़ते हों। सो यदि तुम चाहो तो मैं उपाय बताऊँ जिससे तुम दोनों का कल्याण हो।"

मालतिका का ऐसा कथन सुन कमलाकर बोला, "भद्रे! भला तुम भय करती हो, अरे तुम तो मेरी प्रिया की उस गति का वर्णन कर रही हो जो मेरे विरह में उसको हो रही है, अब तुम्हीं हम दोनों की गति हो जैसा रुचे वैसा करो।" कमलाकर इतना कह जब चुप हो रहा तब मालतिका बोली, "अनङ्ग-मञ्जरी का उद्यान तो तुम जानते न हो बस उसीके बाहर तुम कहीं बैठ रहना और मैं रात्री के समय किसी उपाय से छिपछापकर अनङ्गमञ्जरी को उस उद्यान में ले आऊँगी फिर किसी युक्ति से तुम्हें भी भीतर ले जाऊंगी बस इसी प्रकार से तुम दोनों का यथेष्ठ समागम हो जायगा।" इतना कह उस ब्राह्मणतनय को आनन्दित कर मालतिका अनङ्गमञ्जरी के समीप लौट गयी और प्रिय सन्देश सुन वह भी अति प्रफुल्लित हुई।

अब दोनों को वह दिन पहाड़ सा प्रतीत हुआ, किसी प्रकार बीते ही नहीं, अस्तु सन्ध्या के अनुरागी सूर्य्य कहीं चले गये (४) और ऐन्द्री दिशा (५) अपने भाल

(१) तरकस। (२) शून्यहृदय। (३) कमल समान मुख। (४) अर्थात् सन्ध्या हो गयी। (२) पूर्वदिशा।

पर चन्द्र का तिलक धारण कर सजधज के साथ अति सुशोभित हुई। कोइयां उस उमय प्रफुल्ल वदन हो गयीं मानों यह कह रही हैं कि पद्माकरा (१) लक्ष्मी अब हमें ही प्राप्त हुई हैं। इसी अवसर में वह कामी कमलाकर भली भांति सज धज कर अति उत्कण्ठा से अपनी कान्ता के गृहोद्यान के बाहरी फाटक पर जा डँटा। उधर अनङ्गमञ्जरी का दिन भी जैसे कष्ट से बीता सो वही जानती होगी; अच्छा दिन बीतने पर मालतिका किसी युक्ति से उसे उद्यान में ले गयी और उसे अमराई में बैठाकर कमलाकर की ओर चली और उसे भी भीतर ले आयी। भीतर जाकर कमलाकर घन पादपों के मध्य अनङ्गमञ्जरी को देखकर ऐसा प्रमुदित हुआ जैसे अति श्रान्त पथिक छाया पाकर प्रसन्न होता है। ज्योंही कि वह उसके समक्ष पहुँचा कि कामवेग से जिसकी लज्जा जाती रही ऐसी कनकमञ्जरी यह कहती हुई अति वेग से उठ दौड़ी "अब कहां जाते हो अब तो पा लिया है" और उसके गले में लिपट गयी। अत्यन्त हर्ष से जो वह इतना बोली कि उसकी सांस शब्दों के साथ निकल गयी और उसका मृतक शरीर कमलाकर के गले में लटकता धड़ से धरती पर गिर पड़ा। हा! काम का विपाक कैसा विषम है! यह देख कमलाकर बिजली का मारा जैसा, कमलाकर, "हा! यह क्या हुआ," इतना कह भूपृष्ठ पर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। क्षणभर में उसको चेत हुआ तब वह अपनी प्राणप्रिया को उठा गोद में लेकर कभी गाढ़ आलिङ्गन करता और कभी उसका मुंह बड़े चाव से चूमता और बार २ विलाप करता जाता। यह दुःख उसपर असह्य पड़ा और वह अत्यन्त पीड़ित हुआ यहां लौं कि उसका हृदय फट् से विदीर्ण हो गया और वह भी अनन्त निद्रा में सो गया। उन दोनों की यह दशा देख मालतिका अति विह्वल हो शोक करने लगी। इतने में क्षपा भी बीत गयी मानों उन दोनों का एतादृश क्षय न देख सकी।

प्रातः दोनों के बन्धुजनों के समीप मालियों ने यह दुःखद सम्बाद पहुँचाया सो सबके सब लज्जा, आश्चर्य्य, दुःख और मोह से व्याकुल हो वहां दौड़ आये। अब क्या कर्त्तव्य है इसका कोई भी निर्णय न कर सका सबके सब लाज के मारे बड़े खेद से नीचे शिर किये खड़े रहे। ठीक है कुस्त्रियां क्यों न कुल में धब्बा लगावें!

(१) कमल में जिसका निवास है।

उधर से उसका पति मणिवर्मा भी जो कि अपनी प्यारी के हेतु अत्यन्त उत्कण्ठित था, जिसके विना उसे क्षण भर चैन नहीं, ताम्रलिप्ती से अपने पिता के घर से लौट आया; जब कि वह अपने ससुर के घर पहुँचा तो उसे सारा वृत्तान्त प्रगट हुआ, बस वह प्रेमान्ध उस अपनी प्राणेश्वरी की मृत्यु सुन वहीं से रोता चिल्लाता उसी उद्यान में पहुँचा जहां मृत अनङ्गमञ्जरी अपने मृत प्रणयी कमलाकर की गोद में पड़ी थी। वहां पहुँचकर यद्यपि उसने प्रत्यक्षतः देखा कि पत्नी अपने जार की गोद में आलिङ्गित पड़ी है तथापि उसके हृदय में किञ्चित् भी भेद न हुआ और शोकाग्नि से ज्वलित हो उसने भी प्राण त्याग दिये। अब तो वहां के लोग और और भी माथा पटक २ रोने पीटने लगे यहां लों कि उनके विलाप और आर्त्तनाद से व्याकुल हो आसपास के लोग बटुर आये और होते २ यह बात नगर भर में व्याप गयी सो बड़े आश्चर्य से इस कौतुक के अवलोकनार्थ बड़ी भीड़ वहां जम गयी।

वहां अनङ्गमञ्जरी के पिता की स्थापित देवी चण्डी थीं सो उनके गणों ने उनसे निवेदन किया, "जगदम्ब! इसी अर्थदत्त ने आपकी मूर्त्ति यहां स्थापित की है और यह सदा आपकी भक्ति करता रहता है, सो यह आपका भक्त ऐसे दुःख में पड़ गया है अब इसपर आप दया कीजिये। गणों की ऐसी प्रार्थना सुन शरणागतवत्सला शङ्करप्रिया भगवती भवानी ने कहा कि ये तीनों जी उठें और इनका अनङ्गताप शान्त हो जावे। बस भगवती के प्रसाद से तत्क्षण वे सब जीकर उठ बैठे मानों सोये थे और जाग उठे और सबों के मन से मन्मथ की भावना जाती रही। यह आश्चर्य्यव्यापार देखकर सब दर्शक लोग अति प्रसन्न हुए और कमलाकर लज्जा से शिर नीचे किये हुए अपने घर चला गया। अनङ्गमञ्जरी भी अति लज्जित हुई। अब अर्थदत्त अपनी बेटी और अपने दामाद को लेकर उत्सव मनाता हुआ अपने घर चला गया।

उस रात्री में महाराज त्रिविक्रमसेन के कन्धे पर स्थित बेताल इतनी कथा सुनाय उनसे कहने लगा, "राजन्! इन तीनों अनुरागमूढ़ों में से किसका प्रेम अधिक ठहरा; यदि आप जानबूझकर उत्तर न देंगे तो वही पूर्व शपथ समझ रखिये।" बेताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा त्रिविक्रमसेन बोले, "मेरे विचार में तो

मणिवर्मा ही अधिक रागमूढ़ समझ पड़ता है। वे दोनों जो थे उनकी तो काल-क्रम से कामदेव की पीड़ा के कारण एतादृशी अवस्था सम्भव थी अतः उनका मर जाना कुछ आश्चर्य नहीं किन्तु मणिवर्मा अति मूढ़ ठहरा कि जानबूझकर अपनी भार्य्या को दूसरे की गोद में पड़ी और मरी देखकर भी शोक के मारे मर गया।

दोहा।

नृप को इतनो वचन सुनि, खसक्यो पुनि वेताल।
जा पहुंच्यो निज सदन पै, पिछियायो भूपाल॥

उन्तीसवां तरङ्ग।

(बाईसवां वेताल)

अब वसुधाधिप त्रिविक्रमसेन पुनः उसी अशोकवृक्ष के नीचे पहुँचे और वेताल को उस पादप पर से उतार कन्धे पर रख फिर उसी प्रकार से चले। जब कि वह चले जा रहे थे कि वेताल उनसे इस प्रकार कहने लगा, "राजन्! सचमुच आप बड़े सत्ववान् हैं सो सुनिये आपको एक अपूर्व कथा सुनाता हूं।"

पूर्वकाल की बात है कि इस वसुधातल पर धरणीवराह नामक राजा कुसुम-पुराधीश हुए थे। उनके राज्य में ब्राह्मणों की भरमार थी, सो उस ब्रह्मस्थल में विष्णुस्वामी एक अग्रहार ब्राह्मण था। उसकी भार्य्या उसके अनुरूप जैसी अग्नि की स्वाहा, थी। उस ब्राह्मणी से उस ब्राह्मण के क्रमानुसार चार पुत्र हुए। जब कि सब लड़के शैशव विताकर वेदपारङ्गत हुए उसी समय विष्णुस्वामी का पर-लोक हो गया और उसकी भार्या उसके साथ सती हो गयी। अब सब लड़के अनाथ हो गये और गोतियों ने उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया इससे वे दीन हीन हो अति दुःखित हुए; तब सभों ने आपस में यह मन्त्रणा की। "अब यहां हमलोगों की अवगति नहीं है सो यहां से यज्ञस्थल में अपने नाना के घर क्यों चले चलें।" अस्तु ऐसा दृढ़ निश्चय कर वे सब घर से निकले और भीख मांगते खाते बहुत दिनों में अपने नाना के घर पहुँचे। वहां पहुंचे तो उन्हें विदित हुआ कि नाना का भी परलोकवास हो गया किन्तु मामाओं ने उनको बड़े आदर से ग्रहण किया और वे वहां रहकर अपने स्वाध्याय के अभ्यास में तत्पर हुए।

कहावत है कि "विपत्ति अहुनई से नहीं कटती." बस कुछ थोड़े ही दिन बीतने पाये थे कि उनके आदर सम्मान में शिथिलता होने लगी। "एक दिन पहुना, दूसरे दिन ठेहुना," की उक्ति चरितार्थ हुई, विचारे अपमानभाजन हो गये, अब मामा लोग उनको सब बातों में घटी करने लगे, खाना, पीना, वस्त्रादि कूथ २ कर देने लगे। सारांश यह कि उनकी अवज्ञा पूर्णतया होने लगी। ठीक है दुर्दिन में कौन किसका साथी होता है।

इस प्रकार की अवमानना देख उन ब्राह्मणतनयों को बड़ा सन्ताप हुआ सो सब एकान्त में बटुरकर परामर्श करने लगे कि अब क्या करना उचित है। जेठरे ने उस अवसर पर इस प्रकार कहा, "हे भाइयो! क्या किया जाय, भाग्य सब कुछ कराता है, पुरुष कहीं जाय, कुछ करे पर विधि के आगे उसका कुछ भी नहीं चलता। इस अवमानना से मेरा चित्त बड़ा उद्विग्न हो गया है कहीं विश्राम नहीं पाता। इसी उद्वेग में घूमता फिरता आज श्मशान की ओर निकल गया तो क्या देखता हूं कि वहां एक शव पड़ा है, जिसके समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग सूख गये हैं। उसकी तादृश गति देख मैं अपने मन में विचारने लगा कि इस दुःखमय संसार में यह धन्य है कि दुःख का बोझा फेंक निर्द्वन्द्व सुखनींद सो रहा है। बस मेरे मनमें भी यही निश्चय हुआ कि मरना ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार मरण ठान मैं एक वृक्ष के नीचे गया और डाली में फाँसी लगाकर लटक रहा। मैं संज्ञाहीन हो गया पर तब भी मेरे प्राण न निकले। इतने में पाश टूट गया और मैं धरती पर धड़ से गिर पड़ा। तब मुझे चेत हुआ और क्या देखता हूं कि एक कृपालु पुरुष मेरे पास बैठे हुए अपने कपड़े से मेरे मुख पर पवन कर रहे हैं। वह कृपालु मुझे सचेष्ट देख समझाने लगे, "सखे! कहो तो सही तुम विद्वान् होकर ऐसा खेद क्यों कर रहे हो, किसी पर खेद करके क्या साध्य है, सुख दुःख तो सुकृत और दुष्कृत के परिणाम हैं जो पूर्वजन्म में जैसा कर आता है वह वैसा भोगता है। बस यदि दुःख के कारण तुम्हारा मन उद्विग्न हुआ है तो सुकृत करो उससे सुख होगा और इस आत्मत्याग पर क्यों उतारू हुए हो इससे तो फिर नरक में दुःखही दुःख है।" इतना कह वह दयालु न जानें कहां चले गये और मैं मरण का उद्यम त्याग यहां चला आया। सो भाइयो! विधि न चाहे तो मरण

भी सुलभ नहीं होता है। सो अब मैं किसी तीर्थस्थान में जाकर अपना तनु तप डालूंगा कि जिससे पुनः निर्धनता का दुःख न भोगूं।"

जेठे भाई का ऐसा कथन सुन तीनों छोटे भाई बोले, "आर्य! आप प्रा होकर क्यों धन के न होने के कारण ऐसे दुःखी हो रहे हैं? क्या आप नहीं ज नते कि अर्थों की गति शरद्काल के अभ्र की सी है? कहीं से कहीं ले जावे भी बड़ी रखवाली से रक्षा करे पर दुष्ट पुरुषों की मैत्री, वेश्या और लक्ष्मी कब स्थि रह सकती हैं, क्या कभी ऐसा कोई व्यक्ति पाया गया है कि जिसके यहां धन स्थिरता पाई गयी? सो मनस्वी को उचित है कि उद्योग कर कोई ऐसा गुण उप र्जन करे जो कि अर्थरूपी हरिण को बलात् बांधकर पकड़ लाया करे।" अप छोटे भाइयों की एतादृश सान्त्वनामय वाणी सुन जेठा भाई धैर्य्य का अवलम्ब कर बोला, "अच्छा, बतलाओ कि कौन सा ऐसा गुण अर्जन किया जावे।" त आपस में परामर्श कर सभों ने यह निश्चय किया कि आओ हमलोग पृथ्वी घूमें और कुछ विज्ञान प्राप्त करें। ऐसा सिद्धान्त कर सभों ने एक स्थान निर्दि किया कि वहीं हम सब भाई मिलें, इतना कह चारों भाई चारों दिशाओं प्रस्थित हुए।

कुछ कालोपरान्त सब उसी निर्दिष्ट स्थान पर आकर मिले और परस्पर छने लगे कि अब बतलाओ किसने क्या २ सीखा? उनमेंसे एक बोला कि मैं तो यह विद्या सिखी है कि कोई भी मृतक प्राणी हो उसकी हड्डियों का ए टुकड़ा भी मिल जावे तो मैं उस प्राणी के अनुसार मांस उसमें उत्पन्न कर सक हूं। उसका ऐसा वचन सुन दूसरा बोला "हां जो इतना हो जावे तो आगे मैं जो विद्या सीखी है उसके प्रभाव से उस प्राणी के शरीर पर चर्म और रोएं बना दे सकता हूं।" तीसरे ने कहा कि यदि इतना काम हो जावे तो मैं प्राणी के अङ्गप्रत्यङ्ग ठीक २ यथास्थान जोड़जाड़ ठीक कर दे सकता हूं यह वि मने सीखी है। तब चौथा बोला; "जब अस्थि मांस और अवयवादि सब ठीक हो जावें तो उस प्राणी के जिला देने की विद्या मुझे आती है सो मैं उसे जि सकता हूं।"

इस प्रकार जब सब अपनी २ विद्या सुना चुके तब यह निश्चय हुआ कि

चलकर इन विद्याओं की परीक्षा की जावे, सो वे जंगल की ओर चले । ज्योंही कि अरण्य में पहुंचे कि भाग्यवश उन्हें सिंह की हड्डी का एक टुकड़ा मिल गया। वे तो और कुछ जानते ही नहीं थे कि क्या होगा बस उसेही लेकर अपनी विद्या की परीक्षा पर उतारू हो गये। एक ने उसके शरीर के अनुसार मांस की योजना कर दी; दूसरे ने तद्वत् चर्म और लोमों का संयोग कर दिया; तीसरे ने उसके सब अङ्गप्रत्यङ्ग ठीक कर दिये और जब वह सिंह सब प्रकार से सम्पन्न हो गया तो चौथे ने उसमें प्राण का सञ्चार कर दिया। अब वह सिंह महाभयङ्कर अपना केसर झाड़कर उठ खड़ा हुआ, और लपककर अपने निर्माणकर्त्ता उन चार ब्राह्मणपुत्रों को भकोसकर भली भांति सन्तुष्ट हुआ और जंगल में चला गया। इस प्रकार वे ब्राह्मण सिंह बनाने के दोष से स्वयं नष्ट हुए । भला दुष्ट जन्तु को उठाकर कौन आत्मा में सुखी रह सकता है?

ठीक है जब विधाता प्रतिकूल हो जाता है तब बड़े यत्न से उपार्जित गुण भी सम्पत्ति के विपरीत विपत्ति ही का उत्पादक होता है । क्योंकि पुरुषार्थरूपी पादप तभी फलता है जब दैव प्रतिकूल होकर उसका मूल विच्छिन्न नहीं करता और जिसके नीतिरूपी थाले में प्रज्ञारूपी जल दिया जाता है।

इस प्रकार महाराज त्रिविक्रमसेन के कन्धे पर अवस्थित वेताल ने उस रात्री में मार्ग के बीच उनसे फिर पूछा कि राजन्! अब कहिये कि इस सिंह के निर्माण में इन चारों में से किसका अपराध अधिक ठहरा कि जिसके करते वह सिंह जी उठा और सभों को भकोस गया । यदि आप उत्तर न देंगे तो वही पहिला शपथ समझ रखिये। वेताल का ऐसा प्रश्न सुन, महाराज त्रिविक्रमसेन अपने मन में विचारने लगे कि यह वेताल मेरा मौन छुड़ा फिर खसका चाहता है, अच्छा क्या चिन्ता मैं फिर इसे वहां से उतार लाऊँगा । इतना हृदय में निश्चय कर महाराज ने वेताल को उत्तर दिया. "योगीश ! उन चारों में से जिसने सिंह को जीव दिया वही बड़ा पापभागी ठहरा, जिन्होंने विना प्राणिविशेष का ज्ञान किये युक्तिबल से मांस चर्म और शरीर का निर्माण कर दिया वे दोषी नहीं ठहर सकते क्योंकि इस विषय में उनकी अज्ञानता थी, परन्तु जिसने सिंह का आकार देखकर भी अपनी विद्या प्रगट करनी चाही और उसमें प्राण का सञ्चार किया बस उसीने ब्रह्महत्या किया।

उपजाति।

या भांति राजा कर उक्ति सुनके, स्वधाम वेताल तबै पधारयो।
कन्धे से उनके पुनरेव, मायी, राजा भी उसके पुनि पीठ लाग्यो॥

तीसवां तरङ्ग।

(तेईसवां वेताल)

अब राजसत्तम महाराज त्रिविक्रमसेन पुनः उस शिंशपा पादप के नीचे पहुंचे और वेताल को उसपर से उतार कन्धे पर रख उसी प्रकार चुपचाप वहां से चले। वह चले जा रहे थे कि वेताल उनसे आलाप कर इस प्रकार कहने लगा, "राजन्! यह आप क्या कार्य्य कर रहे हैं, कैसे अकार्य में आप आग्रह कर बैठे हैं, अस्तु जब आप अपना हठ छोड़तेही नहीं हैं तो सुनिये मैं आपको एक कथा सुनाता हूं जिससे आपका श्रमापनोदन हो—"

कलिङ्ग देश में शोभा नाम्नो एक नगरी थी, जैसी स्वर्ग में इन्द्रपुरी वैसी ही मर्त्यलोक में वह सुकृतियों की वसति थी। उस नगरी में अत्यन्त प्रतापशाली और कीर्त्तिमान् राजा प्रद्युम्न शासन करते थे जो कि एक दूसरे ही प्रद्युम्न समझे जाते थे। गुणों का अपकर्ष धनुषों पर था; करों का प्रहार यदि था तो मृदङ्गों पर था; कलि यदि कहीं था तो लोग यही जानते थे कि हां एक युग का नाम है; तीक्ष्णता यदि थी तो प्रज्ञा में। यह तो दशा उस नगरी की थी मानों सत्ययुग विराजमान था।

नगर के एक भाग में यज्ञस्थल नामक एक स्थान था जो राजा ने ब्राह्मणों को दान कर दिया था, जहां ब्राह्मण ही रहते थे। वहां यज्ञसोम नामक एक वेदपारङ्गत बड़ा धनी ब्राह्मण रहता था जो अग्निहोत्र में निष्णात और देवता और अतिथियों का पूजक था। उसकी भार्य्या तदनुरूप थी। ब्राह्मण के कोई सन्तान न था; विप्र बड़े मनोरथ करता पर एक भी सफल न हुआ; इसी प्रकार उसकी युवावस्था बीत गयी। बहुत करते धरते उसी ढलती जवानी में उसके एक

पुत्र हुआ जिसका नाम उसने देवसोम रक्खा, और वह कुमार दिन दिन बढ़ने लगा। ब्राह्मणों ने उसके सब संस्कार विधिवत् कराये । जब कि वह सोलह वर्ष का हुआ तो सब विद्याओं में पारङ्गत और बड़ा नम्र हुआ । तब तो लोगों का प्रेम उसपर पूर्वापेक्षा और भी बढ़ने लगा । उसी आनन्दमयकाल में बड़ा अनर्थ हुआ कि देवसोम अकस्मात् ज्वरार्त हो परलोक चल बसा । चहुंओर अन्धकार छाय गया। पिता सोमदत्त अपनी भार्या के साथ पुत्र के मृत कलेवर पर गिरकर बिलख २ रोने और विलाप करने लगा; उसने उसे अपने हृदय से लगाकर ऐसी दृढ़ता से पकड़ रक्खा कि बहुत काल लों न छोड़ा। भला एक मात्र सहारा जिसका टूट गया वह कैसे धीरज धरे और उसे छोड़े !

अब महल्ले के वृद्ध गण उसके घर में बटुर आये और इस प्रकार कह कह उसे समझाने लगे, "ब्रह्मन् ! यह संसार एक गन्धर्वनगर तुल्य है, तुम तो परावरज्ञ(१) हो इसकी गति क्या तुम नहीं जानते हो, इसकी गति तो पानी के बबूले की सी क्षणभङ्गुर है। देखो उन राजा महाराजों की गति तो विचार करो कि जिनकी सेनाओं से पृथ्वी भरी हुई है; उन्नत प्रासादों पर जो विहार करते, जहां नाना प्रकार के संगीतों के नाद हर समय होते रहते हैं, जिनके पर्यङ्क रत्ननिर्मित जिन पर वे शयन करते। उत्तम २ वर ललनायें सदा जिन्हें घेरे रहतीं जिनके कि अङ्गों में चन्दन तथा अन्यान्य सुगन्ध द्रव्य लगे रहते; जो राजा इस भूलोक में ऐसे ऐसे विलासों में लवलीन होकर अपने को अमर मान बैठे हैं; वे भी जब इस लोक से सिधारे तब अकेले हो गये हां बहुत हुआ तो परिजन लोग रोते रोते श्मशानपर्यन्त गये पर वहां से आगे जाने को कौन समर्थ है। उनके ऐसे ऐसे कोमल शरीर भी चिता पर रक्खे जाते और क्रव्याद अग्नि उन्हें देखते २ भस्म कर डालती है। उनके चहुंओर वहां पर सियारिनें फेंकरती हैं । सो जब वे कालकवलित हुए तो कोई भी ऐसा न था कि उन्हें रोक लेता तो दूसरों की क्या चलायी जावे। सो हे विद्वन्! तुम इस प्रेत को आलिङ्गन कर जो बैठे हो तो कहो इसे करोगे क्या ?" इस प्रकार उन वृद्धों ने ज्ञानोपदेश कर उस द्विजवर को समझाया।

अस्तु किसी प्रकार से उस ब्राह्मण का मोहान्धकार दूर हुआ, और उसने

(१) भूत और भविष्य के ज्ञाता ।

शव परित्याग किया, सब लोग उस लड़के का शव रथी पर रख ले चले और और बन्धु बान्धव जो रहे सो उसके पीछे २ रोते हुए चले। महा कोलाहल करते हुए लोग मसान पर पहुंच गये।

अब वहां मसान में एक योगी वृद्ध एक कुटिया में रहता था जो भगवान् पशुपति की आराधना में लीन रहता। वह बड़ा तपस्वी था और तपस्या करते २ उसको वृद्धावस्था आगयी। तपस्या और बुढ़ौती से उसका शरीर नितान्त क्षीण हो गया था, मांस लोहू सूख गये थे हड्डी मात्र शेष रह गयी थी। अङ्गप्रत्यङ्ग की नस २ दिखाई पड़ती थी, उन नसों से वे हड्डियां बँधी थीं कि ऐसा न हो कि खुल जावें। नाम उसका वामशिव था, समस्त शरीर में भस्म रमाये, शिरपर जटा धारण किये जिसका प्रकाश विद्युत् सा और शरीर के समस्त रोम पिशङ्ग वर्ण थे। वह तपस्वी क्या था मानों अपर शिव भगवान थे। उसके एक शिष्य था जिसे उसने किसी कारण से डांटा था सो वह मुंह फुलाये बैठा था, और वह चेला मूर्ख और शठ था और ध्यान और योग से कुछ अवलिप्त अतः अहङ्कारी भी हो गया था। उस चेले की यह वृत्ति थी कि भिक्षा मांगकर खाता था। वह उस समय अपने गुरु के समक्ष बैठा था। बाहर जो दूरही से जन कोलाहल सुन पड़ा तो उस तपस्वी ने उस चेले से कहा कि बाहर जाकर देखो तो सही कि यह श्मशान में कोलाहल क्या हो रहा है यह एक अश्रुतपूर्व कोलाहल है। देख पता लगाकर अति शीघ्र आकर मुझसे कह। गुरु का ऐसा कथन सुन उस शिष्य ने उत्तर दिया "मैं तो नहीं जाऊंगा, तुम स्वयं जाकर देखो; मेरी भिक्षा की वेला अब चली जा रही है।" उस धृष्ट की ऐसी उक्ति सुन वह तपस्वी बोला, "क्यों रे मूर्ख पेटू! अभी तो आधा पहर ही दिन चढ़ा है यह तेरी भिक्षा का कैसा समय है।" इतना सुनतेही वह शिष्य क्रुद्ध होकर बोला "धिक्! जराजीर्ण! मैं तुम्हारा शिष्य नहीं और न तुम मेरे गुरु; मैं अन्यत्र जा रहूंगा लो यह अपना पात्र," इतना कह उस तपस्वी के समक्ष दण्ड कमण्डलु धर वह चेला उठकर चला गया।

अब हँसता हुआ वह योगी अपनी कुटिया से निकला और वहां पहुंचा जहां वह द्विजबालक जलाने के हेतु लाया गया था; क्या देखता है कि सब लोग उस ब्राह्मण युवा के हेतु विलाप कर रहे हैं। योगी तो जरा से व्याकुल हो ही गया

था, उसके मनमें आया कि इसकी देह में प्रविष्ट हो जाऊं । इतना विचार कर वह योगी तत्क्षण वहां से एकान्त स्थान में चला गया और पहिले तो पुक्का फारके रोया और तब समस्त अङ्गों का परिचालन कर नाचने लगा । तत्पश्चात् अपने योगबल से तत्क्षण, यौवन की इच्छा से वह योगी, शरीर त्याग उस ब्राह्मणपुत्र के कलेवर में जा घुसा । उधर तो चिता रची गयी थी इधर से उसमें जीव आ गया और वह ब्राह्मणतनय जम्हाई लेकर तत्क्षण उठ बैठा । यह देखते ही उसके सब बन्धु बान्धव बोल उठे, "अरे जीता है, जीता है ।"

तपस्वी उस ब्राह्मण युवा के शरीर में तो पैठा पर यह नहीं चाहता था कि तपस्या त्यागकर संसारी वासना में लिप्त होऊँ सो वह उन लोगों से इस प्रकार कहने लगा, "आज जब मैं लोकान्तर में गया तो साक्षात् शङ्कर भगवान् ने दर्शन देकर मुझसे कहा कि पुत्र तुम पाशुपत व्रत ग्रहण करना, इतना कह उन्होंने मुझे जीवन दिया । सो अब मैं जाकर एकान्त में वही व्रत धारण करता हूं क्योंकि यदि ऐसा न करूँ तो जीवित नहीं रह सकता; सो अब मैं जाता हूं।" इस प्रकार दृढ़निश्चय तापसाविष्ट उस व्रती ब्राह्मणकुमार ने उन सभों को समझा बुझाकर घर लौटा दिया, वे लोग सम हर्ष शोक से अपने २ घर लौट गये । अब वह योगी वहां से उठा, युवा तो होही गया था, और व्रत भी धारण कर चुका था; बस अपना वह पूर्व कलेवर एक गढ़े में फेंक कहीं अन्यत्र चला गया ।

अब उस रात्री में मार्ग के बीच महाराज त्रिविक्रमसेन को इतनी कथा सुनाय वेताल ने पूछा, "महाराज ! मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि वह तापस जब दूसरे के शरीर में बसने चला तो पहिले क्यों हँसा और पीछे क्यों रोया ?" राजा बुद्धिमान् तो थे ही समझ गये कि यदि उत्तर नहीं देता तो शाप साथे पड़ता है, सो वह मौन त्याग बोले, 'योगीन्द्र ! सुनो मैं तुमको उस तपस्वी का अभिप्राय बतलाता हूं, "यह मेरा शरीर साथही साथ बढ़ा, इसी के द्वारा मैंने इतनी सिद्धि प्राप्त कियो, माता पिता ने बाल्यावस्था में कैसा इसका पालन किया; सो उसका आज मैं त्याग करता हूं," ऐही सब बातें समझ वह वृद्ध तापस रोया। देह का स्नेह बड़ा दुस्त्यज होता है । "अहा अब नवीन देह में प्रवेश करूंगा, इससे अधिक और साधन करूँगा," इस विचार से तो हर्ष के मारे नाचने लगा । भला युवावस्था किसे इष्ट नहीं है ।

शार्दूलविक्रीड़ितम्।

या भाँती नृपको वचन श्रवण कर कन्धे से उनके पुन: ।
गवन्यो सो मृतपूरुषान्तरगत वेताल वा वृच्छ पै ॥
राजा भी तिहि लीन हेत हितसों ताके लगे पीछहीं।
धीरों की गिरिसी अचल रहतु है कल्पान्त लों धीरता॥

इकतीसवां तरङ्ग।

(चौबीसवां वेताल)

रात ऐसी घोर थी और अन्धकार से उसकी भयङ्करता और भी बढ़ गयी थी, प्रकाश जो था सो यही कि चिता जलती थी उसी की लवर से कुछ दीख पड़ता था; श्मशान ऐसा भीषण कि भय भी भयभीत हो जाय। ऐसे भयङ्कर समय में अति घोर रजनीरूपी राचसी की कुछ चिन्ता न कर वीरवर राजा त्रिविक्रमसेन उसी शिंशपा वृच्च के नीचे पहुंचे और उसी प्रकार उसपर से वेताल को उतारकर कन्धे के ऊपर रख ले चले। तब वह वेताल पुन: उन नरदेव से कहने लगा,— "हे राजन्! इस प्रकार जाते आते मैं तो व्यग्र हो गया परन्तु आप किञ्चित् न उद्विग्न हुए; अच्छा अब मैं आप से एक बड़ा भारी प्रश्न पूछता हूं, सुनिये—"

दच्चिण देश में कोई एक राजा धर्म्म नामक मण्डलेश्वर थे, जो साधुओं के धुरीण और बहुकुटुम्बी थे। उनकी भार्या मलयदेशोद्भवा चन्द्रवती नाम्नी थीं जो कि सत्कुलोत्पन्ना और श्रेष्ठ स्त्रियों की मौलिमालिका थीं। राजा को महिषी से एकही कन्या जन्मी जिसका नाम महीपति ने लावण्यवती रक्खा जो यथार्थ में लावण्यवती थी ही। जिस समय कि राजसुता विवाह के योग्य हुई तब राजा के दायादों ने, जिन्हें कि उन्होंने पूर्व में उन्मूलित किया था, उनपर आक्रमण किया और उन्हें जड़ से उखाड़ फेंका तथा उनका राज्य आपस में बांट लिया। महीपति से जो कुछ रत्न लेते बने लेकर अपनी भार्य्या तथा दुहिता के संग रातों रात राज्य से निकल भागे और चुपके से मालव की ओर चले क्योंकि उनके ससु-

वहां के भूप थे । राजा अपनी महिषी तथा दुहिता के साथ ऐसी शीघ्रता से चले जाते थे कि उसी रात में विन्ध्याटवी में पहुंच गये; जब कि वे वहां पहुंचे कि इतने में ओसरूपी अश्रुधारा बहाय वह रात्री, जो कि उन्हें इतनी दूर निकाल लाई थी, बीत गयी । अब कर (१) फैलाकर भगवान् सहस्रांशु (२) पूर्वाद्रि के शिखर पर आ विराजे मानों महीश को बर्जते हैं कि आगे मत जाओ आगे चोरों की बसति है ।

सब के सुकुमार पांव, मार्ग में पैदल चलना, जहां कुश और कण्टकों का कुछ ठिकाना ही न था, सो सभों के पांव क्षत विक्षत हो गये; परन्तु करें क्या विना चले बनने का नहीं सो चलेही जाते थे । आगे भिल्लों का गांव पड़ा, जिन भिल्लों का यही काम था कि दूसरों के प्राण और सर्वस्व अपहरण कर लेवें, धर्म्म क्या तत्व है ऐसा तो जानतेही नहीं, इन्हीं दुष्टात्माओं से परिपूर्ण वह गांव यमपुर सा भयङ्कर प्रतीत होता था ।

दूरही से उन दुष्टों की दृष्टि राजा पर पड़ी, वस्त्राभरण से सुसज्जित राजकीय भेष देखते ही सब अति प्रमुदित हुए कि आज तो अच्छा माल हाथ आया, ऐसा विचार वे सब नाना प्रकार के आयुध लेकर लूटने को दौड़े । उनको देखकर राजा धर्म्म ने अपनी भार्य्या और पुत्री से कहा कि ये दुष्ट पहिले तुम्हीं दोनों पर पड़ेंगे सो ऐसा करो कि गहन वन में जा छिपो । महीपति का ऐसा कथन सुन रानी चन्द्रवती भय के मारे अपनी दुहिता लावण्यवती के साथ वन के मध्य जा छिपीं । राजा भी अपनी ढाल और तलवार खींच उन शबरों के साम्हने डँट गये और लगा युद्ध होने; वे भिल्ल राजा पर बाणों की वर्षा करने लगे और राजा भी धड़ाधड़ उन्हें काट २ पृथ्वी पर पाटने लगे । अब पल्लीपति ने पल्ली में यह सूचना दी और वहां से सबके सब भूपति पर टूट पड़े, महीपति तो अकेले ही थे कबलों उनके समक्ष टिक सकते थे, ढाल तलवार टूट गयी अन्त में उन दुष्टों के हाथ मारे गये । इसपर सब शबर महीपति के समस्त वस्त्राभरण उतार आनन्दपूर्वक अपनी पल्ली में चले गये ।

(१) किरण, हाथ ।　　(२) सूर्य्य ।

रानी अपने प्राणनाथ की यह दुर्गति वन के मध्य लतागुल्मों के बीच छिपी देख रही थीं; जब देखा कि राजा को मारकर वे शबर वस्त्राभरण लेकर चले गये तब वह अत्यन्त विह्वल हो अपनी दुहिता के साथ भागकर और दूर गहन वन में भाग गयीं। वहां वृक्ष ऐसे घने थे कि मानों सूर्य्यनारायण की मध्याह्न की किरणों से सन्तप्त हो छायायें हो पथिकों के समान वृक्षों की शीतल जड़ों की शरण में आ पड़ी हों। एक ओर एक सरोवर था जिसमें कमल लहरा रहे थे, रानी अपनी पुत्री के साथ उसी के किनारे एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर सुस्ताने लगीं क्योंकि कभी की चली तो थीही नहीं अब इतनी दूर भागना पड़ा फिर पति के मारे जाने से चित्त अति व्याकुल हो गया था; अस्तु उसी अशोक के नीचे बैठकर रोने लगीं।

इतने में उस वन के समीपही के निवासी एक महामनुष्य घोड़े पर चढ़े अपने पुत्र के साथ मृगया करने के हेतु उधरही आ पहुँचे। उनका नाम चण्ड-सिंह था और पुत्र का सिंहपराक्रम। सो धूलि में उन दोनों स्त्रियों के पद चिह्न देखकर चण्डसिंह ने पुत्र सिंहपराक्रम से कहा, "देखो पुत्र ये चिन्ह सुलक्षणाओं के हैं, देखो न इन पदों में जो रेखायें हैं वेही बतलाती हैं कि वे कोई सुलक्षणा ऊँचे कुल की हैं सो आओ हम इन्हीं पद चिन्हों के अनुसार चलकर उनका पता लगावें और जो मिल जावें तो उनमें से जिसे तुम चाहो उससे विवाह कर लो।" पिता का ऐसा वचन सुन पुत्र सिंहपराक्रम बोला, "मैं तो उसी को अपनी भार्या बनाऊंगा जिसके ये छोटे २ पांव हैं; और ऐसा भी जान पड़ता है कि वह अल्प वयस्का है, यह मेरे योग्य पत्नी होगी। और जिसके ये बड़े २ पद हैं वह बड़ी अवस्था की जान पड़ती है सो आपके योग्य है।" पुत्र का ऐसा कथन सुन चण्ड-सिंह ने उत्तर दिया, "पुत्र! यह तुम क्या कहते हो, भला अभी तुम्हारी माता स्वर्गगामिनी हुई है, तो जब ऐसी साध्वी भार्य्या जाती रही तो अब दूसरी लेकर क्या करूंगा।" पिता की ऐसी उक्ति सुन पुत्र ने चण्डसिंह से कहा, "पितः ऐसा मत कहिये, भार्य्या विना गृहस्थ का घर सूना है; क्या आपने मूलदेव की यह उक्ति नहीं सुनी है?

दोहा ।

घनथनजघनवती जहाँ, भार्य्या जोहति नाहिँ ।
मारग, निगड़विहीन गृह दुर्ग विज्ञ को जाहिँ ॥ (१)

सो पिता जी ! आपको मेरा शपथ है जो आप मेरी अभीष्ट से दूसरी को भार्य्या के निमित्त न ग्रहण करें ।"

पुत्र को ऐसी उक्ति सुन चण्डसिंह उसके कथनानुसार करने पर सम्मत हुए और पुत्र सहित उनकी पदपङ्क्तियां देखते २ धीरे २ चले । चलते २ उस स्थान पर पहुंचे जहां सरोवर के किनारे वृक्ष के नीचे रानी चन्द्रवती अपनी पुत्री के साथ बैठी विश्राम कर रही थीं । उस वृक्ष के नीचे अधिश्रिता श्यामाङ्गी रानी चन्द्रवती जिसके गले में तारागण से भासमान मोतियों की माला लटक रही है उस ज्योत्स्नास्वरूपा कन्या लावण्यवती के साथ कैसी शोभित थीं मानों मध्यान्ह में नैशी (२) दिव (३) । रानी और राजपुत्री को देख चण्डसिंह और उसके पुत्र सिंहपराक्रम अति विस्मित हुए और उनके समीपगये । रानी उन्हें देख घबड़ाकर उठ खड़ी हुई कि अरे चोर तो आ गये । "माता ! डरती क्यों हो, ये चोर नहीं हैं; देखो न इनकी आकृति कैसी सौम्य है, इनके वेष से ज्ञात होता है कि ये कोई उच्चकुल के हैं और यहां अहेर खेलने आये हैं ।" इस प्रकार लावण्यवती की बात सुन रानी चन्द्रवती का मन हिंडोले के समान चञ्चल बना ही रहा कि इतने में चण्डसिंह घोड़े पर से उतर उनके निकट जाकर कहने लगे, "आप दोनों क्यों असमञ्जस में पड़ी हैं, हम दोनों प्रणय से आप दोनों को देखने आये हैं; डरें न और बतलावें कि आप कौन हैं ? आप दोनों रति और प्रीति हैं क्या कि हर के कोपानल से दग्ध हुए मन्मथ के दुःख से दुःखित हो इस अरण्य में आयी हैं ? भला इस मानुषहीन जंगल में आपका क्या काम था, आप दोनों के

(१) जिस घर में उन्नतपीनपयोधरों तथा स्थूल जांघों को धारणकरनेवाली भार्य्या अपने पति के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा नहीं करती रहती है वह गृह कारागार के समान है भेद इतना ही है कि वहां बेड़ियां और हथकड़ियां नहीं हैं । भला कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा जो ऐसे घर में जावेगा (रहेगा) ।

(२) रात्रीसम्बन्धी । (३) आकाश ।

ऐसे सुकुमार शरीर तो रत्नप्रासादों पर रहने के योग्य हैं। हमारे मनमें इस बात से बड़ी व्यथा होती है कि ये आपके चरण, जो कि अति सुकुमारी श्रेष्ठ अङ्गनाओं की गोदी में रहने योग्य हैं, इस कँटैली भूमि पर कैसे चले। हा! यह कैसा आश्चर्य है कि वायु से उड़कर जो यह धूलि आप दोनों के चन्द्रवदनों पर पड़ती है इससे शोक के मारे हम दोनों के मुख मलीन हो जा रहे हैं। आपके फूल से अंगों पर जो चण्डदीधिति (१) की किरणें पड़ रही हैं सो मानों हमें जलाये डालती हैं। सो अब आप अपना वृत्तान्त कह सुनाइये क्योंकि श्वापदों (२) से आहत इस अरण्य में आपकी स्थिति हमसे देखी नहीं जाती।"

चण्डसिंह का ऐसा कथन सुन रानी लम्बी सांस लेकर लज्जा और शोक से व्याकुल हो गयीं और साद्यन्त अपना सारा वृत्तान्त सुना गयीं। अब चण्डसिंह ने समझ लिया कि ये अनाथ हैं, और तब उन्होंने रानी को मधुर वचनों से बहुत कुछ ढाढ़स दिलाके प्रसन्न किया और उन्हें स्वीकार किया। इसके उपरान्त वह एक घोड़े पर रानी को और दूसरे पर राजकुमारी को चढ़ाकर पुत्र सहित धनदपुरी (३) की जोड़ी अपनी नगरी में आये। रानी ने भी समझा कि मानों पुनर्जन्म हुआ है इससे चण्डसिंह की सम्मति अगत्या उन्हें माननी पड़ी। भला अनाथ कष्ट में पड़ी और फिर विदेश में पहुंची कि जहां अपना कोई नहीं तो ऐसी स्त्री और क्या करे।

रानी के पांव छोटे थे, अतः रानी चन्द्रवती को चण्डसिंह के पुत्र सिंहपराक्रम ने ग्रहण कर उनसे विवाह किया और राजकुमारी लावण्यवती के पांव बड़े थे सो उनसे चण्डसिंह ने विवाह कर लिया। पिता पुत्र में तो छोटे और बड़े पद-चिन्ह देखकर पहिले ही ठन चुकी थी कि छोटे पांववाली को पुत्र और बड़े चरण वाली को पिता ग्रहण करे तो अब सत्य कौन छोड़े। इस प्रकार चरणोंके विपर्य्यय से वे दोनों दुहिता और माता पिता पुत्र को व्याही गयीं और सास पतोहू हुईं। कुछ कालोपरान्त उन दोनों पतियों से उन दोनों के पुत्रियां और पुत्र हुए और समय पाकर उनके भी सन्तान हुए। इस प्रकार चण्डसिंह और सिंहपराक्रम लावण्यवती और चन्द्रवती को पाकर आनन्दपूर्वक रहने लगे।

(१) सूर्य्य। (२) हिंस्र जीव। (३) कुबेर की अलकापुरी।

इस प्रकार उस रात्री में, उस मार्ग के मध्य महाराज त्रिविक्रमसेन को यह अद्भुत कथा सुनाय बेताल ने उनसे फिर पूछा, "महाराज! पुत्र और पिता से माता और कन्या में जो सन्तान हुए और फिर दोनों पक्षों से और भी बढ़े तो बतलाइये उन सभों का परस्पर क्या नाता ठहरा? जानकर यदि आप न बतलावेंगे तो समझ रखिये वही पूर्वोक्त शाप आप पर पड़ेगा।" वेताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा लगी नाता जोड़ने पर कुछ बैठे हो नहीं तब तो वह चुपही रहे और बराबर चले जाते थे।

तब मृत मनुष्य के कलेवर में अधिष्ठित वेताल, जो कि इस समय महाराज त्रिविक्रमसेन के कन्धे पर विराजमान था हँसकर अपने मनमें विचारने लगा, "अहा! यह कैसा पेचीला प्रश्न है कि जिसका उत्तर महाराज से नहीं बन पड़ता है इसीसे चुपचाप प्रसन्नमन पांव बढ़ाये चले जा रहे हैं। यह बड़े सत्त्ववान् हैं अब इनसे मैं धूर्त्तता भी नहीं कर सकता कि छलकर बच निकलूं। फिर वह भिक्षु भी हमलोगों के साथ बराबर खेलवाड़ करता ही रहता है वह इतने से क्योंकर चुप हो बैठेगा। सो अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि इतने दिनों में उस दुष्ट ने जो कुछ सिद्धि प्राप्त कियी है, सो छलकर राजा को दिला देनी चाहिये क्योंकि अभी दिनों दिन इनका कल्याण होना है।" इस प्रकार विचार कर वह वेताल बोला, "राजन्! यह श्मशान कैसा घोर है, रजनी कैसी भयङ्करी है सो इसमें जाते आते आपका यह सुखार्ह (१) शरीर अति क्लिष्ट हो गया होगा तौभी मैं देखता हूं कि आप किञ्चिन्मात्र नहीं विचलित हुए हैं यह बड़ा आश्चर्य है! आपके इस अद्भुत धैर्य्य से मैं अति प्रसन्न हूं। अब आप यह शव ले जाइये मैं इसमें से निकल जाता हूं; पर आपके हित की एक बात कहता हूं सो ध्यान देकर सुनिये और उसीके अनुसार कार्य्य करियेगा। जिसके लिये आप यह शव ले जा रहे हैं सो वह कुभिक्षु मुझे इसमें आह्वान कर आज पूजेगा और आपही को उपहार बनावेगा अत: आपसे कहेगा, "पृथ्वी पर गिरके साष्टाङ्ग प्रणाम करो।" तो महाराज! आप उससे कहियेगा "पहिले धरती पर पड़कर तुम दिखा दो कि कैसे प्रणाम किया जाता है।" सो जब वह पृथ्वी पर गिरके दण्डवत् कर दिखाने

(१) सुखके योग्य।

लगी तब तत्क्षण आप खड्ग से उसका शिर काट दीजियेगा; इससे होगा क्या कि विद्याधरों की जो ऐश्वर्य्यसिद्धि वह चाहता है सो आप पा जावेंगे सो उसके उपहार कर देने से आप ऐसी सिद्धि पावेंगे बस निष्कण्टक इस वसुधा का भोग कीजिये। यदि आप ऐसा न करेंगे तो वह भिक्षु आपही को उपहार चढ़ा डालेगा; महाराज! बस इसी कारण मैं इतना विघ्न करता आया। अच्छा अब आप जाइये आपका कल्याण हो।" इतना कह वह वेताल राजा के कन्धे पर से उस प्रेत शरीर से निकलकर चला गया।

छन्द।

अब नृपति प्रीत वेताल को अस वचन सुनि मन ठानेउ।
वह क्षान्तिशील श्रमण अहै सचमुच अहित बह जानेउ॥
वटरूखतर समसान में साधक जहँा तहँ चलि गयो।
अति मुदित मन लै आइके मृतपुरुषवपु तेहिदै दयो॥१॥

बत्तीसवां तरङ्ग।

(पच्चीसवां वेताल)

अब महाराज त्रिविक्रमसेन कन्धे पर वह मृतक शरीर लादे उस क्षान्तिशील भिक्षुक के समीप पहुँचे, वहां क्या देखते हैं कि कृष्णपक्ष की रात्री से भी अति भयङ्कर उस श्मशान में वटवृक्ष के नीचे अकेला बैठा हुआ वह बाट जोह रहा है। लहू का चौका लगा है, हड्डी के चूर्ण का मण्डल बना है और चारों दिशाओं में रक्तपूर्ण कुम्भ धरे हैं। महातैल का (१) दीपक जल रहा है और सम्मुख अग्निदेव प्रज्वलित हैं; सब सम्भार (२) प्रस्तुत कर वह श्रमण अपने इष्टदेव की पूजा में तत्पर है।

इतने में शव लिये राजा उसके समक्ष आ खड़े हुए सो वह उन्हें देखते ही हर्ष से उठ खड़ा हुआ और उनकी स्तुति कर कहने लगा, "राजन्! जो अनुग्रह

---

(१) मनुष्य की चर्बी। (२) तयारी।

आपने मुझपर किया है यह साधारण नहीं है महादुष्कर है और किसी से न बन पड़ता; भला कहां आप और कहां यह कार्य्य और कहां ऐसा समय तथा स्थान ! जो लोग कहते हैं कि पृथ्वीभर के राजाओं में आपही एक मुख्य हैं, यह बात नितान्त सत्य है आप ऐसे प्रधान हैं ही; क्योंकि देखा न मैंने कि आप अपनी ओर न देखकर इस प्रकार पराये के हित के कार्य्य में निष्कम्पभाव से प्रवृत्त हैं। बुध लोगों के द्वारा महान् लोगों का यही महत्व कहा जाता है कि जो कहा फिर उससे टलना नहीं चाहे प्राण क्यों न चले जांय।" मन में तो वह समझता था कि अब क्या अब तो मार लिया है पर मुंह से इस प्रकार सान्त्वनामय वचनों से राजा की प्रशंसा करता रहा । अस्तु अब उसने राजा के कन्धे से वह शव उतारा।

इसके उपरान्त शव को स्नान कराया और उसको माला पहिनायी और मण्डल के मध्य में उसे रक्खा । अब भस्म रमाये और केश का यज्ञोपवीत धारण किये तथा कफन पहिने हुए वह योगी कुछ काल ध्यानस्थित हुआ; जब ध्यान टूटा तब उसने मन्त्रबल से उस शव में उस वेतालवर का आह्वान किया और क्रमानुसार उसकी पूजा कियी। मनुष्य की खोपड़ी में नरदन्तरूपी फूल (१) और सुगन्धित विलेपन छोड़ अर्घ्य दिया, मानुषनेत्र का धूप जलाया और मांस का नैवेद्य लगाया । इस प्रकार विधिवत् पूजा कर उसने पार्श्वस्थित राजा से कहा, "राजन्! यह मन्त्राधिराज हैं इसमें आकर विद्यमान हुए हैं अब धरती पर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करें जिससे यह प्रसन्न होकर जो वर मांगो आपको वही वरदान देवें। इतना सुनतेही राजा त्रिविक्रमसेन को वेताल का वचन स्मरण आ गया। सो वह बोले, "भगवन्! जिस विधान से आप प्रणाम करने कहते हैं वैसा तो मुझको आता नहीं है सो आप पहिले करके दिखा देवें तो मैं भी दण्डवत् करूँ।" तब ज्योंही वह भिक्षु प्रणामविधान दिखाने के लिये धरती पर पड़ा कि राजा ने तुरत खड्गप्रहार से उसका शिर काट डाला और उसका पेट फाड़ हृत्पद्म निकाल उसके शिर के सहित वेताल को अर्पण कर दिया।

अब जितने भूतगण वहां पर थे सब जयजयकार मचाने लगे "जय जय हो

---

(१) यहां "मनुष्य का रक्त," ऐसा भी पाठान्तर है।

महाराज त्रिविक्रमसेन की जय हो” इस ध्वनि से वहां का गगनमण्डल गूंज उठा। तब अति सन्तुष्ट वह वेताल उस नृकलेवर से बोला “राजन्! यह भिक्षु जो विद्याधरेन्द्रत्व साध रहा था तो आपका हुआ, जब आप भूमि का साम्राज्य भोग लेंगे तब यह पद आपको प्राप्त होगा। मैंने आपको बड़ा क्लेश दिया अब इसके पलटे आपको कुछ वरदान दिया चाहता हूं सो जो आपको अभीष्ट हो मुझसे वर मांग लीजिये।” वेताल का इतना वचन सुन महीपति त्रिविक्रमसेन बोले, “योगीन्द्र! जब आपही मुझपर अति प्रसन्न हैं तो अब मुझे क्या घटी है, कौन ऐसा वर है जो मेरे लिये सिद्ध न हो! तथापि जिससे कि आपका वचन व्यर्थ न जाय मैं आपसे यह वरदान मांगता हूं कि ये जो पहिले चौबीस अति मनोरम प्रश्नकथायें आप सुना गये हैं उनकी समापिनी यह पचीसवीं कथा होय और ये सब पचीसों कथायें भूतल पर ख्यात हो जावें, और सब लोग इसकी पूजा करें और परस्पर कहें सुनें। राजा की ऐसी अभ्यर्थना सुन वेताल ने कहा, “एवमस्तु (१), राजन्! और विशेष यह आपको सुनाता हूं सुनिये; जो पहिले चौबीस हो चुकी हैं और यह जो समापिका पचीसवीं है मिलके एक कथावली होगी जिसका नाम “वेतालपञ्चविंशतिका” (२) होगा; जगत् में यह इसी नाम से प्रख्यात होगी और लोग इसकी पूजा कर कल्याण के भागी होंगे। जो कोई इस वेतालपचीसी में से एक श्लोक (३) भी बड़े आदर से कहेगा अथवा जो कोई सुनेगा तो वे दोनों सद्यः मुक्तपाप (४) हो जावेंगे। जहां इसकी कथा सुनाई जावेगी वहां यक्ष वेताल, कूष्माण्ड, डाकिनी, राक्षस आदि कुछ बाधा न कर सकेंगे,” महाराज त्रिविक्रमसेन से इतना कह वह वेताल उस नृकलेवर से निकला और योगमाया से यथेष्ट धाम को चला गया।

अब महाराज के ऐसे साहसमय कर्म्म से अति सन्तुष्ट हो भगवान् शङ्कर देवताओं के साथ वहां प्रत्यक्ष हुए, उन्हें देखते ही महीपति उनके चरणों पर गिर पड़े। आशुतोष उमापति ने उनसे कहा, “वत्स त्रिविक्रम! धन्य हो! तुम्हारा कल्याण हो; यह कूट-तापस हठकर विद्याधरों का चक्रवर्त्ती पद साधने चाहता

(१) ऐसाही होवे अर्थात् जो आप मांगते हैं वह मैंने दिया। (२) वेतालपचीसी। (३) यहां पद से अभिप्राय है। (४) पापरहित।

था इसका तुमने वध किया सो अच्छा किया। पूर्वकाल में जब कि असुर म्लेच्छ-रूप हो अवतरे थे उस समय उनके शमनार्थ मैंने तुमको अपने अंश से विक्रमसेन सृजा था अब इस समय उद्दण्ड दुर्वृत्तों के दमन के अर्थ त्रिविक्रमसेन वीर भूपति बनाया है। अब तुम सप्तद्वीपवती वसुन्धरा तथा पाताल अपने वश में करके अति-शीघ्र विद्याधरों के अधिराज होओगे । वहां आनन्दपूर्वक बहुकालपर्यन्त दिव्य भोगों का उपभोग करके अन्त में अवश्य मुझमें सायुज्य प्राप्त करोगे । लेओ मैं तुम्हें यह अपराजित नाम खड्ग देता हूं जिसके प्रसाद से तुम यह सब प्राप्त करोगे"। इतना कह वह खड्गरत्न देकर राजा के वचनरूपी पुष्पों से अभ्यर्चित हो भगवान् शङ्कर वहां से अन्तर्धान हो गये।

दोहा।

जब सब काज समाप्त ह्वै, गये, भयो परभात ।
स्वपुर त्रिविक्रमसेन तब, गवन्यो नृप अवदात (१) ॥

वसन्ततिलकम्।

वा रात की सकल बात अकर्णि (२) आयो ।
उत्सव मनाइ प्रकृतीगण (३) शीश नायो ॥
राजा नहाइ करि दान गिरीश अर्च्यो ।
नृत्यादि उत्सव सहित वह द्यौस बीत्यो ॥

शार्दूलविक्रीड़ितम्।

थोड़ेही दिन में महीश शिव के वा खड्ग के वीर्य्य से ।
सप्तद्वीपवती रसातलसहित भोग्यो अकण्टक मही ॥
पश्चात् पाइ हराज्ञया (४) सुमहती विद्याधराधीशता ।
भोग्यो सो बहुकाल अन्त भगवत्सायुज्य पायो कृती ॥

(इति वेतालपञ्चविंशतिका)

(१) श्रेष्ठ। (२) अकनि = सुनकर। (३) प्रजावर्ग। (४) महादेवजी की आज्ञासे।

सोरठा।

पथि में शापप्रयोग, बिछुरयो, बहु दिन पै मिल्यो।
तजि सब मानस सोग, (१) मन्त्री विक्रमकेसरी॥
इतनी कथा सुनाय, अति हित सों अस कहत भो।
प्रभु मृगाङ्कदत्त राय, सुनहु कथा परसंग अब॥
देव! वृद्ध यह विप्र, कहि बेतालपच्चीसिका।
पुनि बोल्यो तब छिप्र (२) आगी मोहिँ सम्बोधि अस॥

दोहा।

नृपति त्रिविक्रमसेन सुत! कैसो रह्यो सुधीर।
वा बेतालप्रसादतें, का नहिँ लह्यो सुवीर॥

वसन्ततिलका।

या हेतु तुम भि मुझसे यह मन्त्र लैकै।
बेताल मुख्य कहँ साधहु त्यागि धोकै॥
याकै प्रभाव करि पावहुगे अवश्यै।
अपने प्रभू नृपतनय सुमृगाङ्कदत्तै॥

चौपाई।

जो नर हिय राखैं उत्साह। तिनकहँ सुत नहिँ कछू अगाह॥
जो उत्साहहीन नर होवै। सो निज माथे कर दै रोवै॥
याते प्रीतिपूरबक जोई। तुमसन कहउँ करिय सुत सोई॥
तुम गाढ़े में कामै आयो। सर्पदंश से प्राण बचायो॥

दोहा।

अस सुनि वा द्विजप्रवर से, मंत्र लियो विधि साथ।
वाहि पूछि गवनत भयउँ, उज्जयिनी कहँ नाथ॥

(१) शोक। (२) छिप्र = शीघ्र।

इतनी कथा सुनाय मन्त्रिप्रवर विक्रमकेसरी राजपुत्र मृगाङ्कदत्त से कहने लगा "राजकुमार ! जब ब्राह्मण मुझसे इतना कह चुका तो मैंने उससे विधिसहित मंत्र सीख लिया और उससे अनुमति लेकर उज्जयिनी की ओर प्रस्थान किया । वहां पहुंचकर मैं इस चेष्टा में लगा कि अब उस वेताल को सिद्ध करना चाहिये । अस्तु रात्री हुई और मैं श्मशान में पहुँचा, एक शव लाया और उसे नहला धुला कर वहां रखकर मैं दूसरे कार्य में लगा । अब मैंने उस शव में वेताल का आह्वान किया और विधिपूर्वक उसकी पूजा कियी । मैंने उसकी तृप्ति के लिये महामांस (१) का नैवेद्य लगाया, सो वह झटपट भकोस गया, मानुषमांस का लोभी वह वेताल चटपट उतना मांस खाकर बोला, "मैं इतने से सन्तुष्ट नहीं हुआ मुझे और थोड़ा सा देओ ।" इतना कहके वह किञ्चित्काल की भी प्रतीक्षा न कर सका, तब तो मैं घबराया कि अब क्या करूँ, बस मेरे मन में यह बात आ गयी कि अपना ही मांस क्यों न देऊँ सो देव ! मैंने अपना ही मांस काटकर उसे अर्पण कर दिया । तब तो वह योगीश्वर मेरे इस साहस से अतिही सन्तुष्ट हुए और बोले, "सखे ! तुम्हारे इस दृढ़सत्व से अब मैं बड़ाही तुष्ट हुआ हूं, सो वीर ! तुम्हारा शरीर पूर्ववत् अक्षत हो जावे और मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि जो अभीष्ट वर चाहो मुझसे मांग लेओ ।" योगीश्वर का ऐसा वचन सुन मैंने कहा "देव ! मुझे तो यही वरदान देवें कि जहां हमारे प्रभु मृगाङ्कदत्त हैं वहां मुझे पहुंचा देवें बस इससे बढ़कर दूसरा वर और कुछ मैं नहीं चाहता हूं ।" वेतालपति ने मेरी ऐसी अभ्यर्थना सुन मुझसे कहा कि अच्छा मेरे कन्धे पर चढ़ो और मैं तुम्हें तुम्हारे प्रभु के समीप पहुंचा देऊँ ।" उसका इतना कहना सुनतेही मैं उसके कन्धे पर चढ़ बैठा तब प्रेततनु में प्रविष्ट वह वेताल मुझे उठाये आकाश में उड़कर चला । यहां जब आप लोगों को देखा तो आकाश से उतरकर मुझे यहां उतार दिया सो देव उस वेतालवर के प्रभाव से मैं आपके चरणों में आ पहुंचा । जब मैं आपसे मिल गया तो अपना काम समाप्त कर वह वेताल चला गया । सो देव ! जब मैं नागशाप के वश में पड़ आपसे पृथक् हुआ तो यही मेरी रामकहानी हुई जो मैं आपको सुना गया ।

(१) नरमांस ।

छन्द।

इहि भांति विक्रमकेसरी निज सचिव कर वृत्तान्त सुन।
पथि राजसूनु मृगाङ्कदत उज्जयिनि जात प्रिया हितै॥
पारावता के शाप से बिछुरे कछुक मंत्री मिले।
लहिँ तबहि राजकुमार कारजसिद्धि जान मुदित हुए॥

तैंतीसवां तरङ्ग।

नमो विघ्नसंहार, निरतत रजनी में जिसू।
फहरत भानुमभार, कुम्भखसी तारावली॥

अब जबकि विक्रमकेसरी की कथा समाप्त हो गयी तब राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने मित्र और मन्त्री विक्रमकेसरी की प्राप्ति से अत्यन्त प्रमुदित होकर चलने के लिये उठ खड़े हुए। गुणाकर, विमलबुद्धि, विचित्रकथ, भीमपराक्रम, प्रचण्डशक्ति और ब्राह्मण श्रुतधि, ये तो पहिले ही मिल चुके थे, अब आकर विक्रमकेसरी भी मिल गया, सो हुए सात और आठवें मृगाङ्कदत्त स्वयम्। ये आठों जन "मनहुं सरोवर तके पियासे" की भांति शशाङ्कवती की प्राप्ति के हेतु उज्जयिनी की ओर चले। चलते २ एक अटवी में पहुंचे, जहां प्रचण्ड मार्त्तण्ड की अत्युष्ण किरणों से जल सब सूख गया था, बालू ऐसी जलती कि पांव भुट्टे हो जांय। सब लोग धन्धा धुन्ध चले जाते थे उस समय राजपुत्र मृगाङ्कदत्त ने अपने सचिवों से कहा, "भाइयो! देखो यह अटवी कैसी भयङ्कर है। यहां पगडण्डी भी नहीं दीख पड़ती है, भला यहां आता कौन होगा, यहां किसी प्रकार का सहारा भी नहीं है, न एक पेड़ कि जिसके तले बैठकर थका मांदा विचारा बटोही विश्राम तो करे। ये मृगजल कैसे भासते हैं मानों उठती हुई दुःखज्वालाएँ। ये जो इधर उधर ठंठ सूखे पड़े हैं उनसे इस अटवी के केशों की तुलना हो सकती है, उनके बीच सूखे पत्ते खड़खड़ा रहे हैं सो क्या सूचित करते हैं कि सिंह व्याघ्रादि हिंस्र जन्तुओं के भय से मानों कांप रही है और रह २ कर रोमाञ्चित हो जा रही है। जला कांची पशु जो व्याकुल हो महाघोर रव मचा रहे हैं सो मानों यह अटवी रो

रही है । सो भाइयो ! जहांतक होसके इसका अति शीघ्र पार करना ।" इतना अपने मित्रों से कहकर राजकुमार मृगाङ्कदत्त भूखे प्यासे अपने उन सचिवों के संग अति शीघ्र उस अटवी को पार निकल गये।

उस पार पहुंचकर क्या देखते हैं कि स्वच्छ शीतल जल से भरा एक महान् सरोवर है मानों अमृतांशु की किरणें सूर्य्य के ताप से गलकर बही हों । फिर वह सरोवर कैसा स्वच्छ है कि मानों त्रैलोक्यलक्ष्मी का मणिदर्पण जिसमें वह अपना मुंह निरखतीं कि जिसका विस्तार दिग्दिगन्त में है । धार्त्तराष्ट्रों से (१) जिसका जल क्षोभित होगया है, जिसमें अर्जुनों की (२) छायाएँ लहराती हुई अपूर्वशोभा दिखा रही हैं जिससे इस सरोवर को उपमा भारत से (३) दी जा सकती है, जो सब श्रान्तों की थकावट दूर करता और जिसका रस (५) बड़ा स्वादिष्ट है (६)। इसके तटपर चहुंओर जो ये नीलकण्ठ (७) बैठकर जल पी रहे हैं सो मानों उसका विष पान कर रहे हैं और अच्युत ने (८) लक्ष्मी (९) प्राप्त कियी सो इससे यह सरोवर मन्थनकाल के समुद्र से सादृश्य रखता है । फिर वह तड़ाग मानों भूमण्डलपर अधिष्ठित पाताल था, उसकी गहिराई ऐसी कि जहां सूर्य्यनारायणकी किरणें न पहुंच सकें और इसी हेतु अति शीतल, पुनः अनन्त (१०) पद्मों का आकर।

उस सरोवर के पश्चिम किनारे पर राजकुमार और उनके सचिवों ने एक बड़ा भारी दिव्य पादप देखा, जिसकी ऊँचाई ऐसी कि आकाश छूती और शाखायें अति विस्तृत । वायु की प्रेरणा से शाखायें जो हिलतीं सो मानों भुजायें हैं और आकाश के मेघ जो शिखर पर क्रू रहे हैं सो मानों आकाशगङ्गा हैं; फलतः वह पादप क्या है कि भगवान् शङ्कर जटा छटकाये हाथ फैलाकर ताण्डव नृत्य

(१) धार्त्तराष्ट्र = हंस, धृतराष्ट्र के पुत्र । (२) अर्जुन पादप, अर्जुन । (३) महाभारत अर्थात् महाभारत का युद्ध । (५) जल, पेयद्रव्य । (६) भाव यह कि जिस प्रकार सब श्रान्त योद्धाओं की शान्ति उस महाभारत में हुई उसी प्रकार सब श्रान्त बटोहियों की पिपासा इस सरोवर के जल के पीने से शान्त होती है ।

(७) पक्षी विशेष, भगवान् शङ्कर, जिन्होंने समुद्र से निकला विष पी लिया । (८) भगवान् नारायण अन्य पक्ष में अटल । (९) कमला, अन्य पक्ष में श्री अर्थात् शोभा । (१०) शेषनाग, अन्य पक्ष में असंख्य ।

कर रहे हों। उसकी ऊँचाई जो आकाशपर्यन्त पहुंच गयी थी इससे एक दूसरी भावना भी मन में उठती है मानों बड़े कौतुक से नन्दनवन की शोभा के निरखने के लिये उसने शिर ऊँचा किया हो। पुनः वह कैसा शोभित था कि मानों कल्प-वृक्ष हो. शाखाओं पर दिव्य रसभरे जो फल लटक रहे हैं मानों अमृत भरे कलश देवताओं ने बांध दिये हों। पल्लव मानों कर हैं जो वायु से हिल हिल के ऐसी भावना उत्पन्न कराते हैं मानों बरजते हैं और विहङ्गों का रव जो है सो मानों उसका वचन है सो वह हाथ से बरजकर मुंह से यह कह रहा है कि मुझ से कुछ पूछो मत।

इस प्रकार राजकुमार मृगाङ्कदत्त उस अनुपम वृक्ष की शोभा निरख वर्णन करही रहे थे कि उनके छओं मन्त्री भूख के मारे अति व्याकुल हो इस वृक्ष के ऐसे सुन्दर फल निरख और न सम्भल सके, सो फल खाने की इच्छा से वे झट उस वृक्ष पर चढ़ही तो गये और लो वे छओं मनुष्य चढ़तेही फल हो लटक गये। अब मृगाङ्कदत्त अपने मित्रों को न देख अति व्याकुल हुए और हरएक का नाम ले लेकर पुकारने लगे, पर वहां से उत्तर कौन देता। जब कि न तो उत्तर ही आया और न कोई दीखता ही था तब तो राजपुत्र मृगाङ्कदत्त के शोक का अन्त न रहा, "हा! मैं मारा गया," इतना कह पछाड़ खाय वह धरती पर गिर पड़े और मूर्छित हो गये। एक श्रुतधि ब्राह्मण बच गया था क्योंकि वृक्ष पर वह नहीं चढ़ा था सो वह श्रुतधि विप्र राजकुमार को सान्त्वनामय वचनों से समझाकर कहने लगा, "देव! आप पढ़ लिखकर भी ऐसे अधीर हो रहे हैं। धीरज धरिये; देखिये वही पुरुष कल्याण भोगता है जो कि विपत्ति में मूढ़ नहीं हो जाता. प्रत्यक्ष प्रमाण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है नाग के शाप से सब लोग तितर बितर हो गये थे और फिर आन मिले; बस इसीसे निश्चय है कि इन सचिवों को तथा औरों को भी आप पावेंगे और अति शीघ्र शशाङ्कवती से भी आपका संयोग होवेगा।" श्रुतधि ब्राह्मण की ऐसी सान्त्वनामय वाणी सुन राजपुत्र बोले, "भद्र! यह कहां सम्भव है। मैं तो समझता हूं कि विधाता ने ये सब घटनायें, मानों हमारे नाश के लिये शृङ्खलारूप से रच दी हों। भला रात के समय कहां वह वेताल और कहां भीमपराक्रम और कहां उनके सम्बाद के प्रसङ्ग से शशाङ्कवती

का जानना। फिर उसकी प्राप्ति के अर्थ कहां हमलोगों का अयोध्या से निकलना; विन्ध्याटवी में कहां नागशाप से सबका बिछुड़ना। फिर कतिपय मन्त्रियों का क्रमशः सङ्गम होना फिर कहां, हे सखे! इष्ट मित्रों का पुनः वियोग! ऐसा भासता है कि इस वृक्ष पर कोई भूतवास करता है वही उन्हें ग्रस ले गया, अब उनके विना शशाङ्कवती का कहां पाना! और उसे पाकर ही क्या करूँगा, जब मेरे सुहृद् ही मेरे प्राण ही मेरे साथ नहीं तो कहां की शशाङ्कवती और कहां का मैं और फिर मेरे जीने ही से क्या लाभ सो भाई अब आगे जाकर व्यर्थ भ्रमण करने से क्या लाभ है?"

इतना कहते २ वह अपना शोक न सम्भाल सके और विक्षिप्त से होकर उस सरोवर में कूदने चले और श्रुतधि वारण करता ही रह गया। इतने में आकाशवाणी हुई कि पुत्र! साहस मत करो तुम्हारा सब भलाही होगा। इस वृक्ष में देव गणपति का अधिष्ठान है तुम्हारे सचिवों से अज्ञानवश उनका अपमान बन पड़ा है। वे अशुद्ध थे, आचमन भी नहीं कर चुके थे न तो उनके हाथ पांव ही धोये थे, और वे भूख के मारे फल की इच्छा से इस पेड़ पर चढ़ गये। बस वृक्ष का स्पर्श होतेही वे सब भी फल बन गये, उनके चित्त तो फलों ही में लगे थे बस गणाधिप के शाप से वे भी फल हो गये। सो अब तुम तपस्या कर गणनायक की आराधना करो उन्हीं के प्रसाद से तुम्हारी सब अभीष्टसिद्धि होगी।

इस प्रकार सुधावर्षण समान वह आकाशवाणी सुन राजकुमार मृगाङ्कदत्त के मनमें विश्वास हुआ और वह देहत्याग से विरत हुए। उसी सरोवर में स्नान कर उन्होंने उस वृक्ष में भगवान् गणाधिप की पूजा किया और आहार का त्याग कर उपवास धारण किया। अब वह गजानन की इस प्रकार स्तुति करने लगे—

जय जय श्रीगजवदन नृत्य ताण्डव सं मर्दित।
भुवन मही वनशैल सहित अति सादर अर्चित ॥१॥
जासु सुरासुर सकल पाद अभिवन्दन करते ॥
सकल सिद्धिदातार जयति कुम्भोदरधर ते ॥ २ ॥
युग पद उदित दुआदस भास्कर ज्योति अंगपर ॥
हर हरि सुरपति दुर्जय दितिज कुल नाशकर ॥३॥

जय भक्त वृजिन संहारन कर परशुवर धारन ॥
नील निराजन सम्यक् द्योतित जग तम टारन ॥४॥
त्रिपुर युद्ध पतिविजय चाहि गौरी से पूजित ॥
शरण तुम्हारी गहौं गजानन नम तुम्हरे हित ॥५॥

इस प्रकार महाराजकुमार मृगाङ्कदत्त विघ्नेश्वर की स्तुति कर निराहा
उसी वृक्ष के नीचे कुश के आसन पर पड़े रह गये। एक दिन दो दिन तीन दिन
इसी प्रकार विघ्नेश की आराधना में ग्यारह दिन वह अटल बने रहे और व
श्रुतधि ब्राह्मण परिचर्य्या करता रहा। बारहवें दिन रात्री के समय गणाधिप
स्वप्न में उनसे कहा, "वत्स! मैं तुमसे बड़ा सन्तुष्ट हुआ, अब शाप छूट गया औ
अब तुम अपने सब मन्त्रियों को पाओगे। उनके संग जाकर शशाङ्कवती को भी
पाओगे और फिर अपनी नगरी में लौटकर पृथ्वी भर का राज्य करोगे।"

स्वप्न में गणेश का इस प्रकार आदेश पाय मृगाङ्कदत्त रात्री के बीत जानेप
जागे सो उन्होंने उस स्वप्न का वृत्तान्त अपने मित्र श्रुतधि ब्राह्मण को कह सुनाया
उसने बड़ाही आनन्द प्रकाश किया। अस्तु, प्रातःकाल में स्नानकर विनायक की
पूजा में लीन हुए। पूजा समाप्त कर ज्योंही कि वह भगवान् गणेश के उस वास
वृक्ष की प्रदक्षिणा करने लगे कि इतने में उनके दशो मन्त्री फलरूपत्याग एकसं
उस वृक्ष से उतरे और उनके चरणों पर गिर पड़े। इनमें छ तो वेही थे जो मृगाङ्क-
दत्त से मिलकर अपना २ वृत्तान्त सुना चुके थे, बचे चार, सो व्याघ्रसेन, स्थूलबा
मेघबल और चौथा दृढ़मुष्टि, ये चारों थे।

वसन्ततिलकम्।

या भांति पाइ सब मंत्रिन एक संगै।
देखन लगे न कछु बोल सके ससंभ्रम ॥
बारै जु बार उनको एक एक करकै।
देखैं, मिलैं' नृपतनय हित सों बतावैं (१) ॥

(१) बतावैं = बात करें।

सोरठा ।

वे भि नवेन्दुक्षाम, (१) कृततप निजप्रभु देखिकै ।
दु:खित भये निकाम, जल भरि आये नयन में ॥
श्रुतधि सुनायो गाथ, (२) आदि से अन्त प्रजन्त सब ।
तब सब जानि सनाथ, लगे सराहन भाग निज ॥

वसन्ततिलकम् ।

पीछे मृगाङ्कदत्त मन्त्रिन संग न्हाये ।
पारण कियो सबनि संग प्रमोद पाये ॥
धीरज धर्यो रु मनमें यह बात आई ।
ह्वै है जु कार्य्यसिधि छाड़हु कातराई ॥

चौंतीसवां तरङ्ग ।

अब महाराजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने सचिवों के संग पारणोत्तर सुस्थिर होके उस सरोवर के किनारे बैठे । उसी दिन एकसाथ मिले हुए जो चारों मन्त्री थे मृगाङ्कदत्त ने बड़े आदर से उनसे पूछा कि भाइयो ! अपना २ वृत्तान्त सुनाओ। तब उनके मध्य में से पहिले व्याघ्रसेन नामक सचिव बोला, "देव ! सुनिये, मैं आपलोगों को अपना वृत्तान्त सुनाता हूं। जब कि पारावत नाग के शाप से मैं आपलोगों से दूर हो गया तब मेरा ध्यान अकस्मात् शून्य हो गया, दिन भर में उसी अटवी में भटकता रहा, कुछ कालोपरान्त चेत हुआ बस उसी समय सन्ध्या हो गयी, अब कहां जाउं क्या करूं, इतने में रात्रीदेवी का पूर्ण अधिकार जम गया, "सूझ न आपन हाथ पसारू" की बात हो गयी, न तो दिशाही विदित होती थी और न मार्गही दीख पड़ता था । वह रात्री पहाड़ सी हो गयी न टारे टरे और ऐसी भासती थी मानों वर्षों की हो गयी हो ।"

(१) नव = नवीन अर्थात् द्वितीया का; इन्दु = चन्द्र; क्षाम = क्षीण = दुर्बल; अर्थात् द्वितीया के चन्द्रमा के समान क्षीण । (२) गाथ = कथा अर्थात् वृत्तान्त ।

अस्तु किसी प्रकार से वह रजनी बीती और भगवान् दिवाकर अपनी सहस्र किरणें फैलाकर उदित हुए मानों मेरी आशा का प्रकाश हुआ। तब मैं अपने मनमें चिन्ता करने लगा कि हा धिक् ! हमारे प्रभु कहां गये. हमलोगों से उन का वियोग हो गया और वह अकेले हो गये अब न जानें कहां और कैसे होंगे अब कैसे उनको पाऊंगा और कहां खोजूंगा, अब मेरी क्या गति होगी ? अच्छा उज्जयिनी चलूं कदाचित् वहां वह मिल जावें क्योंकि शशाङ्कवती के निमित्त उन को वहां जानाही है। सो देव ! इसी आशा से मैं उज्जयिनी की ओर चला।

अब उसी अटवी में मैं घूमने लगा, मानों अपने दशाचक्र में भ्रमण करता था। ऊपर से सूर्य्य की किरणें कैसी जलजलाती पड़ती थीं मानों अग्निचूर्ण थीं मेरा समस्त शरीर उनसे जला जा रहा था। चलते २ किसी प्रकार एक सरोवर मिला जिसमें कमल फूले हुए थे, हंसादि पक्षी कलरव कर रहे हैं मानों वह सरोवर ही सम्भाषण कर रहा है। लहरें जो उठती थीं वे मानों हाथ हैं, उसका सौम्य विपुल आकार मानों आशय प्रकाश किये देता है, देखतेही सब दुःख क्लेश शान्त हो जाते जैसे सत्पुरुष के दर्शनों का फल होता है। मैंने उसी सरोवर के स्वच्छ जल में स्नान किया और कमलगट्टे खाकर शीतल जल पान किया। इतने कार्य्य कर मैं उस सरोवर के किनारे पर बैठकर विश्राम करने लगा कि ये तीनों दृढ़मुष्टि, स्थूलबाहु और मेघबल वहीं आ पहुँचे। जब हम सब परस्पर मिल चुके तब एक दूसरे से आपकी बात पूछने लगे। हम में से कोई भी आपका पता न जानता था, तब तो हमलोगों का दुःख अपार हो गया और हमलोग आपका विरह सहन न कर सके, बस यही निश्चय ठहरा कि इसी सरोवर में डूबकर प्राण त्याग कर देवें।

इतने में एक मुनिकुमार वहां स्नान करने आये, यह दीर्घतपा नामक मुनि के पुत्र थे नाम उनका महातपा था। सिर पर जटा निराली दीपती थी उनका तेज कैसा देदीप्यमान था कि यह भावना होती थी मानों साक्षात् अग्निदेव अपनी ज्वाला की जटा बनाकर पुनः खाण्डव जलाने के हेतु ब्राह्मशरीर में आ विराजे हों। कृष्ण मृगचर्म्म का जनेऊ कन्धे पर सुशोभित है, बाम हाथ में कमण्डलु विराजमान है और दहिने हाथ में रुद्राक्ष की माला। उनके साथ बहुतेरे छात्र

आये थे जिन्होंने उनके स्नान के निमित्त माटी खोद दी और संग में उन्हीं के सम-वयस्क कुछ मुनिकुमार भी थे।

उस समय हम चारों जन तो सरोवर में कूदकर मरण पर उद्यत थे, उन मुनिकुमार की दृष्टि हमपर पड़ी, बस वह करुणा से गद्गद हो गये। ठीकही कहा है "परदुःख द्रवहिं सुसन्त पुनीता," साधु अकारण बन्धु होते हैं। उन्होंने हमसे कहा "हां २ देखियो ऐसा पाप कदापि मत करियो अरे यह तो कापुरुषों का काम है कि दुःख पड़ने से अन्धे हो जाते और विपत्ति में पड़के पच्यमान होते रहते हैं, धीर लोग सन्मार्ग के द्रष्टा और विवेकी होते हैं विवेक दृष्टि उनकी कभी नष्ट नहीं होती इससे वे कदापि गढ़े में नहीं गिरते प्रत्युत अभीष्ट अर्थ सिद्ध कर लेते हैं। तुम लोग तो भव्य हो, निश्चय कल्याण प्राप्त करोगे। अस्तु अब बत-लाओ कि तुम्हें क्या दुःख है क्योंकि इसके विना जाने मेरे मन में बड़ा सन्ताप हो रहा है।" इस प्रकार जब मुनिपुत्र ने हमलोगों को समझाया तब मैं आरम्भ से सब वृत्तान्त सुना गया। तब दूरदर्शी इन मुनिकुमार तथा उनके साथियों ने बहुत प्रकार के सान्त्वनामय वचनों से शान्ति दिला हमलोगों को मरण से निवृत्त किया। इसके उपरान्त सब लोगों ने स्नान किया।

स्नानादि क्रिया सम्पन्न कर वह मुनिपुत्र आतिथ्य करने के अभिप्राय से हम-लोगों को अपने पिता के आश्रम को ले चले; वह आश्रम कुछ दूर न था सो हमलोग अति शीघ्र वहां पहुँच गये। आश्रम क्या मानों स्वयं तपही तपस्याकरने के हेतु वहां आ विराजा हो, जहां के समस्त वृक्ष भी मानों तपश्चर्य्या में लीन हैं। सो कैसे कि उनकी शाखायें जो ऊपर उठी हैं सो तो मानों भुजायें हैं, वेदियोंपर सीधे खड़े हैं और ऊपर शिर उठाये सूर्य्य की किरण पान कर रहे हैं जैसे ऊर्द्ध-वाहु तपस्वी लोग करते हैं।

मुनिकुमार ने हमलोगों को एक ओर बैठाया और बड़े सम्मान से अर्घ्य दिया। इसके पश्चात् वह भिक्षापात्र लेकर निकले और आश्रम के एक एक वृक्ष के नीचे जाकर भिक्षा मांगने लगे। जिस वृक्ष के नीचे वह जाते वह स्वयं फल चुआ देता इस प्रकार उनका भिक्षापात्र अतिशीघ्र भर गया, और मुनिकुमार वह भिक्षापात्र लेकर हमारे निकट आये। उन्होंने हमें फल दिये कि हम खावें, महाराज! मैं

उन फलों का आस्वाद क्या वर्णन करूं ऐसे कि मानों दिव्य फल, उनके भक्षण से हमें ऐसा भासा कि मानों अमृत भक्षण किया है । बस फल खाकर हमलोग तृप्त हो गये।

इतने में दिन व्यतीत हो गया और भगवान् सूर्य्यनारायण समुद्र में गिर पड़े (१) और आकाश नक्षत्रों से परिपूर्ण हो गया मानों उनके गिरने से जल के छींटे उठे हैं। पूर्व शैल पर चन्द्रमा का उदय हुआ जो कि उनके विरह से उदयाचल के शृङ्गपर मानों तपश्चर्य्या के निमित्त उपस्थित हुए हों चन्द्रिका जो चहुंओर पसरी है सो ही मानों उनका धौत वल्कल है।

वहां आश्रम में एक ओर अपने २ कर्म्मों से सुचित्त होकर सब मुनि बैठे थे सो उनके दर्शनार्थ हमलोग वहां गये और उन्हें प्रणाम कर बैठ गये; प्रियभाषी उन ऋषियों ने हमारा आतिथ्य किया और पश्चात् पूछा कि तुम लोग कहां से आये हो ? तब वह मुनिकुमार जो कि हमें वहां ले गये थे, आदि से लेकर अपने आश्रम में ले जाने पर्य्यन्त का हमारा सारा वृत्तान्त उन्हें सुना गये।

उनमें कण्व नामक एक मुनि बड़े ज्ञानी थे, उन्होंने हमसे कहा, "क्यों जी तुम लोग वीर होकर क्यों ऐसे कातर हो गये ? आपत्ति में धैर्य्य का न त्यागना और सम्पत्ति में अहङ्कार से अन्धा न होना तथा उत्साह का न छोड़ना सत्पुरुषों का यही व्रत है। जो बड़े होते हैं वे अपने धैर्य्य के प्रभाव से बड़े २ कष्टों को पार कर जाते हैं और बड़े २ अर्थ (२) साध लेते हैं तब जाकर "महान्" ऐसी पदवी प्राप्त करते हैं । सुनो मैं तुम्हें सुन्दरसेन की कथा सुनाता हूं जिसने कि मन्दारवती के हेतु कैसा कष्ट उठाया। इतना कह मुनि कण्व हमलोगों को तथा उन उपस्थित मुनियों को वह कथा सुनाने लगे और सब लोग बड़े ध्यान से वह कथा सुनने लगे।

कौवेरी (३) दिशा का अलङ्कारस्वरूप निषध नामक देश है, तहां पूर्वकाल में अलका नाम्नी एक पुरी थी। उस नगरी का वर्णन क्या किया जाय, वहां के लोग सब प्रकार की समृद्धि से छके और सदा सुखी रहते, यदि कुछ विकलता थी तो

(१) पूर्वकाल में ऐसा विश्वास था कि सूर्य्य समुद्र के जल में डूब जाते हैं।
(२) मतलब। (३) उत्तर।

रत्नदीपों को कि वे सदा प्रज्वलित रहते थे । उस नगरी में महासेन नामक राजा हुए जो कि अन्वर्थनामा (१) थे क्योंकि शरजन्मा (२) के समान उनका प्रताप अत्यन्त उग्र था जिस प्रतापाग्नि से उनके समस्त शत्रु जल बुताये । उनके मन्त्री का नाम गुणपालित; वह भी सचमुच समस्त गुणों का आकर, शूरता का निवासस्थान और पृथ्वी के भारवहन में मानों द्वितीय शेषनाग । शत्रुओं का मूलोच्छेद कर राजा इस सर्वगुणसम्पन्न मन्त्री पर राज्य का समस्त भार रख आनन्द सेदिन व्यतीत करने लगे ।

कुछ कालोपरान्त उनकी रानी शशिप्रभा के एक पुत्र हुआ । महीपति ने अपने कुमार का नाम रक्खा सुन्दरसेन । राजकुमार भी होनहार थे, बालकपन ही में उनमें वे गुण विद्यमान थे कि जो बड़ों में नहीं पाये जा सकते; शौर्य्यलक्ष्मी और सौन्दर्य्यलक्ष्मी ने स्वयंवर में उन्हें अपना पति चुन लिया था ।

उन राजकुमार के पांच मन्त्री हुए, जोकि बालकपन ही से उनके साथ बढ़े थे, वे सबके सब शूर और उनके समवयस्क थे । उनके नाम चण्डप्रभ, भीमभुज, व्याघ्रपराक्रम, वीरविक्रमशक्ति और पांचवां दृढ़बुद्धि । वे सब बड़े बलवान् और सत्वसम्पन्न तथा बुद्धि के सागर, स्वामिभक्त और कुलीन थे और पक्षियों का रुत (३) वे समझते थे । राजकुमार अपने उन मन्त्रियों के साथ अपने पिता के भवन में रहते थे ।

इस प्रकार राजकुमार को युवावस्था आ गयी किन्तु उनको अनुरूप भार्य्या अबलों न मिली । तब राजकुमार सुन्दरसेन अपने उन मन्त्रियों के साथ बैठकर इस प्रकार विचार करने लगे कि शौर्य्य वही जो नम्रों को न दबावे और धन वही है जो निज भुजाओं से अर्जित हो और भार्य्या जो रूपवती और अनुरूपा हो तो अहो भाग्य और यदि ये तीनों हुए और फल विपरीत ही निकले तो इनके होने से लाभही क्या ?

अब एक समय की बात है कि राजकुमार सुन्दरसेन अपने उन पांचों सचिवों को संग लेकर सेना के साथ आखेट करने के हेतु निकले, जब कि वह नगर से निकल रहे थे कि कात्यायनी नाम्नी एक प्रौढ़ा प्रव्राजिका की दृष्टि उनपर पड़ी;

(१) जैसा नाम वैसेही गुण । (२) स्वामिकार्त्तिक । (३) बोलना ।

यह प्रव्राजिका बड़े दूर देश से आयी थी। उनका अद्भुत रूप देखकर वह प्रौढ़ अपने मनमें चिन्ता करने लगी कि अहो यह रोहिणी-विहीन चन्द्र हैं अथवा रतिहीन कामदेव हैं। जब उनके परिचरवर्ग से उसे ज्ञात हुआ कि यह राजकुमार हैं तब वह विधाता की विचित्रता की प्रशंसा करती हुई अति अचम्भित हो गयी। अब दूरही से बड़े ऊँचे स्वर से पुकारकर उसने कहा "कुमार! जय हो" इतना कह झुकके आशीर्वाद दिया। राजकुमार सुन्दरसेन तो अपने सचिवों के साथ बातचीत में मग्न थे, इसकी बात न सुनके बराबर आगे चले जा रहे थे; तब तो इस तापसी को बड़ा क्रोध आया और वह अत्यधिक ऊंचे स्वर से चिल्लाके बोली "अहो राजपुत्र! मेरा आशीर्वाद क्यों नहीं सुनते हो? पृथ्वी में ऐसे कौन राजा और राजकुमार हैं जो मेरी पूजा न करते हों? जब तुम्हें अपने सौन्दर्य्य का ऐसा घमण्ड है तो, यदि तुम हंसद्वीपेश्वर की कन्या जगत् की ललामरूपा अति सुन्दरी मन्दारवती को अपनी स्त्री के लिये पा जाओगे तब तो मैं समझती हूं कि ऐसे मदान्ध हो जाओगे कि इन्द्रादि देवों की बात न सुनोगे फिर (उस समय) बिचारे मानवों की कौन चलावे।" राजकुमार सुन्दरसेन उस तापसी का इतना कहना सुन रुक गये और उसको बुलवाकर अति नम्रता से विनति कर अपराध क्षमा कराने लगे। इसके उपरान्त अपने मन्त्री विक्रमशक्ति के घर अपने सेवकों के द्वारा उसे भेजवा दिया कि वहां वह उतरे और विश्राम करे, क्योंकि अब तो राजकुमार के मनमें मन्दारवती के विषय में जिज्ञासा उठी। अब आखेट नाम मात्र का रह गया, हां, गये किन्तु चटपट कुछ कर धरके घर लौट आये।

अब कुमार सुन्दरसेन मृगया से लौटे और अपना आह्निक कर्म्म कर सुचित्त हुए और उधर वह तापसी भी भोजन करके निवृत्त हुई। तब राजकुमार ने उसे बुलवाय भेजा और जब वह आयी तब उसे आसन पर अधिष्ठित करा बड़े आदर से वह उससे पूछने लगे "भगवति! कहिये तो सही यह मन्दारवती कौन है जिसकी बात आपने कही थी, मेरे मनमें इसके जानने की बड़ी लालसा है।" उनका ऐसा कथन सुन वह तापसी बोली, "सुनो मैं तुम्हें यह वृत्तान्त सुनाती हूं। यह तो तुम जानतेहो ही कि हम तपस्वियों का काम तीर्थाटन और देवदर्शनों के अतिरिक्त और क्या है। बस इसी निमित्त में इस द्वीपवती वसुन्धरा में घूमा

करती हूं। इसी प्रकार घूमती हुई हंसद्वीप में पहुंच गयी, वहां मन्दारदेव की कन्या मुझे दीख पड़ी; वह कन्या क्याही लावण्यमयी है कि मैं उसका क्या वर्णन करूं; देवपुत्रों के उपभोग के योग्य वह है; जब लों किसी प्राणी के प्राक्तन पुण्यों का उदय न हो वह उसको देखही नहीं सकता। वह मन्दारवती क्या है नन्दन-वन की लक्ष्मी (१) है। मूर्त्ति उसकी कैसी कि देखतेही मन हर लेवे और जो देखे वह स्मरवाणों से आहत हो व्यग्र हो जावे। ऐसी भावना होती है कि मानों विधाता ने सुधामय यह दूसरा चन्द्रमा बनाया हो। इस भूमण्डल पर तो उसके रूप के सदृश किसी का रूप है ही नहीं परन्तु मेरी बुद्धि इतनी साची देती है कि तुम उसके अनुहार हो। जिन्होंने उसे न देखा उनके नेत्र व्यर्थ और उनका जन्म निष्फल।"

तापसी के मुख से उसकी ऐसी प्रशंसा सुन राजकुमार बोले, "अम्ब! जब उसका ऐसा रूप है तो कैसे हमलोग उसका सौन्दर्य्यमय रूप निरख सकते हैं?" राजकुमार का ऐसा कथन सुन वह प्रव्राजिका बोली, "मैं भी एकही हूं, जब कि मैंने उसका अनुपम रूप देखा चट उसका चित्र एक चित्रपट पर उतार लिया, मेरे पास चोंगी में वह चित्र रक्खा है यदि ऐसीही उत्कण्ठा हो तो उसका चित्र देख लो।" इतना सुनतेही राजकुमार अति प्रसन्न हो गये तब उस तापसी ने चोंगी से निकालकर वह चित्र राजकुमार को दिखा दिया। राजकुमार सुन्दरसेन उस कन्या का चित्र देखकर अति अचम्भित हो गये और आनन्दसागर में मग्न होकर एकटक से उसका अनुपम सौन्दर्य्य निरखतेही रह गये। अङ्गों में रोमाञ्च हो आया और तत्त्वण पुष्पधन्वा ने अपने वाणों का प्रहार उनपर किया। अब धीरे २ उनकी दशा ऐसी हो गयी कि कुछ न सुनते, न कुछ बोलते और न कुछ देखतेही, मानों चित्र लिखे से निश्चल हो गये। यह दशा उनकी बहुत देर लों रही। तब तो उनके मन्त्रियों को बड़ा खटका हुआ सो वे उस तापसी से कहने लगे, "आर्यें! एक काम तो करो कि राजकुमार सुन्दरसेन का चित्र तो एक पट पर उतारो जिससे हमें ज्ञात हो जाय कि तुम ठीक ठीक अनुरूप चित्र उतार सकती हो।"

(१) शोभा।

राजकुमार के मन्त्रियों का एतादृश कथन सुन उस तपस्विनी ने तत्त्व कुमार सुन्दरसेन का चित्र एक पट पर उतारा और मन्त्रियों को दिखाय दिया वह चित्र देखकर सब मन्त्री अति विस्मित हुए और उससे कहने लगे, "भगवति तुम्हारी विद्या में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है, यह तो साक्षात् कुमार है बैठे हैं भला कोई इसे चित्र कह सकेगा ? इसीसे हमलोगों को निश्चय होता है कि देवी मन्दारवती भी ऐसीही होंगी जैसी कि चित्र में प्रतीत हो रही हैं। इस प्रकार मन्त्री कहही रहे थे कि राजकुमार ने अति प्रसन्नता से दोनों चित्र ले लिये और बड़े सम्मान से उस तापसी की पूजा कियी और यथायोग्य उसका आदर सत्कार कर उस एकान्तवासिनी तापसी को विदा किया।

अब वह अपनी कान्ता का चित्रपट लिये हुए अपने अभ्यन्तर गृह में गये और वहां शय्यापर लेटकर उस चित्र का निरीक्षण करते और मनमें इस प्रकार की भावना करते जाते थे। "अहो ! इसका मुख कैसा निर्मल चन्द्र सा है, ये स्तन क्या कामदेव के अभिषेक-कलश हैं ? यह जो त्रिवली है सो क्या रूपसागर की लहरें हैं ? यह नितम्ब है अथवा रति का विलाश-शयन (१) है ?" इस प्रकार शयनीय पर पड़े २ वह उसके प्रत्येक अंग का वर्णन करते थे। बस यही उनका प्रतिदिन का व्यापार ठहरा, आहार विहार सब छूटा और वह स्मरज्वर में भुनते रहते।

होते २ यह बात उनके पिता महाराज महासेन तथा माता शशिप्रभा के कर्णगोचर हुई सो उन्होंने राजकुमार के मन्त्रियों को एकान्त में बुलाकर उनसे राजकुमार के अस्वास्थ्य का कारण पूछा। वयस्यों ने साद्यन्त वृत्तान्त कह सुनाया कि बात ऐसी है और कि इनके रोग का कारण हंसद्वीपेश्वर की आत्मजा हैं। उनका कथन सुन राजा महासेन ने अपने पुत्र सुन्दरसेन से कहा "पुत्र ! यह तुम क्यों छिपाते हो ? यह तो योग्य पात्रही है। मन्दारवती कन्याओं में रत्न है और तुम्हारे योग्य है पुनः उसके पिता मन्दारदेव तो हमारे बड़े मित्र हैं। यह विषय तो बड़ाही सुखसाध्य और द्रुतसाध्य है सो तुम इसमें इस प्रकार इतना व्यग्र क्यों हुए जाते हो ?" इस प्रकार पुत्र को समझा बुझा शान्ति देकर महाराज महासेन

(१) गद्दा।

ने अपने मन्त्री से परामर्श कर उस कन्या की याचना के निमित्त सुरतदेव नामक एक दूत को हंसद्वीप में राजा मन्दारदेव के पास भेजा और उस दूत को राजकुमार सुन्दरसेन का वह चित्रपट दे दिया कि जिससे उनके रूप का प्रकाश वहां हो जावे कि उनका भी रूप कैसा अलौकिक है।

अब दूत सुरतदेव तुरन्त वहां से चला और चलता २ समुद्र किनारे राजा महेन्द्रदत्त के शशाङ्कपुर नामक नगर में पहुंचा। वहां वह अर्णवपोत पर आरूढ़ हुआ और चला २ कुछ दिनों में हंसद्वीप में पहुँचा और तहां राजा मन्दारदेव के मन्दिर पर उपस्थित हुआ। द्वारपालों ने महाराज मन्दारदेव को उसके आगमन की सूचना दी और राजाज्ञा पाय सुरतदेव राजसभा में उपस्थित हुआ और महाराज मन्दारदेव ने कुशलप्रश्नानन्तर उसका उचित आतिथ्य किया।

अब वह दूत महाराज महासेन का सन्देशा सुनाकर कहने लगा कि नृपते! महाराज महासेन ने यह सन्देशा भेजा है कि आप अपनी दुहिता मेरे पुत्र सुन्दरसेन के लिये दे देवें। कात्यायनी नाम्नी तापसी जो राजकुमारी का चित्र उतार लायी थी सो यहां उसने राजकुमार को दिखाया। उसका रूप मेरे पुत्र के अनुरूप ठहरा, सो मैं भी सुन्दरसेन का चित्र भेजता हूं कि आपलोग भी देख लेवें कि राजकुमार का रूप कैसा है। मेरा पुत्र आत्मानुरूप भार्य्या के न पाने से विवाह नहीं किया चाहता और जहांलों हमलोगों की बुद्धि साखी देती है आप की दुहिता इनके अनुरूप हैं। सो महाराज यह उनका सन्देशा आपको मैं सुना गया और देखिये यह राजकुमार का चित्र है बस आप माधवीलता का संयोग मधु से कर देवें।

दूत का इतना कहना सुन मन्दारदेव ने अति प्रसन्नता से मन्दारवती राजकुमारी तथा उनकी माता को बुलवाया, और उन्हीं के साथ चित्रपट खोलकर जो देखा कि देखते ही उनका यह घमण्ड जाता रहा कि मेरी दुहिता के समान पृथ्वी में कोई है ही नहीं। अब वह बोले "यदि इस राजपुत्र के साथ मेरी पुत्री का संयोग हो जाय तो इसके रूप का निर्माण सफल हो जाय। उनके विना न इसी की और इसके विना न उन्हीं की शोभा हो सकती है, कमलिनी विना हंस का और हंस विना कमलिनी क्या।" राजा का ऐसा वचन सुन रानी चद्रावती ने

राजकुमार के मन्त्रियों का एतादृश कथन सुन उस तपस्विनी ने तत्क्षण कुमार सुन्दरसेन का चित्र एक पट पर उतारा और मन्त्रियों को दिखाय दिया। वह चित्र देखकर सब मन्त्री अति विस्मित हुए और उससे कहने लगे, "भगवति! तुम्हारी विद्या में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है, यह तो साक्षात् कुमार ही बैठे हैं भला कोई इसे चित्र कह सकेगा ? इसीसे हमलोगों को निश्चय होता है कि देवी मन्दारवती भी ऐसीही होंगी जैसी कि चित्र में प्रतीत हो रही हैं। इस प्रकार मन्त्री कहही रहे थे कि राजकुमार ने अति प्रसन्नता से दोनों चित्र ले लिये और बड़े सम्मान से उस तापसी की पूजा कियी और यथायोग्य उसका आदर सत्कार कर उस एकान्तवासिनी तापसी को विदा किया।

अब वह अपनी कान्ता का चित्रपट लिये हुए अपने अभ्यन्तर गृह में गये और वहां शय्यापर लेटकर उस चित्र का निरीक्षण करते और मनमें इस प्रकार की भावना करते जाते थे। "अहो! इसका मुख कैसा निर्मल चन्द्र सा है, ये स्तन क्या कामदेव के अभिषेक-कलश हैं ? यह जो त्रिवली है सो क्या रूपसागर की लहरें हैं ? यह नितम्ब है अथवा रति का विलास-शयन (१) है ?" इस प्रकार शयनीय पर पड़े २ वह उसके प्रत्येक अंग का वर्णन करते थे। बस यही उनका प्रतिदिन का व्यापार ठहरा, आहार विहार सब छूटा और वह स्मरज्वर में भुनते रहते।

होते २ यह बात उनके पिता महाराज महासेन तथा माता शशिप्रभा के कर्णगोचर हुई सो उन्होंने राजकुमार के मन्त्रियों को एकान्त में बुलाकर उनसे राजकुमार के अस्वास्थ्य का कारण पूछा। वयस्यों ने साद्यन्त वृत्तान्त कह सुनाया कि बात ऐसी है और कि इनके रोग का कारण हंसद्वीपेश्वर की आत्मजा हैं। उनका कथन सुन राजा महासेन ने अपने पुत्र सुन्दरसेन से कहा "पुत्र! यह तुम क्यों छिपाते हो ? यह तो योग्य पात्रही है। मन्दारवती कन्याओं में रत्न है और तुम्हारे योग्य है पुनः उसके पिता मन्दारदेव तो हमारे बड़े मित्र हैं। यह विषय तो बड़ाही सुखसाध्य और द्रुतसाध्य है सो तुम इसमें इस प्रकार इतना व्यग्र क्यों हुए जाते हो ?" इस प्रकार पुत्र को समुझा बुझा शान्ति देकर महाराज महासेन

(१) गद्दा।

ने अपने मन्त्री से परामर्श कर उस कन्या की याचना के निमित्त सुरतदेव नामक एक दूत को हंसद्वीप में राजा मन्दारदेव के पास भेजा और उस दूत को राजकुमार सुन्दरसेन का वह चित्रपट दे दिया कि जिससे उनके रूप का प्रकाश वहां हो जावे कि उनका भी रूप कैसा अलौकिक है।

अब दूत सुरतदेव तुरन्त वहां से चला और चलता २ समुद्र किनारे राजा महेन्द्रदत्त के शशाङ्कपुर नामक नगर में पहुंचा। वहां वह अर्णवपोत पर आरूढ़ हुआ और चला २ कुछ दिनों में हंसद्वीप में पहुँचा और तहां राजा मन्दारदेव के मन्दिर पर उपस्थित हुआ। द्वारपालों ने महाराज मन्दारदेव को उसके आगमन की सूचना दी और राजाज्ञा पाय सुरतदेव राजसभा में उपस्थित हुआ और महाराज मन्दारदेव ने कुशलप्रश्नानन्तर उसका उचित आतिथ्य किया।

अब वह दूत महाराज महासेन का सन्देशा सुनाकर कहने लगा कि नृपती! महाराज महासेन ने यह सन्देशा भेजा है कि आप अपनी दुहिता मेरे पुत्र सुन्दर-सेन के लिये दे देवें। कात्यायनी नाम्नी तापसी जो राजकुमारी का चित्र उतार लायी थी सो यहां उसने राजकुमार को दिखाया। उसका रूप मेरे पुत्र के अनु-रूप ठहरा, सो मैं भी सुन्दरसेन का चित्र भेजता हूँ कि आपलोग भी देख लेवें कि राजकुमार का रूप कैसा है। मेरा पुत्र आत्मानुरूप भार्य्या के न पाने से विवाह नहीं किया चाहता और जहांलों हमलोगों को बुद्धि साक्षी देती है आप की दुहिता इनके अनुरूप हैं। सो महाराज यह उनका सन्देशा आपको मैं सुना गया और देखिये यह राजकुमार का चित्र है बस आप माधवीलता का संयोग मधु से कर देवें।

दूत का इतना कहना सुन मन्दारदेव ने अति प्रसन्नता से मन्दारवती राज-कुमारी तथा उनकी माता को बुलवाया, और उन्हीं के साथ चित्रपट खोलकर जो देखा कि देखते ही उनका यह घमण्ड जाता रहा कि मेरी दुहिता के समान पृथ्वी में कोई है ही नहीं। अब वह बोले "यदि इस राजपुत्र के साथ मेरी पुत्री का संयोग हो जाय तो इसके रूप का निर्माण सफल हो जाय। उनके विना न इसी की और इसके विना न उन्हीं की शोभा हो सकती है, कमलिनी विना हंस क्या और हंस विना कमलिनी क्या।" राजा का ऐसा वचन सुन रानी चद्रावती ने

भी उन्हीं का अनुकरण किया और मन्दारवती राजदुलारी उन दोनों की उक्ति के श्रवण करते ही उनके अनुपम रूप के निरीक्षण से तत्क्षण मदनवाण से आहत हो मोहित हो गयीं। वह एकटक से चित्रपट की ओर निरखती ही रह गयीं मानों निद्रारहित सोयी हुई हैं और चित्र क्या निरखती हैं स्वयं मानों चित्र हो गयी हैं। अपनी दुहिता मन्दारवती की एतादृश अवस्था देख महाराज मन्दारदेव ने उनका दान करना स्वीकार किया और दूत का बड़ा आदर और सम्मान किया।

दूसरे दिन उन्होंने कुमारदत्त नामक ब्राह्मण को अपनी ओर का दूत ठहरा के उस दूत के साथ महाराज महासेन के निकट भेजा और उन दोनों से कहा कि तुम दोनों अति शीघ्र जाकर मेरी ओर से अलकेश्वर महासेनजी से कहना कि आपके सौहार्द से मैंने अपनी कन्या दे दी अब कहिये आपके चिरञ्जीव यहां आवेंगे अथवा मैं अपनी पुत्री को वहां भेज दूँ?।

अब महाराज मन्दारदेव का सन्देश ले वे दोनों दूत वहां से चले और प्रवहण पर आरूढ़ हो अति शीघ्र समुद्र में चले। शशाङ्कपुर में पहुंचकर वे दोनों थल पर उतरे और थोड़े ही दिनों में अलकासी समृद्ध अलकापुरी में पहुँच गये। अब वे राजभवन में पहुँचकर महाराज महासेन के समक्ष उपस्थित हुए। महीपति ने उनका बड़ा सम्मान किया और तब उन दोनों ने बड़े सत्कार से महाराज मन्दारदेव का प्रति सन्देश कह सुनाया। सुनते ही महीश्वर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने दूतों को यथेष्ट पूजा की। अब उन्होंने मन्दारवती के पिता के भेजे हुए दूत से मन्दारवती का जन्मनक्षत्र पूछा और अपने गणकों से कहा कि राजकुमार के विवाह का लग्न ठहराइये। उन्होंने गणना करके बतलाया कि महाराज! आज से तीन मास के उपरान्त कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष की पञ्चमी तिथि को शुभलग्न ठहरता है यह लग्न वर और वधू के अनुकूल उतरता है। अब महाराज अलकेश्वर ने उसी लग्न में अपने पुत्र का विवाह निश्चित किया और पुत्र का भेजना भी स्वीकृत किया। एक पत्र लिखकर मन्दारदेव के दूत कुमारदत्त को दिया और साथ में अपनी ओर से अबकी वार चन्द्रस्वामी नामक एक दूत को साथ कर दिया। उन दूतों ने जाकर महीपति हंसद्वीपेश्वर मन्दारदेव को वह पत्र दिया और सारा वृत्तान्त कह

सुनाया। राजा लग्न सुन अति प्रसन्न हुए उन्होंने बड़े सत्कार से चन्द्रस्वामी का का स्वागत स्वागत किया और विधिवत् पूजाकर उसे बिदा किया। अब वह दूत लौटकर अलकापुरी में आया और सब वृत्तान्त कह गया कि महाराज वह लग्न उन्होंने धर लिया। अब दोनों ओर के लोग उस लग्न की प्रतीक्षा में बड़ी उत्कण्ठा से पड़े रहे।

उधर हंसद्वीप में मन्दारवती की यह दशा थी कि जब से राजकुमार सुन्दरसेन का चित्र देखा तब से उनको प्रतिक्षण उन्हीं का ध्यान बना रहता; और जब कि उन्हें यह ज्ञात हुआ कि लग्न तीन मास के उपरान्त पड़ा है तब तो उनको कामाग्नि और दूनी हो गयी और विरहव्यथा असह्य हो गयी। अङ्गों में शीतल चन्दन का लेप होता सो अङ्गार का काम करता, नलिनीपत्रों की जो शय्या थी सो उद्दीप्त बालुका सी प्रतीत होने लगी, सुधांशु की अति शीतल किरणें प्रदीप्त अनलशिखासी भासने लगीं; भाव यह कि सुन्दरसेन के विरह में समस्त आनन्दप्रद पदार्थ दुःखद प्रतीत होने लगे। भोजन पान सब छूट गये और विरह से उनका शरीर दिनोंदिन दुर्बल हो चला। राजकुमारी सर्वदा मौन रहने लगीं।

अब राजकुमारी मन्दारवती की ऐसी दशा देख उनकी एक आप्त सखी ने बड़े आग्रह से उनसे पूछा कि राजकुमारि! तुम्हारी यह क्या दशा हुई जा रही है? सखी उनकी बड़ी प्रिय थी अतः उसका अनुरोध वह न त्याग सकीं और अपने हृदय की व्यथा उससे कहने लगीं "सखि! अलकाधिप के पुत्र का चित्र जब से देखा तब से मेरा चित्त स्थिर नहीं है; यद्यपि इतना तो हुआ है कि उन के साथ विवाह स्थिर हो गया है तथापि अब लग्न इतना दूर पड़ गया कि मुझ से कुछ कहा नहीं जाता, और मेरी यह दशा है कि एक घड़ी पहाड़ सी बीतती है, मैं कितना भी धीरज धरती हूं पर मन धीरज नहीं धरता। वह देश बड़ी दूर है और इतने दिनों का अभ्यन्तर, फिर विधि की गति अति विचित्र है ही; सो कौन जानता है कि इस बीच में किसका क्या होगा। अब मैं देखती हूं कि मुझे इसी विरहव्यथा में प्राण त्यागने पड़ेंगे।" इतना कहती २ मन्दारवती विरह से अति व्याकुल हो गयी और तत्क्षण उसकी दशा बड़ी भयङ्कर हो गयी।

सखी के द्वारा मन्दारवती की इस दशा का वृत्तान्त महाराज मन्दारदेव को

विदित हुआ और तब वह अपनी भार्य्या के साथ उसे देखने के लिये स्वयं उपस्थित हुए देखें तो सचमुच मन्दारवती की दशा शोचनीय हो गयी है ; तब राजा मन्दारदेव अपने मन्त्रियों से इस विषय में मन्त्रणा करने लगे कि अब क्या किया जाय ? महाराज मन्दारदेव ने कहा कि अलकाधिपति महाराज महासेन हमारे मित्र हैं ही और यह मन्दारवती एक घड़ी का वियोग भी नहीं सह सकती है तो इसमें क्या लज्जा है यदि यह मन्दारवती वहां भेज दी जाय. अपने कान्त के समीप जब यह रहेगी तब इसे कुछ धैर्य्य होगा और तब वह आनन्द में कालक्षेप कर सकेगी । चलो यह परामर्श ठीक हो गया और उन्होंने मन्दारवती को बुला कर बहुत कुछ शान्ति दी ।

अब राजा मन्दारदेव ने बहुतसा धन देकर अपनी पुत्री को प्रवहण पर आरूढ़ कराया और साथ में अनेक सेवक कर दिये । राजमहिषी ने अपनी पुत्री के वैवाहिक सब मङ्गलकृत्य कर दिये । राजा ने विनीतमति नामक अपने मन्त्री को साथ कर दिया और शुभदिन में मन्दारवती को अलकापुरी की ओर विदा किया । प्रवहण वहां से चला ।

कुछ दिन तो अर्णवपोत सपरिच्छद मन्दारवती को लिये हुए निर्विघ्न चला गया । अब एक दिन की बात है कि अकस्मात् प्रचण्ड वेग से गर्जता हुआ मेघ रूपी तस्कर उठा, आंधी चली और मूषलधार वृष्टि भी होने लगी मानों वह तस्कर वाणप्रहार करता हो । अन्धड़ में पड़कर जहाज डाँवांडोल हो गया और क्षणभर में बड़ी दूर निकल गया । जहाज पर जितने लोग थे विनीतमतिसहित सब के सब समुद्र में डूब गये और मन्दारवती का सारा धन सागर के गम्भीर उदर में विलीन हो गया । राजकुमारी लहरों में पड़कर समुद्रतटवर्त्ती वन में जा पड़ीं मानों समुद्र ने अपने तरङ्गरूपी हाथों से उठाकर उन्हें वहां रख दिया हो। कहां समुद्र में गिरना और कहां तरङ्गों में पड़कर वन में पहुंचना । देखो भवितव्य को कुछ भी असाध्य नहीं हैं ।

उस अब्धि से तो राजकुमारी बच निकलीं, पर यहां निर्जन वन में इस प्रकार अपने को एकाकिनी देखकर अत्यन्त त्रस्त और विह्वल हो दुःखसागर में गोते खाने लगीं । "हा ! कहां को मैं प्रस्थित हुई और कहां आ पड़ी ! मेरे वे नौकर

चाकर कहां हैं ? और वह विनीतमति ही कहां है ? अकस्मात् हमलोगों पर यह क्या विपत्ति का बादल टूट पड़ा ! हा मेरी यह क्या दशा हो गयी ! मैं अभागिन अब कहां जाऊँ और क्या करूं ? हा मैं मारी गयी ! हा हत विधे ! तूने मुझे समुद्र से क्यों पार कर दिया ? हा तात ! हा अम्ब ! हा अलकापति के सुत आर्य्य-पुत्र ! तुम कहां हो, तुमको विना पाये ही मैं मरा चाहती हूं क्यों नहीं आकर मेरा परित्राण करते ?" इस प्रकार कह २ कर राजकुमारी मन्दारवती विलख २ रोती थीं उनकी आँखों से अश्रुविन्दु जो गिरते थे सो मानों मोती का हार टूट गया और मोती चूते हों।

इतने में यमुना नाम्नी बालब्रह्मचारिणी अपनी दुहिता को साथ लिये हुए मतङ्ग ऋषि समुद्रजल में स्नान करने के निमित्त आये, इनका आश्रम वहां से बहुत दूर नहीं था । ऋषि के कानों में राजकुमारी के रुदन की ध्वनि पड़ी । ऋषि अपनी पुत्री के सहित वहां राजकुमारी के समीप चले आये" क्या देखते हैं कि अपने यूथ से भ्रष्ट मृगी के समान राजकुमारी पड़ी हैं। "तू कौन है और इस वन में तेरा आगमन कैसे हुआ ? और तू क्यों रोती है" इस प्रकार दयालु ऋषि ने अति मधुर और स्नेहभरी वाणी से राजकुमारी से पूछा। उनके ऐसे पूछने से मन्दारवती ने समझा कि यह कोई दयालु महापुरुष हैं सो वह धीरज धर लज्जा से शिर नीचे कर अपना सारा वृत्तान्त साद्यन्त सुना गयीं । अब ध्यान से सब जानकर मतङ्ग मुनि ने राजकुमारी से कहा 'राजपुत्रि ! विषाद मत कर धैर्य्य धर । शिरीष के समान तू कोमलाङ्गी है तुझे क्लेश वाधा देता है, विपद् यह नहीं देखती कि अमुक कोमल तथा सुकुमार है और अमुक कठोर है। अच्छा तू धीरज धर, मेरी बात मान, अति शीघ्र तू अपने अभीष्ट पति को प्राप्त करेगी, सो चल अब मेरे आश्रम में, जो कि समीप ही है, इस मेरी तनया के साथ रह, तुझे वहां किसी प्रकार का कष्ट न होने पावेगा मानों तू अपने घर ही में रहेगी।" इस प्रकार मन्दारवती को समझा बुझाकर मुनि ने स्नान किया और पश्चात् वह अपनी पुत्री के साथ मन्दारवती को अपने आश्रम में ले गये । अब राजकुमारी मन्दारवती वहां मतङ्ग ऋषि के आश्रम में अपने पति के मिलने की प्रतीक्षा में रहने लगीं और मतङ्ग मुनि की कन्या के साथ ऋषि की परिचर्य्या में रहकर अपना मन बहलाती थीं ।

उधर अलकापुरी में राजकुमार सुन्दरसेन अपनी प्राणप्रिया से मिलने के हेतु विवाह की प्रतीक्षा में दिन गिन रहे थे। ज्यों २ दिन बीतते थे उनकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती थी और विरहव्यथा से वह भी अधिक व्यथित हुए जाते थे। रात दिन मन्दारवती कीही चिन्ता में पड़े रहते इससे शरीर क्षश होता गया। चण्डप्रभ इत्यादि उनके मित्र बहुत कुछ समझाते बुझाते थे।

अस्तु, अब लग्न का समय निकट आया और उनके पिता ने हंसद्वीप जाने की यात्रा की सब सामग्री जुटा दी। अब शुभ मङ्गल दिन में प्रस्थानकालीन मङ्गलकृत्य करके नृपात्मज सुन्दरसेन दलबल के साथ धरित्री को कम्पाते हुए चले। अपने मित्रों के साथ आनन्द में मग्न चले जा रहे थे; विविध आमोद के आलाप हो रहे थे; इतने में सब लोग समुद्रतट के आभरणस्वरूप शशाङ्कपुर में पहुँचे। राजा महेन्द्रादित्य को आपके आने का सम्बाद ज्ञात हुआ तो वह बड़ी नम्रता और शिष्टता से अगवानी के लिये आये और विनयपूर्वक बड़े सत्कार से उनका स्वागत कर गजेन्द्र पर आरूढ़ करा उन्हें अपनी नगरी में ले चले। उनके आगमन की वार्त्ता सुन पुरसुन्दरियों के मन में उनकी सुन्दरता के निरीक्षण के लिये बड़ी उत्कण्ठा हुई सो सब अट्टालिकाओं, गवाक्षों तथा प्रासादों से उनका अनुपम रूप निरखने लगीं; उस समय उनके हृदयों में अद्भुत खड़बड़ी मच गयी जैसे कि पद्मिनी वन में वतास से हो जाती है। अब राजकुमार सुन्दरसेन एवं मन्त्रियों सहित राजमन्दिर में पहुँचे। महाराज महेन्द्रादित्य की ओर से अनेक प्रकार के उपचार होने लगे, विविध परिचर्य्या होने लगी और महाराजकुमार सुन्दरसेन ने विश्राम किया। उनका दिन तो किसी प्रकार से बीता, क्योंकि मन तो मन्दारवती में लीन था इससे दिन अपार हो रहे थे अस्तु महाराज के आतिथ्य से किसी प्रकार वह दिवस व्यतीत हुआ और जगत् की रञ्जनी रजनी आ पहुँची। अब इनके मन में नाना प्रकार के मनोरथ के तरङ्ग उठने लगे। कब ऐसा हो कि समुद्र पार कर अपनी प्राणप्रिया को पाऊँ, वह नवोढ़ा, जिसका प्रेम कि सुलभ है, सुलभ प्रेम तथा लज्जा और भय से सहमती हुई कब मुझे प्राप्त होगी। जब कि मैं आलिङ्गन करने लगूंगा उस समय "मत जी २" कहके बोलती हुई उस की मधुर तथा कोकिलकण्ठविन्दिनी वाणी कब सुनूंगा। इसी प्रकार अनेक

प्रकार चिन्ता वह रात भर करते रहे, निद्रा आँखों पर न आयी और मनोरथों ही के द्वारा वह रात्रि व्यतीत हो गयी ।

प्रातःकाल हुआ और चलने का उपक्रम होने लगा, राजकुमार ने अपनी सेना वहीं छोड़ दी और थोड़े से लोगों को जिनका सङ्ग जाना आवश्यक था साथ में ले लिया । साथ में महाराज महेन्द्रादित्य भी चले और सब लोग समुद्र तट पर पहुँचे । वहां राजकुमार सुरेन्द्रसेन अन्नजल से परिपूर्ण एक प्रवहण पर राजा महेन्द्रादित्य तथा अपने मन्त्रियों के साथ आरूढ़ हुए और दूसरे पर उन्होंने अपने परिजनों को, जिनका सङ्ग ले जाना आवश्यक था, चढ़ाया । अब जहाज छूटे और उनपर की पताकाएँ फहराने लगीं और दोनों पोत दक्षिण पश्चिम (१) दिशा की ओर बढ़े ।

दो तीन दिवस पर्य्यन्त अर्णवपोत निर्विघ्न चले गये कि अकस्मात् एक बड़ा प्रचण्ड उत्पातकारी पवन उठा; जलधि के तट के वन लगे हिलने कि अहो यह प्रचण्ड अद्भुत पवन आया, इसी आश्चर्य से समस्त वृक्ष लहराने लगे । अब पयोधि का जल भी उठने और गिरने लगा, तरङ्ग उठते और गिरते जैसे कि कालक्रम से मन के भाव उठते और पुनः स्वस्थान पर गिर जाते हैं (२) । हाहाकार मच गया और रत्नाकर को रत्नों का अर्घ्य दिया गया और कर्णधारों ने पाल उतार लिये, अब सब को जीने की आशा जाती रही । चटपट लोगों ने बड़े २ और भारी २ ढोंके सिकड़ियों में बाँधकर चारोंओर लटका दिये तथापि तरङ्गों में पड़कर दोनों जहाज युद्ध करते हुए गजेन्द्रों के समान घूमने लगे ।

अब सब के धैर्य्य का नाश हो गया, उस समय सुन्दरसेन ने राजा महेन्द्रादित्य से कहा, "महाराज ! मेरे पाप से यह प्रलय अकस्मात् आपलोगों पर आ पड़ा है, आपलोगों का विनाश मैं नहीं देख सकता इससे अब अम्बुधि में गिर कर प्राणत्याग कर देता हूं" इतना कह, दुपट्टे से कमर बाँध राजकुमार सुन्दरसेन झटपट समुद्र में कूद पड़े । उनका ऐसा घात देख उनके पांचों वयस्य चण्डप्रभ

(१) नैऋर्तकोण ।

(२) यहां यह भी अर्थ निकलता है कि जैसे प्रेम बढ़ता है और कालक्रम से घट जाता है ।

इत्यादि और महाराज महेन्द्रादित्य भी अम्भोधि में कूद पड़े । बाहुओं से सब लोग तैरने लगे सब की चेतना जाती रही और तरङ्गों में पड़कर सब के सब कहां के कहां चले गये। इतने ही में पवन थम गया और समुद्र का गर्जन रुक गया बिलकुल गौथा हो गया, समुद्र इस समय उस सज्जन के समान हो गया जिसका कोप कि क्षणभर में ही शान्त हो गया हो।

इसी अवसर में कहीं से बहता हुआ चला आाथा एक पोत सुन्दरसेन को मिला, सुन्दरसेन के और २ सङ्गी तो न जानें कहां चले गये रहे पर दृढ़बुद्धि किसी न किसी प्रकार उनके साथ २ लगा रहा । सो महाराजकुमार सुन्दरसेन अपने एक ही उस मन्त्री के साथ उस अर्णवपोत पर आरूढ़ हुए। प्रवहण कहां और किधर जाता हैं कुछ भी उनको ज्ञात नहीं होता था, चारोंओर उन्हें जलही जल दीख पड़ता था मानों यह संसार जलमय है. उनका पौरुष भी कुछ काम नहीं करता था अब देंवताओं को शरण के अतिरिक्त उनका पौरुष और कुछ न था बस दोनों जन भगवान् की शरण में पड़ रहे। जगदीश्वर की कृपा से पवन अनुकूल बहने लगा और तीन दिन में वह जहाज जाकर तीरे लगा । जब कि तीर पर जाकर जहाज अँटक गया उस समय दोनों जनों के हृदय में बड़ा आनन्द हुआ, अब उन्होंने उतरकर थल पर पांव क्या रक्खे मानों जीवन की आशा में पैर धरे हों।

अब, जब कि वे तीर पर उतरे तब बैठकर सुस्ताने लगे । अब जाकर सांस आयी। तब राजकुमार सुन्दरसेन अपने वयस्य दृढ़बुद्धि से कहने लगे "भाई! इस समुद्र से हम क्या पार हुए हैं मानों पाताल से हमारा उद्धार हुआ है। देखो तो सही विक्रमशक्ति, व्याघ्रपराक्रम, चण्डप्रभ और भीमभुज ऐसे २ मेरे सचिव; और अकारणबन्धु महाराज महेन्द्रादित्य; इन सभों का विनाश मेरे ही कारण हुआ; तब उनके विनष्ट हो जाने पर मेरे जीने से क्या ? मेरे जीवन की शोभा अब क्या रह गयी ?" राजकुमार का एतादृश कथन सुन दृढ़बुद्धि बोला "देव ! आप धैर्य का अवलम्बन कीजिये, हमारा कल्याण होगा; जैसे हम दोनों बच निकले ऐसे ही बहुत सम्भव है कि वे भी समुद्र से बच गये हों, दैवगति का निश्चय भला कौन कर सकता है और राजकुमार! दैव की गति बड़ी अतर्क्य है कोई जान भी नहीं सकता।"

इस प्रकार अनेक सान्त्वनामय वाक्यों से दृढ़बुद्धि राजकुमार को समझा-बुझा रहा था कि इसी अवसर में दो तपस्वी वहां स्नान करने के निमित्त आये और उन दोनों को देख, विपत्ति राजकुमार के पास आकर सदय कहने लगे "हे सुमते! पूर्व कर्म बड़ा बलिष्ठ है, उन्हीं पूर्व कर्मों के प्रताप से सुख और दुःख होते हैं देवताओं में भी इतनी शक्ति नहीं कि उनको अन्यथा कर सकें; सो धीर को उचित है कि जो वह दुःख त्याग किया चाहे तो धर्माचरण करे, बस यही उसकी प्रतिक्रिया है, न कि शोक और शरीर का तपाना। सो आप विषाद त्याग करें और अपने शरीर की रक्षा कीजिये, शरीर जब बचा रहेगा तभी पुरुषार्थ भी सिद्ध हो सकेगा। आप कल्याणलक्षण भासते हैं इससे आपका कल्याण अवश्य भावी है।" इस प्रकार समाश्वासन दे दोनों मुनि इन दोनों को अपने आश्रम को ले गये। वहां राजकुमार सुन्दरसेन अपने मन्त्री दृढ़बुद्धि के साथ प्रतीक्षा कर रहने लगे।

इधर की बात यह है कि उनके दो मन्त्री भीमभुज और विक्रमशक्ति तैरते २ पृथक् २ जाकर किनारे लगे। वे बड़े ही दुःखित हुए पर उनके मन में एक यह आशा उत्पन्न हुई कि जैसे हम तैरकर पार हुए हैं वैसे ही कदाचित् राजकुमार भी तैरकर पार पहुंच गये हों बस इसी से उन्हें खोजते २ महाटवी में पैठे। शेष उनके दो सचिव चण्डप्रभ और व्याघ्रपराक्रम तथा राजा महेन्द्रादित्य उसी प्रकार समुद्र के पार हुए और सुन्दरसेन को ढूंढ़ने लगे परन्तु न पाकर अत्यन्त दुःखित और खिन्न हुए। उनका जहाज भी जैसा था वैसा ही बिना क्षति के उन्हें मिल गया सो वे उसपर आरूढ़ हो शशाङ्कपुरी को चले गये। यहां राजकुमार की सेना तो पहिले ही अवस्थित थी, दोनों मन्त्रियों से सारा वृत्तान्त सुन सारी सेना शोकसागर में मग्न हो गयी। अस्तु दोनों मन्त्री चण्डप्रभ और व्याघ्रविक्रम सेना सहित अलकापुरी को चले।

सब लोग जब बिलपते कलपते अलकापुरी में पहुंचे तिस समय पुरी आर्त्तनाद से गूंज उठी, सारी प्रजा राजकुमार की दैवदुर्घटना का वृत्तान्त सुन विकल हो रोने लगी। चलो होते २ यह वृत्तान्त महाराज महासेन तथा महारानी के कानों में पहुंचा; पुत्र की एतादृशी गति सुन उनकी जो दशा हुई सो वर्णनातीत है, बस

इतना ही समझना चाहिये कि उनके प्राण नहीं निकले और सब कुछ हो गया आयुष्य रहते कोई मरता कदापि नहीं तो वे क्योंकर मर सकते हैं बस यह कारण है कि राजा रानी का प्राणान्त न हुआ। अब दोनों जनों ने यह सिद्धान्त किया कि जब पुत्र ही की यह गति हुई तो हम जीकर करेंगे क्या इतना विचा वे प्राणत्याग पर उद्यत हो गये पर उनके सचिवों ने नाना प्रकार के उदाहरण कर सान्त्वनामय वचनों से आशा दिला किसी प्रकार उन्हें इस कार्य्य से निवृत्त किया। अस्तु राजा अब नगर के बाहर शिवालय में रहने लगे और अपने पुत्र का अनुसन्धि लगाते हुए तपश्चर्य्या में लीन हुए।

उधर हंसद्वीप में महाराज मन्दारदेव को भी अपने दामाद तथा बेटी के समुद्र में पतन का वृत्तान्त ज्ञात हुआ; और उनको यह भी ज्ञात हुआ कि जामाता के दो सचिव अलकापुरी में पहुंचे हैं तथा उनको इस बात का पता लगा कि महाराज महासेन इस दुःखद वृत्तान्त से व्याकुल हो राजकाज सब छोड़छाड़ तपश्चर्य्या में लीन हो गये। तो वह भी अपनी दुहिता के शोक से अति कातर हो मरने पर उद्यत हुए किन्तु मन्त्रियों के समझाने बुझाने से उस व्यापार से विरत हुए तब वह अपने मन्त्रियों पर राज्य का भार रख अलकापुरी में समदुःखी महाराज महासेन के समीप चले, साथ में उनकी महिषी देवी कन्दर्पसेना भी चलीं। उन्हों ने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि महासेन महीपति पुत्र के वृत्तान्त का निश्चय कर जो कुछ करेंगे वही मैं भी करूंगा। उनको तो मन्दारवती का वृत्तान्त ज्ञात ही था इधर महीश महासेन को पुत्र का वृत्तान्त विदित था सो दोनों जन समदुःखी मिलकर ऐसे शोकमग्न हुए कि उस समय करुणारस छाय गया। इस हंसद्वीपेश्वर भी अलकेश्वर के साथ वहीं रहकर तपश्चर्य्या में लीन हुए, परिमित शरीरपोषण मात्र भोजन करते और कुश के आस्तरण पर शयन करते। इस प्रकार दैववश सब लोग तितर बितर हो गये जैसे पवन के झकोरों से पत्ते कहां से कहां जा पड़ते हैं।

अस्तु अब उधर सुन्दरसेन राजकुमार का क्या वृत्तान्त था उसका भी कुछ वर्णन होना चाहिये। दैवात् राजकुमार सुन्दरसेन मतङ्ग ऋषि के आश्रम के निकट, जहां कि मन्दारवती थी, पहुंच गये। वहां क्या देखते हैं कि एक अति

मनोहर तड़ाग लहरा रहा है, जिसका जल अति निर्मल किनारे पर नाना रङ्ग के रसों के वृक्ष अपने फलों के भार से झुके हुए हैं जिनको छाया से तट आच्छादित है। राजकुमार सुन्दरसेन चलते २ थक तो गये हो थे सो वहां वह अपने सखा दृढ़बुद्धि के साथ उतरे। तब दोनों जनों ने उसी तड़ाग के स्वच्छ जल में स्नान कर सुमधुर और स्वादिष्ट फलों का भक्षण किया। अब विश्राम करने के उपरान्त दोनों जने वहां से चले और चलते २ एक नदी पर पहुंचे। अब राजकुमार उसी वननदी के किनारे २ चले और आगे जाकर क्या देखते हैं कि शिवालय के समीप मुनिकन्याएं फूल चुन रही हैं। ऐसी भासती थीं कि फूल तोड़ने के परिश्रम से वे व्यग्र हो गयी हैं। उन मुनिकन्याओं के मध्य एक अद्भुत लोकसुन्दरी दीख पड़ी जिसको सुन्दरता का वर्णन क्योंकर किया जावे, उसको कान्ति से समस्त वन जगमगा रहा था, मानों चन्द्रिका छिटकी हो। जिस ओर वह दृष्टि करती थी उसी ओर "जनु तहँ बरस कमल सित श्रयनी" की कहावत चरितार्थ हो जाती थी जहां २ उस कोमलाङ्गी के चरण पड़ते थे वहां २ कमल वन मानों फैल जाता था।

उस ललनाललाम के अलौकिक सौन्दर्य के दर्शनों से राजकुमार सुन्दरसेन को बड़ा ही आश्चर्य हुआ सो वह अपने सचिव दृढ़बुद्धि से कहने लगे भाई दृढ़बुद्धि! यह कौन सुन्दरी है; क्या सहस्रनयन (१) के नेत्रों को आनन्ददायी? यह कोई अप्सरा तो नहीं है? अथवा पुष्पलग्नाग्रकरपल्लवा (२) वनलक्ष्मी तो नहीं है? विधाता बहुत दिनों से दिव्याङ्गनाओं को बनाते २ बड़े ही प्रवीण हो गये हैं इसी से इसका ऐसा नूतन और अति अद्भुत रूप वह बना सके। मैंने अपनी प्राणेश्वरी मन्दारवती का जो चित्र देखा था सो यह उसी की अनुहार प्रतीत होती है कदाचित् वही न हो। भला यह कब सम्भव हो सकता है कहां वह हंसद्वीप में और कहां यह वनान्तर! सो कुछ ज्ञात नहीं होता कि यह मनोरमा कौन है और कहां से इस जङ्गल में आयी?" तब दृढ़बुद्धि उस वरकन्या को देख कर राजकुमार से कहने लगा, 'देव! यह तो कोई अन्य ही प्रतीत होती है। देखिये न इसके, हार करधनी प्रभृति आभरण यद्यपि फूलों के ही बने हैं तथापि

(१) इन्द्र। (२) पुष्पों में जिसका करपल्लव लगा है।

उनसे इसकी कैसी शोभा हो रही है। भला ऐसा रूप ऐसा सौकुमार्य्य इस जङ्गल में कहां? सो यह या तो कोई अप्सरा हो नहीं तो राजकन्या हो, यह ऋषि कन्या कदापि नहीं हो सकती। सो आइये क्षणभर कहीं खड़े होकर देखें कि क्या होता है।" दृढ़बुद्धि की ऐसी उक्ति सुन राजकुमार उठे और दोनों जन जा कर एक पेड़ की आड़ में छिप रहे।

उधर उन ऋषिकन्याओं का फूल चुनना समाप्त हो गया और वे उस वरकन्या के साथ स्नान करने के निमित्त नदी में उतरीं और जल में कलोल करने लगीं। सब आनन्द से जलक्रीड़ा में प्रवृत्त रहीं कि इसी अवसर में एक ग्राह ने आकर उस वरकन्या की टांग पकड़ ली तब तो सब मुनिकन्यायें भय के मारे अति व्याकुल हो गयीं और आर्त्तस्वर से चिल्लायीं कि हे वनदेवताओ बचाओ २ यह मन्दारवती निःशङ्क नदी में स्नान कर रही थी कि ग्राह ने आकर इसे पकड़ लिया अब यह मरी। इतना सुनते ही राजकुमार सुन्दरसेन के मन में हुआ कि क्या यह प्रिया मन्दारवती ही है इतना सोच वह चट दौड़े और वहां पहुँच छुरे से उस ग्राह का वध कर मन्दारवती को तटपर निकाल लाये मानों मृत्यु के मुँह से, और उसे समाश्वासन देने लगे कि अब कोई चिन्ता नहीं है धीरज धरो।

अब मन्दारवती भय से मुक्त हो उन सुभग राजकुमार अपने परित्राता को देखकर मन में विचारने लगीं कि यह कौन महात्मा मेरे भाग्य से आ गये कि मेरे प्राण बचे। जो अलकानाथ के पुत्र अपने प्राणेश्वर का चित्र देखा था यह तो उन्हीं के अनुहार प्रतीत होते हैं। क्या यह वही तो नहीं हैं? हा यह मैं क्या सोच रही हूं परमात्मा ऐसा कभी न करें कि वह ऐसे विदेश में आ पड़ें। अस्तु अब पराये पुरुष के समीप मेरा ठहरना उचित नहीं है सो यहां से चलना चाहिये भगवान् इन महात्मा का कल्याण करें। इतना विचारकर मन्दारवती अपनी सखियों से बोली "आओ सखियो इन महात्मा को प्रणाम करके चलें।"

राजकुमार सुन्दरसेन का मन तो सन्दिग्ध था ही, किन्तु नामश्रवण से सन्देह कुछ निवृत्त हुआ सो वह मन्दारवती की एक सखी से पूछने लगे, "हे शोभने! मेरे मन में एक बड़ा कौतुक है सो तुम शान्त कर दो, कहो तो सही यह तुम्हारी सखी कौन हैं और किसकी यह बेटी हैं?" उनके ऐसे वचन सुन वह मुनिकन्या

इस प्रकार कहने लगी, 'महाभाग ! यह तो हंसद्वीपेश्वर महाराज मन्दारदेव की पुत्री मन्दारवती है । राजकुमार सुन्दरसेन के साथ इसका विवाह स्थिर हुआ था सो उन्हीं के निमित्त लोग इसे जहाज पर अलकापुरी को लिये जा रहे थे कि तरङ्गों में पड़ जहाज टूट गया और यह लहरों से किनारे पर पहुँचा दी गयी । मतङ्ग मुनि को वहीं मिली सो दयालु ऋषि इसे अपने आश्रम में लाये ।"

इतना सुनते ही राजकुमार सुन्दरसेन तो एक साथ हर्ष और विषाद में मग्न हो गये और इधर उनका सखा दृढ़बुद्धि आनन्द के मारे नाचने और कहने लगा राजकुमार ! आप धन्य हैं ! देवी मन्दारवती आपको मिल गयी, भला जिनके लाभ के लिये हमलोग अनेक मनोरथ बाँधते थे वह स्वयं हमारे नेत्रों के समक्ष आ गयीं । तब उस सखी ने उससे पूछा कि यह तुम क्या बड़बड़ा रहे हो । उसका ऐसा कथन सुन दृढ़बुद्धि साद्यन्त राजकुमार का वृत्तान्त सुना गया । तब तो सब मुनिकन्याएँ उस सखी से समस्त वृत्तान्त जानकर राजकुमारी मन्दारवती को धन्य २ कहकर आनन्दित करने लगीं । अब मन्दारवती और विरह न सम्भाल सकी "हा आर्य्यपुत्र !" कहकर रोती हुई सुन्दरसेन के चरणों पर गिर पड़ी । सुन्दरसेन भी उसे गले लगा मुक्तकण्ठ रोने लगे उस समय करुणारस वहां छाय गया । उनका रुदन सुन करुणा से वहां के काठ और तिनके तथा पाषाण भी रोने लगे ।

अब मुनिकन्याओं ने जाकर महर्षि मतङ्ग से सारा वृत्तान्त कह सुनाया सो वह चटपट यमुना के साथ वहां दौड़ आये । उन्हें देखते ही सुन्दरसेन उनके चरणों पर गिर पड़े और मुनि बहुत कुछ समझाबुझाकर सब को अपने आश्रम में ले गये । महर्षि ने उनका आतिथ्य किया और राजकुमार ने सब शोच त्याग विश्राम किया । दूसरे दिन महामुनि ने राजपुत्र से कहा "पुत्र ! मुझे आज किसी कार्य्य से श्वेतद्वीप को जाना है सो तुम मन्दारवती के साथ अब अलकापुरी को जाओ, वहां इस राजकुमारी के साथ विवाह करके पृथ्वी का धर्म्म से पालन करियो । मैं इसको पुत्री के समान मानता हूं अब तुम्हारे हाथ में इसको दान करता हूं । इस के साथ तुम बहुत दिनोंलों इस वसुन्धरा का पालन करोगे और अति शीघ्र अपने पौर सब मन्त्रियों को पाओगे ।" इतना कह मुनि मतङ्ग उनसे विदा हो अपनी

कन्या यमुना के साथ, जो कि तपोवल में उन्हीं समान थी, आकाश में उड़े और चले गये।

इनके उपरान्त राजकुमार सुन्दरसेन मन्दारवती और दृढ़बुद्धि के साथ उस आश्रम से चले और चलते २ समुद्र किनारे आ पहुंचे सो क्या देखते हैं कि एक युवा वणिक् का छोटा जहाज निकट चला आ रहा है। इन्होंने सोचा कि जो इसपर हम चढ़ लें तो मार्ग का सुभीता हो जायगा इतना विचार उन्होंने दृढ़बुद्धि से पुछवाया कि भाई हमको भी चढ़ाते ले चलो तो बड़ी कृपा हो। वह वणिक् सम्मत हुआ और जहाज तीर पर ले आया किन्तु मन्दारवती को देखकर वह कामदेव के वश में हो गया और उसके मन में पाप समाया। अब सुन्दरसेन ने अपनी प्रिया को उस जहाज पर चढ़ाय दिया और ज्योंही कि वह स्वयं चढ़ा चाहते थे कि उस कामान्ध परस्त्रीलोलुप वणिक् ने मल्लाह को सङ्केत किया और जहाज वहां से आगे बढ़ा। राजकुमारी मन्दारवती हाहाकार करके रोने लगीं और बात की बात में वह जहाज उनको लिये दिये राजकुमारी सुन्दरसेन की दृष्टि के बाहर हो गया।

"हा! धिक्! चोरों ने मूस लिया" इस प्रकार आर्त्तनाद से चिल्लाते हुए राजकुमार धड़ से पृथ्वी पर गिर पड़े और बहुविध विलाप करने लगे। तब दृढ़-बुद्धि उन्हें समझाने लगा "राजपुत्र! उठिये, विकलता का त्याग कीजिये। यह आप क्या कायरों सा व्यवहार कर रहे हैं। आइये हम इसी मार्ग से चलकर उस चोर का पता लगावें। पण्डित लोग आपत्काल में तथा कष्ट के समय उत्साह का त्याग नहीं करते।" इस प्रकार दृढ़बुद्धि से समझाये जाकर राजकुमार सुन्दरसेन किसी प्रकार धैर्य्य का अवलम्बन कर उठे और वहां से चले।

राजकुमार चले तो जाते थे परन्तु "हा देवि", "हा मन्दारवति", कहकर वार २ उसांस लेते और विलाप करते जाते थे। इस प्रकार प्रतिक्षण वह विर-हाग्नि से जले जा रहे थे। आहार भी त्याग दिया केवल दृढ़बुद्धि उनका सहायक रहा। चलते थे तो जैसे कोई उन्मत्त हो, इसी प्रकार चलते २ एक बड़े वन में पहुंचे। यहां पहुंचते ही उनकी दशा और भी हीनतर हो गयी अब तो अपने सखा की भी बात नहीं सुनते थे। यहां तो उनका उन्माद और बढ़ गया और

वह इधर उधर दौड़ने लगी। जब कभी वह फूली लता देखते तो यह कहते "अरे यह क्या पुष्पों के आभरणों से आच्छादित मेरी प्रिया उस वणिक् चोर से छूट भागी है, ठीक वही है।" कमलों पर जब दृष्टि पड़ती तब कहते, "लो मेरी प्रिया उस दुष्ट के भय से सरोवर में डूब गयी, देखो न मूड़ निकालकर मुझको देख रही है।" जब पत्र लताओं के बीच कोकिल का कूजन सुनते तब कहते कि क्या वह मञ्जुभाषिणी मुग्धा मुझसे कुछ कह रही है? इस प्रकार जितने वेग आगे बढ़ते उतनी कल्पनाएँ करते जाते थे और पद २ पर मोहित हो जाते जिस प्रकार सूर्य्य का ताप तपाता उसी प्रकार चन्द्रमा की किरणें भी अनुतापित करती थीं। रात दिन का भेद उन्हें कुछ भी बोध नहीं होता था बराबर इधर से उधर घूमा करते।

इस प्रकार राजकुमार सुन्दरसेन उन्माद में चले जाते थे और एकमात्र दृढ़बुद्धि विचारा उनके पीछे २ चला जाता था। मार्ग तो भटक गये और चलते २ एक महारण्य में जा पहुंचे जहां बड़े २ गैंड़े खांग उठाये दौड़ते जिनसे कि वह अरण्य महाभयङ्कर प्रतीत होता था, सिंहों का वह वासस्थान जिनसे कि भय की अधिक वृद्धि होती थी। जैसे सेना भयङ्करी दृष्टिगोचर होती हैं वैसे ही वह अटवी दीख पड़ती थी और ऊपर से दस्युओं की सेना का निवासस्थान मानों। इस प्रकार उस आश्रयहीन अरण्य में राजकुमार घुम रहे थे कि आयुध उठाये हुए पुलिन्दों ने आकर उन्हें घेर लिया। उस देश के राजा पुलिन्देन्द्र विन्ध्यकेतु की आज्ञा से भगवती दुर्गा के समक्ष वलि चढ़ाने के अर्थ पुरुषपशुओं को ढूंढ़ रहे थे। विदेश में जाकर विरह का क्लेश, नीच से पराभव, अनाहार और मार्ग का सन्ताप इस प्रकार की पांचों अग्नि में तो पड़कर राजकुमार भस्म हो ही रहे थे कि यह दस्युओं का धावा छठी अग्नि हुई। अहो! मानों विधि ने राजपुत्र के धैर्य्य की परीक्षा के लिये इन सन्तापों का जोगाड़ कर दिया हो।

उन दस्युओं ने उन दोनों पर वाणों की झरी लगा दी किन्तु राजकुमार और दृढ़बुद्धि ने तलवारों से बहुतों की यथेष्ट पूजा की। जब राजा विन्ध्यकेतु को वृत्तान्त ज्ञात हुआ कि सब सेना काम आ गयी तब उन्होंने दूसरा दल उनके पकड़ने के लिये भेजा उनमें से भी बहुतेरे चोरों को युद्धविद्याविशारद राजकुमार सुन्दरसेन

ने यमलोक का पान्थ बना दिया। राजकुमार तथा उनका साथी दृढ़बुद्धि लड़ते लड़ते लस्तपस्त हो गये, कहां ये दो और वे अनेक, फल यह हुआ कि राजकुमार अपने वयस्यसहित आघातों से अति क्लान्त हो मूर्छित हो गिर पड़े और शबरों ने उन्हें बाँधकर ले जाकर कारागार में डाल दिया। कारागार का क्या वर्णन किया जाय, महाभयङ्कर मृत्यु को मानों गुफा; चारोंओर जाले लगे हैं जिनपर सांपों की केंचुलें इतस्ततः लटक रही हैं; घुटनों धूल पड़ी है। मूसों के इतने बिल कि मानों वह स्थान बर्रै का छत्ता हो। इनके समान वहां और भी कईएक जन पड़े अपने भाग्य की परीक्षा कर रहे थे। वह स्थान ऐसा भयङ्कर था मानों समस्त नरकों की उसी से उत्पत्ति हुई हो। वहां पर राजकुमार ने अपने दो मन्त्रियों को जो कि पूर्व ही से वहां बाँधकर डाले गये थे, देखा। ये दोनों भीमभुज और विक्रमशक्ति थे। जब कि समुद्र से पार हो अपने प्रभु को ढूंढ़ते २ वे दोनों उन जङ्गल में पहुंचे थे कि पकड़कर वहां डाल दिये गये थे। वे दोनों अपने प्रभु को पहिचानकर उनके चरणों पर गिरकर रोने लगे, राजकुमार ने भी उन्हें उठाकर कण्ठ से लगाया और उनके नेत्रों से अश्रु को धारा बह चली। परस्पर दर्शन से उनलोगों का दुःख सौ गुना हो गया। इस प्रकार इन रोते हुए चारों जनों को और २ लोग जो कि वहां उसी उद्देश्य से बन्द थे, समझाने लगे कि भाइयो! दुःख करके क्या करोगे उससे क्या हानि का है? पूर्व कर्म्म का उल्लङ्घन कौन कर सकता है। देखो न हमलोगों को भी तो वही दशा है। हम सभों की मृत्यु एक साथ लिखी है। हमलोगों को पुलिन्देश्वर ने इसलिये पकड़ के यहां रक्खा है कि आगामिनी चतुर्दशी को देवी के समक्ष हमलोग बलि चढ़ाये जावें। सो सोच कर के होगा क्या? समस्त जन्तु विधाता के खिलौने हैं जैसे चाहे वह खेले विधि की गति बड़ी विचित्र है कौन उसका पार पा सकता है? सो जैसे उसने अभद्र में तुमलोगों को डाल रखा है वैसे ही वह तुम्हारा कल्याण करे। इस प्रकार उन बन्धनस्थ पुरुषों का सान्त्वनामय वचन सुन सब को कुछ २ शान्ति हुई और सब अपने भाग्य का दिन गिनते वहीं पड़े रहे। हा! कैसे कष्ट की बात है कि आपत्तियां महापुरुषों को भी नहीं छोड़ती।

अब चतुर्दशी आयी और पुलिन्देश्वर ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि उन

पुरुषपशुओं को ले आओ जिन्हें तुमने वन्दी कर रक्खा है, सो वे सब उपहार के लिये अम्बिका के मन्दिर में उपस्थित किये गये। अम्बिका का रूप क्या है मानों मृत्यु का मुख है जहां दीपक की शिखा जो है सो तो लपलपाती जिह्वा है और घण्टियों की जो पंक्तियां हैं सो दांतों की श्रेणियां हैं और मुण्डों की जो माला है उससे उसका आकार और घोर हो गया है। तब सुन्दरसेन ने अति नम्रता से भक्तिपूर्वक देवी को प्रणाम कर इस प्रकार स्तुति की:—

सोरठा।

घोर त्रिशूलप्रहार, जेहि से चूवत रक्त बहु ।
कीन्हों असुर संहार, अभय दान देवन दयो ॥
अमृतदृष्टि बरसाय, दुःखदवाग्नीदग्ध मोहिं ।
शीतल करु अब माय, नमो नमस्ते बार बहु ॥

इस प्रकार राजकुमार स्तुति कर रहे थे कि पुलिन्दराट् विन्ध्यकेतु देवी की पूजा के लिये वहां आ विराजे। उस भिल्लराज को देखते ही राजकुमार ने लज्जा से अपना शिर नीचा कर लिया और अपने वयस्यों से धीरे से कहा "भाइयो! यह वही पुलिन्देन्द्र विन्ध्यकेतु है जो कि पिताजी के निकट उपायन लेकर उपस्थित हुआ करता है और प्रसाद में इस अटवी का भोग करता है। सो अब जो होना हो सो हो पर यहां हमलोगों को कुछ बोलना उचित नहीं है मर जाना भला है किन्तु इस प्रकार अपना प्रकाश करना योग्य नहीं है।

राजकुमार तो इस प्रकार अपने मित्रों से बात कर रहे थे कि इतने में विन्ध्यकेतु ने अपने सेवकों से कहा "अरे योद्धाओ! उस वीर महापशु को दिखाओ जिसने पकड़ते समय मेरे बहुतेरे वीरों का संहार कर डाला।" इतना सुनते ही भृत्यों ने सुन्दरसेन को, जिनके शरीर पर लहू के छींटे बने थे और घावों से तथा धूलि से जिनका शरीर धूसरित हो गया था, साम्हने ला खड़ा किया। उनको देखते ही पुलिन्देन्द्र कुछ पहिचान गया इससे शङ्कित हो उसने पूछा कि कहो भाई तुम कौन हो और यहां क्योंकर आये हो? 'जो मैं हूं सो मैं हूं, कहीं से आया इससे आपको क्या? आपको जो करना है सो कीजिये' राजकुमार सुन्दर-

सेन ने भिल्लराज को ऐसा उत्तर दिया। अब तो उनकी बातचीत से भिल्लराज को पूरा परिचय मिल गया और वह हाहाकार करके पृथ्वी पर गिर पड़ा, "हा महाराज महासेन ! मुझ पापी ने आपके प्रसाद यह कैसा उचित प्रतिफल दिया है कि आपके प्राणसमान पुत्र को इस दशा में पहुंचाया। देव सुन्दरसेन यहां कैसे आये ? इस प्रकार कहते हुए विन्ध्यकेतु ने राजकुमार सुन्दरसेन के गले लगा कर अनेक प्रकार के विलाप किये। उसके विलाप सुन सभों के नेत्रों से आँसू की धारा बह चली। अब तो राजकुमार सुन्द्रसेन के वयस्यों के आनन्द का ठिकाना न रहा उन्होंने कहा "भिल्लराज ! इतना क्या बहुत नहीं है कि अनर्थ करने के पूर्व ही आपने इनको पहिचान लिया नहीं तो ऐसे अनर्थ के हो जाने पर फिर क्या हो सकता था। सो अब यह अवसर हर्ष का है विषाद का नहीं है।" इस प्रकार भिल्लराज को सुन्दरसेन के मन्त्रियों ने बहुत कुछ समझाबुझाकर शान्त किया। इतना सुनते ही पुलिन्दराज अति प्रसन्न हुआ और राजकुमार सुन्दरसेन के चरणों पर गिर पड़ा। उपरान्त उसने सुन्दरसेन के अनुरोध से सब पुरुषपशुओं को छोड़वाय दिया।

अब शबरेन्द्र विन्ध्यकेतु वयस्यों के सहित राजकुमार सुरेन्द्रसेन को अपनी पल्ली में ले गया, वहां उसने उनके तथा उनके मन्त्रियों के घावों पर पट्टियां बँधवायीं और उनको नाना प्रकार की परिचर्य्याएँ करवायीं। पीछे राजकुमार से उसने पूछा "देव ! आपका आगमन यहां क्योंकर हुआ कृपाकर बतलाइये, क्योंकि मेरे मन में बड़ा कुतूहल है ?" उसका ऐसा प्रश्न सुन राजकुमार सुन्दरसेन अपना वृत्तान्त साद्यन्त सुना गये। सुनते ही शबरेन्द्र का आश्चर्य्य और दूना हो गया और वह कहने लगा, "कहां मन्दारवती के निमित्त यात्रा और कहां समुद्र में गिरना; कहां मतङ्ग ऋषि के आश्रम में पहुंचना और कहां उनसे वहां समागम ! फिर कहां उस विश्वासघाती बनिये से उनका अपहरण कहां इस अटवी में आप का आना और कहां उपहार के लिये बाँधा जाना ! फिर कहां हमलोगों का परस्पर, पहिचान लेना और कहां मृत्यु के मुख से बच जाना ! विचित्र विधि को, उस विधि को वारम्बार नमस्कार है। सो आप अपनी कान्ता के लिये कुछ भी चिन्ता न करें क्योंकि जिस विधि ने जिस प्रकार यह सब किया वही आपका यह काम भी कर देगा।"

पुलिन्देन्द्र इस प्रकार कह ही रहा था कि उसका सेनापति अति प्रसन्न दौड़ा हुआ उसके समीप आया और कहने लगा "देव! इस अटवी में एक बड़ा धनवान् बनिया आया है, उसके साथ बहुत से लोग हैं। धन रत्नादि जो कुछ उसके पास हैं सो तो है ही किन्तु उसके साथ अत्यन्त रूपवती एक स्त्री भी है। जब कि मुझको उसका आना ज्ञात हुआ मैं अपनी सेना लेकर उसपर दौड़ा और सभों को बाँधकर ले आया, देव! वे सब बाहर खड़े हैं।" सेनापति की ऐसी उक्ति सुन राजकुमार सुन्दरसेन तथा विन्ध्यकेतु के मन में एक साथ ही यह बात आयी और वे विचारने लगे कि कदाचित् यह वही बनिया न हो और यह स्त्री मन्दारवती न हों। अस्तु शबरेन्द्र ने आज्ञा दी कि उस बनिये को और उस स्त्री को हमारे साम्हने लाओ। इतनी आज्ञा पाते ही चमूप्रति उस वणिक् और उस योषिता को भिल्लराज के सम्मुख ले आया। दृढ़बुद्धि उन दोनों को देखते ही बोल उठा "अहो! यह तो वही देवी मन्दारवती हैं और यह वही दुष्ट बनिया हैं। हा देवि! घाम की दही लता के समान कि जिनके पुष्परूपी आभरण त्यक्त हो गये और अधरपल्लव सूख गया, तुम किस दशा में पड़ गयी हो?" इस प्रकार कहकर दृढ़बुद्धि विलख रहा था कि राजकुमार ने दौड़कर झट अपनी प्रिया को गले से लगा लिया। दोनों विरहसम्मिलन एक दूसरे को नेत्रों के जल से धोने लगे और बहुत देरलों रोते रहे।

अब विन्ध्यकेतु ने उन दोनों को बहुत कुछ समझाबुझाकर शान्त किया पश्चात् उस बनिये से कहा "क्यों रे दुष्ट तूने विश्वासघात क्यों किया, भला इन्होंने तो तेरा विश्वास इन किया था कि तू सकुशल इन्हें देश में पहुंचा देवेगा इसी से पहिले अपनी धर्म्मपत्नी देवी मन्दारवती को चढ़ाया और तेरे मन में पाप समाया कि देवी को लेकर तू राक्षस भाग गया।" अब इस प्रकार तड़पपूर्वक उस शबरेन्द्र का कथन सुन वह बनिया काँपने लगा और गद्गद वचनों से बोला "हा! वृथा ही मैंने अपने नाश के लिये ऐसा किया, अरे! यह देवी तो स्वयं आत्मरक्षिणी हैं इनका ऐसा अधर्ष्य तेज है कि वह्नि को मानों प्रखर ज्वाला कि मैं इन्हें छू भी न सका। जब इन मनस्विनी का स्पर्श भी मैं न कर सका तो मुझ पापिष्ठ ने यह मन में ठाना कि अच्छा क्या चिन्ता अभी इनके मन में क्रोध भरा है यह

समय टाल दिया जाय, अपने देश ले चलूं वहां कुछ दिनोपरान्त इनका क्रोध शान्त हो जायगा तो इनसे विवाह कर लूंगा।" इतना सुनते ही शबरेन्द्र ने आज्ञा दी कि इस दुष्ट का वध किया जाय परन्तु महानुभाव सुन्दरसेन ने ऐसा नहीं होने दिया और कहा कि यह मारा न जाय प्रत्युत इसका समस्त धन छीन लिया जाय । बस उनके मुंह से इतना निकला कि उस बनिये का सर्वस्व छीन लिया गया । ठीक कहा है ' मुए मरत इकबार हो दिन दिन मर धनहीन ।"

इस प्रकार जब सुन्दरसेन ने उस दुष्ट बनिये को छुड़ा दिया तब वह इतना ही बहुत समझ कि चलो प्राण तो बचे जहां जाना था चला गया । तब विन्ध्य केतु शबरेन्द्र राजकुमार सुन्दरसेन और राजकुमारी मन्दारवती को लेकर अपने अन्तःपुर में गया और वहां अपनी महिषी को बोला कि स्नान अनुलेपन तथा वस्त्रादि से राजकुमारी की परिचर्य्या करो और स्वयं उसने राजकुमार को भी स्नान करवाय नाना प्रकार के वस्त्र और अलङ्कारों से आभूषित किया और एक उत्तम आसन पर बैठाकर मुक्ता और मृगमद (१) आदि से उनकी पूजा की। राजकुमारी और राजकुमार के समागम में उसने बड़ा उत्सव मनाया, नगर भर में उस दिन आनन्द मनाया गया और वाराङ्गनाओं का नाच हुआ।

अब राजकुमार सुन्दरसेन ने दूसरे दिन उस शबरेन्द्र से कहा "भाई, अब मेरे घाव भर आये और मनोरथ भी सिद्ध हो गया सो अब आज्ञा हो तो हम अपनी नगरी को प्रस्थान करें, और आप एक काम कीजिये कि मेरे पिता के पास एक पत्र भेज के उन्हें यह सूचित कर दीजिये कि मैं अपने मित्रवर्ग के और मन्दारवती के साथ आ रहा हूं।" राजपुत्र की ऐसी उक्ति सुन शबरेश्वर ने उसी क्षण सन्देशा देकर एक दूत भेज दिया।

जिस समय कि शबरेन्द्र का दूत पत्र लिये हुए अलकापुरी में पहुंचा उस समय वहां एक अद्भुत घटना उपस्थित थी कि महाराज महासेन और उनकी देवी अपने पुत्र का कुछ वृत्तान्त न पाय अति दुःखित हुए और अब उनकी आशा भी जाती रही कि पुत्र लौटकर आवेगा सो वे दम्पती शिवालय के समक्ष अग्नि प्रवेश के लिये उद्यत थे । चिता लहलहा चुकी थी केवल राजा रानी के प्रवेश

(१) कस्तूरी।

मात्र का विलम्ब था । अपने राजा और रानी के लिये अति दुःखित हो सब प्रजाएँ उन्हें घेर कर खड़ी थीं । अब राजा और रानी अग्नि में प्रवेश किया ही चाहते थे कि उधर से दौड़ता हुआ वह शबर आ पहुंचा, उसका समस्त शरीर धूलि से व्याप्त था, हाथ में धनुष, लता की बँवर से शिर के केश बन्धे थे, काला रङ्ग, कमर में बेलपत्र की लंगोटी धारण किये था। उसने चिल्लाकर कहा "महाराज मैं शबरेन्द्र विन्ध्यकेतु का दूत हूं । देव! आप धन्य हैं कि आपके कुमार सुन्दरसेन मन्दारवती के साथ समुद्रपार हो अब आया चाहते हैं। वे हमारे प्रभु विन्ध्यकेतु के यहां उपस्थित हुए हैं और अब उनके साथ यहां आ ही पहुँचते हैं, मुझ उन्होंने पहिले ही भेज दिया कि आपको उनके आगमन की सूचना मिल जाय।" इतना कह उसने राजा के चरणों के समीप भिल्लराज की लिखी चिट्ठी रख दी।

राजा ने उठाकर पत्र जो पढ़ा तो शुभसम्वाद सुनते ही चारोंओर से आनन्द मेघ घिर आये, सब लोग जयध्वनि और आनन्दध्वनि करने लगे महान् कलरव मच गया। सब के मुख पर उस समय प्रसन्नता छाय गयी । महाराज ने शोक का त्याग किया और उस लेखहार (१) का उचित सम्मान करके बड़ा भारी उत्सव मनाया। अब महीपति महासेन सब लोगों के साथ अपनी राजधानी में आये । उस दिन नगर भर में बड़ा उत्सव मनाया गया । अब तो राजा को यह पड़ी कि कब भोर हो और पुत्र की अगवानी को हमलोग चलें । अस्तु आनन्द मङ्गल के साथ रात बीती और प्रातःकाल महाराज महासेन हंसद्वीपेश्वर के सङ्ग अपने आते हुए पुत्र की अगवानी के लिये चले। आगे २ उनका चतुरङ्ग बल (२) चला, सेना के भार से ऐसा भासता था कि पृथ्वी दबी जा रही है और कांप रही है।

उधर राजकुमार सुन्दरसेन भी अपनी प्रिया मन्दारवती के साथ भिल्लपल्ली से प्रस्थानित हुए और साथ में उनके बन्धनागार में मिले दोनों मित्र विक्रमशक्ति तथा भीमभुज थे। दृढ़बुद्धि भी चला । राजकुमार वायुवेगवाले घोड़े पर आरूढ़ हुए। सङ्ग में अपनी सेना के साथ शबरेन्द्र विन्ध्यकेतु भी चला। उस समय धरित्री शबरमय दीख पड़ती थी इस प्रकार सब लोग चले जाते थे। कुछ दिनों के उप-

(१) दूत। (२) हाथी, घोड़े, पैदल और रथी ये चार सेना के अङ्ग हैं; बल-सेना।

रान्त राजकुमार सुन्दरसेन क्या देखते हैं कि पिता अपने परिजद और बन्धु बाँधवों के साथ आगे से आ रहे हैं, पिता को देखते ही वह तुरङ्ग से चट उतर उनके पांव पड़े। पूर्णचन्द्र समान पुत्र को देखते ही महाराज के हृदयाम्बुधि में उल्लास के तरङ्ग उठने लगे, मानों आनन्द से वह फूले नहीं समाते थे। देखते हैं तो एक ओर पांव पर पुत्रवधू मन्दारवती पड़ी है अब उनका आनन्द और दूना हो गया महाराज अपने को कृतार्थ मानने लगे और कुल के समस्त लोग अति आनन्दित हुए। पुत्र के दृढ़बुद्धि आदि तीनों मित्रों को देखकर और भी प्रसन्न हुए। और विन्ध्यकेतु साथ में आया और कि उसी के प्रसाद से ऐसा दुःसाध्य कार्य्य सिद्ध हुआ यह जानकर महाराज के आनन्द को अब तो अवधि न रही। महाराज ने सब लोगों को अभिनन्दन दिया। पश्चात् महाराज महासेन ने राजकुमार सुन्दरसेन से कहा "पुत्र! यह तेरे श्वशुर मन्दारदेव हैं।" सो सुन्दरसेन उन्हें प्रणाम कर अति प्रसन्न हुए चण्डप्रभ और व्याघ्रपराक्रम दो मन्त्री तो पहिले ही आ गये थे सो राजकुमार के चरणों पर आ गिरे उन्हें देख राजकुमार ने समझा कि बस अब मेरे समस्त मनोरथ परिपूर्ण हो गये। शशाङ्कपुर के राजा महेन्द्रादित्य को भी यह शुभसम्बाद ज्ञात हुआ सो अति प्रसन्न हो उधर से वह भी आ मिले। इस अवसर पर यही भासता था मानों चारोंओर से आनन्द उमड़ा चला आता है।

अब राजकुमार सुन्दरसेन उनलोगों के साथ उत्तम वाहन पर प्रियासहित विराजमान, नड़कूबड़ जैसे रम्भा के साथ, उस अपनी अलकापुरी को चले जहां आठोसिद्धियां नवों ऋधियां सन्ततवास करती हैं और जिसमें अनेक पुण्यात्मा लोग निवास करते हैं। जिस समय कि उनका नगरोप्रवेश हुआ झरोखों और खिड़कियों पर से पुरवासिनी प्रमदाएँ लावा बरसाने लगीं। पहिले पहिल राजकुमार अपनी माता के भवन में गये और जननी के चरणों पर गिरे माता के नेत्रों में आनन्द के आँसू भर आये। माता के हृदय में उस समय जो आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अब सब कुटुम्ब के लोग तथा परिजन बटुर आये और मङ्गलगान होने लगे। उस दिन नगर भर में बड़ा भारी उत्सव मनाया गया राजभवन के उत्सव का क्या पूछना।

परमात्मा की करनी, दूसरा ही दिन वह शुभदिन था जिस दिन विवाह का

शुभलग्न ज्योतिषियों ने बतलाया था। उस दिन बड़ा समारोह हुआ और बड़े उत्साह के साथ राजा मन्दारदेव ने अपनी कन्या मन्दारवती का करकमल राजकुमार सुन्दरसेन के करकमल में अर्पण किया; नरनाथपुत्र सुन्दरसेन जिस हाथ के लिये बहुत दिनों से लालायित थे उसका आज ग्रहण किया। महीपति मन्दारदेव के कोई पुत्र तो था ही नहीं सो उन्होंने अनेक बहुमूल्य रत्न अपने जामाता को दिये और यह भी कहा कि पुत्र! मेरे शरीरान्त पर मेरा राज्य भी तुम्हारा ही होगा। राजकुमार के पिता महासेन महीपति ने अपने विभव और इच्छा के अनुसार आज हिरण्य और वस्त्रों की वर्षा लगा दी, ऐसा दान आपने आज किया कि लोग देखकर दङ्ग हो गये। यदि उनको आज समस्त वसुधा का वसु मिल जाता तो दान कर डालते। महाराज के राज्य में जितने बन्दी रहे आज सब छोड़ दिये गये। महाराज की बात तो निराली है कि जिस पुत्र का समुद्रपतन सुन चुके थे वही अपना मनोरथ प्राप्त कर लौट आवे तो उनके हर्ष और आनन्द का क्या ठिकाना किन्तु मन्दारवती के साथ विवाह कर राजकुमार सुन्दरसेन जो कृतकृत्य हुए इस आनन्द में नगरभर डूबा रहा, नगरभर में घर घर जागरण कर स्त्रियों ने मङ्गलगान किये। इसके उपरान्त महाराज मन्दारदेव अपनी राजधानी के लिये प्रस्थित हुए, महाराज महासेन ने बड़े आदरमान से उनकी विदाई की। शशाङ्कपुर के राजा भी अपनी राजधानी को चले और महाटवी का अधीश विन्ध्यकेतु भी प्रस्थानित हुआ महाराज महासेन ने बड़े सत्कार और सम्मान के साथ सब को विदा किया।

कुछ दिनों के उपरान्त जब महाराज महासेन ने देखा कि मेरा पुत्र अपने राज्य के पालन में समर्थ हुआ और कि सारी प्रजा उन्हें प्रिय मानती सो उन्होंने सर्वगुणसम्पन्न अपने पुत्र राजकुमार सुन्दरसेन को अलकापुरी के राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं वन में गमन किया। अब सुन्दरसेनदेव महाराज हुए और अपने बाहुबल से अरिमण्डल का विजय कर प्राणवल्लभा मन्दारवती के साथ मन्त्रियों सहित पितृवत् प्रजा का पालन करने लगे।

इस प्रकार उस सरोवर के किनारे व्याघ्रसेन नामक मन्त्री अपने प्रभु मृगाङ्कदत्त को यह कथा सुनाय पुनः कहने लगा कि देव, यही कथा आश्रम में महर्षि

कण्व ने हमें सुनायी थी और जब कथा समाप्त हो गयी तब वह दयालु हमें सम्बोधन कर फिर बोले कि हे पुत्रो ! तुम देखते हो न कि जो लोग घोर से घोर विपद् में पड़कर भी अपना धैर्य्य नहीं त्यागते वे अन्त में अपना अभीष्ट प्राप्त करते ही हैं परन्तु जो हिय हार बैठते हैं वे फिर क्या कर सकते हैं । सो तुमलोग भी यह विकलता त्यागो, तुम्हारे अधिपति मृगाङ्कदत्त भी सब सचिवों को प्राप्त कर लेंगे और शशाङ्कवती को पाय उसके साथ बहुत काल पर्य्यन्त इस वसुधा का पालन करेंगे । व्याघ्रसेन बोला "देव ! महात्मा कण्व ने इस प्रकार समझाबुझा के हमें शान्त किया और तब हमलोगों को धीरज हुआ । रात भर हम उसी आश्रम में रहे । प्रातःकाल होने पर हमलोग वहां से चले और चलते चलते इस जङ्गल में पहुँचे और थककर भूख और प्यास के मारे विकल हो इस वृक्ष पर चढ़े कि कुछ फल तोड़ लावें तो खाकर जल पीवें। ज्यों ही कि चढ़े बस फल हो लटक पड़े । देव ! आपने आज हमलोगों का छुटकारा किया । सो देव ! नागशाप से जब हम चारों आपसे पृथक् हुए तो यही हमारा वृत्तान्त है, जब शाप क्षीण हो गया तो आकर सब आपसे मिल गये अब कार्य्यसिद्धि के लिये चलिये ।"

सोरठा ।

सुनि इमि कथाप्रसङ्ग, व्याघ्रसेन सचिवोक्त तब ।
हिय में अधिक उमङ्ग, श्रीमृगाङ्कदत्त के भयो ॥
पाउब प्रिया शशाङ्क,-वती भरोसो दृढ़ बध्यो ।
परम प्रसन्न मृगाङ्क, दत्त निशा बितवत भये ॥

पैंतीसवाँ तरङ्ग।

अब प्रात:काल होने पर राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने समस्त सचिवों के तथा श्रुतधि ब्राह्मण के साथ उठे और गजानन को प्रणाम कर मृगाङ्कवती की प्राप्ति के अर्थ उज्जयिनी की ओर चले। मार्ग में अनेक वन, अटवी, जहां सैकड़ों भीलें मिलतीं, जिनकी आभा तमाल वृक्ष सी श्यामता दीख पड़ती जिससे ऐसा भासता कि मानों मेघ चले आ रहे हैं, तथा अन्यान्य वन भूभाग जहां बड़े भयङ्कर हाथियों के सङ्घर्षण से बंश वृक्ष टूटे पड़े थे जिनमें अर्जुन के वैपरीत्य से विराट् की नगरी को शोभा जाता था; (१) जहां बड़े २ उन्नत पहाड़ और जिनमें कन्दराएँ अति स्वच्छ और शुद्ध विद्यमान थीं, पहाड़ के वृक्ष पुष्पों के भार से लदे हुए, जिन वनाटवियों में अनेक क्रूर जन्तु भरे हैं और स्थान २ पर शान्त मुनियों के निवास भी हैं। ऐसे २ वनों और पर्वतों का अतिक्रमण करते हुए वीर राजकुमार अपने सचिवों के साथ उज्जयिनी नगरी के समीप पहुँचे। गन्धवती नदी के तटपर पहुंच कर सब लोग उतरे और उसमें नहाये जिससे मार्ग की थकावट दूर हो गयी। अब नदी पार कर वे चले तो चलते २ महाकाल श्मशान में पहुंचे। वहां क्या देखते हैं कि अनेक खोपड़ियों और हड्डियों के टुकड़े पड़े हैं, कहीं मनुष्यों की ठठरियां पड़ी हैं, नाना रङ्ग के भूत, प्रेत, पिशाच वीरगण किलकारियां मार रहे हैं और डाकिनी, शाकिनी और पिशाचिनी इधर से उधर नाच रही हैं। समीप ही में महाभैरव भी विद्यमान हैं जिनके शरीर में चिता की धूलि लगी है।

इस प्रकार महाभयङ्कर श्मशान पार कर राजकुमार अपने मित्रों के साथ उज्जयिनी नगरी के समीप पहुंचे जहां कि उस समय महीपति कर्मसेन राज्य करते थे। नगरी उज्जयिनी एक युग युग की बसी है जहां की गलियां अपूर्वही हैं जिनमें स्थान २ पर उत्तम वीरों के कुल में उत्पन्न अनेक राजकुमार अस्त्रशस्त्र से सज्जित पहरा दे रहे हैं। नगर के चारोंओर गिरीन्द्रशिखर के समान प्राकार बना है। जो कोई उस नगरी का मर्म्म न जानता हो उसका भीतर जाना महा कठिन है। अनेक हाथी और घोड़े जहां विद्यमान हैं। इस प्रकार चतुर्दिक् से दुर्गम ऐसी

(१) विराट्नगरी के पक्ष में अर्जुन का हिजड़े के रूप में रहना।

नगरी देख राजकुमार मृगाङ्कदत्त अति विषण्ण हुए और अपने सचिवों से कहने लगे कि भाइयो ! इतने कष्टों पर कष्ट उठाकर हमलोग किसी प्रकार यहांलों पहुंचे अब तो इसमें प्रवेश करना भी दुष्कर विदित होता है तो प्रिया की प्राप्ति का क्या उपाय है ? राजकुमार की ऐसी उक्ति सुन वे बोले "देव ! यह आप क्या कह रहे हैं, क्या आप समझते हैं कि हमलोगों का इसमें बलपूर्वक प्रवेश करना असाध्य है ? कोई उपाय निकाला जाय और वह अवश्य सफल होगा । देखिये देवताओं ने भी उपायों ही से कितने २ अद्भुत कार्य्य कर डाले बस वेही हमारे निदर्शन हैं, आप भूलते क्यों हैं ? सचिवों का एतादृश कथन सुन राजपुत्र मृगाङ्कदत्त उस नगरी के बाहर ही उतरे और इधर उधर घूमघामकर दिन विताने लगे।

अब राजकुमार मृगाङ्कदत्त के सचिव विक्रमकेशरी ने अपने प्रभु की प्रिया के आकर्षण के हेतु प्राक्सिद्ध वेताल को स्मरण किया बस स्मरण करते ही महाभयङ्करस्वरूप लम्बतुङ्ग कालाभुशुण्ड वेताल, जिसकी ग्रीवा ऊँट की ग्रीवासी लम्बी, मुंह हाथी के मुख के समान, पांव महिष कैसे, आँखें उल्लू की आँखें जैसी, कान रासभ के कानों के तुल्य; आ पहुँचा । आया तो सही पर उस नगरी में प्रवेश न कर सका अतः जहां से आया था वहीं चला गया । शम्भु भगवान् के प्रसाद से उस नगरी में ऐसों का प्रभाव नहीं चलता ।

अब तो मृगाङ्कदत्त और उनके सचिव सब और भी हताश हो गये कि जब ऐसा वेताल कुछ न कर सका तो और कौंकर इसमें प्रवेश हो सकता है । वे सब प्रवेश तो चाहते थे पर कुछ उपाय नहीं सूझता था । उस अवसर में सब को खिन्न देख नीतिविशारद ब्राह्मण श्रुतधि राजतनय मृगाङ्कदत्त से कहने लगा "देव ! आप तो नीति के तत्व से अभिज्ञ हैं तो जानबूझ क्यों मोह में पड़ जाते हैं ? अपना और पराया अन्तर विना देखे भला यहां किसका पराक्रम चल सकता है । इस नगरी में चार द्वार हैं और प्रत्येक द्वार पर दो सहस्र गज और पचीस सहस्र घोड़े, और दश सहस्र रथ और एक लक्ष पदति रातदिन इस नगरी की रक्षा के हेतु सन्नद्ध रहते हैं । यहां अनेक वीर विद्यमान हैं अतः यह दुर्जय है । तो हम अनेक लोगों का प्रवेश दीपशिखा में पतङ्गपतन सा होगा इससे अर्थसिद्धि कुछ न होगी । फिर थोड़ी बहुत सेना लेकर यदि इस नगरी पर धावा

किया जाय तो यह भी साध्य नहीं है, भला पदाति का युद्ध गजारूढ़ से क्योंकर सम्भव है और फिर अधिबल से विरोध ? सो अब ऐसा करना चाहिये कि मायावटु जो पुलिन्दपति हमारा मित्र है जो कि नर्मदा में अति भयङ्कर ग्राह से बचाया गया था, फिर उसका मित्र मतङ्गराज दुर्गपिशाच भी अत्यन्त बलवान् है उसी के सम्बन्ध से वह अनुरागी है, किरातराज शक्तिरक्षित नाम का वह बालब्रह्मचारी, वह विक्रमशाली थे बस ससैन्य इन सभों के साथ आकर सेनाओं से चारोंओर घेरा कर दिया जाय। इस प्रकार सहायों से सम्पन्न होकर अपना इष्ट साधिये, आपसे दूत के भेजने की जो बात हो चुकी थी सो किरातराज उस की प्रतीक्षा में बैठा ही होगा सो क्या आप यह प्रतिज्ञा भूल गये ? फिर मतङ्गराज के आदेश से मायावटु भी सजधज के आ गया होगा उससे भी तो यही ठना है। सो आइये हमलोग मतङ्गराज के निवासगढ़ को चलें जिसका नाम वाडवग्रीव है और जो विन्ध्य के दक्षिण भाग में अवस्थित है। वहीं पर शक्तिरक्षित किरातराज भी बुला लिया जायगा; बस सब लोग इकट्ठे होकर कार्य्य की सिद्धि के लिये उद्योग करेंगे; राजकुमार ! मेरे जानते इस प्रकार जो कार्य्य किया जायगा शुभ ही होगा।" श्रुतधि की एतादृशी अर्थयुक्त और शास्त्रसम्मत उक्ति सुन मृगाङ्कदत्त और उनके सब सचिव बोल उठे कि भाई तुमने बहुत अच्छा उपाय बतलाया, ठीक है ऐसा ही होना चाहिये।

दूसरे दिन जब कि गुणियों के बन्धु, जगत् के आशाप्रदर्शक, नभोमण्डल के नित्य पथिक भगवान् सूर्य्य उदित हुए तो उनको प्रणामकर राजकुमार मृगाङ्कदत्त वहां से दक्षिण दिशा में विन्ध्य पर्वत की ओर चले जहां मतङ्गेन्द्र दुर्गपिशाच का भवन है। उनके सचिव व्याघ्रसेन, भीमपराक्रम, गुणाकर, मेघबल, विमलबुद्धि, विचित्रकथ, स्थूलबाहु, विक्रमकेसरी, प्रचण्डशक्ति, श्रुतधि और दृढ़मुष्टि उन के पीछे चले। उनके साथ राजकुमार अटवी के अनन्तर अटवी का पार करते गये मानों एक चेष्टा के उपरान्त दूसरी करते गये; इसी प्रकार बड़े २ गहन भण्डारों के पार पहुंचते गये मानों क्रमशः अपने अभिप्रायों का अतिक्रमण करते गये। इस प्रकार गहन वनों और अटवियों का अतिक्रमण करते २ एक सरोवर पर पहुँचे और रात्रि देवी का भी आगमन हो गया सो उसी के किनारे एक वृक्ष के तले वे टिक गये।

अब विन्ध्य पर्वत मिला सो वह राजपुत्र अपने सहचरवर्ग के साथ उसपर चढ़े मानों अपने उन्नत चित्त पर चढ़े। उसके अगले दक्षिण भाग पर जो चढ़े तो दूर पर हाथियों के दाँतों और चमड़ों से छाई हुई भिल्लपल्लियां दीख पड़ने लगीं जिन्हें देख वह अपने मन में सोचने लगे कि इनमें से मतङ्गाधिपति का आसद (१) कौन और कहां है। इतने में उनके साम्हने एक मुनिकुमार आ निकले सो अपने अमात्यों के साथ उनके चरणों पर गिर राजकुमार ने बड़ी नम्रता से पूछा, "सौम्य! क्या आप जानते हैं कि मातङ्गराज दुर्गपिशाच का स्थल कहां है क्योंकि हमें वहीं जाना है।" उनका ऐसा प्रश्न सुन वह तापसपुत्र साधु बोले "यहां से कोस भर पर पञ्चवटीप्रदेश है, वहां से थोड़ी ही दूर पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम है जिन्होंने कि अपमान न सहकर उद्दण्ड नहुषेन्द्र को स्वर्ग से गिरा दिया था। जहां पिता की वनवासाज्ञा से सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्र आकर टिके थे और मुनि की सेवा करते थे। जहां राक्षसों के विनाश के लिये एक बहाने से आये हुए सूर्य्य चन्द्र के समान राम लक्ष्मण पर आक्रमण करने के लिये कवन्ध राक्षस प्रवृत्त हुआ था। जहां २ श्रीरामचन्द्र ने योजनबाहु का नहुषाजगरसमान भुज काट गिराया था। जहां जब मेघ गर्जते हैं तो जानकी के पाले मृग रामचन्द्र के कोदण्ड की ध्वनि का स्मरण करते और चौंक २ देखने लगते हैं कि हमारे वे स्नेही कहां हैं और जब चहुंओर उनको शून्य दीख पड़ता तो उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगती हैं और घास के कवर भी वे नहीं उठाते। जहां जानकी का विरहप्रद हेमहरिण, हतशेष हरिणों को बचाने के लिये मानों, श्रीरामचन्द्र को बहुत दूर दौड़ा ले गया था। जहां कावेरी के जल के अनेक ह्रद बने हैं मानों अगस्त्य महाराज जो समुद्र का जल पी गये थे सो उन्होंने पग पग पर वह जल उगिल दिया हो। बस उसी आश्रम के निकट ही विन्ध्यपर्वत के शिखर के ऊपर समथल पर करभग्रीव नामक एक बड़ा ही दुर्गम कोट (२) है उसी के भीतर भूपालों का अजेय अति बली और प्रचण्डपराक्रम वह मातङ्गाधिपति दुर्गपिशाच रहता है। एक २ धनुर्धर के पीछे पांच २ सौ योधा चलते हैं ऐसे एक लक्ष धनुर्धरों का वह अधिपति है। इन्हीं दस्युओं के साथ वह बटोहियों

(१) स्थान, वासभवन। (२) कोट, किला।

को मूस लेता है और शत्रुओं का दलन कर देता है और अन्यान्य राजाओं को तुच्छ जानता हुआ वह दुर्गपिशाच निर्द्वन्द्व इस अटवी का भोग कर रहा है।"

ऐसा मुनिकुमार का कथन सुन राजपुत्र मृगाङ्कदत्त उनसे आज्ञा ले अपनी अनुचरवर्ग के साथ तुरत उसी मार्ग से चले और क्रमानुसार चलते २ मातङ्गराज के उस करभग्रीव नामक कोट के निकट पहुंचे जहां चारोंओर भिल्लों की पल्लियां थीं। थोड़ी ही दूर पर क्या देखते हैं कि इधर उधर शबरों के झुण्ड के झुण्ड यहां वहां आ और जा रहे हैं; किसी २ के हाथ और माथों पर हाथीदांत हैं; कोई व्याघ्रचर्म्म ही लादे जा रहे हैं, कोई २ मृगों के मांस लेकर जा रहे हैं। इस प्रकार वीभत्सरस के स्वरूप मानों उन शबरों को देखकर मृगाङ्कदत्त ने अपने साथियों से कहा कि देखो न ये शबर कैसे भयङ्कर हैं; भला इनमें और पशुओं में भेद ही क्या है विचारे पशुजीवन जीते हैं और अरण्य में जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन्हीं से ये अपने समस्त व्यापार चलाते हैं। यद्यपि इनकी आरण्य वृत्ति है तथापि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ये भी दुर्गपिशाच को राजा मानते हैं और उस के अधीन रहते हैं। ठीक है बिना राजा के कुछ है ही नहीं; जहां २ प्रजाशब्द है तहां २ राजशब्द है; ऐसा भासता है मत्स्यन्याय के भय से देवताओं ने राजशब्द की सृष्टि की। इस प्रकार अपने मित्रों से आलाप करते २ महाराजकुमार मृगाङ्कदत्त करभग्रीवकोट का मार्ग ज्यों ही पूछा चाहते थे कि मायावटु शबरेन्द्र के चारों ने पूर्वदृष्ट उन्हें अपने समीप आते देखा और चटपट जाकर मायावटु को उनके आगमन की सूचना दी, उनका आना सुनते ही वह अपनी सेना के सहित उनकी अगवानी के लिये चला। जब कि निकट पहुंचा तब पुलिन्दराट् अपने वाहन से उतर पड़ा और दौड़कर राजसूनु के चरणों पर गिरा। राजकुमार ने उसे उठाय कण्ठ से लगाया और तब शबरेन्द्र ने उनसे कुशलप्रश्न किया। कुशलप्रश्न के अनन्तर अमात्यों के सहित उत्तम २ वाहनों पर चढ़ाकर भिल्लराज अपने कटक में ले गया। अब शबरराज ने अपना दूत मातङ्गराज के समीप भेज दिया कि जाकर उसे उनके आने का सम्वाद देवे। उनके आने का सम्वाद सुनते ही दुर्गपिशाच, जो कि यथार्थनामा था झटपट वहां आ पहुँचा। यथार्थनामा जो कहा गया उसका वर्णन इस प्रकार है। चट्टान के समान तो उस

के सब अङ्ग कठोर थे, तमाल के समान उसकी मलिन शोभा थी, पुलिन्द चहुंओर से उसे घेरे थे; सो दुर्गपिशाच क्या था मानों दूसरा विन्ध्याचल हो। उसकी भौंहे ऐसी तीन टेढ़ी थी कि जिसके कारण उसका मुँह और भयङ्कर भासता था मानों स्वयं महामाया विन्ध्यवासिनीं ने अपनाने के लिये उसके मस्तक पर त्रिशूल का चिन्ह कर दिया हो। यद्यपि अवस्था उसकी अधिक व्यतीत हो गयी थी तथापि वह तरुण ही प्रतीत होता था। देखने में रूप महाभयङ्कर, कृष्णवर्ण, अनन्यसेवी तथा भूभृत्पादोपजीव नये मेघ के समान, मोरपङ्ख के समान चित्र विचित्र रङ्ग का धनुष लिये वराह (भगवान्) के साथ युद्ध करने से क्षतविक्षत अङ्गवाले हिरण्याक्ष के समान ज्ञात होता था। उद्दण्ड और भीमरूप कटोत्कच के समान महा बलवान् मानों दूसरा कलिकाल कि जिसके प्रताप से समस्त प्रजा उच्छृङ्खल हो धर्म्म से विरत हो गयी हो। उसके साथ उसका महाभीमरूप सेनामण्डल भी आया जिससे यह भावना होती थी कि सहस्रार्जुन की भुजाओं से छूटा मानों नर्मदा का प्रवाह है। सैनिक क्या थे मानों अञ्जनगिरि के ढोंके थे जैसे अकाल में कल्पान्त मेघों के समूह उमड़ आया हो। इस प्रकार की शङ्का उत्पन्न कराता हुआ वह चाण्डालों की सेनाओं का समूह वहां आकर फैल गया उसकी काले रङ्ग की छाया से समस्त दिशाएँ मलिन हो गयीं। उनका स्वामी दुर्गपिशाच आगे बढ़ दूर ही से पृथ्वी पर दण्डवत् गिर मृगाङ्कदत्त को प्रणामकर कहने लगा "आज देवी विन्ध्यवासिनी मुझ पर बड़ी प्रसन्न हुई कि ऐसे उत्तम वंश में उत्पन्न आप मेरे घर आये मैं धन्य हूं आज मैं कृतार्थ हुआ।" इस प्रकार कहकर मतङ्ग-राज ने मोतियों और कस्तूरी का उपहार राजकुमार को दिया। राजकुमार मृगाङ्कदत्त भी उसके प्रेम से अति प्रसन्न हुए। अब सब लोगों का पड़ाव वहां पड़ा। हाथी हथशाल में घोड़े घोड़शाल में बँध गये और पदाति लोग जलथल देख उतरे, अब वह अटवी उन सैनिकों से भर गयी। और क्या कि जन्मभर उसे अपूर्व नगरियों का भाव कभी स्वप्न में भी नहीं हुआ था सो इस समय इतने लोगों का समकाल में जो वास हुआ है उससे अपूर्व नगरी का भाव उसे स्वतः प्राप्त हो गया है इससे वह महाटवी इस समय मानों नाच रही है और अपने में फूली नहीं समाती है।

इसकी उपरान्त कानन की उद्यान में स्नानादि की उपरान्त भोजनादि क्रियाएँ कर चुकने पर राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने सचिवों के साथ एकान्त में बैठे और मायावटु भी वहीं आकर बैठा और इधर उधर की बातें छिड़ीं। उसी अवसर में दुर्गपिशाच नम्रतापूर्वक मृगाङ्कदत्त से इस प्रकार कहने लगा, "कहिये राजकुमार। आपलोग इतने दिन कहां २ गये और क्या करते रहे सो हमें बतलाइये। हे स्वामिन्! यह राजा मायावटु बहुत दिनों से यहां आकर टिके हैं और आपकी निर्देश की प्रतीक्षा में मेरे साथ पड़े हुए हैं सो अब आप अपना सारा वृत्तान्त सुनाय जाइये।" इस प्रकार दुर्गपिशाच का वचन सुन राजपुत्र बोले "भाई! जब कि इन मायावटु के गृह में विमलबुद्धि गुणाकर और भीमपराक्रम मिले तो हम सब श्रुतधि के साथ वहां से चले और दूसरे सचिवों की खोज करने लगे। आगे जाकर प्रचण्डशक्ति और विचित्रकथ मिले, फिर आगे जाते २ यह विक्रमकेसरी मिले। इसकी उपरान्त हमलोग एक सरोवर पर पहुंचे जहां गणेशजी का एक पेड़ था, वहां फल की इच्छा से ये सब पेड़ पर चढ़े और वहां फल होकर लटक पड़े। तब तो मैंने गणाधीश की बड़ी आराधना और स्तुति की तब ये छूटे और शेष सचिव भी मिले जो पहिले ही से उस पेड़ पर फल तोड़ने के लिये चढ़े थे और स्वयं फल हो लटक रहे थे। सो ये चार मेरे सचिव दृढ़मुष्टि, व्याघ्रसेन, मेघबल और स्थूलबाहु हैं। जब ये सब लोग मिल गये तब मैंने उज्जयिनी की ओर प्रयाण किया परन्तु उस नगरी के द्वारों पर ऐसे दृढ़ पहरे बैठे हैं कि हमलोगों का प्रवेश न हो सका। जब कि भीतर जाना ही कठिन था तब शशाङ्कवती का हरण कब सम्भव था इसकी चिन्ता ही क्योंकर हो सकती है फिर साथ में सेना भी न थी कि दूत भेज सकता। सो सखे! आपस में यह ठहरी कि अब हम आपके निकट चले बस हमलोग इसी निमित्त आपके समीप आये हैं अब आपलोगों को जैसा सूझे वैसा करें।" मृगाङ्कदत्त जब इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुना चुके तब मायावटु के साथ दुर्गपिशाच उनसे कहने लगा कि महाराज! आप धीरज धरिये यह कौनसा बड़ा काम है यह तो बात की बात में हम सम्पन्न कर सकते हैं। हम तो आपके लिये प्राण अर्पणकर चुके हैं तो यह कौन सी बड़ी बात है। अभी कर्म्मसेन राजा को बाँधकर यहां लाते हैं और उनकी कन्या

शशाङ्कवती को भी बलात् हर ले आते हैं । मायावटु और दुर्गपिशाच की ऐसी उक्ति सुन महाराजकुमार मृगाङ्कदत्त अति प्रसन्न हुए और बड़े सन्मान के साथ पुनः बोले, "भाई ! आप क्या नहीं कर सकते हैं आपकी धीरता ही बतला रही है कि आप अपने मित्र का कार्य्य सम्पादन कर डालेंगे। विधाता ने आपको दृढ़, शूर और मित्रों का प्रेमी बनाया है; विधि ने विन्ध्यपर्वत से तो दृढ़ता, व्याघ्रों से शूरता और कमलिनियों से मित्रानुराग लेकर आपलोगों की सृष्टि की है सो अब जैसा आपको उचित बूझ पड़े आप कीजिये ।" मृगाङ्कदत्त के इस प्रकार कहने के अवसान पर दिनमणि भी अस्ताचल के शिखर पर विश्राम करने के हेतु पहुंच गये । अब रात्रिदेवी का प्रादुर्भाव हो गया और सब लोगों ने वहीं सेनाओं के मध्य यथोचित रचित निवेशों में विश्राम कर रात्रि बितायी ।

प्रातःकाल में मृगाङ्कदत्त ने गुणाकर को अपनी मित्र शक्तिरक्षित किरातराज को ले आने के लिये भेजा । उसने जाकर उससे वृत्तान्त कहा और सुनते ही किरातराज बड़ी भारी सेना जुटा थोड़े ही दिनों में वहां आ पहुंचा । उसके साथ दश लाख पैदल, दो लाख घोड़े, दश सहस्र मत्त गजेन्द्र जिनपर कि बड़े२ महावीर आरूढ़ थे, और अट्ठासी सहस्र रथ महीपति के पीछे २ आये जिनके छत्र और ध्वजाओं से आकाश छाय गया। उसकी अगवानी के लिये मृगाङ्कदत्त बड़े हर्ष से अपने सचिवों सहित आगे गये और बड़े सन्मान से सैन्यसहित उसे ले आये। इतने ही में मातङ्गराज के जितने इष्टमित्र बन्धु बान्धव रहे सब आय जुटे और मायावटु के जितने दूत रहे सो भी सब आ पहुंचे। अब मृगाङ्कदत्त के हृदय का आनन्द बढ़ानेहारा शिविरवारिधि जिसमें सैकड़ों सेनारूपिणी नदियां आ मिलीं, उच्चोच्च तरङ्गों के साथ गर्जने लगा । मोतियों, कस्तूरियों और वस्त्रों से तथा मांसों के भारों और फलों के आसवों से (१) दुर्गपिशाच ने उन राजाओं की अभ्यर्थना की । उत्तमोत्तम स्नान अनुलेपन, आहार पान तथा शयनीय से शबराधीश्वर ने सबों की परिचर्य्या की । अब सब लोग पृथ्वी पर बैठ गये और मृगाङ्कदत्त ने उन सबों के साथ बैठकर भोजन किया और अपने साम्हने ही थोड़ी दूर पर मातङ्गराज को भोजन करवाया । ठीक है कार्य्य, देश और काल बड़े महान् हैं पुरुष नहीं ।

(१) रस, मद्य ।

जब कि नवागत किरातसैन्य विश्राम कर चुका तब दूसरे दिन राजाओं के बीच हाथीदाँत के सिंहासन पर बैठे हुए, उन राजाओं से सत्कृत राजकुमार मृगाङ्कदत्त भीड़भाड़ वहां से हटाकर एकान्त में मातङ्गराज आदि अपने मित्रों से कहने लगे कि भाइयो अब विलम्ब क्यों किया जाता है क्यों नहीं इन सब सेनाओं के साथ उज्जयिनी को प्रयाण किया जाता ? मृगाङ्कदत्त की ऐसी उक्ति सुन श्रुतधि ब्राह्मण बोला "देव ! सुनिये, यहां नीतिशास्त्रज्ञों का जो मत है वह मैं आपसे निवेदन करता हूं। विजिगीषु (१) को चाहिये कि पहिले कार्य्य और अकार्य्य के विभाग का विचार कर लेवे, जो उपाय से साध्य न होवे वह अकार्य्य है उसका त्याग करना चाहिये। फिर जो कार्य्य उपाय से साध्य (होता) है वह चार प्रकार का होता है, उपाय भी साम, दान, भेद और दण्ड करके चार प्रकार का कहा गया है; उनमें से पूर्व पूर्व जो हैं सो श्रेष्ठ हैं पर पर निकृष्ट हैं (२); सो पहिले आपको साम ही का प्रयोग करना चाहिये। महाराज कर्म्मसेन लोभी तो हैं नहीं कि दान से काम चल जावेगा, फिर इनपर भेद का प्रयोग भी सम्भव नहीं है क्योंकि इनसे क्रुद्ध, लुब्ध और अपमानित कोई है ही नहीं। रहा दण्ड, सो भी संशयात्मक है; भला देखिये, वह कैसे दुर्ग में विराजमान हैं जहां कैसे २ वीर रक्षा में नियुक्त हैं, भला जहां पहुंचना कठिन है वहां दण्ड क्योंकर हो सकता है। और एक बात, कैसे ही बली और सहायसम्पन्न दो दल क्यों न लड़ें पर विजयलक्ष्मी का कुछ ठिकाना नहीं कि किस ओर ढरक जाय, फिर कन्यार्थी को तो यह कदापि उचित हो नहीं है कि उसके बान्धव का क्षय करे। सो महाराज ! मुझे तो यही सूझता है कि पहिले उनसे साम ही का प्रयोग किया जाय। सो क्या कि पहिले उनके पास दूत भेजा जाय; यदि इससे कार्य्य सिद्ध न हुआ तब तो हठात् दण्ड सिद्ध ही है बस उसी का प्रयोग किया जायगा।" श्रुतधि का एतादृश कथन सुन सब लोग, जो वहां उपस्थित थे, उसकी प्रशंसा करने और

(१) जीतने की इच्छा जो करता है।

(२) पहिले से अर्थात् साम दान भेद दण्ड इस क्रम से और पर से अर्थात् दण्ड भेद दान और साम इस क्रम से। पहिला क्रम उत्तम, दूसरा निकृष्ट यह भावार्थ है।

कहने लगे कि भाई तुमने ठीक और नीतिसङ्गत बात बतलायी है ऐसा ही कर्त्तव्य है। तब सब लोगों ने आपस में परामर्श कर किरातराज के सेवक सुविग्रह नामक ब्राह्मण को, जो कि दूत के समस्त गुणों से अलङ्कृत था, दूत नियुक्त कर कर्म्मसेन राजा के पास भेजा और मृगाङ्कदत्त ने एक पत्र लिखकर उस दूत को दे दिया कि यह पत्र महाराज कर्म्मसेन को दे देना।

चला चला वह दूत उज्जयिनी में पहुंचा और राजद्वार पर उपस्थित हो द्वारपालों को निज आगमन का कारण सुना गया। द्वारपालों ने महाराज की आज्ञा से उसे भीतर जाने दिया। अब वह दूत, उत्तमोत्तम अश्वों और गजेन्द्रों से रचित ड्योढ़ियां लाँघता हुआ अति मनोरम राजभवन में पहुंचा तहां देखता है कि महाराज कर्म्मसेन एक अति उत्तम सिंहासन पर विराजमान हैं और चारोंओर से सचिव घेरे बैठे हैं। वह प्रणाम कर एक निर्दिष्ट आसन पर बैठ गया और राजा से कुशलप्रश्न होने पर अति प्रसन्न हो उसने वह पत्र महाराज को अर्पण किया। राजा के सचिव प्रज्ञाकोष पत्र उठा खोलकर इस प्रकार पढ़ने लगा:—

पत्र।

स्वस्ति श्रीकरभग्रीवकोट्टमूलअटवीतट से, महाराजाधिराज अयोध्यापुरी के अधीश्वर श्रीमान् अमरदत्त के पुत्र प्रह्वोपनतराजक (१) श्रीमान् मृगाङ्कदत्त, उज्जयिनी में निजवंशपयोधि के चन्द्र स्वरूप महाराज कर्म्मसेन के समीप बड़े आदर से यह सन्देश भेजते हैं। आपके एक कन्या है, अवश्य वह किसी न किसी को दी ही जावेगी सो मुझे ही दे दी जावे। देवताओं ने कहा है कि वह मेरी सदृशी भार्य्या है। इस प्रकार हम दोनों का बन्धुभाव हो जाय और पूर्व का बैर भी मिट जाय; यदि ऐसा न हुआ तो अपने भुजों की ही प्रार्थना की जायगी (२)।

---

(१) अति नम्रता से राजा लोग जिसके साम्हने शिर झुकाते हैं।

(२) अपने भुजों का बल दिखलाया जायगा। भाव यह कि यदि आज मेरे

इस प्रकार प्रज्ञाकोष सचिव जब पत्र पढ़ चुका तब महाराज कर्म्मसेन का कोप भड़क उठा, उनके होंठ क्रोध से काँपने लगे और वह अपने सचिवों से इस प्रकार कहने लगे "इनसे हमसे पुराना विपक्षभाव चला आता है, देखो न इस मूर्ख ने भी वैसे हो सन्देश भेजा है। देखो कैसा असमञ्जस है। इसने कैसा अभिमान दिखाया है कि पहिले तो अपना नाम लिखा है और पीछे मेरा (१) और यहांलों दर्प बढ़ गया है कि अन्त में अपने बाहुबल को चर्चा भो कर दो है। अब इस अवसर पर मेरा कुछ प्रति सन्देश भेजना उचित नहीं है और कन्या को तो कुछ बात हो नहीं।" सचिवों से इस प्रकार कह राजा कर्म्मसेन ने दूत से कहा "जाओ दूत! तुम्हारे स्वामी को जैसा बूझ परे वैसा करें।"

महाराज कर्म्मसेन की ऐसी उक्ति सुन अति ओजस्वी वह दूत सुविग्रह ब्राह्मण डपटकर बोला, "अरे जड़! अभी राजपुत्र को देखा नहीं है इसीसे बहुत बढ़ बढ़ाता है, अच्छा प्रस्तुत हो, जब वह आ जावेंगे तब न जान पड़ेगा कि अपने और पराये में क्या अन्तर है।" दूत के इतना कहते हो राजसभा में खड़बड़ी मच गयी किन्तु राजा ने अति कोप से दूत से कहा कि जा रे जा, क्या करें तू दूत होने के कारण अवध्य है। दूसरे २ लोग दाँतों से ओठ काट २ हाथ मीज २ कर आपस में कहने लगे "चलो अभी चलकर उसे मार डालें।" अन्य लोग धैर्य्य सम्भाल बोले, "यह बड़बड़िया है क्या जाने वोरता क्या कहलाती है, अच्छा इस

प्रार्थना पर ध्यान न देकर अपनी कन्या मुझे दे न देंगे तो आपके साथ युद्ध किया जायगा।

(१) पूर्वकाल के पत्र का यह ऊपर लिखा हुआ पत्र एक नमूना है। पूर्व समय के व्यवहार से आजकल की नवीन प्रणाली से कितना अन्तर है। पूर्वकाल में प्रेषक के स्थान और नाम के पहिले लिखने से पानेवाला अपना अपमान समझता था उसके विपरीत यह प्रथा आजकल प्रचलित हो गयी। हां भेद इतना तो अवश्य पड़ता है कि प्रथम नाम न लिखकर पद तो अवश्य लिखा जाता है और पत्र के अन्त में नाम रहता है। अर्थात् यों कहा चाहिये कि यह प्रथा अंग्रेजी कार्य्यालयों की है और अब देशी भाई लोग भी उसका अनुकरण करने लगे हैं।

को तो उस समय समझ पड़ेगा जब कि हम अपना पुरुषार्थ दिखावेंगी। इसपर क्रोध करने से कुछ लाभ नहीं है।" किसी किसी ने अपनी भ्रूभङ्गों से चापरोपण के (१) सङ्केत किये किन्तु कुछ कहा नहीं, उनके मुँह क्रोध से लाल हो गये थे। इस प्रकार उस समय सारी सभा में क्रोध का डेरा पड़ गया और वह दूत वहां से निकलकर मृगाङ्कदत्त के पास अपनी सेना में जा पहुँचा। सुविग्रह दूत ने राजकुमार मृगाङ्कदत्त से राजा कर्म्मसेन का कथन कह दिया सो सुन राजकुमार ने सेनाओं में यात्रा की आज्ञा भेज दी।

शिखरिणी।

तबै स्वामीआज्ञाप्रबलपवनापात (२) हलस्यो,
बलाम्भोधी, जामें धवत (३) हय गय नर मकर हैं।
स्वपक्षी भूपों के हिय महँ जु सन्तोष तनतो (४),
भयो क्षोभित (५) कातर नरन मन भीतिप्रद (६) सही॥

वसन्ततिलकम्।

सेना के घोटकन लार से औ गजों के
मद से धरा हुइ गयी करदम (७) प्रपूरित।
धौंसो कि धुन से ह्वैगे बहिरे भुवन सब
गवन्यो मृगाङ्कदत्त उज्जयिनी जितै को॥

---

(१) भौंहें टेढ़ी कर धनुष की ओर सङ्केत करते कि धनुष चढ़ा के तुमसे अब बात की जायगी।

(२) स्वामी के आदेशरूपी प्रबल वायु के झकोरों से।

(३) धावत, इधर उधर दौड़ते हुए। (४) बढ़ाता हुआ।

(५) चञ्चल हुआ, अर्थात् उमड़ने लगा। ऊँचे २ तरङ्ग उसमें उठने लगी।

(६) भीति = भय, प्रद = देनेवाला, भय उत्पन्न करनेवाला।

(७) कर्दम = कीचड़।

छत्तीसवाँ तरङ्ग।

अब महाराजकुमार मृगाङ्कदत्त सेनायें सजाकर अपने मित्रों के साथ वहां से चले और विन्ध्यपर्वत डांककर उज्जयिनी की सीमा पर पहुँचे। उधर और महाराज कर्म्मसेन भी पहिले ही से सन्नद्ध थे, ज्यों ही कि इनके पहुंचने का वृत्तान्त उनको ज्ञात हुआ वह अपनी सेना के साथ नगरी से युद्ध के लिये निकले। अब दोनों ओर की सेनायें सामने सामने खड़ी हो गयीं और भीषण संग्राम प्रारम्भ हो गया।

छन्द तोमर।

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल॥
अति शोर कर बन्दूक। छूटैं निशान न चूक॥
घहरैं विपुल कड़बीन। गिरैं वीर जीव विहीन॥
भयो शूर मन अति कोप। लागि छुटन घोर सु तोप॥
छायो सकल दिसि धूम। व्याप्यो जु व्योम रु भूम॥
ह्वै गयो बहुल अँधार। नहिं सूझ हाथ पसार॥
लै खड्ग वीरन भिरे। कटि कटि धरा पर गिरे॥
तरवार फरसा बाँस। नाना प्रकार गड़ाँस॥
ललकारि लागी हनन। डुक एक लागे हलन॥
तब विविध विधि नाराच। छांड़्यो जु दुर्गपिशाच॥
कटि कटि लगे भट गिरन। कातर लगे अति डरन॥
लै जीव लागे परान। नृप कर्म्मसेन कहान॥
जो प्रान कर करि मोह। भजि जाइ तजि अब लोह॥
तेहि मारिहौं निज पानि। फिरे मरन मन महँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख तें करहिं प्रहार॥
रिपु परम कोपि जानि। मायावटू धनु तानि॥

भिरि गयो तिहि छन आय। लगे कटन वीर निकाय ॥
तब धीर नृप कर्म्मसेन । उड़वन लगे शिर गेन ॥
लगे काटन विविध किरात। मरतेहु करत आघात ॥
निज देखि दल संहार । कोपिउ सु राजकुमार ॥
तब डँटउ दत्त मृगाङ्क । छोड़त जु बाण शशाङ्क॥
उर सीस भुज कर चरन । कटि कटि लगे महि परन॥
चिक्करत लागत बान । धड़ पड़त भुधर समान ॥
भट तन कटत सतखण्ड । पुनि उठत करि पाखण्ड ॥
नभ उड़त बहु भुज मुण्ड । बिनु सीस धावत रुण्ड ॥
खग कङ्क काक सृगाल । कटकटहिं कठिन कराल॥
हय गय कटे कहुं परे । कहुं ऊँट जूटन डरे ॥
तब चली सोनितसरित् । मृत बहि चले सब त्वरित् ॥
तब उठे बहुत बेताल । नाचन लगे दै ताल ॥
जोगिन अनेक प्रकार । निरतैं जु करि हहकार॥

सोरठा।

भयो युद्ध अति घोर, दुहुं दल महँ ललकार कै।
मच्यो शोर चहुंओर, मार मार जनि जान दै ॥

वह संग्राम हिरण्यकशिपु के निवासभवनसमान हुआ, जहां श्रीनृसिंह के नाद से सब असुर त्रास से थर २ काँपने लगे और जो कातर रहे सो प्राण ले बड़ी विकलता से इधर उधर भागने लगे। उस युद्ध में बाणों की ऐसी वृष्टि लगातार हो रही थी कि मानों आकाश में घनघोर घटा छायी हुई है और मूसलधार वृष्टि हो रही हो; वे बाण योद्धाओं पर पड़के उनका इस प्रकार संहार करते थे जैसे टिड्डियां सस्यों पर गिर उनका ध्वंस कर डालती हैं। खड्गों के आघातों से हाथियों के कुम्भ जो विदीर्ण होते थे तो उनमें से मोती झरते थे सो ऐसी भावना होती थी मानोंसमर श्री का मुक्ताहार टूट गया हो। उस समय वह रणाङ्गण कैसा

भासता था मानों कृतान्त (१) का मुख हो जिसमें चोखे २ भाले आगी के दाँत हैं और अश्व, नर तथा कुञ्जर उसके ग्रास हैं। भल्लों से कटकर योद्धाओं के शिर जो भटकते थे सो क्या भावना होती थी मानों वे (शिर) दिव्य (२) स्त्रियों के मुख चूमने के लिये ऊपर उछलते हों। सुभटों के कबन्ध पद पद पर नाचते थे मानों सङ्गर रूपी उत्तम स्थाली पाय मद में चूर होकर नाच रहे हों। रक्त की नदियां बह चलीं और वीरलोगों के शव की ढेरियां लग गयीं। इस प्रकार रोमहर्षण परम भयङ्कर वह युद्ध पांच दिन होता रहा जिसमें अनेक शूरों का अन्त हो गया।

पांचवें दिन की बात है कि सायङ्काल में राजकुमार अपने सचिवों के साथ एकान्त में बैठे हुए थे कि श्रुतधि ब्राह्मण उनके समीप आया और कहने लगा, "देव ! इधर जब आपलोग समर में व्यग्र थे कि मैं भिक्षुक बन उज्जयिनी नगरी में चला गया, द्वार पर किसी प्रकार की रुकावट न पाकर मैं चुपचाप भीतर घुस गया। अपनी विद्या के प्रभाव से इस समय मैं ऐसा बन गया कि कोई निकट से निकट आने पर भी मुझे देख न सके सो देव ! जो कुछ मैंने वहां का अनुसन्धान लगाया है सुनिये आपको सुनाता हूं। जिस समय महाराज कर्म्मसेन युद्ध के लिये निकले उसी समय माता की आज्ञा से शशाङ्कवती भी राजभवन से निकलकर नगरी के मध्यवर्त्ती गौरी देवी के मन्दिर में जा बसीं उद्देश्य यह कि उनकी आराधना करें कि भगवती युद्ध में पिता का कल्याण करें। वहीं पर रहकर एकान्त पाय राजकुमारी अपनी एक आप्त सखी से कहने लगीं "देखती हो न सखि ! मेरे ही कारण तात के ऊपर यह उत्पात आ पड़ा है कि युद्ध खड़ा हो गया है। कहीं ऐसा हुआ कि बड़े उद्विग्न हुए तो राजसुत के हाथ में मुझे अर्पण कर देंगे क्योंकि राज्य के सामने महीपति लोग अपत्यस्नेह की कुछ गणना ही नही करते। अब मुझे इस बात की बड़ी ही चिन्ता हो गयी है कि न जानूं वह राजकुमार मेरे अनुरूप हैं या नहीं। सखि मुझे मर जाना अभीष्ट है पर मैं विरूप पति तो कदापि स्वीकार न करूँगी। यदि पति सुरूप हुआ और दरिद्र हो तो कुछ चिन्ता नहीं और समस्त पृथ्वी का अधीश्वर वह चक्रवर्त्ती हो क्यों न हो पर जो कहीं कुरूप हुआ तो मेरे किस कामका। सो सखि ! मैं तुम से बिनति करती हूं कि

(१) यमराज।　　(२) स्वर्गीय। दिव्य स्त्री = अप्सरा।

तू सेना में जाकर देख तो आ कि राजकुमार कैसे हैं। तुझे बहुत क्या समझाऊं तू तो स्वयं सयानी है फिर तेरा नाम भी चतुरिका है तो कहना ही क्या अपनी बुद्धि से ऐ मेरी प्यारी सखि! यह कार्य्य तू सम्पादन कर दे।" सो राजकुमार! वह सखी राजकुमारी की इतनी बात सुन यहां हमारे कटक में आयी और आपको देख जाकर राजकुमारी से कहने लगी "राजकुमारि! क्या कहूं मुझसे तो क्या पर कदाचित् वासुकि की भी जिह्वाओंसे भी उन राजकुमार के रूप का वर्णन न हो सकेगा, वह राजकुमार ऐसे सुन्दर हैं। बस मैं तो केवल इतनाही कह सकती हूं कि जैसे नारियों में तुझसी सुन्दर कोई ललना नहीं है वैसेही पुरुषों में उनके समान रूपवान् कोई मनुष्य नहीं है। हा। धिक! अरी सखि! मुझे सौ बार धिक्कार है क्योंकि यह मैंने बहुत ही थोड़ा कहा, मैं तो समझती हूं कि भुवन में न कोई सिद्ध, न गन्धर्व और न कोई देवता भी उनसा है।" राजकुमार आप धन्य हैं। बस सखी का इतना कहना कि शशाङ्कवती ने अपना मन आपको अर्पण कर दिया उसी समय काम ने भी अपने शरों का प्रहार उनके ऊपर किया उसी समय से वह आपका तथा अपने पिता का कल्याण मनाने लगीं और तपस्या तथा आपके विरह से क्षीण हो चलीं! सो महाराज! आज रात में छिप कर चलें और गौरी के मन्दिर से चुपचाप राजकुमारी को चुरा लावें और उनको लेकर मायावटु के घर चले जावें पीछे से ये राजा लोग किसी प्रकार कोप बचा कर मेरे साथ चले आवेंगे। यह युद्ध अब बन्द होवे और व्यर्थ सैनिकों का क्षय न होवे; आप लोगों के तथा आपके श्वशुर महाराज के शरीर अब कुशल पावें।"

इस प्रकार श्रुतधिकी बात सुन राजकुमार घोड़ों पर अपने सचिवों के साथ आरूढ़ हो रातही में चुपचाप चले। सब लोग तो सो रहे थे और फाटक पर जो थोड़े से पहरुए थे वे भी निद्रा के वश में पड़े थे सो ये लोग निर्विघ्न उज्जयिनी में बैठ गये और श्रुतधिने जो चिन्ह बतलाये थे उन्हीं से चलते रहे, और उसी समय प्राची मुख के तिलक शशाङ्क भी उदित हो गये इससे उनकी चन्द्रिका से सब कुछ स्पष्ट २ दीखने लगा सो पुष्पकरण्ड नामक महोद्यान के मध्य स्थित गौरी देवी के मन्दिर पर वे पहुंच गये।

उधर की बात यह थी कि शशाङ्कवती की सब सखियां तो परिचर्य्यादिसे थक गयी थीं अतः सो गयीं और शशाङ्कवती को निद्रा क्योंकर आवे, उनके मन में तो इस समय कई एक चिन्ताएँ भरी हैं भला उन्हें निद्रा कब आ सकती है, सो वह बैठी इस प्रकार शोच कर रही थीं, "हां! मेरे ही निमित्त दोनों ओर के बड़े २ राजा और राजपुत्र प्रति दिन खीरा ककरी की नाईं कट रहे हैं। इन्हीं देवी ने, जब कि मेरे ही उद्देश्य से यज्ञ हो रहा था, तो स्वप्न में बतलाया था कि यही राजकुमार तेरे पति होंगे। अब इस समय कामदेव भी अपना अवसर क्यों चूके मेरा हृदय टूक २ किये डालता है और इसी ने ले जाकर मेरा मन उनको समर्पण कर दिया। इधर देखती हूं तो मेरे पिता मुझ अभागिन को उन्हें देवेंहीगी नहीं क्योंकि एक पूर्व का बैर उन के मन में था ही फिर वह पत्र जो आया इससे और भी काम बिगड़ गया। अब इस समय विधाता रूस गये हैं तो स्वप्न में देवी के आदेश का भी क्या निश्चय किया जाय। अब मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता कि जिससे मेरे प्राणप्यारे मुझे मिल जांय। सो यदि उनका अथवा मेरे पिता का ही कुछ अनिष्ट हुआ तो महान् अनर्थ होवेहोगा और मुझको फिर कुछ आशा न रहेगी इससे पहिलेही मैं क्यों न आत्मत्याग कर डालूं।" इस प्रकार सोच विचार कर राजकुमारी उठीं और गौरी देवी के समक्ष अशोक वृक्ष के नीचे गयीं और अपनी ओढ़नी से पाश बनाने लगीं।

इसी अवसर में राजकुमार अपने वयस्यों के साथ उसी उद्यान में पहुंच गये और घोड़े वृक्षों में बांध दिये गये और राजकुमार अपने साथियों के साथ गौरी के मन्दिर पर पहुंचे। इतने ही में थोड़ी ही दूर पर राजपुत्री को देखकर विमल बुद्धि ने धीरे से मृगाङ्कदत्त से कहा, "देव! देखिये तो सही कोई यह वरकन्या क्या फांसी लगा कर मरने पर उतारू है, न जानें यह कौन है।" उसका कथन सुन ज्योंही राजकुमार उधर दृष्टि करें कि देखते ही चचकित हो कहने लगे "अहो क्या यह रूपवती रति है कि निर्वृति है, अथवा इन्दु की साकारा कान्ति है अथवा मन्मथ की जङ्गमा आज्ञा है, क्या यह कोई अमराङ्गना है? नहीं यह सम्भव नहीं! भला वे पाश क्यों सजाने चलीं, सो आओ पेड़ की आड़ में छिप कर हम लोग देखें और किसी प्रकार से पता लग ही जायगा कि यह कौन है।" इतना कह वह अपने वयस्यों के साथ वहीं छिप रहे।

इसी अवसर में अति उद्विग्न हो राजकुमारी देवी से इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं, "देवि ! पूर्व जन्म के दुष्कृतों से इस जन्म में यदि वह राजपुत्र मृगाङ्कदत्त मेरे पति न हो सके तो हे देवि आप ऐसी कृपा करें कि जब मैं अन्यत्र कहीं जन्म पाऊं तो वही मेरे पति होवें, हे शरणागतदुःखहारिणि मातः यह मेरी विनति स्वीकार करें।" इस प्रकार देवी से विनति और प्रणाम कर रोती हुई राजकुमारी ने फांसी गले में लगा ली। इतनेही में उधर सखियों की निद्रा टूटी तो राजकुमारी को न देख खोजती हुई वहीं पहुंची, "हा ! हा सखि ! तुमने यह क्या साहस किया ? हा धिक् !" इतना कह उन सभों ने उनके गले से पाश तोड़ डाला। अब राजकुमारी लज्जा और विषाद से शिर नीचा कर खड़ी रह गयीं।

इसी समय भवानी के मन्दिर से यह वाणी सुनाई पड़ी "पुत्रि ! शशाङ्कावति ! विषाद मत कर, मैंने जो स्वप्न में तुझसे कहा वह मेरा वचन कदापि अन्यथा नहीं हो सकता। पूर्व में जो मृगाङ्कदत्त तेरा पति ठहराय दिया गया था सो तेरे पासही उपस्थित है इसके साथ जाकर तू समस्त पृथ्वी का भोग कर।" सहसा देवी की यह वाणी सुन शशाङ्कवती लज्जा से इधर उधर धीरे धीरे देखने लगीं; इतने ही में मृगाङ्कदत्त का मन्त्री विक्रमकेसरी उनके पास जाकर हाथ से राजकुमार की ओर सङ्केत कर कहने लगा, "देवि ! भवानी ने सत्य सत्य कहा है यह वह राजकुमार आपके पति आपके प्रेमपाश से आकृष्ट हो आपके समक्ष विद्यमान हैं," इतना सुनते ही उन्होंने तिरछी चितवन से ज्यों देखा त्यों सहचरों के मध्यवर्त्ती तेजस्वी कान्त दीख पड़े, मानों ग्रहों से घिरे चन्द्रमा आकाश से उतरे हों और नेत्रों के लिये सौन्दर्य्यरूपी कामदेव अमृत बरसाते हों। अब कामदेव के बाणों का प्रहार भी होने लगा और राजकुमरी रोमाञ्चित हो निश्चल खड़ी रह गयीं कि इतनहो में राजकुमार उनके समीप आय उनकी लज्जा त्याग कराय सुमधुर वचनों से कालोचित कहने लगे, "नताङ्गि ! देश और बन्धुजनों को त्याग करवाय यह मैं बहुत दूर से दास करके पकड़वाय मंगाया गया हूं। बहुत दिनों से अरण्य में रहता आया, धरती पर सोता रहा, फलमूल आहार करता रहा और तीव्र सूर्य्य का सन्ताप तापता रहा सो इस कठिन तपस्या का फल मुझे आज मिला कि नेत्रों के लिये पीयूषवृष्टिसमान तुम्हारे शरीर के दर्शन हुए।

हे हरिणाक्षि! यदि मुझपर तुम्हारा स्नेह है तो हमारे नगर की स्त्रियों के नेत्रों का उत्सव करो और यह दोनों ओर का संग्राम भी शान्त हो जाय तथा गुरु के आशीर्वाद से मेरा जन्म सफल हो जावे ।" इस प्रकार मृगाङ्कदत्त का वचन सुन राजकुमारी धरती को ही ओर ताकती हुई धीरे २ बोलीं, "आर्यपुत्र! मैं तो आपको गुणों से मोल लेली गयी अब तुम्हारे अधीन हूं सो जिसमें आपको कुशल बूझ पड़े वही किया जाय ।" इस वचनामृत से राजकुमार मृगाङ्कदत्त आप्यायित हो गये और देवी को प्रणाम कर उनकी स्तुति कर, राजकुमारी को अपने पीछे घोड़े पर चढ़ाय वहां से चले और उनके सखा सब अपने २ घोड़ों पर आरूढ़ हो उनके पीछे २ चले । वे दशों वीर नङ्गी तलवार लिये राजकुमार की रक्षा में सन्नद्ध चले जाते थे और राजकुमार भी अपना खड्ग निकाल सन्नद्ध रहे । नगर के रखवाले उन ग्यारहों को देखकर भी मारे भय के रोक न सके क्योंकि उस समय वे ग्यारहों रुद्रों के समान महा भयङ्कर और दुरासद प्रतीत होते थे । जिस प्रकार श्रुतधिने बतलाया था उसी प्रकार वे शशाङ्कवतीसमेत उज्जयिनी से निकल कर मायावटु के घर को चले गये ।

अब पहरुओं में बड़ी खलबली पड़ी कि ये कौन थे और निकल कर कहां गये हैं अन्त में उज्जयिनी भर में यह बात फैल गयी कि राजसुता हरी गयीं । इतना सुनते ही महारानी महादेवी ने सेना में महाराज कर्मसेन के पास सम्वाद देने के लिये नगराध्यक्ष को भेजा । वह अधिकारी रातही रात महाराज के समक्ष उपस्थित हो कहने लगा "देव! आज सांझही के समय अपनी सेना से निकलकर मृगाङ्कदत्त अपने अमात्यों के साथ उज्जयिनी में ऐसे गुप्त रूप से पैठ गये, कि कोई जान न सका । राजकुमारी उस समय गौरी देवी के मन्दिर में थीं उन्हें वे हर ले गये । इसका ठीक २ पता मुझको लगा अब स्वामी को जैसा उचित समझ परे वैसा करें ।" पुरकोट्टपावाल का इतना कथन सुनतेही महाराज कर्मसेन ने सेनापति को एकान्त में बुलाकर सारा वृत्तान्त सुना दिया और कहा कि पांच सौ उत्तम २ घोड़ों पर श्रेष्ठ वीरों को आरूढ़ करा तुम अति शीघ्र उज्जयिनी में जाओ और उस पापी मृगाङ्कदत्त को मार डालो अथवा बांध रक्खो मैं तुम्हारे पीछे ही सेना लेकर पहुंचा ।" महाराज की ऐसी आज्ञा सुन सेनापति

रातही रात अश्वारोहियों के साथ उज्जयिनी को चला। मार्ग में वही नगराध्यक्ष उन्हें मिला और उससे ज्ञात हुआ कि राजपुत्री को हर कर वे वीर किसी दूसरे मार्ग से चले गये। अब उस नगराध्यक्ष ने लौट आकर महाराज कर्मसेन को यथा-वृत्त कह सुनाया। यह सुन राजा कर्मसेन अपने मन में सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये और उस राजकुमार का पकड़ा जाना भी कठिन है कुछ वश नहीं चलता अस्तु अब युद्ध किस लिये करना। इतना विचार वह आक्रमण से निवृत्त हुए और चुपचाप रहे। किसी प्रकार वह रजनी बीती। इधर राजकुमार मृगाङ्क-दत्त की सेना में मयावटु इत्यादि राजा श्रुतधिसे सारा वृत्तान्त पूर्व ही सुन चुके थे अतः बड़ी सन्नद्धता से उन्होंने रात बितायी।

प्रातःकाल होने पर राजा कर्मसेन ने पता लगवाया तो सब बातें ठीक २ उतरीं तब उन्होंने मृगाङ्कदत्त की सेना में राजाओं के पास एक दूत के द्वारा यह संदेश कहला भेजा कि मृगाङ्कदत्त छल कर मेरी कन्या हर ले गये तो क्या चिन्ता, उनके सदृश मेरी पुत्री के योग्य दूसरा कौन पति है सो अब वह आप लोगों के साथ मेरे घर आवें कि मैं विधिपूर्वक कन्या का विवाह कर देऊं। इस प्रकार उस दूत के मुख से महाराज कर्मसेन का सन्देश सुन श्रुतधि के साथ सब राजाओं ने मान लिया और इस दूत से कहा कि तुम्हारे प्रभु तब अपने नगर में जावें और हम लोग जाते हैं राजपुत्र को ले आते हैं। महाराज कर्मसेन दूत से इतना सुन अपनी सेना बटोर कर उज्जयिनी में चले गये।

यह देख कि राजा कर्मसेन अपनी सेना लेकर उज्जयिनी में चले गये मायावटु इत्यादि राजा भी श्रुतधिके साथ मृगाङ्कदत्त के पास चले। उधर मृगाङ्कदत्त भी अपनी प्रिया शशाङ्कवती के साथ काञ्चनपुर में मायावटु के घर पहुंच गये थे। राजा मायावटु के घर लोगों ने इनका यथोचित सत्कार किया और राजकुमार ने सिद्धकार्य्य हो अपने वयस्यों तथा भार्य्या के साथ विश्राम किया।

दूसरे ही दिन श्रुतधिके साथ अपने दलबल लिये किराताधिपति शक्ति र-क्षित, शबराधिपति मायावटु और मातङ्गचमूपति शूर दुर्गपिशाच प्रभृत राजा भी वहीं आ पहुंचे और रात्रो के साथ कैरव के समान शशाङ्कवती से युक्त मृगाङ्क-दत्त को देखकर अति प्रसन्न हुए और वहां उस दिन बड़ा भारी उत्सव मनाया

गया । राजकुमार मृगाङ्कदत्त ने उन राजाओं का बड़ा सम्मान किया तत्पश्चात् उन्होंने राजा कर्मसेन का सन्देश जो था कि मेरे घर आवें कह सुनाया । सब सेनाओं ने उपयुक्त स्थलों में डेरा डाला ।

अब राजकुमार अपने मन्त्रियों तथा उन राजाओं के साथ परामर्श करने के लिये बैठे और उन्होंने सब से पूछा कि भाइयो ! जबकि मैं उज्जयिनी से चला आया तो अब फिर मेरा वहां जाना उचित है कि नहीं ? सब राजाओं और मन्त्रियों ने एक मुंह से कहा कि राजकुमार ! वहां जाने का कुछ काम नहीं है, वह राजा बड़ा दुष्ट है उसके घर में जाकर कुशल कहां; फिर वहां काम ही क्या है राजसुता से काम था सो उन्हें तो हम लोग पायही चुके । राजाओं और मन्त्रियों का ऐसा ऐकमत्य सुन राजकुमार मृगाङ्कदत्त ने श्रुतधि से पूछा, "ब्र-ह्मन् ! आप उदासीनवत् चुप क्यों बैठे हैं ? क्या आपका भी यही मत है अथवा कुछ और है ? कहिये ।" तब श्रुतधि बोला "महाराज ! जो आप सुनें तो मैं कहूं, मेरी तो यह सम्मति है कि कर्म्मसेन के घर चलना; यह सन्देशा जो उन्होंने कहलाया है इससे किसी प्रकार का कपट बोध नहीं होता क्योंकि यदि मन काला होता तो, वह बली हैं, पुत्री के अपहरण होने पर युद्ध का त्याग कर घर न चल जाते, सो वह चले गये इससे कपट नहीं बोध होता । फिर आपके साथ यद्यपि सैन्य हैं जो आप उनके घर जावेंगे तो वे आपका कर ही का लेंगे प्रत्युत इससे एक उपकार होगा कि उनके साथ आपका प्रेमभाव हो जायगा । अब दुहिता के स्नेह से पहिले ही वे हमारे सहायक होवेंगे । अविधिपूर्वक विवाह उन्हें इष्ट नहीं है इसी से ऐसा कहते हैं । सो मैं तो समझता हूं वहां चलना चाहिये ।" श्रुतधि का ऐसा कथन सुन सब लोग उसकी प्रशंसा कर धन्य २ कहने लगे ।

तब राजकुमार फिर बोले, "यह सब तो होगा किन्तु विना पिता और माता के मुझे विवाह अच्छा नहीं लगता है, सो यहां से कोई जावे और उन्हें बुला लावे उनका मत जान कर जैसा उचित होगा किया जायगा । इतना कह, सभों से परामर्श कर राजकुमार ने भीमपराक्रम को अपने माता पिता के पास भेजा ।

उधर अयोध्या की यह बात थी कि महाराज अमरदत्त ने अपने मन्त्री विनीतमति की बातों में आकर उस समय तो अपने पुत्र राजकुमार मृगाङ्कदत्त को निकलवाय दिया किन्तु कुछ कालोपरान्त उन्हें लोगों से ज्ञात हो गया कि यह सब विनीतमति की कुटिलता है कि उसने राजकुमार को निकलवाय दिया। तब तो मन्त्री की दुष्टता से निरपराध पुत्र के निर्वासनरूपी सन्ताप से महाराज बड़े ही सन्तप्त हुए और उन्हें क्रोध भी बड़ा हुआ कि देखो इस दुष्ट ने कैसा धोखा दिया और महान् अनर्थ मुझसे करवाय डाला इस क्रोध से उस कुमन्त्री को वंशसहित मरवाडाला, अब विनीतमति के कुल में "रहा न कोउ कुलरोपन हारा" की बात चरितार्थ हुई। अस्तु मन्त्री को अपनी दुष्ट करनी का फल मिल गया और महाराज अमरदत्त अपने कर्तव्य पर पछताते, शिर पीटते और विलाप करते, रहते दिनों दिन दशा उनकी हीन हो चली। अब वह और शोक सम्भाल न सके सो महारानी सहित नगरी अयोध्या से निकले और नन्दिग्रामस्थ शिवालय में रहकर तपस्या करने लगे।

उधर महाराज और महारानी को तपस्या करते २ बहुत दिन हो गये कि इधर राजकुमार का भेजा दूत भीमपराक्रम वायुवेग से अयोध्या में आ पहुंचा तो उस नगरी की अवस्था उसे कैसी दीख पड़ी कि राजपुत्र के प्रवास से पुरी वैसी ही दुखित और शोकसन्तप्त है जैसी कि पहिले रामचन्द्र के बनवास से उसकी दशा हो गयी थी, मानों वही कष्ट फिर लौट आया हो। भीमपराक्रम के देखते ही पुरवासी घिर आये और राजकुमार की बात पूछ ने लगे। भीमपराक्रम को उनसे ज्ञात हुआ कि महाराज नन्दिग्राम में है सो वह वहीं गया और साथ में घेरे हुए नगर के लोग भी वहां गये। चार से तो महाराज को भीमपराक्रम के आने का शुभ सम्वाद प्रथम ही ज्ञात हो गया था अतः वह अपने पुत्र के वृत्तान्त जानने के लिये अति उत्कण्ठित हो रहे थे। इतने में भीमपराक्रम आही पहुंचा तो वह क्या देखता है कि महाराज और महारानी दोनों तपस्या से अति क्षीण हो गये हैं। दौड़ कर भीमपराक्रम महाराज के चरणों पर गिरा और महीपति ने उठा कर उसे गले लगा लिया और गद्गदस्वर से पूछा, "कहो हमारे लाल का क्या वृत्तान्त है? तब भीमपराक्रम नेत्रों में जल भर कर राजकुमार मृगाङ्कदत्त की

इतिवृत्ति सुनाने लगा," महाराज। आपके पुत्र मृगाङ्कदत्त ने अपने वीर्य्यसे कर्मसेन महीपति की कन्या शशाङ्कवती को प्राप्त किया, अब उन दोनों का उद्वाह होनेवाला है किन्तु पितृभक्त राजकुमार को विना आपके तथा देवी के विवाह नहीं सोहाता है अत: उन्होंने मुझे भेजा है और धरणी पर शिर रख विनयपूर्वक यह सन्देश कहा है कि आप दोनों हमारे पूज्य यहां ही आ जावें। अब वह आपकी प्रतीक्षा में काञ्चनपुर में शवराधिपति मायावटु के गृह में ठहरे हैं। और अब मैं उनका वृत्तान्त आपको सुनाता हूं, इतना कह, देश से निकल ने के उपरान्त अटवीं में जो सभों का विषम वियोग हो गया था वहां से लेकर कर्मसेन राजा के साथ युद्ध पर्य्यन्त का सारा वृत्तान्त भीमपराक्रम यथावत् सुना गया।

अब राजा अमरदत्त को निश्चय हो गया कि मेरे राजकुमार कुशल से हैं सो अत्यन्त प्रसन्न हो उन्होंने उसी क्षण प्रस्थान करने की आज्ञा दी। विलम्ब किसका था बस सब लोग प्रस्तुत हो गये। महाराज अपनी महिषी के साथ गजेन्द्र पर आरूढ़ हुए और साथ में उनके सचिव तथा अनेक राजा चले। आगे २ हाथी, घोड़े और सैन्य भी चले। "मनहु सरोवर तक पियासे" की लोकोक्ति की भांति सब लोग तावड़तोड़ चले जाते थे और थोड़े ही दिनों में शवरेन्द्र के देशस्थ पुत्र की सेना में पहुंच गये। जब कि राजकुमार को ज्ञात हुआ कि पिता आ रहे हैं तो वह अत्यन्त प्रमुदित हुए और अपने मन्त्रियों तथा राजाओं के साथ आगे से मिलने के लिये चले। दूरही से पिता को देख मृगाङ्कदत्त घोड़े पर से उतर पड़े और दौड़ कर जाकर गजारूढ़ जगत जननी के चरणों पर गिरे। पिता ने उठाकर अङ्क में लगा लिया और उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर आये और हृदय में मनोरथ भर गया। माता ने ललक कर छाती से पुत्र को लगा लिया और बार २ मुखचूमा अब वह पुन: वियोग के भय से पुत्र को छोड़ती न थीं। मृगाङ्कदत्त के सुहृदों ने भी महाराज और महारानी को प्रणाम किया और राजकुमार ने एक एक करके उनके नाम बतलाये। राजा और रानी ने अत्यन्त स्नेह से अपने पुत्र के सहायकों को आशीर्वाद और अभिनन्दन दिये। अब मायावटु के भवन में सब लोग आये और तहां शशाङ्कवती आकर अपने सास ससुर के पावों पड़ी। तपश्चात् महाराज सब देख सुन तथा भेट ग्रहण कर अपनी पत्नी तथा

पुत्रबधू के साथ वहां से निकले और अपने कटक में ठहरे। राजकुमार तथा समस्त राजाओं को एकत्र कर महीपति नें सब के साथ भोजन किया। पश्चात् नाच गान का जमावड़ा हुआ और आनन्द मङ्गल के साथ वह दिन बीता। महाराज अमरदत्त ने अपने प्रतापी भावीचक्रवर्ती पुत्र मृगाङ्कदत्त से अपने को कृत कृत्य समझा।

उधर राजा कर्मसेन ने अपने मन्त्रियों से परामर्श कर राजकुमार मृगाङ्कदत्त के निकट एक दूत भेजा और उसे एक पत्र लिख कर दे दिया और कहा कि राजकुमार से मुखाग्र कहियो कि हे अनघ ! जो आप उज्जयिनी न आवेंगे तो कोई चिन्ता नहीं, मैं अपने पुत्र सुषेण को आपके पास भेजता हूं वह अपनी भगिनी शशाङ्कवती का दान आपके हाथ में कर देगा इससे विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न हो जायगा। यदि हमारे स्नेह का अनुरोध होवे तो ऐसा ही किया जाय। यही बात उन्होंने पत्र में भी लिख दी थी।

महाराज अमरदत्त की सभा लगी थी और सब नरपति तथा राजकुमार बैठे विचार कर रहे थे कि उसी समय महाराज कर्मसेन का दूत पहुंचा और बड़ी नम्रता से यथोचित सत्कारपूर्वक राजकुमार मृगाङ्कदत्त को सन्देश सुना गया। राजपुत्र के सन्देश सुन चुक ने पर उनके पिता स्वयं महाराज अमरदत्तने उत्तर दिया "महाराज कर्मसेन को छोड़ और दूसरा कौन ऐसा कह सकता है हम लोगों पर आपका बड़ा ही स्नेह है सो राजकुमार सुषेण को यहां भेज देवें हम लोग वैसाही कार्य्य करेंगे जिससे महाराज को कन्या के विवाह से सन्तोष होगा।" इस प्रकार प्रति सन्देश देकर, दूत का बड़ा सम्मान और सत्कार कर महाराजने उसे बिदा किया।

इस प्रकार दूत को बिदा कर महाराज अमरदत्त ने राजकुमार, श्रुतधि तथा राजाओं से कहा कि आओ अब हम लोग अयोध्या में चलें क्योंकि वहां ही विवाह की शोभा है और सुषेण का सत्कार वहां सम्यक् सिद्ध होगा। राजा मायावटु यहां सुषेण को प्रतीक्षा करें और जब राजपुत्र आ जावें तो उनको लेकर पीछे अयोध्या में आवें। हम लोग तब से चल कर विवाह के सब कार्य्य सम्पन्न कर रक्खें।" राजा को यह बात सबों को अच्छी लगी और सभों ने मान ली।

अब दूसरे दिन महाराज अपनी महिषी तथा सैन्य के साथ राजकुमार तथा राजकुमारी और सब राजाओं और मन्त्रियों को संग ले, सुषेण के आगमन पर्य्यन्त मायावटु को वहीं छोड़ कृतकृत्य हो वहां से चले । महाराज और राजकुमार की एक साथ जो सेनाएँ चलीं उनसे उस समय मानों समुद्र उमड़ा हो, उछलते कूदते जो तुरङ्ग चले जाते थे सो हो सैकड़ों तरङ्गों की भावना उपजाते थे, पदातियों से जो सारी दिशायें भर गयी थीं उनसे ऐसा भासता था कि चहुं ओर जलही जल है कहीं थल दिखाता हो नहीं, सेनाओं में जो तुमुल शब्द होते थे वेही समुद्र के प्रचण्ड गर्जन का काम देते थे; इस प्रकार अति गम्भीर और भीषण बलाम्भोधि उस समय मानों चला यही भावना देखने से होती थी। सैन्यों से इतनी धूलि उड़ी कि आकाश धूलिमय हो उस समय पृथ्वीसा भासने लगा और सेनाओं से जो मत्त गजेन्द्र चिघाड़ते थे उनकी गर्जन से पृथ्वी से आकाश का भास होता था । मार्ग में हो किरातराज शक्तिरक्षित का घर पड़ा सो पितापुत्र वहां पहुंचे तहां किरातराज ने अपनी भार्य्या के सहित बड़े २ बहुमूल्य रत्न और हेम तथा उत्तमोत्तम वस्त्रादि महाराज और राजकुमार को उपहार दिये और सकल सैन्य के साथ उनकी यथावत् आभ्यर्थना कियी। वहां महाराज अमरदत्त तथा राजकुमार मृगाङ्कदत्त एक दिन टिके और सब आहारादिक क्रियाएँ सम्पन्न कर भली भांति सुखपूर्वक दोनों ने विश्राम किया । दूसरे दिन वहां से सब लोग चले और चलते २ अयोध्या में पहुंचे ।

उस समय अयोध्या की अपूर्व शोभा थी. प्रमदायें अंटारियों पर चढ़ २ निरखतीं कोई खिड़कियों से देखतीं, कोई इधर से उधर दौड़ती फिरतीं, उनके मुखों की कान्ति चहुंओर छिटकती मानों नगरी सरोवर में फूले कमल लहरा रहे हों। राजकुमार बहुत दिनों पर आ रहे हैं सो भी बहू के साथ, बस पौराङ्गनाओं के नेत्र उनके अवलोकन के हेतु अत्यन्त उत्सुक अत एव अति चञ्चल थे मानों बतास से कमल हिलते हों। चारों ओर से राजहंस आ कर वहां उतर रहे हैं और सर्वत्र पताकाएँ जो लहरा रहीं हैं मानों वायु से सरोवर लहरा रहा है। ऐसी शोभामय नगरी में उस समय महाराज महिषीसहित अपने पुत्र और पुत्रवधूके साथ पैठे । उस समय चारों ओर से ब्राह्मणकुल आशीर्वाद देने लगी और पुरवासी लोग अभि-

नन्दन देने लगी, वन्दीजन स्तुतिगान और चारण गुणगान करने लगी। कर्मसेन की इस तनया को जो सागर देखे तो उसका यह दर्पही चूर हो जाय कि लक्ष्मी मेरी बेटी है, और हिमवान् देखें तो गौरी पुत्री है इसका अहङ्कार जाता रहे," शशाङ्कवती का लावण्य देख कर अतिविस्मित हो कर जहां तहां लोग इस प्रकार कहने लगी। मंगल के धौंसे धमकने लगी उनसे दिशाएं गूंज उठीं मानों राजाओं के उत्सव में चैतन्य पा गयीं। नगरी में जो अनुराग भरा था सो मानों इस समय बाहिर निकल पड़ा मानों मांग में सिन्दूर लगा कर वह पुरी नृत्य कर रही है। ऐसी उत्सवमय नगरी निजराजधानी में सपत्नीक महाराज अमरदत्त अपने परिजनवर्गसहित पुत्र पुत्रवधू को लिये दिये आविराजे।

महाराज ने प्रातःकाल होते ही ज्योतिषियों को बुला भेजा और उनसे राजकुमार के विवाहका लग्न पूछा। अस्तु गणकों ने गिन बतलाया कि महाराज कल ही तो अत्युत्तम दिन बनता है। चलो अब क्या! महाराज अमरदत्त अपने पुत्र के विवाह के सम्भार करने लगे। चारों ओर से महाराज के यहां नानाप्रकार के रत्न आने लगे जिनसे वह नगरी भर गयी उस समय अयोध्या के साम्हने कुबेर की नगरी अलका भी लज्जित होती थी। इसी अवसर में मायावटु का दूत आया, द्वारपालने महाराज की आज्ञा पाय उसे उनके समक्ष उपस्थित किया। वह दूत प्रणाम कर महाराज से निवेदन करने लगा "देव! राजकुमार सुषेण और राजा मायावटु आपहुंचे अब अयोध्या की सीमा पर स्थित हैं।" इतना सुनतेही महाराज ने अपने सेनापति को सैन्यों के साथ सुषेण की अगवानी के लिये भेजा। राजकुमार को भी ज्ञात हुआ सो वह भी अपने सुहृदों के साथ सेनापति के संग राजपुत्र के स्वागत के लिये गये। दूरही से देखा देखी होतेही दोनों राजकुमार अपने २ वाहन से उतर पड़े और कण्ठ लगकर मिले और परस्पर कुशल प्रश्न होने के उपरान्त अति आनन्द के साथ एकही रथ पर बैठे और नगरी में पैठे। नगरी की स्त्रियां फिर अपनी २ अंटारियों और खिड़कियों पर आ विराजीं और दोनों राजकुमारों के दर्शनों से अपने नेत्रों के फल लूटने लगीं। सुषेण आ कर महाराज के चरणों पर गिरे और महीपति ने उनका बड़ा सम्मान किया।

इसके उपरान्त राजपुत्र सुषेण अपनी बहिन के वासगृह में गये, शशाङ्कवती उन्हें देखतेही ललक के उठीं और भाई के गले लग रुदन करने लगीं। अब सुषेण

भगिनी को बहुत कुछ शान्ति और सन्तोष दिला बैठे और शशाङ्कवती भी लज्जा से शिर नीचा कर बैठ गयीं । तब राजकुमार सुषेण अपने पिता का सन्देश बहिन से कहने लगे, "बहिन ! पिताने तुमसे कहा है कि हे पुत्रि ! तूने कुछ अनुचित नहीं किया; आज मुझको ज्ञात हुआ है कि स्वप्न में भगवती अम्बिका ने तुझसे कहा था कि तेरे पति मृगाङ्कदत्त होंगे; स्त्रियों का यह परम धर्म्म है कि पति के मार्ग का अनुसरण करें।" भाई के मुख से पिता का ऐसा सन्देशा सुन बाला शशाङ्कवती का भय दूर हुआ और लज्जा भी अब न रही, अब वह इष्ट सिद्ध हो जाने से अति प्रसन्न तो हुईं तथापि धरती की ओर ही निरखती रहीं।

अब राजकुमार सुषेण ने शशाङ्कवती का जो सञ्चितधन उनके पिता ने दिया था, महाराज अमरदत्त के समक्ष अपनी भगनी शशाङ्कवती को क्रमशः अर्पण कर दिया, दो सहस्र भार (१) सोना, रत्नों और आभरणों का एक (सम्भवतः सहस्र) भार (२) अन्यान्य द्रव्यों से लदे लदाये पांच ऊंट और अनेक सुवर्ण के पात्र। इतना अपनी भगनी को अर्पण कर राजकुमार सुषेण बोले "यह तो बहिन का स्वधन है और पिता ने जो कुछ दिया है सो इसको विवाह के समय क्रम २ से देऊंगा।" इसके उपरान्त मृगाङ्कदत्तादि के संग भोजनादि से निवृत्त हो आनन्दोत्सव में लीन हुए और वह दिन बड़े उत्सव और समारोह के साथ बीता।

दूसरा ही दिन विवाह का शुभ दिवस था; उस दिन महाराज कार्य्यों में व्यग्र थे । मृगाङ्कदत्त ने अपने अनुरूप स्नानादि कार्य्य किये, उधर स्त्रियों ने भी शशाङ्कवती को स्नान कराय भली भांति उनका शृङ्गार कर दिया, अब कौतुकागार से, जहां कि सुषेण अतिव्यस्त थे, निकल कर वधूवर अग्नि के समक्ष वेदी पर बैठे। वहां राजकुमार मृगाङ्कदत्त ने, विष्णु ने जिस प्रकार लक्ष्मी का, उसी प्रकार शशाङ्कवती का करकमल ग्रहण किया । अब दोनों वधूवर अग्नि की प्रदक्षिणा देने लगे. तिस समय एक तो अग्नि का ताप दूसरे धूम अतः विना कोप हो राजकुमारी का मुख लाल हो आया और नेत्रों में अश्रु भर गये तथापि उसको

(१) १६ माष १ कर्ष, ४ कर्ष १ पल, २००० पल १ भार ।
(२) भार कि सहस्र के साथ सम्बन्ध रहने से ऐसी उक्ति है ।

एक अलौकिक शोभा उस समय थी। अग्नि में जो लावों की अंजलियां छूटती थीं सो कैसी शोभती थीं मानों प्रयत्न के सफल हो जाने से प्रहृष्ट मनोभव के हास हों। प्रथम लाजविसर्ग * पर राजपुत्र सुषेण ने पांच सहस्र घोड़े और सौ गजेन्द्र, दो सौ भार सोना, उत्तमोत्तम वस्त्र, रत्न और आभरणों से लदी नव्वे हथिनियां, इतना धन दिया। मही जीत २ कर जो धन सञ्चित हुआ था उसका भण्डार मानों खुल गया। बस इसी प्रकार और २ लाजविसर्गों पर कुमार सुषेण यौतुक दोहराते गये। बाजे गाजे की कुछ गिनती ही न थी; आनन्द मङ्गल और बड़े उत्साह और समारोह के साथ शुभ विवाह सम्पन्न हुआ और राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपनी नवोढ़ा शशाङ्कवती के साथ अपने भवन में गये।

अब महाराज अमरदत्त दानागार में गये और लगे हाथी, घोड़े, रत्न, आभरण, अन्न और पान लुटाने, जो जिस योग्य था उसे उतना और वही देते थे; महाराज ने अपने राज्य भर के समस्त लोगों और पुरवासियों को छका छक कर दिया, यहां लौं कि शुकशारिकादि पक्षी भी न छूटे, उन्हें भी सम्यक् सन्तुष्ट किया। महाराज का दान उस सयय ऐसा मुक्तहस्त हुआ कि वृक्षों में वस्त्र और आभरण बाँध दिये गये थे कि जिसे जो भावे ले लेवे, इस समय पृथ्वी पर के वृक्ष मानों कल्पतरु हो गये थे।

तत्पश्चात् राजा अमरदत्त ने मृगाङ्कदत्त, शशाङ्कवती, सुषेण तथा राजाओं के साथ भोजन किया और तब नाना प्रकार के पानद्रव्यों का उत्सव हुआ। इस प्रकार आनन्द मङ्गल के साथ दिन बीता। दिन भर नाचरङ्ग का समारोह भी कुछ न्यून न था। इधर गृह के लोग खा पीकर सुचित्त हुए उधर धराका रस पीकर रवि भी अस्ताचल की कन्दरा में समाये। नवरागोज्ज्वला सन्ध्या के साथ उन्हें (सूर्य्य को) कहीं चला गया देख वासरश्री, इधर उधर नीड़की ओर जाते हुए पक्षीगण जिसकी मेखला हैं, डाह से कुपित हो मानों भाग गयी। रात्रीरूपिणी अभिसारिका (१) जिसका मुखड़ा इस समय अपने प्रियतम के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित है अतएव प्रत्यक्ष कामदेव की प्रबलता प्रगट किये देता है और जिसमें चमकते तारे (२) चञ्चल हैं, जिसका वस्त्र तिमिररूपी असित

* लावों का अग्नि में छोड़ना। (१) प्रियतम के पास जानेवाली नवोढ़ा। (२) आंखों की पुतलियां।

वर्ण है; धीरे २ बढ़ती हुई दीख पड़ी। नवीन सिन्दूर के समान उज्ज्वल शशाङ्क उदयाचल के शिखर पर शोभमान हुए। रतिवल्ली के नवीन पल्लव समान वह चन्द्र जिसका कर्णपूर है ऐसी पूर्वदिशा अन्धकार के दूर हो जाने से हँसती हुई विराजने लगी।

ऐसे आनन्दमय समय में महाराजकुमार मृगाङ्कदत्त सन्ध्यावन्दनादि क्रियाओं से निपटकर सुचित्त हो गये और जब आधीरात का समय हुआ तब वह अपनी नवोढ़ा पत्नी शशाङ्कवती के साथ रजनीवासगृह में पधारे जहां बहुमूल्य पलङ्ग बिछा था। शशाङ्कवती के चन्द्रवदन से उस भवन का अन्धकार भागकर न जानें कहां भाग गया और भीतों पर के सब चित्र चमकने लगे मानों उत्तमोत्तम मणि-प्रदीप का भी अनुकरण वे करने लगे। वहां उस महार्हशयनीय पर दोनों पति पत्नी विराजमान हो गये और राजकुमार ने शशाङ्कवती को हृदय से लगाकर उनका मुख चूमा और अधर पर दन्ताघात किया इस प्रकार क्रम २ से उनकी लज्जा दूर करायी। "अजी मत, अजी मत, बस कीजिये" इत्यादि अमृतायमान अक्षर, जिनके सुनने की बहुत दिनों से उनकी अभिलाषा थी, सुनने लगे और परम सुख का अनुभव करने लगे। ये अक्षर क्या थे मानों नवीन मोहन मन्त्र के सार थे। इस प्रकार नाना प्रकार के विलास और भोग होने लगे और महाराज-कुमार मृगाङ्कदत्त की बहुत दिनों की लालसा आज पूर्ण हुई। इस प्रकार क्रीड़ा ही में वह रात्री व्यतीत हो गयी किन्तु प्रीति की वृद्धि हुई।

अब वन्दीजन राजकुमार को जगाने लगे:—

जागहु नृपसुत निशि अब बीती त्यागहु रति की शैय्या।
यह मृगनयनी कँपावनहारो पवन चलत पुरवैय्या॥ १॥
दूबन ऊपर पड़े ओस कन चमक अरुन की जोती।
चन्द्र सङ्ग भागी रजनी के गिरे हार के मोती॥ २॥
इन्दु प्रभा फूले कैरव के कोषन ऊपर बैठे।
आनँद सों रसपान करत थे भृङ्ग रसिक मनि ऐंठे॥ ३॥
अब उनके सङ्कुचित विगतश्री होते अनत सिधारे।
सम्पति में सब साथी जग है विपति में न्यारे न्यारे॥ ४॥

दिनमणिचुम्बित अधर निशा को त्यागि मनोभव दीन्हो ।
चन्द्र तिलक दृग अञ्जन फीको अङ्ग मथित जिमु कीन्हो ॥५॥

इस प्रकार वन्दियों के मधुरस्वर से जगाने पर राजकुमार मृगाङ्कदत्त शशाङ्कवती के कण्ठका परित्याग कर उठे, सुरत से जो सुख नींद हुई थी सो दूर हुई और उन्होंने पलङ्ग का त्याग किया। उठकर उन्होंने आह्निक क्रियाओं से सुचित्त हो जाकर महाराज के दर्शन किये और उन्हीं के सङ्ग सब दैनिक कार्य सम्पादित किये । इस प्रकार उनके और शशाङ्कवती के दिन बड़े उत्सवों से व्यतीत होने लगे ।

अब सब पहुनों की विदाई का उपक्रम होने लगा, महाराज अमरदत्त ने पहिले मृगाङ्कदत्त के साले राजकुमार सुषेण का अभिषेक कर उनके शिर पर अपने हाथों से पगड़ी बाँधी और उनके योग्य अनेक हाथी घोड़े सुवर्ण के आभूषण और उत्तमोत्तम वस्त्र दिये और एक सौ उत्तम स्त्रियां भी अर्पण कियीं तथा बड़ा सम्मान किया। इनके पीछे महाराज ने शबराधिपति मायाबटु तथा किराताधीश्वर शक्तिरचित तथा उनके बन्धुबान्धव और मातङ्गचमूपति दुर्गपिशाच का यथोचित सम्मान किया पश्चात् मृगाङ्कदत्त के उन मन्त्रियों का तथा श्रुतधि ब्राह्मण का बड़ा सम्मान किया सभों को घोड़े गौयें हेम और बहुमूल्य वस्त्राभरणों से सम्मानित किया। इसके पश्चात् महाराज अमरदत्त ने सुषेण के साथ किरातेन्द्र प्रभृति राजाओं को अति प्रेम से समाश्वासन कर विदा किया और वे लोग महाराज का निदेश पाकर अपने २ देश को सिधारे ।

राजाओं के चले जाने पर कुछ काल पर्य्यन्त सब लोग उदास रहे और उन्हीं मित्रों के विषय में कथोपकथन करते रहे। अब महाराज अपने पुत्र के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। पुत्र के शौर्य्य से उनका अन्तरात्मा अति प्रमुदित हुआ, उनकी सब प्रकार की चिन्तायें दूर हुईं अब वह सुचित्त हो राज्य के कार्य्यों में दत्तचित्त हुए। मृगाङ्कदत्त भी सब बैरियों को जीत हो चुके थे और बहुत कालोपरान्त शशाङ्कवती को पाया था सो वह भी भीम पराक्रम प्रभृति अपने मित्रों और सचिवों के साथ आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे।

इस प्रकार अत्यन्त आनन्दमङ्गल से समय व्यतीत हो गया और— महाराज अमरदत्त को जरा ने घेरा । "श्रवण समीप भये सित केसा । मनहुं जरठपन अस उपदेसा ।" वाली बात आ पहुंची । श्रवण के समीप आकर बुढ़ौती मानों महाराज को यह उपदेश देती है कि राजन् ! बहुत दिन आप राजलक्ष्मी का भोग कर चुके अब आपको शान्ति ग्रहण करनी चाहिये यह काल अब विश्राम का है। बस इसी उपदेश के लिये वह महाराज के शरीर में मानों आ बसी। अब महाराज का मन भोगविलास से विरक्त हो गया । एक दिन उन्होंने अपने सब मन्त्रियों को अपने पास बुलाकर कहा कि भाइयो ! सुनिये अब मेरे मन में जो विचार है सो आपलोगों को सुनाता हूं:—

चौपाई ।

बीती बयस भयो सित केसा । मनु यमदूत ले आए सन्देसा ॥१॥
वृद्धापन सबरस भये जीरन । भोगवासना अब है विड़म्बन ॥२॥
बूढ़ भये जो सुखकर लालस । लोभ मनोभव वृद्धि स्वाद रस ॥३॥
जिनके हों तेहि कुपुरुष जानिय। नहिं ये रहहिं कबहुं सज्जनहिय ॥
बड़ो यशस्वी सुत यह जायो । सबल अवन्ति नरेस हरायो ॥ ५ ॥
प्रजावर्ग जेहि बहुते मानत । प्रकृति हिते हित जो निज जानत॥
सुत मृगाङ्कदत्त ऐसो लायक । जेहि के हैं सब लोग सहायक ॥७॥
सुनिय न निन्दा कतहूँ जाकी। धर्म माहिं जिसु मति परिपाकी ॥

दोहा ।

ऐसे सुत कहँ राज दै, तप कहँ तीरथ जाइ ।
होउँ लीन भगवान में, अब यह मोहिँ सोहाइ ॥

चौपाई ।

सुनि इमि गिरा भूप कर सांची । सचिवन मांझ बड़ी मुद मांची ॥
देविन सुनि नृपमन की बाता । भयो उछाह न हृदय समाता ॥

पुरवासिन जब सुनी सुबानी। कहहिं भलो नृप यह जिय ठानी॥
सब के हिय अति हर्ष अपारा। कहहिं नीक यह भूप विचारा॥
सब कर लहि अनुमोदन राजा। बोलि पठाये गणकसमाजा॥५॥
अति हित लगन पूछि नृप लीन्हा। शोधि शास्त्र गणकन कहि दीन्हा॥
जब आयो शुभलगन तिलक को। भूप द्वार भइ भीर खलक को॥
द्विजवर जस जस आयसु दीन्हा। नृपवर मोद सहित सब कीन्हा॥

दोहा।

राजकुँवर अभिषेक हित, सजो भलो सुसमाज।
दीप दीप के भूप सब, आये दरसन काज॥२॥

अब महाराज अमरदत्त के पुत्र के अभिषेक का उत्सव सुन देश भर में आनन्दसागर उमड़ आया। नगरी की शोभा तो इस समय बखानी नहीं जाती। राजभवन के परिचालकों का तो इस समय मन ही ठिकाने न रहा। लोग यहां से वहां दौड़ रहे हैं। परिजन लोग कार्य्यों में व्यग्र हैं। स्थान २ पर भाट और वन्दीजन यशगान कर रहे हैं, कहीं २ वारवधू नृत्य कर रही हैं। ऐसी चहल पहल मची है कि मानों राजमहल ही आनन्द के मारे नाच रहा है।

अब राजकुमार मृगाङ्कदत्त के राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त्त आ पहुंचा और पुरोहित अमात्य प्रभृति अत्यन्त आनन्द से महाराज अमरदत्त के आनन्द में समभगी हुए। पुरोहितों ने राजकुमार और शशाङ्कवती को एक आसन पर बैठा कर सब तीर्थों के जल से उनका अभिषेक किया। भर्य्यासहित राजकुमार मृगाङ्कदत्त के शिर पर समस्त तीर्थों के पुण्य जल गिरे और उधर उनके माता पिता के नेत्रों से आनन्द के जलप्रवाह निकल चले। सिंह के समान विक्रमशाली नवीन राजा जब सिंहासनाधिष्ठित हुए उस समय उनके शत्रुओं के मुख कोप और भय से नीचे झुक गये मानो असि नीचे गिर पड़ी हो उसे लेने को शिर नीचे किया हो पर भय के मारे उठा नहीं सकते इस पर दर्शकों को हँसी आ गयी। राज्याभिषेक के उपरान्त सात दिन पर्य्यन्त नाच रंग प्रभृति नाना प्रकार के महोत्सव होते रहे। महाराज अमरदत्त ने सात दिनों में सब राज्यकार्य्य

नवीन राजा मृगाङ्कदत्त को समझा दिये । पश्चात् सब आये हुए राजाओं का बड़ा सम्मान किया । इस प्रकार वह महोत्सव समाप्त हुआ । अब राजकुमार मृगाङ्कदत्त महाराज कहलाये ।

आठवें दिन महाराज अमरदत्त अपनी धर्मपत्नीसहित राजभवन से निकल खड़े हुए, नवीन राजा अपने पिता के साथ २ चले सो नगरी के बाहिर पहुंच कर महाराज अमरदत्त ने मृगाङ्कदत्त को और रोते हुए पुरवासियों को लौटा कर वाराणसी को प्रस्थान किया, साथ में उनके मन्त्री भी गये। त्रिपुरान्तकारी भगवान् विश्वनाथ की पुरी में पहुंच कर महाराज अमरदत्त महिषीसहित तपश्चर्य्या में लीन हुए । त्रिकाल भगवती जह्नुतनया गङ्गाजी में स्नान करते, विश्व भर शङ्कर की सपर्य्या करते, कन्द मूल्य फल भक्षण कर तपस्या करने लगे।

उधर महाराज मृगाङ्कदत्त राज्यासन ग्रहण करने के उपरान्त विमल आकाश में सूर्य्य जैसे अपना ताप प्रगट करने लगे। जिस प्रकार सूर्य अपने प्रखर तेजसे समस्त भूमण्डल को प्रज्वलित कर देते हैं उसी प्रकार वह भी अपने तेजोबल से तपने लगे। कर्मसेन सहित मायावटु प्रभृति तथा श्रुतधि सहित अपने मन्त्रियों के साथ द्वीपद्वीपान्तर के राजाओं को जीत चारों दिशाओं का विजय कर अखण्ड भूमण्डल का एक छत्र राज्य करने लगे । राजा मृगाङ्कदत्त के राजत्वकाल में उनका ऐसा प्रबल प्रताप था कि उनका नाम श्रवण करते ही दुर्भिक्ष, दस्यु परचक्र और भय आदि दुःख धरामण्डल पर से उच्छिन्न हो गये। प्रजावर्ग सदा सर्वदा प्रहृष्ट रहते । महाराज मृगाङ्कदत्त के समय वसुधा भर में सौराज्य और सौख्य वैसे ही विद्यमान थे जैसे कि मर्य्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के राजत्वकाल में थे। समस्त दिग्दिगन्त के राजा आकर महाराज मृगाङ्कदत्त के चरणकमल पर अपने मस्तक धरते । इस प्रकार सम्राट् मृगाङ्कदत्त अपने उन मन्त्रियोंके साथ उस अयोध्या पुरी में प्राणप्रिया शशाङ्कवती के संग नाना प्रकार के भोगों का अकण्टक भोग करने लगे ।

सोरठा ।

इमि सब कथा सुनाय, मुनि पिशङ्गजट मलयवन ॥
विरही सुत नृपराय, नरवाहनदत सों कह्यो ॥ १ ॥

जइसे मृगाङ्कदत्त, लहेउ शशाङ्कवती प्रियहिं ॥
तिमि नरवाहनदत्त, मदनमञ्चुकहिं पाइहौ ॥ २ ॥
सुमि नरवाहनदत्त, वचनामृत निज कर्ण सुनि ॥
मदनमञ्चुकाप्रत्त (१), धीरज मन महँ आनेउ ॥३॥
मुनिवरआयसु पाइ, प्रथम वेरानी प्रियतमहिं ॥
जो तहवां लै आइ, तेहि मन धरि खोजत चले ॥ ४ ॥

शशाङ्कवती नामक १२वां लम्बक समाप्त हुआ।

(आगे १२ वें भाग में देखो)

(१) प्राप्ति अथवा प्रति।

॥ श्रीः ॥
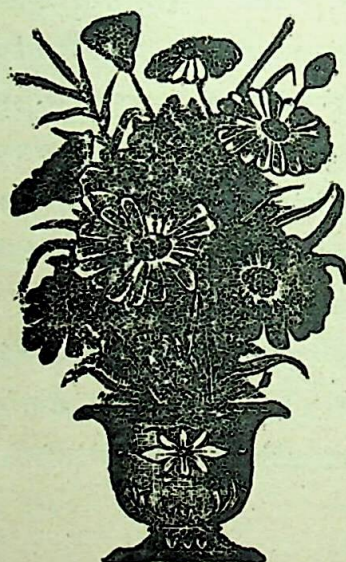
कथासरित्सागर का भाषानुवाद।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित।

मदिरावती नामक तेरहवां लम्बक।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालबिनैबल पाई।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा बसुधा महँ छाई॥
प्रेम समेत पियै जो कोई बलबीर भनै बलि ईस दुहाई।
पावहि सो जगदीस कृपा ते अनन्द अमन्द बड़ी बिबुधाई॥

प्रथम तरङ्ग।

॥ सोरठा ॥

राखैं श्री विघनेस, जेहि नाचत अनुकरन करि॥
नाचत भुवन असेस, नमित उन्नमित कोइके॥ १॥
श्रीगौरीसिंगार,--चरणमहावरकान्तिको॥
सखि शुभ करै तुम्हार, शम्भुभालनयनप्रभा॥ २॥

॥ दोहा ॥

कविमनपङ्कजभ्रमरिका, शब्दमूर्ति जो आहि॥
सहृदयहृदयअनन्दजो, नमत सुरसतिहिं ताहि॥ १॥

तदुपरान्त वत्सेश्वरात्मज श्री नरवाहनदत्त मदनमञ्चुकाके विरहसे सन्तप्त इधर उधर मलयाचल पर उसे ढूंढते फिरते थे; वन, उपवन, लता द्रुम, सर्वत्र खोजते पर कहीं पता नहीं। उस समय वनकी शोभा कैसी मनोहर थी

कि एकवार वसन्तका भी मन मोहित हो जाता तो दूसरोंकी कौन चलावे। यद्यपि वह स्थान स्वभावत: रमणीय था पर मदनमञ्जुका के विरहमें नरवाहनदत्त को तो प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु के समान उत्तापप्रद था, सारांश यह कि उनका मन कहीं नहीं लगता था। आमकी मञ्जरी जो कि स्वभावत: मृदु होती है विरह में उनको वाणवर्षासी प्रतीत हुई मानों वह कामदेव का कार्मुक हो और उसमें से तीर निकल के उनके हृदय बेधते हों। कोयलों का मधुर गूंजना उनको अति परुष भासता था, उनका सारा हृदय बेधता था, मानों कामदेवका डपेटना हो ऐसा कड़ुआ ज्ञात होता था। सुशीतल मलयानिल, जिसमें फूलोंकी पराग मिश्रित थे जिनसे उनका रङ्ग पीतपर्ण हो गया था, अनङ्ग की अनल के समान अङ्गोंका दाहक बोध हुआ। भौंरों की झङ्कार मानों यह सूचित करते थे कि आप इन अरण्यों से निकल जाइये। इस प्रकार भ्रमते २ महाराज नरवाहनदत्त उस प्रदेश के बाहर निकल गये।

इस प्रकार श्री नरवाहनदत्त जी चले जाते थे। इनका साथी तो कोई था ही नहीं, वनके देवी और देवता इनके मित्र थे वेही इनके सब प्रकार से रक्षक भी थे। चलते २ पतितपावनी भागीरथीको जानेवाले मार्गके समीपवर्त्ती वन में होते हुए एक सरोवर पर पहुंचे। वहां क्या देखते हैं कि वृक्ष के नीचे अति सुन्दर दो ब्राह्मणकुमार बैठे हुए परस्पर कुछ बातचीत कर रहे हैं। उन दोनों ने देखते ही कहा कि अहो यह तो साक्षात् कामदेव चले आये हैं सो अतिसम्भ्रमसे उठ खड़े हुए और अति नम्रतासे कहने लगे, "भगवन् कुसुमायुध! नमस्कार है। कहिये तो सही आप अपना पुष्पधनुष त्याग कर यहां क्यों भ्रमण कर रहे हैं? देव। आपकी सहचरी वह रति कहां है?" इस प्रकार उन ब्राह्मणतनयों की उक्ति सुन महाराज नरवाहनदत्त संक्षेपमें अपना वृत्तान्त सुना गये पश्चात् उन्होंने उनदोनों ब्राह्मणपुत्रोंसे पूछा कि आपदोनों कौन हैं और आपकी यह कैसी कथावार्त्ता हो रही है? तब उन दोनों युवकोंमें से एक बोला "महाराज! आप सरीखे राजाओंके समक्ष यह रहस्य वार्त्ता क्योंकर कही जाय तथापि आपकी आज्ञा का पालन करना उचित है अत: कहता हूं आप सुनिये।"

कलिङ्ग देशमें शोभावती नामकी एक पुरी है (१) कलिकाल का वहां

(१) इसी कथा के आधार पर मालती माधव लिखा गया है।

प्रवेश भी नहीं और पापकर्म्मों का वहां दर्शन भी नहीं। वह नगरी ऐसी बनायी गयी है कि दूसरे राजा उनके दर्शन भी नहीं कर सकते, ब्रह्माने उसकी सृष्टि ऐसी ही की थी। उस नगरी में यशस्कर नाम बड़ा भारी विद्वान् और धनाढ्य एक ब्राह्मण था, जिसकी अति साध्वी और पतिव्रता पत्नी थी जिसका नाम मेखला था। उन्हीं की मध्यम वयमें मैं उनका पुत्र जन्मा, उन्होंने बड़े लाड़ प्यारसे मुझे पाल पोस कर बड़ा किया और मेरा यज्ञोपवीत कराया। अब मैं स्वाध्यायमें प्रवृत्त हुआ। उस समय की बात है कि उस देशमें अवर्षण हुआ और महाकराल दुर्भिक्ष पड़ा। उसी अकाल के कारण मेरे पिताजी मुझको ले कर मेरी माता तथा अपने धन सहित विशाला नाम्नी नगरीमें चले गये। विशाला नगरी ऐसी दूसरी नगरी नहीं जहां विद्याकी बड़ी चर्चा और बड़े २ धनी पत्रों का निवास भी था, भाव यह कि लक्ष्मी और सरस्वती का जो सहज बैर है सो वहां दृष्टिगोचर नहीं है अर्थात् लक्ष्मी और सरस्वती अपना बैर त्याग वहां विद्यमान थीं। मेरे पिता का एक मित्र बनिया वहां रहता था उसीने निवास दिया और मेरे पिताने वहां स्थिति कियी। मैं गुरु के घर वास करने लगा वहां बहुतेरे ब्रह्मचारी मेरी ही अवस्था के थे सो मैं वहां रह के विद्याध्ययन करने लगा। उन मेरे वयस्यों में से एक क्षत्रिय कुमार थे नाम उनका विजयसेन और वह एक बड़ेही धनाढ्य क्षत्रिय के पुत्र थे।

एक समयकी बात है कि मेरे उस मित्रकी बहिन कुमारी मदिरावती (१) उसके साथ हमारे गुरु के घर आयी। उस कुमारी की सुन्दरताका क्या वर्णन किया जाय, उसके मुखकी शोभा क्याही अद्भुत कि जिसके सामने चन्द्रबिम्ब भी लज्जित हो जाता है मानों विधाताने उसी की शोभा लेकर चन्द्रबिम्ब की सृष्टि कियी हो। शरीर समस्त जगत् का मोहनेवाला मानों पञ्चशर का छठा बाण जिसे देखकर भगवान् पञ्चशर अपने पाचों बाण व्यर्थ समझते। उस मित्र से मुझे उसका नाम और गोत्र ज्ञात हुआ और उसके अलौकिक लावण्यसे मेरा मन हाथ से जाता रहा, उसी क्षण भगवान् पञ्चशरने अपने पांचों बाणोंका

(१) यही मालती है।

मुझपर निक्षेप किया। वह भी मेरी ओर तिरछी चितवन से देखती थी, उसके पुलकित कपोल यह प्रत्यक्ष प्रमाणित करते थे कि उसके हृदयमें मेरा प्रेम अङ्कुरित हुआ है। इधर उधर खेलके बहाने से कुछ देर वहां रही पश्चात् किसी प्रकार अपने घरको गयी और चलती बिरियां प्रीतिकी तिरछी चितवन से मेरी ओर देखती गयी, मानों एक दूती मेरे पास भेजती गयी।

अब उसके विरहमें मेरी क्या दशा हुई, उसका मैं क्या वर्णन करूं। मैं अपने घर गया और गिरकर छटपटाने लगा; जिस प्रकार थल पर मछली की दशा होती है कि छटपटाती है उसी प्रकार मैं भी छटपटा कर करवटें बदलने लगा। अपने मनमें नाना प्रकार के तर्क वितर्क करने लगा। हा! क्या कभीं ऐसा दिन फिर आवेगा कि मैं उसका मुख निहारूंगा, ऐसा सुन्दर मुख कि ब्रह्मा के लावण्यामृत विरचन का सर्वस्व और निधान, हा! उस चम्पकबदनी के मनोहर हास्यमय वदन का निरीक्षण कब करूंगा, वह मित्रजन धन्य होगा जिसे वह मधुर हास्य के साथ प्रीति के नेत्रोंसे देखती होगी और ऐसे मनोहर मुखसे लज्जा त्याग बातचीत करती होगी।

इस प्रकार नाना भांति की चिन्तायें मेरे मनमें उठतीं और वहीं बिलाय जातीं। बड़ी कठिनतासे वह दिन बीता, अब रात और पहाड़ होगयी। विरही को दिन तो ऐसा वैसा पर रात महा भयङ्करी हो जाती है। कष्ट दूना क्या चौगुना हो गया। अस्तु किसी प्रकार रात बीती, प्रातः काल हुआ और मैं उपाध्याय के भवन को गया। वहां मैं बैठा हुआ था कि मेरा मित्र विजयसेन मेरे पास आ बैठा और बातचीत करते २ बड़े प्रेमसे मुझसे इस प्रकार कहने लगा, "मित्र! मेरी बहिन के मुख से यह सुनकर कि मेरा मित्र ऐसा है मेरी माता बड़े स्नेह से तुम्हें देखा चाहती है, सो यदि तुम्हारा स्नेह मुझपर है तो आओ मेरे साथ घर चलो कि तुम्हारे चरण की धूलि से हमारा घर पवित्र होवे।"

इस वचन के श्रवण से "जनु मरु धरणि देवसरिधारा..." वाली कथा हुई। मेरे शोकका एक प्रकार से अन्त हो गया। मरुभूमि में चलता हुआ पथिक श्रान्त हो गया हो और प्यास से विह्वल हो कण्ठगतप्राण हो उस

समय अच्छी वृष्टि हो जावे और वह पथिक जैसे आनन्दित होवे वही दशा मेरी हुई। "बहुत अच्छा मित्र मैं चलता हूं," इतना कह मैं उस मित्र के साथ उसके घर गया और उसको जनयित्रीसे भेंटकर बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने मेरा बड़ाही सन्मान किया, प्रियाके दर्शन भी हुए, मेरा सब क्लेश दूर हुआ और मैं वहां रहा। इतनेमें विजयसेन के पिताने उसे बुलाया और वह मेरे पाससे पिताके निकट चला गया, और इधर मदिरावती की दाई की बेटी मेरे निकट आयी और बड़े विनीत भावसे मुझसे कहने लगी—"हे भर्त्तृदारक! (१) हमारी भर्त्तृदारिका (२) मदिरावतीने उद्यान में मालतीलता का बड़ा संयम किया और बड़ी सेवा से उसको बढ़ाया अब वह लता फूल रही है मानों वसन्त के संगम से आनन्द के विलाससे वह मुसकुराती है। उसकी कलियां हमारी राजकुमारी निज करकमलों से चुनती हैं, यद्यपि अब वे कलियां उन्हें पुष्पधन्वाके वाण सी कसकती हैं तथापि बड़े कष्ट से वेदना सहकर कुमारी ने वे कलियां आज चुनी हैं। उन्होंने मोती सी उन कलियों से निज करकमल से एक माला गुथी है और मेरे हाथ आपके पास भेजी है क्योंकि नवीन वस्तु पहिले प्रियतमको दी जाती है।" इतना कह उस चतुरा ने मुझे माला दे दी, उसके साथ पञ्च-फल, कपूर और पान भी दिये।

प्रिया के निज हाथ की गुंथी वह माला जो मैंने अपने गले में डाली, महाराज; मैं नहीं कह सकता हूं कि उस समय मुझे कैसा आनन्द हुआ उस समय का सुख प्रिया के आलिङ्गन के आनन्द से कहीं अधिक था। मुंह में ताम्बुल रख कर मैंने अपनी प्रिया की सखी से कहा कि भद्रे, और तुमसे क्या कहूं मेरा काम ऐसा प्रबल है कि मुझसे कुछ कहते नहीं बनता। तुम्हारी सखी के लिये यदि मैं अपना जीवन भी दे देऊं तो मेरा जीवन सफल हो जाय क्योंकि मेरे प्राणों की वह स्वामिनी है। इस प्रकार उस सखी से कह, उसे बिदा कर मैं अपने उपाध्याय के घर चला आया, उसी समय विजयसेन भी आ पहुंचा सो वह भी मेरे साथ आया। दूसरे दिन विजयसेन मदिरावती के साथ मेरे घर आया मेरे माता

(१) स्वामी के पुत्र = राजकुमार। नाटकोंमें सम्बोधन करने का व्यवहार है।
(२) स्वामी की बेटी, राजकुमारी।

पिता उसे देख बड़ेही प्रसन्न हुए। इस प्रकार मेरा और मदिरावती का अनुराग एक साथ रहने से सुगुप्तही दिनों दिन बढ़ने लगा।

एक समय की बात है कि मदिरावती की दासी एकान्त में मेरे पास आकर कहने लगी, "महाराज! सुनो जो कहती हूं सो चित्त में रक्खो, जब से बेटी मदिरावती ने तुम्हें गुरु के घर देखा उस समय से वह खान पान सब भूल गयी हैं। भोजन में उसको रुचि नहीं बढ़ती न तो वह देह का शृङ्गार करती है, और न उसका मन संगीत में लगता है और न शुक आदि पक्षियों से खेलती हैं। शरीर में चन्दन का लेप लगता और केले के पत्तों से बीजना किया जाता है तो भी उसका सन्ताप नहीं मिटता है। ठारे के समान चन्द्रिका उसे अग्निसी भासती है कृष्ण पक्ष की चन्द्रकला कीनाईं दिनों दिन वह क्षीण हुई जा रही है। जब तुम्हारी बात चलती हैं तब जाकर वह आनन्दित रहती है। मेरी दुहिता उसके सब व्यापार जानती है सो वही इस प्रकार कहती थी। मेरी बेटी से और मदिरावती से ऐसी बनती है कि वह मदिरावती के साथ छाया सी बनी रहती है क्षण भर भीउससे अलग नहीं होती। फिर वह मदिरावती के पास मुझे ले गयी तो मैंने स्वयं उससे पूछा कि बेटी क्या दशा है? तो उसका उत्तर यही मिला कि उसका मन तुम में लगा है। सो हे महाराज! यदि उसका जीवन बचाया चाहते हो तो अब ऐसा करो कि जिसमें उसका मनोरथ सफल हो जावे।" उसका इस प्रकार वचनामृत सुन मैंने कहा कि यह तो तुम्हारे ही अधिकार में है, यह जन तुम्हारे अधीन है। इतना सुन वह अति प्रसन्न हो चली गयी—और उस के वचन पर मेरे मन में विश्वास हुआ सो मैं भी अपने घर चला गया।

एक दिन की बात है कि एक बड़े क्षत्रिय का बेटा उज्जयिनी से आया उसने मदिरावती के पिता से मदिरावती की याचना कियी, उसके पिता ने उसका देना स्वीकृत किया। मदिरावती के परिजन से यह श्रोत्रदारुण दुस्सम्वाद जब मैंने सुना उस समय मुझ पर बज्र जैसे गिरे अथवा स्वर्ग से गिरा हुआ जैसे दुखित हो वही दशा मेरी हुई। मैं उस समय ऐसा उन्मत्त हो गया मानों भूत लगा हो बहुत काल लों मेरी यही दशा रही। फिर कुछ मन ठिकाने आया तो मैं अपने मन में विचार करने लगा कि अब विकल होकर करूंगा क्या? देखूं तो होता क्या है?

क्योंकि जो बिकल हो जाता है वह अपना इष्ट नहीं साध सकता प्रत्युत जो स्थिर होकर रहता है वह अपनी इष्टसिद्धि कर लेता है । इस प्रकार सोच कर मेरा मन कुछ ठिकाने आया और मैं किसी प्रकार अपने दिन बिताने लगा । बीच २ में प्रिया की सखियां आतीं और प्रियतमा की बातें कह कह धीरज दिलाती थीं।

अब लग्न स्थिर हो गया, मदिरावती की हर्दी उठी, विवाह का दिन आ गया, नाना प्रकार के उत्सव होने लगे । प्रिया अपनी इच्छा के अनुसार चलने से रोकी गयी। अब प्रिया के पिता के घर में बाजे गाजे के साथ बरातियों का प्रवेश हुआ । यह देख मेरी बचीखुची आशा जाती रही । अब तो मुझे जीवन सङ्कट सा ज्ञात होने लगा । मेरे मन में यह बात आयी कि इस जीवन से मरना ही श्रेयस्कर हैं, वही सुखकारक है । इतना विचार में नगर से बाहिर निकल गया और वहां एक बड़ा भारी बड़का पेड़ मिला, इसपर चढ़ कर मैंने एक डाली में फांसी ठीक कियी और फांसी लगा उस पेड़ पर से प्रियाप्राप्ति रूपी राज्य तथा अपने को एक साथ छोड़ दिया । इतने ही में मेरी नष्ट चेतना जाती रही और चेतना आ गयी तो क्या देखता हूं कि मैं एक युवक के अङ्क में पड़ा हूं जिसने कि मेरी फांसी कांट दी थी । जब मुझे ज्ञान हुआ तो मैंने समझा कि निश्चय इसी युवक ने मेरा परित्राण किया है । मैं उससे कहने लगा, "महासत्व ! तुमने तो अपनी दयालुता दिखायी किन्तु मुझ विरहातुर के पक्ष में मृत्यु ही इष्ट थी, जीवन नहीं । मुझे चन्द्र तो अग्नि से भासते हैं, भोजन विष समान लगता है, गीत कानों में सूई के समान छेदते हैं, उद्यान तो बन्धन प्रतीत होता है और फूलों की माला अति तीक्ष्ण वाणों सी चुभती है । शरीर में जो चन्दनादिक अनुलेप लगता है सो मानों अङ्गार सा बोध होता है । हे मित्र ! इस संसार में जो अपनी प्रियतमा से पृथक् हो गये हों ऐसे मुझ सरीखे वियोगियों का जीने में क्या रस है, जिसका सर्वस्व उलटा पुलटा हो गया ऐसा मैं जी कर क्या करूंगा ।" मेरी ऐसी उक्ति सुन उसने मेरा वृत्तान्त पूछा कि कहो तो सही बात क्या है ! सो मैं उसे मदिरावती का वृत्तान्त साद्यन्त सुना गया । तब वह महात्मा मुझ से कहने लगे कि भाई तुम पण्डित होकर भी क्यों मोह में पड़े हो भला जिससे सब कुछ हैं उस शरीर के त्यागने से क्या लाभ हैं । सुनो मैं अपना वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूं ।

हिमालय पर निषध नामक एक देश है। कलिकाल का भगा देनेवाला धर्म यहां वास करता है, सत्ययुग का जन्मस्थान और कृतयुग का गढ़। जहां के लोगों की अतृप्ति श्रुति में थी अर्थसञ्चय में नहीं (१) सन्तोष अपनी स्त्रियों में (थे) या परोपकार में (थे) नहीं। तहां के वेदपारङ्गत अति सुशील बड़े धनाढ्य एक ब्राह्मण का मैं पुत्र हूं, मेरे मन में देशदेशान्तर की यात्रा की इच्छा प्रगट हुई सो मैं घर छोड़ निकला। देश २ घूमता उपाध्यायों को देखता हे सखे! मैं शङ्खपुर नामक नगर में पहुंचा जो कि यहां से बहुत दूर नहीं है। जहां नागराज शङ्खपाल का अति पवित्र शङ्खह्रद नामक एक बड़ा सरोवर है। वहां एक उपाध्याय के घर में मैं रहने लगा।

एक दिन एक पर्व पड़ा, सब लोग स्नान को चले तो मैं भी उनके साथ शङ्खह्रद को गया। वहां नाना दिशाओं से आये हुए जनों से सरोवर का वह तठ परिपूर्ण था। जिस समय देवों और असुरों ने मिलकर अम्भोधिका मथन किया था उस समय वहां जैसी शोभा थी इस सरोवर पर भी वही शोभा विद्यमान थी। वहां जो ललनायें स्नान करती थीं, जिनके कि केशपाश खुल गये और उनमें से फूल झर रहे थे, उन कुलललनाओं के जङ्घों और कुचों का वह सरोवर लहररूपी अपने हाथों से स्पर्श करता था। उन कोमलाङ्गियों के सुकुमार अङ्गों का आलिङ्गन कर वह तड़ाग उनके अङ्गों का अङ्गराग छुड़ा देता था जिससे उसका रङ्ग सुनाहला हो गया था, इस प्रकार कामुक के समान व्यवहार करता वह सरोवर मैंने देखा। उस सरोवर के दक्षिण भाग में जो मैं गया तो वहां क्या देखता हूं कि सब वृक्ष ऐसे सघन हैं और तमाल वृक्षों की इतनी अधिकता है कि वहां मानों धूम का आवास है और उन पेड़ों पर शुक जो थे उनके लाल २ ठोर अङ्गार से भासते थे। अशोक वृक्षों पर जो लाल फूलों से लदी हुई लताएं लटकी थीं वें ज्वालाओं का अनुभव कराती थीं मानो नेत्रमण्डल हरकोपानल से जलता हुआ कामदेव का शरीर होवे।

तहां अतिमुक्तलता के मण्डप के द्वार पर फूल चुनती हुई एक कन्या दीख पड़ी, लीला से जो वह इधर उधर मुंह फेरती तो श्रवण के उत्पल प्रति च-

(१) अर्थात् वेदाध्ययन से कदापि सन्तुष्ट नहीं होते थे, नित्य २ वेद पढ़ते थे।

स्थल मानों उसके कटाक्षों से व्यस्त हैं। फूल तोड़ने में जो उसकी बाहुलता उठी थी उससे उसका एक पयोधर दृष्टिगोचर होता था। जूड़ा खुल गया था जिससे चोटी पीठ पर लटक रही थी मानों चन्द्रवदन के भय से अन्धकार की शरण में गयी हो। सुन्दरता का वर्णन मुझसे नहीं हो सकता बस यही कहते बनता है कि विधाता इतने दिनों से सुन्दर २ अप्सराओं की सृष्टि करते २ पक्के हो गये उन्हीं की सिद्धहस्तता यह एक प्रमाण है। पहिले तो सन्देह हुआ कि यह कोई देवकन्या तो नहीं है किन्तु जब ध्यान से देखा तो उसकी पलकें भंजती हुई दीख पड़ीं इससे निश्चय हो गया कि वह मानुषी है।

बस अब क्या वह मृगनयनी मेरे हृदय में पैठ गयी, मानों तीनों जगत् की मनमोहिनी भल्ली हृदय में चुभ गयी। मेरी ही ऐसी दशा हो गयी सो नहीं किन्तु ज्यों ही उसकी दृष्टि मुझपर पड़ी कि वह भी स्मर के वश में हो गयी। उसका मन हाथ से जाता रहा, फूलों का चुनना छूट गया। उसके वक्षःस्थल पर जो हार था उसके मध्य में पद्मराग मणि की कैसी प्रभा थी कि मानों अनुराग हृदय के भीतर न समा सका अतः बाहिर निकल पड़ा हो। बार २ घूम २ कर वह प्राणेश्वरी अपने नेत्रों के कोरों से मुझे देख लिया करती।

इस प्रकार जब हम दोनों परस्पर दर्शन के आनन्द लूट रहे थे कि एकाएक महाकोलाहल होने लगा और लोग छिन्नर बितर हो गये। क्या देखते हैं कि एक मस्त हाथी सिक्कड़ तोड़ाय दौड़ता हुआ चला आ रहा है; बनैले हाथियों के मद के गन्ध से वह अन्धा हो गया था, महावत का अंकुश उसके कान पर हिल रहा था। उस मस्त हाथी को देखकर मैं अपनी भयभीत प्रेयसी की ओर लपका, उसके अनुचर तो पहिले ही इधर उधर भाग गये थे बस मैं झट उसे गोद में उठा लोगों के बीच जा पहुंचा। मेरी प्राणेश्वरी के अनुचर भी वहीं आ गये और प्रणयिनी कुछ आश्वस्त हुई ही थी कि मनुष्यों का कलरव सुनकर वह गजेन्द्र वहीं आ पड़ा बस यहां भी भगेड़ मची कोई कहीं भागा कोई कहीं। उसके नौकर न जानें उसे कहां ले गये और मैं अन्यत्र भाग गया।

अब हाथी का भय शान्त हुआ और मैं अपनी प्रेयसी को ढूंढ़ने लगा। न जानूं नाम, न जानूं धाम, खोजूं तो कहां, बस मैं उन्मत्त सा हो गया, विद्या के नष्ट हो

जाने से विद्याधर की जो गति होती है वही गति मेरी हुई। मैं इधर उधर विलक्षा घूमने लगा। इसी प्रकार घूमता घामता किसी प्रकार अपने उपध्याय के गृह पहुंचा। वहां मैं मूर्छित सा हो पड़ रहा, मेरी सारी चेतना जाती रही। आहा कैसा उसका प्रेम और हाय कैसा अकाल में उसका भङ्ग हो गया; अहा जब प्रेयसी को आलिङ्गन किया था वह आनन्द अब मुझे कम्पित किये डालता है। अब मैं घोर चिन्ता की गोद में पड़ उसी में मग्न हो गया; न कुछ सुनता, न किसी का स्पर्श कुछ बोध होता; शिर में घोर पीड़ा होने लगी। इधर मेरा धैर्य जाता रहा उधर दिन भी व्यतीत हो गया, पद्मवन सूख गये और साथ ही मेरा मुख भी उदास हो गया। सूर्य के अस्त होने पर चकवा चकवी दूर २ हो गये वैसे ही मेरा मनोरथ भी सुदूर चला गया।

इस समय कामदेव के एक मात्र सुहृद, सुखी जनों के नयनोत्सव प्राची दिशा के मुख के भूषण निशानाथ उदित हुए। यद्यपि उनकी किरणें अमृतमय थीं परन्तु मुझे तो जलाये डालती थीं; यद्यपि निशानाथ आशाओं (१) के प्रकाशक हैं पर उनके प्रादुर्भाव से मेरी सारी आशा जाती रही।

चन्द्र की किरणों से मेरा सारा शरीर जला जा रहा था अब मेरी यही इच्छा होती थी कि अति शीघ्र मृत्यु हो जाय तो श्रेय है। इसी अवसर में मेरा एक सहपाठी मेरे पास आया और मुझे उदास देख मुझसे कहने लगा, "भाई! तुम क्यों ऐसे दुःखी हो, कुछ रोग तो दीख नहीं पड़ता है, यदि तुम्हें धनप्राप्ति की व्याधि लगी हो तो सुनो एक बात कहता हूं। धन बड़े ही दुःखद हैं, एक को ठग कर लोभ के मारे ले लिये जाते हैं पुनः उनसे भी कोई दूसरे ही छीन ले जाते हैं सब लोग उसकी वाञ्छा रखते हैं इसी हेतु उनके लेने की सदा सर्वदा चेष्टा करते हैं सो भाई अर्थ कदापि स्थिर नहीं हैं। पुनः देखिये जितने प्रकार के पाप हैं सब धन के द्वारा अथवा धन के ही निमित्त होते हैं सो सब पाप करानेवाले अर्थ अपने फल जब प्रगट करने लगते हैं तो उन फलों के बोझ से धन विषद्रुम शीघ्र ही टूट जाते हैं। फिर विचारिये धन कमाने में कितने २ और कैसे कैसे क्लेश होते हैं उन धनों से ही नाना प्रकार के दुःख सहने पड़ते पुनः जबलों

(१) दिशाओं।

चन्द्र और तारागण हैं तबलों इन्हीं धनों के प्रताप से नरकयातना भोगनी पड़ती हैं। फिर काम की बात यह है कि यदि काम प्राप्त न हुआ अथवा नष्ट हो गया तो प्राणान्तिक वेदना समझनी, यह बड़ा भारी अधर्म है और नरकाग्नि का द्वार है। जो लोग बुद्धिमान् और धैर्यवान् हैं वे अपने पूर्व पुण्यों से न्यायानुसार अर्थ और काम प्राप्त करते हैं परन्तु तुम्हारे समान जो लोग डरपोक और उत्साहहीन हैं वे कुछ भी नहीं पा सकते। सो भाई! धीरज धरो और अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये यत्न करो।" महाराज! अपने मित्र का एतादृश कथन सुन मैंने कुछ भी उत्तर न दिया।

अब मैंने अपना आशय अपने मन में ही रक्खा और धैर्य धारण किया। मेरे मन में यह भावना उदित हुई कि वह कदाचित् इस पुरी में होवे बस इसी आशा में मैं यहां चला आया। यहां पहुंचने पर आपको गले में फांसी लगाये हुए देखा और जब आपका पाश टूट गया तो आपसे आपका दुःख सुना और अपना दुःख आपको सुनाया। अरे मित्र! देखिये उसका न तो नाम ज्ञात है न धाम विदित है तौभी मैं उसके अर्थ उद्योग से मुंह नहीं मोड़ता हूं, यद्यपि यह विषय पौरुष का अगोचर है तथापि मैं पुरुषार्थ करता ही जाता हूं। देखिये मदिरावती तो आपकी दृष्टि में हैं तो उसकी प्राप्ति में पुरुषार्थ का त्याग कर आप कातर क्यों होते हैं। क्या आपने पूर्वकाल में रुक्मिणी का वृत्तान्त नहीं सुना है कि वह चेदिराज को दे दियी भी गयी थीं तथापि हरि उनको हरही ले गये न?

मेरा मित्र मुझसे इस प्रकार बात कर रहा था कि सब मङ्गल साज के साथ मदिरावती वहीं आ पहुंची और उसके अनुचरवर्ग उसके साथ वहां आये। यहां मातृदेवकुल में जिन कन्याओं का विवाह होता है वे सब यहां की देवी की पूजा करने आती हैं। इसी कारण से इस वटवृक्ष में मैंने फांसी लगायी कि मेरी प्रिया यहां आवेहीगी तो मेरा मृतक शरीर तो देखलेवेगी।

इतना मेरा कहना सुन वह वीर मेरा मित्र ब्राह्मण बोला कि यदि बात ऐसी है तो चलिये हम दोनों झटपट चल कर मन्दिर के भीतर मातृदेवियों के पीछे छिप रहें फिर देखा जायगा कि हमारा कुछ उपाय चलता है या नहीं।

उस मित्र की इतनी बात सुन मैं उसके साथ उसी मन्दिर में गया और छिप कर बैठ रहा।

इसी अवसर में वैवाहिक मङ्गल गान करती हुई बहुत सी स्त्रियां वहां आयीं उन मङ्गल-गान करती हुई ललनाओं के मध्य वह मेरी प्रणयिनी मदिरावती भी थी सो वह देवकुल में (देवमन्दिर में) पैठी और अपनी सखियों से बोली कि मैं अपना कुछ अभीष्ट वर अकेली ही जाकर भगवान् कामदेव से मांगूंगी इससे तुम सब बाहिर ही (खड़ी) रहो मैं अकेली मन्दिर में जाऊंगी। इस प्रकार सब अनुचरों के साथ समस्त सखियों को बाहिर ही छोड़ मदिरावती मन्दिर में आयी और भगवान् कामदेव को अर्चा कर इस प्रकार प्रार्थना करने लगी, हे देव! आप तो मनोभव हैं तो क्यों नहीं मेरे मनोगत प्रिय को जान लिया ? क्यों मैं ठगी जाकर मारी गयी ? हे रतिपते ! यदि मेरे इस जन्म में आप मुझे वर देने में समर्थ न हो सके तो मेरे दूसरे जन्म में तो अवश्य मुझपर कृपा करना। आप ऐसा प्रसाद करना कि देहान्तर प्राप्त होने पर भी वही भाग्यवान् ब्राह्मणकुमार मेरे भर्त्ता होवें।" इस प्रकार प्रार्थना कर हम दोनों के देखते सुनते ही उस बाला ने खूंटी में ओढ़नी बांध गले में फांसी लगा लियी !

इस अवसर पर मेरे मित्र ने मुझसे कहा कि सखे ! अब झटपट तुम आगे बढ़ कर अपने को प्रगट कर उसके गले से फांसी निकाल दो; मित्र का इतना कहना कि मैं चटपट बढ़ा और उसके पास पहुंच कर बोला, "प्रिये ! साहस मत कर, देख प्राणपण से अर्जित, कष्ट के समय का सहज स्नेही तेरा दास मैं तेरे आगे खड़ा हूं। इस प्रकार हर्ष से गद्गद वाणी से अमृतमय शब्द उच्चरित कर उस सुतनु के गले से मैंने अति शीघ्र फांसी निकाल दियी। मुझे देखते ही वह आनन्द और भय से चकपका कर खड़ी हो गयी तब मेरे उस मित्र ने मुझसे कहा 'सखे ! दिन के क्षय हो जाने पर जो अन्धकार हो गया है इसी अन्धकार में मैं मदिरावती का वेष धारण कर लेता हूं और इसके परिजनों के साथ चला जाता हूं और यह बधू हम दोनों के दुपट्टे ओढ़ पहिन लेवे और इसे लेकर तुम दूसरे मार्ग से निकल चुप चाप किसी देश में रात ही रात चले जाओ, मेरी चिन्ता न कीजियो परमेश्वर मेरा कल्याण करेगा।" इस प्रकार कह वह मेरा सुहृद मदिरा-

वती का भेष धारण कर वहां से निकल रात ही रात उसकी अनुचरों के साथ चला गया।

बहुमूल्य रत्नों की माला उस मदिरावती के साथ मैं दूसरे द्वार से निकला और रात भर में एक योजन (१) निकल गया। जब प्रातःकाल हुआ तब कुछ खान पान कर फिर चला। इस प्रकार कई दिन चलने के उपरान्त मैं अपनी प्रणयिनी के साथ अचलपुर नाम नगर में पहुंचा। वहां एक ब्राह्मण कुमार के साथ मेरी मित्रता हो गयी सो उसी के गृह में मैंने चटपट मदिरावती से विवाह कर लिया। अब मैं अपनी प्रेयसी के साथ सुखपूर्वक कालयापन करने लगा किन्तु मेरे मन में हर समय यह व्यथा बनी रहती कि मेरे उस मित्र की क्या दशा हुई होगी। इसके उपरान्त एक दिन उत्तरायण में मैं गङ्गास्नान करने यहां आया सो आज मेरे वह अकारण बन्धु मुझे दीख पड़े। बहुत देरलों मैं उसे टकटकी लगाये देख रहा था फिर आलिङ्गन कर ज्योंही कि उससे वृत्तान्त पूछ रहा था कि आप यहां आ गये। सो हे वत्सेशनन्दन! यह मेरे प्राणदाता कष्ट के एक मात्र साथी मित्र ब्राह्मण हैं यह आप जानिये।

इस प्रकार जब एक ब्राह्मण अपना वृत्तान्त वर्णन कर चुका तब नरवाहनदत्त ने इस दूसरे ब्राह्मण से पूछा कि महाराज। यदि आप यह बतावें कि वैसे संकट से आप क्योंकर छूटे तो मुझे परम सन्तोष हो क्योंकि मित्र के हेतु अपने प्राणों पर खेल जानेवाले आप समान लोग दुर्लभ ही हैं। इस प्रकार वत्सराजतनय नरवाहनदत्त का प्रश्न सुन वह दूसरा ब्राह्मण भी अपना वृत्तान्त सुनाने लगा।

इस समय जब कि मैं मदिरावती के वेष में मन्दिर से निकला सब अनुचर मुझे मदिरावती समझ मेरे चहुंओर घिर आये। पालकी पर चढ़ा गाजे बाजे के साथ वे मुझे सोमदत्त के भवन में ले गये जहां नाना प्रकार के विभव विद्यमान थे। कहीं अच्छे २ वस्त्रों की ढेरी लगी है, कहीं आभरण का समूह लगा है, कहीं नाना प्रकार के अन्न और पान का प्रबन्ध है कहीं वेदियां बनी है, कहीं बैठी हुई दासियां मधुर स्वरों से गान कर रही हैं, कहीं चारण बैठे हुए हैं, कहीं बैठे हुए ब्राह्मण लोग लग्न की वेला की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सब से-

(१) चार कोस।

वक पान से उन्मत्त तो थे ही घूघट जंघट काढ़े हुए मुझको वे एक घर में ले गये रात्रि का तो समय था इससे कोई मुझे पहिचान भी न सका सब मुझे दुलहिन ही समझते थे। जब कि मैं वहां बैठा तो बहुतेरी स्त्रियां चहुंओर से घिर आयीं उस दिन विवाह का उत्सव का और सब नाना प्रकार के कामों में व्यस्त थीं।

इतने में द्वार पर कर्धनी और नूपुर का झनकार सुन पड़ा और सखियों के साथ एक कन्या भीतर आयी। नागिनों के समान जिसके मस्तक पर रत्न चमक रहे थे, श्वेत वस्त्र पहिने थी मानों समुद्र की लहर है, लावण्य का वर्णन क्योंकर किया जाय, समस्त अङ्ग मोतियों से लदा था। उत्तम २ पुष्पों के आभरणों से भूषित साक्षात् उद्यानदेवी मानों आयी हों। वह सखी की बुद्धि से आकर मेरे पास बैठ गयी। जों मैं ध्यान से देखता हूं तो वही मेरी चित्तचुरानेवाली आ बैठी है जिसे मैंने शङ्खह्रद में देखा था जो कि वहां स्नान करने आयी थी और जिसे मैंने हाथी से बचाया था और जो देखते ही देखते मनुष्यों के मध्य लोप हो गयी थी। क्या यह काकतालीय (१) है अथवा स्वप्न है अथवा सत्यही सत्य है ? इस प्रकार हर्ष से;मेरा चित्त उद्भ्रान्त हो गया और मैं चिन्ता में पड़ गया।

इतने में मदिरावती की सखियां उससे कहने लगीं, "आर्यदुहिता (बड़े की बेटी) (२) तुम आज उदास क्यों हो ? उन सखियों का ऐसा प्रश्न सुन वह कन्या अपना आशय छिपा कर बोली "सखियो ! तुम क्या नहीं जानती कि मदिरावती मेरी कैसी सखी है ? आज यह विवाह हो जाने पर ससुर के घर चली जावेगी और इससे मेरा वियोग हो जावेगा तो मैं क्योंकर रह सकूंगी बस इसी से मैं दुःखित हूं, सो तुम सब बाहिर अब चली जाओ और मैं इससे पेटभर एकान्त में

(१) कातालीयन्याय वह है कि जो बात अचानक सङ्घटित हो जाय। इस न्याय (कहावत) का सूत्र यह हैं कि एक कौआ ताल वृक्ष पर आ बैठा और उसी क्षण एक फल टूट गिरा इसी से यह कहावत, अकस्मात् सङ्घटित बात के विषय में कही जाती है।

(२) स्वामी की पुत्री।

बात कर लूं।" इस प्रकार वह सब स्त्रियों को बाहिर कर द्वार की सिकड़ी लगा कर मेरे पास बैठ गयी और सखी समझ मुझसे बातचीत करने लगी। "मदिरावती! तुम्हारे इस दुःख से बढ़कर और कुछ दुःख नहीं है कि तुम्हारा मन लगे दूसरे में और पिता से तुम दी जाओ दूसरे को; तौभी कदाचित् तुम्हें उनके दर्शन अथवा संगमही हो जावे क्योंकि तुम तो सखि उन अपने प्राणप्रिय से वार्तालाप भी कर चुकी हो किन्तु मेरे दुःख का, मदिरावति! अन्त ही नहीं है। सुन सखि! मैं तुझे अपना दुःख सुनाती हूं क्योंकि जैसी मैं तेरी विश्वासपात्र हूं वैसी ही तू मेरी विश्वासभाजन है।

तुम विवाह कर ससुरघर चली जाओगी इस भावना से मेरा मन बड़ा ही खिन्न हुआ, कहीं उसका विनोद होवे ही नहीं सो मनोविनोद के हेतु अच्छोद की यात्रा को चली गयी कि वहां सरोवर में स्नान भी करूंगी और इसी बहाने से मनका विनोद भी हो जावेगा। सखि! वहां एक और ही बात सङ्घटित हो गयी। वहां उद्यान में क्या देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर नवीनवय ब्राह्मणकुमार आया, उसकी सुन्दरता का वर्णन क्या करूं मानों आकाश से चन्द्रमा धरती पर उतर आया हो अथवा सौन्दर्यदन्ती (१) का काञ्चनमय आलानस्तम्भ (२) हो; रेखें भिन आयी हैं उनसे यह अनुमान होता है कि मुखकमल पर भौंरे आ बैठे हों। वन में मुनिकन्यायें तप कर केवल अपना शरीर तपा डालती हैं किन्तु जिन्होंने इस युवा को नहीं देखा उनके तप का क्या फल हो सकता है? उस ब्राह्मणकुमार को देखकर मैं इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि कामदेव ने अपने शरों का हृदय के ऊपर ऐसा प्रहार किया कि सखि! क्या कहूं लज्जा रसातल को चली गयी और भय भाग गया।

वह द्विज युवा मेरी ओर देखता था और मैं निर्भर उसकी ओर निहार रही थी कि इतने ही में बड़ा उत्पात मचा. एक मस्त हाथी बन्धन छुड़ा भागा। बस हाहाकार मच गया लोग भाग २ अपने प्राण बचाने की चेष्टा से इधर उधर हो गये। मैं अकेली डर के मारे वहीं काठमुर्री.सी रह गयी कुछ कर न सकी इतने में वह द्विजयुवा लपका और मुझे उठा कर बहुत दूर जहां लोग खड़े थे ले गया।

(१) हाथी। (२) बन्धन का खम्भा।

मदिरावति! उस समय का आनन्द मुझसे वर्णन नहीं हो सकता। उस ब्राह्मण-कुमार के अङ्गस्पर्श रूपी अमृत से मैं आनन्द सागर में निमग्न आंख मूंदे पड़ी थी, नहीं जानती थी कि वह हाथी कहां है क्या भय है और मैं अब कहां हूं। ज्यों ही कि मैं अपने परिजनों में मिली कि वही हस्ती मानों मेरे लिये मूर्तिमान् विरह वहीं आ पहुंचा बस मेरे अनुचर मुझे उठा कर घर की ओर भागे और इस हलचल में वह मेरा प्राणप्यारा न जानें कहां चला गया। न मैं उनका नाम जानती न धाम, बस तब से उस प्राणप्रद प्रियतम को स्मरण ही करती रहती हूं। हा मेरी हाथ की आयी निधि कौन हर ले गया। नींद से कैसा ही दुःख क्यों न हो दूर हो जाता है सो नींद निगोड़ी भी नहीं आती रात भर टकटकी लगाये चकवी की नाईं तलफती और रोती रहती हूं। सो सखि! तुम देखती हो कि मेरा दुःख कैसा गुरु है कि जिसके दूर करने का कुछ उपाय ही नहीं है, केवल तुमको देखकर कुछ मनोविनोद होता था तुम्हारा सुख देखकर कुछ सुख होता था सो तुम भी आज चलीं। अब मदिरावति! तुम्हारा जाना क्या है मेरा मरण ही है सो अब पेट भर तुम्हारा मुख देख लूं फिर कहां यह सुख और कहां मैं! इस प्रकार मेरे कर्णों को अमृत समान वचन कह अपने मुखचन्द्र को अञ्जन सहित आंसुओं के विन्दुओं से कलङ्कित करती हुई मेरा घूंघट उठा कर ज्योंही देखने लगी त्योंही मेरा मुख देख मुझे पहिचान एकाएक हर्ष आश्चर्य और भय से व्यथित हो गयी।

तब मैंने उससे कहा मुझे देख क्या भ्रम कर रही हो मैं वही तुम्हारा हूं। विधि की बात कौन जान सकता है, अनुकूल होने से अचिन्त्य विषय भी सङ्घटित हो जाता है। मैंने भी तुम्हारे लिये बहुत कष्ट उठाये, जिस प्रकार तुम दुःख सहती थीं वैसेही मैं भी सन्ताप सहता था; किया क्या जाय विधि का प्रपञ्च ऐसा ही है। इसका वर्णन विस्तार के साथ फिर कभी सुनाऊंगा यह समय तो उसका नहीं है, प्रिये! इस समय तो केवल यही उपाय सोचना है कि क्योंकर निकल चलें।"

इस प्रकार मेरा कथन सुन वह बाला तुरन्त बोल उठी इसमें पिछूती की ओर एक द्वार है आओ उसी से चुप चाप निकल चलें। बाहिर मेरे पिता का

गृहोद्यान है उसी में से निकल कर जहां इच्छा हो चल चलें।

इतना उसका कथन सुन मैं चलने पर उद्यत हुआ, उसने सब आभूषण उतार कर ले लिये और मेरे साथ प्रस्थान किया और मैं उसी के दिखाये मार्ग से निकला। राती रात चलता हुआ बहुत दूर निकल गया भय बना रहा कि कहीं कोई आकर पकड़ न लेवे इसी से ताबड़तोड़ चला। प्रातःकाल होने पर अपनी प्रिया के साथ एक महाटवी में पहुंचा। यहां किसी मनुष्य का नाम भी नहीं बस परस्पर कथा वार्त्ता करते २ हम दोनों चले जाते थे कि इतने में मध्याह्न हो गया। बटोहियों के लिये कहीं आश्रय नहीं कि विश्राम करें, चहुंओर सन्नाटा छाया हुआ था, भूमि सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से उत्तप्त हो गयी। मेरी प्यारी थक गयी और पियासा से उसका कण्ठ सूखने लगा अब उससे चलते न बने किसी प्रकार धीरे २ मैं उसे एक वृक्ष की छाया में ले गया। वहां बैठा कर मैं अपने दुपट्टे से पंखा झालने लगा।

इतने में क्या देखता हूं कि एक घायल भैंसा अकस्मात् वहां आ पहुंचा, उसके पीछे घोड़ा दौड़ाता एक धनुर्धर आया, आकृति से हो ज्ञात होता था कि वह कोई महान् जन है। उसने दूसरे भाले के प्रहार से उस महिष को गिरा दिया जैसे इन्द्र वज्रप्रहार से पहाड़ गिरा देते हैं। हमें देख कर वह हमारे पास चला आया और बड़ी प्रीति से मुझसे पूछने लगा "महाराज! तुम कौन हो और यह तुम्हारी कौन है तुम दोनों यहां कैसे आये? तब जनेऊ खोल कर जो कुछ झूठ सच आया मैंने उससे कहा कि मैं ब्राह्मण हूं और यह मेरी भार्या है; किसी कार्य से हम दोनों विदेश को चले थे। हमारे साथी चोरों के हाथ में पड़ कर मारे गये हम दोनों किसी प्रकार बच भागे। मार्ग भूल गया इससे इधर आ पड़े अब आप दीख पड़े इससे हमारा भय अब जाता रहा।

मेरा ऐसा कथन सुन ब्राह्मण समझ उसे दया आयी सो वह बोला "मैं वनचरों का राजा हूं आखेट करता हुआ यहां आ पहुंचा हूं। तुम दोनों मार्ग की थकावट से थक गये हो और अब मेरे अतिथि हो सो चलो मेरे घर वहां तुम्हारा आतिथ्य करूं मेरा घर यहां से दूर नहीं है। इतना कह उसने मेरी प्रिया को अपने घोड़े पर चढ़ा दिया और आप वह पांव २ मेरे साथ २ चल कर हमें अपने

घर ले गया । वहां बड़े भारी मित्र की समान नाना प्रकार के भोजनों से उसने हमारा उपचार किया । कहा है कुदेश में भी कहीं २ भले लोग मिल जाते हैं।

अब हम वहां से चले और किसी प्रकार उस अटवी के पार पहुंचे तब चलते चलते एक ब्राह्मण का घर मिला तहां मैंने उस बधू से विवाह किया । तत्पश्चात् नाना देश विदेश घूमते घामते हम दोनों चलते रहे मार्ग में बहुत से साथी भी मिल गये सो अपनी भार्य्या के साथ आज मैं भागीरथी में स्नान करने यहां आया। यहां वही मेरे मित्र मुझे मिल गये और महाराज के दर्शन भी हुए । सो देव ! यही मेरा वृत्तान्त है ।

शार्दूल विक्रीडितम् ॥

एतो आपन वृत्त ताहि कहि कै ह्वैगो विरत ब्राह्मणा।
वत्सेशात्मज इष्टप्राप्त तिहि की लागी प्रशंसा करन ॥
इतने में युवराज केर सचिवा श्रीगोमुखादिक सबै ।
ढूंढ़त थे बहुकाल से अब तहां तासों मिले आइकै ॥ १ ॥

दोहा।

श्रीनरवाहनदत्त के, आइगिरे सब पांव ।
तिन लहि अति प्रमुदित भये, छयो अनन्द तिहि ठांव ॥२॥

सोरठा ।

अब सब सचिवन संग, उन दोउ विप्रजुवान लहि ॥
चले जुपूरि उमंग, श्रीनरवाहनदत्त तब ॥ ३ ॥

मदिरावती नामक तेरहवां लम्बक समाप्त हुआ ।

॥ श्रीः ॥
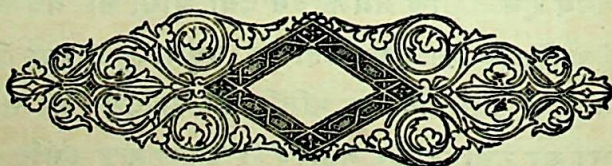
कथासरित्सागर का हिन्दी अनुवाद।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित।

पञ्च नामक चौदहवां लम्बक।

सवैया।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालबिनैबल पाई।
शम्भुमुखार्णव ते निकली या कथा की सुधा वसुधा मँह छाई।
प्रेम-समेत पियै जो कोई बलवीर भनै बलि ईस-दुहाई॥
पावहि सो जगदीस कृपा ते अनन्द अमन्द बड़ी विबुधाई॥

पहिला तरङ्ग।

तुष्ट होइ निज देहको, अर्द्ध उमहिं दिय जोइ॥
तुम्हरो अभिमत देहिं सब, वरद (१) गौरिपाति सोइ॥१॥
निशि विघ्नेश्वर न चते, लाल जु शुण्ड पसार॥
चन्द्र आतपत (२) दण्डसम, रक्षा करैं तुम्हार॥२॥

अब महाराज वत्सेश्वर के पुत्र श्रीमान् नरवाहरदत्त अपनी उन त्रैलोक्य सुन्दरी भार्य्याओं के साथ तथा प्रथमा देवी मदनमञ्चुका के संग कौशाम्बी नगरी में अपनी संगी तथा सचिव गोमुख इत्यादिकों के संग पूर्णमनोरथ होकर अपने पिता की विभूतियों का उपभोग करते हुए सुख से रहने लगे। अमृत के समान मनोरम अभीष्ट वस्तुओं को पाकर बड़े आनन्द मनाते, प्रति दिन नाच गान और नाना

(१) वर देनेवाले। (२) आतपत्र = छाता।

प्रकार की कथायें हुआ करतीं। इस प्रकार बड़े उत्सव से सब दिन व्यतीत होते।

एक दिन की बात हैं कि राजकुमार अपनी पट्टरानी मदनमञ्चुका के भवन में गये तो वहां क्या देखते हैं कि न तो मदनमञ्चुका ही हैं और न उनकी सहेलियां और दासियां ही हैं। कान्ता को न देखते ही उनके मुखड़े का रङ्ग उतर गया जैसे प्रातःकाल में रात के विरह से चन्द्रमा निस्तेज हो जाते हैं वैसेही नरवाहनदत्त हो गये। नाना प्रकार के तर्कवितर्क करने लगे कि क्या मेरे मन की परीक्षा लेने को कहीं छिप तो नहीं गयी या मुझसे कुछ अपराध बन पड़ा जिससे वह कुपित होकर कहीं चली गयी। अथवा किसी ने उसे माया से आच्छन्न तो नहीं कर लिया वा कोई हर तो नहीं ले गया, इस प्रकार अनेक भावनाओं और सङ्कल्प विकल्पों से वह अत्यन्त विकल हो गये। अब वह खोज करने लगे पर कहीं पता न लगा तब तो उत्कट वियोगाग्नि से सन्तप्त हो गये।

होते २ यह वृत्तान्त सर्वत्र फैल गया, तब उनके पिता महाराज वत्सेश्वर, मातायें तथा सब मन्त्री और अनुचरवर्ग वहां बटुर आये और इनकी विकलता से सब के सब विकल हो गये। हार, चन्दनों का लेप, चन्द्र की किरण, मृणाल और कमलदल ये सब शीतल द्रव्य हैं इनके सेवन से सन्ताप दूर हो जाता है किन्तु यहां उनका परिणाम विपरीत ही होता था अर्थात् सन्ताप और बढ़ता ही जाता था शीतलता तो मानों पाताल में जा छिपी। कलिङ्गसेना उस पुत्री से विहीन होने से भ्रष्टविद्या विद्याधरी के समान मोह को प्राप्त हो गयी।

अब वहां अन्तःपुर की जो रक्षिका एक वृद्धा थी सो सब के सुनते नरवाहनदत्त से कहने लगी— वह जो मानसवेग नामक युवा विद्याधर है, जो कि कन्यावस्था में मदनमञ्चुका को देख चुका था और देखते ही मोहित हो आकाश से उतरा था और जिसने अपना नाम बता कलिङ्गसेना से कहा था कि अपनी कन्या मुझे दे दी किन्तु इसने उसे मना किया था तब वह चला गया। सो वही तो छिप कर नहीं आया और माया कर मदनमञ्चुका को हर ले गया। यद्यपि दिव्य लोग पराये की स्त्री का ग्रहण नहीं करते तथापि कौन ऐसा कामी है जो सुपन्थ और कुपंथ का विचार करे। इतना सुनते ही राजकुमार नरवाहनदत्त का चित्त कोप, चिन्ता और विरहव्यथा से झोका खाने लगा जैसे लहरों में पड़ कर कमल।

इस अवसर पर रुमरवान् ने कहा कि पुरी की रक्षा तो चहुंओर से कियी जाती है कि किसी का भीतर जाना और आना कठिन है हां आकाश की बात निराली है सो भी भगवान् शङ्कर के प्रसाद से इस पुरी का कुछ अनिष्ट नहीं हो सकता अतः यही मन में आता है कि प्रणयकोप से देवी यहीं कहीं छिपरही हैं। सुनिये इस विषय में आप लोगों जो एक कथा सुनाता हूं।

पूर्वकाल की बात है कि अङ्गिरा नामक मुनि ने अष्टावक्र से उनकी कन्या सावित्री को विवाह के लिये मांगा किन्तु अष्टावक्र ने उसका देना अस्वीकार किया क्योंकि वह किसी दूसरे को देने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। तब अङ्गिरा ऋषि ने उनके भाई की कन्या अश्रुता से विवाह कर लिया और उसके संग वह सुखसे रहने लगे। यह बात उनकी भार्या जानती थी कि सावित्री पहिले मांगी जा चुकी है।

एक समय की बात है कि अङ्गिरा मुनि मौन धारण कर जप करते थे और यह जप उनका कुछ कालपर्य्यन्त चला। यह देख उनकी भार्य्या अश्रुता उनके पास जाकर बड़े प्रेम से पूछने लगी "आर्य्यपुत्र! कहिये क्या सोच रहे हैं? इस प्रकार वह बार २ पूछती रही। उसका इस प्रकार आग्रह देख मुनि बोले, "प्रिये! सावित्री का (१) ध्यान कर रहा हूं।" इतना सुनना कि अश्रुता का कोप करना। उसने सावित्री से मुनिसुता सावित्री का अर्थ लगाया। अब उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई कि हा मैं ऐसी मन्दभाग्य हूं कि आर्यपुत्र मेरे रहते सावित्री का ध्यान कर रहे हैं तो इस भाग्यहीन देह से क्या लाभ इसका त्याग करना ही उचित है। इतना विचार वह वन में चली गयी, तहां फंसरी लगा कर पति के शुभ की कामना कर उसने गले में फांसी डाल ली। उसके फांसी लगाते ही अक्षसूत्र और कमण्डलुधारिणी भक्तों पर अनुकम्पा करनेवाली भगवती गायत्री प्रगट हो उससे कहने लगीं "पुत्रि! साहस मत कर, तेरे पति ने उस अङ्गना का ध्यान नहीं किया प्रत्युत उसने शुभ्र सावित्री (१) का ध्यान किया था सो तू अपने प्राण न दे।" इस प्रकार उससे कह, उसकी रक्षा करके भक्तों पर अनुकूलता करनेवाली भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं। इसके उपरान्त अङ्गिरा मुनि खोजते २ वन में वहीं

(१) सावित्री शब्द पर यहां श्लेष है; सावित्री मुनिकन्या का नाम है और सावित्री गायत्री का भी अर्थ है। यहां दोनों ने भिन्न २ अर्थ ग्रहण किया।

पहुंचे जहां अम्रुता वन में थी। सो आप लोग देखिये कि स्त्रियों का प्रणयखण्डन ऐसा दुःसह होता है। सो देवा की कुछ थोड़ा सा अपराध बन पड़ा होगा जिससे कुपित होकर वह कहीं छिप रही होंगी अतः उनकी खोज करनी चाहिये। राजपुत्रबधू की रचा स्वयं शम्भु भगवान् करते हैं अतः उसका कुछ अनिष्ट नहीं हो सकता।

रुमखान् का ऐसा कथन सुन राजा वत्सेश्वर बोले -"बात कुछ ऐसी ही है, उसके विषय में कुछ पाप की सम्भावना नहीं हो सकती। नरवाहनदत्त की भार्या मदनमञ्चुका देवनिर्मिता है कामदेव के अंश से उत्पन्न वह रति है। वह जो आकाशवाणी हुई थी कि वह (नरवाहनदत्त) इसके साथ दिव्य कल्प (१) पर्यन्त विद्याधर के ऐश्वर्य का उपभोग करेंगे, कदापि मिथ्या नहीं हो सकती। सो इसकी खोज भली भांति करनी चाहिये।" जब महाराज ने स्वयं ऐसा कहा तब नरवाहनदत्त उठे; यद्यपि उनकी अवस्था ऐसी चीण हो गयी थी तथापि वह निकल खड़े हुए।

देश २ विदेश २ स्थान २ ढूंढ़ने लगे, पर कहीं पता न चला, अब तो वह उन्मत्त के समान घूमने लगे। नगर से जब श्रीनरवाहनदत्त चले गये तो वहां उदासी छा गयी। सब गृहों के द्वार बन्द रहते मानों उनके वियोग से सब घरों ने आखें बन्द कर लियीं हैं! अब वह वनों की ओर चले और वृक्षों से पूछते फिरते थे कि तुम ने मेरी प्राणप्यारी मदनमञ्चुका को देखा है ? उनके पत्ते जो हिलते थे इनसे मानों यह उत्तर मिलता था कि हमने उन्हें नहीं देखा है। उद्यानों में जब कभी वह खोजते २ पहुंच जाते तो उन्हें देख पची उड़ जाते जिससे भावना होती थी कि वे उन्हें यह सूचित कराते है कि महाराज! वह इधर नहीं आयी हैं। नरवाहनदत्त के सचिव मरुभूति हरिशिव, गोमुख और वसन्त कभी देवी मददमंचुका की खोज में इधर उधर घूमते थे।

इतने में क्या हुआ कि वेगवती नाम एक विद्याधरी कन्या, जो कि मदन-

---

(१) मानव ४३२००००००० वर्षों का एक ब्राह्मण दिन होता है यहीं जगत् का अन्त होता है; इसी का नाम कल्प है।

मंचुका को देख चुकी थी, ठीक उन्हीं का रूप धारण कर वहां उपवन में आयी और चुप चाप अशोक वृक्ष के नीचे बैठ रही। मरुभूति कहीं खोजता हुआ वहीं पहुंच गया और सशल्य चेतस की विशल्यकरिणी शक्ति समान उस वेगवती को देखकर अति हर्षित हुआ और दौड़ कर नरवाहनदत्त के पास पहुंचा और कहने लगा "देव! धीरज धारिये २ उद्यान में मैंने आपकी प्रिया को देखा है।" इतना उसका कहना सुनते ही नरवाहनदत्त अति हर्षित हो उसके साथ उद्यान में गये। विरह से अति क्षीण हो गये थे अब प्राण-प्रिया मदनमंचुका को देखकर ऐसे प्रफुल्लित हुए जैसे अत्यन्त प्यासा पथिक जल की धारा पाकर आनन्दित होता है। देखते ही ज्यों वह आलिङ्गन किया चाहते थे कि वह विवाह चाहनेवाली धूर्ता बोल उठी, "इस समय तुम मुझे मत छूओ मेरी बात सुन लो, बात यह है कि विवाह से पूर्व तुम्हारी प्राप्ति के अर्थ मैंने यक्षों की मन्नत मानी थी कि जो मेरा विवाह अमुक के साथ हो जावे तो विवाह के समय ही तुम लोगों को बलि दूंगी सो हे प्राणेश! विवाहकाल में मैं यह बात भूल गयी। बस उन्हीं यक्षों का कोप है, वेही मुझे आ कर वहां से हर ले गये और अब यह प्रतिज्ञा करा यहां छोड़ गये हैं कि जा उनसे विवाह फिर कर और हमें बलि दे तब तो तू अपने पति को पावेगी नहीं तो और किसी उपाय से तेरा कल्याण नहीं है। इतना कह वे मुझे अब यहां पहुंचा गये हैं। सो अति शीघ्र मुझसे विवाह कर लो और तब मैं यक्षों को मन्नत चढ़ाऊं तब प्रणेश तुम अपनी वाञ्छा पूरी करो। इतना सुनते ही राजकुमार नरवाहनदत्त ने, जो कि अपनी प्रियतमा मदनमंचुका के वियोग से अति कातर हो गये थे, तुरन्त अपने पुरोहित शान्तिसोम को बुला भेजा, क्षणभर में विवाह के सब उपक्रम हो गये और श्रीनरवाहनदत्त ने माया की मदनमंचुका विद्याधरी वेगवती से उद्वाह कर लिया। देवी मदनमंचुका के मिल जाने से महाराज वत्सेश्वर बड़े ही प्रमुदित हुए और बड़ा भारी उत्सव मनाया। नगर भर में आज यही चर्चा और सब के सब प्रफुल्लचित्त दीख पड़ते थे।

विवाह निवृत्त हो जाने पर माया मदनमंचुका ने अपनी मन्नत चढ़ायी, अर्थात् यक्षों को निज करकमल से मद्य और मांस की बलि दियी। इस प्रकार बलिप्रदानादि से पूजा सम्पन्न कर उसने नरवाहनदत्त से प्रसाद ग्रहण के लिये

कहा। नरवाहनदत्त तो मद्य मांसादि के भक्षण में स्वयं बड़े प्रवीण थे पुनः प्रिया का अनुरोध, सो वह कब चूकें अतः बड़े उत्सव के साथ उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया। अब वह उसके साथ जीवलोक का सुख भोगने लगे जैसे सूर्यनारायण परिवर्तित रूपा छाया से सुख भोगते थे।

एक समय की बात है कि वह जब कि एकान्त में सोई थी तो सहसा नरवाहनदत्त से कहने लगी "महाराज! मैं आपकी प्रिया नहीं हूं आप मेरा मुख उघाड़ कर देखिये तो सही।" यह सुनते ही नरवाहनदत्त तो हक्क बक्क हो गये कि राम यह क्या बात है। अब उनके मन में उत्कण्ठा हुई कि कब इसका मुंह देखूं। अस्तु दूसरे दिन जब कि वह सोई थी उस समय राजपुत्र ने उसका मुंह खोल कर देखा तो वह तो कोई दूसरी ही निकली प्रिया मदनमंचुका नहीं थी क्योंकि सोने के समय माया रूप उसका भूल जाता था इससे उसका प्रकृत रूप दीख पड़ा। अब उन्हें नीन्द क्यों पड़े; मन में तो बात थी कि यह जागे तो पूंछू कि तू कौन है? अस्तु जब लों वह नहीं जागी तब लों वह उत्कण्ठा में जागते ही रह गये। जब कि उसकी नींद टूटी तो नरवाहनदत्त ने चट उससे यही प्रश्न किया "सत्य २ बता तू कौन है?" अब वेगवती अपने रूप में हो गयी क्योंकि जब राजकुमार उसका मुंह देख पहिचान चुके तो भेद खुल ही गया कि यह मदनमंचुका नहीं है और देखती है तो नरवाहनदत्त जग के बैठे हैं और ऐसा प्रश्न भी कर बैठे तो वह और रहस्य न रख सकी और इस प्रकार कहने लगी।

हे प्रिय! सुनिये मैं आपको यथार्थ बात बतलाती हूं। पर्वत पर आषाढ़ाद्रिपुर नामक एक विद्याधरों का एक नगर है। तहां वेगवान् नाम राजा के पुत्र विद्याधरों के अधिपति राजा मानसवेग बड़े प्रतापी राज्य करते हैं। उन्हीं की छोटी बहिन मैं हूं, नाम मेरा है वेगवती। मेरा भाई विद्याओं के विषय में मुझसे अति द्वेष रखता था और नहीं चाहता था कि मैं उन विद्याओं को सीखूं। पिता हमारे तपोवन में जा तपस्या करते थे तो मैं उन्हीं के पास चली गयी और महाराज! बड़े २ क्लेश और काठिन्य उठा कर मैंने पिता से वे विद्यायें सीखीं, पिता के वरदान से वे सब विद्याएं मेरी अधिक बल रखती हैं।

सो मैंने आषाढ़ाद्रिपुर के उद्यान में आपकी प्रियतमा दयिता मदनमंचुका को

देखा, अति दीन हीन हो चुप चाप बैठी है और पहरुए पहरा दे रहे हैं। मेरा भाई अपनी माया से उसे हर ले गया है जैसे रावण रामभद्र की जानकी को हर ले गया था। वह साध्वी सदा उससे अप्रसन्नता ही प्रगट करती है और वह भी उसपर बलात् आक्रमण नहीं कर सकता क्योंकि उसे शाप मिला है कि यदि किसी स्त्री से हठपूर्वक उपभोग करेगा तो वहीं उसकी मृत्यु हो जायगी।

जब सब प्रकार समझा बुझा कर वह मेरा भाई थक गया और मदनमंचुका कुछ भी न मिनकी तब उस दुष्ट ने मुझे इस काम पर नियुक्त किया कि जाकर उसे समझा बुझा कर सन्नद्ध करावे। मैं उसके पास गयी पर जाकर क्या देखती हूं कि वह तो तन्मय हो रही है आप ही का ध्यान आपही का गुणगान। प्रसङ्ग वश मेरे संग उसने आपकी बात चलायी बस उस नाम में न ज्यानें क्या जादू भरा था कि मैं चट सुनते ही मुग्ध हो गयी मानों वह मेरे लिये कामाज्ञा होवे, बस उसका वर्णन करना कि मेरा मन भी आपही में लीन हो गया। इस समय मुझे देवी का वह वचन स्मरण हुआ जो उन्होंने स्वप्न में मुझसे कहा था कि ज़िसके नाम सुनते ही तू काम के वश में हो जावेगी वही तेरा पति होवेगा। देवी का वचन स्मरण कर मुझे भरोसा हुआ सो मैंने मदनमंचुका को धीरज दिला वहां से प्रस्थान किया और उसका रूप धारण कर युक्ति से यहां आकर आपसे विवाह कर लिया। सो महाराज! चलिये जहां आपकी प्रिया मदनमंचुका है प्राणेश? मैं आपको वहीं ले चलती हूं क्योंकि यह उसी की कृपा है कि आप मुझे मिले। अब तो मैं आपकी प्रिया बन चुकी तो आपकी हूं किन्तु सौत की भी दासी हूं; मैं आपके प्रेम के वश में ऐसी पड़ गयी हूं कि अपने विषय में कुछ भी चिन्ता नहीं करती चाहे जो होवे। इस प्रकार नरवाहनदत्त को समस्त वृत्तान्त सुना वह वेगवती अपनी आकाश की विद्या के प्रभाव से नरवाहनदत्त को लेकर रात ही रात आकाश में उड़ गयी।

वह विद्याधरी तो नरवाहनदत्त को लेकर उड़ गयी और इधर प्रातःकाल में नरवाहनदत्त को न देखकर यहां राजभवन में व्याकुलता व्याप गयी। सब लोग सोचने लगी कि भगवन्! वे दोनों क्या हो गये, कहां चले गये। जब महाराज वत्सेश्वर और वासवदत्ता को यह बात ज्ञात हुई तो वे बड़े विकल हुए और उ-

नके साथ ही साथ पद्मावती इत्यादिको भी विकलता का ठिकाना न रहा। महाराज तो ऐसे संज्ञाशून्य हो गये मानों वज्राहत हो गये हों। महाराज की यह दशा सुन सब पुरवासी भी बड़े विकल हुए, महाराज के मन्त्री यौगन्धरायण आदि मरुभूति प्रमुख पुत्रों के साथ अति विह्वल हुए।

इतने में प्रभामण्डल के मध्य मानों दूसरे दिवाकर भगवान् नारद मुनि आकाश से उतरे। महाराज वत्सेश्वर मुनि को देखते ही झटपट उठ खड़े हुए और अत्यन्त उत्साह के साथ अर्घ्यपाद्यादि से उन्होंने देवर्षि की पूजा कियी। तब मुनि ने कहा राजन् मुझको भगवान् शङ्कर ने तुम्हारे पास इसलिये भेजा है कि तुमको धैर्य दिलाऊं। सुनो बात यह है कि तुम्हारे पुत्र को एक विद्याधरी अपने देश में ले गयी है और तुम्हारा पुत्र शीघ्रही आवेगा सो तुम चिन्ता न करो।" इतना कह महामुनि महाराज वत्सेश्वर से वेगवती का सारा वृत्तान्त यथावत् कह गये। इस प्रकार पुत्र के समाचार सुन महाराज वत्सेश्वर का चित्त ठिकाने हुआ और तुरन्त देवर्षि नारद वहां से अन्तर्धान हो गये।

इस अवसर में वेगवती नरवाहनदत्त को लिये दिये उधर आषाढ़ाद्रिपुर में पहुंच गयी। यह सम्वाद पाते हो मानसवेग राजा आग बबूला हो गये और उन दोनों को मारने चले। अब वेगवती अपनी विद्या के प्रभाव से भाई के साथ युद्ध करने लगी सो दोनों भाई बहिन का विद्या-बल से बड़ा भारी युद्ध हुआ। ठीक है स्त्रियों के पतिही प्राण होते हैं बन्धु बान्धव नहीं। इसके उपरान्त अपनी विद्याओं के बल से वेगवती ने महा भयङ्कर भैरव रूप धारण किया और सहसा मानसवेग को मोह में ला ले जाकर अग्निपर्वत पर रख दिया। इधर युद्ध के पहिले ही वह नरवाहनदत्त को विद्याओं के हाथ में समर्पण कर गयी थी सो अब उन्हें उन विद्याओं के हाथ से निकाल गन्धर्वपुर में ले गयी और वहां एक जलहीन कूप में उन्हें रख उनसे कहने लगी:—

वसन्ततिलक छन्द।

या ठाम में रहहु आर्यपुत्र सम्यक्
　　ह्वै है यहां सब विधौ तुमरो कुशल हौ॥
राखौ जु धीरज हिये शुभपात्र सर्व
　　विद्याधराधिपतिता तुमरोहि ह्वैगो॥ १॥

मैं जातहौं पुनि जु साधन आत्मविद्या
जो ज्येष्ठ संग लड़ि दुर्बल ह्वै गयो है ॥
ऐहौं तुरत तुव समीपहिँ, बोलि एतो
विद्याधरी कतहुं वेगवती चली गै ॥ २ ॥

दूसरा तरङ्ग।

अब जब कि नरवाहनदत्त वहां कूप में पड़े थे कि वीणादत्त नामक एक गन्धर्व की दृष्टि उनपर पड़ी । पराये के भले के लिये जिनका जन्म हैं ऐसे मार्गस्थित द्रुमों के समान ताप नाशक महात्मा न होवें तो यह जगत् जीर्णारण्य हो जावे। राजकुमार नरवाहनदत्त को इस अवस्था में कूपपतित देखकर उस सुजन ने उनका वंश और नाम पूछा पश्चात् उनका हाथ पकड़ उन्हें कूप से निकाला और उनसे इस प्रकार कहा "सौम्य ! तुम तो मानुष हो देव नहीं हो तो यह बतलाओ कि मानुष के अगम्य इस गन्धर्व नगर में तुम्हारा आना क्योंकर हुआ !" नरवाहनदत्त ने उतर दिया कि मुझे यहां एक विद्याधरी ले आयी है और इस कूप में डाल गयी है । वीणादत्त भी बड़ा गुणी था इनके चिन्हों से समझ गया कि यह तो होनहार चक्रवर्ती हैं सो वह उन्हें अपने घर ले गया और अपने उपचारों से उसने उनका उपचार किया।

दूसरे दिन नरवाहन जब उठे तो क्या देखते हैं कि वहां के सब लोगों के हाथ में वीणा है यह देख उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ सो उन्होंने वीणादत्त से पूछा "सखे ! यह क्या बात है कि यहां के आबालवृद्ध सब के सब वीणाहस्त हैं ?" वीणादत्त इस प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहने लगा, "यहां गन्धर्वों के जो राजा सागरदत्त हैं इनके एक बेटी है जिसका नाम गन्धर्वदत्ता है, उसकी सुन्दरता का क्या वर्णन किया जाय बस इसी से समझ लीजिये कि अप्सरायें उसके समक्ष तुच्छ हैं। धाता ने सुधा, चन्द्र और चन्दनादि जो सब सौन्दर्य निर्माण के साधन हैं उन्हीं से इसका शरीर बनाया है। यह सदा वीणा बजा कर गाया करती है सो स्वयं भगवान् विष्णु ने अपना गीत इसे दिया और तब से यह वीणा में पराकाष्ठा

को पहुंच गयी है। "जो कोई गन्धर्व विद्या में प्रवीण वीणामें तीनों ग्रामों की तान खींच कर भली भांति विष्णु का स्तुतिगान करें वही मेरा पति होवे," यह राजपुत्री की प्रतिज्ञा है। यही कारण है महाभाग ! चक्र यहां के सब लोग वीणा सीखते हैं पर वहां लों ज्ञान किसी को प्राप्त नहीं हुआ है।"

उसी वीणादत्त का ऐसा कथन सुन राजपुत्र नरवाहनदत्त बड़े ही आनन्दित हुए और वीणादत्त से कहने लगे 'सखे ! जितनी कलाएँ हैं उनका मैं स्वयंवर में वरा हुआ पति हूं और त्रैलोक्य में जहांलों गान्धर्व शास्त्र है मेरा सब जाना हुआ है।" इतना उनका कथन सुन सुहृद् वीणादत्त उन्हें राजा सागरदत्त के समीप ले गया और उनसे इस प्रकार कहने लगा, "महाराज ! यह वत्सराज के पुत्र नर-वाहनदत्त हैं, यहां आपके नगर में विद्याधरी के हाथ से छूट पड़े हैं। यह गन्धर्वों के आचार्य हैं और केशव के स्तुतिगान में बड़े प्रवीण हैं जो कि गन्धर्वदत्ता को बड़ा ही प्रिय है।" इतना सुन राजा सागरदत्त बोले "हां २ यह बात सत्य है, मैं यह बात गन्धर्वों के मुख से पहिले सुन चुका हूं सो यह हमारे मान्य हैं। यह तो देवांश हैं इसमें कुछ भी भ्रम नहीं है, नहीं तो भला मनुष्य होकर विद्याधरी के सङ्ग यहां देवभूमि में क्योंकर आ सकते हैं। अच्छा अब गन्धर्वदत्ता बुलायी जावे और हम यह अद्भुत आश्चर्य देखें।" बस राजा के मुख से इतना निकला कि बड़े २ लोग गन्धर्वदत्ता को बुलाने गये।

अब त्रैलोक्यमोहिनी गन्धर्वदत्ता पुष्पों के आभूषणों से सजी धजी यौवन से सभों के मन हिलाती हुई, जैसे कि वायु लता को हिलाता है, राजसभा में आ विराजी और पिता के समीप जा बैठी। क्षण भर में महाराज के सेवकों ने राजकुमारी से वहां आगमन का कारण कह दिया सो राजदुलारी गन्धर्वदत्ता चट वीणा उठा बजा कर वही वैष्णव गीत गाने लगीं। ब्राह्मी श्री के समान जो वह गन्धर्वदत्ता है उसके मुंह से जो स्वर निकलते थे सो नरवाहनदत्त के कर्णकुहर में प्रविष्ट होकर उन्हें बहुत ही प्रमुदित और आह्लादित करते थे ऐसा कि श्रीमान् नरवाहनदत्त उसका गान सुन और इसका रूप निरख अति विस्मित हो गये। अब नरवाहन-दत्त बोले "राजपुत्रि ! तुम्हारी वीणा तो सुस्वर नहीं प्रतीत हो रही है मुझे तो ऐसा भासता है कि कहीं तार में बाल लगा है।" उनका ऐसा कथन सुन ज्योंही

वह तार देखने लगी कि सचमुच वहां एक बाल मिला ही तो, यह देख सब गन्धर्व अत्यन्त विस्मित हो गये "राजपुत्र! यह वीणा लेओ और इस अमृत से हमारे कान सींचो," इतना कह राजा सागरदत्त ने कन्या के हाथ से वीणा लेकर राजकुमार नरवाहनदत्त को दे दियी।

अब नरवाहदत्त वीणा लेकर बजाने लगे। वीणा बजा कर विष्णु-भगवान् का गीत उन्होंने ऐसे सुमधुर स्वर से गाया कि सभा में बैठे हुए सब गन्धर्व ऐसे निश्चल हो गये मानों चित्र में लिखे हैं। यह वीणा बजाना और यह वैष्णवगान सुन गन्धर्वदत्ता मोहित हो गयी और प्रेमभरी दृष्टि से जो उसने राजकुमार की ओर देखा तो यह भावना हुई कि वह दृष्टि क्या है कि फुल्ल नीलकमल की माला है जिसमें प्रणय रूपी जलविन्दु सिंचे हैं बस उसी माला से मानों राजकुमारी ने स्वयं उन्हें वर लिया। कन्या की यह दशा देख महाराज सागरदत्त ताड़ गये और तत्क्षण उन्हें अपनी दुलारी की प्रतिज्ञा भी स्मरण हो गयी सो उन्होंने उसी क्षण गन्धर्वदत्ता को राजकुमार नरवाहनदत्त के करकमल में समर्पण कर दिया। नाना प्रकार के मङ्गलवाद्यों के साथ जो यह शुभ विवाह सम्पन्न हुआ इसकी उपमा किससे दी जाय जिससे कि दूसरों को उपमा दियी जाती है। अब नरवाहनदत्त उस नवोढ़ा गन्धर्वदत्ता के साथ दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए आहन्दपूर्वक रहने लगे।

अब एक दिन वह नगर की शोभा के देखने के लिये निकले, सो अनेक रम्य देशों का निरीक्षण करते २ नगर के उद्यान में पैठे। वहां क्या देखते हैं कि आकाश से एक दिव्य योषित् अपनी दुहिता के संग उतरी चली आ रही हैं मानों अभ्रहीन आकाश में वृष्टि और बिजली हों। वह स्त्री अपनी पुत्री से यह कहती थी कि पुत्रि! यह वत्सेश्वर के वही पुत्र हैं जो कि तेरे भावी पति हैं। इस प्रकार जब कि वह अपनी पुत्री से कह रही थी तो नरवाहनदत्त ने उससे पूछा कि तुम कौन हो और क्यों आयी हो? अपने अभीष्ट की सीढ़ी बांधनेवाली वह उनको बोली राजकुमार! देव सिंह नामक विद्याधरपति की धनवती नाम्नी मैं पत्नी हूं यह मेरी सुता है. चण्डसिंह की बहिन नाम इसका अजिनावती, आकाशवाणी कह गयी है कि तुम इसके पति होओगे। अपनी विद्या से मैंने जान लिया कि वेगवती तुम्हें

यहां लाकर छोड़ गयी है सो मैं अपना अभीष्ट तुम से कहने आयी हूं। बात यह है कि यह स्थान विद्याधरों का है और तुम अकेले हो तो ऐसा न हो कि द्वेष वश वे तुम्हें मार डालें इससे तुम्हारा यहां रहना उचित नहीं है। सो आओ हम दोनों तुम्हें अब पृथ्वी पर पहुंचा देवें, क्या क्षीण चन्द्रमा सूर्यमण्डल में कालयापन नहीं करता? और जब समय आवेगा तो मेरी इस दुहिता से विवाह कर लीजियो इतना कह वह धनवती राजकुमार को लेकर अपनी पुत्रीसहित आकाश में उड़ गयी और चलती २ श्रावस्ती पुरी में पहुंची, वहां एक उपवन में नरवाहनदत्त को अपनी बेटी अजिनवती के साथ छोड़ अन्तर्धान हो गयी।

उसी समय राजा प्रसेनजित् आखेट करते हुए बड़ी दूर से वहां आ पहुंचे और अत्यन्त शुभलक्षणयुक्त राजकुमार नरवाहनदत्त पर उनकी दृष्टि पड़ी, देखते ही वह इनके पास चले आये और नाम तथा कुल आदि पूछ कर उन्हें अपने राजभवन ले गये। जहां घटाओं के समान बड़े २ मस्त वारण बन्धे हैं, उत्तमोत्तम घोड़े पंक्तियों में अवस्थित हैं। उस भवन की शोभा कहां लों बखानी जाय मानों भ्रमण करती २ राजलक्ष्मी थक गयी और यहां आकर विश्राम कर रही हो। जहां देखो तहीं कल्याणभाजन नर हैं जिन्हें सारी सम्पदायें भज रही हैं जैसे कि अपने प्रियजन को स्त्रियां भजती हैं। राजा प्रसेनजित् राजकुमार के गुणों से बड़े ही विमुग्ध हो गये सो उन्होंने भगीरथयशा नाम्नी अपनी कन्या उन्हें व्याह दियी। नरवाहनदत्त उसके साथ वहां महार्हविभवों का उपयोग करते हुए सुख से रहने लगे मानों विधाता ने उनके विनोद के लिये स्वयं मूर्त्तिमती लक्ष्मी बना दियी हो।

एक समय की बात है कि आकाश निर्मल था और दोनों दम्पती अट्टालिका पर बैठे नाना प्रकार की आनन्दवार्ताएँ कर रहे थे कि इसी समय लोक के लोचनों के आनन्द वर्सानेवाले, रजनी के रमण तथा पूर्वदिशा रूपिणी बधू के मुखमण्डल चन्द्र उदित हुए मानों उस निरभ्र और निर्मल आकाशदर्पण पर अमृतव मनोरम भगीरथयशा का मुख प्रतिबिम्बित हुआ हो। उस चन्द्रकी किरणों से अट्टालिका प्रकाशित हो गयी। उस समय राजकुमार अपनी प्रिया के सङ्ग उसकी इच्छा से पान रङ्ग में लीन हुए। उन्होंने अपनी प्रियातमा के मुख की प्रतिमा

अलङ्कृत (१) रसना तथा लोचनों का भी आनन्ददाता ऐसा मधु (२) पान किया। उस समय अपनी प्रिया के मुखमण्डल के समक्ष वह चन्द्रमण्डल को भी तुच्छ समझते थे भला उसमें ऐसे मदमाते और रतनारे नयनों का विभ्रम (३) कहां! इस प्रकार जब पानलीला समाप्त हो गयी तब अभ्यन्तर में जाकर भगीरथ-यशा के साथ शुभ्र शय्या पर सो रहे।

भगीरथ यशा तो सो गयी किन्तु आज न जानें नरवाहनदत्त को नीन्द क्यों न आयी अकस्मात् उनके मन में यह बात आ गयी और वह स्मरण कर कहने लगे, "अहो भगीरथयशा की प्रीति से मैं ऐसा मुग्ध हो गया कि मैं अपनी और सब भार्य्याओं को नितान्त भूल ही गया, यह भी चिन्ता नहीं कि वे क्योंकर होंगीं, इसमें विधि ही बलवान् नहीं तो भला ऐसा कब होने का! मेरे सब सचिव दूर पड़ गये फिर मरुभूतिक उनसे भी दूर न जानें कहां जा पड़ा, हरिशिख सदाविक्रम का ही पक्षपाती सो नीति में स्थिर रहनेवाला कहां! अस्तु उनकी बात दूर रहे वह बड़ा चतुर गोमुख कहां! मैं किसी अवस्था में रहूं पर मेरे मित्र जब मुझसे दूर पड़ जाते हैं तो मुझे बड़ी ही यन्त्रणा होती है।

वह तो इस प्रकार पड़े २ सोच ही रहे थे कि इतने में "हा बड़ा दुःख," ऐसा मृदुस्वर किसी नारी का सुन पड़ा। यह स्वर सुन दीप से प्रदीप्त उस भवन में वह चहुंओर नेत्र पसार २ देखने लगे, इतने में झरोखे की ओर जो दृष्टि गयी तों वहां एक स्त्री का मुख दीख पड़ा। उसका मुखमण्डल देखकर नरवाहनदत्त अपने मन में विचार करने लगे कि आज इसने आकाश में समल चन्द्र (४) देखा है अतः इसको दूसरा निर्मल चन्द्र दिखना चाहिये," यही विचार विधता ने यह एक दूसरा निर्मल चन्द्रमा तो नहीं दिखाया है। अब केवल मुख देखने से उसके शेषाङ्ग के दर्शन की इच्छा हुई, कि वे कैसे होंगे। सो वह विचारने लगे कि पूर्व समय में आतापि-दैत्य ब्रह्मा की सृष्टि में बड़ा विघ्न करता था सो विधाता ने उससे कहा कि जाकर एक आश्चर्य तो देखो, इस प्रकार कह परमेष्ठी ने उसे नन्दनवन में भेज दिया, वहां उसे एक स्त्री का बड़ा ही अद्भुत चरणाग्रमात्र दृष्टि-

(१) प्रतिविम्बित, जिसमें उसके मुख की छाया पड़ी थी। (२) मदिरा। (३) फेर फार। (४) कलङ्कयुक्त चन्द्रमा।

गोचर हुआ सो उसे और २ अङ्गों के देखने की इच्छा हुई और उसी चिन्ता में उसकी समाप्ति हो गयी। तो क्या कमलासन ने केवल मुख दिखा कर मुझे भी विपत्ति में ढकेलने का विचार तो नहीं किया है ? नरवाहनदत्त क्षण भर इसी प्रकार की कल्पना में मग्न रहे कि इतने में उस स्त्री ने झरोखे में हाथ डाल अंगुली से यह सङ्केत किया कि इधर आइये।

अब नरवाहदत्त अपनी प्रिया अगीरथयशा को सोती ही छोड़ धीरे से उस वर से निकले और बड़ी उत्कण्ठा के साथ उस दिव्य नारी के पास पहुंचे। जब कि यह निकट पहुंचे वह भुनभुना कर कहने लगी, "हा मदनमञ्चुके ! तू मारी गयी! ऐं तू इसी पति की प्रशंसा किया करती है जो कि किसी दूसरी में आसक्त है।" इतना सुनना कि नरवाहनदत्त का विरहानल भभक उठा सो वह बड़ी नम्रता के साथ इससे पूछने लगी, "कहो तो सही तुम कौन हो ? तुमने मेरी प्रिया मदन-मंचुका को कहां देखा है, फिर तुम यहां क्यों आयी ? तब वह प्रौढ़ा रात ही रात में दरवाहनदत्त को बड़ी दूर निकाल ले गयी और तब उनसे कहने लगी "सुनो जो मैं कहती हूं":—

पुष्करवती नाम्नी एक नगरी है तहां अग्नि की आराधना से जिनका वर्ण पिङ्गल हो गया ऐसे पिशङ्गगान्धार नामक विद्याधरेश्वर हैं, उनकी मैं कन्या हूं, नाम मेरा प्रभावती। मैंने अग्निदेव की आराधना कर उनसे वरदान पाया है। सो मैं एक दिन अपनी सखी वेगवती से भेंट करने आषाढ़पुर में गयी, वह तो वहां न मिली कहीं जाकर तपस्या कर रही है किन्तु उसकी माता पृथिवी के मुख से तुम्हारी प्रिया मदनमञ्चुका की बात सुन मैं उसे देखने गयी। मैंने उसे जाकर देखा तो वह अनाहार के कारण अति दुर्बल हो गयी है और पीली पड़ गयी है, शरीर मलिन हो गया है शिर के सब केश बटुरके एक हो गये हैं, सदा रोती रहती है और तुम्हारे गुणों का गान किया करती है। विद्याधराधीश की कन्याएँ उसे घेरे रहती हैं वे भी उसे देख रोया करती हैं; जब उसकी दशा देखतीं तो वे अत्यन्त विकल होतीं और जब आपके गुण सुनतीं तब प्रसन्न होतीं। उससे मैं तुम्हारे स्वरूप का वर्णन सुन चुकी थी सो मैंने उससे प्रतिज्ञा किया कि मैं इ-

नको ला मिलाऊंगी। सो उसपर जो कृपा, उससे आक्रान्त होकर मैं आपके गुणों से आकृष्ट होकर अपनी विद्या के प्रभाव से यह जान कर कि आप इस समय यहां हैं, मैं यहां आपके पास उसके कार्य की सिद्धि और अपने अर्थ से यहीं आयी हूं। आप अपनी पहिली प्रिया को भूल गये हैं और दूसरी से आनन्दपूर्वक आलाप किया करते हैं इसी से "हाय बड़ा दुःख है" ऐसा कह आपकी भार्य्या पर शोक किया। उसका इतना कहना सुन राजकुमार नरवाहनदत्त बड़ी उत्कण्ठा से बोले "मुझे वहां ले चलो जहां मेरी प्रिया है और जैसी इच्छा हो वह करो और कराओ।" उनका ऐसा वचन सुन प्रभावती उस उंजेली रात में उन्हें लेकर आकाश में उड़ी और चलने लगी।

जब कि वह नरवाहनदत्त को लिये दिये उड़ी जा रही थी कि कहीं पर प्रज्वलित अग्नि दीख पड़ी सो प्रभावती नरवाहनदत्त का हाथ पकड़ उस अग्नि की फेरी कर गयी। बस इसी युक्ति से उस प्रौढ़ाने विवाहविधान सम्पादन कर लिया। ठीक है दिव्य लोगों के सब कार्य सङ्कल्पमात्र से सम्पन्न हो जाते हैं। जब कि वह उन्हें लिये हुए आकाश मार्ग में चली जाती थी वहां से पृथ्वी एक वेदी के समान, नदियां सर्पिणी के समान तथा पर्वत बांबी के सदृश दीख पड़ते थे। इस प्रकार नाना ढंग के कौतुक पद पद पर दिखाती हुई वह प्रभावती बहुत दूर निकल गयी। आकाशगमन से नरवाहनदत्त श्रान्त हो गये और उन्हें पियास भी लगी तब वह व्योममार्ग से उतरी और एक वनान्त में एक पूर्ण सरोवर के समीप उन्हें ले गयी जिसका जल चांदी के समान स्वच्छ था। अब वह शीतल और निर्मल जल पीकर नरवाहनदत्त की थकावट दूर हो गयी तब उस रमणीय स्थल में कान्तासम्भोग की तृष्णा प्रबल हुई, उस समय वह प्रभावती से हठपूर्वक अभ्यर्थना करने लगे किन्तु प्रभावती को मदनमञ्चुका की दशा स्मरण थी जिसपर उसे दया आती थी और वह आश्वासन दे आयी थी सो वह नरवाहनदत्त के हठ करने पर बोली। ठीक है जो लोग पराये के उपकार करने पर बद्धपरिकर रहते हैं उन्हें स्वार्थ से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता वे स्वार्थ की उपेक्षा करते हैं। सो प्रभावती इस प्रकार कहने लगी 'आर्यपुत्र! कुछ बुरा न मानो, इसमें मेरा जो अभिप्राय है सो तुमसे कहती हूं सुनो एक कथा तुम को सुनाती हूं:—

पूर्वकाल की बात है कि पटने में एक स्त्री थी, वह तरुणी और बड़ी रूपवती थी। पति उसका मर गया था और उसके एक पुत्र था जो कि बालक था। उसको परपुरुष की चाट पड़ गयी थी सो वह रात होते ही घर से निकल कर इधर उधर चली जाया करती थी। बालक को समझा जाया करती थी कि बेटा तुम्हारे लिये कल लड्डू लेती आऊंगी, यह कह उसे समझा कर निकल जाया करती और प्रातःकाल में लड्डू लेकर प्रतिदिन लौट आती। बालक लड्डू की आशा में चुप चाप घर में पड़ा रहता। एक समय की बात है कि वह भूल गयी और मोदक न लायी। प्रातःकाल जब बालक लड्डू मांगने लगा तो उसने कह दिया "पुत्र! मैं तो अपने कामुक को जानती हूं, लड्डू वड्डू कुछ नहीं जनती। यह सुन उसके लड़के की आशा टूट गयी कि यह तो दूसरे में आसक्त है लड्डू न लायी। बस इस निराशा से उस बालक का हृदय फट गया।

इतनी कथा सुनाय प्रभावती श्रीनरवाहनदत्त से कहने लगी कि आर्यपुत्र! मैं पूर्व ही आपको स्वीकार कर लूं तो वह मदनमञ्चुका, कि जिसे मैं आश्वासन दिला आयी हूं कि तुमसे सङ्गम करा दूंगी, यदि मुझसे ही निराश कर दियी जाय तो यह जानकर फूल से भी कोमल उसका हृदय फट जायगा। सो हे प्रिय! यद्यपि तुम मुझको प्राणों से प्रिय हो तथापि उस मदनमंचुका को विना आश्वस्त किये मैं यह बात कदापि स्वीकार न करूंगी। इतना उसका कथन सुन नरवाहनदत्त को आनन्द और विस्मय दोनों एक साथ हुए, अतः वह विचारने लगे कि अहो! नवीन २ आश्चर्य के निर्माण में विधि भी बड़े प्रवीण हो गये हैं जिसने अचिन्त्या उदारचरित्रा प्रभावती को बनाया। इस प्रकार मन में सोच बड़े प्रेम से प्रभावती की स्तुति कर नरवाहनदत्त बोले, "तो मुझे वहां ले चलो जहां मदनमञ्चुका है।"

नरवाहनदत्त का इतना कहना सुन प्रभावती उन्हें लेकर आकाश में उड़ी और क्षण भर में आषाढ़ाद्रिपुर में जा पहुंची। वहां ले जाकर उस कृशवदना मदनमञ्चुका से नरवाहनदत्त को प्रभावती ने मिला दिया जैसे वृष्टि प्रवाह से नदी को मिला देती है। नरवाहनदत्त देखते हैं कि प्रिया मदनमञ्चुका अत्यन्त दुर्बल होकर पीली पड़ गयी है जैसे पर्वकाल में इन्दुकला। जैसे रात्रि से चन्द्र के

संयोग होने से बड़ा आनन्द होता है वैसे ही प्राणेश्वर नरवाहनदत्त और मदन-मञ्चुका के मिलने से परम आनन्द हुआ । विरहानल से सन्दग्ध दोनों दम्पती गले से लगे, उस समय पसीना दोनों के शरीर से बह निकला जिससे यह भावना होती थी कि दोनों मानों एक हो गये हैं । अब प्रभावती ने अपनी विद्या के बल से रात में नाना प्रकार के उपभोग एकत्रित कर दिये सो वे दोनों स्वेच्छपूर्वक उनका उपभोग करते रहे । प्रभावती ने ऐसी माया रच दियी थी कि मदनमञ्चुका को छोड़ कोई दूसरा नरवाहनदत्त को देख ही नहीं सकता था ।

प्रातःकाल होने पर नरवाहनदत्त अपनी प्रिया की एक वेणी खोलने लगे उस समय अहित करनेवाले के ऊपर क्रोध के वश में पड़ी हुई मदनमञ्चुका उनसे इस प्रकार कहने लगी "आर्यपुत्र ! मैंने प्रतिज्ञा कियी है कि मानसवेग को मार कर आप मेरी यह वेणी खोलेंगे और यदि ऐसा न हो सका और मैं मर गयी तो या तो चिड़ियां नोचेंगी अथवा अग्नि में जल जावेगी । सो आपने उस राजा के जीवित रहते ही खोल दियी इससे मेरा मन दुःखित होता है । वेगवती ने उसे अग्नि पर्वतपर भी फेंक दिया तौभी वह न मरा। प्रभावती ने आपको अपनी माया से ऐसा कर दिया है कि कोई आपको देख न सके नहीं तो आपके समीप उस शत्रु के अनुचरवर्ग इतने घूम घाम रहे हैं कि भला कहीं देख पावें तो क्योंकर सह सकें न जानें क्या कर डालें । इस प्रकार काल का अनुरोध जाननेवाले नर वाहनदत्त अपनी साध्वी प्रिया का वचन सुन उसे सान्त्वना देकर कहने लगे "प्रिये ! तुम्हारा यह अभीष्ट मैं सम्पन्न करूंगा, उस शत्रु को मार डालूंगा; विद्याएं प्राप्त कर ऐसा करूंगा इस से थोड़ी प्रतीक्षा करो ।" इस प्रकार उस मदनमञ्चुका को आश्वासन दे श्रीनरवाहनदत्त उस विद्याधरपुर में रहने लगे।

इसके उपरान्त प्रभावती ने नरवाहनदत्त को अपने रूप में कर दिया और वह स्वयं अन्तर्धान हो के रहती । सो राजपुत्र उसके रूप में निःशङ्कभाव से सुख-पूर्वक रहते और उसी की विद्या के प्रभाव से उन भोगों का उपभोग करते जो सिद्ध लोग भोगते हैं । वहां मानसवेग की ओर से जो रक्षक स्थापित किये गये थे वे यही समझते थे कि यह वेगवती की सखी प्रभावती है जो कि अपनी सखी के प्रेम वश होकर उसकी प्रीति से मदनमञ्चुका की सेवा करती है ।

अब एक समय की बात है कि मदनमञ्चुका श्रीनरवाहनदत्त से कथाप्रसङ्ग में अपना वृत्तान्त कहने लगी कि उस समय मानसवेग जब मुझको अपनी माया से यहां हर ले आया तो अनेक प्रकार के क्रूर कर्मों से भय दिखा अपनी कामना मुझसे सिद्ध कराया चाहता था। उस समय भगवान् भैरव प्रगट हुए और जिह्वा-निकाल खड्ग उठा कर उससे कहने लगे—"क्यों रे दुष्ट ! तू नहीं जानता कि यह विद्याधरेन्द्रों के भावी चक्रवर्ती की भार्या है सो हम लोगों के रहते तू इसपर क्यों प्रबलता करता है ?" भगवान् भूत भैरव का इतना कहना कि वह पापात्मा मानसवेग धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा और उसके मुख से लहू बहने लगा। जब देव अन्तर्धान हो गये तब क्षण भर के उपरान्त वह सचेत हुआ और अपने मन्दिर में चला गया उस दिन से वह फिर मुझपर कभी क्रूरता नहीं करता है।

इस समय मैं तो भय के मारे व्याकुल हो गयी, एक तो आपका वियोग दूसरे भय; बस मेरे मन में आया कि इस जीने से मरना ही भला है सो मैं मरने की चेष्टा करने लगी। उसी समय मानसवेग के अन्तःपुर की चेटियां मेरे पास आयीं और मुझे बहुत कुछ समझा बुझाकर इस प्रकार कहने लगीं—"एक समय की बात है कि एक मुनिकन्या बड़ी सुन्दरी थी उसे देख मानसवेग के मुंह में पानी भर आया सो यह उसे बलात् ले भागा। उस समय उसके बन्धुओं ने यह शाप दिया कि ऐ पाप इच्छा न करती हुई परनारी से जो तू गमन करेगा तो तेरा शिर सौ टुकड़े हो जावेगा। तब से यह परस्त्री पर बलपूर्वक गमन करने से डरता है इसलिये तुम भय मत करो यह तुमपर बलात्कार कभी कर ही नहीं सकता। भगवान् शङ्कर के आदेश से तुम्हारे पति से तुम्हारा फिर समागम हो जावेगा। इस प्रकार वे चे-टियां मुझे समझा बुझा रही थीं कि इतने में मानसवेग की बहिन प्रभावती मुझे सान्त्वना देने आयी। मुझे देखते ही उसके मन में कृपा का आवेश हो गया सो मुझे आश्वासन देकर वह आपको लेने गयी। आगे की बात आप सब जानते ही हैं।

इसके उपरान्त चन्द्र की ज्योत्स्ना के समान श्वेत वस्त्र पहिने मानों दूसरी चान्द्रीतनु दर्शनमात्र से मुझ पर सुधावर्षण करती, पृथ्वी देवी उस दुष्ट मानसवेग की माता मेरे पास आयीं और बड़े स्नेह से मुझसे कहने लगीं "पुत्रि ! शुभक-

रक आहार का त्याग कर क्यों तू आत्मा की उपेक्षा करती है अपने मन में यह मत रख कि शत्रु का अन्न क्योंकर खाऊं । मेरी कन्या जो वेगवती है उसके पिता ने उसको इस राज्य में कुछ भाग दे रक्खा है, तेरे पति ने उससे विवाह कर लिया है सो अब वह तुम्हारी सखी हुई अतः पति के सम्बन्ध से वह धन तुम्हारा धन है सो उसका तुम भोग करो; विद्याबल से जान कर यह मैं सत्य सत्य कहती हूं।" इस प्रकार शपथपूर्वक कहके सुता के सम्बन्ध से बन्धी उसने मुझे भोजन कराया पश्चात् वेगवती ने आपके साथ आप अपने भ्राता को जीता और आपकी रक्षा कियी । बस इतना ही मैं जानती हूं आगे क्या हुआ मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है । सो आर्यपुत्र ! एक तो वेगवती की सिद्धि दूसरे भगवान् भैरवजी का वह वचन बस यही समझ मैं आशालता में बन्धी अपने प्राण न त्याग सकी । महानुभावा प्रभावती के प्रभाव से इस शत्रुसङ्कट में भी आप मुझे आ मिले। मदनमञ्चुका कहती थी 'आर्यपुत्र ! मुझे इसी बात की अब चिन्ता बनी रहती है कि यदि प्रभावती कहीं लुप्त हो जावे तो आपका यह रूप नष्ट हो जावेगा तब उस समय हमारा क्या होगा ?" इस प्रकार कहकर जब मदनमञ्चुका विकल हो गयी तब श्रीनरवाहनदत्त उसे धैर्य्य बन्धाय उसके साथ रहने लगे।

एक समय की बात है कि प्रभावती अपने पिता के घर चली गयी बस प्रातः काल नरवाहनदत्त का वह रूप नष्ट हो गया क्योंकि प्रभावती तो अब थी नहीं । अब जितने परिजन वहां थे वे नरवाहनदत्त को नररूपी देख कर घबरा कर बोले कि अरे यह पारदारिक कहां से आया । इतना कह उन सभों ने जाकर राजकुल में सूचना दे दियी, मदनमञ्चुका कितना ही मना करती रही पर उन सभों ने कुछ न माना । विचारी मदनमञ्चुका अब अत्यन्त भयभीत हो गयी ।

तदुपरान्त राजा मानसवेग सम्वाद पातेही अपनी सेना ले चढ़ आया और उसने दौड़ कर नरवाहनदत्त को घेर लिया । इसी समय उसकी माता पृथिवी देवी झटपट वहां आ गयीं और राजा से कहने लगीं "पुत्र ! यह हन्तव्य नहीं है; यह पारदारिक नहीं है यह तो वत्सराज के पुत्र नरवाहनदत्त हैं अपनी भार्य्या के पास आये हैं । अपनी विद्या के बल से मैं देख रही हूं परन्तु तुम क्रोधान्ध हो रहे हो इससे नहीं देख सकते कि यह हमारे जामाता चन्द्रकुलोद्भव हैं अतः हमारे

पूज्य हैं।" माता का इतना वचन सुन मानसवेग का क्रोध और बढ़ा सो वह अपनी जनयित्री से कहने लगा कि तब तो यह मेरा शत्रु है। जामाता का स्नेह बड़ा भारी होता है अतः पृथिवी ने फिर उससे कहा "पुत्र ! इस विद्याधर लोक में अधर्म न करना चाहिये। यहां विद्याधरों की एक सभा है वहां इन्हें ले जाओ और प्रधान के समक्ष इनके शिर दोष मढ़ो। वहां से जो कुछ इनके लिये आज्ञा होगी सो तो इनको करनी ही पड़ेगी और जो विद्याधर अन्याय करें तो देवता भी न सहेंगे।" माता के गौरव से इस वचन पर वह सम्मत हुआ और अब वह मानसवेग सभा में ले जाने के लिये नरवाहनदत्त को बांधने चला । राजा नरवाहनदत्त भला बन्धन कब सह सकें वह तोरण में से खम्भा उपार लगे उसके भृत्यों को पीटने और उनमें से एक के हाथ से खड्ग छीन दिव्य पराक्रम उन नरवाहनदत्त वीर ने बहुतों को यमपुरी का मार्ग दिखा दिया। तब मानसवेग अपनी दिव्य माया से बांध कर उन्हें सभा में ले गया और मदनमंचुका उनके पीछे २ गयी।

अब भेरी बजायी गयी और उसका शब्द सुन इधर उधर से आ २ कर विद्याधर उस सभा में उपविष्ट होने लगे जैसे सुधर्मा में देवता। तदनन्तर राजा वायुवेग और सब विद्याधरों के मध्य रत्न सिंहासन पर विराजमान हुए। राजा वायुवेग का आना क्या मानों अधर्म का भागना था, अमर उनको पंखे झांकते थे। अब पापी मानसवेग उनके समक्ष खड़ा होकर इस प्रकार कहने लगा—

यह एक मर्त्य है हमारे अन्तःपुर का इसने विध्वंस कर डाला और क्या मेरी बहिन का भी सर्वनाश कर डाला, पुनः यह हमारा स्वाम्य ले लिया चाहता है अतः हमारा शत्रु है इससे इसका वध करना उचित है।

उसका इस प्रकार वचन सुन सभापति ने नरवाहनदत्त से कहा कि अच्छा इसका उत्तर तुम क्या देतेहो ? अब वीर नरवाहनदत्त विश्वस्त भाव से कहने लगे।

चौपाई।

सभा वही जहँ सभ्य (१) रहै। सभ्य वही जो धर्म्म कहै ॥
धर्म वही जहँ सत्य बसै । सत्य वही जहँ छल न लसै ॥

(१) सभ्य अर्थात् सभापति।

माया करि इन हम कह बांध्यौ। हम धरती इन आसन साध्यौ॥
यह निर्बंध बन्धे हम आहीं। हम दोउ कर विवाद सम नाहीं॥

इस प्रकार नरवाहनदत्त का उत्तर सुन वायुपथ ने उन्हें धरती पर बैठा दिया और न्यायपूर्वक मानसवेग के समान उनको भी मुक्त करा दिया।

तब समस्त सभा के सुनते वायुपथ के आगे नरवाहनदत्त फिर इस प्रकार कहने लगे—

यह, मेरी भार्य्या इस मदनमञ्चुका को हरकर यहां ले आये सो मैं किसी प्रकार अपनी पत्नी के पास पहुंच गया तो कहिये किसका अन्तःपुर मैंने बिगाड़ा है? इसी मदनमञ्चुका के रूप में इनकी बहिन ने आकर मुझे ठग कर मुझसे विवाह यदि कर लिया तो इसमें मेरा क्या अपराध है? यदि मैं स्वाम्य चाहता हूं तो ऐसा कौन है जो कामनाहीन हो?

इस प्रकार नरवाहनदत्त का कथन सुन राजा वायुपथ सोच विचार कर बोले "यह महात्मा, जिनका कि भविष्य अच्छा होनेवाला है, धर्मसङ्गत बात कहते हैं। हे मानसवेग! इनपर तुम अधर्म्म मत करो।"

इस भांति विचारपति का न्यायानुषङ्गित वचन सुन मानसवेग अधर्म्म से नहीं हटा, वह तो मोहान्ध हो रहा था भला उसे धर्म कहां सूझे! तब तो वायुपथ को बड़ा क्रोध हुआ। उधर भी सेना प्रस्तुत हो गयी इधर भी सेना आ डटी, वह धर्मानुरोधी यह धर्म्मद्वेषी। बस दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। ठीक है जो लोग धर्मासन पर बैठते हैं वे दुर्बल और बलवान् को, आत्मीय और पराये को एक दृष्टि से देखते हैं। इस समय नरवाहनदत्त बोले कि भाई एक काम करो कि तुम माया का प्रयोग न कर स्पष्ट रूप से युद्ध करो तो देखो कि मैं तुम्हें एक ही प्रहार में मार लेता हूं कि नहीं तब देखना कि मेरा पौरुष कितना और कैसा है। दिव्य कन्याएँ उनका एतादृश वचन सुन बड़ी ही अचम्भित हुईं।

वसन्ततिलकम्।

या भांति होन जबही कलहै जु लाग्यौ
विद्याधरों में सहसा, उस मन्दिरा में॥

फाड्यो जु खम्भ तिससे करि अट्टहास
भैरववपू निकसि आयहु देव तुर्तै ॥ १ ॥
खंव्यापि अञ्जनसमाकृति, सूर्य्य भांप्यो
बिज्जुलता सम चमंकत नैन तीनो ॥
दांतो कि पङ्क्ति बकुला कर पंक्ति मानों
गर्ज्यो महाप्रलयमेघसरिस प्रचण्डा ॥ २ ॥

दोहा।

बोले, यह है भावि जो, विद्याधर के ईश ॥
कबहूं हरि है नाहिं सच, सुनु शठ मम वागीश ॥ १ ॥
इमि सो मानसवेग कहँ, नत कन्धर समुझाय ॥
युद्ध निवार्यो देव तब, वायुपथहिं हरषाय ॥ २ ॥

वसन्ततिलक।

लीन्हों उठाय भगवान् निज दो भुजों से
रक्षा हितै जु नरवाहनदत्त को तब ॥
लै जाइ कै गिरिवरो शुभ ऋष्यमूक
राख्यो वहां भयहु अन्तरधान देव ॥ ३ ॥

दोहा।

थंभ्यो परस्पर ताहि छन, विद्याधर को युद्ध ॥
गयो वायुपथ धाम निज, भयो सकल मनशुद्ध ॥ ३ ॥
मानसवेग चल्यो जु करि, मदनमञ्चुकहिँ अग्र ॥
निज अषाढ़पुर को, रह्यो, हर्षशोक मन व्यग्र ॥ ४ ॥

तीसरा तरङ्ग ।

ऐसा भासता है कि किसी पुरुष का कल्याण सदा एक सा नहीं रहता है क्योंकि कभी सुख और कभी दुःख का प्रादुर्भाव हो जाता है । इससे यह भावना होती है कि विधि प्रगाढ़ धैर्य की परीक्षा के लिये सुख और दुःख की योजना कर देते हैं यदि यह बात नहीं है तो देखिये विदेश में पद पद पर कहां नरवाहनदत्त का दिव्य सुन्दरियों के संग संयोग और फ़िर कुछ कालोपरान्त ही वियोग । यह क्या है ? अस्तु ।

अब जब कि श्रीमान् नरवाहनदत्त ऋष्यमूक पर्वत पर अकेले बैठे थे कि उनकी प्रिया प्रभावती उनके समीप आयी और कहने लगी, "आर्यपुत्र ! टुक मैं टल गयी कि इतना उत्पात आप पर आ पड़ा कि वह दुष्टात्मा मानसवेग आपको सभा में ले गया । ज्यों ही मुझे विद्या के प्रभाव से यह ज्ञात हुआ कि देव भैरव के रूप में मैं वहां आविर्भूत हुई और आपको यहां पहुंचा गयी । कैसा भी कोई विद्याधर क्यों न बलवान् हो पर उसकी यहां नहीं चलती है यह सिद्ध क्षेत्र है यहां उसकी विद्या का गम नहीं है । मैं भी जो कुछ विद्या का विभव रखती हूं उसका प्रभाव यहां नहीं चलता सो मुझे यही दुःख है कि आप यहां क्योंकर रह सकेंगे । इस प्रकार जब वह कह चुकी तब नरवाहनदत्त समय की प्रतीक्षा में उसके साथ उसी ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे परन्तु ध्यान उनका मदनमञ्चुकाही में लगा रहता । उस पर्वत के समीप पम्पासरोवर में स्नान करते और दिव्य स्वादयुक्त फल मूल खाते, वन्य मृगों का मांस खाते, और जब तृषा लगती तब बावड़ी का पवित्र जल पीते जो कि तीर के वृक्षों के फलों के गिरने से बड़ा स्वादिष्ट और सुगन्धित हो गया था कभी वृक्ष के नीचे पड़ रहते और कभी गुफ़ाओं में जहां जब मन चाहता रम जाते । जिस प्रकार उस क्षेत्र में श्रीरामचन्द्रजी ने किया था वैसा ही व्यवहार नरवाहनदत्त भी उस समय करते थे । जब श्रीरामचन्द्र के आश्रम के दर्शन होते तब प्रभावती उनके मनोविनोदार्थ उस २ प्रसङ्ग की कथा उन्हें सुनाती थी ।

यहां मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र सीता और सौमित्रि के साथ

वृक्ष के नीचे झोपड़ी बना कर रहे थे । जिस अंगराग से कानन भी सुदित अर्थात् सुगन्धित हो जाता उसी अंगराग से अनसूया देवी ने जनकनन्दिनी श्रीजानकी का शृङ्गार किया था और सीता जी बल्कल पहिन कर मुनिपत्नियों के साथ रहीं । यहां गुफा में; पूर्वकाल की बात है, बालिने दुन्दुभि दैत्य का संहार किया था जो कि बालि और सुग्रीव के वैर का कारण हुआ । भ्रम से सुग्रीव को यह निश्चय हो गया कि उससे बालि मारा गया सो वह डर के मारे गुहा का द्वार ढोंकों से बन्द कर भाग गया । बालि वह द्वार भेद कर बाहिर निकला और घर आ उसने सुग्रीव को निकाल दिया कि यह राज्य के लोभ से मुझे गुहा में मूंद आया था । वह कपीश्वर सुग्रीव भाग कर यहीं ऋष्यमूक पर्वत पर आया और हनुमान् इत्यादिकों के साथ यहीं टिक रहा ।

उधर रावण साथ में हेम का हरि लेकर आया, जिसके देखने से रामचन्द्र का चित्त मोहित हो गया, और दुष्ट रावण रामदेव की भार्या जानकी को हर ले गया । सीता को ढूंढ़ते २ वह यहां पहुंचे । सुग्रीव तो बाली का निधन चाहता हो था सो दोनों में मैत्री हो गयी । अपना बल दिखाने के हेतु रघुवीर ने यहां एक बाण से सात ताल वृक्ष काट गिराये जिनमें से एक महा बली बालि बड़े कष्ट से तोड़ सका था । यहां किष्किन्धा में पहुंचे और खेल ही खेल में उन्होंने एक बाण छोड़ दिया जिससे बाली परलोक सिधारा और रामचन्द्र ने सुग्रीव को उस हत बाली की स्त्री दे दियी ।

इसके उपरान्त सीता के अन्वेषणार्थ सुग्रीव के अनुचर हनुमान् प्रभति जब चारों दिशाओं में गये तब रामचन्द्र वर्षाकाल में वहां रहे थे । उस समय गर्ज २ कर मेघ मूषलधार पानी बरसाते थे मानों रामभद्र के दुःख से दुःखित हो आंसू बहा रहे हों ।

उधर सम्पाति के वचन से हनुमान् समुद्र पार कर लङ्का में पहुंचे और बड़ी सावधनी से सीता का पता लगा कर रामचन्द्र के पास लौट आये और तब समुद्र में सेतु बांध भगवान् रामचन्द्र लङ्का में पहुंचे और शत्रु रावण लङ्केश्वर को मार सीता को लेकर विमान पर इसी मार्ग से गये थे ।

इतनी कथा सुनाय प्रभावती ने कहा कि आर्यपुत्र ! इस प्रकार आप भी क-

ल्याण प्राप्त करेंगे क्योंकि जो लोग धीर होते हैं उनके पास सम्पत्तियां आपत्काल में भी पहुंच जाती हैं। इस प्रकार की कथा प्रभावती नरवाहनदत्त को सुनाती और वह उसके साथ वहां रह के इधर उधर क्रीड़ा किया करते थे।

एक समय जब कि वह पम्पासरोवर के किनारे बैठे थे कि दो विद्याधरियां धनवती और अजिनवती आकाश से उतर कर उनके समीप आयीं। ये दोनों वेही विद्याधरियां हैं जो नरवाहनदत्त को गन्धर्वपुर से श्रावस्तीपुरी में ले गयी थीं जहां भगीरथयशा से उन्होंने विवाह किया था। जबकि प्रभावती और अजिनावती दोनों सखी भाव से मिलीं उस सवय धनवती ने नरवाहनदत्त से कहा कि यह मेरी सुता जो अजिनावती है इसे मैं पूर्व ही तुम्हें वचन से दे चुकी हूं सो तुम इससे विवाह कर लो अब तुम्हारा अभ्युदय अतिसन्निकट है । धनवती का एतादृश वचन सुन नरवाहनदत्त और सखीस्नेह से प्रभावती दोनों बड़े प्रसन्न हुए । तब धनवती ने अपनी पुत्री अजिनावती का दान विधिपूर्वक वत्सेश्वरपुत्र नरवाहनदत्त के हाथ में कर दिया। अपनी विद्या के प्रभाव से दिव्य सामग्री एकत्रित करके उसने अपनी दुहिता का यह मङ्गल विवाहकृत्य सम्पादन किया।

दूसरे दिन धनवती ने नरवाहनदत्त से कहा 'पुत्र ! यहां वहां तुम्हारा बहुत दिन रहना अच्छा नहीं है। विद्याधर बड़े मायावी होते हैं- तुम्हारा कार्य यहां नहीं है सो तुम अपनी दोनों भार्याओं के साथ निजपुरी कौशाम्बी को चले जाओ मैं अपने पुत्र चण्डसिंह तथा विद्याधरेन्द्रों के साथ वहीं तुम्हारे अभ्युदय के लिये आऊंगी।" इतना कहके अपनी प्रभा से सुशोभित धनवती आकाश में उड़ गयी। इधर प्रभावती और अजिनावती नरवाहनदत्त को उठा के आकाश मार्ग से कौशाम्बीपुरी में पहुंचीं।

जब कि नरवाहनदत्त अपने उद्यान पर पहुंचे तब वे दोनों उन्हें लिये दिये धरती पर उतरीं तिस समय नरवाहनदत्त को उनके परिजनों ने देखा, चारों ओर आनन्दनाद होने लगा कि यह राजपुत्र बड़े भाग्य से आ गये; हम लोग धन्य हैं। यह अकाल में सुधा-वृष्टि सी आनन्ददायिनी वार्ता सुन महाराज वत्सराज वासवदत्ता के साथ, पद्मावती के संग तथा रत्नप्रभा प्रभृति बहुओं के साथ वहां दौड़ आये संग में उनके यौगन्धरायणादि सचिव कलिङ्गसेना तथा नरवाहन-

दत्त के मन्त्री गोमुख इत्यादि भी वहां ऐसे हकसे प्यासे आये जैसे ग्रीष्मकाल में प्यासे पथिक सरोवर के समीप जाते हैं। आकर लोग क्या देखते हैं कि दोनों पत्नियों के मध्य नरवाहनदत्त सुशोभित हैं जैसे रुक्मिणी और सत्यभामा के मध्य दाशार्ह श्रीकृष्ण। उस समय आनन्द के मारे सबोंके अङ्ग ऐसे पुलकित गये थे कि कुछ कहा नहीं जाता; ऐसा न हो कि सब के अङ्ग फट जांय इस भय से आंखें मानों शरीरों में थीं हो नहीं अर्थात् हर्ष के कारण आंसु भर जाने से बन्द हो गयी थीं। बहुत दिन के उपरान्त आये हुए पुत्र को पाकर महाराज और उनकी दोनों देवियों ने नरवाहनदत्त को अपनी छाती सेल गाया और वे छोड़ना हो नहीं चाहते थे मानों रोमाञ्चित अङ्गों में वह प्रोत (१) हो गये थे। नाना प्रकार के उत्सव के बाजे इस समय बजने लगे।

इसी अवसर पर नरवाहनदत्त की भार्या, वेगवान् की बेटी, मानसवेग की बहिन वह वेगवती यह सब वृत्तान्त जान आकाश मार्ग से चली २ वहां आ उतरी। सास ससुर के चरणों पर गिर अपने पति नरवाहदत्त से झुक कर इस प्रकार कहने लगी, "आप ही के कारण मेरी सारी विद्याएँ दुर्बल हो गयी थीं सो तपोवन में जाकर मैंने पुनः उन्हें सिद्ध किया और जब वे सम्यक् सिद्ध हो गयीं तब मैं कल्याणरूप आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूं।" उसका ऐसा कथन सुन पति ने तथा और सब वहां उपस्थित लोगों ने उसका बड़ा सम्मान किया। तदनन्तर वह अपनी सखी प्रभावती और अजिनावती के समीप गयी और उनसे मिली।

उसे आलिङ्गन कर ज्योंही वे उसे मध्य में बैठाती थीं कि उसी अवसर में अजिनावती की माता धनवती भी आ पहुंची उसके साथ अनेक विद्याधराधिप आये। उस समय उन दिव्य मूर्तियों तथा उनकी सेनाओं से आकाश ऐसा आच्छादित हो गया था मानों मेघों से आच्छादित हो। उसका पुत्र महाभुज वीर चण्डसिंह तथा उसका मित्र अत्यन्त पराक्रमी अमितगति. प्रभावती के पति बलवान् पिङ्गलगान्धार और वह वायुपथ जो कि पूर्व में सभापति हुए थे। वह शूर रत्नप्रभा के पिता राजा हेमप्रभ, अपने पुत्र वज्रप्रभ और सेना के संग गन्धर्वराज सागरदत्त अपनी सुता गन्धर्वदत्ता तथा चित्राङ्गद के साथ आये। ये सब लोग सबल आये और

(१) पोहे गये।

वत्सेश्वर ने अपने पुत्र के साथ उन सब लोगों की यथोचित पूजा कियी। पूजा के उपरान्त सब लोगों ने आसन ग्रहण किया।

अब सभा के बीच स्थित अपने जामाता नरवाहनदत्त से राजा पिङ्गलगान्धार ने कहा, "पुत्र! परमात्मा ने तुम्हें हम सबों का चक्रवर्ती बनाया हैं सो तुम्हारे अति स्नेह से हम सब लोग यहां आये हैं। यह तुम्हारी सास देवी धनवती सदा व्रत करनेवाली हैं, दिव्यज्ञान की धारण करनेवाली, हाथ में सुमिरनी रखती हैं और कृष्णमृगचर्म इनका परिधान हैं। तुम्हारी रक्षा के लिये उन्होंने बड़ा उद्योग किया जैसे साक्षात् भगवती अथवा सावित्री और सिद्धविद्या हों, यह समस्त विद्याधरों की वन्द्या हैं। सो तुम्हारा कार्य तो स्वयं सिद्ध ही है तथापि जो कहता हूं सो सुनो –यहां हिमालय पर विद्याधरों की वेदी के दो अर्द्ध २ भाग हैं एक उत्तर और दूसरा दक्षिण जो उस पर्वत के शृङ्गों की भूमि हैं। कैलास के उस भाग में तो उत्तरवाला है और दक्षिणवाला इधर है। तहां उत्तर भाग के आधिपत्य के हेतु इस समय इस अमितगति ने बड़ा कठोर तप किया जिससे भगवान् शङ्कर बहुत सन्तुष्ट हो गये। भगवान् भूतभावन ने उस आज्ञा दियी कि चक्रवर्ती नरवाहनदत्त तेरा अभीष्ट साधन करेंगे; बस उन्हीं के आदेश से यह यहां आया है। वहां मन्दरदेव नामक मुख्य राजा है, वह दुरात्मा बलवान् तो बड़ा है किन्तु तुम जब विद्याएँ प्राप्त कर लोगे तब वह तुम्हारे लिये असाध्य भी नहीं है। दक्षिण में जो गौरिमुण्ड नामक राजा है वह दुष्टात्मा अपनी विद्याओं के प्रभाव से अति दुर्जय है। वह तुम्हारे शत्रु मानसवेग का परममित्र है, सो जब लौं वह सिद्ध नहीं किया जाता तब लौं कार्य नहीं चलता। अतः तुम अति शीघ्र विद्या का महान् बल सिद्ध करो।"

पिङ्गलगान्धार के इस प्रकार कहने पर धनवती ने कहा, "पुत्र! यह राजा जैसा तुमसें कहते हैं वह वैसा ही है सो तुम सिद्ध क्षेत्र पर जाकर विद्याओं की सिद्धि के अर्थ भूतभावन आशुतोष भगवान् शङ्कर का आराधना करो क्योंकि उनकी आराधना के विना उत्कर्ष कहां। और ये जितने राजा हैं वे सब एक संग वहां उपस्थित रह कर तुम्हारी रक्षा करते रहेंगे। तब चित्राङ्गद ने कहा "लो मैं सब का अग्रगामी होता हूं सो अब विजय (१) किया जावे।

अब तो सब का यही सिद्धान्त ठहरा । तब राजकुमार नरवाहनदत्त चलने पर प्रस्तुत हुए । उस समय प्रास्थानिक सब मङ्गल कर दिये गये तदनन्तर श्रीनरवाहनदत्त अपने पिता के चरणों पर गिरे, उस समय माता पिता के नेत्रों में आंसू भर आये, पुन: गुरुजनों को प्रणाम कर उनका आशीर्वाद ले नरवाहनदत्त चले । उस समय अमितगति ने अपनी विद्या के प्रभाव से एक विमान वहां उपस्थित कर दिया तिसपर अपनो पत्नियों तथा मन्त्रियों के संग नरवाहनदत्त जो आरूढ़ हुए । अब आकाश में फिर मेघ के समान दिव्य लोग छा गये। उस समय सब सैनिकों के चलने से ऐसा पवन उठा कि मानों प्रलय मारुत बहने लगा उससे समुद्र में पर्वताकार तरङ्ग उठने लगी । सेनाओं के नाद से सारी दिशाएँ गूंज उठीं मानों यह घोषणा होती थी कि तुम सब द्युचारियों (२) के चक्रवर्ती आ रहे हैं। क्षण भर में धनवती और वे सब गन्धर्वपति तथा विद्याधरेश्वर नरवाहनदत्त को लिये दिये सिद्धक्षेत्र पर्वत पर पहुंच गये ।

वहां सिद्धों ने उन्हें व्रत का उपदेश दिया, उसी के अनुसार नरवाहनदत्त तपश्चार्य्या में लीन हुए । प्रात:काल स्नान करते, फल खाकर रह जाते, धरती पर शयन करते । इस प्रकार शङ्कर की आराधना के निमित्त तपस्या में लीन हो गये। वे सब विद्याधरेन्द्र चहुंओर से घेर के उनकी रक्षा करते रहे, और सदा सन्नद्ध तथा तन्द्रारहित रहते थे। विद्याधर कुमारियां तप करते हुए उन नरवाहनदत्त को देखकर अति उत्कण्ठित रहती, नेत्रों से सदा उनकी ओर ध्यान लगाये थीं मानों यही उनका कृष्णचर्म हैं। दूसरी उन्हें इस भाव से देखतीं मानों नेत्र ही उनके मुह हैं। जो कि बतलाये देते थे कि आपकी चिन्ता इनके हृदय में है और वे जो अपने हाथ अपने उर:स्थलों पर रखतीं इसका अभिप्राय यह कि आप हमारे हृदय में प्रविष्ट हो गये हैं ।

पांच और विद्याधार कन्याएँ थीं जो उन्हें देख कामदेव के बाणों से विद्ध हो गयीं । उन सभों ने आपस में यह प्रतिज्ञा कियो कि हम पांचों सखियां इन्हें एक संग वरेंगी और एक ही साथ व्याह भी करेंगी इसमें भेद न होगा । यदि एक इनसे पृथक् विवाह कर लेवे तो उस सखी की द्रोही के कारण हम अग्नि में जल म-

(१) प्रस्थान। (२) आकाशचारी।

रेंगी। इस प्रकार दिव्य कन्याएँ राजकुमार नरवाहनदत्त को देखकर विकल हो जातीं और परस्पर नाना प्रकार की बातें करतीं।

इधर तपश्चर्या उधर कन्या मण्डल में व्यामोह परन्तु बीच में कुछ और ही घटना हो गयी। अकस्मात् बड़े २ उत्पात तपोवन में होने लगे। बड़ा घोर प्रचण्ड पवन चलने लगा जिससे उत्तमोत्तम वृक्ष उखड़ २ गिरने लगे जिनका यह अर्थ था कि इसी प्रकार शूरवीर यहां रण में गिरेंगे। हाय अब क्या होगा इस भय से भूमि बार २ कांपने लगी, पर्वत की चोटियां फटने लगीं कि जो लोग युद्ध में पीठ दिखावेंगे वे आकर यहां अवकाश ग्रहण करें। आकाश में मेघ नहीं किन्तु वहां से महाघोर शब्द सुनने में आता है जिस से यह तात्पर्य है कि हे विद्याधरो! अपने प्रभु की रक्षा करो। यद्यपि ऐसे २ महोत्पात उठे तथापि नरवाहनदत्त निष्कम्प हो भगवान् भूतनाथ के ध्यान में लगे रहे। ये उत्पात देख अनिष्ट की आशङ्का से सब विद्याधरेन्द्र और गन्धर्वराज सावधान हो गये और अपने २ अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो नरवाहनदत्तकी रखवाली अधिक सावधानी से करने लगे। वे वीर सिंहनाद करते जिससे समस्त वन गूंज उठता और असि घुमाते जिससे वन की लताएं हिलने डोलने लगीं मानों वे अहितसूचक उत्पातों को डांट रहे हैं।

दूसरे दिन अकस्मात् कल्पान्त मेघ के समान विद्याधरों का सैन्य आकाश में घिर आया जिसमें से महा भयङ्कर शब्द सुन पड़ता था। इस समय धनवती अपनी विद्या के प्रभाव से जान कर बोली कि यह गौरिमुण्ड मानसवेग के साथ चढ़ आया है। इधर गन्धर्वराज और विद्याधरेन्द्र अस्त्र शस्त्र उठा कर खड़े हो गये तब गौरिमुण्ड मानसवेग के साथ उनपर दौड़ा। वह बोला "अरे विद्याधरेन्द्रो! कहां यह मानुष और कहां हम! तुम सब इसके पक्षपाती बने हो तो देखो मैं तुम्हारा दर्पचूर किये देता हूं।" इस प्रकार जब वह बोला तब चित्राङ्गद उसके समक्ष जा डंटा। गन्धर्वों के अधीश्वर राजा सागरदत्त चण्डसिंह और अमितगति तथा राजा वायुपथ और क्या पिङ्गलगान्धार सब विद्याधरेन्द्र महारथ सिंहनाद करते हुए अपनी २ सेना के साथ उस पापी मानसवेग पर दौड़े। वह समररूपी महा घोर दुर्दिन (१) उस समय उपस्थित हो गया, सेनाओं के परिचालन से जो धूरि उठी

(१) जब अति वृष्टि होती है तो वह दिन दुर्दिन कहलाता है।

सो ही मानों मेघ है, शस्त्रों से टकराने से जो ज्वाला निकलती वही मानों विद्युत है, शूरवीरों के शरीर से जो रक्त बहता सो ही मानों दृष्टि है। इस समय चित्राङ्गदादि ने मानों महा यज्ञ प्रारम्भ कर दिया जिसमें शोणितारूपी आसव भरा है शत्रुओं के शिर जो कट २ गिरे वेही बलि हैं। उस समय रुधिर की नदी बह चली जिसमें नाचते हुए कबन्ध ग्राह के समान हैं, बहते हुए जो अस्त्र हैं वे तो सर्प हैं, मेद जो हैं सोही फेन है।

इन वीरों ने ऐसा छक्का छोड़ युद्ध किया कि जिसका पार नहीं, गौरिमुण्ड की सारी सेना काम आ गयी और वह भी अब मारा ही जाया चाहता था कि उसे इस समय और कुछ न सूझा, उसने झट पूर्व में आराधना से सन्तुष्ट कियी हुई गौरी विद्या को स्मरण किया। स्मरण करते ही त्रिनेत्रा त्रिशूलधारिणी भगवती साक्षात् उस रणभूमि में आ विराजीं आते ही उनके नरवाहनदत्त के पक्ष के सब वीर मोह में आ गये। अब तो गौरिमुण्ड का बल बढ़ गया सो वह गर्जता हुआ नरवाहनदत्त के निकट दौड़ कर जा पहुंचा और ताल ठोक कर बाहुयुद्ध के लिये ललकारने लगा। उनके साथ बाहुयुद्ध करते २ वह विकल हो गया तब उसने फिर उस विद्या को स्मरण किया और उसी के प्रभाव से बाहुओं में नरवाहनदत्त को लेकर वह उड़ा। यद्यपि वह उन्हें वध किया चाहता था परन्तु धनवती की विद्या के बल से न मार सका। तब उसने उन्हें अग्नि पर्वत पर फेंक दिया। उधर मानसवेग भी नरवाहनदत्त के मन्त्री गोमुख प्रभृति को ले २ कर दिशाओं में ले जाकर फेंकता रहा किन्तु धनवती की भेजी विद्याएँ रूप धारण करके उन्हें ले जाकर धरती पर रख देती थीं, "तुम्हारे प्रभु अपना कार्य सिद्ध कर कुशल से रहेंगे और तुम उन्हें शीघ्र पाओगे।" इस प्रकार एक २ से कह २ उन्हें सान्त्वना दे देकर सब विद्याएँ अन्तर्धान हो गयीं। तदुपरान्त "हम लोगों ने जीत लिया," ऐसा मान कर गौरिमुण्ड मानसवेग के साथ जहां से आया था वहां चला गया।

इधर तो विकलता व्याप गयी कि बड़ा उत्पात मचा न जानें नरवाहनदत्त कहां गये, उनके मन्त्री कहां गये। उस अवसर पर धनवती ने कहा कि तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो नरवाहनदत्त अपना कार्य सिद्ध कर तुम्हें आ मिलेंगे उनका

कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता। धनवती के इस प्रकार कहने पर सब का मोहान्धकार दूर हुआ और गन्धर्वनाथ और विद्याधरेश्वर चित्राङ्गदादि अपने २ स्थान को चले गये। धनवती भी अपनी पुत्री अजिनावती तथा उसकी सपत्नियों को ले के अपने घर चली गयी।

अब युद्ध से निवृत्त हो मानसवेग मदनमञ्चुका के पास पहुंचा और कहने लगा 'अब तो तुम्हारे भर्त्ता को मार डाला अब मेरी होजाओ! इसका इतना कहना सुन मदनमञ्चुका हंस के बोली "भला यह कभी सम्भव है, वह मेरे भर्त्ता देवनिर्मित हैं, वह तुम्हें मारेंगे, भला उन्हें कौन मार सकता है।"

उधर नरवाहनदत्त को जब शत्रु अग्निपर्वत पर फेंक कर चला गया तो कोई दिव्य पुरुष वहां पहुंचा, वह चट उन्हें लेकर बड़ी रक्षा के साथ अति शीतल मन्दाकिनी के तट पर ले गया, जब नरवाहनदत्त आश्वस्त हुए तब उन्होंने पूछा "आप कौन हैं?" तब वह बोला—"देव! अमृतप्रभ नामक विद्याधराधीश हूं, भगवान् शङ्कर से आपकी रक्षा के लिये भेजा गया हूं। यह आगे उन्हीं महाप्रभु के निवास का पर्वत कैलास है, वहां जाकर आप शिव भगवान् की आराधना कर अपना श्रेयस् प्राप्त करेंगे और तब उसमें किसी प्रकार का विघ्न न होगा। सो चलिये मैं आपको वहां पहुंचा देऊं।" इतना कह वह अमृतप्रभ उन्हें लेकर वहां गया और उन्हें पहुंचा कर उनसे आज्ञा लेकर अपने स्थान को चला गया।

अब कैलास पर्वत पर पहुंच कर भगवान् गणाधिप के सन्तोषार्थ तपस्या करने लगे और ऐसी तपस्या हुई कि भगवान् विनायक तुरन्त सन्तुष्ट हो गये। सन्तुष्ट होकर उन्होंने आज्ञा दे दियी तब वह गिरिजानाथ के आश्रम में पैठे। नियम व्रत करने से शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था। अब वहां उनको द्वार पर नन्दी मिले।। जब इन्होंने घूम कर नन्दी को प्रदक्षिणा कियी तब नन्दीश्वर बोले "अब तो विघ्न राज की दृष्टि से तुम्हारे सब विघ्न शान्त हो गये सो तुम तो एक प्रकार से अब सिद्ध हो ही चुके हो। सो अब यहीं बैठ कर भगवान् शङ्कर के तोषणार्थ तप करो क्योंकि सिद्धियों की प्राप्ति पापों के क्षीण होने और तप की शुद्धि से होती है।"

नन्दीश्वर का ऐसा कथन सुन नरवाहनदत्त भगवान् आशुतोष तथा देवी पा-

र्वती का ध्यान कर तपस्या करने लगी, उनका भोजन इस समय केवल वायु था। भगवान् का नाम तो आशुतोष है ही सो वह शीघ्रही सन्तुष्ट हो गये और देवी गिरिजा के साथ प्रत्यक्ष हो अति विनम्र नरवाहनदत्त को बोले, 'पुत्र! अब तुम सब विद्याधरों के चक्रवर्ती होओ; सब उत्तमोत्तम विद्याएँ तुम्हें प्रत्यक्ष हो जावें। हमारे प्रभाव से कोई भी शत्रु तुमपर विजय न प्राप्त कर सकेगा न तुम्हारे शरीर में शस्त्रादि के घाव लगेंगे न कोई तुम्हें भेद कर वश में कर सकेगा, प्रत्युत तुम समस्त शत्रुओं को मार डालोगे। जब तुम्हारी दृष्टि पड़ जावेगी तब शत्रुओं की विद्या काम न देवेंगी सो अब जाओ और गौरी विद्या भी तुम्हारे वश में हो जावेगी। इस प्रकार गौरी के साथ वरदान दे भगवान् शम्भु ने ब्रह्मनिर्मित चक्रवर्ती महापद्म विमान उन्हें दिया।

उसी समय सब विद्यायें शरीरधारिणी होकर उनके समक्ष उपस्थित हो गयीं और कहने लगीं कि महाराज हम सब आपकी आज्ञाकारिणी हैं कहिये क्या आज्ञा होती है?

सोरठा।

अब नरवाहनदत्त, सिद्ध होई परनाम करि॥
चढ्यो विमान जु प्रत्त (१) आज्ञा लहि उन देवकी॥१॥
प्रथम गयो सो देव, अमितगती के वक्रपुर॥
विद्या मारगभेव कहत, सिद्ध अस्तुति करत॥ २॥
दूरिसों चढ्या विमान, लखि आवत नरवाहनहिं॥
अमितगती भगवान, करि लगो निज मन्दिरहिं॥ ३॥
विद्या सिधि की बात, तिहिवर्णित शुभ श्रवण करि॥
व्याहि दीन्ह हरषात, सुता तिनहिं जु सुलोचना॥ ४॥
हरषित ताकहं पाय, विद्याधरलक्ष्मी अपर॥
प्रीति सों दिवस बिताय, चक्रवर्ति उत्सव अधिक॥ ५॥

(१) दिया हुआ।

चौथा तरङ्ग ।

इसके उपरान्त एक दिन की बात है कि नूतन चक्रवर्ती नरवाहनदत्त सभा में बैठे हुए थे कि आकाश से हाथ में बेत लिये हुए एक पुरुष उतरा और नरवाहनदत्त के समक्ष जाकर प्रणाम कर इस प्रकार कहने लगा "देव ! मुझे चक्रवर्ती का प्रतीहार जानिये, मेरा नाम पौररुचिदेव है और मैं अपने कार्य्य के सम्पादनार्थ यहां उपस्थित हुआ हूं।" उसका ऐसा कथन सुन श्रीनरवाहनदत्त अमितगति का मुंह देखने लगे तब उन्होंने कहा "देव ! यह सत्य कह रहा है" उनके मुंह से ऐसा सुन नरवाहनदत्त ने प्रतीहारी को सहर्ष उक्त कार्य पर स्वीकार किया।

तदनन्तर धनवती ने अपनी विद्या के प्रभाव से सब कुछ जान लिया, सो वह वेगवती तथा उसकी सपत्नियों को लेकर वहां आयी और साथ में उसका पुत्र चण्डसिंह भी आया । वायुपथ के साथ राजा पिङ्गलगान्धार, सागरदत्त के साथ वह चित्राङ्गद इत्यादि आये हेमप्रभ इत्यादि भी उपस्थित हुए । उस समय उन सभों के सैन्यों से सूर्यनारायण छिप गये मानों आगे ही से यह सूचना दे देते हैं कि हम लोग दूसरे का तेज नहीं सह सकते। सब लोग चक्रवर्ती के समीप आके उनके चरणों पड़े और नरवाहनदत्त ने सबों का यथोचित स्वागत कर सम्मान किया। धनवती का गौरव सबों से अधिक था और वह सास होने के कारण नरवाहनदत्त से भी मान की अपेक्षा रखती थीं अतः नरवाहनदत्त ने उनको प्रणाम किया और धनवती ने उन्हें अशीर्वाद से परिपूर्ण कर दिया । श्रीनरवाहनदत्त ने अपनी सिद्धि प्राप्ति का सारा वृत्तान्त कह सुनाया सो सुन चण्डसिंहादि सब बहुत ही प्रमुदित हुए ।

जब कि सब पत्नियां पास में आयीं तो उन्हें देख नरवाहनदत्त ने धनवती से पूछा कि वे मेरे सचिव कहां हैं ? उनका ऐसा प्रश्न सुन धनवती ने उत्तर दिया कि जब मानसवेग ने उन्हें फेंक दिया तब विद्या के द्वारा मैंने उन्हें भिन्न २ स्थानों में रखवा दिया । तब उन्होंने विद्या को आदेश देकर उन सचिवों को बुलवा मंगाया और जब वे आये और इनके चरणों पर गिरे तब यह कुशल क्षेम पूछ का-

छने लगी "इतने दिन कौन कहां कैसे रहा यह सब अपना २ वृत्तान्त एक २ करके सुना जाओ।" तब पहिले गोमुख अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाने लगा।

देव। जब कि शत्रु मुझको फेंककर चला गया उस समय किसी देवी ने मुझे हाथों पर उठा लिया और दूर अरण्य में ले जाकर मुझे रक्खा और बहुत कुछ समझाया बुझाया। इतना कह देवी अन्तर्धान हो गयीं। मेरे दुःख का वारापार नहीं मैं करूं क्या जाऊं कहां ? तब मन में यही बात आयी कि इस जीने से मरना ही अच्छा है सो मैं कहीं गिर कर मर जाने पर प्रस्तुत हुआ। "गोमुख! ऐसा मत करो, तुम्हारा प्रभु अपना अर्थ सिद्ध कर लेगा और तुम फिर उसे देखोगे" एक तापस ने पास आ ऐसा कह मुझे मरने से रोक लिया। तब मैंने पूछा "महात्मन्! आप कौन हैं ? और यह क्योंकर जानते हैं ?" मेरे ऐसे प्रश्न सुन उन्होंने कहा अच्छा मेरे आश्रम पर चलो तब तुम्हें वहां सारी कथा सुनाऊंगा। उस तापस ने मेरा नाम जान लिया था इसी से मुझे उनके विज्ञान में भरोसा हो गया था अतः मैं उनके साथ शिवक्षेत्र नामक उनके आश्रम को चला गया। वहां उन्होंने मेरा आतिथ्य किया और इस प्रकार अपनी कथा आरम्भ कियी।

कुण्डिन नामक एक नगर है तहां का मैं रहनेवाला हूं मैं जाति का ब्राह्मण और नाम मेरा नागस्वामी। जब मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया तो मैं विद्या पढ़ने के लिये अपने भवन से निकला और चला २ पाटलीपुत्र में जयदत्त उपाध्याय के चरणों में उपस्थित हुआ। गुरुदेव मुझे चित्त लगा कर सिखलाने लगे किन्तु मैं ऐसा मूर्ख कि मुझे एक अक्षर भी न आया। सब छात्र मेरी हंसी करने लगे तब तो मुझे बड़ी ग्लानि हुई और मैं उसी अवस्थामें वहां से निकला कि अब चल कर भगवती विन्ध्यवासिनी के दर्शन करूं। मैं आधी दूर गया होऊंगा कि वक्रोलकपुर पड़ा सो मैं एक द्वार पर भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ। गृहस्वामिनी ने तुरन्त मुझे भिक्षा दियी और उसी के साथ मुझे एक लाल कमल भी दिया। वहां से भिक्षा लेकर जब कि मैं दूसरे घर में भिक्षा मांगने गया कि गृहस्वामिनी ने मुझे देखकर कहा, "हाय! २ आप तो योगिनी (१) के फेर में पड़ गये! देखिये न लाल कमल के बहाने से उसने मनुष्य सा हाथ आपको दे दिया है।"

(१) यहां डायन से तात्पर्य है।

उसका इस प्रकार कहना सुन ज्यों मैं देखता हूं त्यों लो वह तो हाथ ही था कमल वमल कुछ नहीं। वह हाथ फेंक कर मैं उसके पांवों पर गिर पड़ा और बड़ी नम्रता से विनय कर कहने लगा कि मात: अब जैसे बने तैसे मेरे प्राण बचाओ। मेरा ऐसा अनुनय सुन वह बोली ' अच्छा मेरी बात सुनो; यहां से तीन योजन पर करभक गांव में देवरचित नाम एक ब्राह्मण रहता है, उसके घर एक कपिला है जो कि साक्षात् सुरभि है, सो उसी की शरण में तुम आज जाओ वही तुम्हारी रक्षा कर देगी । भय से मेरा शरीर कांप रहा था इस प्रकार उसका कथन सुन कुछ आशालता हरियायी सी मैं वहां से ताबड़ तोड़ भागा और दिन भर दौड़ते २ करभग्राम में उस ब्राह्मण के घर सांझ होते २ पहुंच गया। भीतर जाकर देखता हूं तो वही कथित कपिला वहां विद्यमान है। बस मैं प्रणाम कर उससे कहने लगा "देवी मैं बड़े भारी भय में पड़ गया हूं आज तुम्हारी शरण में आया हूं मेरी रक्षा करो।" इतने ही में वह योगिनी और योगिनियों के साथ मुझे डेराती हुई आकाश मार्ग से मेरे मांस और रुधिर के भक्षणार्थ वहां आ पहुंची। यह देख कपिला मुझे अपने खुरों के मध्य रख मेरी रक्षा के हेतु रात भर उन योगिनियों से लड़ती रह गयी। प्रात:काल होते ही वे योगिनियां चम्पत हो गयीं। उस समय स्पष्ट वचनों में कपिला ने मुझसे कहा, "पुत्र ! अब मैं आज तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकती । यहां से पांच योजन पर अरण्य के बीच एक शिवालय है वहां भूतिशिव नामक एक ज्ञानी योगी है सो तुम उसी के पास जाओ उसी की शरण गहो तो आज की एक रात वह तुम्हारी रक्षा कर देगा। उस कपिला का इतना कथन सुन मैं प्रणाम कर वहां से चला। झटपट दौड़ता २ मैं उस भूतिशिव की शरण में पहुंचा और रात होते ही उधर से वे योगिनियां भी आ पहुंचीं। अब भूतिशिव मुझे घर के भीतर कर आप त्रिशूल लेकर द्वार पर डंट गया और योगिनियों को डांटता डपटता रहा । अन्त में योगिनियां हार कर चली गयीं और प्रात:काल भी हो गया। तब भूतिशिव ने मुझको भोजन कराया और कहा, "ब्रह्मन् ! कल मैं तुम्हारी रक्षा कर सका पर अब आज फिर मैं तुम्हें न बचा सकूंगा सो एक बात करो कि यहां से दश योजन पर संध्यावास नामक ग्राम में वसुमति नामक एक ब्राह्मण हैं उसी के पास जाओ। सो आज तीसरी रात में वह तुम्हारी रक्षा कर

देगा, यदि आज की तीसरी रात तुम बच गये तो फिर उनका भय न रहेगा।" उस ज्ञानी की इतनी कथा सुन प्रणाम कर मैं वहां से चला। भला दश योजन का चलना कब सम्भव है। मैं ठिकाने पहुंचा भी नहीं कि बीच ही में भगवान् भास्कर अस्त हो गये और रात होते ही वे योगिनियां आ गयीं और मुझे लेकर आकाश में उड़ चलीं। ज्योंही कि वे चली जाती थीं कि साम्हने से और दूसरी अपूर्व योगिनियां आ पहुंचीं। बस उनके साथ इनका झगड़ा होने लगा। उधर इन दोनों दलों में कलह होने लगा कि मैं उनके हाथ से छूट पड़ा और एक निर्जन देश में आ गिरा। मैं ही वहां एक मात्र जन था दूसरा कोई भी नहीं। वहां क्या देखता हू कि एक बड़ा भारी मन्दिर है, द्वार खुला था। मानों वह मन्दिर मुझसे कह रहा है कि भीतर चले आओ। डर के मारे मैं झट भाग कर भीतर चला गया। वहां जाकर क्या देखता हूं कि अद्भुत प्रकार की एक नारी सी स्त्रियों के बीच में बैठी है। उसका ऐसा प्रकाश कि मानों विधाता ने मेरी रक्षा रूपिणी महोषधि बना दियी हो जोकि प्रदोष काल में अपनी दीप्ति से शोभित रहती हैं। क्षण में जब मुझे सांस आयी तब मैंने पूछा सो वह बोली "मैं सुमित्रा नाम्नी यक्षिणी हूं, शाप से यहां बैठी हूं शापशान्ति का यह उपाय बता दिया गया है कि जब मनुष्य से सङ्गम होगा तो शाप से मुक्ति होगी, सो तुम अकस्मात् यहां आ गये हो मुझे भजो और निर्भय हो जाओ।" इतना मुझसे कह उसने दासियों से कहा कि स्नानादि विलेपनों से तथा वस्त्र और आहारादिकों से इनकी परिचर्य्या करो—सो उसने सब उपचारों से मेरी परिचर्य्या करवायी। भला कहां उन डाकिनियों से प्राणान्तक भय और कहां तत्क्षण ऐसा सुख! दैवकृत सुख दुःख का आपात भी अचिन्त्य है। अब उस यक्षिणी के साथ मैं सुख पूर्वक रहने लगा।

अब एक समय की बात है कि एकान्त में उस योगिनी ने मुझसे कहा "ब्रह्मन्! मेरा शाप अब दूर हो गया सो मैं तो अब यहां से चली मेरे प्रसाद से तुम्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त होवेगा, तुम तपस्वी होओगे और सदा निर्भय रहोगे तथा जिस योग की कामना करोगे वह तुम्हें प्राप्त हो जावेगा। तुम यहीं रहना परन्तु एक काम करना कि इस भवन में जो बिचला खण्ड है सो मत देखना।" इतना कह वह तो अन्तर्धान हो गयी।

मेरे मन में तो बड़ा कौतुक न हुआ कि भगवान् यह क्या बात है कि इसने मुझे इसमें देखने से मना किया है । देखना तो अवश्य चाहिये कि क्या है । बस इस कौतुक के शमनार्थ विचले खण्ड पर चढ़ा वहां एक घोड़ा मुझको देख पड़ा ज्योंही कि मैं उसके पास गया कि उसने एक लत्ती मारी बस क्षण भर में मैंने अपने को यहां इस शिवालय में स्थित पाया । बस तब से ही मैं यहां रहता हूं और क्रम से सिद्ध हो गया । सो इस प्रकार मुझ मानुष को भी तीनों कालों का ज्ञान है ।

इतनी कथा सुनाय वह ब्राह्मण फिर बोला कि इस प्रकार जो लोग बहुत क्लेश सहते हैं वे सिद्धि पाते ही हैं सो तुम यहीं रहो और भगवान् शङ्कर तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध करेंगे ।

इस प्रकार अपनी चर्य्या सुनाय गोमुख फिर बोला कि महाराज उस ज्ञानी का इस प्रकार सान्त्वनामय वचन सुन मैं वहीं रहने लगा और मुझे विश्वास हो गया कि जब त्रिकालज्ञ मुनि ऐसा कहते हैं तो अवश्य स्वामी से मेरी भेंट होगी सो मैं उन्हीं के आश्रम में रहा । आज स्वप्न में शङ्कर भगवान् ने आपकी प्राप्ति की बात सुनायी और वैसा ही हुआ भी कि आज कोई दिव्य स्त्री मुझे यहां उठा लायी । सो देव ! यही मेरा वृत्तान्त हैं ।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त कह जब गोमुख चुप हो बैठा तब नरवाहनदत्त के समक्ष मरुभूति कहने लगा—

जब कि मानसवेग मुझे फेंक कर चला गया उस समय कोई देवी मुझे हाथों पर उठा कर दूर जङ्गल में ले गयी और वहां छोड़ अन्तर्धान हो गयी । तब मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं मरने का उपाय सोंचने लगा । इसी उपाय में घूमता २ एक आश्रम में पहुंचा जो कि नदी किनारे था, वहां आश्रम के भीतर जाकर मैंने देखा कि चटान पर एक जटाधारी तापस बैठे हैं सो मैं उन्हें प्रणाम कर पास में चला गया । "तुम कौन हो ? और मानुष हो इस भूमि में कैसे आये ?" इस प्रकार तापस से पूछा जाकर मैंने अपना सारा वृत्तान्त सुना दिया । तब उस तापस ने अपने तपोबल से सब समझ मुझसे कहा "अब तुम आत्मघात मत करो; तुम यहीं रहो, तुम्हारे प्रभु का वृत्तान्त तुम्हें जब ज्ञात हो जाय तब जैसा उचित

समझना तैसा करना। अस्तु मैं उस तपस्वी के कहने से आपका वृत्तान्त कब सुनूं इसी आशा में वहां रहने लगा।

एक समय उस नदी में स्नान करने के हेतु बहुत सी दिव्य स्त्रियां वहां आयीं। उस समय तापस ने मुझसे कहा कि जाकर इन स्नान करती हुई स्त्रियों में से एक का वस्त्र तुम उठा लाओ बस उसी से तुम्हारे प्रभु का वृत्तान्त तुम्हें ज्ञात होगा। ऋषि का कथन सुन मैंने वैसा ही किया, बस वह बधू मेरे पीछे लगी, वस्त्र तो उसका हर ही लिया गया था, और जिस वस्त्र से वह स्नान करती थी वह भीग गया था, अपने हाथों से उसने दोनों स्तन ढांक लिये थे। तापस ने उससे कहा पहिले नरवाहनदत्त की वार्ता बतला तब कपड़ा लेना "तापस का ऐसा वचन सुन वह बोली—"आजकल नरवाहनदत्त कैलास पर भूतभावन की आराधना कर रहे हैं, थोड़े ही दिनों में वह सिद्ध होकर विद्याधरों के सम्राट् हो जावेंगे। उस तापस के संग वार्तालाप करने के कारण उस दिव्यनारी को शाप हो गया सो वह उसी की भार्य्या हो उसके साथ रहने लगी। उस दिव्य वधू के वचन से मुझे आपके मिलने का भरोसा हो गया सो मैं मिलने की आशा में वहीं रहने लगा।

कुछ दिनों में वह दिव्य वधू गर्भवती हुई और जब गर्भ का प्रसव हुआ तब वह दिव्य स्त्री उस तापस से कहने लगी 'महाराज! आपके सङ्ग से मेरा शाप छूट गया। आगे जब मेरे सङ्ग की वाञ्छा होवे तब इस गर्भ को चावलों के सङ्ग पका कर खाइयेगा और तब मुझे आप पावेंगे। "इतना कह वह दिव्य वधू चली गयी।

इतना कह जब कि वह दिव्य वधू चली गयी, उस तापस ने चावल के साथ वह गर्भ पकाया और खाया खाते ही वह तत्त्क्षण आकाश में उड़ कर उसके पास आ पहुंची। मुझसे भी उस तापस ने वह खाने कहा किन्तु मैंने खाया नहीं। आगे जब उसकी सिद्धि देखी तब तो मेरी आंखें खुल गयीं और तब मैं उस पाक के पात्र में खोजने लगा। खोजते २ मुझे दो चावल मिल गये, मैं उन्हें खा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं जहां २ थूकता तहां २ मेरे थूक सोना हो जाते। उस तापस के चले जाने से मैं खिन्न हो गया था सो वहां से चला गया। घूमता धामता एक नगर में पहुंचा वहां एक वेश्या के घर उतरा। मुझे किसी प्रकार की घटी तो थी ही नहीं हाथ खोल द्रव्य उड़ाता। कुटिनी को यह देख

बड़ा आश्चर्य हो गया कि यह कहां से इतने रुपये व्यय कर देता है कोई भेद अवश्य है। जब उसे यह ज्ञात हो गया कि मेरे निष्ठीवन से सोना बन जाता है तब उसके मन में यह चिन्ता हुई कि भगवान् इसके पेट में क्या पदार्थ हैं जिससे इसका थूक सोना हो जाता है। अस्तु वह घात में लगी रही। एक दिन उसने छल से कुछ ऐसा पदार्थ खिला दिया जिससे वमन हो जाय। बस तुरत वमन हुआ और मेरे पेट से पद्मराग के समान चमकते वे दोनों पहिले खाये हुए भात मुख से निकल पड़े। ज्योंही कि वे निकले कि कुटिनी उन्हें उठा कर खा गयी बस मेरी सिद्धि रसातल को चली गयी। श्रीभवानीपति शम्भु के मस्तक पर जो अर्द्धचन्द्र है और नारायण के पास कौस्तुभमणि है अब लों जो दोनों के पास ये दोनों विद्यमान हैं इसका कारण यही समझना कि अब लों किसी कुटिनी की दृष्टि उनपर नहीं पड़ी। और कहां लों कहा जाय ऐसा संसार ही छलछिद्रों से परिपूर्ण है, भेद इसका कौन जान सका है ? समुद्र के समान इसका पार पाना अत्यन्त दुष्कर है।

इस व्यापार से मेरा चित्त बाड़ा खिन्न हुआ, अब मैं सोचने लगा कि आप क्योंकर मिलें बस इसी विचार से दुर्गा जी के मन्दिर में जाकर उनकी आराधना में तपस्या करने लगा लगा। तीन रात जब मैं निरन्न और निरम्बु उपवास करता रह गया तब देवी ने स्वप्न में मुझे आदेश दिया कि तेरा स्वामी सिद्धकाम हो गया जाकर तू उसे देख। वह स्वप्न देखतेही मेरी नीन्द टूट गयी और प्रातःकाल में क्या देखता हूं कि कोई देवी मुझे आपके चरणों के पास उठा लायी। सो देव ! यही मेरी कथा है।

इस प्रकार उसका कुटनी से छला जाना सुन कर श्रीनरवाहनदत्त और उनके पार्श्ववर्ती हंसने लगे।

अब हरिशिख अपना वृत्तान्त सुनाने लगा। वह बोला, "देव जब कि शत्रु मुझे फेंक कर चला आया उस समय एक देवी मुझे उज्जयिनी में रखकर चली गयी। मेरी भी इच्छा प्राण त्यागने पर हुई सो इसी अभिप्राय से मैं श्मशान चला गया और वहां जो लुवाठी सुवाठी पड़ी थीं उन्हें चुन कर मैंने चिता बनायी। अग्नि लगा चिता प्रज्वलित कर पूजा करने लगा था कि इसी अवसर में तालजङ्घ नामक राजा

वहां आये और मुझसे कहने लगी, 'क्यों तुम जीते जी अग्नि में प्रवेश किया चाहती हो तुम्हारे प्रभु तो जीवित हैं। वह जब सिद्धि प्राप्त कर पूर्णकाम हो जावेंगे तब उनसे तुम्हारी भेंट होवेगी। यद्यपि वह बड़े क्रूर जीव हैं तथापि बड़ी प्रीति से उन्होंने मुझे मरण से निवृत्त किया। ठीक ही है जब कि विधाता सानुकूल रहते हैं तब पत्थर भी पिघल जाते हैं।

तब मैं देवालय में जाकर तपश्चर्या में लीन हुआ और आज कोई देवी मुझे आपके पास उठा लायी।

इस प्रकार हरिशिख जब अपनी कथा सुना चुप हो गया तब नरवाहनदत्त ने राजा अमितगति के द्वारा विद्याधरों की पूज्या धनवती से उन अपने सचिवों को भी वे सब विद्यायें सिखलवा दियीं।

तदनन्तर जब कि नरवाहनदत्त के सब सचिव भी विद्याधर हो गये उस समय धनवती ने श्रीनरवाहनदत्त को आज्ञा दियी कि जाकर शत्रुओं को जीतो। सो सिद्धकाम नरवाहनदत्त ने शुभ दिन में अपने सैनिकों को आदेश दिया कि चलो गौरिमुण्ड के गोविन्द कूट पर चढ़ाई करो। अब विद्याधरों की सेनाएँ चलीं जिनसे सूर्यनारायण छिप गये। उस समय विद्याधरों का वह बल कैसा भासता था जैसे शत्रु रूपी चन्द्र को राहु। उस पद्मविमान की कर्णिका पर श्री नरवाहदत्त स्वयं विराजमान हुए, उनकी भार्य्याएँ केसरों पर बैठीं और मित्र उनके पत्रों पर। चण्डसिंह आदि अग्रगामी हुए और विजय का डंका बजा सब लोग आकाश मार्ग से चले।

जाते २ जब आधा मार्ग सब लोग निकल गये तब धनवती का मातङ्गपुर नगर मिला। तहां पड़ाव पड़ा और धनवती ने सब की यथोचित परिचर्य्या कियी। वहीं युद्ध के अर्थ स्थित नरवाहनदत्त ने वहां से विद्याधरेश गौरीमुण्ड और मानसवेग के पास दूत भेज दिया।

दूसरे दिन उन्होंने अपनी पत्नियों को तो गोविन्दपुर ही में रख दिया और खुचरों के साथ युद्ध के लिये गोविन्दपुर को प्रस्थान किया। उधर से वे दोनों गौरीमुण्ड और मानसवेग भी युद्ध के अर्थ निकले और चण्डसिंहादि आगे से आकर भिड़ गये। इस समय उस गोविन्दकूट की उपमा एक पर्वत से दी जा सकती है जिस पर कि इस प्रवृत्त समर में भट जो गिरते हैं सोही मानों वृक्ष टूट २ कर

गिर रहे हैं और रुधिर जो बहता था सो मानों झरने झरते हों। उस समय वह संग्राम रूपी काल जीवों के भक्षण करने की इच्छा से वहां मानों आ पहुंचा है जिसका खड्ग मांस और लोहू से भरा हैं और लतारूपी जिसकी जीभ है । वह रणोत्सव भूत प्रेत का उत्सव मानों भया जिसमें मांस और लहू से मस्त बेताल ताल बजा रहे हैं और कबन्ध नृत्य कर रहे हैं ।

इस भयङ्कर आहव में मानसवेग श्रीनरवाहनदत्त के समक्ष आ गया सो यह उसपर बड़े क्रोध से दौड़े । चक्रवर्ती ने दौड़ कर उस पापी का केश पकड़ लिया और खड्ग से उसी क्षण उसका शिर काट डाला । मित्र की यह दशा देख अत्यन्त कोप कर गौरिमुण्ड दौड़ा, नरवाहनदत्त के सामने आते ही उसकी सारी विद्या भूल गयी उधर से नरवाहनदत्त उसपर दौड़ पड़े और उन्होंने उसे धरती पर पटक दिया तथा दोनों पांव पकड़ आकाश में घुमा कर चटान पर पटक चूर मूर कर डाला । इस प्रकार जब नरवाहनदत्त ने मानसवेग और गौरिमुण्ड को मार डाला तब दोनों की बची खुची सेना डर के मारे भाग गयी। अब ऊपर से देवता लोग उस चक्रवर्ती के ऊपर आकाश से फूल बरसाने और धन्य २ कहने लगे ।

अब चक्रवर्ती श्रीनरवाहनदत्त अपने सब मन्त्रियों तथा सहचर उन राजाओं के साथ गौरिमुण्ड की राजधानी में पैठे, उसी समय गौरीमुण्ड के सम्बन्धी सब विद्याधराधीश्वर निकल २ सम्मुख आ २ कर उक्त सम्राट् के चरणों पर गिरे और उनका अनुशासन मान उनके अनुगामी हुए । उस समय राज्य प्राप्त करने का बड़ा भारी उत्सव मनाया गया ।

इसी अवसर पर धनवती वहां आयी और चक्रवर्ती श्रीनरवाहनदत्त से कहने लगी—' देव ! गौरिमुण्ड की दुहिता त्रैलोक्यसुन्दरी आत्मनिका नाम्नी हैं सो उससे आप विवाह कर लेवें । इतना सुनते ही राजा ने तुरन्त उस कन्या को वहां बुला भेजा और उसके साथ विवाह कर लिया, विवाहोत्तर उसके साथ उन्होंने वह दिन बड़े आनन्द और मङ्गल के साथ बिताया । प्रातःकाल होने पर उन्होंने वेगवती और प्रभावती को भेज कर मानसवेग के नगर से मदनमञ्चुका को बुलवा मंगवाया । हर्ष के आंसू से गद्गद हो गया है स्वर जिसका ऐसी मदनमञ्चुका आय अपनें पति को उदय गिरि पर विराजमान तथा जिन्होंने शत्रु रूपी अन्धकार का

नाश कर दिया, बिरह रूपी रात्रि के उपरान्त दैदीप्यमान मार्त्तण्ड के समान अपने पति को देख अति प्रमुदित और प्रफुल्लित हुई जैसे कुहिरे के नष्ट हो जाने पर सूर्य को देखकर कमलिनी प्रस्फुटित होती है । नरवाहनदत्त बहुत दिनों से अपनी प्रिया के विरहानल से सन्तप्त थे आज पाकर ऐसे हर्षित और आह्लादित हुए कि कुछ कहा नहीं जाता। उन्होंने उसी चण सारी विद्या उसे सिखा दियी और उस दिन बड़े आनन्द के साथ उसके संग रमण किया। अब वह गौरिमुण्ड के नगर के उद्यान में रह कर नाना प्रकार के आनन्दोत्सव अपनी सब भार्य्याओं के साथ मनाते हुए रहने लगे। कुछ दिनों के उपरान्त प्रभावती को भेज कर भगीरथयशा को भी बुला भेजा और उसे भी सब विद्याएँ सिखा दियीं।

अब एक समय की बात है कि चक्रवर्ती श्रीमान् नरवाहनदत्त सभा के बीच विराजमान थे कि उसी अवसर में दो विद्याधर आकर यथवात् प्रणाम कर उनसे कहने लगे "देव ! हम दोनों धनवती के कहने से मन्दरदेव के व्यापार ज्ञानार्थ उत्तर वेदार्ध में गये थे। वहां हम लोग छिप कर सब वृत्तान्त देखने सुनने लगे। वहां हम दोनों ने विद्याधरेश्वर को देखा, वह सभा में बैठ कर एक दिन आपके विषय में ऐसा कहते थे "मैंने सुना कि विद्याधर का चक्रवर्त्तित्व प्राप्त कर नरवाहनदत्त ने गौरिमुण्ड आदिकों को संहार किया सो हम लोगों को उपेक्षा न करनी चाहिये क्योंकि रिपु को उठते ही मार डालना चाहिये।" यह वचन उक्त विद्याधरेश्वर का सुन हम दोनों यहां आपसे कहने आये हैं।"

चारों के मुख से ऐसा वचन सुन सारी सभा में कोप के कारण खलबली मच गयी जैसे नलिनी वन में वायु बहने से गड़बड़ी मच जाती है । चित्राङ्गद के दोनों भुज फिर फड़फड़ाने लगे मानों बाहु के भूषण खड़खड़ा कर यह सूचना देते हैं कि शत्रु कहां हैं आवें साम्हने तो उनकी भी देखी जाय। अमितगति कोप के मारे उर्द्ध्वश्वास छोड़ने लगे जिनके वक्षस्थल पर लटकता हुआ उनका हार हिलने लगा मानों उन्हें यह चितौनी देता है कि ऐ वीर बैठे क्यों हो ! उठो, उठो। पिङ्गलगान्धार अपने हाथ से धरती पीटने लगे मानों बैरियों के चूर्ण करने के लिये ओकार कर रहे हों वायुपथ की भी भौहें चढ़ गयी मानों कोप ने शत्रुओं के नाश के लिये चापलता ठानी हों । चण्डसिंह मारे क्रोध के हाथ से हाथ रगड़ने लगे

मानों यह सूचित करते हैं कि इसी प्रकार शत्रुओं को रगड़ डालूंगा । सागरदत्त के दोनों हाथों के मर्दन से आकाश गूंज उठा मानों यह सूचित होता है कि शत्रुओं को पुकारते हों। नरवाहनदत्त यद्यपि कुपित थे तथापि स्थिर बने रहे। ठीक है बड़ों के महत्व का लक्षण अक्षोभ्यता ही है। विद्याधरों के चक्रवर्ती ने सब प्रकार से अपने अङ्ग सजा कर शत्रु के जीतने के लिये यात्रा का निश्चय किया।

अब इसके उपरान्त चक्रवर्ती अपनी भार्य्याओं तथा अपने सचिवों के संग उस विमान पर आरूढ़ हुए और गोविन्द कूट से प्रस्थानित हुए । वे सब गन्धर्वराज और विद्याधराधिप अपनी २ सेना के संग उन्हें घेर कर चले मानों चन्द्र को सब ग्रह घेरे हुए हों। धनवती उन सभों के आगे २ चलीं। इसर प्रकार चलते २ सब लोग हिमालय पर पहुंचे तहां एक बड़ा भारी सरोवर मिला जिसमें श्वेत पद्म लहरा रहे हैं वेही मानों छत्र चमर रूपी भेंट लेकर सम्राट् के समक्ष उपस्थित हुआ है। वायुवेग से जो लहरें उठ रही हैं सो यह सूचित करती हैं कि वह सरोवर हाथों से सङ्केत करता है कि हे सम्राट् साम्राज्य की संसिद्धि का स्नान कीजिये।

इस अवसर पर वायुपथ ने नरवाहनदत्त से कहा कि चन्द्रवर्तिन् इस सरोवर में आपको स्नान करना उचित है। उनका कथन सुन नरवाहनदत्त ज्योंही नहाने के लिये उतरे कि आकाशवाणी हुई "जो चक्रवर्ती नहीं होता उसका इसमें स्नान करना असम्भव है सो आज इसमें स्नान करने से तुम्हारा चक्रवर्त्तित्व सिद्ध हो गया।" आकाशवाणी सुन चक्रवर्ती उस सरोवर के जल में अपने रनिवास के साथ बड़े आनन्द से जल क्रीड़ा करने लगे जैसे वरुण समुद्र में । उन ललनाओं के नेत्रों के अञ्जन घुल गये और जूड़े के बन्धन ढीले हो गये; वस्त्र भींग कर समस्त अङ्ग में सट गये, ऐसी उन प्रमदाओं के साथ वह चक्रवर्ती नरवाहनदत्त क्रीड़ा करते रहे। उस समय सरोवर से जो पक्षी उड़ते थे उनसे यह शोभा होती थी कि मानों उसकी श्री नरवाहनदत्त के पास जा रही है और पक्षियों के उड़ने में जो शब्द होता था वही मानों श्री के घुंघुरू बज रहे हैं। जल की लहरों से उस सरोवर के कमल जल के भीतर डूब जाते थे मानों नरवाहनदत्त की रानियों के मुखारविन्द निरख वे लज्जित हो मुख छिपा रहे हैं। इस प्रकार स्नान कर नर-

वाहनदत्त ने उस दिन वहीं पड़ाव किया। नाना प्रकार के हास्यमय कथोपकथन से वह दिन व्यतीत हो गया।

प्रातःकाल होने पर सब लोग वहां से चले। इसमार्ग में वायुपथ का नगर पड़ा सो उनके अनुरोध से श्री नरवाहनदत्त अपने सब सहचर वर्गों के साथ एक दिन रह गये। वहां उद्यान में वायुवेग की बहिन वायुवेगयशा नाम्नी कन्या उन्हें दिख पड़ी और उसपर इनके दांत गड़ गये। वह स्वर्णबालुकायुक्त नदी तीर के उद्यान में विहार करनेवाली पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली सौम्य आलाप कर मन हरनेवाली। हँसती तो मानों चन्द्रिका छिटक जाती, जिसके नितम्ब अत्यन्त गुरु, उत्तम ग्रह जिसके पड़े हों ऐसे लक्षण जिसके सूचित होते हों एतादृशी वह ललना यद्यपि नरवाहनदत्त में अनुरक्त थी तथापि उन्हें वहां प्राप्त देख अन्तर्धान हो गयी। उसके इस व्यापार से नरवाहनदत्त कुछ उदासीन हो गये, उनके मन में यह बात आयी कि अवश्य इसमें कुछ कारण है जिससे यह मुझसे विमुख हुई है, अस्तु वह इसी सोच विचार में अपने डेरे को लौट आये। वहां गोमुख के चातुर्य से सहस्थित मरुभूति के द्वारा महाराज का वह वृत्तान्त जान सब देवियां सम्राट् का उपहास करने लगीं, मरुभूति की मूर्खता से गोमुख लज्जित हो रहा। उस उपहास से राजा का मुख नीचा हो गया वह बड़े ही लज्जित हुए। उस समय बड़ी सांत्वना देखकर गोमुख वायुवेगयशा के चित्त का व्यापार जानने के लिये उसके नगरमें गया। इधर से यह पहुंचा है उधर से वायुपथ भी अकस्मात् अपनी पुरी में आविराजे सो वह बड़ी प्रीति से इसके आतिथ्य में प्रवृत्त हुए। आतिथ्य करने उपरान्त एकान्त में ले जाकर गोमुख से कहने लगे 'भाई! मेरी बहिन वायुवेगयशा नाम्नी एक कन्या है, सिद्धों ने कह रक्खा है कि वह चक्रवर्ती की भार्य्या होगी। सो भाई मैं नरवाहनदत्त को उसे दिया चाहता हूं अतः तुम्हारी सहायता अपेक्षित है। अब ऐसा करो जिससे मेरा यह मनोरथ सिद्ध हो जावे। मैं इसी उद्देश्य से तुम्हारे पास आनेवाला भी था।" वायुवेग का एतादृश वचन सुन परमप्रवीण वह मन्त्री गोमुख बोला, "भाई इस समय कैसे क्या किया जाय, हमारे प्रभु तो शत्रु पर चढ़ाई करने जा रहे हैं इससे अवसर तो नहीं है तथापि तुम आकर उनसे कहो मैं यथासाध्य तुम्हार कार्य सिद्ध कर दूंगा।" वायुपथ से इतना कह गोमुख श्रीनर-

वाहनदत्त के पास लौट आया और बोला कि देव ! आपका कार्य मैं सिद्ध कर आया । यह तो उसने कहा परन्तु अभ्यर्थनावाली बात न कही ।

दूसरे दिन वायुपथ स्वयं वहां उपस्थित हुए और इधर उधर की बातों के उपरान्त उन्होंने अपना अभिप्राय उनपर प्रगट किया । उस समय अति चतुर मन्त्री गोमुख ने श्रीनरवाहनदत्त से निवेदन किया कि देव ! आपको वायुपथ की अभ्यर्थना का भङ्ग करना उचित नहीं है, यह आपके भक्त हैं सो प्रभो यह जो कहैं सो करना चाहिये । सम्राट् इसपर सहमत हुए । अब वायुपथ ने अपनी बहिन, यद्यपि वह नहीं चाहती थी, तथापि लाकर श्रीनरवाहनदत्त को दे दियी । विवाह होते समय वायुवेगयशा बोली "हे लोकपालो मैं विवाह नहीं किया चाहती, यह मेरे भाई बलपूर्वक मेरा विवाह करा रहे हैं इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है ।" इस समय वायुपथ की ओर स्त्रियों ने ऐसा कोलाहल मचाया कि दूसरे लोग उसका वह वचन न सुन सके ।

विवाह तो हो गया अतः नरवाहनदत्त की मनस्कामना पूरी हो गयी किन्तु उन्हें अब लों उस बात का पता न लगा कि वह क्यों वहां से अन्तर्धान हो गयी तथा अब लों क्यों ऐसी लज्जावती बनी है । सो उन्होंने गोमुख से कहा कि भाई इसका पता तो लगाते कि बात क्या है । अस्तु गोमुख उस कारण के निकालने के हेतु इधर उधर घूमने लगा । घूमता २ वह एकान्त स्थान में पहुंचा तहां क्या देखता है कि चार विद्याधरकुमारियां एक साथ अग्नि में प्रवेश करने पर उद्यत हैं । गोमुख ने उनसे पूछा कि तुम सब यह क्या करती हो ? उन चारों ने वायुवेगयशाकृत प्रतिज्ञाभङ्ग की बात कह सुनायी । अब गोमुख राजा के पास तुरन्त लौट आया और सबों के समक्ष वह वृत्तान्त यथावत् कह गया । यह सुन नरवाहनदत्त अति विस्मित हो गये ।

इसी अवसर पर वायुवेगयशा बोल उठी "आर्यपुत्र ! उठिये, चटपट चलें हम सब वहां चल कर उन कुमारियों की रक्षा करें । इसमें क्या कारण है सो पीछे बतलाऊंगी ।" उसका कथन सुन राजा तत्क्षण उसके तथा और सब लोगों के साथ वहां गये तो क्या देखते हैं कि सामने आग प्रज्वलित कर वे कुमारियां खड़ी हैं । अब उन सभों को पकड़ कर वायुवेगयशा राजा से इस प्रकार कहने लगी "आर्य-

पुत्र ! यह एक जो है सो कालकूटपति की दुहिता है इसका नाम कालिका है; यह दूसरी विद्युत्पुञ्जा श्रीविद्युत्पुञ्ज की बेटी है; यह तीसरी मन्दर की पुत्री मतङ्गिनी है और यह चौथी महादंष्ट्र की सुता पद्मप्रभा नाम्नी है। पांचवी मैं हूं। हे प्रभो ! जब आप सिद्धक्षेत्र में तपस्या कर रहे थे तब हम पांचों आपको देखकर कामदेव के वश में पड़ गयीं। सो हम सभों ने आपस में यह प्रतिज्ञा कियी कि हम पांचों एक साथ इन्हें पति करें, कोई पृथक् होकर इन्हें आत्मसमर्पण नकरे। यदि एक पृथक् होकर इनसे विवाह कर लेवे तो हम चार उस सखी की दोही पर अग्नि में जल मरें। बस प्रभो ! प्रतिज्ञा से डर कर मैं पृथक् विवाह नहीं किया चाहती थी और यही कारण है, आर्यपुत्र ! कि मैं अब लों भी आपको आपना शरीर अर्पण नहीं कर रही हूं; प्रभो ! इस विषय में समस्त लोकपाल मेरे साक्षी हैं कि अपनी सखियों के साथ की यह प्रतिज्ञा मैंने इच्छापूर्वक नहीं टाली। सो मेरे प्राण ! अब आप इन मेरी सखियों को व्याह लेवें। और हे सखियो ! तुम भी अपने मनमें कुछ ऐसा न समझना कि मैंने तुम से विलग हो इच्छापूर्वक विवाह कर लिया।" वायुवेगयशा का एतादृश कथन सुन वे कुमारियां मरण से निवृत्त हो परस्पर गले लग मिलीं और राजा भी बड़े प्रसन्न हुए। उन चारों कुमारियों के पिता यह वृत्तान्त जान वहां आ विराजे और सभों ने अपनी २ कन्या नरवाहनदत्त को व्याह दियी। और उसी समय उन कालकूटपति प्रमुख विद्याधरेश्वरों ने अपने जामाता सम्राट् नरवाहनदत्त का शासन धारण कर लिया। अब एक ही साथ पांच महाविद्याधरों की पुत्रियों को पाकर नरवाहनदत्त बड़े महिमान्वित हो गये और वह उनके साथ परमआनन्द और सुख का उपभोग करते हुए रहने लगे।

इस प्रकार जब बहुत दिन बीत गये तब एक दिवस सेनापति हरिशिख ने उनसे कहा "देव ! आप तो सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हैं पर अब न जानें क्यों नीति का उल्लङ्घन कर बैठे हुए हैं। इस विग्रह के समय में यह आपका कामभोगरस कैसा ! कहां यह मन्दर देव के जीतने के लिये अभियान और कहां अब इतने दिनों का अन्तःपुर के लोगों के साथ बिताना।" हरिशिख की ऐसी सीख सुन महाराज बोले, "भाई तुमने ठीक कहा, यहां तो उपभोग के लिये मेरा कुछ प्रयत्न नहीं

है । यह तो भार्य्याओं के बहाने से बन्धुओं की प्राप्ति है यही शत्रु के मर्दन में मुख्य अङ्ग है इसी से मैंने आनन्द मनाया । अस्तु अब ये सैन्य शत्रु जीतने चलें।" इस प्रकार कहकर जब राजा चुप हो रहे तब उनके ससुर मन्दर बोले, "देव ! मन्दरदेव कुछ ऐसा वैसा नहीं है कि सहज ही में जीत लिया जाय । जब लौं कोई जन चक्रवर्ती के अङ्गस्वरूप समस्त रत्नों से युक्त नहीं होता तब लौं उसको नहीं जीत सकता वह बड़ी दूर तथा दुर्गमभूमि में वास करता है । त्रिशीर्षाख्य गुहा, रक्षकों से सम्यक् रक्षित है जिसके द्वार पर देवमाय नामक एक महा वीर रक्षक बैठा रहता है । सो जो कोई चक्रवर्ती सब रत्न सिद्ध कर लेवे वही तो उस गुहा पर आक्रमण कर सकता है । सो देव ! चक्रवर्तियों के लिये रत्नरूप जो वह चन्दन का पेड़ धरातल पर है उसे अभीष्टसिद्धि के हेतु आप सिद्ध करें । उसका लक्षण यही है कि जो चक्रवर्ती नहीं होता वह उस वृक्ष के नीचे जा ही नहीं सकता।"

इस प्रकार मन्दर का कथन सुन नरवाहनदत्त आहार त्याग कर संयम से व्रत में रहे और रात्री के समय उस चन्दन वृक्ष के पास गये । मार्ग में अनेक प्रकार के विघ्न उठे जिनसे बड़े २ वीरों का धैर्य छूट जाय किन्तु नरवाहनदत्त कुछ भी भीत न हुए और चले २ उस महातरु के मूल में पहुंच गये । उस महारत्न को देखते हैं कि जिसकी जड़ में बड़ी ऊंची वेदी (१) बनी हैं सो वह सीढ़ियों पर चढ़ ऊपर गये वहां जाकर उन्होंने उस चन्दन द्रुम की वन्दना कियी । उस समय उस पेड़ से यह वाणी निकली, "चक्रवर्तिन् ! मैं चन्दन द्रुम सिद्ध हो गया, अब जब तुम मुझे स्मरण करोगे मैं तत्क्षण वहां तुम्हारे पास उपस्थित हो जाऊंगा । सो अब तुम यहां से गोविन्दकूट को जाओ वहां और २ रत्न भी तुम्हें सिद्ध हो जावेंगे और तब तुम मन्दरदेव को बात की बात में जीत लेओगे ।" तब राजा नरवाहनदत्त उस रात्रि में अशरीरा वाक् की आज्ञा पाय 'तथास्तु' ऐसा बोले और सिद्धि प्राप्त कर उस दिव्य वृक्ष को प्रणाम कर बड़े ही आनन्द और हर्ष के साथ अपने कटक में आ विराजे ।

(१) चबूतरा ।

सोरठा।

एहि विधि रात बिताय, प्रात बैठि आस्थान (१) मधि॥
कह्यो कथा समुझाय, जेहि विधि निशि चन्दन सध्यौ॥ १॥

शार्दूलविक्रीड़ितम्।

सो सुनकै दयितारु बाल सचिवा औरौ जु विद्याधरा।
ते ते वायुपथादि सैनिक सहित चित्राङ्गदादिक तथा॥
ये गन्धर्व हुए प्रमोदयुत ता सिद्धी कि सुन बारता।
सत्वोत्साह प्रभाव धैर्य तिनको लागी प्रशंसै तबै॥ १॥

वसन्ततिलकम्।

सम्मान्लणा करि जु मन्दरदेव दर्पैं,
जीतन हितै नृप सो दिव्य विमानगामी॥
शेषान्य चन्दनतरूदित रत्न साधन (२)
गोविन्दकूट गिरि को कियऊ पयानू॥

पद्मनामक चौदहवां लम्बक समाप्त हुआ।

(१) सभा

(२) चन्दन वृक्ष के बताये हुए जो और २ बचे हुए रत्न उनके प्राप्त करने के लिये।

॥ श्रीः ॥

कथासरित्सागर का हिन्दी अनुवाद ।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित ।

महाभिषेक नामक पन्द्रहवां लम्बक ।

सवैया ।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालविनैबल पाई ।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा वसुधा मँह छाई ।
प्रेम समेत पियै जो कोई बलवीर भनै बलि ईस दुहाई ॥
पावहि सो जगदीस कृपा ते अनन्द अमन्द बड़ी विबुधाई ॥

पहिला तरङ्ग ।

दोहा ।

रजनी महँ अति हर्ष सो, नाचत शुण्ड पसार ॥
ताशीकर सन सींचते, वतसपतीपरिवार ॥ १ ॥
अस शुभकारक गणपती, विघ्नविनाशनहार ॥
तुम्हारे पथ को सर्वदा, नाश करैं अँधियार ॥ २ ॥

अब चक्रवर्ती नरवाहनद गोविन्दकूट पर्वत पर अपनी सभा में विराजमान थे कि वह अमृतप्रभ विद्याधर आकाश मार्ग से उनके पास आया जिसने कि शत्रु से फेंके हुए इनकी रचा अग्निपर्वत पर पूर्व में कियो थी। आकर उसने प्रणाम कर अपना परिचय दिया। उस समय चक्रवर्ती नरवाहनदत्त ने उसका आतिथ्य किया तब वह विद्याधर कहने लगा: —

महाराज! दक्षिण दिशा में मलय नामक एक बड़ा पर्वत है तहां आश्रम में वामदेव नामक एक महर्षि रहते हैं सो वह किसी कार्य्य के हेतु आपको अकेले बुलाते हैं बस इसी लिये उन्होंने मुझे भेजा है। आप मेरे पूर्व प्राप्त प्रभु हैं बस इसी नाते से मैं आया हूं, सो आइये हम शीघ्र ही उक्त मुनि के पास चलें।

इतना उस विद्याधर का कथन सुन नरवाहनदत्त अपनी भार्य्या और सेनाओं को वहीं रख उसी विद्याधर के साथ झट आकाश में उड़े और उसी मार्ग से चले २ मलयाचल पर पहुंचे और वामदेव ऋषि के पास गये। जाकर देखते हैं तो वह महर्षि बहुत वृद्ध ऐसे कि बुढ़ौती के कारण सारा शरीर पीला हो गया है, लम्बा डील, नेत्रों के गड्ढे माँसहीन हैं केवल पुतलियां फिर रही हैं। विद्याधरेन्द्र रत्नों के मानों आकर हैं जटारूपिणी लतायें लहरा रही हैं मानों सिद्धि के माहात्म्य के हेतु से हेमाद्रि चले आये हों। नरवाहनदत्त ने जाकर मुनि के चरणों में अपना मस्तक नवाया और मुनि भी उनका उचित आतिथ्य कर इस प्रकार कहने लगे—

पूर्वकाल में भगवान् शङ्कर ने कामदेव को भस्म कर डाला पश्चात् रति की स्तुति से तुष्ट होकर उसको वर दिया और सब विद्याधरों के चक्रवर्ती रूप में उसे बनाया सो तुम वही कामदेव हो इस समय समस्त विद्याधरों के चक्रवर्ती हो। अब बात यह है मेरी इस गम्भीर गुहा के भीतर अनेक रत्न हैं सो मैं आज्ञा देता हूं तुम उन्हें सिद्ध कर लेओ। जब तुम सब रत्नों को सिद्ध कर लेओगे तभी मन्दरदेव को जीत सकोगे, सो भगवान् महादेव के आदेश से मैंने तुमको यहा बुलाया है। इतना कहकर उस मुनि ने उन रत्नों के सिद्ध करने की विधि उन्हें बतला दियी।

अब नरवाहनदत्त अति प्रसन्न हो रत्नों की सिद्धि के अर्थ उस गुहा में पैठे, तहां नाना प्रकार के विघ्न उठे, वह वीर सब को जीतते गये। आगे जाकर क्या देखते हैं कि एक मत्त गजेन्द्र, जिसके गण्ड से मद बह रहा है, चिंघाड़ता हुआ चला आ रहा है। राजा मुख पर एक घूंसा मार दांतो पर दोनों पांव पर निबुक के उस गजेन्द्र पर चढ़ गये। उसी समय उस गुहा में से एक वाणी निकली कि महाराज भले ही इस महारत्न गजेन्द्र को सिद्ध किया। इतने ही में पर्वताका

एक खड्ग दीख पड़ा सो उन्होंने झुक कर उसे भी पकड़ लिया मानों चक्रवर्तित्व की लक्ष्मी का जूड़ा पकड़ लिया । उस समय उस गुहा में फिर आकाशवाणी हुई कि धन्य महाराज तुमने यह शत्रुञ्जय खड्ग रत्न भी सिद्ध कर लिया । तत्पश्चात् चन्द्रिका रत्न और कामिनी रत्न तथा विध्वंसिनी नामक विद्यारत्न भी साध लिया । इस प्रकार प्रथम दोनों, सरोवर तथा चन्दन के साथ कार्यकाल पर उपयोग देने वाले तथा महिमादेनेवाले सात रत्न सिद्ध कर गुहा से निकले और उन्होंने जाकर जैसे उन्हें सिद्ध किया था सो कह सुनाया । सो सुन महामुनि बोले "पुत्र ! महाचक्रवर्ती के रत्न सब तुम्हें सिद्ध हो गये अब तुम जाओ और कैलास के उत्तर भाग में रहनेवाले मन्दरदेव को जीतो तथा उस पर्वत के दोनों भागों में समृद्ध साम्राज्य का उपभोग करो ।"

सिद्धकार्य्य महाराज चक्रवर्ती नरवाहनदत्त मुनि का ऐसा कथन सुन उन्हें प्रणाम कर अमृतप्रभ के साथ वहां से चले और आकाशमार्ग से गोविन्दकूट में अवस्थित अपने शिविर में बात की बात में आ पहुंचे जहां महाप्रभावा धनवती सास अपने बल से रक्षा कर रही थी । सब विद्याधर, भार्य्याएँ तथा मन्त्री उनकी बाट जोह रहे थे, उनके आते मानों आनन्दसागर उमड़ आया, सब लोग हर्ष मनाने लगे । जब कि वह अपने आसन पर विराजमान हुए चहुंओर से लोग घिर आये और वहां का वृत्तान्त पूछने लगे सो नरवाहनदत्त वामदेव महर्षि के दर्शन, गुहा में प्रवेश और तहां रत्नों की सिद्धि यथावत् वर्णन कर गये । इस आनन्द में वहां अब महोत्सव मच गया दिव्य तूर्य बजने लगे, विद्याधरियां नाचने लगीं, नाना प्रकार के खान पान का समायोग हुआ उस समय दिव्य पान में सब लोग छकाछक थे ।

अब दूसरे दिन विजय का लग्न साधा गया, जब रिपुस्थान में अशुभग्रह पड़ें और आक्रमणकारी के आत्मस्थान में शत्रु की कण्टकस्वरूप तथा अपनेको समृद्धि देनेवाले शुभग्रह पड़े हों, जिस लग्न का ऐसा प्रभाव कि इसमें प्रस्थानकारी सब सम्पत्तियों से युक्त हो जावे । ऐसे शुभलग्न में चक्रवर्ती श्री नरवाहनदत्त अपनी भार्य्याओं के साथ ब्रह्मनिर्मित शर्वदत्त उस बिमान पर आरूढ़ हुए और अपने सैन्यों के साथ आकाशमार्ग से मन्दरदेव को जीतने चले । उस समय मङ्गलामुखियों ने मङ्गल

कार्य सम्पन्न किये। बीच में उनका विमान चला और समस्त सहचरवर्ग उन्हें घेर कर चले, इनमें से कुछ लोग तो डर गये थे और सब लोग महाराज के भक्त थे। सब के सब लोग सेनापति हरिशिख की आज्ञा के माननेहारे। चण्डसिंह अपनी माता बुद्धिमती धनवती के साथ, वीर पिङ्गलगान्धार, बलवान् वायुपथ, विद्युत्पुञ्ज अमितगति, तथा कालकूटपति, मन्दर, महादंष्ट्र, उनके मित्र अमृतप्रभ; सागरदत्त के साथ वीर चित्राङ्गद, ये सब तथा और २ भी जो कि गौरिमुण्ड की ओर के आ गये थे वे सब सैन्य महाराज नरवाहनदत्त के पीछे २ विजय के हेतु दौड़े। उस समय नरवाहनदत्त की सेना से आकाश ऐसा अच्छादित हो गया कि भास्कर के दर्शन दुर्लभ लों गये मानों नरवाहनदत्त के तेज से लज्जित होकर कहीं जाकर छिप रहे।

अब मानसरोवर का उल्लङ्घन कर जहां कि देवर्षिगण सदा तपस्या में लीन रहते हैं, गण्डशैल में पहुंचे जोकि अप्सराओं का लीलोद्यान है तहां से कैलासपर्वत की तराई में पहुंचे जो कि स्फटिकमणियों की बहुतायत से पाण्डुरवर्ण प्रतीत होती थी, और महाराज नरवाहनदत्त के यश की ढेरी है। यहां मन्दाकिनी नदी के तीर पर नरवाहनदत्त उपविष्ट हो गये तहां विद्याधराधिप बुद्धिमान् मन्दर ने बान्धवोचित वचन श्रीमान् नरवाहनदत्त से कहा "देव! आज यहीं दिव्यसरित् के तीर पर पड़ाव डालना चाहिये, इस कैलास को आगे डांक कर जाना उचित नहीं है क्योंकि यह भगवान् त्रिपुरारि का वासस्थान है इसका उल्लङ्घन कर जाने से सब विद्याएँ नष्ट हो जाती हैं सो उक्त पर्वत की त्रिशीर्ष गुहा से होकर उत्तर भाग में जाना चाहिये। देवमाय नामक राजा वहां रहा करता है वह अत्यन्त अहङ्कारी है सो जब लों वह जीता न जावे आप क्योंकर जा सकते हैं। मन्दर का ऐसा कथन सुन जिसमें धनवती का अनुमोदन था, महाराज नरवाहनदत्त एक दिन वहीं टिक रहे। वहीं से उन्होंने देवमाय के पास दूत भेज दिया कि जिससे शान्तिपूर्वक काम निबह जाय पर भला वह कब सान्त्वना माननेवाला! भाव यह कि उसने दूत का शासन नहीं माना।

अब दूसरे दिन कटक सन्नद्ध कर समस्त राजाओं के साथ चक्रवर्ती प्रभु नरवाहनदत्त देवमाय पर चढ़ गये। देवमाय को जब यह ज्ञात हुआ तब वह भी

अपनी सेना लेकर युद्ध करने के हेतु निकल आया, बराह वज्रमुष्टि आदि बहुतेरे राजन्यवर्ग उसके आगे चले। अब दोनों सेनाओं में ललकार ललकार युद्ध होने लगा। इस संग्राम के देखने के लिये अपने २ विमान पर चढ़ देवगण आकाश में आ विराजे। अब घोर संग्राम होने लगा। इस समय उस रण की उपमा महाघोर मेघ से दी जा सकती है जिसमें वीरों के शिर जो कट २ गिरते हैं सो ही मानों ओले बरस रहे हों और वीरों का जो सिंहनाद गर्जन है सो ही मेघों का गर्जन है। देवमाय के सेनापति बराह को जो कि आगे युद्ध करता था चण्डसिंह ने मार गिराया यह कार्य कुछ आश्चर्य नहीं माना गया। आश्चर्य तो यह है कि देवमाय, जो कि समस्त माया जानता है, मायाज्ञानशून्य नरवाहनदत्त के द्वारा प्रहारों से मूर्छित कर बांध लिया गया। जब कि देवमाय बांधा गया उसी समय वज्रमुष्टि महाबाहु तथा तीक्ष्णदंष्ट्र प्रभृति महारथियों के साथ सेना तितर बितर हो गयी अब आकाश से देवता लोग जयकार कर फूल बर्साने लगे और विजयी चक्रवर्ती पर सबों ने आनन्द मनाया। जब कि वह बांध कर महाप्रभु के समक्ष लाया गया तब उन्होंने उसपर अनुग्रह कर समझा कर उसे छोड़ दिया अतः पराजित होकर देवमाय ने भी अपने अनुगामो वज्रमुष्टि प्रभृति के साथ चक्रवर्ती नरवाहनदत्त का शासन स्वीकार कर लिया।

अब संग्राम बन्द हो गया और सब लोग अपने २ स्थान को जाय विश्राम करने लगे। वह दिन बीता और दूसरे दिन देवमाय चक्रवर्ती के पास आया। उस समय नरवाहनदत्त ने उससे त्रिशीर्ष गुहा का इतिहास पूछा सो वह देवमाय यथावत् इस प्रकार वर्णन करने लगा:—

देव! पूर्वकाल की बात है कि साम्राज्य में विभक्त दक्षिण और उत्तर करके कैलास के भाग थे जिनपर श्रेष्ठ विद्याधर वास करते थे। कुछ कालोपरान्त ऋषभ ने तपस्या कर शम्भु भगवान् को सन्तुष्ट किया सो आशुतोष ने प्रसन्न होकर कहा कि तूही दोनों भागों का चक्रवर्ती होगा। सो वह उत्तर भाग में जाने के लिये कैलास पर से होकर चला सो कैलास लांघने से गौरीश को कोप आया बस उसी कारण से वह नीचे गिर पड़ा और उसकी सारी विद्या लुप्त हो गयी तब तो वह घबड़ाया और बड़ी क्रूर तपस्या कर पुनः भूतनाथ के प्रसन्न करने की चेष्टा करने

लगा। अब वह सन्तुष्ट हो गये और पुनः पूर्ववत् उसे भगवान् ने साम्राज्य आ बर दे दिया। तब तो अवसर पाय ऋषभ ने निवेदन किया कि भगवान् कैलाश का उल्लङ्घन तो हम लोगों के वश में नहीं है तो कहिये किस मार्ग से जाकर मैं दोनों भागों का चक्रवर्ती हो सकता हूं। तब पिनाकभृत् ने उसका ऐसा निवेदन सुन उसके गमन के हेतु कैलास को भेद कर एक गुहाविवर बड़ा भारी बना दिया। इस वेध से कैलास बड़ा व्याकुल हुआ और शिवशङ्कर से कहने लगा, "भगवन् यह जो मेरा उत्तर पार्श्व है वहां मानुष का जाना अगम्य है अब आपने गुहा बना कर उनके लिये सुगम बना दिया तो कहिये अब मेरी मर्यादा कहां रही ? अतः आप कोई ऐसा उपाय कर दीजिये कि मेरी मर्य्यादा बनी रहे।" कैलास का इतना कथन सुन भगवान् शङ्कर ने दिग्दन्ती को और ऐसे सर्पों को कि जिनके नेत्रों में विष हो, तथा गुह्यकों को इस गुहा के रक्षक ठहरा दिया। दक्षिण द्वार में महामाय नामक विद्याधरेश्वर को और उत्तर द्वार में कालरात्रि तथा अपराजिता चण्डिका को नियुक्त कर दिया। इस प्रकार गुहा के रक्षक ठहराय भगवान् शङ्कर ने महारत्न उत्पन्न किये। इसके उपरान्त यह व्यवस्था कर दियी कि जो कोई सब रत्न सिद्ध कर दार और दूत सहित सब विद्याधरों का चक्रवर्ती होगा वही इन दोनों भागों पर साम्राज्य कर सकेगा। अथवा जो राजा मेरी आज्ञा लेकर यहां उत्तर भाग में आया चाहेंगे वे भी वहां आ सकेंगे और दूसरा कदापि न आ सकेगा। इस प्रकार शिवजी का आदेश पाय ऋषभ वहां साम्राज्य करने लगा। कुछ काल बीतने पर उसे बड़ा घमण्ड हो गया सो वह देवों से युद्ध करने लगा तब इन्द्र ने उसे मार डाला। सो प्रभो! यही उक्त त्रिशीर्ष गुहा का वृत्तान्त है यह गुहा आप समान व्यक्तियों के अतिरिक्त अपर लोगों को अगम्य है। कुछ कालोपरान्त उस गुहाद्वार के रक्षक महामाय के कुल में हे देव! मैं उत्पन्न हुआ। उस समय आकाशवाणी हुई कि यह विद्याधरों में उत्पन्न ऐसा हुआ है कि युद्ध में शत्रुओं का दुर्जय होगा, और जो कोई इसे जीत लेगा सो ही चक्रवर्ती होवेगा वह इसका स्वामी होवेगा और यह उसका सेवक होवेगा। सो महाराज! आपने मुझे जीत लिया और आप सब रत्न भी सिद्ध कर चुके हैं बस आप ही कैलास के दोनों भागों में हमारे चक्रवर्ती प्रभु हैं। अब आप यह कीजिये कि इस त्रिशीर्ष गुहा को पार कर शेष शत्रुओं को जीतिये।"

इतनी कथा सुनाय जब देवमाय चुप हुआ तब चक्रवर्ती महाराज नरवाहन-दत्त बोले "हम लोग आज चल कर गुहाद्वार पर बसें और प्रातःकाल सब विधान कर उसमें प्रवेश करेंगे ।" इतना कह वह समस्त राजाओं के साथ जाकर उस गुहा के द्वार पर उतरे । देखते हैं तो वह बड़ी गम्भीर है मानों कल्पान्त अन्धकार की जन्मभूमि ! जहां न सूर्य्य न चन्द्रमा ।

दूसरे दिन उसकी पूजा कर विमान पर बैठे हुए परिच्छसहित उसमें पैठे, स्मरण करते ही सब रत्न सहायतार्थ आ उपस्थित हो गये । चन्द्रिका रत्नों से अन्धकार न हो गये; चन्दन से सर्पों के नेत्रों का विष जाता रहा, हस्तिरत्न से दिग्गज दूर हो गये और खड्गरत्न से गुह्यक गुप्त हो गये, अन्यान्य विघ्न दूसरे रत्नों से दूर कर दिये गये । इस प्रकार सबों का निराकरण करते हुए श्रीनरवाहनदत्त सेना सहित गुहा के उत्तर द्वार से निकल कर पार हो गये । गुहामार्ग से निकल कर कैलास का उत्तर भाग देखते हैं जो कि एक दूसरा जीवलोक है जहां के निवा-सियों का पुनर्जन्म नहीं होता । उस समय आकाश से यह वाणी हुई- "चक्र-वर्त्तिन् ! तुम धन्य हो कि रत्न के प्रभाव से बड़ी महिमा प्रकट इस गुहा के पार हुए हो ।"

इसके उपरान्त धवनती और देवमाय ने प्रभु नरवाहनदत्त से कहा देव ! इस गुहा के द्वार पर कारालचि सदा स्थित रहती हैं । पूर्वकाल में जब समुद्र मथा गया था और अमृत निकला था और दानव अमृत हरण किया चाहते थे उस समय उनके संहार के लिये विष्णु ने इन्हें उत्पन्न किया । सो गुहा की रक्षा के लिये भगवान् शङ्कर ने इन्हें आदेश देकर यहां नियुक्त किया कि जिनके विषय में बतलाया गया है जैसे आप, सो आप समान लोगों के अतिरिक्त और कोई इस गुहा के पार न जाने पावे । आप सब रत्न सिद्ध कर चक्रवर्ती हो इसके पार आ पहुंचे अतः विजय की सिद्धि के लिये इन पूज्य भगवती की पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार जब धनवती और देवमाय ने श्री नरवाहनदत्त से कहा कि इसी अव-सर में वह वासर बीत गया ।

अब कैलास के उत्तर शृङ्ग सन्ध्यारुण हो गये मानों यह सूचना देते हैं कि आसन्न संग्राम के रुधिर से सींचे गये हैं । अन्धकार का बल क्रमशः बढ़ता गया,

लगा। अब वह सन्तुष्ट हो गये और पुनः पूर्ववत् उसे भगवान् ने साम्राज्य का बर दे दिया। तब तो अवसर पाय ऋषभ ने निवेदन किया कि भगवान् कैलाश का उल्लङ्घन तो हम लोगों के वश में नहीं है तो कहिये किस मार्ग से जाकर मैं दोनों भागों का चक्रवर्ती हो सकता हूं। तब पिनाकभृत् ने उसका ऐसा निवेदन सुन उसके गमन के हेतु कैलास को भेद कर एक गुहाविवर बड़ा भारी बना दिया। इस वेध से कैलास बड़ा व्याकुल हुआ और शिवशङ्कर से कहने लगा, "भगवन् यह जो मेरा उत्तर पार्श्व है वहां मानुष का जाना अगम्य है अब आपने गुहा बना कर उनके लिये सुगम बना दिया तो कहिये अब मेरी मर्य्यादा कहां रही ? अतः आप कोई ऐसा उपाय कर दीजिये कि मेरी मर्य्यादा बनी रहे।" कैलास का इतना कथन सुन भगवान् शङ्कर ने दिग्दन्ती को और ऐसे सर्पों को कि जिनके नेत्रों में विष हो, तथा गुह्यकों को इस गुहा के रक्षक ठहरा दिया। दक्षिण द्वार में महामाय नामक विद्याधरेश्वर को और उत्तर द्वार में कालरात्रि तथा अपराजिता चण्डिका को नियुक्त कर दिया। इस प्रकार गुहा के रक्षक ठहराय भगवान् शङ्कर ने महारत्न उत्पन्न किये। इसके उपरान्त यह व्यवस्था कर दियी कि जो कोई सब रत्न सिद्ध कर दार और दूत सहित सब विद्याधरों का चक्रवर्ती होगा वही इन दोनों भागों पर साम्राज्य कर सकेगा। अथवा जो राजा मेरी आज्ञा लेकर यहां उत्तर भाग में आया चाहेंगे वे भी वहां आ सकेंगे और दूसरा कदापि न आ सकेगा। इस प्रकार त्रिनेत्र का आदेश पाय ऋषभ वहां साम्राज्य करने लगा। कुछ काल बीतने पर उसे बड़ा घमण्ड हो गया सो वह देवों से युद्ध करने लगा तब इन्द्र ने उसे मार डाला। सो प्रभो! यही उक्त त्रिशीर्ष गुहा का वृत्तान्त है यह गुहा आप समान व्यक्तियों के अतिरिक्त अपर लोगों को अगम्य है। कुछ कालोपरान्त उस गुहाद्वार के रक्षक महामाय के कुल में हे देव! मैं उत्पन्न हुआ। उस समय आकाशवाणी हुई कि यह विद्याधरों में उत्पन्न ऐसा हुआ है कि युद्धमें शत्रुओं का दुर्जय होगा, और जो कोई इसे जीत लेगा सो ही चक्रवर्ती होवेगा; वह इसका स्वामी होवेगा और यह उसका सेवक होवेगा। सो महाराज! आपने मुझे जीत लिया और आप सब रत्न भी सिद्ध कर चुके हैं बस आप ही कैलास के दोनों भागों में हमारे चक्रवर्ती प्रभु हैं। अब आप यह कीजिये कि इस त्रिशीर्ष गुहा को पार कर शेष शत्रुओं को जीतिये।"

इतनी कथा सुनाय जब देवमाय चुप हुआ तब चक्रवर्ती महाराज नरवाहनदत्त बोले "हम लोग आज चल कर गुहाद्वार पर बसें और प्रातःकाल सब विधान कर उसमें प्रवेश करेंगे।" इतना कह वह समस्त राजाओं के साथ जाकर उस गुहा के द्वार पर उतरे। देखते हैं तो वह बड़ी गम्भीर है मानों कल्पान्त अन्धकार की जन्मभूमि! जहां न सूर्य्य न चन्द्रमा।

दूसरे दिन उसकी पूजा कर विमान पर बैठे हुए परिच्छदसहित उसमें पैठे, स्मरण करते ही सब रत्न सहायतार्थ आ उपस्थित हो गये। चन्द्रिका रत्नों से अन्धकार न हो गये; चन्द्रन से सर्पों के नेत्रों का विष जाता रहा, हस्तिरत्न से दिग्गज दूर हो गये और खड्गरत्न से गुह्यक गुप्त हो गये, अन्यान्य विघ्न दूसरे रत्नों से दूर कर दिये गये। इस प्रकार सबों का निराकरण करते हुए श्रीनरवाहनदत्त सेना सहित गुहा के उत्तर द्वार से निकल कर पार हो गये। गुहामार्ग से निकल कर कैलास का उत्तर भाग देखते हैं जो कि एक दूसरा जीवलोक है जहां के निवासियों का पुनर्जन्म नहीं होता। उस समय आकाश से यह वाणी हुई- "चक्रवर्त्तिन्! तुम धन्य हो कि रत्न के प्रभाव से बड़ी महिमा प्रकट इस गुहा के पार हुए हो।"

इसके उपरान्त धवनती और देवमाय ने प्रभु नरवाहनदत्त से कहा देव! इस गुहा के द्वार पर कालरात्रि सदा स्थित रहती हैं। पूर्वकाल में जब समुद्र मथा गया था और अमृत निकला था और दानव अमृत हरण किया चाहते थे उस समय उनके संहार के लिये विष्णु ने इन्हें उत्पन्न किया। सो गुहा की रक्षा के लिये भगवान् शङ्कर ने इन्हें आदेश देकर यहां नियुक्त किया कि जिनके विषय में बतलाया गया है जैसे आप, सो आप समान लोगों के अतिरिक्त और कोई इस गुहा के पार न जाने पावे। आप सब रत्न सिद्ध कर चक्रवर्ती हो इसके पार आ पहुंचे अतः विजय की सिद्धि के लिये इन पूज्य भगवती की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार जब धनवती और देवमाय ने श्री नरवाहनदत्त से कहा कि इसी अवसर में वह वासर बीत गया।

अब कैलास के उत्तर शृङ्ग सन्ध्यारुण हो गये मानों यह सूचना देते हैं कि आसन्न संग्राम के रुधिर से सींचे गये हैं। अन्धकार का बल क्रमशः बढ़ता गया,

उसने इनकी सेना घेर लियो मानों अभी जो गुहागृह में उसका पराभव हुआ है उसका टटका बैर स्मरण करता हो। भूत बेताल और डाकिनी गण फिरने लगे मानों कालरात्रि की जो पूजा नहीं हुई सो उन्हीं के कोप के ये अङ्कुर हैं। बात की बात में समस्त सैन्य संज्ञाहीन मानों सोया सा, हो गया केवल नरवाहनदत्त एक मोहित नहीं हुई। अब चक्रवर्ती को प्रतीत हुआ कि कालरात्रि की जो पूजा नहीं हुई बस यह उन्हीं की माया है। इतना मान वह वाक्पुष्प से उनकी पूजा करने लगे —

चौपाई।

शत्रु सीस कर चक्रप्रहारा। जय २ दुर्गे प्रणवाकारा (१) ॥ १ ॥
प्राण शक्ति सब जीवनकेरी। जीवनि! शरण गहौं हौं तेरी ॥ २ ॥
महिषकण्ठ कर त्रिसुल प्रहार। जातें निकसे रुधिर कि धार ॥३॥
भुवन तीन आश्वासनहारी। दुर्गा नमौं तोहिं भवप्यारी ॥ ४ ॥
रुरुरक्त कर खप्पर चालत। नृत्यत तीनौं जग प्रतिपालत ॥५॥
रचा करण हारि! तुम्हारी जय। जय २ माता तेरी जय जय ॥६॥
ऊर्द्ध अच्चि (२) सन्दीप्त कपाला। कालरात्रि! जय कर नरमाला (३)॥
सूर (४) चन्द्र सम सोभित माता। शम्भुप्रिया! जय शोभित माता ॥८॥

दोहा।

नहिं तुव आदि मध्य अरु, नहिं अवसान अपार ॥
तुव शरणागत अहहुं मैं, मात! सहित परिवार ॥ १ ॥

इस प्रकार स्तुति उन्होंने कियो किन्तु कुछ फल न हुआ अर्थात् कालरात्रि प्रसन्न न हुईं तब तो इन्हें बड़ी ग्लानि हुई और इस कारण उन्होंने यह विचारा कि अब अपने मस्तक का बलिदान देऊं तब तो भगवती अवश्य प्रसन्न होवेंगी। इतना विचार ज्योंही खड्ग उठा मस्तक पर चलाया चाहते थे कि उसी समय देवी बोलीं,

(१) ओंकाररूप।
(२) ऊपर की आंख अर्थात् तीसरा नेत्र (३) नरमुण्ड। (४) सूर्य।

'पुत्र ! साहस मत कर, मैं सिद्ध हो गयी; तेरा कटक ज्यों का त्यों ही जावे और तू जय प्राप्त करे ।" इस प्रकार देवी का वरदान देना कि नरवाहनदत्त का वह सैन्य ऐसा उठ बैठा मानों सोते से जाग उठा हो । तब श्रीमान् नरवाहनदत्त की भार्यायें और उनके मित्र उन चक्रवर्ती राजा नरवाहनदत्त के प्रभाव की प्रशंसा करने लगी । अब सब लोगों ने आवश्यक आहारादि और पानादि क्रियाएँ सम्पन्न कियीं; वह त्रियामा वीर नरवाहनदत्त को शतयामा (१) के समान हो गयी !

अब प्रात:काल हुआ और नरवाहनदत्त ने जगदम्बा कालरात्रि की पूजा कर प्रस्थान किया । तहां आगे से आकर धूमशिख ने मार्ग रोका । यह मन्दरदेव महाराज का प्रधान था सो इसके साथ चक्रवर्ती का जैसा चाहिये वैसा संग्राम हुआ । उस समय आकाश की ओर दृष्टि करे तो वहां खड्ग ही खड्ग दीख पड़े और पृथ्वी की ओर देखे तो मुण्ड ही मुण्ड दृष्टि में आवें मानों आकाश खड्गमय हो गया था और धरा मुण्डमय, मारो २ काटो २ इनके अतिरिक्त और कुछ वचन ही नहीं सुनाई देता था । ऐसे घोर संग्राम में धूमशिख पकड़ा गया और बांध कर श्री नरवाहनदत्त जी सम्राट् के समक्ष उपस्थित किया गया । चक्रवर्ती ने सम्मान के साथ उसे अपना शासन ग्रहण कराया । आज उसी धूमशिख के नगर में सम्राट् ने अपना सैन्य बसाया कैसा सैन्य कि जिसने बढ़ते हुए धूमशिख को शान्त कर डाला जैसे अग्नि से इन्धन हो जाता है ।

दूसरे दिन नरवाहनदत्त अपनी सभा में बैठे थे कि उसी समय उनके चरों ने आकर सूचना दियी कि महाराज !मन्दरदेव को आपको चढ़ाई की वृत्तान्त ज्ञात हो गया सो वह आगे से युद्ध करने के लिये आ रहे हैं । इतना सुनते ही श्रीमान् नरवाहनदत्त ने अपनी ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दियी, बस "परानिशान बाज" सब वीर चटपट "उठि २ पहिरि सनाह सब ह्वै गये वीर तयार," सब वीर अस्त्र शस्त्र से सज्जित होकर युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये । तब नरवाहनदत्त ने जय का दृढ़ निश्चय कर प्रस्थान कर दिया । थोड़ी ही दूर गये होंगे कि क्या देखते हैं कि मन्दरदेव का सैन्य. जिसमें बहुतेरे राजा अपनी २ सेना लेकर आ

(१) त्रियामा = तीन पहरवाली अर्थात् रात्री; शतयामा = सौ पहरवाली अर्थात् तीन पहर की रात सौ पहर सी ज्ञात होती थी ।

मिले हैं, व्यूह बांध कर खड़ा है। बात की बात में इधर भी व्यूह बन गया और राजाओं से घिरे नरवाहनदत्त ने शत्रु सैन्य पर धावा किया। अब दोनों सैन्यों के मध्य संग्राम प्रारम्भ हो गया मानों प्रलयकाल में दो महासागर उमड़ आये हों।

छन्द।

तब चले बान कराल। फुंकारत जनु बहु व्याल ॥ १ ॥
कर शक्ति तोमर चाप। साधैं जुकरि बड़ दाप ॥ २ ॥
बहु शैल फरसा बान। को करि सकै परिमान ॥ ३ ॥
छूटे विविध नाराच। कटि गिरैं सीस खमाच ॥ ४ ॥
छूटैं विविध बहु बम्। कहैं जयति शङ्कर बम् ॥ ५ ॥
गोला चलैं बहु रंग। वीरन के ह्वै अंग भङ्ग ॥ ६ ॥
घहरात तोप जु घोर। तब उठ्यो भीषण शोर ॥ ७ ॥
ह्वै गयो बड़ अंधियार। नहिं सूझ हाथ पसार ॥ ८ ॥
नहिं जान निज अरु परा। कटि २ परैं शिर धरा (१) ॥ ९ ॥
मारो न जाने पाव। कहि हनहिं घोर सुघाव ॥ १० ॥
निकसे जु सोनित पूर (२)। कोउ कटत होइ अधूर ॥ ११ ॥
बहु कंक काक सियार। लै लै पराहिं शिकार ॥ १२ ॥
नभ उड़ैं बहुतक मुण्ड। नाचैं धरा पर रुण्ड ॥ १ ॥

दोहा।

भयो घोर संग्राम अब, नहिं कछु बरन्यो जाय ॥
नरवाहनदत्त सैन संग, मन्दरदेव सहाय ॥ १ ॥

छन्द।

वे चण्डसिंह महान वीरादिक रहे एहि ओर में।
उत डंटे काञ्चनदंष्ट्र आदिक वीर रण अति घोर में ॥

(१) पृथ्वी, धड़। (२) प्रवाह।

अति घोर भे संग्राम कम्पित भुवन तीनों ह्वै गये।
कुल गिरि (१) काँपैं कल्पान्त मारुत आइ जनु बहते भये ॥१॥
कैलास, जाकर भाग एक जु शूरसोनित रंगि गयो।
अरु अपर भाग विभूत भूषित, गिरिश की शरणहिं गयो ॥
चमचमें चमकत तेज तेगा उदित बहु भास्कर मनौं।
यह महाहव (२) सब वीर कर ह्वै सच प्रलयकारक जनौं ॥२॥

दोहा।

यह अरि विस्मयजनक भो, दुहुँ दल को संग्राम ॥
नारदादि आकाश में, आये सब दिवधाम (३) ॥ २ ॥
जिन देखि बहुवार हूं, दैत्यासुरसंग्राम ॥
तिनहूं को आश्चर्यप्रद, यह भो युद्ध ललाम ॥ ३ ॥

इस प्रकार महा घोर रणरंग रचा था कि काञ्चनदंष्ट्र ने दौड़ कर चण्डसिंह पर घोर गदाप्रहार किया। गदा लगते ही चण्डसिंह मूर्छित हो धरा पर धड़ से गिर पड़ा। पुत्र का गिरना कि धनवती का कुपित होना, उन्होंने चट मन्त्र पढ़ दोनों सैन्यों को अचेत कर दिया। इस ओर नरवाहनदत्त और उस ओर मन्दरदेव बस ये ही दोनों सचेत रहे। इस समय धनवती का क्रोध ऐसा भड़का कि वह मानों तीनों जगतों का संहार कर डालेंगी; उन्हें कुपित देख आकाशस्थित देवगण डर के मारे भाग चले।

जब मन्दरदेव ने देखा कि नरवाहनदत्त अकेले रह गये हैं तब वह आयुध उठा उनपर दौड़े। नरवाहनदत्त भी रथ पर से उतर पड़े और खड्गरत्न निकाल उनसे भिड़ गये। अब मन्दरदेव माया के प्रभाव से जय की इच्छा कर चट अपनी विद्या के प्रताप से बड़ा भारी मत्त गजेन्द्र बन गये। नरवाहनदत्त भी अपनी विद्या के बल से चटपट सिंह हो गये। अब तो मन्दरदेव का गजेन्द्र रूप गुम हो

(१) महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारिपात्र ये सात कुल पर्वत है। (२) युद्ध (३) स्वर्ग जिनका घर है।

गया तब नरवाहनदत्त ने भी सिंहका आकार छोड़ दिया। अब दोनों पुनः स्वरूप में अवस्थित हो युद्ध में प्रवृत्त हुए। नाना प्रकार के दाव पेंच होने लगे मानों दो बड़े प्रवीण नट नाट्य कर रहे हैं। उसी समय नरवाहनदत्त ने बड़ी युक्ति से मन्दरदेव का खड्ग छीन लिया मानों प्रत्यक्ष जय हो। जब खड्ग छिन गया तब मन्दरदेव ने छुरी निकाली किन्तु चक्रवर्ती ने उसे भी उसी प्रकार छीन लिया। अब वह निरस्त्र हो गये तब नरवाहनदत्त ने उन्हें हाथों से पकड़ लिया और ठेहुनों के भीतर ला धड़ से धरती पर दे मारा। अब सम्राट् उनके वक्षस्थल पर वीरासन बैठ गये। इसके उपरान्त केश पकड़ ज्यों ही खड्ग से उनका शिर काटा चाहते थे कि त्यों ही मन्दरदेव की बहिन कन्या मन्दरदेवी सामने आकर नरवाहनदत्त को रोक कर कहने लगीं "महाराज! सुनिये ठहरिये ऐसा काम मत करिये। सुनिये जिस समय कि आप तपोवन में तपस्या कर रहे थे उस समय मैंने आपको देखकर अपना पति कल्पित कर लिया था सो यह आपके साला हुए अतः आप मेरे भाई को छोड़ दीजिये, इन्हें मारिये मत।" इस प्रकार उस सुनयनी की उक्ति सुन धीर महाराज नरवाहनदत्त पराजित हो जाने से लज्जित मन्दरदेव को छोड़ कर उससे इस प्रकार कहने लगे, "विद्याधरेश! मैंने आपको छोड़ दिया, आप अपने मन में लज्जा मत कीजिये क्योंकि युद्ध में शूरों के जय पराजय चपल हैं दो में से एक होता ही है।" महाराज का ऐसा कथन सुन मन्दरदेव बोले, "जब कि मैं युद्ध में स्त्री के द्वारा बचाया गया तो मेरे जीने ही से क्या सो मैं अब वन मे स्थित अपने पिता के पास तप करने चला जाता हूं आपही दोनों वेदार्ध के चक्रवर्ती बनाये गयें हैं, यह बात मेरे पिता पहिले ही मुझसे कह चुके थे! इतना कह वह मानी मन्दरदेव तपोवन में अपने पिता के पास चले गये। अब ऊपर आकाश से देवगण साधुवाद और जय जयकार कर कहने लगे "महाराज भला हुआ कि तुमने शत्रुओं को जीत कर साम्राज्य प्राप्त कर लिया।" जब मन्दरदेव चले गये तब देवी धनवती ने अपने पुत्र चण्डसिंह तथा दोनों सैन्यों को अपनी शक्ति से सचेत कर लिया।

दोहा।

एहि विधि सोए से जगे, निज वैरी कहँ जान॥
नरवाहनदत्त विजयि लखि, हरिषे सचिव महान॥ १॥

काञ्चनदंष्ट्र अशोक अरु, रक्ताक्षहु परवीन ॥
मन्दरदेवसहाय, तिसु, शासन शिर धरि लीन ॥ १ ॥
काञ्चनदंष्ट्र विलोकि कै, सुमिरि गदा को घात ॥
चण्डसिंह फेरत असी, ह्वै अति कोपित गात ॥ ३ ॥

चौपाई।

मत करु सुत अब समर प्रचारा। कौन तोहिं रन जीतनहारा ॥१॥
यह सब हमरी युक्ती को फल। माया करि मोह्यो दूनौं दल ॥२॥
याही सों सब को भइ रच्छा। क्षति नहिं उठयउ दूनौं पच्छा ॥३॥
इमि कहि धनवति सुत समुझायउ। कोप तासु निज वचन नसायउ॥
निज सिधि सब कहं कीन्ह अनन्दित ॥ नरवाहनदत्त भे अति प्रमुदित॥
शङ्कर गिरि कर उत्तर अंसा। जहं कीन्हीं नृप शत्रुविधंसा ॥६॥
राज पाइ नरवाहनदत्ता। भयउ चक्रवर्ती इकछत्ता ॥ ७ ॥
नहिं अब कोऊ शत्रू रह्यऊ। सिवन नहिं कछु संकट सह्यऊ ॥८॥

दोहा।

करि जीतन उत्सव बड़ो, भयो बजैं बहु वाद्य ॥
नचैं बहु दिवसुन्दरी, नाना विधि भो खाद्य ॥ ४ ॥

सोरठा।

प्रिया सचिव के संग, बड़े २ राजानयुत ॥
दिन बीत्यो सुउमंग, रिपुप्रतापमधु पान करि ॥ १ ॥

दूसरा तरङ्ग।

अब दूसरे दिन चक्रवर्ती नरवाहनदत्त कैलास शिखर से अपने बल सहित चले। राजा काञ्चनदंष्ट्र आगे २ चले और उन्हीं के कथनानुसार मन्दरदेव के विमल नामक नगर में गये। वहां पहुंचने पर क्या देखते हैं कि वह नगर अति सुन्दर

जिसकी चहुंओर सुवर्ण के प्राकार घिरे हुए हैं मानों सुमेरु कैलास की शुश्रूषा की अर्थ आया हो। फिर वह नगर कैसा है कि अति गभीर और अच्युत (१) श्री से शोभित अनन्त रत्नों का निलय मानों सागर किन्तु जलरहित। सो राजा नरवाहनदत्त ऐसे नगर में गये। वहां जाकर जब वह राजसभा में बैठे तो उस समय राजा के अन्तःपुर के वृद्ध सम्राट् के पास आकर उनसे कहने लगे 'महाराज! जब मन्दरदेव आपसे पराजित होकर वन में चले गये तो उनकी पत्नियां अब अग्नि में प्रवेश किया चाहती हैं, अब यह सुनकर प्रभु को जैसा समुझ पड़ें वैसा करें।" उन वृद्धों का एतादृश कथन सुन चक्रवर्ती ने उन रानियों को समझा बुझा कर मरण से निवृत्त किया और जैसे कोई बहिनों का प्रबन्ध करे वैसे ही निवासादि देकर सबका प्रबन्ध पृथक् २ कर दिया। इससे हुआ क्या कि विद्याधराधीशों का समस्त समूह अनुराग रूपी निगड में बांध कर स्वहस्तगत कर लिया। तनन्तर नरवाहनदत्त ने अमितगति को, कि जिन्हें वह पूर्व ही राजा मान चुके थे अर्थात् राजपददान की प्रतिज्ञा कर चुके थे, यहां मन्दरदेव के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया और मन्दरदेव की ओर के काञ्चनदंष्ट्र आदिक जो परिचर थे उन्हें उन प्रचल भक्त राजा अमितगति को सौंप दिया। वहां उन श्रीसम्पन्न उद्यानों में सात दिन पर्यन्त रमण करते रहे, कैलास के उत्तर भाग को लक्ष्मी मानों नवोढा उन्हें आलिङ्गन कर बैठी है।

कहा है "जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई" अर्थात् जो जितना ही पाता है वह उतना ही अधिक पाया चाहता है। इसी न्याय से नरवाहनदत्त उभय वेदार्ध में विद्याधराधीशों का चक्रवर्त्तित्व पा चुके पर उनके मन में भी यह तृष्णा हुई कि और प्राप्त करना चाहिये। अब उन के मन में इच्छा यह हुई कि इसी ओर जो अलङ्घ्य मेरुभूमि है जहां देवता लोग वास करते हैं उसका भी विजय करना चाहिये। यद्यपि मन्त्री लोग बरजते रहे तथापि वह चले हीं। ठीक ही है जो तेजस्वी

---

(१) जैसे समुद्र बड़ा गहिरा होता है और अच्युत (नारायण) की लक्ष्मी जिससे निकसी और अनन्त रत्न जिसमें होवें वैसे ही यह आश्रम है कि अच्युत। अखण्ड लक्ष्मी जिसमें विराजमान हो और नाना प्रकार के रत्न जहां सुशोभित हों।

बहुत प्राप्त कर चुके हैं उनको अधिक न मिले तो वे रह नहीं सकते इनकी उपमा तो प्रदीप्त दावानल से दी जाती है जैसे दावानल भस्म करने के लिये कुछ न पाकर नहीं ठहर सकता वैसे ही राजा लोग विना अधिक पाये क्योंकर रहें। अस्तु यह अपने दल बल के साथ मेरुभूमि जीतने चले। उसी समय भगवान् नारद मुनि उनके पास आये और उनसे कहने लगे—"राजन्! तुम तो नीति शास्त्र में बड़े प्रवीण हो फिर अविषय में तुम्हारा यह उद्योग कैसा ? अत्यन्त घमण्ड कर जो असाध्य कार्य में प्रवृत्त होता है वह परिभव पाता है देखो दशकन्धर दर्प से आकर कैलास उठाने चला तो कैसा उसका पराभव हुआ। सूर्य चन्द्र यदि चाहें कि मेरु का उल्लङ्घन कर देवें तो उनका किया भी ऐसा नहीं होने का! फिर महादेव जी ने तुम्हारे लिये विद्याधरेन्द्रता ठहरा दियी है न कि सुरेन्द्रता। सो विद्याधरों का वासस्थान यह हिमालय तुम जीत ही चुके तो अब देवस्थान मेरु में तुम्हें क्या करना है ? अतएव यह दुराग्रह त्याग कर दो। यह जो मन्दरदेव के पिता अकम्पन वन में वास कर रहे हैं सो यदि तुम अपना भला चाहते हो तो जाकर उनके दर्शन करो।" नारद मुनि का इतना वचन सुन नरवाहनदत्त ने स्वीकार किया और तब देवर्षि उनसे पूछ कर जहां से आये वहां चले गये।

चक्रवर्ती पूर्व ही देवमाय से ऋषभ का नाश सुन चुके थे सो उसका उनको स्मरण हो आया बस वह कार्यज्ञ अपनी बुद्धि से नारदजी की उक्ति पर विवेचना कर इस व्यापार से लौटे और तपोवन में स्थित राजर्षि अकम्पन के दर्शनों को गये। अब उस तपोवन में पहुंचे तो तपोवन कैसा है कि नाना स्थानों में पद्मासन बैठे बड़े २ महर्षि योग साध रहे हैं मानों यह ब्रह्मलोक होवे। वहां देखते हैं तो जटा और वल्कलधारी अकम्पन राजर्षि बैठे हैं जैसे बड़ा द्रुम कि जो सब को आश्रय देते है। अब नरवाहनदत्त ने आगे बढ़ कर उन तपस्वी के चरणों को प्रणाम किया उन्होंने भी इनका आतिथ्य कर इनसे कहा "राजन्! इस आश्रम में तुम आये सो अच्छा किया, यदि उल्लङ्घन कर चले जाते तो महर्षि लोग तुमको शाप दे देते इस प्रकार राजर्षि अकम्पन महाराज नरवाहनदत्त से कह ही रहे थे कि उसी समय मुनिव्रत धारण किये मन्दरदेव अपनी बहिन कुमारी मन्दरदेवी के साथ अपने पिता के पास आये। देखते ही नरवाहनदत्त ने उन्हें कण्ठ से लगा लिया ठीक ही है पराजय हो जाने से शान्त हुए शत्रुओं पर धीरों का स्नेह ही उचित है।

अब मन्दरदेवी को भाई के साथ आयी देखकर अकम्पन राजर्षि ने सम्राट् से कहा "राजन्! यह मन्दरदेवी नाम्नी मेरी पुत्री है, आकाशवाणी ने कहा था कि यह चक्रवर्ती की महिषी होगी। सो चक्रवर्तिन् मैं तुम्हें इसे देता हूं अतः तुम इसे व्याह लेओ।" राजर्षि के इस प्रकार कहने पर वह उनकी पुत्री बोली, "मेरी चार सखियां हैं जो उत्तम कन्यायें हैं, एक तो काञ्चनदंष्ट्र की बेटी कनकवती, दूसरी कालवती कालजिह्व की सुता, तीसरी दीर्घदंष्ट्र की तनया श्रुता और चौथी पीवराज की पुत्री अम्बरप्रभा; इन विद्याधरेन्द्रकन्याओं में मैं पांचवीं हूं। एक समय की बात है कि हम पांचों घूम रही थीं कि घूमती २ उस तपोवन में पहुंचीं जहां यह आर्यपुत्र तपस्या कर रहे थे इन्हें देख हम सभों ने आपस में यह पण ठाना कि हम सब एक साथ इनके संग विवाह करें और जो पृथक् होकर इनसे विवाह कर लेवे तो उसके ऊपर शेष चटपट आत्मघात कर डालें। सो पिता जी! अपनी सखियों के विना मेरा विवाह कर लेना योग्य न होगा, हम सी स्त्रियां सत्य के उल्लङ्घन का साहस क्यों करें?"

इस प्रकार उस प्रौढ़ा मन्दरदेवी का कथन सुन उसके पिता अकम्पनदेव ने उसी क्षण उन कन्याओं के पिता चारों विद्याधरेन्द्रों को बुला भेजा। और जब वे आये तो उनसे सारा वृत्तान्त कह दिया, सो सुन वे सब कृतार्थ हो गये और अपनी २ कन्या को उन्होंने बुलवा भेजा। इसके उपरान्त मन्दरदेवी से लेकर क्रमानुसार नरवाहनदत्त ने उन पांचों कन्याओं के साथ विवाह कर लिया। उन प्रौढ़ा भार्य्याओं के साथ वह वहां कई दिन रहे, तीनों संध्याओं में ऋषियों को प्रणाम करते और नाना प्रकार के उत्सव मनाते थे।

अब एक दिन राजर्षि अकम्पन ने श्रीनरवाहनदत्त से कहा कि राजन्! अब तुम महाभिषेक के अर्थ ऋषभाद्रि पर जाओ। इस प्रकार अकम्पन के कहने पर देवमाय ने भी कहा "देव! ऐसा ही करना चाहिये क्योंकि ऋषभक आदि जितने चक्रवर्ती पूर्व में हो गये हैं उन सभों का अभिषेक उसी पर्वत पर हुआ है। इसपर हरिशिख ने कहा मन्दर पर्वत बड़ा उत्तम है अभिषेक वहां होना चाहिये और वह निकट भी है। इसी अवसर पर आकाशवाणी हुई "राजन्! सब पूर्व चक्रवर्त्तियों का अभिषेक ऋषभपर्वत पर ही हुआ है सो तुम भी वहीं जाओ

क्योंकि वह सिद्धों का स्थान है ।" इस प्रकार आकाशवाणी सुन नरवाहनदत्त अकम्पन सहित सब ऋषियों को प्रणाम कर शुभ दिन में वहां से प्रस्थानित हुए ।

अब चले २ अमितगति प्रमुख सब विद्याधराधीश्वरों के साथ महाराज नरवाहनदत्त त्रिशीर्षाख्य गुहा के उत्तर द्वार पर पहुंचे । वहां महामाया कालरात्रि की पूजा कियी । पश्चात् उस द्वार से पैठ कर सम्राट् सेना सहित दक्षिण द्वार से निकल आये । तहां देवमाय की प्रार्थना से अपने दल बल सहित उनके घर रहे । वहां से कैलास पर्वत पर अवस्थित भूतभावन भगवान् शङ्कर अति सन्निकट हैं यह विचार गोमुख को साथ ले उनके दर्शन को गये । वहां पहुंच के सुरभि और वृषभ को देखकर आगे बढ़े तो नन्दी जी मिले । ज्योंही इन्होंने उनकी प्रदक्षिणा कियी कि नन्दी ने द्वार छोड़ दिया तब नरवाहनदत्त आगे जाकर देखते हैं तो देवी सहित वृषभध्वज विराजमान हैं । मस्तकस्थ चन्द्र की किरणें चहुंओर ऊपर छिटकी हुई हैं मानों गौरी की मुखद्युति से लज्जित होकर इधर उधर चली गयी हैं सो उन किरणों से दर्शक को दूर ही से परम आनन्द भगवान् शङ्कर प्रदान कर रहे हैं । भगवान् अपनी प्रिया के साथ पासा खेल रहे हैं उसमें अपने नेत्र इतस्ततः फेरते हैं; यद्यपि वे नेत्र अपने कार्य में स्वतन्त्र और चञ्चल हैं तथापि वश में हैं ।

देखते ही नरवाहनदत्त भगवान् वरद शङ्कर तथा शैलपुत्री देवी के चरणों पर गिरे और इसके पश्चात् उन्होंने तीन वार उनकी प्रदक्षिणा कियी । उनको देख उमापति शङ्कर भगवान् बोले, "वत्स नरवाहनदत्त ! भला किया जो यहां आये नहीं तो तुमको बड़ा दोष होता । अब तुम्हारी सब विद्याएँ अभंगुर रहेंगी । सो वत्स अब तुम सिद्धक्षेत्र ऋषभाचल पर जाओ और यथासमय प्राप्त महाभिषेक प्राप्त करो," महादेव की ऐसी आज्ञा सुन चक्रवर्त्ती उन्हें प्रणाम कर वहां से चले और देवमाय के मन्दिर में पहुंचे ।

अब उन्हें प्रहृष्ट और प्रमुदित देख देवी मदनमञ्चुका हँसी करने लगीं "आर्यपुत्र ! कहो तो कहां गये थे ? आज तो बड़े ही प्रहृष्ट दीख पड़ते हो, क्या यहां भी तुम्हें और पांच कन्याएँ मिल गयीं ?" इस प्रकार नर्महास्य करती हुई देवी

मदनमञ्चुका से श्रीमान् नरवाहनदत्त सारा वृत्तान्त कह गये जो सुनकर वह बड़ी ही प्रमुदित हुईं।

दूसरे दिन सब विद्याधरों, सेनाओं और भार्य्याओं तथा मन्त्रियों के साथ महाराज नरवाहनदत्त विमान पर आरूढ़ हुए उस समय उनके तेज से ऐसी भावना होती थी कि इस समय आकाश में दो भास्कर देदीप्यमान हो रहे हैं। इस प्रकार चक्रवर्ती ने ऋषभाचल के लिये प्रस्थान किया। कुछ कालोपरान्त उस दिव्य पर्वत पर पहुंचे, जहां नाना प्रकार के वृक्ष लगे हैं मानों मुनिगण शोभमान हैं जिन वृक्षों की लताएँ वायु से प्रेरित हो हिल रही हैं मानों ऋषियों की जटाएँ लहरा रही हों। उन वृक्षों पर से जो पुष्प गिरते हैं मानों वे ऋषिरूप वृक्ष महाराज को अर्घ्य दे रहे हैं।

अब वहां महाराज चक्रवर्ती नरवाहनदत्त के महाभिषेक का सम्भार होने लगा। सब विद्याधराधिप अपने २ प्रभाव के अनुसार प्रभु के लिये नाना प्रकार के सम्भार लेकर उपस्थित हुए। नाना दिशाओं से विद्याधर उपायन लेकर आने लगे; कोई तो उनके परम भक्त थे; कोई डर से, कोई पराजित हुए थे अतः और कोई उनसे आवृत हुए थे इस कारण सब लोग वहां अभिषेक के समय आकर उपस्थित हो गये। सम्राट् के साथ अर्द्धासन पर सम्राज्ञी भी बैठती हैं अतः यह प्रश्न उठा कि इनके साथ कौन सी देवी सिंहासन पर सुशोभित कियी जावें। सो उन्होंने श्रीमान् नरवाहनदत्त से पूछा कि देव! कौन सी देवी आपके साथ महादेवी के पद पर अभिषिक्त कियी जावें? उतर में महाराज ने कहा कि मेरे सङ्ग देवी मदनमञ्चुका का अभिषेक होना चाहिये। सो सुन सब विद्याधर सोचने लगे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे हो विद्याधरो! चिन्ता मत करो यह मदनमञ्चुका मर्त्या नहीं है, तुम्हारे प्रभु जो कामदेव हैं उनकी प्रिया यह रति है; यह कलिङ्गसेना मदनवेग से नहीं जन्मी है, यह अयोनिजा है। जिस समय कलिङ्गसेना का प्रसव हुआ उस समय देवताओं ने उस गर्भजात शिशु को पलट कर वहां इसे रख दिया और उस गर्भ से जो शिशु उत्पन्न हुआ था सो यह अकनामक मदनवेग के पास बैठा है जिसे विधाता ने बनाया था। सो यह मदनमञ्चुका अपने पति का अर्द्धासन प्राप्त करने योग्य है। पूर्वकाल में इसके तप से सन्तुष्ट होकर

भगवान् हर ने उसे यह वर दिया है। इतना कह जब आकाशवाणी चुप हो गयी तब सब विद्याधर बड़े ही सन्तुष्ट हुए और देवी मदनमञ्चुका की स्तुति करने लगे।

अब शुभ दिन आया उस दिन शान्तिसोम पुरोहित अपने कार्य में महाव्यग्र हुआ, मङ्गल के बाजे बजने लगे और अप्सरायें आनन्दपूर्वक गान करने लगीं। सब ब्राह्मण वेदध्वनि करने लगे जिससे दशों दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। उस समय सुवर्ण के कुम्भों में समस्त तीर्थों के जल लाये गये। अब मङ्गलमन्त्र पढ़ महर्षियों ने सिंहासन पर श्री नरवाहनदत्त को बैठाया और उनके वाम भाग में देवी मदनमञ्चुका को, और तीर्थों के अभिमन्त्रित जल से उनका अभिषेक कर दिया।

उस समय उनके शरीर पर जो मन्त्रपूत जल पड़े तिनसे यह एक बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनके शत्रुओं के मन में जो वैर मल छिपा था सो उन जलों से धुल कर मानों बह गया। उनके अङ्ग पर जो समस्त समुद्रों का अभिमन्त्रित जल पड़ा सो मानों लक्ष्मी स्वयं बन्धु समझ सङ्ग लेकर आयी थी। स्वर्ग की स्त्रियों के कोमल करकमलों से जो मालाओं की श्रेणी गिरती उससे यह भावना होती थी मानों आकाशगङ्गा धारा बरसा रहीं हों। उनके शरीर पर उस समय अरुण जो अङ्गराग पड़ा था सो यह भावना होती थी कि अम्बुधि जल से स्नात प्रतापान्वित प्रत्यक्ष भास्वान् हों। मन्दार की माला बांधे तथा उत्तमोत्तम वस्त्र और आभरणों से युक्त दिव्य मुकुट जिनके शिर पर शोभित है इनसे उनकी कैसी शोभा होती थी मानों साक्षात् शचीपति इन्द्र सुशोभित हों और अभिषिक्त हुईं तथा दिव्य अलङ्कारों से युक्त देवी मदनमञ्चुका इस समय साक्षात् शची सी सुशोभित थीं। वह दिवस मानों दुर्दिन के समान था जिसमें नगाड़े जो बजते थे सो ही तो मानों मेघ गर्जन है, फूल जो देवता बरसाते थे सो ही वृष्टि है, स्वर्ग की ललनायें जो इधर उधर दौड़ती फिरती थीं सो ही बिजुली चमक रही है। उस समय उस नगेन्द्र नगर में विद्याधरों की अङ्गनायें ही केवल नहीं नाचती थीं प्रत्युत वायु के बहने से समस्त लतायें नाचती प्रतीत होती थीं। इधर चारण वाद्य बजाते थे तो उधर नग भी गुहाओं के प्रतिशब्द होने से मानों बाजा बजाता था। दिव्य आसव (१) रस

(१) मदिरा।

की पान से समस्त विद्याधर इस समय कभी इधर उधर घूम रहे हैं मानों वह पर्वत ही पान के कारण घूमता हुआ शोभित हो रहा है। इन्द्रने जब इनके अभिषेक की वार्त्ता सुनी तब उनके मन में आया कि चलूं देखूं तो क्या बात है सो वह विमान पर चढ़ आ के आकाश में विराजमान हुए और इनके अभिषेक की शोभा निरख अति लज्जित हो गये अपने अभिषेक के विषय में उनका मान ही भङ्ग हो गया।

इस प्रकार जब चक्रवर्ती पद पर नरवाहनदत्त अभिषिक्त हो गये तो उस समय उनको पिता का स्मरण हुआ, पिता के दर्शनों की बड़ी उत्कण्ठा हुई। सो अपने मन्त्री गोमुखादि से परामर्श कर राजा वायुपथ को बुला कर उन्होंने कहा "आप मेरे पिता के पास जाइये और उनके चरणों में मेरा प्रणाम कह यह कहियेगा कि अत्यन्त उत्कण्ठित नरवाहनदत्त आपको देखा चाहता है; इतना कह उन्हें लिवाते आइये। देवियों को और उनके मन्त्रियों को भी लिवाते आइयेगा।" इनका ऐसा आदेश सुन वायुपथ आकाशमार्ग में उड़े और क्षण भर में कौशाम्बी नगरी में जा पहुंचे। सात करोड़ (१) विद्याधरों से वेष्ठित वायुपथ को देखकर सब पुरवासी अति भयभीत और विस्मित हो गये।

अब वायुपथ महाराज वत्सेश्वर के समक्ष उपस्थित हुए तो क्या देखते हैं कि अति शुभ्र उत्तमासन पर विराजमान हैं, एक ओर सब मन्त्री अपने २ आसन पर विराजते हैं दूसरी ओर महाराज की राजमहिषियां सुशोभित हैं। जिस समय कि यह राजसभा में पहुंचे सब लोग बड़े कौतुक से इन्हें देखने लगे। अस्तु वायुपथ आसन पर विराजमान हुए और महाराज वत्सेश्वर से कुशल मङ्गल पूछ इस प्रकार कहने लगे —"महाराज! आपके पुत्र नरवाहनदत्त ने भूतनाथ भगवान् शङ्कर की कठिन तपस्या कर उन्हें सन्तुष्ट किया और आशुतोष के दर्शन कर उन्हीं के प्रसाद से सर्व विद्याएँ प्राप्त कियीं जिनका प्रभाव यह कि शत्रु कभी जीत ही न सकें। मानसवेग को मारा, दक्षिण में गौरिमुण्ड को वध किया और उत्तर में आधी वेदी के स्वामी मन्दरदेव को जीत लिया। अब दोनों अर्द्ध वेदियों के शासन करनेवाले विद्याधरेन्द्रों का चक्रवर्ती पद उन्होंने प्राप्त कर लिया है।

(१) मूल में कोटि शब्द है सो करोड़ वाची और उत्कृष्टता वाचक भी है अतः यहां यह अर्थ भी हो सकता है कि सात उत्तम (श्रेष्ठ) विद्याधरों से घिरे

अब वह ऋषभ पर्वत पर विराजमान हैं तहां उनका महाभिषेक हुआ है किन्तु उन्हें आपके दर्शनों की बड़ी उत्कण्ठा है अत: देवियों और सचिवों के सङ्ग आपको बुलाया है। उन्होंने इसीलिये मुझे आपके पास भेजा है और कहा है कि उन्हें लेकर शीघ्र आइये। सो महाराज अब आप भी विलम्ब न करिये सब समाज सहित शीघ्र चलिये; क्योंकि वे बड़े पुण्यात्मा हैं जो वंश के उन्नत करनेवाले सुसन्तान का मुख देखते हैं।"

वायुपथ का इतना वचन सुन महाराज वत्सेश्वर हर्ष से गद्गद हो गये; उस समय उनके आनन्द की सीमा न रही। मेघ गर्जन सुन मयूर जैसे प्रहृष्ट हो नृत्य करने लगता है उसी प्रकार वायुपथ का कथन सुन उनका मन मयूर नाचने लगा। वायुपथ के वचन पर आप सम्मत हुए और तत्क्षण शिविका पर आरूढ़ हुए, साथ में देवी कलिङ्गसेना भी चलीं भार्य्याएँ और मन्त्री भी चले। अब महाराज सब परिकर के साथ चले और वायुपथ अपनी विद्या के प्रभाव से सबों को लिये दिये आकाश में उड़े और बात की बात में सब लोग ऋषभाचल पर जा पहुंचे। महाराज वत्सेश्वर वहां पहुंच कर क्या देखते हैं कि पुत्र दिव्य सिंहासन पर विराजमान है, चारों ओर से विद्याधरेन्द्र घेरे हुए बैठे हैं और पास में पुत्र की बहुत सी भार्य्याएँ उपस्थित हैं। उस समय पुत्र की कैसी शोभा थी मानों पूर्वाद्रि के मस्तक पर विराजमान ग्रहगण और ताराओं से वेष्टित चन्द्रमा हों। उस पुत्र के दर्शन से उनके हृदय में आनन्द उमड़ आया, जैसे चन्द्र को देखकर समुद्र उछलता है वैसे ही चन्द्रवत् प्रियदर्शन पुत्र को देखकर उनका हृदयाम्बोधि उछलने लगा। बहुत दिनों पर पिता को देख नरवाहनदत्त अति उत्कण्ठा से अपने आसन से उठे और उनके परिचर भी उठ खड़े हुए। दौड़ कर नरवाहनदत्त अपने पिता के चरणों पर गिरे उन्होंने उठाकर पुत्र को गले से लगा लिया और आनन्द के आंसुओं से मानों फिर उनका अभिषेक कर दिया। देवी बासवदत्ता ने पुत्र को छाती से लगा लिया, उनके स्तनों से दूध बहने लगा सो बालकपन का स्मरण करा मानों वह अपने पुत्र को सींचने लगीं। पद्मावती, तथा पिता के मन्त्री यौगन्धरायण आदि और माया गोपालक बहुत दिनों पर उन्हें देख प्रेम भरी दृष्टि से चितवनी लगी जैसे चकोर अमृतमय चन्द्र को निहारते हैं वैसे ही वे सब भी उनका अमृता-

यमान शरीर निरखने लगी। सम्राट् ने सब का यथोचित सत्कार किया। कलिङ्गसेना अपने जामाता और बेटी को देखकर इस समय ऐसी फूलीं कि तीनों लोकों में न समायी फिर शरीर की तो कुछ बात ही नहीं। यौगन्धरायण आदि महाराज वत्सेश्वर के मन्त्री प्रभु के प्रसाद से दिव्यत्वको प्राप्त अपने मरुभूति प्रभृति पुत्रों को देख बड़े प्रमुदित हुए। दिव्याभरणों से भूषित देवी मदनमञ्चुका, रत्नप्रभा, अलङ्कारवती, ललितलोचना, कर्पूरिका, शक्तियशा, भगीरथयशा तथा दिव्य रूपा रुचिरदेव की भगिनी, वेगवती, अजिनवती, गन्धर्वदत्ता, प्रभावती आत्मनिका वायुवेगयशा, कालिका आदि चारों सखियां, सुलोचना, मन्दरदेवी आदि पांचों दिव्य अङ्गनायें ये सब जो नरवाहनदत्त की महिषियां थीं सो जाकर अपने श्वशुर महाराज वत्सेश्वर के चरणों लगीं उसी प्रकार वासदत्ता और पद्मावती के गोड़ लगीं। उन लोगों ने भी यथोचित आशीर्वादों से उन्हें भर दिया। जब कि वत्सेश्वर अपने अन्तःपुर के साथ यथोचित आसन पर आसीन हुए तब नरवाहनदत्त अपने महासन पर विराजमान हुए। तिस समय देवी वासवदत्ता अपनी उन बहुओं को देख २ अति प्रमुदित होती थीं और प्रत्येक के कुल और नाम पूछती थीं। वत्सेश्वरादि नरवाहनदत्त की यह विभूति देख अपना जन्म सफल मानते थे।

इस प्रकार बन्धु सङ्गम रूपी महोत्सव हो रहा था कि उसी समय अति धीर रुचिदेव प्रतीहार वहां आया और बोला, "श्रीमानों का जय हो, महाराज! आपान भूमि (१) सज दियी गयी है सो वहां चला जाय।" उसका इतना कथन सुन सब लोग वहां आपानभूमि में गये। तहां नाना प्रकार के रत्ननिर्मित विचित्र चषक (२) धरे हुए मानों उद्यान में नाना प्रकार के फूल बिखरे हों और थल कमल सुशोभित हों। मत्त करनेवाली मदिरा से आपूर्ण कलश लेकर स्त्रियां इतस्ततः भ्रमण कर रही हैं जिनसे ऐसी शोभा होती थी कि अमृत के आहरण कर्ताओं के भुजसे उत्पन्न सुधा उन कलशों में भरी हो। तहां सब लोगों ने अन्तःपुर की ललनाओं का लज्जा रूपी निगड़ भेदक कामदेव का जीवन सर्वस्व तथा विलासमन्त्री मधु पीया, उस मद से उन लोगों के मुख अति प्रफुल्ल तथा लाल २ हो गये जैसे बालसूर्य के आतप से कमल खिले हों। इस समय पानपात्र जिनका

(१) मदिरापान का स्थान। (२) कुल्हिया, पुरवा, ग्लास।

वर्ण कमल की रङ्ग के समान था, देवियों के अधरों से पराजित हो संगम के भय से भीत हो ऐसे होनप्रभ हो रहे थे तथापि ऐसे प्रतीत होते थे कि उनकी प्रभा से मानों सोमरस के पात्र लज्जित हो गये हों। मद पीने से नरवाहनदत्त की देवियों के नेत्र ऐसे लाल २ हो गये थे कि यद्यपि कोप का अवसर नहीं था तथापि उनकी भौंहें ऐसो चढ़ी जाती थीं कि उनसे कोप झलता था।

अब वहां से चल कर सब लोग भोजनभूमि में पहुंचे जहां विद्याओं के प्रभाव से नाना प्रकार के भोजनों का समावेश, उत्तमोत्तम वस्त्र बिछे हैं, स्थान २ पर उत्तमोत्तम पात्र रक्खे हैं, द्वारों पर परदे पड़े हैं नाना प्रकार के भिन्न २ स्वाद के रस रक्खे हैं मानों वह भोजनभूमि श्री को नाट्य देती है। वहां लोगों ने भली भांति काचरकूट भोजन किया। इतने में दिनमणि भगवान् सूर्यनारायण सन्ध्या के साथ अस्तगिरि पर विश्राम करने चले गये तब सब लोग शय्यागृहों में जाकर सो रहे। नरवाहनदत्त विद्याप्रभाव से अपना शरीर विभक्त कर अर्थात् अनेक रूप धारण कर अपनी समस्त प्रियाओं के भवनों में जा विराजे, किन्तु सचमुच वह मदवती इन्दुवदना लोलतारका निशा के समान प्रिया मदनमञ्चुका से साथ रमण करते रहे। महाराज वत्सेश्वर ने भी अपने अनुयायिवर्गों के साथ अनेक प्रकार के दिव्य भोगों का उपयोग करते वह रात्री किस प्रकार वितायी मानों उसी शरीर से उन्होंने दूसरा जन्म बिताया। प्रातःकाल हुआ और दूसरे दिन का कृत्य प्रारम्भ हुआ। विद्याओं के प्रभाव से उत्तमोत्तम उपभोग प्रस्तुत होते और सब लोग उनका उपभोग करते हुए उस सिद्धक्षेत्र में श्रेष्ट भवनों में रहके आनन्दपूर्वक दिवसयापन करने लगे।

दोहा।

एहि विधि विविध विहार सन, बीते बहुत दिनान॥
प्रीति सहित सुत पहँ गयउ, वत्सराज हरखान॥ १॥
उनकी इच्छा अब भई, निज नगरी कहँ जान॥
सब दिवचर एकत्र करि, सुतसन कह्यउ सुजान॥ २॥

छन्द।

पुत्र! सचेतन होइ कहा कोउ नाहिँ रमैं इन भोगन में?

पै बहु जन्म छिती कर नेह सबै कहँ खींचत है छन में ॥
सो हम जात पुरी निज हैं, इहवां बसहू तुम यत्तन में ।
भोगहु दिव्य सुभोग भले जो अहै सब दुर्लभ नातन में (१) ॥१॥
बुलवाइ लिह्यो हम ऐहैं चले जब कोई परोजन आइपरैं ।
जन्म धरे कर हैं फल ये तुमरो मुख चन्द्र निहारो करैं ॥
चक्षु सो पेय अनूपरु अद्भुत अम्रत सों रस जासों गरैं ।
औ तुमरी लखि दिव्य सुलच्छि भलो सुत ! मानसमोद भरैं ॥२॥

वसन्ततिलकम् ।

एतो वचो अकनि आपन पूज्य तात-
वत्सेश को सुनरवाहनदत्त देव ॥
विद्याधराधिपति बोलि सुदेवमाय,
आदेश दीन्ह होइ गद्गद चक्रवर्त्ती ॥ १ ॥
जाते जु तात अहहीं निज राजधानी
अम्बारु मन्त्रिन सहित इनकी लियें तुम ॥
सम्पूर्ण हेम मणिभार सहस्र आगे
आकाशचारिन जु देइ पठाइ देहू ॥ २ ॥

दोहा ।

स्वामी को अस वचन सुनि, देवमाय सह प्रीत (२) ॥
प्रभु नरवाहनदत्त सों, बोल्यो वचन विनीत ॥ ३ ॥
कौशाम्बी लौं जाहुं मैं, नाथ स्वयं सिधि हेत ॥
अपनो अनुचर वर्ग तें, पठवहुँ तिनहिं निकेत ॥ ४ ॥
अब चक्रवर्त्ती जनक कहँ, पट भूषण बहु दीन्ह ॥
देवमाय अरु वायुपथ, संग विदा प्रभु कीन्ह ॥ ५ ॥

(१) ना = नर, तन = शरीर = मनुष्यशरीर । (२) प्रेम ।

सोरठा।

चढ़ि कै दिव्य विमान, वत्सराज परिवार संग ॥
कीन्हों तबहिं पयान, आयो सुत लौटाइकै ॥ १ ॥
वासवदत्ता माय, शतगुण उत्कण्ठा सहित ॥
प्रणत सुतहिं लौटाय, रोवत चलि पुनि २ चितय ॥ २ ॥
वह नरवाहनदत्त, सचिव संग पहुंचाइ गुरु ॥
छोड़ शोक मदमत्त, ऋषभक गिरि आये बहुरि ॥ ३ ॥

वसन्ततिलकम्।

ता बाल मन्त्रि सब गोमुख आदि संगै
विद्याधरेन्द्र प्रभुती सह चक्रवर्त्ती ॥
रानीन औ मदनमञ्चुक साथ दिव्य
भोगादि भोगत रह्यौ सुख सों गिरी पै ॥ ३ ॥

[महाभिषेक नामक पन्द्रहवां लम्बक समाप्त हुआ।

॥ श्रीः ॥
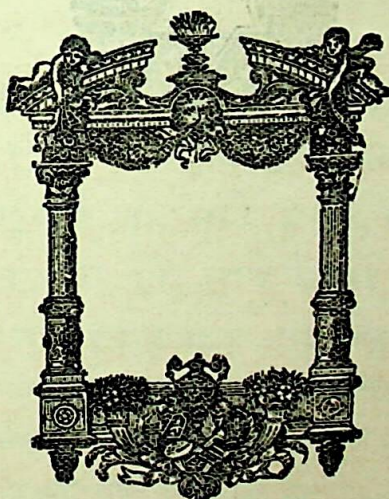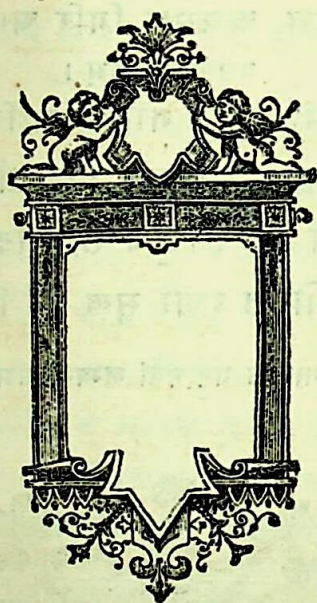
कथासरित्सागर का हिन्दी अनुवाद।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित।

सुरतमञ्जरी नामक सोलहवां लम्बक।

सवैया।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालविनैबल पाई।
शम्भुमुखार्णव ते निकली या कथा को सुधा वसुधा मँह छाई।
प्रेम-समेत पियै जो कोई बलवीर भनै बलि ईस दुहाई॥
पावहि सो जगदीस कृपा ते अनन्द अमन्द बड़ी विबुधाई॥

पहिला तरङ्ग।

दोहा।

ताण्डव में इत उत उड़ै, शिर भूषण सिन्दूर॥
सीकर के (१) परित्याग मिस, कर प्रत्यूहन (२) दूर॥१॥
ऐसो श्री गणराज जी, साजैं मङ्गल साज॥
सब की नित रक्षा करैं, साधैं सगरो काज॥ २॥

इस प्रकारण श्रीमान् महाराजधिराज नरवाहनदत्त उस ऋषभकपर्वत पर विद्याधरों का चक्रवर्ती पद प्राप्त कर भार्य्याओं और मन्त्रियों के साथ नाना प्रकार के सुख ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए आनन्दपूर्वक रहने लगे कि इसी अवसर पर उनके आमोद को वृद्धि करता हुआ वसन्त आ पहुंचा। मृगलाञ्छन (३) की अति

(१) जल के अति सूक्ष्मकण, फुहारा। (२) बाधा। (३) चन्द्र।

मनोहर चन्द्रिका छिटक कर सब के मन मोहने लगी, वसुन्धरा पर के समस्त वृक्ष हरी २ नवीन पत्तियों से सुशोभित हो गये मानों वसुन्धरा खेद युक्त हो गयी। समस्त वन के विटप मलयाचल के पवन के झकोरों से हिलते और एक दूसरे से मिलते मानों आनन्द से परस्पर आलिङ्गन करते हैं। पुष्पधन्वा (१) का दूत कोकिल आम की मञ्जरी देखकर "कुह" २ करके मानवती प्रमदाओं को मानों यह सूचित करता है कि अपने प्रियतमों से मान मत करो। पुष्प समूहों से भौंरे भन भन करते ऐसे गिरते हैं मानों मार (२) वीर के धनुष से वाण झरते हों।

इस प्रकार वसन्त की प्रवृत्ति देखकर श्री नरवाहनदत्त के गोमुखादि मन्त्रियों ने उनसे जाकर कहा "देव! देखिये न, यह ऋषभपर्वत अब दूसरा ही हो गया है। इस समय यह पुष्पमय होकर दूसरे रूप में परिवर्तित हो गया है। वसन्त के शुभागमन से इसपर के समस्त कानन (३) निरन्तर फूले रहते हैं। राजन्! देखिये इस समय इन लताओं की शोभा कैसी हो रही है । उनके समस्त पुष्प आपस में रगड़ खाते हैं जिनसे मजीरे का अनुभव होता है, भौरियां जो गूंज रही हैं उनसे सङ्गीत का अनुमान होता है और वायु के झकोरों से वे लताएँ कैसी लहरा रही हैं । इस समय यह भावना होती है कि ये लतारूपिणी प्रमदायें परागरूपी वस्त्र और मालायें धारण कर वसन्त के द्वारा सुसज्जित कामदेव के सभाभवन में जा रही हैं। यह आम की मञ्जरी तो देखिये कि कैसी भावना उपजाती हैं। भौंरों की मालाएँ तो यह भावना देती हैं कि मानों प्रत्यञ्चा ढीली पड़ गयी है मानों कामदेव का धनुष समस्त जगत् जीत कर अब विश्राम कर रहा है। सो देव! हम लोगों का मन करता है कि यहां मन्दाकिनी नदी के पट पर अति रुचिर उद्यान में जाकर मधूत्सव (४) का उपभोग करें सो आप अब विलम्ब न कर चलें और हम लोगों का मनोरथ पूर्ण करें। इस प्रकार मन्त्रियों का अनुरोध सुन महाराजाधिराज नरवाहनदत्त अपनी सब भार्य्याओं के साथ मन्दाकिनी नदी के तट पर गये।

वहां उस उद्यान की शोभा इस समय वर्णनातीत है, नाना प्रकार के विहंग उस मनोहर उद्यान में वृक्षों के ऊपर बैठे कलरव ,कर रहे हैं; लायची, लवङ्ग,

(१) कामदेव। (२) कामदेव। (३) जङ्गल। (४) वसन्तोत्सव।

बकुल, अशोक और मन्दार के पेड़ स्थान २ पर फूल रहे हैं। तहां चन्द्रकान्त मणि की शिला पर बाईं ओर महादेवी मदनमञ्चुका को बैठा कर राजराजेश्वर-श्री नरवाहनदत्त विराजमान हुए और चण्डसिंह तथा अमितगति प्रभृति विद्याधर अपनी २ भार्य्याओं के साथ उन्हें घेर कर बैठ गये। सब लोग इस समय मदिरा पीने लगे और इधर उधर की नाना प्रकार की बातें हो रही थीं। इस काल उस ऋतुराज का आनन्द अनुभव कर सम्राट् अपने मन्त्रियों से कहने लगे "देखो दखिनहिया पवन कैसा सुखद और मन्द २ बह रहा है, समस्त दिशाएँ कैसी निर्मल हैं। पद पद पर जङ्गल सब फूले हुए हैं और उन पुष्पों से सुगन्धि निकल रही है। देखो कोकिल कैसे कूज रहे हैं, और पान (१) का कैसा आनन्द हो रहा है। ठीक है वसन्तऋतु में क्या है जो सुखद न हो ? परन्तु इस समय जो कहीं किसी का उसके प्रणयी से वियोग होवे तो वह महा असह्य हो जाता है। दूसरों की (२) बात दूर रहे पशु पक्षियों को भी वियोग का दुःख बहुत अखरता है। देखो न यह कोयल विरह से कैसी क्लान्त हो गयी है। इसका प्यारा हेराय गया है उसी को बहुत दिन से खोजती २ उसे न पाकर देखो आकर इस आम के पेड़ पर कैसी चुप चाप बैठ रही है मानों मृतक सी हो गयी है।" सम्राट् का ऐसा कथन सुन मन्त्री गोमुख बोला 'महाराज! आपका कहना सत्य है। इस समय में विरह सब जीवधारियों को बड़ा ही दुःसह हो जाता है। श्रावस्ती नगरी में जो घटना हुई सो सुनिये मैं आपको उसकी कथा सुनाता हूं –"

उस नगरी में एक गांव का भूम्यधिकारी एक राजपुत्र राजा के यहां सेवक था। उसका नाम शूरसेन था। मालवदेशजा उसकी एक भार्य्या उसके अनुरूप थी, जिसका नाम सुषेणा था जिसे वह प्राणों से प्रिय समझता था। एक समय की बात है कि राजा ने उसे बुला कर कटक में जाने की आज्ञा दियी। सो वह चलने को उद्यत हुआ। तिस समय शूरसेन की अनुरागवती भार्य्या ने उससे कहा "आर्यपुत्र! मुझे अकेली छोड़ तुम्हें जाना उचित नहीं है, तुमारे विना मैं क्षण भर भी जी न सकूंगी।" उसका एतादृश कथन सुन शूरसेन बोला "तन्वि! तुम यह नहीं जानती कि राजा की आज्ञा है, भला मैं कैसे न जाऊं। मैं राजपुत्र हूं

(१) मदिरा पीना।　(२) अर्थात् मनुष्यों की।

पर इस समय तो पराधीन सेवक हूं ।" उसका ऐसा कथन सुन आंखों में आंसू भर के उसकी भार्य्या बोली "यदि जाना ही है तो जाओ किसी प्रकार दिन व्यतीत कर विरहव्यथा सह्य करूंगी किन्तु स्मरण रहे कि मधुमास में (वसन्त-ऋतु में) अवश्य चले आना।" तब शूरसेन बोला "प्रिये ! यह तुम निश्चय जान रक्खो कि कैसा भी कार्य्य होगा मैं छोड़ कर चैत्र के प्रथम दिन यहां आ पहुंचूंगा।" इस प्रकार समझाने बुझाने पर भार्य्या सम्मत हुई और तब शूरसेन उससे आज्ञा लेकर राजा के समीप कटक में गया। उधर शूरसेन तो कटक में चला गया इधर उसकी भार्य्या दिन गिनती उसके आगमन की प्रतीक्षा में चैत्र के प्रथम दिन की आशा में पड़ी रही।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हो गये और मधुमास के उत्सव का दिन आ पहुंचा। कोयल "कुहू "कु" करने लगी मानो कामदेव का आह्वान मन्त्र हो। कुसुमों के आमोद से मस्त मधुकरों का (१) रव होने लगा मानों कामदेव ने धनुष चढ़ाया सो उसी का टङ्कार शब्द होवे। "आज मधूत्सव आ गया, आज मेरे प्राणेश्वर अवश्य आवेंगे। इस प्रकार चिन्ता कर शूरसेन की पत्नी सुषेणाने स्नान कर कामदेव की पूजा कियी पश्चात् सोलहों शृङ्गार कर वह अपने पति के आने की बाट जोहने लगी।

इसी भांति वह दिन भर प्रतीक्षा में बैठी रह गयी। दिनमणि अस्ताचल के शिखर पर पहुंच गये. क्रमशः अन्धकार का आधिपत्य जमने लगा और घोर निशा आ विराजी। तब तो उसकी सारी आशा जाती रही और वह विकल हो इस प्रकार अपने मन में विचारने लगी। "अहो ! यह मृत्युकाल (२) आ पहुंचा परन्तु मेरे प्राणनाथ अबलों न आये। यदि अपना ही जन हो और पराये की सेवा में फंसा हो तो उसका स्नेह कैसा ! इस प्रकार पति की चिन्तासे उन्मत्त हो रही थी और उधर से निराशा क्रमशः बढ़ती गई और ऊपर से कामाग्नि उसे और भी भस्म किये डालती थी। इन सभों का फल यह हुआ कि उसका प्राणपखेरू तनपींजरा छोड़ उड़ गया।

इधर सुषेणा की तो यह दशा हुई उधर शूरसेन भी अपनी प्रेयसी के लिये

(१) भौंरों का। (२) विरहियों के लिये वसन्त ऋतु मृत्यु ही है।

प्रति उत्कण्ठित होकर राजा से किसी प्रकार छुट्टी लेकर एक उत्तम हाथी पर आरूढ़ हो वहां से चला और ताबड़तोड़ करेणु चलाने लगा कि दिन न बीते और घर पहुंच जाऊं। मार्ग दूर था सो इतनी शीघ्रता के साथ आने पर भी वह रात्रि के चौथे पहर अपने घर पहुंचा। घर में पहुंच कर क्या देखता है कि प्राणेश्वरी सब शृङ्गार किये पड़ी है किन्तु हाय वह प्राणहीन है, मानों फूली लता वायु से उखाड़ी पड़ी हो। प्रिया को प्राणहीन देखतेही वह महा विकल हो गया और प्यारी को गोद में उठा कर विलाप करने लगे। विरहवेदना से तो उसके भी प्राण झट शरीर से निकल गये। उनके कुल में एक कुलदेवी थीं उन दोनों दम्पती को मृत देखकर उन्हें बड़ी दया आयी सो कुलदेवी ने कृपा कर दोनों को वरदान देकर जिला दिया। दोनों जी उठे और आपस में गले लग आनन्दसागर में गोते खाने लगे। उन दोनों का अनुराग ऐसा प्रबल हुआ कि अब से एकक् होने की बात भी दोनों हो असह्य को जाती सो दोनों सदा एक साथ रह दिन व्यतीत करने लगे।

इतनी कथा सुनाय गोमुख श्रीनरवाहदत्त से कहने लगा कि देव वसन्त समय ऐसा प्रबल है उस समय जो विरह हुआ तो महाप्रचण्ड अनल का प्रादुर्भाव समझना फिर उस प्रचण्ड विरहानल में वसन्त का वायु लगा तो भला ऐसा कौन देहधारी है जो उसका सहन कर सके।

गोमुख की इतनी कही कथा सुन श्रीमान् नरवाहनदत्त उसी घटना का स्मरण करते हुए कुछ उदास हो गये, अकस्मात् उनका मन मलिन हो गया। महात्माओं का अन्तरात्मा यदि विना कारण सुस्थित हो जावे अथवा मलिन हो जाय तो वह भावी शुभ अशुभ की सूचना देता है।

अब दिन बीता और सन्ध्या हुई। महाराजाधिराज नरवाहनदत्त सन्ध्यावन्दन कर शयनागार में जाकर पलङ्ग पर पौढ़े और विश्राम करने लगे। होते २ उन्हें नींद आ गयी। रात के बीतने के साथ वह क्या स्वप्न देखते हैं कि एक काली स्त्री पिता को पकड़ कर दक्षिण की ओर लिये चली जा रही है। यह स्वप्न देखतेही उनकी निद्रा टूट गयी और वह जाग पड़े। उन्हें पिता के अनिष्ट की बड़ी शङ्का

हुई। उन्होंने प्रज्ञप्ति (१) नामक विद्या का ध्यान किया और ध्यान करतेही वह उपस्थित हुई। तब नरवाहनदत्त ने उससे पूछा "कहो मेरे पिता वत्सराज का वृत्तान्त क्या, है आज उनके विषय में बड़ बुरा स्वप्न देखा है इससे बड़ी शङ्का हो रही है?" महाराज की इतनी बात सुन रूपिणी वह विज्ञप्ति विद्या उनको बोली "देव! सुनो तुम्हारे पिता का जो वृत्तान्त है सो मैं सुनाती हूं। आपके पिता वत्सराज कौशाम्बी में थे कि एक दिन की बात है कि उज्जयिनी से एक दूत आया उससे महाराज को विदित हुआ कि महाराज चण्डमहासेन शान्त हो गये और उनकी धर्मपत्नी देवी अङ्गारवती उनके साथ सती हो गयीं। दूत के मुंह से इतना सुनते ही वह मूर्च्छित हो धरती पर धड़ाम से गिर पड़े। महाराज जब सचेत हुए तो अपने श्वशुर और सास को स्मरण कर विलाप करने लगे; उनके साथ में देवी वासवदत्ता भी विलपती थीं और महाराज के सहचरवर्ग भी इस दुःखद वृत्तान्त से महाराज के संग विलाप करते थे। पश्चात् धीरज धर मन्त्री लोग उन्हें समझाने लगे कि महाराज! यह संसार तो भङ्गुर है हो इसमें और कौन स्थिर हुआ है? आप महाराज चण्डमहासेन को इतना शोक क्यों कर रहे हैं देखिये आप ऐसे उनके जामाता हैं, गोपालक ऐसा पुत्र है, नरवाहनदत्त ऐसा नाती। इस प्रकार मन्त्रियोंने जब महाराज को समझाया तो वह उठे और सास ससुर को उन्होंने तिलाञ्जलि दियो। पास में बैठे उनके साले गोपालक भी पिता के शोक से विकल हो विलाप कर रहे थे सो महाराज ने बड़े स्नेह से गद्गद हो उनसे कहा "अब उठो शोक का त्याग करो, उज्जयिनी जाकर पिता के राज्य को पालन करो। दूत के मुख से मैंने सुना है कि सारी प्रजा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।" महाराज वत्सेश्वर का ऐसा वचन सुन रोकर गोपालक ने कहा—"देव! आपको तथा भगिनी को त्याग कर मैं नहीं जा सकता, पिता से रहित वह नगरी मुझसे कैसे देखी जावेगी सोपालक जो मेरा छोटा भाई है, मैं आज्ञा देता हूं कि राजा हो जावे।" इस प्रकार कहके गोपालक ने जब राज्य की अनिच्छा प्रगट कियी तब वत्सेश्वर ने सेनापति रुमण्वान् को उज्जयिनी में भेजा और भाई की सम्मति सुनवाय कनिष्ठ पालक को उज्जयिनी के राजसिंहासन पर अभिषिक्त करवाय दिया।

(१) वृत्तान्त बतानेवाली।

अब महाराज को यह सांसारिक व्यापार देखकर विषयोंसे वैराग्य हो गया सो उन्होंने यौगन्धरायणादि अपने सचिवों से यह कहा "इस सारहीन संसार के सब व्यापार नितान्त नीरस हैं। मैं बहुत राज्य कर चुका, नाना प्रकार के भोग विलास भोग चुका, जितने शत्रु रहे सो सब पराजित किये गये। विद्याधरों के साम्राज्य पद पर अधिष्ठित पुत्र को मैंने देखा। अब अवस्था बीत चली, मेरे बन्धु-वर्ग भी वृद्ध हो गये। अब बुढ़ौती हम लोगों के केश पकड़ हमें मृत्यु की ओर खींचकर ले जा रही है, जैसे बलवान् लोग डरपोक के राज्य पर आक्रमण करें वैसे ही हमारे शरीर पर अब मृत्यु का आक्रमण सन्निहित है सो अब मेरा मन यह करता है कि कालञ्जरगिरि पर जाऊं और वहां इस अशाश्वत (१) शरीर का त्याग कर शास्त्रोक्त शाश्वत (२) पद का साधन करूं।" महाराज का वैराग्य-मय वचन सुन महारानी वासवदत्ता और समस्त सचिव कुछ क्षण विचार कर एक मत होकर बोले "महाराज! जैसा आपको रुचे वैसा आप करें आपके प्रसाद से हम लोग भी परलोक में उत्तम गति प्राप्त करेंगे।"

इस प्रकार अमात्यों तथा महारानी की उक्ति सुन महाराज ने वैराग्य धारण करना निश्चय ठान लिया। अब उन्होंने यह स्थिर कर लिया कि कालञ्जर पर्वत पर जाना अतः महाराज वत्सराज ने अपने साले गोपालक को, जो कि वहीं उस समय विद्यमान थे, धुर्य (३) बना कर उनसे कहा "नरवानदत्त और तुम मेरे समान पुत्र हो सो तुम कौशाम्बी का पालन करो यह राज्य मैं तुमको देता हूं।" महाराज वत्सेश्वर का ऐसा कथन सुन गोपालक ने उत्तर दिया "देव आप लोगों की जो गति होगी सो मेरी भी होगी मैं तो यहां नहीं रह सकता।" भगिनी के वत्सल गोपालक का इतना कहना कि कृत्रिम कोप कर महाराज वत्सराज ने डांटकर गोपालक से कहा "क्यों रे अभी तू दुर्दान्त हो गया, यह तेरा कथन मुझे मिथ्या ज्ञात होता है, भला जो अपने पद से च्युत हो गया उसकी आज्ञा कौन मानता है!" महाराज की ऐसी भर्त्सना सुन राजा गोपालक नीचे शिर करके

(१) जो सदा न रहे। (२) जो सदा रहे।

(३) राज्य का भार ढोनेवाला।

रोने लगी, मन में तो उन्होंने ठान लिया था कि अवश्य वन में जाना किन्तु यह अनवसर है ऐसा विचार वह उस समय तो लौट आये।

अब महाराज वत्सेश्वर अपनी वासवदत्ता और पद्मावती दोनों महिषियों के साथ गजेन्द्र पर आरूढ़ हुए और नगर से निकले; उनके सब मन्त्री भी उनके साथ ही चलते हुए। जब महाराज कौशाम्बी से निकले कि बाल और स्त्रियों के साथ समस्त पुरवासी रोते हुए और विलाप करते हुए महाराज के पीछे दौड़े। महाराज ने उन सभों को बहुत प्रकार से समझा बुझा कर कहा कि तुम लोग कुछ शोक मत करो गोपालक तुम्हारी रक्षा करेगा, कुछ चिन्ता की बात नहीं है। वह महाराज की सान्त्वनामय वाणी सुन पुरवासी लौट आये।

इस प्रकार पुरवासियों को लौटा कर महाराज अपने परिचरवर्गादि के साथ कालञ्जरगिरि को चले। चलते २ वहां पहुंचे सो पर्वत के ऊपर चढ़े। वहां वृषध्वज को प्रणाम कर महादेव को प्रिय वीणा हाथ में लेकर बजाके दोनों महारानियों के तथा अपने यौगन्धरायणादि मन्त्रियों के साथ दण्डायमान हो धरती पर गिर पड़े। ज्योंही उनका गिरना कि आकाश से एक भास्वर (४) विमान आ उपस्थित हुआ सो महाराज अपने अनुचरवर्गों के साथ उस दिव्य विमान पर आरूढ़ हो स्वर्ग को पधार गये।

विद्या के मुंह से इतना सुनते ही "हा तात!" कहके नरवाहनदत्त मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ कालोपरान्त जब सचेत हुए तब पिता माता तथा पिता के मन्त्रियों को शोच २ विलाप करने लगे साथ में उनके मन्त्री भी थे जिनके पिता मर गये थे से वे भी विलाप करने लगे।

अब सब विद्याधराधीश तथा धनवती मिलकर श्रीनरवाहनदत्त को समझाने लगी "देव! आप तो संसार का स्वरूप भली भांति जानते हैं कि यह क्षणभङ्गुर है तब क्यों इस प्रकार विमूढ़ हुए जा रहे हैं? आप अपने अशोच्य माता पिता का इतना शोक क्यों करते हैं? वे कृतकृत्य हो गये अब उन्हें करना क्या शेष था कि उनके लिये आप इतना शोक कर रहे हैं? जगत् में शोचनीय तो ये हैं। देखिये वशिष्ठ जी भरत जी से क्या कह रहे हैं—

(४) चमकता हुआ।

चौपाई ।

"तात विचार करहु मनमाहीं । शोचु जोगु दशरथु नृप नाहीं ॥
शोचिय विप्र जो वेदविहीना । तजि निजधरम विषयलवलीना ॥
शोचिय नृपति जो नीत न जाना । जेहि न प्रजाप्रिय प्रान समाना ॥
शोचिय बयसु कृपन धनवानू । जो न अतिथि शिवभगत सुजानू ॥
शोचिय शूद्र विप्र अपमानी । मुखर मानप्रिय ज्ञान गुमानी ॥
शोचिय पुनि पतिवञ्चक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥
शोचिय वटु निज व्रत परिहरई । जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥

दोहा ।

शोचिय गृही जो मोह वस, करइ करम पथ त्याग ॥
शोचिय जती प्रपञ्चरत, विगत विवेक विराग ॥ १ ॥

चौपाई ।

बैखानस सोइ शोचइ जोगू । तप विहार जेहिं भावइ भोगू ॥
शोचिय पिशुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुरु बन्धु विरोधी ॥
सब विधि शोचिय पर अपकारी । निजतनु पोषक निरदय भारी ॥
शोचनीय सबही विधि सोई । जो न छांड़ि छल हरि जन होई ॥
शोचनीय नहिं कोशल राऊ । भुअन चारिदश प्रगट प्रभाऊ ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥
विधि हरिहर सुरपति दिशिनाथा । बरनहिं सब दशरथ गुनगाथा ॥
तीन काल त्रिभुवन जगमाहीं । भूरिभाग दशरथ सम नाहीं ॥

दोहा ।

कहहु तात केहि भांति कोउ, करइ बड़ाई तासु ॥
राम लखन तुम शत्रुहन, सरिस सुवन शुचि जासु ॥" २ ॥

सो महाराज ! आप वत्सराज का इतना शोक न कीजिये उनका पुण्य प्रताप ऐसा कि विद्याधरेन्द्रों के चक्रवर्त्ती आप पुत्र हुए । इस प्रकार उनके समझाने

पर नरवाहनदत्त आश्वस्त हुए और उठकर उन्होंने अपने माता पिता को तिल
ञ्जलि दियो।

इसके पीछे उन्होंने उस विद्या से फिर पूछा "अच्छा तो अब मेरे मामा गो
पाल कहां हैं, पिता के प्रस्थान करने पर उन्होंने क्या किया सो मुझे बतलाओ
तब वह विद्या पुनः सम्राट् से इस प्रकार कहने लगीं—'महापथगिरि (१)
पर जब वत्सराज गये तब आपके मामा गोपाल नगर के बाहिर ही रहे और महा-
राज वत्सेश्वर और अपनी भगिनी का बहुत शोक उन्होंने किया और यह निश्चय
किया कि संसार के यावत् विषय अध्रुव हैं। इतना शोच उन्होंने उज्जयिनी से अपने
भाई पालक को बुला भेजा और उन्हें कौशाम्बी का वह राज्य भी दे दिया। जब
कि छोटा भाई दोनों राज्यों पर राज्य करने लगा तब गोपालक संसार से सब
माता छोड़ तपोवन कश्यपाश्रम को चले गये। सो देव! आपके मामा गोपाल इस
समय वल्कल धारण कर मुनियों के मध्य में रह कर तपस्या कर रहे हैं।"

इस प्रकार विद्या की कही बात सुनकर सम्राट् नरवाहनदत्त के मन में यह
आया कि चल कर मामा के दर्शन करूं। सो बड़ी उत्कण्ठा से वह अपने सहचर-
वर्गों के साथ विमान पर चढ़कर असिताचल को प्रस्थानित हुए। वहां पहुंच
कर वह विद्याधरों के साथ आकाश से उतरे और आगे बढ़े तो कश्यप मुनि का
आश्रम दीख पड़ा। वह आश्रम मानों उनकी प्रतीक्षा कर रहा है और पक्षियों
का जो कलरव है सो ही मानों उनका स्वागत हो रहा है। ऋषि मुनि जो अग्नि-
होत्र कर रहे हैं उनसे जो धूम निकलते हैं सो मानों तपस्वियों को स्वर्ग की सीढ़ी
दिखा रहे हैं। बहुतेरे टीले हैं सो नागेन्द्रों के समान हैं मानों यह अपूर्व पाताल
है जहां अन्धकार का प्रभाव नहीं है।

वहां मुनियों के मध्य में बैठे उन्होंने अपने मामा गोपाल को देखा कि जटा
वल्कल धारी साक्षात् मूर्तिमान् शम के समान विराजमान हैं। गोपाल अपने
भाञ्जे महाराजाधिराज नरवाहनदत्त को देखते ही उठे और आलिङ्गन कर गोद
उठाकर आंखों से आंसुओं की धारा बहाने लगे। ठीक है स्वजन के अवलोकन
से उत्थित दुःखाग्नि भला किसे न सन्ताप देवे। उस समय उनके शोक से उस तपोवन

(१) वह पर्वत जहां उन्होंने महापथ अर्थात् स्वर्ग का मार्ग ग्रहण किया था।

पशु पक्षी भी शोक सन्तप्त हो गये। तब कश्यपादि मुनियोंने आकर उन दोनों को सात्वना दियी।

सोरठा।

एहि विधि बीत्यो वार, प्रात कह्यौ सम्राट इमि।
मामा चलि आगार, हमरे बसिये सुखन सों॥ १॥

वसन्ततिलकं वृत्तम्।

गोपालकौ तब कह्यौ सुनु वत्स एतौ,
पर्य्याप्त नाहिं तुव दर्शन जो भये हैं।
सौंपे सनेह तुमरो यदि होइ तौ ह्यां,
वर्षा बिताइय हमारहि आश्रमों में॥

दोहा।

यह नरवाहनदत्त सुनि, मातुल को आदेश॥
अपने सहचरवर्ग सह, रहे जु कश्यपदेश (१)॥ १॥

दूसरा तरङ्ग।

अब एक समय की बात है कि श्रीमान् नरवाहनदत्त अपनी सभा में विराजमान थे कि उनका सेनापति आया और इस प्रकार कहने लगा—"महाराज! मैं अपने प्रासाद पर बैठा हुआ सैनिकों की रक्षा कर रहा था कि इतने में रात के समय क्या देखता हूं कि आकाश में एक दिव्य पुरुष एक नारी को हरण कर लिये चला जा रहा है। वह स्त्री "हा आर्यपुत्र!' कहकर रो रही थी। शोभा उसकी क्या वर्णन करूं। समस्त कान्ति उसके समक्ष हार मानती थी। मैंने समझा कि उस काल का बलवान् चन्द्र मानों इस कान्ति को हरण कर लिये जा रहा है। "आः पाप! देव नरवाहनदत्त के रक्षक रहते तू पराये की स्त्री को हरण कर कहां जायगा? नरवाहनदत्त के राज्य में साठ सहस्र योजन भर में पशु पक्षी भी अधर्म नहीं कर सकते तो दूसरों की क्या बात है?" इतना कहने में अपने अनुचर के

(१) आश्रम।

साथ दौड़ा और जाकर मैंने उसे स्त्रीसहित पकड़ा और आकाश से उतराया नीचे उतरवा कर जो देखता हूं तो वह तो आपके साला, आपकी महादेवी के भाई इत्यक नामक विद्याधर हैं। यह देवी कलिङ्गसेना में मदनवेग से उत्पन्न हैं। तब मैंने पूछा कि आप इसे क्यों हरण करते हैं ? तब उन्होंने कहा, "यह मतङ्गदेव विद्याधरेन्द्र की कन्या है, अशोकमञ्जरी में उत्पन्न हुई है, नाम इसका सुरतमञ्जरी है। पहिले ही इसकी सती माता ने इसे मुझे वचन से दान कर दिया था परन्तु इसके पिता ने किसी दूसरे मानुष को दे दिया। सो आज मुझे यह मेरी भार्या मिली तब इसे जो मैं लिये जाता था तो मेरा क्या दोष है?" इतना कह के इत्यक चुप हो गये। तब मैंने सुरतमञ्जरी से पूछा—"आर्ये ! तुम्हारा विवाह किससे हुआ और इन्होंने तुम्हें क्योंकर पाया ?" इस प्रकार मेरे प्रश्नों के उत्तर में सुरतमञ्जरी बोली—"उज्जयिनी में श्रीमान् पालक नामक राजा हैं, उनके पुत्र स्तनामधन्य अवन्तिवर्द्धन हैं। उन्हीं से मेरा विवाह हुआ है। आज मैं अपने प्रासाद पर सोई थी कि यह पापी आर्यपुत्र के सोये रहने पर मुझे हर ले भागा।" सो महाराज ! उसका इतना कथन सुन मैंने उसे तथा बांधकर इत्यक को पहरे में रक्खा है। आगे महाराज अब जैसा आप उचित समझें तैसा करें।"

हरिशिख सेनापतिका इतना संशययुक्त वचन सुनकर चक्रवर्त्ती ने जाकर गोपाल को सब बात कह सुनायी। सो सुन गोपालक बोले, "वत्स ! यह मुझे ज्ञात नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि पालकपुत्र ने इससे थोड़े दिन हुए कि विवाह किया है। सो अब ऐसा करो कि कुमार को भरतरोहक मन्त्री के साथ उज्जयिनी से बुला भेजो तब निश्चय हो जावेगा कि यथार्थ क्या है।" चक्रवर्त्ती महाराज नरवाहनदत्त ने मामा का इतना कथन सुन धूमशिख नामक विद्याधर को छोटे मामा पालक के पास भेजकर उज्जयिनी से उनके पुत्र राजकुमार को तथा मन्त्री को बुला भेजा। आकर उन दोनों ने प्रणाम किया तब गोपालक सहित चक्रवर्त्ती ने उनसे वह विषय पूछा।

निशाहीन के चन्द्रमा के समान हीनप्रभ अवन्तिवर्धन, सुरतमञ्जरी, उसके पिता, इत्यक, वयुपथादि, कश्यप मुनि तथा अन्यान्य लोगों के समक्ष भरतरोहक मन्त्री इस प्रकार से कहने लगे—"देव ! सुनिये इसकी कथा मूल से आपको

सुनाता हूं। एक समय की बात है कि उज्जयिनी के प्रजावरगों ने एकत्रित हो पालक भूपति से इस प्रकार कहा 'देव! आज इस नगरी उज्जयिनी में उदक-दानाख्य उत्सव है, इसका कारण यदि आपने न सुना हो तो प्रभो! सुनिये हम आपको इस उत्सव का कारण सुनाते हैं।

पूर्व समय की बात है कि आपके पिता महाराज चण्डमहासेन ने उत्तम खड्ग और भार्य्या की प्राप्ति के अर्थ तपस्या कर भगवती चण्डी को सन्तुष्ट किया। महामाया ने उन्हें अपना खड्ग दिया और भार्य्या के विषय में यह कहा, "पुत्र! अङ्गारक नाम एक असुर हैं उसकी दुहिता अङ्गारवती अति सुन्दरी और भव्य हैं सो थोड़े ही समय में तुम उस राक्षस का बध कर उस कन्या रत्न को प्राप्त करोगे।" शङ्करी का एतादृश कथन सुन राजा उसी के ध्यान में रहने लगे।

इसी अवसर में ऐसा हुआ कि नगराधिप को कोई राक्षस रात में उठा ले जाकर खा गया। अब जो २ नगराधिप होता उसे २ ही वह राक्षस रात में उठा ले जाकर भकोस डालता। यह दशा देख महाराज चण्डसेन के मन में बड़ी चिन्ता व्यापी तो वह उस निशिचर की खोज में चले, इस प्रकार राजा रात के समय अकेले घूमते २ नगर में क्या देखते हैं कि एक पारदारिक (१) पुरुष है। राजा ने चट खड्ग से उसका शिर काट डाला इतने ही में एक राक्षस ने आकर छिन्नकण्ठ (२) उस पुरुष को ले लिया। "बस यही पुराधिपों को खा जाता है," इतना कह राजा उसके केश पकड़ उसे मारने चले कि वह राक्षस बोला—"राजन् व्यर्थ मेरा बध मत कीजिये, महाराज वह कोई दूसरा ही है जो आपके नगराधिपों को खा जाता है।" "अच्छा बतलाओ वह कौन है?" इस प्रकार राजा का प्रश्न सुन वह राक्षस फिर बोला "महाराज! अङ्गारक नामक एक राक्षस है जो पाताल में रहता है, आपके पुराधिपों को वही रात में आकर, हे परन्तप! भक्षण कर जाया करता है और हे प्रभो! वह दुष्ट हठ कर राज-कन्याओं को भी हरण करता है। उन राजकन्याओं को ले जाकर अपनी दुहिता अङ्गारवती की सहचरी बनाता है। सो उसे आप जङ्गल में भ्रमण करते पावेंगे

(१) दूसरे की स्त्री से जो रमण करे। (२) कट गया है कण्ठ जिसका।

भाग दौड़ा और जाकर मैंने उसे [illegible] पकड़ा और आकाश से उतराया। नीचे उतरवा कर जो देखता हूं तो यह तो आपके साला, आपकी महादेवी के भाई इत्यक नामक विद्याधर हैं। यह देवी कलिङ्गसेना में मदनवेग से उत्पन्न हैं। जब मैंने पूछा कि आप इसे क्यों हरण करते हैं ? तब उन्होंने कहा, "यह मतङ्गदेव विद्याधरेन्द्र की कन्या है, अशोकमञ्जरी में उत्पन्न हुई है, नाम इसका सुरतमञ्जरी है। पहिले तो इसकी सती माता ने इसे मुझे वचन से दान कर दिया था परन्तु इसके पिता ने किसी दूसरे मानुष को दे दिया। सो आज मुझे यह मेरी भार्य्या मिली तब इसे जो मैं लिये जाता था तो मेरा क्या दोष है?" इतना कह के इत्यक चुप हो गये। तब मैंने सुरतमञ्जरी से पूछा—"आर्ये! तुम्हारा विवाह किससे हुआ और इन्होंने तुम्हें क्योंकर पाया ?" इस प्रकार मेरे प्रश्नों के उत्तर में सुरतमञ्जरी बोली—"उज्जयिनी में श्रीमान् पालक नामक राजा हैं, उनके पुत्र सनामधन्य अवन्तिवर्द्धन हैं। उन्हीं से मेरा विवाह हुआ है। आज मैं अपने प्रासाद पर सोई थी कि यह पापी आर्यपुत्र के सोये रहने पर मुझे हर ले भागा।" सो महाराज! उसका इतना कथन सुन मैंने उसे तथा बांधकर इत्यक को पहरे में रक्खा है। आगे महाराज अब जैसा आप उचित समझें तैसा करें।"

हरिशिख सेनापतिका इतना संशययुक्त वचन सुनकर चक्रवर्त्ती ने जाकर गोपाल को सब बात कह सुनायी। सो सुन गोपालक बोले, "वत्स! यह मुझे ज्ञात नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि पालकपुत्र ने इससे थोड़े दिन हुए कि विवाह किया है। सो अब ऐसा करो कि कुमार को भरतरोहक मन्त्री के साथ उज्जयिनी से बुला भेजो तब निश्चय हो जावेगा कि यथार्थ क्या है।" चक्रवर्त्ती महाराज नरवाहनदत्त ने मामा का इतना कथन सुन धूमशिख नामक विद्याधर को लहुरे मामा पालक के पास भेजकर उज्जयिनी से उनके पुत्र राजकुमार को तथा मन्त्री को बुला भेजा। आकर उन दोनों ने प्रणाम किया तब गोपालक सहित चक्रवर्त्ती ने उनसे वह विषय पूछा।

निशाहीन के चन्द्रमा के समान हीनप्रभ अवन्तिवर्धन, सुरतमञ्जरी, उसके पिता, इत्यक, वयुपथादि, कश्यप मुनि तथा अन्यान्य लोगों के समक्ष भरतरोहक मन्त्री इस प्रकार से कहने लगे—"देव! सुनिये इसकी कथा मूल से आपको

सुनाता हूं। एक समय की बात है कि उज्जयिनी के प्रजावरगों ने एकत्रित हो पालक भूपति से इस प्रकार कहा 'देव! आज इस नगरी उज्जयिनी में उदक-दानाख्य उत्सव है, इसका कारण यदि आपने न सुना हो तो प्रभो! सुनिये हम आपको इस उत्सव का कारण सुनाते हैं।

पूर्व समय की बात है कि आपके पिता महाराज चण्डमहासेन ने उत्तम खड्ग और भार्य्या को प्राप्ति के अर्थ तपस्या कर भगवती चण्डी को सन्तुष्ट किया। महा-माया ने उन्हें अपना खड्ग दिया और भार्य्या के विषय में यह कहा, "पुत्र! अङ्गा-रक नाम एक असुर हैं उसकी दुहिता अङ्गारवती अति सुन्दरी और भव्य हैं सो थोड़े ही समय में तुम उस राक्षस का बध कर उस कन्या रत्न को प्राप्त करोगे।" शङ्करी का एतादृश कथन सुन राजा उसी के ध्यान में रहने लगे।

इसी अवसर में ऐसा हुआ कि नगराधिप को कोई राक्षस रात में उठा ले जाकर खा गया। अब जो २ नगराधिप होता उसे २ ही वह राक्षस रात में उठा ले जाकर भक्षण डालता। यह दशा देख महाराज चण्डसेन के मन में बड़ी चिन्ता व्यापी तो वह उस निशिचर की खोज में चले, इस प्रकार राजा रात की समय अकेले घूमते २ नगर में क्या देखते हैं कि एक पारदारिक (१) पुरुष है। राजा ने चट खड्ग से उसका शिर काट डाला इतने ही में एक राक्षस ने आ-कर छिन्नकण्ठ (२) उस पुरुष को ले लिया। 'बस यही पुराधिपों को खा जाता है," इतना कह राजा उसके केश पकड़ उसे मारने चले कि वह राक्षस बोला— "राजन् व्यर्थ मेरा बध मत कीजिये, महाराज वह कोई दूसरा ही है जो आपके नगराधिपों को खा जाता है।" "अच्छा बतलाओ वह कौन है?" इस प्रकार राजा का प्रश्न सुन वह राक्षस फिर बोला "महाराज! अङ्गारक नामक एक राक्षस है जो पाताल में रहता है, आपके पुराधिपों को वही रात में आकर, हे परन्तप! भक्षण कर जाया करता है और हे प्रभो! वह दुष्ट हठ कर राज-कन्याओं को भी हरण करता है। उन राजकन्याओं को ले जाकर अपनी दुहिता अङ्गारवती की सहचरी बनाता है। सो उसे आप जङ्गल में भ्रमण करते पावेंगे

(१) दूसरे की स्त्री से जो रमण करे। (२) कट गया है कण्ठ जिसका।

बस उसे मार कर आप कृतकार्य होइये ।" इस प्रकार उस राक्षस का कथन सुन उसे छोड़कर राजा अपने मन्दिर में चले गये ।

अब एक समय राजा आखेट करने निकले । वहां क्या देखते हैं कि एक महाकाय सूकर है, कोप से उसकी आंखें लाल २ हो रही हैं, वह वराह अञ्जनाद्रि के तुल्य, जिनमें कन्दरायें व्याप्त हों । उसे देख राजा अपने मन में विचारने लगे कि इतना बड़ा बराह कभी हो सकता है ? हो न हो वह अङ्गारक यही है, इस प्रकार विचार कर राजा ने उसपर बाण प्रहार किया । वराह बाण की कुछ भी चिन्ता न कर राजा का रथ तोड़ फोड़ धरती के एक बड़े भारी बिल में जा घुसा । राजा भी ठीक वहीं उसके पीछे पैठे, वहां जाकर क्या देखते हैं कि एक दिव्य नगर है, किन्तु शूकर नहीं दिखाई पड़ा । तहां एक बावली मिली सो राजा उसी के किनारे पर बैठ गये, उसी समय क्या देखते हैं कि सौ कन्याओं के मध्य एक कन्या साक्षात् रति मानों बैठी विराजमान है । वह कन्या अवनिप के पास आकर उनके आने का कारण पूछने लगी, उसके हृदय में प्रेम के अङ्कुर उग आये सो वह आंखों में आंसू भर कर बोली, "सुभग ! यह तुम कहां आ पड़े हो ? जो तुमने बराह देखा सो वराह नहीं प्रत्युत अङ्गारक नाम महाबली एक दैत्य है जिसका शरीर वज्रसा कठोर है । इस समय सूकर शरीर त्याग कर यह भीतर जा कर सो रहा है और जब जागेगा तब आहार के समय तुम्हारा अनिष्ट करेगा । हे सौम्य ! मैं उसकी बेटी अङ्गारवती हूं, तुम्हारे अनिष्ट की आशङ्का कर मेरे प्राण कण्ठगत हो रहे हैं ।" इस प्रकार उस वर कन्या का कथन सुन राजा का देवी की दिया वर स्मरण हुआ तब उनके मन में यह भरोसा हुआ कि कुछ चिन्ता नहीं मेरा कार्य सिद्ध हुआ । राजा उससे बोले—"यदि तुम्हारा स्नेह मेरे ऊपर है तो जो मैं कहता हूं सो करो, सो यह कि जब तुम्हारे बाप जागें तब उनके पास जाकर तुम रोने लगना । जब वह पूछें कि बेटी ! तू क्यों रोती है तो कहना "पिताजी आप तो प्रमत्त रहते हैं यदि कोई आपको मार डाले तो मेरी क्या गति होगी ।" हे मुग्धाक्षि ! इस प्रकार करने से तुम्हारा और मेरा भी कल्याण है ।" वह तो मदनमोहित थी ही सो राजा का ऐसा कथन सुन पिता के पास जाकर बैठ गयी, और जब बाप जागा तो वह रोदन करने

लगी। जब पिता ने रोने का कारण पूंछा तब उसी प्रकार कह सुनाया कि बाप जी! जब आपको कोई मार डाले तो मेरी क्या गति होगी? तब उस दैत्य ने कहा "पुत्रि! मुझ वज्राङ्गको कौन मार सकता है? हां मेरे वाम हस्त में जो मर्म (१) है उसकी रक्षा यह मेरा धनुष करता है।" उसकी यह उक्ति छिपे हुए राजा सुन रहे थे।

अब वह दैत्य उठा और स्नान करके भगवान् शङ्कर की पूजा करने लगा। इसी अवसर में राजा उसके समक्ष आ उपस्थित हुए और युद्ध के लिये ललकारने लगे। राजा ने धनुष चढ़ा लिया था और वह दैत्य मौनधारण किये शिव की पूजा में लीन था। उस दैत्य ने बांया हाथ उठाकर, क्योंकि दक्षिण कर पूजा में लग्न था, सङ्केत किया कि क्षणभर ठहर जाओ। बस अच्छा अवसर पाकर राजा ने लक्ष्य लगा यार उसी मर्म (१) पर बाण प्रहार किया कि तत्क्षण दैत्य धरती पर लोट गया।" मैं पिपासित था इस अवस्था में जिसने मेरा वध किया है वह यदि प्रतिवर्ष (आज के दिन) मुझे जल दे तृप्त न करेगा (२) तो उसके पांच मन्त्री नष्ट हो जावेंगे।" इतना कह वह अङ्गारक दैत्य सदा के लिये मौन हो गया। पश्चात् राजा उसकी कन्या अङ्गारवती को लेकर उज्जयिनी में चले आये।

इतनी कथा सुनाय प्रजावर्ग महाराज पालक से कहने लगे कि देव इसके उपरान्त आपके पिता चण्डमहासेन नरपति देवी अङ्गारवती से विवाह कर सुख से रहने लगे किन्तु प्रतिवर्ष अङ्गारक के निमित जलदान कराते थे। यह एक ऐसा उत्सव ठहराया गया कि जिसे सब कोई मानते हैं और आज के दिन जल-दान करते हैं; सो देव! वही जलदानोत्सव आज है अतः आप स्वपितृकृत उस उत्सव का सम्पादन कीजिये।"

इतनी कथा सुनाय भरतरोहक मन्त्री सभासदों से कहने लगा कि महाराज पालक ने प्रजावर्ग का एतादृश कथन सुन नगर भर में जलदान का उत्सव मन-वाया। उस दिन बड़े समारोह के साथ जलदानोत्सव लोग मनाने लगे। सब लोग उत्सव में मग्न थे, महाकोलाहल मच रहा था कि इतने में बन्धन तोड़ा कर

(१) मर्म वह स्थल है जहां चोट लगे तो प्राण निकल जावें; घाव।
(२) जल न देगा, तर्पण न करेगा।

महागजेन्द्र उन्मत्त होकर भागा। आंकुस का प्रभाव उसके ऊपर कुछ भी न चला, महावत विकल हो इधर उधर भाग गये। नगर के भीतर दौड़ते फांदते उस गज ने क्षणभर में बहुतों को यमलोक का पथिक बना डाला। बड़ी घबड़ाहट मच गयी, ऐसा कोई भी हाथीवान न ठहरा जो उस हस्ती को वश में कर लेता यहां लों कि महायाच भी (१) भाग गये। जब कि बड़े २ हाथीवानों की यह दशा थी तो पुरवासियों का क्या साध्य कि उसे पकड़ सकें। इतने में घूमता घामता वह हाथी चण्डाल के बाड़े में पहुंचा उसी समय वहां से एक चण्डालकन्या निकली। "इसने अपने मुख के सौंदर्य से मेरे शत्रु चन्द्र को जीत लिया," ऐसा विचार सन्तुष्ट हो कमलश्री मानों उसके चरणों में आ लिपटी थी। ऐसी तो उसके चरणों की शोभा थी। समस्त भावों से चित्त हटा कर इसी ओर स्थिर चित्त से टकटकी लगा के सब लोग निश्चल हो गये मानों समस्त जीवलोक की विश्रामदायिनी निद्रादेवी है। साम्हने जो वह हाथी पहुंचा तो यह वर कन्या अपने हाथों से उसकी सूंड़ पकड़ उसे थपथपाने लगी मानों उसपर कटाक्ष प्रहार करने लगी। उस कोमलाङ्गी के करस्पर्श से वह हाथी ऐसा मोहित हो गया कि शिर नीचे कर खड़ा हो गया उसके दृष्टिवाण से ऐसा विह्वल हो गया कि उसी की ओर टकटकी लगाये देखता रहा और एक डेग भी आगे न बढ़ा। उस सुन्दरी ने अपनी ओढ़नी उतार उस गजेन्द्र के दोनों दांतों से बांध एक झूला बनाया और तब वह उचक कर उस हिंडोले पर बैठ झूलने लगी। वहां उस वर कन्या को घाम लगता था इस कारण वह वारणेन्द्र उसे लेकर वृक्ष की छाया में चला गया। यह अद्भुत चरित्र देखकर पुरवासी आपस में कहने लगे—"अरे यह तो सब से श्रेष्ठ कोई दिव्य कन्या प्रतीत होती है देखो न इसका रूप कैसा है कि जिसके प्रभाव से पशु भी मोहित हो जाते हैं।"

इतने में यह वृत्तान्त कुमार अवन्तिवर्धन को ज्ञात हुआ सो वह यह कौतुक देखने के लिये निकले तो वहां आकर क्या देखते हैं कि वह वरकन्या हाथी के दांतों के बीच झूल रही है। उसको देखते ही राजकुमार का चित्तरूपी मृग दौड़ा और कामदेव की फन्दा रूपिणी उस वरकन्या में जा फंसा। राजकुमार को

(१) प्रधान हस्तिपालक।

देखकर उसका चित्त भी चलायमान हो गया सो उसने झूले पर से उतर कर ओढ़नी खोल लियौ। इतने में महावतने आकर हाथी को पकड़ लिया और वह राजकुमार की ओर लज्जासहित तिरछी चितवन से ताकती अपने घर चली गयी। जब गज का उपद्रव शान्त हुआ और सब लोग सुस्थिर हुए तब राजकुमार अवन्तिवर्धन भी उदास मन से अपने मन्दिर को चले गये।

राजकुमार का मन उस कन्या के विना बहुत सन्तप्त हो गया, उनको खान पान कुछ भी न रुचता, जलदानोत्सव की बात भूल गयी अब तो उसी की चिन्ता इनके मन में समा गयी सो वह अपने मित्रों से पूछने लगे "भाइयो आप लोग जानते हैं कि वह किसकी कन्या है और इसका नाम क्या हैं।" उनका ऐसा पूछना सुन सब सुहृद बोले, चण्डालों के बाड़े में उत्पलहस्त नामक एक मातङ्ग है उसी की यह कन्या सुरतमञ्जरी नाम्नी है। उसका यह जो नेत्रों का सुफल करनेवाला मनोहर शरीर है चित्रकी पुतली के समान उपभोग के योग नहीं है। सङ्गियों की ऐसी युक्ति सुन राजकुमार ने उनसे कहा "हे मित्रो वह मातङ्ग की सुता कदापि नहीं हो सकती वह तो कोई दिव्य कन्या है मुझे यह निश्चय है, भला चण्डाल की कन्याओं की आकृति ऐसी कब हो सकती है। यदि वह मेरी भार्य्या न हुई तो मेरे इस जीवन से क्या!" इस प्रकार कहते २ वह राजकुमार अति विकल हो गये, उनका उस ओर से लौटाना कठिन हो गया, राजपुत्र उसके वियोग में अत्यन्त सन्तप्त हो गये।

राजकुमार की ऐसी दशा सुन महारानी अवन्तिवती और महाराज पालक अति व्याकुल हुए। महारानी ने महाराज से कहा कि हमारा राजकुमार राजवंश में उत्पन्न होकर यह क्यों अन्त्यजा की इच्छा करता है! महिषी की ऐसी उक्ति सुन महाराज पालक बोले "यदि हमारे पुत्र का चित्त उसपर इस प्रकार दौड़ा है तो निश्चय यह मातङ्गी नहीं है कोई दूसरी ही कन्या है क्योंकि सज्जनों का मन ही हानिलाभ कार्य्याकार्य बतला देता है, इस विषय में एक कथा है, सुनो देवि! मैं तुम्हें सुनाता हूं।

पूर्वकाल की बात है कि सुप्रतिष्ठित नामक नगर में प्रसेनजित् नामक एक राजा राज्य करते थे उनकी कन्या कुरङ्गी अति रूपवती थी। एक समय की बात

है कि वह राज कन्या अपने उद्यान से निकली कि उधर से बन्धन से छूटा एक गजेन्द्र आ पहुंचा, आते ही वहनसहित (१) राजदुलारी को उस गजेन्द्र ने अपने दांतों पर उठा लिया। उस समय महाकोलाहल मच गया। राजकुमारी के साथ के लोग छितर बितर हो गये और महा विलाप मच गया, उसी समय खड्ग खींचे कोई चण्डालकुमार वहां आ पहुंचा। खड्ग प्रहार से उसने उस गजेन्द्र की सूंड़ उड़ा दियी और गजराज को मार डाला। इस प्रकार उस वीर ने राजकन्या को छुड़ा दिया। अब राजकुमारी के परिजन सब आ मिले और वह उनके साथ अपने मन्दिर को चली गयी। चली तो गयी पर उसके वीर्य और सौन्दर्य से उनका हृदय आकृष्ट था।

राजदुलारी का मन अब उसी चाण्डालयुवक में लग गया, अब उसी का ध्यान बना रहता! उसने प्रण कर लिया कि जिसने मुझे हाथी से बचाया अब वही मेरा भर्त्ता होगा; यदि ऐसा न हो सका तो उसी के हेत मेरे प्राण जावेंगे। इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वह राजकुमारी उसके विरह में विकल रहने लगीं।

उधर उस चण्डाल कुमार की भी दशा वैसी ही थी, राजकुमारी ने उसके मन में घर कर लिया था, किसी प्रकार वह धीरे २ अपने घर गया। अब उसके ध्यान में राजकुमारी ही विद्यमान रहतीं। उसकी दशा बहुत बिगड़ चली। वह सोचने लगा "कहां मैं अन्त्यज और कहां वह राजकन्या। भला कौवे और राजहंसी का समागम कब सम्भव है! जो सुनेगा वही हँसेगा अतः मैं किसी से कह भी नहीं सकता और न अब मैं उसकी उपेक्षा ही कर सकता हूं मैं क्योंकर राजकुमारी को अपने मन से निकाल देऊं। हा! महा सङ्कट आ उपस्थित हुआ है अब देखता हूं मरण के अतिरिक्त मेरा और कुछ साध्य नहीं है।" इस प्रकार चिन्ता कर वह रात के समय श्मशान पर चला गया, वहां स्नान कर चिता लगा उसपर अग्निदेव को प्रज्वलित कर इस प्रकार विनय करने लगा। "हे देव पावक! आप विश्वात्मा हैं, मैं अपना शरीर आपमें हवन करता हूं इस जन्म की बात तो गयी पर यदि दूसरा जन्म पाऊं तो वही राजकुमारी मेरी भार्य्या होवे।" इस प्रकार निवेदन कर ज्योंही वह चिता में कूदा चाहता था कि अग्निदेव प्रत्यक्ष

(१) वहन = सवारी।

होकर उसे रोक कर कहने लगी "साहस मत करो, वह तुम्हार ही भार्य्या होगी, तुम पूर्व के चण्डाल नहीं हो, जो तुम हो सो सुनो मैं तुम्हें बतलाता हूं।"

"यहां इस नगर में कपिल शर्म्मा नामक एक द्विजोत्तम रहता, है उसकी अग्न्यागार में मैं प्रत्यक्ष साकार रहता हूं। एक समय की बात है कि उस ब्राह्मण की कन्या मेरे पास आयी, उसके रूप पर मैं लुभाय गया सो मैंने उसे भार्य्या बना लिया उसको मैंने वरदान दे दिया कि कोई दोष तुझपर न लग सकेगा। बस उसी समय उसी में मेरे वीर्य्य से तुम उत्पन्न हुए और वह लज्जा के कारण ले जाकर तुम्हें तत्क्षण यहीं के मुंह पर रख आयी। चण्डाल तुम्हें पाकर अपने घर ले गये और तुम बकरी के दूध से पाले गये। सो इस प्रकार तुम ब्राह्मणी के गर्भ से मेरे पुत्र हो। तुम अपवित्र नहीं हो क्योंकि मेरे तेज से उत्पन्न हुए हो सो तुम राजकन्या कुरङ्गी को भार्य्या पाओगे।"

इतना कह अग्निदेव अन्तर्धान हो गये। पश्चात् मातङ्ग का पालित बेटा इस वचन पर विश्वास कर अपने घर चला गया। उधर अग्निदेव ने राजा प्रसेनजित् को स्वप्न दिया सो उन्होंने पता लगा कर उस पावकपुत्र को अपनी वह कन्या व्याह दियी।

इतनी कथा सुनाय महाराज पालक महारानी अवन्तिवती देवी से कहने लगे—"देवि! सो सुना न तुमने, दिव्य लोग इस प्रकार पृथ्वी में छिपे रहते हैं। बस इसी लिये मैं बलपूर्वक कहता हूं कि यह सुरतमञ्जरी कोई दिव्यकन्या है अन्त्यजा नहीं हो सकती। यह अवश्य कोई रत्न है जो यह मेरे पुत्र के मन में आ बसी है, जन्मान्तर की प्रिया होगी जभी न चक्षु के द्वारा हृदय में व्याप गयी है।

इतनी कथा सुनाय भरतरोहक मन्त्री कहने लगे कि महाराज! इस प्रकार जब महाराज पालक महारानी से कह रहे थे कि मैंने उन्हें कैवर्त्त की यह कथा सुनायी।

राजगृह में, पूर्वकाल की बात है कि मलयसिंह नामक राजा हुए। उनकी पुत्री मायावती, तिसका रूप ऐसा कि जिसकी जोड़ी की कोई सुन्दरी नहीं। एक समय की बात है कि वह अपने मधु उद्यान में खेल रही थी कि उसी समय एक कैवर्त्तकुमार (१) अति सुन्दर युवा वहां आ पहुंचा, नाम उसका सुप्रहार।

(१) केवट, मल्लाह।

सो वह सुप्रहार उसे देखते ही काम के वश में हो गया । ठीक है भवितव्यता साध्यासाध्य का विचार नहीं करती। स्मरशरविद्ध वह सुप्रहार किसी प्रकार अपने घर गया, अब सब कामों से वह निवृत्त हो गया, कौन लावे मछली और कौन करे काम, यहां तो राजकुमारी का नाम, उसी का ध्यान। कैवर्तकुमार का भोजन भी छूट गया। माता रचितिका अपने पुत्र की एतादृशी दशा देखकर अतिचिन्तित हुई और बड़े प्रेम से उससे बार २ पूछने लगी कि बेटा तुझे यह क्या हो गया है ? भला बता तो सही कि तुझे यह क्या रोग हो गया है ? माता के बड़े हठ से उसने अपना अभिप्राय उससे कह दिया, तब वह अपने पुत्र से इस प्रकार कहने लगी, "पुत्र ! तू विषाद त्याग दे भोजन कर मैं अपनी युक्ति से तेरा यह अभीष्ट सिद्ध कर देऊंगी।" इस प्रकार माता के आश्वासन देने पर वह स्वस्थ हुआ और उसे भरोसा आया सो उठकर उसने भोजन किया।

अब वह रचितिका उत्तमोत्तम मत्स्यों को लेकर राजसुता के घर गयी। वहां पहुंच कर उसने चेटियों द्वारा राजकुमारी के पास यह सन्देशा भेजा कि मैं आपकी सेवा किया चाहती हूं । अस्तु, राजकुमारी के समक्ष पहुंच कर उसने मत्स्य का उपहार दिया । इस प्रकार प्रति दिन वह ले जाकर मत्स्य दे दिया करती और राजकुमारी की सेवा में ऐसी तत्पर रहती कि नृपात्मजा उसके वचन की आकाङ्क्षिणी हो गयीं। राजकुमारी अति प्रसन्न हो एक दिन उसको बोलीं कि तू मुझसे क्या चाहती है ? कह, कैसाही दुष्कर वह कार्य क्यों न होवे मैं अवश्य करूंगी। यह प्रश्न सुन वह चतुर रचितिका धीवरी अभय दान ले कर एकान्त में राजकुमारी से बोली "देवि ! उस दिन उद्यान में आपको देखकर मेरा पुत्र बड़ा विकल हुआ है, अब आपके विना उसे क्षणभर चैन नहीं है । जब देखा कि वह मरा चाहता है तो उसे आशा देकर प्राण त्याग से बचाया । यदि आपकी कृपा मुझपर है तो मेरे पुत्र को स्पर्श से जीवनदान दीजिये।" उस कैवर्तयोषित् से इस प्रकार कही गयीं नृपात्मजा लज्जा और अनुराग के कारण बड़े शोच में पड़ गयीं, कुछ काल सोच विचार कर बोलीं, "अच्छा तो रात के समय गुप्त रूप से अपने पुत्र को मेरे मन्दिर में ले आना।" इतना सुनते ही वह अन्त्यजा अति

प्रहृष्ट हुई और अपने पुत्र के पास तत्क्षण पहुंची। रात के समय अपने पुत्र को भली भांति सजा ओजाकर बड़े गुप्रभाव से राजकन्या के मन्दिर में ले गयी। चिरोत्सुक सुप्रहार को आया देख राजकुमारी प्रीतिपूर्वक उठीं और हाथ पकड़ कर उन्होंने उसे ले जाकर पर्यङ्क पर बैठाया। विरहाग्नि से जिसका शरीर जर्जरित हो गया ऐसे उस सुप्रहार को बहुत प्रकार से आश्वासन दिया और श्रीखण्ड और शिशिर के समान शीतल कर उसके शरीर पर फेरा। इस प्रकार राजकुमारी के करस्पर्श से मानों उस कैवर्तकुमार पर अमृतस्राव हुआ सो वह अपने को कृतार्थ मान उस पर्यङ्क पर लेट गया और लेटते ही निद्रादेवी के वश में हो गया। जब वह सो गया तब राजकन्या, जिसने कि अपनी भक्ति से कैवर्त के पुत्र को प्रमुदित कर दिया था और अपना धर्म बचा लिया था, अन्यत्र जाकर सो रही।

अब राजकुमारी का करस्पर्श न रहा इस कारण उस अन्त्यजपुत्र की निद्रा जाती रही सो उठकर क्या देखता है कि हाथ में आयी हुई प्राणवल्लभा हेराय गयी। अत्यन्त दरिद्र की निधि जैसे नष्ट हो जाय और वह विषादसागर में डूब जाय, जहां से उबरना अति दुष्कर है, उसी प्रकार यह सुप्रहार भी अति विषण्ण हुआ, इसका वियोगजन्य विषाद ऐसा बढ़ा कि बिचारे के प्राण फट से निकल गये। राजकुमारी को जब यह विदित हुआ कि मेरे ही कारण उसके प्राण गये हैं तो वह अपने को धिक्कारने लगी कि हा! मैं ऐसी नृशंसिनी हुई कि मेरे कारण उसके जीवन का अन्त हो गया। हा धिक्! अस्तु, इस प्रकार अपने को धिक्कार कर राजकुमारी ने प्रातःकाल उसके साथ सती हो जाने का उपक्रम किया।

होते २ यह बात महाराज मलयसिंह के कानों में पहुंची सो वह अपनी कन्या के समीप चले आये और उन्हें समझाने लगे पर वहां ऐसे वैसे समझाने का प्रभाव क्या हो सकता है वहां तो विषय ही दूसरा था। जब महीपति ने देखा कि अब कुछ नहीं हो सकता तब वह आचमन कर इस प्रकार कहने लगे "हे लोकपालो! यदि मैं देवदेव त्रिलोचन का भक्त सच मुच हूं तो इस समय जो करना उचित हो सो मुझे बतलाओ।" इस प्रकार जब राजा ने अनुनय किया तब आकाशवाणी हुई "राजन्! यह आपकी कन्या इस अन्त्यज की पूर्व भार्या है, पूर्वकाल में नागरस्थल नामक ग्राम में महीधर का पुत्र बलधर नामक एक

बड़ा गुणी ब्राह्मण था। उसके पिता का जब देहान्त हो गया तब उसके गोतियों ने उसका सब धन लूट लिया इससे विरक्त होकर वह अपनी भार्य्या के साथ गङ्गा किनारे चला गया। वहां गङ्गातट पर निराहार रह कर उसने शरीर त्याग का विचार किया था। वहां जब वह बैठा था, तो क्या देखता है कि मछुए मछली खा रहे हैं। वह क्षुधित तो था ही सो उसका भी मन चल गया उसी समय इस के प्राण निकल गये। उसकी भार्य्या का मन चलायमान नहीं हुआ था और वह तपश्चर्य्या में उसी प्रकार दृढ़ बनी रही; पति का इस प्रकार निधन देखकर वह भी वहीं गङ्गातट पर सती हो गयी। बस सङ्कल्प दोष से वह ब्राह्मण बलधर इस जन्म में कैवर्त के घर में जन्मा और उसकी भार्य्या सुतपा यह आपकी कन्या हुई है। राजन् ! इस कैवर्तकुमार की आयु व्यतीत हो गयी है इसी से यह मर गया ! आप की कन्या अपने इस पूर्व भर्त्ता को अपना आधा आयुष्य देकर जिला लेवे। इसके तप के प्रभाव से, जो कि तीर्थ में सञ्चित हुआ, यह पवित्र हो गया अब आपका जामाता हो कर राजा होवेगा।"

दिव्य वाणी की ऐसी उक्ति सुन राजकुमारी ने तुरन्त अपना अर्धं आयुष प्रदान किया और वह सुप्रहार जी उठ बैठा। उसी समय महाराज मलयसिंह ने मायावती का विवाह उसके साथ कर दिया और यौतुक में बहुत से हाथी, घोड़े भूमि और रत्न दिये जिससे वह सुप्रहार भी एक राजा हो गया और अब वह मायावती को भार्य्या पाकर कृतार्थ हो सुखपूर्वक रहने लगा।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री मरुतरोहक कहने लगे कि देव। शरीरधारियों का ऐसा ही पूर्वजन्म का सम्बन्ध होता है। सुनिये अब चोर की कथा भी आपको सुनाता हूं।

अयोध्या में राजा वीरबाहु होते भये जो कि अपनी प्रजा को पुत्रवत् मान कर पालते थे। किसी समय पुरवासियों ने राजा के पास जाकर निवेदन किया कि प्रभो ! प्रति रात में चोर आकर हम लोगों का धन धान्य चुरा ले जाते हैं। हम लोग जागते भी रहते हैं तौभी उन्हें नहीं देख सकते। प्रजावर्ग का ऐसा कथन सुन राजा ने चारों को रात में नियुक्त कर दिया पर उन चारों से भी कुछ काम न चला और चोरी पहिले ही सी होती रही। तब तो राजा बड़े ही चिन्तित

हुए और वह स्वयं उसके अनुसन्धान के लिये राजभवन से निकले। अकेले हाथ में खड्ग लेकर चारों ओर घूमने लगे तो क्या देखते हैं कि प्राकार (१) पर एक पुरुष भ्रमण कर रहा है । वह पुरुष भय के कारण बहुत शीघ्र चल रहा था, कौए के नेत्र की समान उसके नेत्र चञ्चल थे, बार बार सिंह के समान कन्धा उठा २ कर देखता जाता था हाथ में उसके नङ्गी तलवार थी जिसकी चमक ऐसी प्रतीत होती थी मानों तारा रत्न के अपहरण करने को रज्जु फेंकी हो।

उसे देख राजा अपने मन में विचार करने लगे बस निश्चय यही चोर है जो मेरी नगरी को लूटता है यह अकेला ही ऐसा काम करता है। इतना सोच कर चतुर राजा ने पास में आये उस चोर से और उस चोर ने डर कर राजा से पूछा कि आप कौन हैं ? राजा, जो कि प्रजा के इस व्यसन से पीड़ित थे बोले "मैं तो एक साहसी चोर हूं, अब आप बतलाइये कि आप कौन हैं ?" चोर बोला, "मैं एक चर तस्कर हूं, मेरे बहुत साधन हैं, मेरे घर चलिये, जितनी इच्छा होगी मैं आपको धन देऊंगा।" इसका ऐसा कथन सुन राजा "बहुत अच्छा" कहकर उसके साथ चले । चलते २ घोर जङ्गल में पहुंचे तहां पृथ्वी के भीतर सुरङ्ग में उसका भवन बना था; जहां अति सुन्दर २ रमणियां विराजमान हैं, बहुत से रत्नों से जो जगमगा रहा है, सदा नवीन उपभोग जहां विद्यमान हैं मानों नाग-लोक हो। तस्कर तो भीतरी घर में गया और राजा बाहिरी स्थान में खड़े रहे उस समय एक दासी को महीपति पर कृपा आयी सो उसने उनसे कहा "अरे तुम यहां कहां मृत्यु के मुख में आ पड़े हो यह एक चर बड़ा विश्वासघातक है, भेद खुल जाने के भय से यह तुम्हें मार डालेगा सो झटपट तुम यहां से निकल भागो।" उस दासी की इतनी बात सुन राजा वहां से निकले और झटपट अपने राजमन्दिर पर पहुंचे । सेनापति को बुलवाय सेना सजाय राजा फिर उसके वासस्थान पर पहुंचे और उसका घर घेर लिया गया। बड़े २ शूर भीतर भेजे गये, अन्ततोगत्वा उस चोर के सब धन छीन लिये गये और राजा उसे बन्धवा कर ले गये। प्रातःकाल उस चोर का विचार हुआ और उसको प्राणदण्ड की आज्ञा हुई। जब कि बधिक लोग उसे बजार में से होते हुए बध्यभूमि को लिये जा रहे

(१) शहरपनाह।

थे कि एक वणिक्सुता की दृष्टि उसपर पड़ी सो देखते ही उसपर मुग्ध हो गयी और अपने पिता से बोली "पिता जी ये बधिक लोग ढिंढोरा बजाते जिस चोर को बध्यभूमि में लिये जा रहे हैं यदि वह मेरा पति न हुआ तो मुझे मरी ही समझिये ! बनिये ने उसके बचा लेने की बड़ी चेष्टा कियी पर वह कृतार्थ न हुआ तब वह राजा के पास गया और हाथ जोड़ कर बोला "महाराज एक करोड़ रुपये ले लिये जावें और वह चोर छोड़ दिया जाय।" राजा इस अभ्यर्थना के कारण उस बनिये पर बड़े ही रुष्ट हुए। अस्तु फल यह हुआ कि वह चोर छोड़ा न जाकर झटपट सूली पर चढ़ा दिया गया । वणिक्सुता वामदत्ता उसे पति वर चुकी थी सो वह उठी और उस चोर का शव लेकर अनुराग के मारे अग्नि में जल कर भस्म हो गयी।" सो देव ! समस्त प्राणी इस प्रकार पूर्व जन्म के सम्बन्ध से परवश हैं। न जानें क्या हो जाय और कौन किसका वारण कर देवे।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री राजा पालक से कहने लगे कि देव ! इससे आपके पुत्र से अवन्तिवर्धन की कन्या सुरतमञ्जरी का अवश्य कुछ पूर्वजन्म का सम्बन्ध है नहीं तो उत्तम कुल में उत्पन्न राजपुत्र का उस मातङ्गी में कैसा इस प्रकार प्रेम लग गया। सो अब उसके पिता उत्पलहस्त मातङ्ग के पास दूत भजकर उसकी पुत्री मांगी जाय देखें वह क्या कहता है।

इस प्रकार भरतरोहक मन्त्री सभा के बीच में राजा नरवाहनदत्त को कथा सुनाय पुनः कहने लगे कि देव ! जब मैंने इस प्रकार महाराज पालक को समझाया तो उन्होंने उस कन्या के मांगने के लिये उत्पलहस्त के निकट दूतों को भेजा। दूतों की याच्ञा सुनकर मातङ्ग ने उत्तर दिया कि यह तो मेरा अभीष्ट ही है किन्तु मेरी प्रतिज्ञा यह है कि जो कोई मेरे घर में मेरे नगरनिवासी अठारह सहस्र ब्राह्मणों को भोजन करा देवे उसी को मैं अपनी कन्या सुरतमञ्जरी देऊंगा। मातङ्ग का एतादृश कथन सुन दूत वहां से लौटे और महाराज पालक की सभा में आ विराजे। आकर उन्होंने महाराज पालक से उत्पलहस्त मातङ्ग का सन्देशा सुना दिया।

अब दूतों के मुख से यह सन्देशा सुन महाराज पालक यह कारण जान नगर के अठारह सहस्र ब्राह्मणों को बुला कर समस्त वृत्तान्त कह गये पश्चात् उन्होंने

उन ब्राह्मणों से यह कहा कि अब आप लोग उत्पलहस्त मातङ्ग के घर भोजन करिये और "नाहीं" मत कीजिये।

महाराज पालक का ऐसा कथन सुन ब्राह्मण बड़े सोंच में पड़ गये कि हाय! अब क्या किया जाय चाण्डाल का अन्न क्योंकर खाया जाय ! बहुत कुछ सोचा विचारा पर कुछ भी उपाय न सूझा तब वे द्विजवर महाकाल (१) की शरण में जाकर तपस्या करने लगे। (२) अब रात्री के समय स्वप्न में भगवान् शङ्कर ने उन ब्राह्मणों को दर्शन देकर कहा, "हे ब्राह्मणो ! तुम लोग कुछ भी शङ्का मत करो, उत्पलहस्त के घर जाकर अन्न भक्षण करो, यह उत्पलहस्त अपने कुटुम्ब सहित गर्न्धर्व हैं चण्डाल नहीं है।" इस प्रकार स्वप्न में महाप्रभु शम्भु की आज्ञा पाय सब ब्राह्मण महाराज पालक के यहां आये और स्वप्न का सारा वृत्तान्त सुना गये, पश्चात् कहने लगे "महाराज ! यदि चाण्डाल के बाड़े से बाहिर उत्पलहस्त शुद्ध अन्न पकावे तो हम लोग भोजन करेंगे।"

ब्राह्मणों का ऐसा कथन सुन महाराज बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय कारीगरों को बुलवाया और उत्पलहस्त के लिये एक भवन बनाने की आज्ञा दियी। चलो उत्पलहस्त का यह विशाल भवन बनकर प्रस्तुत हो गया। अब ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया गया और उत्तमोत्तम पक्वान्न बनाये गये। तहां उत्पलहस्त स्नानकर शुद्ध वस्त्र पहिन हाथ जोड़ साम्हने खड़ा हुआ और अठारह सहस्र अग्रजन्माओं ने उसके घर में भोजन किया।

अब जब सब ब्राह्मण भोजन कर २ अपने २ घर गये तब उत्पलहस्त राजा पालक के समीप जाकर प्रणाम कर अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाने लगा:—

महाराज ! विद्याधरों के अधीश्वर गौरीमुण्ड नामक एक विद्याधर थे, मैं उन्हीं का सेवक था, नाम मेरा मतङ्गसेन था। जब यह मेरी कन्या सुरतमञ्जरी जन्मी थी तब गौरीमुण्ड चुप चाप एक दिन मेरे पास आये और कहने लगे "वत्सेश्वर के पुत्र जो नरवाहनदत्त हैं उनके विषय में देवताओं का कथन है कि वह हम विद्याधरों के चक्रवर्त्ती होवेंगे। सो वह मेरे लिये कष्ट के स्वरूप हैं सो जबलों

(१) उज्जयिनी में जो शिवलिङ्ग है सो महाकाल के नाम से प्रसिद्ध है।
(२) अनशन का धरना देकर बैठे यह तात्पर्य है।

वह चक्रवर्त्ती पद पर आरूढ़ नहीं हो जाते उतने अवसर में तुम यह करो कि जाकर झटपट उनका पतन कर देओ।" उस पापिष्ठ का इतना कहना सुन मैं उस कार्य के साधनार्थ आकाश में गया तो वहां क्या देखता हूं कि साक्षात् भगवान् शङ्कर सामने विराजमान हैं। मुझे देखते ही महेश्वर ने हुङ्कार कर शाप दिया कि ऐ दुष्ट तू महात्मा का अपकार करने चला हैं तो अच्छा इसी देह से अपनी भार्य्या और पुत्री के साथ जाकर उज्जयिनी में चण्डालों के बीच गिर। जब कोई आकर तेरे घर में नगरनिवासी अठारह सहस्र ब्राह्मणों को तेरी कन्या के शुल्क में, भोजन करावेगा तो उस शुल्क देनेवाले को तू अपनी कन्या दे दीजियो, इतना कहकर भगवान् शम्भु अन्तर्धान हो गये और तत्क्षण में वहां से गिरा और यहां आय अन्त्यजों के मध्य उत्पलहस्त हुआ, जो हो पर उनसे मेरा मेल नहीं हुआ है। आज आपके पुत्र के प्रसाद से वह पाप शान्त हो गया सो अब मैं अपनी कन्या सुरतमञ्जरी को उनके लिये देता हूं। महाराज! अब मैं अतने विद्याधर पद को जाता हूं वहां चक्रवर्त्ती नरवाहनदत्त की सेवा में नियुक्त होऊंगा।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री भरतरोहक कहने लगे कि देव! इस प्रकार निवेदन कर मतङ्गदेव अपनी कन्या सुरतमञ्जरी को देकर भार्य्यासहित आकाश में उड़ कर आपके चरणों के पास चले गये। राजा पलक यह वृत्तान्त सुन अति प्रहृष्ट हुए और उन्होंने बड़े उत्साह के साथ अपने पुत्र का विवाह उस सुरतमञ्जरी से करा लिया। राजकुमार अवन्तिवर्द्धन भी उस प्रकार विद्याधरी को पत्नी पाकर मनोरथ पूर्ण हो जाने से कृतकृत्य हो आनन्द से रहने लगे।

एक समय की बात है कि राजकुमार उसके सङ्ग प्रासाद पर सोये थे, प्रातःकाल जो जागे तो क्या देखते हैं कि प्रिया नहीं है, इधर उधर उसे बहुत ढूंढ़ा पर कहीं न मिली तब तो राजपुत्र अत्यन्त विकल हो रोने और सन्ताप करने लगे। राजकुमार की यह विपत्ति सुन महाराज पालक भी वहां आये वह भी क्या कर सकते हैं, महा विह्वल हो गये। हम सब लोग वहां बटुर आये और आपस में विचार होने लगा कि यह नगरी तो भली भांति सुरक्षित है यहां कोई दूसरा (शत्रु) आ हो नहीं सकता हां आकाशचारी की बात निराली है सो हो न हो कोई पापिष्ट आकाश चारी उसे हर ले गया। इस प्रकार जब हम

आपस में सङ्कल्प विकल्प कर रहे थे कि इसी अवसर में आपका दूत धूमशिख आकाश से उतरा सो वही कुमार अवन्तिवर्धन को यहां लाया। मैं इनका वृत्तान्त कह अब महाराज पालक के पास से यहां खोजने आया हूं। सो यहां देखता हूं कि सुरतमञ्जरी अपने पिता के पास बैठी है सो देव! इसका इस प्रकार का वृत्तान्त है, इसके आगे आप जानते ही हैं।

छन्द।

इमि भरतरोहक, सचिव पालक नृपति कर, कहि चुप रह्यो।
सब सभासद मातङ्गसन नरवहनदत्त समुहैं कह्यो ॥
कहु मतङ्गदेव हयो किसे कन्या सुरतमञ्जरि सही ॥
दीन्हीं अवन्तीवर्धनहिं यह बात तिन सच सच कही ॥ १ ॥

दोहा।

तब तिन पूछ्यो इत्यकहिं कह क्यों हरता याहि ॥
माता याकी कहि हती दैहौं तोहिं बिवाहि ॥ १ ॥
पिता रहत माता कहा देइ सकत है दान ॥
तब हूं या वचदान में को साखी परमान ॥ २ ॥
सो यह नारि पराइ है पापी तू का कौन ॥
सकल सभासद एकमत न्याय यहै करि दीन ॥ ३ ॥

बरवै।

सुनि चुप साध्यौ इत्यक उत्तरहीन ॥
तब नरवाहनदत्त यह आज्ञा दीन ॥ १ ॥
या कहँ वन्दीगृह मैं झट लै जाहु ॥
यहि दुर्विनयी को भल दण्ड दियाहु ॥ २ ॥

वसन्ततिलकम्।

याकोऽपराध (१) प्रथमै यह तो क्षमो जू।

(१) याको+अपराध।

सालो तुम्हार, सुतहै स्मरवेग (२) को यह ॥
यह प्रार्थना तपसि कश्यप आदिकी सुन ।
राजा तबै जु तिहिं भर्त्सि छुड़ाय दीन्हों ॥ १ ॥

सोरठा।

निज मातुल को पूत, श्रीअवन्तिवर्धनहिं तब ॥
करिकै पतीजूत (३) सचिव संग सम्मानिकै ॥ १ ॥
वायूपथ के हाथ, तिसुपुर में पहुंचाय हू ॥
चक्रवर्त्ति शुभगाथ, (४) श्रीनरवाहनदत्त जू ॥ २ ॥

तीसरा तरङ्ग ।

इस प्रकार असितगिरि पर अपने साले इत्यक से हरी गयी सुरतमञ्जरी को छुड़ाय उसके पति को सौम्य श्रीनरवाहनदत्त ने इत्यक को बहुत डांटा डपेटा और तब वह सुचित्त होकर मुनियों के मध्य में बैठे तिस समय श्रीकश्यप मुनि ने सम्राट् नरवाहनदत्त से कहना प्रारम्भ किया।

राजन ! आपके समान न हुए और न अब होने को हैं कि धर्मासन पर आसीन होकर रागादि में मति नहीं फंसी; आप सुकृती को जो देखते हैं वे धन्य हैं। आपका साम्राज्य ऐसा है तथापि आप में कुछ दोष नहीं है । पूर्वकाल में जो ऋषभक आदि चक्रवर्त्ती हो गये उनमें नाना प्रकार के दोष लगे थे और इसी कारण वे लक्ष्मी से च्युत हो गये । ऋषभ, सर्वदमन तीसरे हुए बन्धुजीवक; सो वे अहङ्कार से ऐसे अन्धे हो गये थे कि इन्द्र की कोपाग्नि के इन्धन हो गये। जीमूतवाहन विद्याधरों के अधीश्वर हुए सो नारद मुनि ने उनके पास जाकर चक्रवर्त्तिपद प्राप्ति का कारण पूछा सो उन्होंने कल्पवृक्ष तथा अपने शरीर का दान कह सुनाया बस इस प्रकार वर्णन करने से उनका पुण्य क्षीण हो गया और वह अपने पद से गिर पड़े । विश्वान्तराख्य नामक जो चक्रवर्त्ती थे उनका वृत्तान्त

(२) मदनवेग (३) युक्त (४) कीर्ति, उत्तम कीर्तिवाले ।

यह है कि चेदि के राजा वसन्ततिलक से इनका पुत्र इन्दीवराच मारा गया सो पुत्र के शोक से उनका धैर्य जाता रहा बस इसी से वह नष्ट हो गये। पुनः हे राजेन्द्र! तारावलोक नामक एक मानुष था उसने इतना पुण्य सञ्चय किया कि उसको चक्रवर्त्ती पद प्राप्त हो गया। उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं था अतः सम्राज्य पद का उसने बहुत दिन उपभोग किया अन्त में अकस्मात् उसको वैराग्य आ गया सो वह सब त्याग वन में चला गया। हे महाराज! जिन्हें २ यह पद प्राप्त हो गया है वे प्राय इस पद के मोह में आकर उचित पथ पर न रहके रागादि दोषों से अंधे हो गये और परिणाम यह हुआ कि वे भ्रष्ट होते गये। भाव यह कि रागादि का प्रादुर्भाव ही पतन का कारण होता है। सो आप न्याय के मार्ग से अपने को कदापि स्खलित न कीजियेगा और सदा सर्वदा धर्म से इन विद्याधर प्रजाओं की रक्षा कीजियो।

इस प्रकार कश्यप मुनि की उक्ति सुन सम्राट् नरवाहनदत्त ने उनकी बात पर श्रद्धा रख बड़े आदर से कश्यपमुनि से यह पूछा कि हे देव! पूर्वकाल में तारावलोक ने मनुष्य होकर विद्याधरों का ऐश्वर्य कैसे प्राप्त किया सो हे महाराज! आप हम लोगों को कृपा करके सुनाइये। सम्राट् का ऐसा अनुनय सुन कश्यपमुनि बोले—"सुनिये मैं आप लोगों को वह कथा सुनाता हूं!"

शिविदेश में चन्द्रावलोक नामक एक राजा राज्य करते थे। उक्त राजा की महिषी चन्द्रलेखा अत्यन्त सुन्दरी तथा सद्गुणवती थी। जिस कुल से वह आयी थीं वह क्षीरसागर के समान निर्मल था तथा रानी ऐसी शुद्धा और सच्चरित्रा जैसी जगत्पावनी गङ्गा। उस राजा के एक हाथी था जिसका नाम कुवलयापीड़ था उसी गजेन्द्र के प्रभाव से बड़े बड़े शूर शत्रुओं पर भी राजा चन्द्रावलोक विजयी हुए थे। कभी राजा की उस नगरी में हार न हुई। जब राजा का यौवन ढल चला तब उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके सब लक्षण अच्छे २ ही थे। राजा ने राजकुमार का नाम तारावलोक रक्खा और वह राजकुमार दिनों दिन बढ़ने लगे। ज्यों २ वह बढ़ते थे त्यों २ उनकी वृद्धि के साथ ही साथ उसके स्वाभाविक दान धर्म्मादिक गुण भी बढ़ते जाते थे। थोड़े ही दिनों में राजकुमार सब विद्याओं

में प्रवीण हो गया, उसने सब कुछ सीखा किन्तु "न" एक अक्षर न सीखा (१) जिसके कारण यह याचकों को मुंह मांगा पदार्थ बात की बात में दे डालते थे।

अब क्रमशः राजकुमार की युवावस्था आ गयी और वह पूर्ण युवक हो गये किन्तु गुण में वह बड़े २ वृद्धों से भी बढ़कर थे, तेज ऐसा प्रखर कि मानों मार्तण्ड हों, समस्त कलाओं में ऐसे प्रवीण थे कि कलाधर मानों। राजकुमार का रूप ऐसा कि साक्षात् कामदेव भूतल पर उतर आये हों। उन्हें जो देखता सो ही मोहित हो जाता। पिता माता की शुश्रूषा में ऐसे लीन कि जीमूतवाहन को भी जीत लिया। समस्त चक्रवर्त्ती के लक्षण उन राजसूनु में विद्यमान थे। महाराज चन्द्रावलोक ने देखा कि पुत्र विवाह के योग्य हो गया तब उसके लिये मद्रदेश के राजा की माद्री नामक कन्या मंगा भेजी और राजकुमार का विवाह उसके साथ बड़े उत्सव और मङ्गल से सम्पन्न करा दिया। महीपति उनके गुणों से सन्तुष्ट तो थे ही सो अब उसके मन में आया कि राजकुमार को यौवराज पद पर अभिषित कर देऊं बस सब समारम्भ कर उन्होंने राजकुमार को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया।

अब राजकुमार युवराज के पद पर अधिष्ठित हुए। अब उन्होंने अपने दान की मात्रा और भी बढ़ा दियी, अब बाधा डालनेवाला ही कौन था सो जो मन में आवे दान धर्म करें। महाराज तारावलोक ने अपनी दिनचर्य्या का सब से प्रथम कार्य यह स्थिर किया कि बड़े प्रातःकाल उठना और कुवलयापीड़ गजेन्द्र पर चढ़कर पात्रों की खोज में इधर उधर घूमना। जो कोई जो ही पदार्थ मांगे तारावलोक उसे वही देते, यदि जीवन ही क्यों न हो परन्तु पात्र पाकर उसके उत्सर्ग में भी वह न हिचकते। इस कारण उन युवराज की कीर्ति समस्त दिशाओं में व्याप गयी।

अब कुछ कालोपरान्त युवराज्ञी के जोड़ा पुत्र हुए, पिता ने उन दोनों पुत्रों का नाम राम और लक्ष्मण रक्खा। राजकुमार अपने माता पिता के आनन्द बढ़ाने लगे, पितामह और पितामही के तो वे दोनों मानों प्राण थे; जैसे गुण (२)

(१) "नहीं" करना राजकुमार जानते ही नहीं थे यह भाव है।

(२) धनुष की डोरी भी गुण कही जाती है।

चढ़ने से धनुष नव जाता है वैसे ही गुणों के प्रादुर्भाव से दोनों राजकुमार अति नम्र हो गये। उन्हें देख २ तारावलोक और माद्री के नेत्र तृप्त ही नहीं होते थे।

इस प्रकार युवराज तारावलोक का यश दिग्दिगन्त में व्याप गया और ऐसे योग्य पुत्र भी हुए। उधर कुवलयापीड़ जैसा विजयी हाथी। फिर क्या था! उनकी ऐसी उत्तरोत्तर समृद्धि देख शत्रुओं के मन में दाह उत्पन्न हुआ और उनके हृदय में बड़ा सन्ताप होने लगा। तब वे लगे उपाय सोचने, अन्त में सभों ने एक उपाय निकाला, अपने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्होंने उनसे कहा कि आप लोग ताराव लोक के पास जावें और उनसे कुवलयापीड़ गज मांग लेवें, इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं कि वह आप लोगों को कुवलयापीड़ गजेन्द्र दे देंगे बस जहां वह गजेन्द्र उनके राज्य से निकला कि हम लोगों ने उनका सर्वस्व अपहरण किया और कदाचित् न दिया तो ऐसा बड़ा जो उनका "दाता" नाम है उसमें धब्बा लगेगा। "बहुत अच्छा" कहके वे ब्राह्मण चले और राजा तारवलोक के समीप उपस्थित हुए। यथोचित अभिवादन के उत्तर उन ब्राह्मणों ने राजा तारावलोक से उस गजेन्द्र कुवलयापीड़ को मांग ही तो लिया।

दानवीर राजा तारावलोक उन ब्राह्मणों की ऐसी याञ्चा सुन ताड़ गये कि बस यह किसी की धूर्तता है कि ये मेरे पास भेजे गये हैं। भला ब्राह्मण हाथी लेकर क्या करेंगे इसमें, अवश्य कुछ छल है। जो हो इन्हों को कुवलयापीड़ तो देना पड़ेगा ही यदि प्रार्थी अपना अभीष्ट न पाकर मेरे समक्ष से छूछे हाथ चले गये तो मेरे जीवन से ही का तत्व निकला! इस प्रकार चिन्तन कर राजा तारावलोक ने उन ब्राह्मणों को निष्कम्प मन से वारणोत्तम कुवलयापीड़ दे दिया।

जब ब्राह्मण कुवलयापीड़ गजेन्द्र को लेकर चले उस समय पुरवासी बड़े क्रुद्ध हुए और दौड़कर राजा चन्द्रावलोक के पास पहुंचे और कहने लगे—"महाराज! आपके पुत्र ने समस्त राज्य लुटा दिया तब, तो ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने मुनिधर्म धारण कर लिया है। सुनिये, लक्ष्मी का मूल जो वह शत्रु संहारी कुवलयापीड़ है इसे प्रार्थियों को दे डाला तो अब इस अपने पुत्र को वन में भेज दीजिये कि जाकर तपस्या करे अथवा आप हाथी को लौटा मंगाइये नहीं तो हम लोग अब दूसरे को राजा बना लेंगे।" महाराज चन्द्रावलोक ने पुर-

वासियों का ऐसा कथन सुन प्रतीहार के द्वारा युवराज तारावलोक के समीप सन्देश भेज दिया। सुनकर तारावलोकने उत्तर दिया "हाथी तो मैंने दे ही दिया पर इस जगत् में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अर्थियों से छिपा रक्खूं। इस प्रकार पौरायत्त (१) राज्य से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं; पुनः यदि यह लक्ष्मी दूसरे के काम न आयी तो बिजली सी चञ्चला इस राजलक्ष्मी से मुझे क्या काम ? इससे अच्छा तो मेरा वन में ही रहना है, सभों के भोजन की क्रिया के सम्पादन करनेवाले वृक्षों के मध्य रहना भला है, इन नृपशुओं के बीच रहना कदापि श्रेष्ठ नहीं है।

इतना कहके राजा तारावलोक सर्वस्व त्याग वनगमन के लिये प्रस्तुत हो गये। उनकी महिषी भी उन्हीं के समान दृढ़सङ्कल्पा थीं सो भी उठ खड़ी हुई। सो राजा तारावलोक अपने माता पिता के चरणों को प्रणाम कर बल्कल धारण कर भार्य्या और पुत्रों के साथ नगर से निकल खड़े हुए। उनके चलते ब्राह्मण सब रोने लगे कि अब हम लोगों का प्रतिपालन कौन करेगा। राजा तारावलोक उन्हें समझाते बुझाते और शान्ति दिलाते थे। उस समय मनुष्यों की कौन चलायें पशु पक्षी भी करुण स्वर से रोते थे जिनके आंसुओं से धरती सिंच गयी। बालक छोटे थे क्योंकर चल सकेंगे अतः उनके लिये एक रथ उन्होंने ले लिया था। सो मार्ग में आकर कुछ ब्राह्मणों ने रथ के घोड़ों को मांग लिया। राजा ने विना कुछ सोचे विचारे घोड़ों को भी दे दिया। अब राजा रानी स्वयं रथ खींच ले चले। जब बीच जङ्गल में पहुंचे तो थक गये। एक तो पांव २ चलना दूसरे रथ का खींचना इससे बड़े श्रान्त हो गये। इतने में एक दूसरे ब्राह्मण ने आकर रथ की याञ्चा कर ही तो लियी। राजा ने निःशङ्क भाव से उस ब्राह्मण को रथ दे दिया और कुछ भी न सोचा कि ये सुकुमार बालक इस घोर अरण्य में क्योंकर चल सकेंगे। अस्तु अब सब लोग पांव २ चले और एक तपोवन में पहुंचे। वहां राजा ने एक वृक्ष के नीचे डेरा डाला, रानी माद्री पूर्ववत् परिचर्य्या में लीन रहीं। अब मृगचर्म ही उनके शरीराच्छादन होते। वायु के झकोरे से जो वृक्षों के पुष्प गिरते सो ही उनके चमर के काम देते, वृक्ष की जो घनी छाया थी सो ही छत्र का काम

(१) पुरवासियों के वश में।

करती थी। पत्ते शय्या का काम देते और शिला आसन के ठौर थीं। भौंरे मधुर झंकार से भाटों के कार्य करते। नाना प्रकार के फल और फूल महाराज के भोजन होते। इस प्रकार वह वन परिवार सहित महाराज तारावलोक की परिचर्य्या करता था।

एक समय की बात है कि महारानी स्वयं महाराज के लिये फल फूल लेने आश्रम के बाहिर गयीं। इधर आश्रम में एक वृद्ध ब्राह्मण आया। ब्राह्मण ने महाराज तारावलोक से राम लक्ष्मण दोनों पुत्रों को मांगा। यह सुन राजा विचारने लगे कि यद्यपि ये दोनों पुत्र अभी बच्चे हैं तौभी मैं इनको दे देऊंगा पर ऐसा न हो कि यह ब्राह्मण मेरे यहां से छूछे हाथ चला जाय। मैं भली भांति समझता हूं कि यह विधि का कर्तव्य है वह मेरे धैर्य की परीक्षा कर रहे हैं अच्छा क्या हुआ मैं प्रार्थी को कदापि न फेरूंगा। इस प्रकार चिन्ता कर राजा ने उस वृद्ध ब्राह्मण को अपने दोनों पुत्र दे दिये। जब ब्राह्मण उन दोनों राजकुमारों को ले चला तब वे पिता को छोड़ कर नहीं जाते थे उस समय वह ब्राह्मण लताओं से उनके हाथ बांध उन्हें पीटने लगा। "हा मातः तू कहां है" इस प्रकार कह २ रोते हुए उन दोनों राजकुमारों को वह नृशंस ब्राह्मण ले चला और वे दोनों उलट २ कर अपने पिता की ओर देखते जाते थे। यद्यपि राजा तारावलोक अपने पुत्रों की यह दशा देखते थे परन्तु कुछ भी धैर्य से विचलित न हुए बस उनके इस धैर्य से उस वन के चराचर सब क्षुभित हो गये।

इतने में फल मूल तथा पुष्प लेकर रानी माद्री वहां आयीं तो क्या देखती हैं कि राजा नीचे मुख किये बैठे हैं और आश्रम में दोनों पुत्र नहीं हैं। उनके मट्टी के बनाये हाथी घोड़े और रथादि जहां के तहां पड़े हैं। हाय यह क्या हुआ मेरे पुत्र कहां गये," अनिष्ट की आशङ्का कर रानी रोने लगीं और घबड़ाहट के साथ पति से पूछने लगीं कि मेरे पुत्र कहां हैं? रानी का ऐसा प्रश्न सुन राजा ने बड़े धीमे स्वर से उत्तर दिया कि एक दरिद्र ब्राह्मण मांगने आया था सो वही मेरे दोनों पुत्रों को मांग ले गया है। राजा का ऐसा उत्तर सुन रानी ने अपना मोह त्याग दिया और राजा से कहा कि नाथ यह आपने बहुत ही अच्छा किया भला हमारे द्वार से अर्थी निराश होकर कैसे जावे!

रानी के इतना कहते ही दोनों का समान धैर्य देखकर भुवन कम्पित हो गया और इन्द्र का आसन चलित हो गया । इन्द्र ध्यान लगा कर देखते हैं तो क्या देखते हैं कि माद्री और तारावलोक के दान और धैर्यके प्रभाव से समस्त जगत् कांप रहा है । अब ब्राह्मण रूप धारण कर उनके सत्व की जिज्ञासा के हेतु इन्द्र उनके आश्रम पर गये और उन्होंने राजा से जाकर माद्री रानी को मांगा। अब राजा की, इस दुर्गम वन में केवल यह एक रानी ही सहचरी थीं, सो राजा विना कुछ विचारे हाथ में कुश लेकर रानी के दान करने को उद्यत हो गये । उस समय द्विजरूपधारी इन्द्र ने पूछा "राजर्षे ! ऐसी रानी पत्नी को भी दान कर आप क्या साधा चाहते है ?" महाराज तारावलोक ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण ! मुझे कुछ भी साधना नहीं है किन्तु मेरी वाञ्छा इतनी ही है कि मैं अपने प्राण भी ब्राह्मणों को दे डालूं । राजा का इतना कथन सुन इन्द्र अपने रूप में होकर बोले "राजन् । तुम्हारे इस धैर्य की मैंने भली भांति परीक्षा कर लियी तुम धन्य हो अच्छा अब में जो कहता हूं सो सुनो बात यह है कि तुम फिर अपनी पत्नी का दान न करना सुनो तुम विद्याधरों के चक्रवर्त्ती होओगे ।" इतना कह इन्द्र अन्तर्धान हो गये ।

इतने अवसर में वह ब्राह्मण भी, जो कि तारावलोक के तनयों को लेकर गया था, सो ऐसा हुआ कि मार्ग भूलकर दैवात् चन्द्रावलोक के नगर में जा निकला और हाट में राजकुमारों के बेचने पर उद्यत हुआ । वहां पुरवासियों ने उन राजकुमारों को पहिचान लिया कि ये तो महाराज चन्द्रावलोक के पौत्र हैं सो उन्होंने जाकर महाराज को समाचार दिये और सब लोग राजकुमारसहित उस ब्राह्मण को महाराज के समक्ष ले गये । राजा पौत्रों को देखकर रोने लगे, पश्चात् उन्होंने ब्राह्मण से पूछा कि देवता जी आपने इन्हें कहां पाया, ब्राह्मण वृत्तान्त सुना गया सो सुन महाराज चन्द्रावलोक को सुख और दुःख का एक साथ ही प्रादुर्भाव हुआ । पुत्र के सत्व का उत्कर्ष विचार महाराज को भी राज्य से घृणा हो गयी सो उन्होंने द्रव्य देकर उस ब्राह्मण से दोनों राजकुमारों को मोल ले लिया और पुत्र के आश्रम को जाना ठाना । पुरवासियों ने बहुत कुछ समझाया पर महाराज ने एक न माना । दोनों पोतों और भार्य्या के साथ महीपति अपने पुत्र

के आश्रम में पहुंचे तो वहां क्या देखते हैं कि जटावल्कलधारी पुत्र तपश्चर्य्या में लीन है मानों द्विजों से भचित श्रीमहावृक्ष हो (१) । युवराज दूर ही से पिता को आते देख दौड़े और उनके चरणों पर गिरे। महाराज उन्हें अङ्क में लगा अश्रुधारा से उन्हें सींचने लगे मानों वह जो विद्याधरों के अधिराज के आसन पर अभिषिक्त होनेवाले हैं उसीका यह प्रारम्भ है । इसके उपरान्त राजा ने उन्हें उनके दोनों पुत्रों राम लक्ष्मण को दिया और कहा कि इन्हें मैंने मोल लिया है ।

इस प्रकार मिल कर सब लोग परस्पर अपना २ वृत्तान्त कह सुन रहे थे कि उसी अवसर में आकाश से एक चौदन्ते हाथी के साथ साचात् लक्ष्मी उतरीं और बहुतेरे अन्यान्य विद्याधर भी वहां उतर कर आ विराजे । तिस समय पद्म-हस्ता कमला देवी ने राजा तारावलोक से कहा "महाभाग ! तुमने अपने दान के प्रभाव से विद्याधरेन्द्रको श्री को जीत लिया है सो चलो इस वारणेन्द्र पर आ-रूढ़ होओ और चलकर विद्याधरेन्द्र के पद का उपभोग करो।" लक्ष्मी की इतनी बात सुन राजा तारावलोक पिता के चरणों पर गिरे और प्रणाम कर भार्य्या और पुत्रों के सहित लक्ष्मी देवी के साथ उस वारणेन्द्र पर आरूढ़ हो गये और वह गजेन्द्र उन्हें लेकर आकाश को उड़ा और आश्रमवासी सब लोग यह कौतुक देखते ही रह गये ।

विद्याधर लोक में पहुंच कर राजा तारावलोक समस्त विद्याओं के आधार हो गये और विद्याधराधीशपद पर सुशोभित हो गये । इस प्रकार बहुत दिन पर्य्यन्त विद्याधरेन्द्रपद का उपभोग कर फिर वह वैराग्य की ओर प्रवृत्त हुए, मन फिर भी वैराग्य पर चला सो सब छोड़ छाड़ तपोवन में जा बसे ।

इतनी कथा सुनाय महर्षि कश्यप ने महाराजाधिराज नरवाहनदत्त से कहा कि महाराज ! सुना न आपने कि मनुष्य होकर भी तारावलोक ने किस प्रकार अपने निर्मल सुकृत से विद्याधरेन्द्रता प्राप्त कियी ! दूसरे लोग उसे पाकर भी मार्गभ्रष्ट होने से स्थानभ्रष्ट हुए । सो आप अपचार से बचियेगा । केवल यही

(१) द्विज शब्द पर यहां श्लेष है, द्विज ब्राह्मण और पक्षी। जैसे ब्राह्मणों ने राजा से सब मांग कर उन्हें छूछा कर दिया था वैसे ही पक्षियों ने वृक्ष ।

नहीं कि आप स्वतः कोई अत्याचार न करें दूसरों से भी अत्याचार आपके राजत्वकाल में न होने पावे इसका भी विशेष ध्यान रखियेगा।

दोहा।

श्रीनरवाहनदत्त जू कश्यपोक्त आख्यान॥
मुनि अनुशासन शीष धरि बोले "सब हम मान"॥ १॥

वसन्ततिलकम्।

विद्याधरो सुनहु बात हमार एतो
मोरी प्रजा पर कोउ करिहै व्यत्तिक्रम॥
ह्वै है सो वध्य हमरो हरशैल एतो
ढ्योंड़ी फिराय सब ठौर प्रचारि दीन्हों॥ १॥

सोरठा।

एहि विधि शीष नवाय, सब विद्याधर तेहिछन॥
लीन्हेउ माथ चढ़ाय, प्रभुअनुशासन (१) खेचरन॥१॥
विमलयशा महराज, सुरतमञ्जरीमुक्ति (२) करि॥
मातुलढिग सब साज, सहित रहे ऽसितशैल पर॥ २॥
सुनत अमित उपदेश, कश्यपमुनि के आश्रमहिं॥
प्रावृट् (३) कीन्ह अशेष, श्रीनरवाहनदत्त जू॥ ३॥

सुरतमञ्जरी लम्बक समाप्त हुआ।

(१) आज्ञा। (२) छुटकारा। (३) वर्षा।

॥ श्रीः ॥

कथासरित्सागर का हिन्दी अनुवाद।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित।

पद्मावती नामक सत्रहवां लम्बक।

सवैया।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालविनै बल पाई ।
शम्भुमुखार्णव ते निकली या कथा की सुधा वसुधा महँ छाई ॥
प्रेम समेत पियै जो कोई बलवीर भनै बलि ईस-दुहाई ।
पावहि सो जगदीस कृपाते अनन्द अमन्द बड़ी विबुधाई ॥

पहिला तरङ्ग।

दोहा।

अरधदेह अरधांगि किय, तपसों निरगुन जोहि॥
जगतवन्द्य चितरूप शिव, नमः करत हैं तोहि॥ १ ॥
गण्डोपरि बैठे अलिन, कान चलाइ भगाय ॥
मानहुं नाशत विघन घन, नमत तेहि शिरनाय॥ २ ॥

इस प्रकार महामहाराज नरवाहनदत्त असित गिरि पर कश्यपमुनि के आश्रम में तप करते हुए मातुल गोपालक के समीप सब सचिवों के साथ वर्षाकाल में रहे। तहां सब लोग विद्याधरों के चक्रवर्त्तीपद पर अवस्थित श्रीनरवाहनदत्त की उपासना करते थे और उनकी पचीसीं भार्य्यायें यथावत् सेवा में तत्पर रहीं। श्रीन-

रवाहनदत्त मुनियों तथा मुनिपत्नियों से यह पूछे गये कि महाराज! जिस समय मानसवेग देवी मदनमञ्चुका को हर ले गया था उस समय आप विरहातुर हो गये होंगे तो उसकाल किसने आपको कथाएं सुना २ कर आपका मनोविनोद किया था सो हमसे कहिये। इस रीतिसे मुनियों तथा मुनिपत्नियोंसे पूछे गये श्रीनरवाहनदत्त इस प्रकार कहने लगे--:

हे महाशयो और महाशयाओं! जिस समय देवी मदनमञ्चुका को वह दुष्ट मनदवेग माया करके हर ले गया उस समय जो दुःख मुझपर पड़ा, जो दुःख मैंने सहा सो कहते नहीं बनता मनही जानता है। ऐसा कोई नगर, ऐसा कोई उद्यान, अथवा घर न होगा जहां मैं विकल होकर ढूंढ़ता न फिरा होऊंगा; मेरे सचिवों ने भी कोई स्थान उठा न छोड़ा। मुझे उन्माद रोग सा हो गया था। एक समय की बात है कि मैं उद्यान में एक वृक्ष के नीचे मनमारे बैठा था कि उसी अवसर में गोमुख मेरे समीप आया और मुझको सान्त्वना देकर समझा बुझा कर कहने लगा कि देव! आप विकल मत होइये देवी आपको शीघ्र ही मिलेगी। देवों ने आपको जो सार्वभौम पद पर स्थिर किया है सो इन्हीं देवी के साथ, सो यह अवश्य होगा; क्योंकि उनका वचन मृषा नहीं हो सकता। फिर जो लोग धैर्य का अवलम्बन कर विरह सह लेते हैं वे इष्टसङ्गम अवश्य प्राप्त कर लेते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। देखिये रामभद्र, राजा नल आपही के पितामहों ने कितने २ दुःख उठाये, कैसा विरह सहन किया और अन्त में अपनी २ प्रेयसी को प्राप्त किया। फिर देखिये वह मुक्ताफलकेतु, जो कि विद्याधरों के चक्रवर्ती थे, पद्मावती से वियुक्त हो गये थे तो क्या उनको फिर सङ्गम न हुआ? अच्छा देव! सुनिये मैं आपको उनकी कथा सुनाता हूं। इस प्रकार मुनियों को सुनाकर महाराज नरवाहनदत्त उनसे कहने लगे "हे तपोधनो!" मन्त्रिप्रवर गोमुख इस प्रकार मुझे सान्त्वना देकर यह कथा सुनाने लगा—

पृथ्वी में अति प्रसिद्ध एक वाराणसी पुरी है जिसकी जड़ में स्वर्ग की नदी सुशोभित है, वह नगरी अपवर्ग की दात्री मानों शम्भु की दूसरी मूर्ति हो। देवताओं के मन्दिरों पर जो ध्वजाएं लगी हैं उनके फरहरे वायु से हिल के ऊपर नीचे होकर यह सूचित करते हैं कि हे लोगो यहां चुप चाप चले आओ और मोक्ष प्राप्त

करो। जहां के समस्त भवन श्वेत २ हैं, ऐसी जो भूतभावन की निवासभूमिकाशी नगरी हैं सो मानों कैलास पर्वत की स्थली है। जहां शैवगण हर २ करते रहते हैं। इसी नगरी में, पूर्वकाल की बात है कि ब्रह्मदत्त नामक राजा राज्य करते थे। राजा ब्रह्मदत्त बड़े ही शिवभक्त, ब्रह्मण्य, शूर और दाता थे, क्षमा के तो मानों अवतार थे; राजा की आज्ञा गहन वनों में भी स्खलत न हुई, अम्बुधि में भी न डूबी, द्वीपों के पार न निकल गयी, ऐसी नहीं पृथ्वी पर घूमती रही। (१) महाराज की रानी का नाम सोमप्रभा, जैसे सोमप्रभा (२) चकोर को आनन्ददायिनी और अति प्रिय होती है वैसे ही रानी सोमप्रभा महाराज ब्रह्मदत्त की थीं, राजा नेत्रों से महिषी का मुख निरखते २ तृप्त नहीं होते थे । राजा के मन्त्री शिवभूति नामक ब्राह्मण थे जो कि बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य तथा समस्त शास्त्रों के पारगामी थे ।

एक समय की बात है कि रात्री के समय राजा चन्द्रप्रासाद के ऊपर पलङ्ग पर बैठे थे कि इसी अवसर में दों हंस आकाश से उतरते दिखाये ! अति प्रज्वलित सुवर्ण के समान कान्तिमान् राजहंसों से परिवेष्ठित, आकाश गङ्गा से निकले हुए मानों दो हेम के कमल हों। इस प्रकार हंसद्वय राजा के दृष्टिपथ से जब चला गया तब तो महीपति अत्यन्त आश्चर्यित हुए, अब इनके मन में इस बात की बड़ी उत्कण्ठा हुई कि एक बार उन्हें फिर देखता, यही चिन्ता उनको सन्तापित करने लगी। इस प्रकार महाराज रात भर चिन्ता ही करते रहे, इनकी आंख न लगी। अब रात बीत गयी और प्रातःकाल हो आया। उस समय महाराजने अपने मन्त्री शिवभूति से रात की बात वर्णन कर इस प्रकार कहा:—"यदि पुनः वे सुवर्णहंस मुझे न दीख पड़े तो मेरे इस राज्य से क्या ? और मेरे जीवन से भी कुछ प्रयोजन नहीं ।" महाराज का ऐसा वचन सुन शिवभूति मन्त्री ने कहा: "महाराज ! यदि कुछ उपाय है तो सुनिये मैं आपसे

(१) भाव कि इनकी आज्ञा सर्वत्र मानी जाती थी।

(२) चन्द्रप्रभा की ओर जैसे चकोर देखता हैं वैसेही महाराज सोमप्रभा (रानी) को निरखा करते थे।

कहता हूं। ब्रह्मा का यह संसार बड़ा ही विचित्र है, इसका कर्मभोग जो है सो भी विचित्र है, प्राणियों की सृष्टि भी अति विचित्र है, भाव यह कि परमेःष्ठी ने इस सृष्टि की परिभाषा नहीं हो सकती । इस संसार में जहां देखो तहां दुःख ही भरा है परन्तु जीव इनमें ऐसे लीन हो गये हैं कि दुःखही सुख समझते हैं, इसी कारण निवास, अहार और पान आदि विषयों में रंगे रहते हैं। विधाता ने इन जीवों की सृष्टि कर सब के आहार पानादि पृथक् २ ठहरा दिये हैं जो जिस जाति का है उसकी जाति के अनुसार वैसे ही अन्न पान उसके लिये प्रीतिप्रद बना दिये है। सो देव! आप यह उपाय कीजिये कि हंसों के लिये एक सरोवर बनावाय दीजिये, हंस प्रायः सरोवरों पर आकर आश्रय करते हैं, सो आप एक सुबृहत् सरोवर निर्माण कराइये, उसमें कमल लगवाइये और वहां पहरुओ को नियुक्त कर दीजिये। पक्षियों को जो अन्न प्रिय हों सो सदा उस सरोवर के तट पर छिटवाइये, इससे यह होगा कि चारों ओर से जलचर पक्षी आवेंगे। जब बात पक्षियों के मध्य फैल जायगी तब कुछ दिनों में वे दोनों हंस भी आवेंगे ही तो आप सदा उन्हें देखते रहेंगे। बस आप शोक त्याग कर यही काम कीजिये। इस प्रकार शिवभूति की उक्ति सुन राजा ब्रह्मदत्त ने एक बड़ा भारी सरोवर बनवा दिया।

अब पक्षियों का समागम होने लगा, समयानुसार हंस सारस, और चकवा प्रभृति आकर उस सरोवर पर विहार करने लगे, कुछ कालोपरान्त वह हंसयुग्म भी आकर उन पक्षियों के मध्य विराजमान हुआ। उन्हें देखकर पहरुओं ने जा-कर महाराज को सूचना दियी, बस वह यह शुभ सम्बाद सुनते ही मनोरथ की सिद्धि जान उस सरोवर पर गये, हेमहंसों को देखकर अति प्रहृष्ट हुए ।अब वह दूर से ही दूध और शाली चावलों से पूजा करने (परचाने) लगे। कुन्दन से उन दोनों हंसों के शरीर थे, मोतियों के नेत्र, मूंगे से चोंच और चङ्गुल तथा सुवर्ण से चमकते दोनों पंख। राजा की प्रीति उनसे ऐसी बढ़ी कि राजा अब उन्हीं के लालन में वहीं सरोवर के किनारे रहने लगे; होते २ दोनों हंस राजा को परच गये।

एक समय की बात है कि महीपति सरोवर के किनारे परिभ्रमण कर रहे

थे कि एक स्थान में क्या देखते हैं कि पूजा हुई है जिसके पुष्प पड़े हैं और उस काल लों पुष्प सूखे नहीं थे इससे अनुमान हुआ कि किसी ने अभी पूजा कियी है। सो राजा ने पहरुओं को बुला कर उनसे पूछा कि किसने पूजा कियी है ? तब वे सरोवर के रक्षक महीपति से इस प्रकार निवेदन करने लगे—'महाराज! ये जो दोनों सोने के हंस हैं सो तीनों सन्ध्याओं में (१) इस सरोवर में स्नान करते हैं और यहां पूजा कर ध्यान लगाते हैं, महाराज! बस इतना ही तो हम लोग देखते हैं, यह बड़ा ही आश्चर्य है, कुछ समझ में नहीं आता कि क्या रहस्य है।" इस प्रकार प्रहरुओं की उक्ति सुन भूपति सोचने लगे, कहां ये हंस और कहां ऐसी चर्य्या! सो निश्चय इसमें कुछ भेद है, सो अब मैं तपस्या कर इसका कारण निश्चय करूंगा और पता लगाऊंगा कि ये दोनों कौन है। इतना विचार राजा ब्रह्मदत्त आहार त्याग भार्य्या और मन्त्री के साथ भगवान् शङ्कर का ध्यान कर तपस्या करने लगे। जब बारह दिन निराहार राजा के बीत गये तब वे दोनों दिव्य हंस राजा के समीप स्वप्न में आये और मानव वाणी में राजा से कहने लगे "राजन्! उठिये, प्रातःकाल जब आप अपनी भार्या और मन्त्री के साथ पारण कर लेंगे तो एकान्त में हम आकर आप तीनों को इसका कारण सुना देंगे ।" इतना कह के दोनों हंस अन्तर्धान हो गये और राजा प्रातःकाल में उठे। उन्होंने भार्य्या और मंत्री के साथ पारण किया। भोजन के उपरान्त जब वह सरोवर के तट पर लीलागेह में बैठे थे उसी समय वे दोनों हंस वहां आ पहुंचे। भूपति ने उनकी पूजा कर उनसे पूछा कि आप दोनों कौन हैं सो हमें बतलाइये। इस प्रकार धरणीपति का प्रश्न सुन वे दोनों हंस क्रमानुसार अपना २ वृत्तान्त कहने लगे।

जगत् में पर्वतों का राजा एक मन्दर पहाड़ है। जहां रत्नों के जङ्गलों में देवताओं के समूह विहार करते हैं। क्षीरसागर जब मन्दर से मथा गया तो उससे अमृत निकला तिस अमृत से उसके सब भाग सिंच गये सो उसपर के पुष्प फल और जल जरा मृत्यु के हरण करनेवाले हो गये। कैलास से भी जिसकी कान्ति अधिक है ऐसे मन्दराचल की शृंगाग्रभूमि नाना प्रकार के उत्तमोत्तम रत्नों से व्याप्त हो गयी सो भगवान् शङ्कर की लीलोद्यान हुई। वहीं भूतनाथ पार्वती के सङ्ग

(१) सूर्य्योदय, मध्यान्ह और सायङ्काल।

क्रीड़ा करते। एक समय की बात है कि शूलपाणि गिरिजा के साथ क्रीड़ा करके सुचित्त हुए कि उसी समय देवताओं का कुछ कार्य आ पड़ा सो वह पार्वती जी को वहीं रख देवकार्य के लिये अन्तर्धान हो गये (१) महादेव जी की विरह में गिरिनन्दिनी अति विकल हो उन लीला उद्यानों में इधर उधर फिरती पर कहीं उनका मन लगता न था, अन्यान्य देवतागण उनको समाश्वासन देते और समझाते थे।

एक समय की बात है कि वसन्तकाल का शुभागमन हुआ उससे देवी का उद्वेग और भी बढ़ा सो देवी एक वृक्ष के तले बैठी थीं और गण उन्हें घेरे हुए थे। पार्वती जी उस समय अपने प्राणेश्वर की चिन्ता में निमग्न थीं। उसी समय की बात है कि देवी की चमरधारिणी कुमारी श्रीचन्द्रलेखा जो कि जया की बेटी है, अभिलाष से एक गण की ओर देखने लगी। महामाया के समीप ही एक मणिपुष्पेश्वर नामक गण था जो कि उसके रूप के समान था और तारुण्य में भी वैसा ही था, पुनः इधर से चन्द्रलेखा भी प्रेमभरी चितवन से उसकी ओर देख रही थी अतः वह भी इसकी ओर प्रेम की चितवन से देखने लगा। दोनों का यह व्यवहार देख पिङ्गेश्वर गुहेश्वर नामक दो गण एक दूसरे का मुख देख २ हंसने लगे। उनको हंसते देख देवी के मन में कोप हुआ कि ये दोनों किसपर विना कारण हंसते हैं, इस हेतु देवी इधर उधर देखने लगीं। तो क्या देखती हैं कि चन्द्रलेखा और मणिपुष्पेश्वर परस्पर आंखें मिला कर मुस्कुरा रहे हैं। विरहव्याकुला देवी को यह देखते ही बड़ा क्रोध हुआ सो वह बोलीं—"मेरे स्वामी महादेव की अनुपस्थितिमें तुम दोनों ने स्मरप्रेक्षण (२) किया; ये दोनों भी यह देख भले हंसे; तो उस अपराध से तुम दोनों तो कामान्ध हुए सो यहां से गिरो और मर्त्यलोक में जाकर दम्पती होओ और ये जो हंसे सो बहुत क्लेश पावेंगे। पहिले ब्राह्मण होवेंगे और बड़े दुःखी होवेंगे, तिस पीछे ब्रह्मराक्षस, तब पिशाच, पश्चात् चण्डाल उसके उपरान्त चोर होवेंगे। पश्चात् बांड़े कुत्ते होंगे, तदनन्तर नाना पक्षी होवेंगे। ये दोनों गण जो हंसे यह इनका भारी अपराध है क्योंकि इनका चित्त तो स्वस्थ

(१) चले गये।

(२) कामदेव के वश में पड़कर परस्पर दृष्टिनिक्षेप किया।

था सो इन दुष्टों के इन दुर्विनय का यही दण्ड है।" इस प्रकार जब देवी शाप दे चुकीं तब धूर्जट नामक गण उनसे कहने लगा "देवि ! इन गणों का अपराध तो थोड़ा है और आपने शाप ऐसा घोर दिया यह तो बड़ा ही अनुचित हुआ।" इतना सुनते ही देवी का कोप और भड़का सो उन्होंने उसे भी शाप देकर कहा "हे अनात्मन्! तू भी मर्त्य योनि में जाकर उत्पन्न हो।" इस प्रकार जब भगवती अम्बिका उन पांचों को शाप दे चुकीं तब चन्द्रलेखा की जननी जया प्रतीहारी जगदम्बा के पांव पकड़ इस प्रकार विनति करने लगी "हे देवि! प्रसन्न होइये। इस मेरी दुहिता का शापान्त ठहरा दीजिये और जो आपके इन भृत्यों ने अज्ञान से पाप किया है सो इनके इस अपराध का भी अन्त ठहरा दीजिये।" जया प्रतीहारी की ऐसी विनति सुन गिरिजा देवी बोलीं "जब ये सब क्रमशः ज्ञानप्राप्ति के कारण एकत्र मिलेंगे और ब्रह्मादि देवों के तपःक्षेत्र में सिद्धियों के ईश्वर के दर्शन करेंगे तब इनके शाप छूट जावेंगे और मेरे समीप आवेंगे। मनुष्ययोनि में यह चन्द्रलेखा, इसका पति और यह धूर्जट ये तीनों सुखी होवेंगे और ये दोनों दुःखी होवेंगे।" इतना कह ज्योंही देवी गौरी चुप हुईं कि हर की अनुपस्थिति का वृत्तान्त जान अन्धक नामक असुर वहां आया। उद्धत वह देवी को लेना चाहता था कि उनके परिजनों ने उसको डांटा। भगवान् शङ्कर को उस दुष्ट की इस करनी का वृत्तान्त ज्ञात हो गया सो उन्होंने उसे मार ही तो डाला। देवताओं का कार्य सम्पादन कर जब शम्भु आये तब अम्बिका ने अन्धक के आने का वृत्तान्त उनसे कहा तब गिरिजापति ने गिरिजा से कहा कि देवि! वह अन्धक पूर्व में तुम्हारा मानस पुत्र था सो उसे मैंने मार डाला अब उसकी चमड़ी बच रही है सो वह अब भृङ्गी (१) होगा। इतना कह भगवान् हर देवी से विहार करते हुए वहां रहने लगे। वे पांचों मणिपुष्पेश्वरादि भूमण्डल पर उतरे। सो राजन्! अब पहिले उन दोनों तथा पिङ्गेश्वर और गुहेश्वर का वृत्तान्त सुनिये।

इस महीतल पर यज्ञस्थल नामक ब्राह्मणों का नगर है तहां यज्ञसोम नामक एक ब्राह्मण बड़ा गुणी और धनवान् रहता था। उसको मध्यम वयस में दो पुत्र उत्पन्न हुए, तिनमें जेठरे का नाम हरिसोम और लहुरे का देवसोम। बाल्यावस्था

(१) एक गण।

जब उनकी बीत गयी तो ब्राह्मण ने उनका जनेऊ कर दिया । इसी समय दैव-कोप से ब्राह्मण का धन क्षीण हो गया और वह यह लोक त्याग परलोक का पथिक भी हो गया, साथ ही उसकी पत्नी का भी लोकान्तर हो गया। अब दोनों लड़के अनाथ हो गये, गोतियों ने भूसम्पत्ति जो कुछ थी सो हड़प कर लियी अब वे दोनों नितान्त निरालम्ब हो गये। तब दोनों भाई परस्पर मन्त्रणा करने लगे कि अब तो हम दोनों की वृत्ति भिक्षा ही रह गयी और सो भी नहीं मिलती तो चलो कहीं दूर चल चलें अथवा ननिहाल में चल कर रहें । यदि हम यहां से चले जावें तो आने पर फिर कौन हमें पहिचानेगा इस बात की आशङ्का है। तथापि अब उपाय क्या है, इसके अतिरिक्त हमारा और क्या साध्य है अब यहां से चला जाना ही भद्र है। इस प्रकार विचार कर वे दोनों भाई घर से निकले और भिक्षा मांगते खाते वहां पहुंचे जहां नाना का घर था । वहां जब हरिसोम और सोमदेव अपने नाना का नाम पूछने लगे तो ज्ञात हुआ कि वह तो मर गये और उनकी भार्य्या भी शान्त हो गयीं। हतभाग्य वें क्या करें विपत्ति ने यहां भी पीछा न छोड़ा। अस्तु अब वे मामा के समीप पहुंचे, यज्ञदेव, ऋतुदेव दो मामा थे सो उनके घर ये दोनों ब्राह्मणकुमार थके मांदे धूलि से आच्छादित पहुंचे। मामाओं ने बड़े आदर से उन्हें ग्रहण किया, समझा बुझा कर उनका शोकापनोदन किया स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहिनाया और भोजन करा कर उनका श्रम दूर किया। उन्हीं मामाओं से वे पढ़ने और रहने लगे।

कहा है "विपत्ति अकेली नहीं आती," जिसका दैव प्रतिकूल हो जाता है उसका साथी कोई कहां लों हो सकता है। ये दोनों हरिसोम देवसोम विपद्ग्रस्त होने से मातामह के घर आये यहां मातामह शान्त हो गये अतः मामा के साथ रहने लगे। इधर दूसरी विपत्ति आयी। मातुलों का धन भी दैवात् नष्ट हो गया, धन नष्ट होने से फिर सेवक कहां मिलें इससे मातुलों ने अपने भान्जों से बड़ी प्रीति से कहा "ऐ पुत्रो हम अब दरिद्र हो गये, हममें अब इतनी शक्ति नहीं कि सेवक रख सकें अब पशुओं की रखवाली कौन करे इससे तुम दोनों ही अब पशुओं को चराया करो ।" मातुलों की ऐसी उक्ति सुन उन दोनों के नेत्रों में आंसू भर आये पर कहें तो क्या कहें कुछ वश नहीं अन्त में उन्होंने उनका वचन

मान लिया । अब वे पशुओं को जङ्गल में ले जाकर चराते और उनकी रक्षा करते तथा सायङ्काल में घर ले आते । अब दैव के मारे वे दोनों भाई पशुपाल का काम करने लगे, पर इसमें भी सुख शान्ति नहीं । विचारे जानें क्या कि क्योंकर पशुओं को चराना होता है इससे कुछ पशु हेराय गये और कई एक को व्याघ्र खाय गये । इस व्यापार से उनके मामा बड़े विकल थे, इतने में क्या हुआ कि उनके यज्ञ के साधन धेनु और बकरा भी कहीं हेराय गये (१) । इसी भय से बचे खोचे पशुओं को झटपट विना समय ही घर पहुंचा वे दोनों उनकी खोज में वन की ओर दौड़े और ढूंढ़ते २ बड़ी दूर निकल गये । तहां क्या देखते हैं व्याघ्र का आधा खाया वही बकरा पड़ा है । बकरे कीं पहिचान कर उन्हें बड़ा ही शोक हुआ और वे आपस में कहने लगे कि यह तो वही बकरा है जिसे मामाने यज्ञ के लिये चुना था सो यह तों नष्ट हो गया अब मातुलों के कोप का तो वारापार नहीं है सो आओ एक काम किया जाय अब यह जो व्याघ्रभुक्त का अवशिष्ट मांस है सो भून कर हम दोनों खावें और पेट की अग्नि शान्त करें और जो बच गया है सो संग लेते चलें । अब मामा के घर चलना ठीक न होगा चलो कहीं भाग चलें, भीख मांग खाकर दिन व्यतीत करेंगे । इस प्रकार विचार ज्योंही वे दोनों उस बकरे को आग में भुनने लगे कि पीछे से दोनों मामा दौड़ते आये, मातुलों को आते देखा तो इन दोनों को बड़ा भय हुआ सो दोनों चट उठकर वहां से भागे और बात की बात में उनकी दृष्टि से बाहिर हो गये । "तुम दोनों ने मांस के लोभ से यह राक्षसी कर्म किया है इससे तुम दोनों मांसभक्षी ब्रह्म राक्षस हो जाओगे," इतना कह दोनों मातुलों ने उन्हें शाप दे दिया । शाप का होना कि तत्काल दोनों ब्राह्मणकुमार ब्रह्मराक्ष हो गये । बड़े २ दांत महा-भयङ्कर मुख, लम्बे २ और चमकते हुए केश; भूख के मारे इधर उधर घूमते, जिस किसी प्राणी को पाते भकोस जाते और उस अटवी में भ्रमण करते । एक समय की बात है कि वे एक तापस को मारने चले सों उस मुनि के शाप से पिशाच बनां दिये गये । पिशाच होकर एक बार वे एक ब्राह्मण की गौ चुरा कर मारने चले बस

(१) दूध और घी से यज्ञ होता है अतः गौ यज्ञ की साधन हुई और बकरे का मांस होमा जाता है अतः वह यज्ञ का साधन हुआ ।

ब्राह्मण ने मन्त्र पढ़ उन्हें चण्डाल बना दिया। चण्डाल होकर वे हाथ में धनुष लिये भूख से पीड़ित इधर उधर घूमते फिरते। एक समय भोजन की इच्छा से चोरों के गांव में पहुंच गये। उन्हें देखते ही उस गांव के द्वारपालों ने समझा कि ये चोर हैं बस उन्होंने इन्हें बांध कर उनके नाक कान काट लिये और तब वे उन्हें पीटते हुए अपने प्रधानों के पास ले गये। प्रधान चोरों ने पूछा कि तुम कौन हो? तब उन ब्राह्मणकुमारों ने अत्यन्त विकल हो उत्तर दिया कि हम भूख के मारे विवश हो यहां आये हैं और कि हमारा यह वृत्तान्त है इत्यादि २, इस प्रकार कह कर वे अपना साद्यन्त वृत्तान्त सुना गये। उनका यह वृत्तान्त सुन उन प्रधान चोरों के हृदय में दया का सञ्चार हुआ सो उन्होंने उन दोनों को बन्धन छुड़ा उनसे कहा "अच्छा अब यहीं रहो और खाओ पीओ किसी प्रकार का भय नहीं है, आज हमारे यहां सेनापति की पूजा है, सो इस अवसर पर तुम हमारे यहां अकस्मात् अतिथि आये हो अतः समान विभाग के भागी हो।" इस प्रकार कहके उन चोरों ने देवी की अर्चना कर उन दोनों को पहिले भोजन कराया और प्रीति उत्पन्न हो गयी थी इससे वे उन्हें त्याग न सके। इस प्रकार क्रम से वे दोनों वहां रहके चौर्य्य कर्म में प्रवृत्त हो गये और उन चोरों के साथ चोरी किया करते, क्रमशः अपने शौर्य के प्रभाव से उनके सेनापति हो गये।

एक समय चोरों के चारों से सम्वाद पाय शैवक्षेत्र (१) महान् नगर मूसने के लिये रात के समय सेनासहित वे दोनों सेनापति चले। यद्यपि सगुन बुरे दीख पड़े तथापि वे लौटे नहीं और उस नगर में पहुंचे। नगर में पहुंच कर सारा नगर लूटा यहां लों कि देव का भवन भी न छोड़ा। उस नगर के सब लोग भगवान् शम्भु की शरण में आकर चिल्ला २ रोने लगे, महादेवजी का कोप भड़का सो उन्होंने उन सब चोरों को अंधे और विकल कर दिया। बस यह देव भगवान् भूतनाथ का परम अनुग्रह मान सब नगरवासी बटुर आये, लगे उन चोरों को पाषाण और लाठियों से पीटने। चोर तो उन्हें देख नहीं सकते थे और वे ऊपर से धड़ाधड़ पीटते रहे थे। लोगों ने किसी २ चोरों को गढ़ों में ढकेल दिया किसी २ को मार मार कुचल डाला किसी २ को धरती पर रगड़ डाला। एक

(१) शिव का क्षेत्र, जहां शङ्कर भगवान् प्रधान आराध्य देवता थे।

मनुष्य उन दोनों सेनापतियों को देखकर ज्यों ही मारा चाहता था कि वे तत्क्षण बांड़े कुत्ते हो गये। अब उन्हें अपनी जाति का स्मरण हुआ सो जाकर शङ्कर के समक्ष नाचने लगे और उन्हीं की शरण में रहे। यह देख सब पुरवासी बड़े ही अचम्भित हुए। चोरों का भय निवृत्त हो गया अतः सब ब्राह्मण और बनिया प्रभृति लोग हँसते खेलते अपने २ घर चले गये।

इधर कुत्तों का वृत्तान्त यह कि जब उन्हें अपनी पूर्व जाति का स्मरण हुआ तो उनका मोह शान्त हो गया सो वे शाप की शान्ति के निमित्त आहारादि त्याग कर भगवान् शङ्कर की शरण में रहके तपस्या करने लगे। प्रातःकाल लोग उत्सव मना कर जब भगवान् शम्भु की पूजा करने लगे, उस समय उनको वे दोनो श्वान ध्यानस्थ दीख पड़े, उन लोगों ने उनको खाने कों को भी दिया पर वे छूते भी न थे। इस प्रकार उन दोनों के तप करते २ बहुत दिन व्यतीत हो गये तब गणों ने भगवान् शङ्कर से निवेदन किया "देव ! वे दोनों आपके गण पिङ्गेश्वर और गुहेश्वर हैं। देवी ने उन्हें शाप दिया इसीसे इनकी यह दशा हुई है ये बहुत कष्ट भोग चुके सो अब आप इनपर कृपा कीजिये।" गणों का ऐसा अनुनय सुन भगवान् आशुतोष बोले "अब ये दोनों गण श्वानशरीर त्याग कर कौव्वे हो जावें।" अब वे दोनों वायस हो गये, बलि का अन्न भक्षण कर शिव के ध्यान में तत्पर हुए और उन्हें अपनी पूर्व जाति का स्मरण बना रहा। कुछ कालोपरान्त भगवान् आशुतोष के प्रसाद से मुर्गे हुए पश्चात् मयूर हो गये। उसी प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर वे दोनों गण हंस हुए। उस शरीर में भी वे भगवान् उमापति की आराधना में तत्पर रहे। तीर्थ में स्नान करते, व्रत करते; ध्यान लगाते और उमापति को पूजा करते। उन पुण्यों के प्रभाव से उनका शरीर सुवर्ण का हो गया और उत्तम ज्ञान भी उन्हें प्राप्त हुआ।

इतनी कथा सुनाय वे दोनों हंस महाराज ब्रह्मदत्त से कहने लगे कि देव ! बस वेही पिङ्गेश्वर और गुहेश्वर हम दोनों हैं, जगदम्बा पार्वती के शाप से बराबर क्लेश भोगते २ अब हंस हुए हैं। जया की आत्मजा का अभिलाष जिस मणिपुष्पेश्वर गण ने किया था और जिसे देवी ने शाप दिया था सो ही पृथ्वी में आप ब्रह्मदत्त राजा हुए हैं और जया की बेटी जो चन्द्रलेखा थी सोही आपकी यह सोम-

प्रभा रानी हुई हैं एवम् वह धूर्जट गण आपकी मन्त्री शिवभूतिक हुए हैं। अ-म्बिका के प्रसाद से उनका कहा हुआ वही ज्ञान जब हमें प्राप्त हुआ तब हमने अपना शापान्त समझा और आपको उस रात में दर्शन दिये। सो अब उपाय क्रम से हम पांचों यहां एकत्र मिल गये अब हम दोनों आप तीनों को वही उत्तम ज्ञान प्रदान करेंगी।

वसन्ततिलकम्।

आओ चलैं हिमनगोपरि सिद्ध क्षेत्र
जो शैलराज दुहितापति को तपोऽद्री ॥
सिद्धीशसाधननिमित्त जहां सुरों ने
विद्युद्ध्वजासुर हतेहित की तपस्या ॥ १ ॥

दोहा।

मुक्ताफलकेतुहिं तबै, विद्याधर को ईश ॥ (१)
शम्भुप्रसाद सहाय लहि, हते समय तेहि ईश ॥१॥ (२)
तब मुक्ताफलकेतु तजि, शापजनित नरभाव ॥
शम्भुकृपा पद्मावतिहिं, लहि आनन्द मनाव ॥ २ ॥
जाइ ऐसने क्षेत्रमहँ, हरचरणन शिरनाय ॥
अपनी गति पइहैं यही, शाप अन्त ठहराय ॥ ३ ॥
दिव्य हंस को बात सुनि, ब्रह्मदत्त भूपाल ॥
मुक्ताफलआख्यान लगि, उत्सुक भे तेहि काल ॥ ४ ॥

---

(१) विद्याधरों का अधीश्वर। (२) देवता।

दूसरा तरङ्ग ।

अब राजा ब्रह्मदत्त ने उन दोनों हंसों से पूछा कि अच्छा अब मुझे यह बतलाओ कि मुक्ताफलकेतु ने विद्युद्ध्वज को किस प्रकार बध किया और कि मुक्ताफलकेतु को किस कारण शाप मिला और किस प्रकार उनका मर्त्यभाव छूटा और पद्मावती से उनका समागम हुआ यह वृत्तान्त मुझे सुनाओ और तब जो कुछ करना है मैं करूंगा । महाराज के ऐसे प्रश्न सुन वे दोनों हंस मुक्ताफलकेतु की कथा इस प्रकार वर्णन करने लगे ।

विद्युत्प्रभ नामक एक दैत्येन्द्र था देवताओं को भी उसका जीतना कठिन हो गया था उसके कोई पुत्र न था सो एक समय की बात है कि वह अपनी भार्य्या के साथ भागीरथी के तट पर जाकर पुत्र की कामना से भगवान् ब्रह्मा की आराधना में तपस्या करने लगा । इस प्रकार तप करते २ सौ वर्ष व्यतीत हो गये । उसकी तपस्या से विधाता प्रसन्न हो गये सो उनके दिये वरदान से विद्युत्प्रभ के एक पुत्र विद्युद्ध्वज हुआ जो अमरों का भी अवध्य हुआ । दैत्यराजकुमार वह विद्युद्ध्वज बालकपन से ही महाबलवान्; और पराक्रमी हुआ ।

एक समय की बात है कि वह क्या देखता है कि नगर की रक्षा चारों ओर से घिरे हुए सैन्य कर रहे हैं यह देख उसे बड़ाही आश्चर्य हुआ सो वह अपने एक वयस्य से पूछने लगा कि सखे ! यहां भय का क्या कारण है कि प्रति दिन सेनाएं नगर की रक्षा करती हैं । विद्युद्ध्वज का ऐसा प्रश्न सुन उसका वह मित्र बोला "भाई ! त्रिदशाधिप (१) हम लोगों के बड़े भारी शत्रु हैं उन्हीं के भय से नगर की इस प्रकार रखवली कियी जाती है । दस लाख हाथी, चौदह लक्ष रथ, तीस लाख घोड़े और दश करोड़ पैदल अपनी २ पारी से एक २ पहर नगर की रक्षा करते हैं और यह पारी सात वर्षों पर पड़ती है (२) । मित्र का ऐसा कथन सुन विद्युद्ध्वज बोला ''धिक्कार है ऐसे राज्य को ! जिसकी रक्षा दूसरों के बाहुबल से हो और अपना बाहुबल कुछ न कर सके, सो मैं अब तपस्या का ऐसा उपाय करूंगा कि अपने भुजबल से शत्रु को जीत ले आऊंगा और फिर ऐसा बखेड़ा

(१) इन्द्र । (२) गणितज्ञ लोग विद्युत्प्रभ के सैन्य का हिसाब लगालेवें ।

न करना पड़ेगा।" इस प्रकार अपने मित्र से कहकर वह विद्युद्ध्वज तप के लिये वन जाने पर उतारू हो गया, वह उसका सखा मना करता ही रह गया पर वह कब सुनने का ! वहां तो बात ही अब दूसरी आ पड़ी थी । बस विद्युद्ध्वज माता पिता को विना सूचित किये ही तपस्या करने वन में चला गया।

विद्युद्ध्वज के माता पिता को जब यह सम्बाद ज्ञात हुआ तो वे स्नेहवश तुरन्त उसके पीछे दौड़े और पाकर उसे समझाने लगे "बेटा ! कहां तू बालक ! और कहां तप ! इससे बड़े २ कष्ट उठाने पड़ते हैं सो पुत्र ! तू साहस मत कर ! हमने तो सब शत्रुओं को जीत ही लिया है और तीनों लोकों में हमारा राज्य है तो इससे अधिक और क्या चाहता है कि तपस्या की इच्छा हुई? क्या वृथा अपने को सुखा कर हमें सन्तप्त करता है?" माता पिता का ऐसा कथन सुन विद्युद्ध्वज बोला, "मैं बालकपन में ही तपोबल से दिव्य अस्त्र प्राप्त करूंगा । मैं जगत् का राज्य निःशत्रु इतने ही से नहीं मानता कि सदा सर्वदा सैनिक लोग नगर की रक्षा में सन्नद्ध रहें।" इस प्रकार अपना निश्चय सुना कर विद्युद्ध्वज ने अपने माता पिता को विदा किया।

अब विद्युद्ध्वज दैत्यकुमार परमेष्ठ की आराधना में तपस्या करने लगा। तीन सौ वर्ष फल खाकर, तीन सौ वर्ष जल पीकर, तीन सौ वर्ष वायु पीकर और तीन सौ वर्ष अनाहार तपस्या कियी । इस प्रकार जब उस ने बारह वर्ष पर्यन्त बड़ी कठिन तपस्या कियी तब तो जगत् क्षुभित हो गया । अब तो ब्रह्मा का आसन डिगा सो वह उस दैत्यसूनु के पास आ विराजे और उसे ब्राह्मादि तीन अस्त्र देकर बोले, "पुत्र ! यह ब्रह्म अस्त्र है, इस अस्त्र पर किसी अस्त्र का प्रभाव नहीं होता, हां पाशुपत अस्त्र इसका संहार कर सकता है कारण यह है कि रौद्रास्त्र पर मेरी शक्ति कुछ काम नहीं करती। सो यह देखना कि यदि तुम जीतने की इच्छा रखते हो तो इसका प्रयोग असमय में व्रत करना।" इतनी सूचना देकर पद्मयोनि अपने लोक को चले गये और विद्युद्ध्वज अपने घर गया। विद्युत्प्रभ ने पुत्र के आने पर बड़ा उत्सव मनाया।

अब सब सेना सजायी गयी और विद्युद्ध्वज अपने पिता के साथ इन्द्र को जीतने चला। उसका आना सुन इन्द्रदेव ने अमरावती का चटपट प्रबन्ध कर दिया

अति चतुर रचकों को रचा में नियुक्त कर दिया। इतना कर मघवा विद्याधरेन्द्र चन्द्रकेतु और गन्धर्वाधीश्वर पद्मशेखर तथा देवताओं और लोकपालों को साथ ले युद्ध करने के लिये अमरावती से निकले। उधर से विद्युद्ध्वज भी अपनी सेना लिये दिये आ पहुंचा और सैनिकों से आकाश भर गया। इस युद्ध के निरीक्षणार्थ ब्रह्मा और रुद्रादिक भी वहां आ विराजे। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा, सन सन सन वाण चलने लगे। खचाखच तलवारें बजने लगीं, नाना प्रकार के अस्त्रों का प्रहार होने लगा; उस समय चहुंओर अस्त्र ही अस्त्र दीख पड़ते, अस्त्रों की छाया से आकाश में अन्धकार छाय गया। यह समरार्णव बड़ा गम्भीर नाद कर बढ़ा, अमर्षरूपी वायु से हिलकोरे उठे, अनेक यान जिसमें भरे हैं, लोटते पोटते जो हाथी और अश्व हैं सोही असंख्य ग्राहादि जलचर हैं। अब देवताओं और दैत्यों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। विद्युद्ध्वज का पिता विद्युत्प्रभ क्रोध करके इन्द्र से भिड़ा। दोनों अपने २ अस्त्रें का कौशल दिखाने लगे, एक ,जो अस्त्र छोड़ता दूसरा झट उसका उत्तर देता । इस प्रकार युद्ध होते २ वह दैत्य विद्युन्प्रभ प्रबल हो चला और इन्द्र पराभूत हो चले। यह सङ्कष्ट देख इन्द्र ने उसपर अपने वज्र का प्रहार किया। वज्र लगते ही विद्युत्प्रभ के प्राण निकल गये और वह ठांव,ही गिर पड़ा। पिता को मृतक देखते ही विद्युद्ध्वज बड़े क्रोध से इन्द्र पर टूटा, यद्यपि प्राण का संशय नहीं था, तथापि उसने पहुंचतेही ब्रह्मअस्त्र छोड़ही तो दिया और अन्यान्य असुरों ने भी अन्यान्य अस्त्रों का प्रहार किया। अब तो इन्द्र बड़े सङ्कट में पड़ गये उसी समय उन्होंने भगवान् भूतभावन का दिया हुआ पाशुपत अस्त्र स्मरण किया ध्यान करते ही वह अस्त्र सम्मुख आ विराजा बस इन्द्र ने उसको पूजा कर शत्रुओं पर छोड़ ही तो दिया। उस कालाग्नि ने राचसों की सभी सेना भस्म कर डाली विद्युद्ध्वज बालक था अतः उसे नहीं मारा; विद्युद्ध्वज मूर्छित होकर गिर पड़ा। इस अस्त्र का यह प्रताप है कि बालक, वृद्ध और रण से परांमुख को नहीं मारता। जय शङ्ख बजाय देवता लोग अपने स्थान को चले गये।

विद्युद्ध्वज नितान्त ध्वस्त हो गया था, बहुत काल के उपरान्त उसे ज्ञान हुआ सो वह यह गति देख चिन्ता करने लगा इतने में उसके बचे बचाये सैनिक मिल गये सो वह उनसे कहने लगा "भाइयो! देखिये मुझे ब्रह्मास्त्र मिला था उसके

प्रभाव से हम लोग विजयी हो ही चुके थे कि फिर पराजित हो गये सो अब मैं शक्र के समक्ष जाकर लड़कर युद्ध में प्राण त्याग करूंगा। पिता मेरे मारे गये सो उनके विना मैं क्योंकर अपने नगर चल सकूं वहां जाकर क्या मुंह दिखाऊंगा।" इसका ऐसा कथन सुन उसके पिता का वृद्ध मन्त्री उसे समझाने लगा "वत्स! यह ब्रह्मास्त्र जो है सो दूसरों के मुक्त अस्त्रों का ठीला करनेवाला है सो तो अकाल में छोड़ दिया गया फिर महादेवजी का जो पाशुपत अस्त्र है वह दूसरे अस्त्रों का प्रभाव नष्ट कर देता है बस उसी से यह तुम्हारा छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र निरस्त हो गया। इस समय शत्रु जय पा चुका है और यह अकाल है इस समय तुम शत्रु पर जय कदापि न प्राप्त कर सकोगे। अस्त्र का तो नाश हो ही गया अब तुम्हारा भी नाश हो जावेगा। सो तुम धैर्य का अवलम्बन करो और अपनी रक्षा करो। जब समय आवेगा और शत्रु को दुर्बल पाओगे तो अपने क्रोध की अग्नि बुझा लेना और तब तुम्हारा यश संसार में व्याप जायगा क्योंकि जिन लोगों ने धैर्य्य का अवलम्बन कर समय की प्रतीक्षा कियी है उन लोगों ने अवश्य यश प्राप्त किया है।" उस वृद्ध मन्त्री की ऐसी उक्ति सुन विद्युद्ध्वज बोला "यदि यही बात है तो राज्य की रक्षा के लिये आप जाइये और मैं अब जाकर सर्वेश्वर उन शिव की ही आराधना करूंगा।" इतना कह उसने उन सब सैनिकों को, यद्यपि उनकी इच्छा नहीं थी, तथापि, लौटा दिया।

सैनिकों को लौटा कर विद्युद्ध्वज पांच अपने वयस्य दैत्यपुत्रों के साथ कैलास की तराई में गङ्गा किनारे जाकर तपस्या करने लगा। गर्मी के दिनों में पञ्चाग्नि तापता और शीतकाल में जल के भीतर रहता, इस प्रकार वह सहस्र वर्ष फल खाकर भूतभावन शङ्कर के ध्यान में लीन बना रहा। दूसरे सहस्र में केवल मूल खाकर तपस्या करता रहा और तीसरे सहस्र में केवल जल पीकर निर्वाह करता रहा। चौथे सहस्र में वायु भक्षण कर रहा और पांचवें में निराहार रह गया। इस प्रकार पांच सहस्र वर्ष तपस्या करता रहा। बीच २ ब्रह्मा जी कई बार उसके पास गये, वर देने पर उद्यत हुए पर यह यही कहके उन्हें विदा कर देता कि आपके वर का प्रभाव देखा है आप जाइये। इस प्रकार वह निराहार तपश्चर्य्या में लीन बना रहा। अब उसके मूर्धा से धूम निकला तब तो शम्भु भगवान् का आसन डिग

गया और वह रह न सके, अन्ततोगत्वा वहां आही तो पहुंचे। "वर मांग;" भगवान् शङ्कर की ऐसी उक्ति सुन वह दैत्य बोला "हे प्रभो! यही वर दीजिये कि मैं युद्ध में इन्द्र का वध करूं।" "उठ जीतने और मारने में कुछ विशेषता नहीं है, तू इन्द्र को रण में जीत कर उनके पद पर बैठेगा," इतना कह भूतनाथ अन्तर्धान हो गये। अब मनोरथ सिद्ध जान वह विद्युद्ध्वज दैत्य उठा और पारण कर अपने नगर में गया। उसको आया देख सब पुरवासी बटुर आये और अभिनन्दन करने लगे। पिता के उस मन्त्री ने अपने राजकुमार के लिये बड़ा उत्सव मनाया।

अब विद्युद्ध्वज ने असुरों की सेना बटोरी और युद्ध का परामर्श किया। सब ठीक ठाक करके उसने इन्द्र के पास दूत भेजा और सन्देश कहलाया कि अब युद्ध के लिये सज्ज (१) हो जाओ। इतने में राक्षसी सेना आकाश में घोर शब्द करती जा पहुंची, पताकाओं से आकाश छाय गया, यह सेना क्या है मानों स्वर्गवासियों के लिये महाविपत्ति है, इन्द्र को यह ज्ञात हो गया था कि अब की बार यह भगवान् भूतभावन के वर से अनुगृहीत है और इसी कारण ऐसे समारोह के साथ आया है इसी कारण से इन्द्र महा विकल हुए। देवगुरु को बुला कर उन्होंने मन्त्रणा किये। अस्तु, देवताओं की सेना भी बुलायी गयी। उधर से विद्युद्ध्वज की सेना चढ़ आयी और इधर से सुरसेना डट गयी। बस घमासान युद्ध होने लगा। इस भयङ्कर युद्ध में अपने पराये का ज्ञान जाता रहा। अब दोनों ओर के वीर सामने डट कर युद्ध करने लगे। सुबाहु प्रभृति दैत्य वायुओं से भिड़े, पिशाच आदि कुबेर प्रभृति से, महामाय आदि अग्निप्रमुख देवों से भिड़े। अयःकाय इत्यादि सूर्यों से, अकम्पन प्रभृति सिद्धों से, अन्य दैत्य विद्याधरों से और दूसरे गन्धर्वों से भिड़ गये। इस प्रकार यह देवासुर घोर संग्राम बीस दिन होता रहा। इकीसवें दिन ऐसा हुआ कि देवता विडर चले दैत्यों ने उन्हें मार भगाया। देवता सब असुरों के प्रहार से क्षत विक्षत हो भाग के स्वर्ग के भीतर जा छिपे। अब ऐरावत पर चढ़कर इन्द्र स्वयं निकले, इन्द्र को अग्रसर होते देख सैन्य फिर बटुर आये और इन्द्र को घेर कर फिर निकले साथ में चन्द्रकेतु प्रभृति द्युचर भी अब को आये। अब फिर खचाखच मच गयी, देवता और असुरों का परस्पर हनन

(१) प्रस्तुत, तैयार।

होने लगा, इतने में इन्द्र को आया देख विद्युद्ध्वज पिता के वध का स्मरण कर अति क्रोधकर कटकटा के इन्द्र पर टूटा। अस्त्र पर अस्त्र और प्रत्यस्त्र चलने लगे दैत्येन्द्र जो अस्त्र प्रहार करता देवेन्द्र उसी का मुंह तोड़ उत्तर देते थे इसी प्रकार युद्ध करते २ देवराज ने अपने बाणों के प्रहार से विद्युद्ध्वज का कोदण्ड कई बार काट डाला। इस प्रकार बार २ धनुष कटता देख महेश्वर के वर से उद्धत विद्युद्ध्वज मुद्गर लेकर अतिवेग से इन्द्र पर दौड़ा; उछलके ऐरावत के दांतों पर पांव रख मस्तक पर चढ़ गया और वहां पहुंच कर पहिले तो उसने महावत को ही दल डाला पश्चात् देवराज पर मुद्गर प्रहार किया, देवराज ने भी उसे मुशल से मारा। विद्युद्ध्वज ने इन्द्र पर ऐसा मुद्गर जमाया कि वह मूर्छित होकर वायु के रथ पर गिर पड़े। तुरत वायु अपने मन के समान वेगवाले रथ में इन्द्र को अन्यत्र ले गये किन्तु विद्युद्ध्वज साथ ही कूदा। उसी समय यह आकाशवाणी हुई," यह अकाल है चटपट रथ से इन्द्र को हटा ले जाओ।" आकाशवाणी सुन ज्योंही वायु अपने मनोजव (१) रथ से इन्द्र को लेके चले कि इधर से विद्युद्ध्वज भी रथ पर चढ़ कर उनके पीछे दौड़ा। इतने में ऐरावत बिगड़ा और दैत्य सेना का मथन कर विंडारता हुआ जहां इन्द्र थे तहां जा पहुंचा। इन्द्र के जाते ही देवताओं की सेना भी उनके पीछे ही भाग गयी। यह दशा देख शची बड़ी ही डरीं तब सुरगुरु उन्हें ब्रह्मभवन को ले गये। अब अमरावती सूनी पड़ गयी बस विजयी विद्युद्ध्वज घनघोर नाद करते हुए अपने सैनिकों के साथ उस देव नगरी में प्रविष्ट हुआ।

उधर जब इन्द्र की मूर्छा जगी तब विचार करने लगे कि बड़ा अनर्थ हुआ, हमारा ऐसा पराभव हुआ, ऐसा अकाल हमपर आ पड़ा। अस्तु अकाल विचार कर वह भी सब देवताओं के साथ ब्रह्मभवन को गये। "इस समय वह दैत्य महादेव जी के वर के प्रभाव से उद्धत हो गया है तुम शोच मत करो, फिर अपना पद प्राप्त करोगे," इस प्रकार से पितामह ने उन लोगों का समाश्वासन किया और ब्रह्मलोक के एक भाग में अपना समाधिस्थल जहां सब प्रकार के सुख विद्यमान हैं, उनको रहने के लिये दे दिया। अब इन्द्र अपनी पत्नी शची और वाहन

(१) मन के समान है वेग जिसका, अत्यन्त शीघ्रगामी।

ऐरावत के साथ वहीं रहने लगी और उनके कहने से विद्याधरेश्वर वायुलोक में चले गये। गन्धर्वपति सोमलोक में चले गये जहां शत्रु का प्रभाव नहीं चलता तथा अन्यान्य अमर अपने २ आवासस्थान त्याग २ अन्यान्य लोकों मे जा बसे। इधर स्वर्ग में विद्युद्ध्वज ने अपना अधिकार जमा लिया और ढिंढोरा पिटवा दिया। अब वह उद्धत मर्यादा का उल्लङ्घन कर मनमाना राज्य करने लगा।

आगे कथा ऐसी है कि जब इधर वायुलोक में विद्याधर चन्द्रकेतु के रहते २ बहुत दिन व्यतीत हो गये तब तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वह लगे विचारने कि अपने पद से च्युत होकर मैं कबलों यहां दिन काटता रहूंगा, मेरे शत्रु विद्युद्ध्वज की तपस्या अबलों भी क्षीण न हुई। मैंने ऐसा सुना है कि मेरा मित्र पद्मशेखर गन्धर्वेन्द्र, जो कि सोमलोक में था, वहां से शिवपुर में तपस्या करने चला गया है। भगवान् ने उसपर प्रसाद किया या नहीं यह मुझे ज्ञात नहीं है सो इसका पता लगाके मैं अपना कर्तव्य निर्धारित करूंगा इस प्रकार वह विद्याधरेन्द्र चन्द्रकेतु चिन्ता कर ही रहे थे कि उसी अवसर में उनके मित्र विद्याधरेन्द्र पद्मशेखर वर प्राप्त कर उनके पास आ पहुंचें। चन्द्रकेतु उठकर अपने मित्र से गले लग मिले और उन्होंने अपने सुहृद् का बड़ा स्वागत किया और पूछा कि कहो मित्र कैसे रहे क्या किया, अपना वृत्तान्त मुझे सुनाओ। इस प्रकार चन्द्रकेतु से आगतस्वागत पाय पूछा जाकर गन्धर्वराज पद्मशेखर अपना वृत्तान्त इस रीति से सुनाने लगे।

भाई! आप तो जानते ही हैं कि हम लोगों की क्या दुर्दशा हुई है। मैंने यही विचारा कि चलकर भगवान् शङ्कर को सन्तुष्ट करूं। बस भाई मैं सीधे शिव-लोक को चला गया और वहां शम्भु की आराधना करने लगा। भगवान् आशु-तोष तो हैं ही चट प्रसन्न हो गये और उन्होंने मुझे वरदान दिया कि तेरे एक अतिश्रेष्ठ पुत्र होगा तू फिर राज्य प्राप्त करेगा। तेरे अतिश्रेष्ठ एक कन्या होगी, उसी का पति बड़ा वीर विद्युद्ध्वज का अन्तक (१) होगा। उस आशुतोष से यह वर पाय मैं तुम्हें यह शुभ सम्वाद सुनाने आया हूं।

गन्धर्वेन्द्र पद्मशेखर का ऐसा वृत्तान्त सुन चित्रकेतु बोले "भाई! मैं भी इसी बात की चिन्ता में सदा रहता हूं कि किस प्रकार से मेरे इस दुःख की शान्ति हो

(१) काल।

तो अब मैं भी यही करूंगा कि जाकर भगवान् आशुतोष की आराधना करूंगा क्योंकि कहा है—

इच्छित फल विनु शिव अवराधे। लहिय न कोटि जन्म जप साधे॥

भगवान् शङ्कर प्राणी मात्र के आराध्य हैं, उनकी आराधना विना किये अभीष्ट सिद्धि कदापि नहीं होती।" इस प्रकार निश्चय कर विद्याधर चित्रकेतु अपनी पत्नी मुक्तावली के सङ्ग त्रिशूली के दिव्यक्षेत्र में तपस्या करने चले गये। इधर गन्धर्वेन्द्र पद्मशेखर इन्द्र के समीप गये और शत्रु के क्षय के लिये जो वरदान उमापति से पाया था उसका वृत्तान्त उन्हें सुनाय मन में पूर्ण आस्था रख कर सोमभुवन को चले गये।

अब उधर समाधिस्थल में स्थित शचीपति का यह वृत्तान्त था कि जब उन्होंने पद्मशेखर से शत्रु के नाश का वरदान सुना तो उनके मन में भी भरोसा हुआ। सो एक दिन की बात है कि उन्होंने अमर्त्यगुरु (१) को स्मरण किया। स्मरण करते ही गुरु आ पहुंचे सो इन्द्र प्रणाम कर बड़ी नम्रता से अपने गुरु से कहने लगे कि गुरो! भगवान् भूतेश पद्मशेखर पर सन्तुष्ट हुए हैं और उन्होंने यह वरदान दिया है कि तुम्हारा जो जामाता होगा वही विद्युद्ध्वज को मारेगा। बस अब हम लोगों के दुःख का तबलों अन्त नहीं होगा किन्तु मेरी तो यह दशा है कि यहां रहते रहते मन अकुलाय गया है, मैं अपने पद से भ्रष्ट हुआ यह दुःख मेरे मन में सदा कोसा करता है सो भगवन्! अब ऐसा कुछ उपाय कीजिये कि यह काम अति शीघ्र हो जाय।" इन्द्र का इस प्रकार कथन सुन देवगुरु बोले "भला हुआ, उस दुष्ट के तप का क्षय भले ही उसी के पापों से हुआ! सो अब हमें अपने प्रयत्न साधने का अवसर प्राप्त हुआ है तो आओ ब्रह्मा के पास चलें वही उपाय बतलावेंगे।" इस प्रकार गुरु का कथन सुन इन्द्र उठ खड़े हुए और गुरुदेव के साथ ब्रह्मा के समीप गये। पद्मासन को प्रणाम कर अपना मनोगत सुना गये। सो सुन स्वयम्भू बोले "तुम क्या समझते हो कि मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, मैं इसी चिन्ता में रहता हूं पर करूं क्या यह महादेवजी का किया है सो उन्हीं से इसका निराकरण भी होगा, वह देव! बहुत विलम्ब में प्राप्त होते हैं सो आओ हम लोग

(१) देवताओं के गुरु बृहस्पति।

हरि के पास चलें, हम सभों का मन उनसे भिन्न नहीं है. वहां चलके उन्हीं से उपाय पूछें बस वह कुछ उपाय बतलावेंगे ही ।"

इस प्रकार कहके चतुरानन इन्द्र और सुरगुरु हंसयान पर चढ़कर श्वेतद्वीप को गये । जिस श्वेतद्वीप में जितने लोग हैं सब चारभुजावाले और शङ्ख चक्र गदा पद्म धारी हैं, मूर्ति में और मन में सब के सब भगवन्मय हैं । वहां क्या देखते हैं कि महामूल्य रत्नों से निर्मित गृह के भीतर भगवान् कमलापति शेषशय्या पर विराजमान हैं और साक्षात् लक्ष्मी उनके चरणों की सेवा कर रही हैं । इन तीनो जनों ने मस्तक नवाकर उन देवाधिदेव को प्रणाम किया; शेषशायी ने उठकर इनका सत्कार किया और देवर्षि ने इन्हें प्रणाम किया तब वे यथोचित आसनों पर बैठ गये । भगवान् ने पूछा "कहो देवो ! सब कुशल तो है ?" तब उन देवों ने कहा "विद्युद्ध्वज के रहते हमारा कुशल कैसा ! देव ! आप तो जानते ही हैं कि हमारी दशा उसने कैसी कर डाली बस उसी के हेतु हम आपकी शरण में आये हैं अब आपको जैसा समझ पड़े वैसा करें ।" जनार्दन देवों की एतादृशी उक्ति सुन बोले "क्या मैं यह नहीं जानता हूं कि उस असुर ने मेरी स्थिति नष्ट कर डाली है किन्तु मैं करूं क्या यह तो त्रिपुरारी भगवान् की माया है इसमें किसका वश है । जो कुछ उन्होंने स्वयं किया है बस उसका बिगाड़ना उन्हीं के हाथ में है, मैं इसमें कुछ भी नहीं कर सकता हूं । बस उन्हीं से इस पापात्मा दैत्य का नाश हो सकता है सो अब तुम लोग शीघ्रता करो हां उपाय एक मैं बतलाये देता हूं सो यह कि सिद्धीश्वर नामक एक माहेश्वर (१) क्षेत्र है वहीं महादेवजी मिल सकते हैं क्योंकि शङ्करजी वहां सदा सर्वदा विद्यमान रहते हैं । पूर्वकाल में मैंने उनका ज्वालालिङ्ग रूप में दर्शन किया था और पहिले पहिल विभु ने प्रजापति को यहीं पर रहस्य सुनाया था । सो आवो हम लोग वहीं चलें और तपस्या कर उनसे प्रार्थना करें वही जगत् का यह उपद्रव (२) शान्त करेंगे ।

रमापति का ऐसा कथन सुन वे तीनों देव विष्णु भगवान् के साथ गरुड़ और हंसयान पर आरूढ़ हो सिद्धीश्वर क्षेत्र को गये । वह सिद्धीश्वर क्षेत्र कैसा है कि जहां जरा और मृत्यु का नाम भी नहीं तो रोगों की तो कुछ बात ही नहीं वे कब

(१) महेश्वर सम्बन्धी अर्थात् महादेव का ।　　(२) विद्युद्ध्वज ।

उस स्थल का स्पर्श कर सकते हैं। नाना प्रकार के सब सौख्य जहां विद्यमान हैं। वहां के पशु पक्षी और पेड़ जितने हैं सब के सब सुवर्ण के हैं। वहां एक मन्दिर के भीतर क्या देखते हैं उन्हीं की मूर्तियों के लिङ्ग नाना रत्नों के बने क्षण २ में भिन्न भिन्न दिखाने लगे तहां इन चारों ने एक दूसरे के रत्न रूप लिङ्ग की पूजा किया। पश्चात् हरि, ब्रह्मा, देवेन्द्र और देवगुरु चारों जन भगवान् शङ्कर की आराधना में तपस्या करने लगे।

इतने में उधर क्या हुआ कि वहीं पर चन्द्रकेतु जो तपस्या कर रहा था सो आशुतोष उसकी तपस्या से सन्तुष्ट हो गये और बोले "पुत्र चन्द्रकेतु अब उठो मैं तुमको वरदान देता हूं, तुम्हारे एक पुत्र होगा जो कि बड़ा भारी वीर होगा, वही तुम्हारा पुत्र युद्ध में तुम्हारे शत्रु विद्युद्ध्वज को मारेगा। वह देवताओं का हित साधेगा और शाप के कारण मानवलोक में जायगा, गन्धर्वराजकन्या पद्मावती के तपोबल से पुनः अपने पद को प्राप्त होगा और उसी भार्य्या के साथ दश कल्प (१) पर्य्यन्त विद्याधरों का ऐश्वर्य भोग करेगा।" इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये। तब चन्द्रकेतु अपनी भार्य्या के सङ्ग वायुभवन को चले गये।

उधर की यह बात थी कि ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और बृहस्पति चारों जन तीव्र तप कर रहे थे कि उनके तीव्र तप से महेश्वर सन्तुष्ट हुए और लिङ्गों के भीतर दर्शन करने से प्रसन्न उन चारों को बोले "हे देवो! उठो अब और क्लेश मत करो। तुम्हारी ओर वो ही विद्याधरेश्वर चन्द्रकेतु ने मुझे तप से सन्तुष्ट कर लिया। मैंने उसे वरदान दिया है कि मेरे अंश से उसके एक वीर पुत्र उत्पन्न होगा वही बहुत शीघ्र विद्युद्ध्वज को युद्ध में मारेगा। वह दूसरे देव के कार्य के हेतु शाप से मनुष्यलोक में जा गिरेगा सो पद्मशेखर की पुत्री उसका उद्धार करेगी। गौरी के अंश से उद्भूत पद्मावती पत्नी के साथ वह साम्राज्य का ऐश्वर्य भोग कर अन्त में मुझको आ मिलेगा। सो अब कुछ काल और दुःख सहो तुम्हारा मनोरथ तो सफल हुआ।" अच्युतादि उन चारों को इतना सुनाय भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो

(१) ४३२०००००० मानव वर्षों का एक कल्प होता है।

गये । यह वरदान सुन हरि, ब्रह्मा, इन्द्र और अमरगुरु बहुत प्रसन्न हुए और जहां से आये थे वहां अपने २ लोक को चले गये ।

अब भगवान् उमापति की कृपा से विद्याधरेन्द्र चन्द्रकेतु की प्रिया मुक्तावाली गर्भिणी हुई और यथासमय पुत्र जनी । उस बालक का तेज ऐसा प्रखर कि सब दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं मानों अन्धकार के उपद्रव के दूर करने के लिये बाल-सूर्य उदय हुए हों । जिस समय वह उत्पन्न हुआ उसी समय यह आकाशवाणी हुई "हे चन्द्रकेतु ! यह तुम्हारा पुत्र विद्युद्ध्वज असुर को मारेगा ।" यह बड़ा ही पराक्रमी होगा नाम इसका होगा "मुक्ताफलकेतु ।" चन्द्रकेतु को इस प्रकार उत्सव सूचक शुभ सम्वाद सुनाकर आकाशवाणी चुप हो गयी उसी समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई । यह वृत्तान्त जान कर पद्मशेखर और इन्द्र तथा और २ जो देव यहां वहां छिपे थे सो वहां आये और परस्पर हर भगवान् के प्रसाद से प्राप्त वृत्तान्त कहने लगे पश्चात् आनन्द प्रमोद अनुभव कर अपने २ स्थान को चले गये । मुक्ताफलकेतु के क्रमशः सब संस्कार होते गये और वह देवताओं के आनन्द के साथ २ बढ़ता गया ।

चित्रकेतु के पुत्र उत्पन्न होने के कुछ दिनों के अनन्तर गन्धर्वाधिपति पद्मशेखर के पुत्री उत्पन्न हुई, उसी समय यह आकाशवाणी हुई "गन्धर्वेन्द्र ! यह तुम्हारी कन्या विद्युद्ध्वजशत्रु विद्याधरपति की भार्य्या होगी नाम इसका होगा पद्मावती ।" अब पद्मावती दिनों दिन बढ़ने लगी । उसका लावण्य वर्णनातीत, मानों सुधांशु के लोक में उद्भूत अमृत का तरङ्ग । इधर यह दिनों दिन बढ़ती उधर कुमार मुक्ताफलकेतु प्रति दिनों दिन बढ़ने लगा, ज्यों २ वह बड़ा होता त्यों २ गौरीपति की आराधना में व्रत उपवास और तपस्या में लीन होता गया मानों वह शिवमय हो गया था ।

एक समय की बात है कि मुक्ताफलकेतु बारह दिन उपवास कर भूतभावन के ध्यान में स्थित बैठा था कि भगवान् गिरिजापति प्रत्यक्ष होकर बोले "पुत्र ! तेरी इस भक्ति से मैं सन्तुष्ट हुआ, मेरे प्रसाद से तुझे सब अस्त्र प्राप्त हो जावेंगे तथा सब विद्याएं और सब कलाएं तुझे आजावेंगी । यह अपराजित नामक खड्ग तुझे देता हूं, इसे ग्रहण कर इसी से तू साम्राज्य का उपभोग करेगा और शत्रुओं

का बल तुझपर न चल सकेगा।" वह विभु इतना कह उसे खड्ग देकर अन्तर्धान हो गये। वह विद्याधरकुमार अति शीघ्र अस्त्र शस्त्रसम्पन्न और बल पराक्रमान्वित हो गया।

अब एक समय की बात है कि त्रिदिव (१) में अवस्थित विद्युद्ध्वज असुर आकाश गङ्गा में जलक्रीड़ा करने गया तहां क्या देखता है कि पुष्प को रेणुओं से गङ्गा जी का जल पीतवर्ण हो रहा है और मद का गन्ध आ रहा है और बड़ी बड़ी लहरें उठ रही हैं। भुजमद से उन्मत्त वह राक्षस अपने सेवकों को बोला कि जाकर देखो तो सही कि मेरे ऊपर (की ओर) कौन जलक्रीड़ा कर रहा है। उसका ऐसा आदेश सुन ज्योंही राक्षस लोग आगे जाकर देखते हैं तो महादेव का नन्दी इन्द्र के हाथी के साथ खेल रहा है। आकर उन सभोंने अपने स्वामी से कहा कि देव! प्रभु भगवान् का वृषभ ऐरावत के साथ आकर ऊपर (की ओर) जल में खेल रहा है। उस वृष की मालाओं और ऐरावत के मद से यह जल मिश्रित है। वह राक्षस मदान्ध तो था ही, इतना सुनते ही महाप्रभु शिव को कुछ न गिन कर अति कुपित हुआ। उसके पापों का अब उदय हो ही गया था सो वह दुष्ट अपने सेवकों को बोला "जाओ, उन दोनों वृषभ और ऐरावत को बांध लाओ।" तब अनुचर लोग ज्योंही जाकर पकड़ना चाहते थे कि वृष और द्विप दोनों क्रोधित होकर उनपर टूट पड़े और लगे मारने। बहुत तो वहीं यमलोक सिधार गये और जो बच गये थे उन्होंने जाकर विद्युद्ध्वज से सारा वृत्तान्त कह दिया। सुनते ही असुरेन्द्र विद्युद्ध्वज महाकुपित हुआ और उसने उनके ऊपर बड़ी भारी सेना भेजी। उन दोनों ने उस सेना का भली भांति मथन किया पापों के परिणाम फलित हो गये थे अत: उनका क्षय समीप था। इस प्रकार सैन्य का मथन कर वृष महादेवजी के तथा ऐरावत इन्द्र के समीप चला गया।

दोहा।

जब वज्री (२) यह सब सुनेउ, दैत्यपती कर काज॥
गजरक्षक अनुचरन सों, किमि तिसु सेना भाज॥ १॥

(१) स्वर्ग। (२) इन्द्र।

आयो यहिकर काल अब, मन अस किय अनुमान ॥
याही सों यह दुष्ट किय, गौरीपतिअपमान ॥ २ ॥
तब पद्मासन के निकट, इन्द्र गयो हरखाय ॥
वृषगजकृत घटना सकल, विधिवत दीन्ह सुनाय ॥ ३ ॥
सुरसेना एकत्र करि, चढ़ि स्वर्गिय गजराज ॥
चले हतन रिपु इन्द्र तब, शचिकृत मङ्गलसाज ॥ ४ ॥

तीसरा तरङ्ग ।

इस प्रकार भूतभावन भगवान् शङ्कर के अनुग्रह से सब देवताओं में बड़ा भारी उत्साह उत्पन्न हो गया, पुनः समय भी आ पहुंचा था इससे द्विगुणित उत्साहयुक्त सेना सज्जित कर इन्द्र ने आकर स्वर्ग घेर ही तो लिया । जब विद्युद्ध्वज को सूचना मिली कि इन्द्र ने चढ़ाई कियो है तब वह भी अपनी सेना प्रस्तुत कर निकला; उस समय उसके निकलते ही अनेक अपशकुन होने लगे; ध्वजाएँ अचानक गिरने लगीं, ऊपर गिद्ध मेड़राने लगे, बड़े २ छत्र टूटने लगे और सियारिनें फेंकरने लगीं । यद्यपि ऐसे २ अनिष्ट शकुन दीख पड़ते तथापि मदोन्मत्त वह असुर कुछ भी गिनता न था; अन्त को आकर भिड़ ही गया और देवों तथा दानवों का महा भयङ्कर युद्ध होने लगा ।

उस समय इन्द्र ने चन्द्रकेतु से पूछा कि वह मुक्ताफलकेतु अब लों क्या नहीं आया ? इसपर खेचरेन्द्र चन्द्रकेतु ने उत्तर दिया "मैं आते समय ऐसी शीघ्रता में था कि उसे बुलाना भूल गया, किन्तु जब उसे यह ज्ञात होगा तो वह पीछे अवश्य ही आवेगा ।" चन्द्रकेतु का इतना कथन सुन देवेन्द्र ने चतुर मुक्ताफलकेतु के लाने के लिये एक रथ भेजा जिसपर वायु को सारथि नियुक्त कर दिया । उसी प्रकार उसके पिता चन्द्रकेतु ने उसके बुलाने के लिये रथ के पश्चात् ही अपने प्रतीहारको सेनासहित भेज दिया ।

जब मुक्ताफलकेतु को सम्बाद मिला कि पिताजी दैत्यों के साथ युद्ध करने गये

हैं तब वह अपने अनुचरवर्ग के साथ चलने को प्रस्तुत हो गये। जिस समय वह जय नामक गजेन्द्र पर आरूढ़ हुए उस समय माता ने प्रास्थानिक सब मङ्गल कार्य कर दिये। अब वह मुक्ताफलकेतु महादेवजी का दिया हुआ खड्ग लेकर वायुलोक से चले। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी देवता लोग दुन्दभी बजाने लगे और कल्याणसूचक अनुकूल पवन बहने लगी।

इस अवसर का वृत्तान्त सुन वे सब देवगण, जो कि विद्युद्ध्वज के भय के मारे भाग कर इधर उधर छिपे हुए थे, बटुर आये और मुक्ताफलकेतु के साथ युद्ध के लिये चले। अब उनकी सेना बड़ी भारी हो गयी जिसका वारापार नहीं। मुक्ताफलकेतु उस महती सेना के साथ विजय करने के हेतु चले।

जब कि मुक्ताफलकेतु अपनी महती सेना के साथ चले जा रहे थे कि उसी मार्ग में एक मेघवन नामक पार्वती जी का बड़ा मन्दिर पड़ा। मन्दिर का उल्लङ्घन कर चला जाना उचित न होगा यह विचार कर वह बड़ी भक्ति के साथ अपने गजेन्द्र से उतरे और दिव्य पत्र पुष्प मँगा के देवी की पूजा करने लगे। इसी अवसर में गन्धर्वपति पद्मशेखर की वह कन्या पद्मावती जिसके कि यौवन रोम २ से टपकता था, सखियों के साथ, अपनी माता से जो कि संग्राम में गये अपने पति के कल्याणार्थ तपस्या कर रही थी, आज्ञा ले कर विमान पर चढ़ कर चन्द्रलोक से, अपने पिता की जयकाङ्क्षिणी वहीं गौरी के मन्दिर में तपस्या करने के अभिप्राय से आयी। इस अवसर पर मार्ग में ही उसकी एक सखी ने उससे पूछा "ऐ सखि! अब लों तो तुम्हारा कोई वर भी निश्चित नहीं हुआ है, जो कि युद्ध में गया हो, फिर तुम्हारे पिता के कल्याणार्थ तो तुम्हारी माता तपस्या कर ही रही हैं और तुम अब लों कन्या ही हो फिर यह बतलाओ कि तुम तपस्या किसके लिये किया चाहती हो?" सखी का ऐसा कथन सुन पद्मावती बोली, "हे सखि! कन्याओं के पिता ही सब सिद्धि के देनेहारे देवता हैं फिर वर की बात जो कहती हो सो हमारे वर तो ऐसे निश्चित हैं जिनके गुण असामान्य हैं; विद्युद्ध्वज के वध करने के लिये जो मुक्ताफलकेतु विद्याधरेन्द्र से उत्पन्न हुए हैं वही मेरे पति भगवान् शम्भु से ठहरा दिये गये है। एक वार मेरी माता ने पिता जी से पूछा था सो, उन्हीं के मुंह से मैंने वह सुना था। सो मेरे पति संग्राम में

निश्चय जावेंगे अथवा गये होंगे । बस यही कारण है कि मैं भगवती गौरी को सन्तुष्ट करने के लिये यहां तप करने चली हूं मैं अपने उक्त पति की और पिता की अर्थात् दोनों की जीत चाहती हूं।" राजदुहिता का ऐसा कथन सुन वह सखी बोली, "हे पद्मावति ! जब होनहार विषय में तुम्हारा ऐसा निश्चय है तो यह बहुत ही उचित बात है; हे सखि ! तुम्हारी अभिलाषा शीघ्र पूर्ण होवे । इस प्रकार वह सखी कह ही रही थी कि राजकुमारी का विमान गौरी के मन्दिर के समीपवाले अति मनोहर सरोवर के किनारे आ पहुंचा ।

वह सरोवर कैसा रम्य है कि सुवर्ण के रङ्ग के कमलों से जिसका जल नितान्त ढक गया है, वे कमल चम २ चमक रहे हैं मानों उस सरोवर के मुखाम्बुज से निकलती हुई कान्ति चहुंओर छिटक रही है । गन्धर्वसुता पद्मावती वहां उतरी और अम्बिका की अर्चना के लिये कमल चुनकर ज्योंही स्नान करने लगी कि उसी अवसर में क्या हुआ कि उधर से बहुत से राक्षस मांस के लोभ से देवासुर युद्ध को चले जा रहे हैं तिस समय उसी मार्ग से दो राक्षसियां वहां आ पहुंचीं । महाभयङ्कर जिनका बदन, बड़े २ विकराल दांत, शिरके बाल भूरे २ और लटकते हुए, मुख से ज्वालायें निकल रही हैं; धूम के समान काला शरीर पेट और पयोधर लम्बे २ । गन्धर्वराजकुमारी को देखते ही वे दोनों नक्तञ्चरियां (१) झपटीं और उसे लेकर आकाश की ओर उड़ीं । उस विमान के अधिदेवने उन राक्षसियों को रोका और जितनी सखियां थीं वे सब आर्त्तनाद कर रोदन करने लगीं ।

उसी अवसर में मुक्ताफलकेतु देवी का पूजन कर मन्दिर से निकले, जब रोने का शब्द उनके कानों में पड़ा तो वह उधर ही चले, तो क्या देखते हैं कि काली मेघावली के बीच जैसी विद्युत् वैसी ही अपनी प्रभा से प्रकाश करती पद्मावती दोनों राक्षसियों से पकड़ी हुई है । बस इस महावीर ने चटपट वहां पहुंच कर उन राक्षसियों को ऐसा मारा कि वे धरती पर अचेत हो गिर पड़ीं और पद्मावती को उनसे छोड़ा दिया ।

(१) राक्षसियां ।

अब राजकुमार जब पद्मावती को देखते हैं तब मनही मन कुछ सोचने लगे। अहा! लावण्य की यह सरिता कहां से प्रवाहित हुई है। अहा ! यह त्रिवली कैसी अपूर्व शोभा दे रही है, वक्षःस्थल पर वह हार कैसा ही भाग्यवान् होकर विराजमान हो रहा हैं, क्या ही शोभा हो रही है । स्वर्ग की स्त्रियों की रचना करते २ विधि बड़े ही प्रवीण हो गये हैं सो मुझे तो ऐसा भासता है समस्त सौन्दर्य्य का सार उन्होंने उसे ही बनाया है । इस प्रकार अपने मन में सोचते हुए राजकुमार मुक्ताफलकेतु यद्यपि बड़े धीर थे तथापि कन्दर्प के वश में होकर चित्र लिखे से हो उसे देखते ही रह गये।

जब राक्षसियों का उपद्रव शान्त हुआ और क्षण भर के उपरान्त जब कुछ आश्वस्त हुई तब गन्धर्वराजसूनु मुक्ताफलकेतु को देखकर पद्मावती भी भौंचक सी हो गयी। आहा! जगत् के नेत्रों का उत्सवप्रदायक वह सौम्य आकार, जिसके अवलोकन करते ही स्त्रियों को उन्माद हो जावें, मानों चन्द्र और कामदेव को एकत्र कर विधिना ने इनकी सृष्टि कियी हो। इस प्रकार उनके रूप से गन्धर्वराजदुहिता का मन भी चञ्चल हो गया।

अब तो लज्जा का प्राबल्य हुआ सो वह लाज के कारण नीचे मुख कर खड़ी हो गयी और धीरे से अपनी सखी से बोली, "हे सखि! इनका कल्याण हो। अब मैं परपुरुष के पास और नहीं खड़ी रहूंगी अब यहां से जाती हूं।" इस प्रकार जब वह बोलीं तो मुक्ताफलकेतु ने उसकी सखी से पूछा कि इस बाला ने क्या कहा है? सखी बोली "महाभाग! यह सुकन्या है, आपने इसके प्राण बचाये हैं इससे यह आपको आशीर्वाद देती है और इसने मुझसे यही कहा कि आओ पराये पुरुष के पास से चलें।" सखी का ऐसा कथन सुन मुक्ताफलकेतु ने फिर प्रश्न किया "यह कौन है, किसकी बेटी है, और किस शुभकर्म्मा को दियी गयी है?" राजकुमार के ऐसे प्रश्न सुन पद्मावती की सखी बोली "हे सुभग! इस कन्या का नाम तो पद्मावती है, गन्धर्वाधिपति पद्मशेखर की आत्मसम्भवा है; भगवान् शङ्कर ने इसका पति मुक्ताफलकेतु को ठहराया है । वह विद्याधरेन्द्र चन्द्रकेतु के पुत्र हैं जिन्हें कि समस्त जगत् प्यार करता है और जो देवराज के सहायक तथा विद्युद्ध्वज के नाशक हैं । आज यह यहां इस अभिप्राय से आयी है कि यहां

गौरी के आयतन में तपस्या करे, इसका आशय यह है कि मेरे पति और पिता युद्ध में विजय प्राप्त करें।"

सखी का इतना कहना कि चन्द्रकेतु के पुत्र के अनुचर बोल उठे "देवि! तुम धन्य हो! यह वही तुम्हारे भर्त्ता हैं।" इस प्रकार उनका कथन सुन आनन्द का सागर उमड़ आया। परस्पर परिज्ञान से दोनों वरवधू के हृदय में ऐसा आनन्द बढ़ा कि अब वहां उसे ठांव ही न रहा। इस प्रकार दोनों आनन्दसागर में डुबकियां लेने लगे। एक दूसरे को देखते और फिर मस्तक नवा लेते।

इस प्रकार जब कि दोनों एक दूसरे को प्रेम भरी चितवन से निरखते और पुनः लज्जा के वश में पड़ कर मस्तक झुका लेते। इसी अवसर में नगाड़े का शब्द सुन पड़ा और सैन्य दृष्टिगोचर हुआ तथा वायुयुक्त रथ और चन्द्रकेतु का भेजा प्रतीहार झटपट वहां आ पहुंचे। वायु और प्रतीहार वाहन त्याग कर धरती पर उतरे और विनयपूर्वक निवेदन करने लगे कि महाभाग! युद्धस्थल से देवेन्द्र और आपके पिताने हमको आपके पास भेजा है कि आपको बुला लावें सो अब इस रथ पर चढ़िये और शीघ्र चलिये।"

इधर पद्मावती का प्रेम और उधर गुरुजनों की आज्ञा! राजकुमार उभय सङ्कट में पड़ गये। पर चट निश्चय किया कि गुरुकार्य गुरुओं की आज्ञा का पालन ही है वही पहिले विधेय है। अतः वह खेचरेन्द्र सुत उन दोनों (१) के साथ रथ पर आरूढ़ हो गये। शक्र का भेजा दिव्य कवच बांध कर चले परन्तु ग्रीवा मोड़ २ पद्मावती को निरखते जाते थे।

जहां लों दृष्टि गयी तहां लों पद्मावती भी उन्हें देखती रही। जब वह दृष्टिपथ से बाहिर होंगये तो उसने इधर जो दृष्टि फेरी तो क्या देखा कि एक ही थप्पड़ की चोट से दोनों राक्षसियां मरी पड़ी हैं सो वह अपने मन में मुक्ताफलकेतु का शौर्य वर्णन करने लगी। अब तो पद्मावती को उन्हीं की चिन्ता थी तथापि वह उठी और स्नान कर जा के हरगौरी का पूजन कर तपस्या में लीन हो गयी। उसी समय से वह अपने पिता और पति के कल्याण के निमित्त तपस्या करने लगी। उधर मुक्ता-

(१) वायु और प्रतीहार।

फलकेतु भी पद्मावती के दर्शनों की आकांक्षा करते हुए मङ्गलप्रद तथा विजय सूचक युद्ध में जा विराजे।

भली भांति सज्जित होकर सैन्यसहित एक महावीर आया, बस उन्हें देखते ही सब के सब राक्षस उन्हीं पर टूट पड़े। शूर मुक्ताफलकेतु ने बाणों की वर्षा प्रारम्भ कर दियी, वह बाणों के तरल प्रवाह से राक्षसों के शिर काट २ दिग्देवताओं को बलि चढ़ाने लगे। इस प्रकार विद्युद्ध्वज के सैनिक के शिर खचाखच कटने लगे तब तो वह बड़ा ही क्रोधित हुआ और दांत कटकटाता मुक्ताफलकेतु पर दौड़ा। उसके आते ही मुक्ताफलकेतु ने उसके ऊपर बाणों की ऐसी वर्षा लगा दियी कि उसकी समस्त सेना उसे इस प्रकार विपन्नत देख मलयकेतु की ओर दौड़ी। यह देख उधर से इन्द्र भी सिद्ध गन्धर्व तथा विद्याधरों और सेनाओं के साथ दौड़े हुए वहां आ पहुंचे। प्राश, शक्ति, तोमर, परिघ और नाना प्रकार के बाणों की वर्षा दोनों ओर से होने लगी। महा भयङ्कर निदारुण यह देवासुर संग्राम हुआ जिसमें असंख्य सैनिक काम आ गये। उस समय रुधिर की नदियां बह चलीं जिनमें कटे हुए हाथियों और घोड़ों के शरीर मकर और घड़ियाल से भासते थे, हाथियों के मोती बालू बूझ पड़ते थे उत्तमोत्तम वीरों के मुण्ड ढोके ज्ञात होते थे। इतने में कबन्धों का प्रादुर्भाव हुआ वे नाचने लगे तिनके साथ शोणित रूपी आसव (१) पान कर उन्मत्त हो के मांस के लोभी भूत नाचने लगे सो वह रण उनका महोत्सव हो गया। इस रणरूपी महार्णव में देवों और दैत्यों की जयश्री बड़े २ तरङ्गों के कारण बड़ी चपल हो गई लहर से कभी इधर ढुलकती कभी उधर लुढ़कती। इस प्रकार वह महाभयङ्कर युद्ध चौबीस दिन पर्यन्त होता रहा और आकाश में विमानों पर बैठे शङ्कर, विष्णु, और ब्रह्मा जी रणकौतुक देखते रहे।

अब पचीसवें दिन ऐसा हुआ कि इतने दिनों की लड़ाई में दोनों ओर की सेना तो प्राय: समाप्त हो चुकी थी अत: प्रधान २ लोगों के द्वन्द्वयुद्ध की पारी आई, जोड़ के तोड़ लोग परस्पर भिड़ गये, श्रीमुक्ताफलकेतु और विद्युद्ध्वज रथ से हाथी पर से परस्पर बाणप्रहार करने लगे; जब उधर से अन्धकार का अस्त्र

(१) मद्य।

चलता तो इधर से भास्करास्त्र छूटता जिससे अन्धकार का नाश हो जाता था, उधर से ग्रैष्मास्त्र चलता तो उधर से शैशिर अस्त्र चलता (१); कुलिशास्त्र का विरोधी शैलास्त्र छोड़ा जाता और जब नागास्त्र छूटा तब गारुड़ास्त्र से उसका वेग रोका गया।

अब मुक्ताफलकेतु ने चटपट एक बाण से उस राक्षस के हाथीवान को तथा दूसरे से हाथी को गिरा दिया, तब विद्युद्ध्वज रथ पर आरूढ़ हुआ किन्तु मुक्ताफलकेतु ने उसके सारथि और घोड़ों को मार गिराया। तब तो वह असुरराज बहुत ही घबड़ाया, अब चट वह माया का अवलम्बन कर अदृश्य हो गया और आकाश में जाकर चारों ओर से पाषाण और नाना प्रकार के अस्त्रों की वर्षा करने लगा। वह तो ऊपर से इतना उत्पात करता पर उसे कोई देख न पाता। अपनी ओर की यह दुर्दशा देखके मुक्ताफलकेतु ने चटपट शरजाल रच दिया तिसे उस दैत्य ने अग्निवर्षा कर जला डाला।

अब तो श्रीमुक्ताफलकेतु बड़े विस्मित हुए किन्तु उन्होंने तत्क्षण ही ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया, झटपट पढ़ विश्वक्षयकारी ब्रह्मास्त्र सन्धान अनुचरवर्गसहित उस असुर पर चला ही तो दिया। बस अब क्या था, ब्रह्मास्त्र से भला कौन बच सकता है वह असुर अपने सैन्यों के साथ आकाश से प्राणहीन होकर धरातल पर गिर ही पड़ा। इस प्रकार जब विद्युद्ध्वज निर्जीव होकर धरती पर लेट रहा तब जो लोग शेष बचे थे विद्युद्ध्वज के पुत्रादिक और वज्रदंष्ट्रादि, वे सब भय के मारे भाग के रसातल में जा छिपे।

अब इधर देवताओं के मध्य आनन्दसागर उमड़ आया, "साधु २" की ध्वनि बारम्बार होने लगी, जय जयकार मचा कर सब देवगण श्रीमुक्ताफलकेतु पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। इन्द्र का बहुत दिनों का सन्ताप आज शान्त हुआ और गया हुआ राज्य फिर हाथ आया।

इस प्रकार शत्रु के नष्ट होने पर इन्द्र अपना राज्य प्राप्त कर स्वर्ग में प्रविष्ट हुए उसी अवसर पर तीनों लोकों में महोत्सव छाय गया। उधर से शची को आगे

(१) ग्रैष्म = ग्रीष्म (उष्णकाल) सम्बन्धी, शैशिर = शिशिर (सम्बन्धी)।

कर पितामह जी आये, उन्होंने मुक्ताफलकेतु के मस्तक पर चूड़ारत्न (१) बैठा दिया; उधर से इन्द्र ने अपने गले का हार निकाल कर राज्य दिलानेवाले रत्न राजपुत्र के गले में पहिनाय दिया और अपने साथ अर्द्धासन पर बैठा लिया। इस समय समस्त देवगण चहुंओर से उन्न राजकुमार को आशीर्वाद देने लगे उधर विद्युद्ध्वज के नगर में प्रतीहार को भेज कर यह स्वीकारवचन दिया कि अवसर होने पर तुमको दे दिया जावेगा और अब उन्होंने अपने पुर का अधिकार स्वीकार किया।

अब पद्मशेखर की इच्छा हुई कि मैं इसी अवसर पर अपनी कन्या पद्मावती को राजपुत्र के हाथ में समर्पण कर देऊं सो वह इसी अभिप्राय से ब्रह्मा के मुख की ओर देखने लगे। ब्रह्मा उनका हृद्गत भाव ताड़ गये और बोले "अभी कुछ कार्य बच रहा है इससे तुम ठहरो।"

इसी अवसर पर हाहा हूहू गन्धर्व आकर गान करने लगे और रम्भादि अप्सरायें आकर नाच करने लगीं। यह जो विजय-प्राप्त हुआ है इसी के उपलक्ष में इन्द्र की राजधानी में बड़ा भारी उत्सव मनाया गया।

इस प्रकार उत्सव देखकर जब ब्रह्माजी चले गये तब इन्द्रहाने सब लोकपालों को बड़े आदर के साथ सम्मान करके विदा किया। पश्चात् गन्धर्वराज पद्मशेखर को भी परिचरसहित विदा किया तदनन्तर बड़े सत्कार के साथ श्रीमुक्ताफलकेतु और चन्द्रकेतु को भी विदा किया और कहा कि अब आप लोग अपने २ लोक में जाकर वहां भी उत्सव मनाइये।

सोरठा।

जगकंटक करि दूरि, श्रीमुक्ताफलकेतु तब।
जनक, राजसुत भूरि, संग आयो रजधानि निज॥ १॥

दोहा।

जब प्रविश्यो निज नगर महं, रत्नरचित सब भांति॥
ध्वजपताक फहरत जहां, राजत नाना जाति॥ १॥

(२) शिर का भूषण, मुकुट।

तेहि अवसर सो नगर वर, बहुत दिनन ते पाय ॥
विजयी राजकुमार कहँ, शोभित अधिक लखाय ॥ २ ॥
चन्द्रकेतु महराज तब, भृत्यन लीन्ह हँकारि ॥
जल जिमि बरसत जलद तिमि, बरसायो वसुधारि ॥ ३ ॥
विद्युद्ध्वज अरु मदनको, कीरति लहि सो वीर ॥
मुक्ताफलकेतू विना, पद्मावती अधीर ॥ ४ ॥
जदपि भोग बहुभांति के, जुरे रहैं सब काल ॥
पै उनको ताविरह महँ, लागत थे जिमि व्याल ॥ ५ ॥
संयत नामक मित्र तिमु, कहि शम्भू आदेश ॥
आश्वास्यो, सहि कष्ट सो, बितयो दिवस अशेष ॥ ६ ॥

चौथा तरङ्ग ।

अब उधर की बात यह है कि विद्याधरेश्वर पद्मशेखर इस प्रकार जामाता के द्वारा विजय पाकर अपने नगर में गये जहां कि उनके आगमन के उपलक्ष में नाना प्रकार के उत्सव मनाये जा रहे थे। स्थान २ पर वितान तने थे और ध्वजाओं तथा पताकाओं से भली भांति सजावट हुई थी. जब कि वह अपने भवन में सुस्थ-चित्त उपविष्ट हुए उस समय अवसर पाय उनकी भार्य्या ने उनसे कहा कि देव ! आपकी पुत्री पद्मावती आपके विजय के हेतु गिरिजा के आश्रम में जाकर तप कर रही है। भार्य्या से ऐसा सुनना कि गन्धर्वराज ने तुरन्त अपनी तनुजा पद्मावती को बुलवा मंगाया। पद्मावती आकर अपने पिता के चरणों पर गिरी, पद्मशेखर क्या देखते हैं कि पद्मावती तपश्चर्य्या और विरह से नितान्त दुबली हो गयी है, अशीर्वाद देकर वह बोले, "वत्से ! मेरे लिये तूने तप कर बड़ा क्लेश उठाया, इस कारण मैं आशीष देता हूं कि तू विद्युद्ध्वज के नाशकरनेवाले, विद्याधरराजेन्द्र के पुत्र, जगत् के शरणदाता विजयी श्रीमुक्ताफलकेतु को पति प्राप्त कर, जिसे कि स्वयं भगवान् शम्भु ने तेरा पति निर्धारित कर दिया है।"

पिता का इस प्रकार आशीर्वचन सुन पद्मावती शिर झुका के रह गयी। इसी अवसर में उसकी माता कुवलयावली ने राजा से पूछा कि "आर्यपुत्र! वह राक्षस तो बड़ा ही उत्पाती, तीनों लोकों को सन्तप्त किये हुए था, उस दुष्ट को राजकुमार ने युद्ध में किस प्रकार मार कर तीनों लोकों को निर्भय किया सो आप कृपा कर मुझे सुनाइये।" भार्य्या का एतादृश प्रश्न सुन गन्धर्वराज पद्मशेखर उस राजकुमार मुक्ताफलकेतु का पराक्रम, जो कि देवासुरसंग्राम में हुआ था, रानी को सुना गये। उसी समय पद्मावती की सखी मनोहारिका वहीं उपस्थित थी सो भी राजकुमार की वह कथा सुना गयी जो कि उन दोनों राक्षसियों के वध से सम्बन्ध रखती थी अर्थात् क्योंकर राजकुमार ने उन दोनों राक्षसियों का वध किया था। इस प्रकार राजकुमार तथा अपनी पुत्री का वृत्तान्त और उन दोनों का परस्पर दर्शन, उनकी प्रीति सुनकर राजा और रानी को बड़ा सन्तोष हुआ। राजा रानी बोले कि जिसने अगस्त के समान असुरों की सेनाओं का समूह निगल डाला (१) उसके साम्हने राक्षसियां क्या हैं।

इधर तो राजकुमार के पौरुष का बखान हो रहा था उधर पद्मावती के हृदय में विरहानल धधक रहा था सो इस वर्णनरूपी वायु से और भी बढ़ गया। अब राजकन्या माता पिता के समीप से उठीं और अपने रत्ननिर्मित प्रासाद में चली गयीं जहां रत्नों के खम्भे बने हैं जिनमें मोतियों की मालाओं के जाल बने हुए हैं, मणिजटित गच जिसपर सुखशैय्या और उत्तमोत्तम आसन बिछे हैं। जहां चिन्ता करते ही नाना प्रकार के दिव्य भोग आकर विराज जाते थे। ऐसे सुखमय स्थान में वह पद्मावती अपने प्रिय की विरहाग्नि से अति सन्तप्त होती थीं।

इतने में जो पीछे की ओर घूमी तो क्या देखती हैं कि एक दिव्य उद्यान शोभित है जहां के वृक्ष हेमनिर्मित और उनपर सोने की ही लताएं चढ़ी हैं जहां रत्नों की सैकड़ों बावड़ियां विद्यमान हैं सब प्रकार की सम्पत्ति से वह उद्यान सम्पन्न है। उद्यान देखकर गन्धर्वराजदुहिता मन में विचार करने लगीं। "अहो! यह बड़ा आश्चर्य है, यह हमारे पुर से भी उत्तम कैसा विचित्र है, मेरी जन्मभूमि तथा चन्द्रभुवन से भी यह अधिक सुन्दर है। हिमालय के मुकुट का मणि यह अद्भुत नगर मैंने कदापि नहीं देखा, देखो न नन्दन से भी बढ़कर इस नगर का उपवन

(१) नाश कर डाला।

कैसा मनोहर और शोभासम्पन्न है । सो अब मैं वहीं चलूं और कहीं शीतल छाया में एकान्त स्थान में बैठकर विरहानल का सन्ताप टुक शमन करूं ।" इस प्रकार चिन्ता कर वह बाला धीरे से वहां से उठी और अकेली उस प्रासाद से उतर कर उस उद्यान की ओर जाने में प्रवृत्त हुई । कोमलाङ्गी और विरहानलसन्तप्ता वह राजदुलारी पांव २ क्योंकर चल सके अत: उन्होंने अपनी विभूति (१) से पक्षियों को बुलाया और उनपर चढ़ कर वह उस उद्यान में पहुंचीं । तहां केलों के वृक्षों के मण्डप में वह चली गयीं, वहां बहुत से पुष्पों का आस्तरण बिछा हुआ था तिसपर वह बैठ गयीं, और पक्षियों का मधुरगान वहां हो रहा था कि सुननेवालों का मन मोहित हो जाय । यद्यपि यहां सब प्रकार के मनोहर उपक्रम विद्यमान हैं तथापि राजकुमारी को कुछ भी नहीं सुहाता था, उसकी कामाग्नि शान्त क्या होगी प्रत्युत और भी बढ़ गयी, ठीक ही कहा है—:

टूट टाट घर टपकत खटियौ टूट ।
पिय कै बांह उसिसवां सुख कै लूट ॥

सारांश यह कि राजकुमारी का मन यहा भी न रमा ।

अब उनके मन में आया कि आओ अपने प्रीतम का चित्र तो एक बार देख लूं, उनका चित्र ही उरेह दर्शन कर नेत्र ठंढे कर लूं । ऐसा विचार गन्धर्वराजदुहिता ने चित्रफलक (२) और रङ्ग की कूंचियां अपनी सिद्धि से मंगा कर ग्रहण कियीं । इतना कर पुन: सोचने लगीं कि विधाता भी जिनको एक बार सृष्टि कर पुन: वैसा दूसरा न बना सके भला मैं उनका चित्र क्योंकर उतार सकूंगी, पुन: एक तो उत्कण्ठा बढ़ रही है दूसरे हाथ सन्न हो गया है तो चित्र उरेहूं तो क्योकर उरेहूं । अस्तु जो हो किसी प्रकार मनोविनोद करना ही होगा अत: जैसा बने वैसा ही सही उनका चित्र तो उतारूं । इस प्रकार विचार कर गन्धर्वराजदुहिता ने चित्रफलक पर मुक्ताफलकेतु का चित्र उरेहा ।

इसी अवसर में राजकुमारी पद्मावती की वही सखी मनोहारिका उनको न देखकर अति विह्वल होकर खोजती खाजती उसी स्थान में आ पहुंची जहां राज-

(१) विद्या ।　　(२) चित्र खींचने का पट्ट ।

कुमारी चित्र उरेह रही थीं। उसने देखा कि लताकुञ्ज में पद्मावती उत्कण्ठित अकेली बैठी हैं और उनके हाथ में चित्रफलक है सो वह पीछे खड़ी हो उन्हें देखने और मन में विचारने लगी कि देखूं यह यहां अकेली बैठी २ क्या करती हैं। इस प्रकार चिन्ता कर वह सखी वहीं चुप चाप छिपी खड़ी रही।

इतनेमें आंखों में आंसू भर गन्धर्वराजदुहिता उस चित्र में उरेहे अपने प्रीतम को सम्बोधन कर इस प्रकार कहने लगीं—"हे नाथ! दुर्जय असुरों को जीत कर आपने इन्द्र की रक्षा किया सो आप आलापमात्र से क्यों नहीं आकर शीघ्र मेरी रक्षा करते? ठीक है जिसका भाग्य मन्द होता है उसके लिये कल्पद्रुम भी कञ्जूस हो जाता है और सुगत (१) भगवान् भी दयाहीन होते हैं तथा सोना भी पत्थर हो जाता है। ठीक ही कहा है—:

पन्नगारि सुनु जाहि पर, होत विधाता बाम।
धूलि मेरु सम जनक जम, ताहि व्याल सम दाम॥

आपको अभी स्मरज्वर से परिचय नहीं है तो भला वह व्यथा आप क्योंकर जान सकते हैं, दैत्य आपको नहीं जीत सके तों भला तपस्वी पुष्पाधन्वा (२) आपका क्या कर सकता है। विधि वाम हो गये, उनको भी यह मेरा चित्रदर्शन सुख नहीं सुहा रहा है कि जिन्होंने आसू आंखों में भर दिये कि मैं आपका चित्र भी तो मन भर देखती और मनस्ताप कुछ बुझाती। इस प्रकार कहके वह राजतनया रोदन करने लगीं, आंखें से आंसुओं के विन्दु जो गिरते थे सो ऐसे प्रतीत होते थे मानों हार टूटा हो और उससे मोती टपकते हों।

इसी अवसर में मनोहारिका सखी उनके समीप आ पहुंची, उसे देखते ही राजपुत्री चित्र ढांक कर कहने लगीं, "ऐ सखी! तू इतने समय लों कहां रही जो दीख न पड़ी?" उनका ऐसा कथन सुन मनोहारिका हँसती हुई बोली "हे सखी तुमको ही तो ढूंढ़ती २ इतनी देर इधर उधर घूमती रही पर तुम यह तो बतलाओ कि चित्र क्यों छिपाती हो, यह तो मैं देख चुकी हूं और तुम्हारा कहना भी सुन चुकी हूं।" इस प्रकार मनोहारिका का वचन सुन पद्मावती आंसू भर

(१) सुगत बुद्धदेव का नाम है। (२) कामदेव।

गद्गद होकर मस्तक नीचे करके सखी का हाथ पकड़ कर कहने लगीं "सखी! तुम तो पहिले से ही सब जानती हो तो तुमसे छिपाना क्या। देखो सखी गौरी के आश्रम में उस राजकुमार ने महाघोर राक्षसीरूपणी घोर अग्नि से मेरा उद्धार किया किन्तु असह्य विरहज्वालायुक्त मदानल में मुझे फेंक दिया। अब मुझे यह नहीं सूझता कि मैं कहां जाऊं, किससे कहूं और क्या करूं अथवा क्या उपाय करूं ऐसे दुर्लभ पदार्थ में मेरा मन आसक्त हो गया है।" पद्मावती का एतादृश कथन सुन मनोहारिका सखी बोली, "ऐ सखि! यह तुम्हारी लगन जो लगी है सो उचित स्थान में हुई है, यह तुम दोनों का संयोग जो हुआ है सो परस्पर की शोभा के हेतु हुआ है धैर्य मत छोड़ो, मुझे जहां लों सूझता है मैं निश्चय कर यह कह सकती हूं कि वह भी तुम्हारे विना न रह सकेंगे, क्या तुमने उस समय उनकी अवस्था नहीं देखी कि कैसी हो गयी थी। भला यह तो सुनो, जब कि यह बात है कि स्त्रियां भी तुमको देखकर ऐसी मोहित हो जाती हैं कि उनकी यह इच्छा होती है कि हम भी पुरुषभाव प्राप्त करतीं तो क्या ही अच्छा होता तो एतादृगुण-विशिष्ट तुम्हारा प्रार्थी कौन नहीं हो सकता फिर वह तो तुम्हारे तुल्यरूप हैं उनकी बात क्या कहूं। क्या भगवान् शङ्कर मिथ्यावादी कभी हो सकते हैं जिन्होंने कि तुम्हें दम्पती ठहराया है। तुम्हारा तो अभीष्ट समीप आ पहुंचा है किन्तु ऐसे अवसर में कौन ऐसा आर्त है जो धैर्य रखता हो। सो सखि! तुम धीरज धरो वही अति शीघ्र तुम्हारे पति होंगे, तुम्हें कोई दुर्लभ नहीं है प्रत्युत तुम्हीं सब को दुर्लभ हो।" मनोहारिका का ऐसा उपदेशमय वचन सुन राजदुलारी पद्मावती बोलीं "ऐ सखि! यद्यपि यह मैं जानती हूं तथापि क्या? यह मेरा चित्त जो उनमें लगगया है नहीं थंभता है, उन प्राणेश के विना क्षण भर भी इसे चैन नहीं, और ऊपर से मन्मथ भी क्षमा नहीं करते अपने वाणों का प्रहार करते ही जा रहे हैं। बस उन्हीं का स्मरण करती रहती क्षण भर को भी मन इधर उधर नहीं जाता कि कुछ शान्ति तो हो, और अङ्ग सब जले जाते हैं तथा प्राण निकले जाते हैं।" पुष्प के समान कोमलाङ्गी वह पद्मावती इस प्रकार कहती कहती मोह में आ गयीं और मोहित हो उस सखी के अङ्क में गिर पड़ीं।

अब सखी मनोहारिका के नेत्रों में जल भर आया झट उसने राजकुमारी के

मुख पर जल के छींटे दिये और पश्चात् वह केले के पत्ते से धीरे २ पंखा झालने लगी। कमलदण्ड के हार और कङ्कन पहिनाये, चन्दन का लेप किया, कमलपत्र की शैया प्रस्तुत कर दियी। इस प्रकार ज्यों २ वह शीतल पदार्थों का संयोग कर उनके शीतल करने की चेष्टा करती त्यों २ वे सब भी उनके अङ्गस्पर्श से सन्तप्त होकर सूखते जाते थे मानों राजकुमारी के दुःख से वे भी समदुःखी थे।

इसके उपरान्त गन्धर्वराजकुमारी पद्मावती अति विह्वल हो अपनी सखी से फिर कहने लगीं "ऐ सखि! क्यों व्यर्थ क्लेश उठाती है मेरी विथा नहीं शान्त होने की, परन्तु जिससे यह विथा शान्त हो यदि तू वह करे तो भला हो।" इस प्रकार पद्मावती की बात सुन सखी मनोहारिका बोली—'ऐ सखि ! ऐसा कौन काम है जो मैं तेरे लिये न कर सकूं। सो तू कह मैं क्या करूं।" उसका ऐसा प्रश्न सुन राजपुत्री कुछ लज्जा कर इस प्रकार कहने लगीं—"हे सखि! तू यही काम कर कि जाकर मेरे प्रीतम को झट पट यहां ले आ और किसी उपाय से मेरे इस क्लेश का उपशम न होवेगा। इसमें पिता के क्रुद्ध होने की भी कोई बात नहीं है, सो जहां लों मैं जानती हूं वह कुपित न होवेंगे प्रस्तुत यह करेंगे कि जब वह मेरे प्राणेश्वर यहां आवेंगे तो पिता जी उन्हें मुझको दे देवेंगे।" राजकुमारी का ऐसा कथन सुन वह सखी बोली—"यदि यही बात है तो तुम धीरज धरो, यह काम क्या है। लो सखि ! यह मैं उनके लाने के लिये चली ! उनके पिता खेचरेन्द्र चन्द्रकेतु का नगर चन्द्रपुर तो प्रख्यात हैं हो सो तुम धीरज धरो और शोक को त्याग करो।" सखी का ऐसा सान्त्वनामय वचन सुन राजपुत्री बोली—"तो सखी! अब तुम उठो, तुम्हारा मार्ग कल्याणपूर्ण हो, अब जाओ, विलम्ब न करो। तीनों लोकों के त्राणकर्त्ता उन मेरे प्राणेश्वर से ऐ सखी! तुम मेरा यह सन्देश कहियो:—

॥ दोहा ॥

गौरी के आयतन (१) में, राक्षसिभय ते भीत ॥
मेरी रक्षा तुम करी, अहो प्राणप्रद मीत ॥ १ ॥
स्त्रीघाती यह मकरधुज (२) बहुत सतावत हाय ॥

(१) मन्दिर। (२) मकरध्वज = कामदेव।

क्यों नहिं वाके हाथ सों, मोहिं बचावत आय ॥ २ ॥
सकल भुवन उद्धार में, तुम हो नाथ समर्थ ॥
कहा धर्म तुमरो यही, तुवजन सहै अनर्थ ॥ ३ ॥
जिहिकी रच्छा पूर्व में, तुम कीन्ही गहि बांहिं ॥
अस अनुरागी जनहुं कै, भली उपेच्छा नाहिं ॥ ४ ॥

हे कल्याणि ! सो तुम जाकर मेरा यही सन्देश उनसे कहो और मैं क्या कहूं तुम स्वयं जानती हो जैसा समझ पड़े वैसा कहना," इस प्रकार कहके पद्मावती ने उस सखी मनोहारिका को बिदा किया।

अब मनोहारिका ने अपनी विद्या के बल से एक पक्षी को बुलाया सो तुरत आ पहुंचा, बस वह उस वाहन पर बैठ कर विद्याधरपुर की ओर चली । उधर पद्मावती को अब कुछ आशा उत्पन्न हुई, और धीरज आया सो वह वही चित्र-फलक लिये दिये वहां से उठी और पिता के घर में आयी।

तहां वह राजकुमारी सहस्रों दासियों से घिरी हुई अपने मन्दिर में पहुंची। स्नान कर भक्तिपूर्वक गौरीपति की पूजा कर इस प्रकार विनय करने लगी— "भगवन् ! किसी का वाञ्छित थोड़ा हो वा बहुत परन्तु आपके अनुग्रह विना कदापि सिद्ध नहीं होता। सो यदि आप विद्याधर के उत्तम चक्रवर्ती पुत्र को, जिसे कि मैं चाहती हूं, मेरा पति न बनावेंगे तो मैं आपके समक्ष अपनी देह त्याग देऊंगी।" इस प्रकार जब पद्मावती शशाङ्कमुकुट (१) को अपनी विनति सुना चुकी तब उसके संग की दासियां बड़ा आश्चर्यित और दुःखित हुईं तथा पद्मावती से कहने लगीं "देवि ! अपने शरीर का कुछ भी ध्यान न कर यह तुम क्या कह रही हो ! भला तीनों लोकों में ऐसा भी कुछ है जो तुम्हें न मिल सके। यदि तुम मांगो तो सुगत भी अपना संयम त्याग देवें सो हमारी समझ में तो यह आता है कि जगत् में वेही एक सुकृती हैं जिनको तुम इस प्रकार चाह करती हो।" उनका ऐसा कथन सुन, उन श्रीमुक्ताफलकेतु के गुणों से आकृष्ट राजकुमारी पद्मावती बोली "भला सुनो तो सही ! शक्रसहित सब देवों के अकेले जो आश्रय हैं, जिन्होंने

(१) चन्द्रमा जिनके मुकुट हैं अर्थात् शिव।

अकेले ही समस्त असुरबल संहार का डाला जैसे अकेले सूर्य अन्धकार को नाश करते हैं, जो हमारे प्राणदाता हैं उन्हें मैं क्यों न मागूं।" इस प्रकार कहती हुई पद्मावती उन्हीं के गुणों से अत्यन्त उत्कण्ठित बनी अपनी दासियों के साथ रहने लगी।

इसी अवसर में उधर मनोहारिका सखी झटपट विद्याधरेन्द्र के उस नगर में पहुंची। वह नगर कैसा है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, मानों विश्वकर्मा को देवताओं का नगर बना कर सन्तोष न हुआ तब उस नगर की सृष्टि कियी जिसकी विभूति असाममान्य है। वहां पहुंच कर वह मुक्ताफलकेतु को ढूंढ़ने लगी पर वहां पता न चला, तब वह उसी पची पर बैठी हुई खोजती खाजती उनके नगर के उद्यान में गयी। जिस उद्यान की शोभा और सम्पत्ति का वर्णन कवि इस प्रकार करता है कि जिसकी सिद्धि और जिसके विभव की तर्कना भी कोई नहीं कर सकता, सोने के सब वृक्ष जिनपर सोने की लताएं लहरा रही हैं, एक २ वृक्ष पर अनेक जातियों के फूल फूले हैं। जिन वृक्षों पर दिव्य पक्षी बैठकर सुन्दर मधुर कलरव कर रहे हैं, नाना प्रकार की रत्नशिलाएँ स्थान२ पर बिछी हैं। इस प्रकार उस उपवन की शोभा देखती हुई वह मनोहारिका इधर उधर घूम रही थी। इतने में विचित्र पक्षिरूपधारी उद्यानपालकों की दृष्टि उसपर पड़ी सो वे उसके पास झटपट चले आये और सुस्पष्ट तथा प्रिय वचनों से उसकी अभ्यर्थना करने लगे। परजाति के नीचे तार्क्ष्य रत्नशिला के ऊपर उसे बैठा कर उन सभों ने उचित उपभोगों से उसकी पूजा कियी। इस प्रकार पूजा पाकर उसने उन्हें अभिनन्दन दिया पश्चात् वह अपने मन में विचार करने लगी "अहो विद्याधरेन्द्रों की सिद्धियां और विभूतियां अति विचित्र हैं! जहां के उपभोग अचिन्त्य हैं, जो उद्यान स्वयं अपूर्व है, जहां देवों की स्त्रियां कर्णसुखद सुन्दर गान करती रहती हैं और जहां कि पक्षिगण परिचारक हैं।" इस प्रकार चिन्ता कर उन उद्यानपालकों से आज्ञा लेकर वह श्रीमुक्ताफलकेतु को ढूंढ़ती हुई आगे बढ़ी और पारिजातादि तरुओं के विभाग में पहुंची, तहां भीतर क्या देखती है चन्दन सींचें फूलों के आस्तरण पर मुक्ताफलकेतु सोये हुए हैं, जो कि उस समय रुजग्रस्त से पड़े थे और कुछ भी कल न पड़ती थी। गौरी के आयतन में पहिले वह इन्हें

देख चुकी थी इससे झट पहिचान गयी पर इस अवस्था में देखकर अपने मन में विचार करने लगी कि इन्हें कौनसा रोग है हुआ इसका भी पता लगाना चाहिये सो मैं छिपी २ सब देखतीं हूं।

तो क्या देखती है कि श्रीमुक्ताफलकेतु तो विकल उस कुसुमास्तरण पर लेटे हैं और बहुत विकल हैं और उनका मित्र संयतक हिमचन्दन से सिक्त पंखा झाल रहा है और उन्हें आश्वासन दे रहा है। इस समय मुक्ताफलकेतु अपने उस मित्र से कहने लगे "सखे ! देखो न यह हिम मुझे अङ्गार सा प्रतीत हो रहा है, चन्दन अग्नि सा भासता है, वायु में दावाग्नि प्रतीत होती है, मुझे निश्चित होता है कि यह सब कामदेव की करनी है, उस कामदेव ने मुझ विरहार्त के लिये चारों ओर से सन्ताप का आयोजन कर दिया है सो तुम क्यों व्यर्थ परिश्रम करते हो, तुम्हारा समस्त आयास निष्फल हो रहा है। देखो, देवाङ्गनाओं के नाच गान तथा विनोदों से भी मुझे मर्मवेन्दना हो रही है, यह उद्यान नन्दन से भी उत्तम हैं तौभी मेरा मन नहीं रमता। पद्मशेखर की दुहिता पद्मानना पद्मावती को विना पाये यह मेरा स्मरज्वर शान्त न होगा। यह मैं किसी से कह भी नहीं सकता, और न धैर्य्य ही अवलम्बन कर सकता हूं। बस उसकी प्राप्ति का मेरे पास एक ही उपाय है सो यह कि वहीं गौरी के मन्दिर में जाऊं जहां मेरी प्रिया ने कटाक्ष का प्रहार कर मेरा हृदय हर लिया था। वहां अद्रिराजतनयासहित विराजमान भगवान् शम्भु की तपस्या कर उन्हें सन्तुष्ट करूंगा बस वही मेरी प्रिया के समागम का उपाय मुझे बता देंगे।"

इस प्रकार अपने मित्र संयतक से कहकर श्रीमुक्ताफलकेतु उठाही चाहते थे कि उसी क्षण अति तुष्ट हुई मनोहारिका सामने आ खड़ी हुई। उसे देख हर्षपूर्वक संयतक ने राजकुमार से कहा "वयस्य ! तुम्हारा अहो भाग्य है ! तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो है; देखो न तुम्हारी प्रिया के पास से यह सखी आयी है। जब मैं तुम्हारे साथ वहां अम्बिका के मन्दिर में था तो वहां इसे देखा था।" बस प्रिया की सखी उस मनोहारिका को देखते ही राजकुमार के हृदय में आनन्द और विस्मय का सागर उमड़ गया, उनकी उत्कण्ठा की सीमा न रही, इस समय उनकी अवस्था एक अति विचित्र हो गयी। वह सखी क्या थी मानों उनके नेत्रों

अकेले ही समस्त असुरबल संहार कर डाला जैसे अकेले सूर्य अन्धकार को नाश करते हैं, जो हमारे प्राणदाता हैं उन्हें मैं क्यों न मागूं।" इस प्रकार कहती हुई पद्मावती उन्हीं के गुणों से अत्यन्त उत्कण्ठित बनी अपनी दासियों के साथ रहने लगी।

इसी अवसर में उधर मनोहारिका सखी झटपट विद्याधरेन्द्र के उस नगर में पहुंची। वह नगर कैसा है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता, मानों विश्वकर्मा को देवताओं का नगर बना कर सन्तोष न हुआ तब उस नगर की सृष्टि कियी जिसकी विभूति असाममान्य है। वहां पहुंच कर वह मुक्ताफलकेतु को ढूंढ़ने लगी पर वहां पता न चला, तब वह उसी पक्षी पर बैठी हुई खोजती खोजती उनके नगर के उद्यान में गयी। जिस उद्यान की शोभा और सम्पत्ति का वर्णन कवि इस प्रकार करता है कि जिसकी सिद्धि और जिसके विभव की तर्कना भी कोई नहीं कर सकता, सोने के सब वृक्ष जिनपर सोने की लताएं लहरा रही हैं, एक २ वृक्ष पर अनेक जातियों के फूल फूले हैं। जिन वृक्षों पर दिव्य पक्षी बैठकर सुन्दर मधुर कलरव कर रहे हैं, नाना प्रकार की रत्नशिलाएँ स्थान२ पर बिछी हैं। इस प्रकार उस उपवन की शोभा देखती हुई वह मनोहारिका इधर उधर घूम रही थी। इतने में विचित्र पक्षिरूपधारी उद्यानपालकों की दृष्टि उसपर पड़ी सो वे उसके पास झटपट चले आये और सुस्पष्ट तथा प्रिय वचनों से उसकी अभ्यर्थना करने लगे। पारजाति के नीचे तार्क्ष्यरत्नशिला के ऊपर उसे बैठा कर उन सभों ने उचित उपभोगों से उसकी पूजा कियी। इस प्रकार पूजा पाकर उसने उन्हें अभिनन्दन दिया पश्चात् वह अपने मन में विचार करने लगी "अहो विद्याधरेन्द्रों की सिद्धियां और विभूतियां अति विचित्र हैं! जहां के उपभोग अचिन्त्य हैं, जो उद्यान स्वयं अपूर्व है, जहां देवों की स्त्रियां कर्णसुखद सुन्दर गान करती रहती हैं और जहां कि पक्षिगण परिचारक हैं।" इस प्रकार चिन्ता कर उन उद्यानपालकों से आज्ञा लेकर वह श्रीमुक्ताफलकेतु को ढूंढ़ती हुई आगे बढ़ी और पारिजातादि तरुओं के विभाग में पहुंची, तहां भीतर क्या देखती है चन्दन सींचे फूलों के आस्तरण पर मुक्ताफलकेतु सोये हुए हैं, जो कि उस समय रुजग्रस्त से पड़े थे और कुछ भी कल न पड़ती थी। गौरी के आयतन में पहिले वह इन्हें

देख चुकी थी इससे झट पहिचान गयी पर इस अवस्था में देखकर अपने मन में विचार करने लगी कि इन्हें कौनसा रोग है टुक इसका भी पता लगाना चाहिये सो मैं छिपी २ सब देखती हूं।

तो क्या देखती है कि श्रीमुक्ताफलकेतु तो विकल उस कुसुमास्तरण पर लेटे हैं और बहुत विकल हैं और उनका मित्र संयतक हिमचन्दन से सिक्त पंखा झाल रहा है और उन्हें आश्वासन दे रहा है। इस समय मुक्ताफलकेतु अपने उस मित्र से कहने लगे "सखे ! देखो न यह हिम मुझे अङ्गार सा प्रतीत हो रहा है, चन्दन अग्नि सा भासता है, वायु में दावाग्नि प्रतीत होती है, मुझे निश्चित होता है कि यह सब कामदेव की करनी है, उस कामदेव ने मुझ विरहार्त के लिये चारों ओर से सन्ताप का आयोजन कर दिया है सो तुम क्यों व्यर्थ परिश्रम करते हो, तुम्हारा समस्त आयास निष्फल हो रहा है । देखो, देवाङ्गनाओं के नाच गान तथा विनोदों से भी मुझे मर्मवेन्दना हो रही है, यह उद्यान नन्दन से भी उत्तम हैं तौभी मेरा मन नहीं रमता । पद्मशेखर की दुहिता पद्मानना पद्मावती को विना पाये यह मेरा स्मरज्वर शान्त न होगा । यह मैं किसी से कह भी नहीं सकता, और न धैर्य्य ही अवलम्बन कर सकता हूं। बस उसकी प्राप्ति का मेरे पास एक ही उपाय है सो यह कि वहीं गौरी के मन्दिर में जाऊं जहां मेरी प्रिया ने कटाक्ष का प्रकार कर मेरा हृदय हर लिया था। वहां अद्रिराजतनयासहित विराजमान भगवान् शम्भु की तपस्या कर उन्हें सन्तुष्ट करूंगा बस वही मेरी प्रिया के समागम का उपाय मुझे बता देंगे।"

इस प्रकार अपने मित्र संयतक से कहकर श्रीमुक्ताफलकेतु उठाही चाहते थे कि उसी क्षण अति तुष्ट हुई मनोहारिका सामने आ खड़ी हुई। उसे देख हर्षपूर्वक संयतक ने राजकुमार से कहा "वयस्य ! तुम्हारा अहो भाग्य है ! तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो है; देखो न तुम्हारी प्रिया के पास से यह सखी आयी है। जब मैं तुम्हारे साथ वहां अम्बिका के मन्दिर में था तो वहां इसे देखा था।" बस प्रिया की सखी उस मनोहारिका को देखते ही राजकुमार के हृदय में आनन्द और विस्मय का सागर उमड़ गया, उनकी उत्कण्ठा की सीमा न रही, इस समय उनकी अवस्था एक अति विचित्र हो गयी। वह सखी क्या थी मानों उनके जैसे

के लिये अमृत की वर्षा थी, सो पास में आयी हुई उस मनोहारिका को पास में बैठा कर राजकुमार ने पूछा "कहो प्रिया अच्छी तो हैं ?" राजकुमार का ऐसा प्रश्न सुन मनोहारिका बोली "हे प्रभो मेरी सखी के नाथ जब आप हैं तो उनका कुशल तो ध्रुव है ही इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं किन्तु इस समय तो वह दुःखित है। जिस समय से आपने दर्शन देकर उसका मन हरण कर लिया उस समय से वह उदास बनी रहती है, न कुछ सुनती है न कुछ देखती ही है। वह बाला उस हार (१) छोड़ के कमलदण्ड का हार धारण कर पड़ी हुई है, उत्तमोत्तम शयनीय का त्याग कर कमलनीदल के आस्तरण पर पड़ी रहती है; पूर्वकाल में वह वर की कथा (२) भी लज्जावश न सह सकती थी सो वही अब प्रियतम के विना इस अवस्था में पड़ी है। हे सुकृतियों में श्रेष्ठ ! कहां पूर्व में उसके अङ्गप्रत्यङ्ग कैसे हंसते हुए प्रतीत होते थे कहां वेही अब सन्ताप से सूखे चन्दन काठ के समान श्वेत दीख पड़ते हैं। सुनिये उसका यह सन्देश है।" इस प्रकार कहके मनोहारिका पद्मावती के सन्देश के वे दोहे पढ़कर सुना गयी। इस प्रकार प्रियतमा का वृत्तान्त सुन मुक्ताफलकेतु की विथा दूर हो गयी सो वह हर्ष से मनोहारिका का अभिनन्दन कर बोले, "हे सखि ! तुम्हारे इन अमृत समान वचनों से मेरा चित्त सिंच गया और कुछ आश्वासन हुआ, धैर्य आया और व्याकुलता दूर हुई। मेरे पूर्वजन्म के सुकृत आज फलित हुए कि गन्धर्वराज की दुहिता का मेरे ऊपर ऐसा भाव है। मैं तो किसी प्रकार विरह की विथा सह सकता हूं, शिरीष-सुकुमाराङ्गी वह क्योंकर सह सकती है। लेओ मैं अब गिरिजा के मन्दिर को चला सो तुम जाकर वहीं अपनी सखी को ले आओ कि हम दोनों का समागम होवे। तुम जाकर अपनी सखी को आश्वासन देओ। ब्रह्मा ने सन्तुष्ट होकर मुझे यह चूड़ामणि दिया है जो कि सब प्रकार के दुःखों का दूर करनेवाला है सो तुम लेजा कर उसे देओ और यह जो हार मुझे इन्द्र से मिला है सो मैं तुमको पारितोषिक देता हूं।" इतना कहके शिर से चूड़ामणि उतार कर उसे दे दिया और

(१) यहां आहार और हार दोनों अर्थ निकलते हैं।

(२) बात, बात चलने वह लजाती थी।

हार कण्ठ से उतार कर उसके कंठ में पहिना दिया । तत्पश्चात् उन्हें प्रणाम कर मनोहारिका अपने वाहन विहग पर चढ़कर अपनी सखी पद्मावती के पास चली गयी, इधर मुक्ताफलकेतु बड़ी प्रसन्नता के साथ उठे और सब क्लेश का त्याग कर संयतक के साथ झटपट अपने नगर में गये ।

अब मनोहारिका पद्मावती के पास पहुंची और उसका अभीष्ट जो था अर्थात् प्रियतम के स्मरज्वर का वृत्तान्त सो कह गयी । प्रणय से स्निग्ध तथा मधुर जो उनका वचन था जिसका सङ्केत यह था कि गिरिजा के आश्रम में सङ्गम होगा, सो भी कह गयी । पश्चात् मनोहारिका ने प्रियतम का दिया हुआ वह चूड़ामणि उसे दे दिया और हार जो पारितोषिक में पाया था पद्मावती को दिखा दिया । सखी कृतकार्य होकर आयी है सो पद्मावती ने उसे आलिङ्गन कर लिया और उसका आदर सम्मान बहुत किया । अब वह अपना स्मरज्वर एकाएक भूल गयीं । पद्मावती ने प्रियतम का भेजा वह चूड़ामणि अपने जूड़े में बांध लिया और गौरी-कानन में जाने का अब निश्चय किया ।

इसी अवसर में उस गौरीवन में दैवात् तपोधन नामक एक मुनि अपने दृढ़-व्रत नाम शिष्य के सङ्ग आये, वहां पहुंच कर मुनि ने दृढ़व्रत अपने शिष्य से कहा "वत्स ! इस दिव्य उद्यान में क्षण भर समाधि लगाऊंगा । तू यहां द्वार पर बैठा देखता रह और किसी को भीतर मत आने देना; मैं अपनी समाधि समाप्त कर पार्वती देवी की पूजा करूंगा ।" इतना कहकर मुनि ने उद्यान के द्वार पर शिष्य को स्थापित कर दिया और आप जाकर पारिजात वृक्ष के नीचे समाध लगायी । समाधि से उठ कर मुनि अम्बिका की पूजा के निमित्त मन्दिर में गये किन्तु द्वार-वर्ती अपने शिष्य से यह वृत्तान्त न कह गये ।

अब उधर से इसी अवसर में श्रीमुक्ताफलकेतु सजधज कर अपने मित्र संयतक के साथ दिव्य हाथी पर आरूढ़ हुए उसी स्थान पर आ पहुंचे । ज्योंही प्रवेश किया चाहते थे कि मुनिशिष्य ने रोक दिया "देखो इस उद्यान में मत जाओ, वहां मेरे गुरु जी समाधि से स्थित हैं ।" श्रीमुक्ताफलकेतु ने अपने मन में विचारा कि यह उद्यान तो इतना लम्बा चौड़ा है, मुनि कहीं एक कोने में समाधि लगाये बैठे होंगे; कदाचित् मेरी प्रिया यहां आ गयी हो । यह विचार कर उनको उ-

त्कण्ठा और बढ़ी सो राजपुत्र उस शिष्य की आंख बचा कर आकाश के मार्ग से अपने मित्रसहित उस उद्यान में पहुंचे। ज्योंही कि वह वहां अपनी प्रियतमा को ढूंढ़ रहे थे कि उसी अवसर में वह मुनिशिष्य अपने गुरु की समाधि की समाप्ति के निरीक्षणार्थ वहां पहुंच ही तो गया। गुरु जी तो वहां न दीख पड़े पर वह देखता क्या है "श्रीमुक्ताफलकेतु अपने वयस्य के साथ दूसरे मार्ग से वहां आ विराजे हैं। देखते ही तो उसकी कोपाग्नि भड़की सो उसने उन्हें शाप दे ही तो दिया कि "तूने समाधि भङ्ग कर मेरे गुरु को यहां से भगा दिया अतः तू इस ढिठाई से अपने मित्र के साथ जाकर मनुष्य लोक में मानव शरीर धारण कर।" इस प्रकार शाप देकर वह शिष्य अपने गुरु की खोज में लगा। मुक्ताफलकेतु का मनोरथ सिद्ध हो ही चुका था कि यह शापरूपी वज्र उनपर गिरा इससे अब उनके विषाद की इयत्ता न रही।

अब इधर प्रियसङ्गम की उत्कण्ठा से अत्यन्त उत्सुक पद्मावती अपनी सखी महोहारिका के साथ पक्षी पर आरूढ़ हुई और वहीं उद्यान में आ पहुंची। इस समय शाप से छूटी स्वयम्वर के लिये उपस्थित अपनी प्रितमा को आयी देख राजपुत्र को एक ही साथ सुख और दुःख का प्रादुर्भव हुआ, प्रियादर्शन का सुख और शाप पाने का दुःख, इस समय इनकी दशा ऐसी कष्टप्रद हुई कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। उसी समय पद्मावती को भी अपशकुन जनायी पड़े, दक्षिण नेत्र फड़कने लगा और हृदय धड़कने लगा। अब राजसुता क्या देखती हैं कि प्राणेश्वर बड़े उदास हैं सो वह अपने मन में विचारने लगीं कि क्या मैं पहिले न आयी इसी हेतु यह खिन्न हो गये हैं? अस्तु अब वह राजकुमार के पास पहुंचीं तब राजसूनुने उनसे कहा—"प्रिये! हम दोनों का मनोरथ सिद्ध हो चुका था परन्तु दैव की प्रतिकूलता से वह नष्ट हो गया।" यह सुनते ही बड़ी घबराहट से पद्मावती ने पूछा—"हा! यह कैसे हुआ?" तब राजपुत्र उन्हें अपने शाप का वृत्तान्त साद्यन्त सुना गये।"

इसके उपरान्त वे चारों उस शाप देनेवाले शिष्य के गुरु के पास, जो कि उस समय गौरी के मन्दिर में थे, गये कि उनसे प्रार्थना करें कि महाराज! इस शाप का अन्त ठहरा दीजिये। वहां पहुंच कर वे सब उनके चरणों पर गिरे, सो ज्ञानी

वह मुनि उन्हें देखते ही प्रीतिपूर्वक मुक्ताफलकेतु को बोले "वत्स ! यह मेरा शिष्य बड़ा ही मूर्ख ठहरा कि इसने बिना आगा पीछा विचारे तुम्हें शाप दे दिया, तुमने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, मैं तो स्वयं अपनी समाधि से उठा । अस्तु, यह तो तुम्हारा होना ही था, यह शिष्य हेतु मात्र हुआ है । देवताओं का एक बड़ा भारी कार्य है जो मनुष्ययोनि में तुमसे ही हो सकता है । अच्छा अब तुम्हारे शाप का अन्त मैं यह ठहराये देता हूं कि इसी पद्मावती को दैवात् तुम देख पाओगे और देखते ही कामातुर हो जाओगे, बस उसी समय तुम्हारा मर्त्य शरीर छूट जावेगा और तुम शाप से मुक्त हो जाओगे और इसी शरीर से पुनः इस प्राणेश्वरी को तुम वराओगे, यह तुम्हारा शाप बहुत दिन नहीं रह सकता । तुमने ब्रह्मास्त्र से बहुतेरे बाल वृद्ध दैत्यों का नाश किया है, बस वही अधर्म्म यहां आकर हेतु हुआ है ।"

ऋषि का ऐसा वचन सुन आंखों में आंसू भर कर पद्मावती ऋषि से इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं "भगवन् ! जो गति मेरे आर्यपुत्र की हुई है सो मेरी भी होवे क्योंकि इनके विरह में मैं क्षण भर भी नहीं रह सकती ।" इस प्रकार पद्मावती की अभ्यर्थना सुन मुनि बोले "यह नहीं हो सकता, अब तुम एक काम करो कि यहीं बैठ कर तपस्या करो इसका परिणाम यह होगा कि राजकुमार शीघ्र ही शाप से छूट कर यहां आकर तुमसे विवाह करेंगे पश्चात् इसी मुक्ताफलकेतु साथ दशकल्प पर्यन्त गन्धर्वों और असुरों का साम्राज्य भोग करोगी । यह जो इसका दिया शिखारत्न (१) है सो तपस्या के समय तुम्हारी रक्षा करेगा, ब्रह्मा के कमण्डलु से यह महाप्रभावशाली रत्न उत्पन्न हुआ है ।"

इस प्रकार जब मुनि पद्मावती को सान्त्वना दे चुके तब मुक्ताफलकेतु ने अति नम्रता के साथ उन दिव्यदृष्टिमहर्षि से प्रार्थना किया "भगवन् ! मैं यह वरदान मांगता हूं कि मनुष्ययोनि में भी मेरी भक्ति भगवान् भूतनाथ शङ्कर में अटल बनी रहे, और कि पद्मावती के अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री में मेरा मन न जावे ।" मुनि ने कहा "एवमस्तु ।"

अब अत्यन्त दुःखिता पद्मावती ने उस अपराधी मुनिशिष्य को इस प्रकार का

(१) चूड़ारत्न, शिर का भूषण ।

शाप दिया "ऐ मूर्ख! तूने विना समझे बूझे मेरे आर्यपुत्र को शाप दिया इससे तू मर्त्यलोक में कामरूप और कामचर (१) होकर इन्हीं का वाहन होगा।" पद्मावती का शाप सुन वह शिष्य बड़ा विषस हुआ, उसी समय तपोधन मुनि अपने शिष्य के साथ अन्तर्धान हो गये।

अब श्रीमुक्ताफलकेतु ने पद्मावती से कहा "प्रिये! अब मैं अपने नगर में जाता हूं, देखूं वहां मेरी क्या गति होती है।" उनका इतना कहना कि विरह से अति पीड़ित हो पद्मावती अंधड़ की मारी लता जैसे पुष्पसहित गिर पड़े वैसे ही धड़ से पृथ्वी पर गिर पड़ी। श्रीमुक्ताफलकेतु ने राजकुमारी को उठाके आश्वासन दिया और बहुत कुछ समझाया बुझाया। पश्चात् वह अपने मित्र के साथ वहां से चले और वार २ उलट २ कर पद्मावती को देखते जाते थे और पद्मावती रोती रह गयी।

मुक्ताफलकेतु के चले जाने पर पद्मावती अति दुःखित हो विलाप करती थीं, मनोहारिका उन्हें समझाती बुझाती और आश्वासन देती थी; सो पद्मावती उससे इस प्रकार कहने लगीं "ऐ सखि! आज मैंने एक स्वप्न देखा कि देवी पार्वती मेरे गले में कमलों की माला पहिनाया चाहती थीं किन्तु "रहने दो फिर पहिनाऊंगी" यह कह चली गयीं बस सखि? प्रियतम की प्राप्ति का विघ्न इससे उन्होंने सूचित कर दिया।" इतना कह वह फिर शोकमग्न हो गयीं। तब सखी ने कहा "सखि! यह तो तुम्हारे आश्वसन के लिये देवी ने स्वप्न तुम्हें दिखाया। देखो मुनि ने भी यही कहा है। देव का आदेश भी ऐसा ही है, सो तुम अब धीरज धरो शीघ्र ही तुम्हारे प्रियतम तुम्हें आ मिलेंगे।" इस प्रकार सखी के समझाने पर चूड़ामणि के प्रभाव से पद्मावती को कुछ धैर्य्य हुआ और वह वहीं गौरी के आश्रम में रहने लगीं। ॥ वियोगिनी छन्द ॥

करती तप तीन सन्ध्य में,
गिरिजासङ्ग सुपूजती हरें॥
प्रियचिपचटी मंगाइके,
पुरसों, पूजति देवबुद्धि सों॥ १॥

(१) इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला और इच्छानुसार चलनेवाला।

अयि ! निश्चित इष्टसिद्धि है,
न उठावें विरथै तपः श्रमात् ॥
इमि साश्रु मुखै जु आदू वारत,
जननी औ जनकै कह्यो तवे भो ॥ २ ॥
पति मोर जुदेवदर्शिंतो,
सहसा शापज दुःख पाइगे ॥
किमि हौं सुख सौं वसौं यहां,
परमात्मा पतिही कुलाङ्गनाको ॥ ३ ॥
तपसौं जब पाप नाशिहै,
अरु शम्भू भगवान तोषिहैं ॥
प्रियसङ्गम शीघ्र होइगो,
तप से नाहिं असाध्य है कछू ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

दृढ़ निश्चय पद्मावती, जब इमि दीन्ह सुनाय ॥
राजा सो कुवलयवती तब बोली तिसु माय ॥ १ ॥
देव ! करै तपकष्ट यह, कहा वारत तुम खेद ॥
इहि कर यहि विधि दीन्ह लिखि, सुनहु कहौं मैं भेद ॥२॥
सिद्धाधिप की कन्यका, देवप्रभा जिसु नाम ॥
अभिमत भर्त्ताप्राप्तिहित, करती तप शिवधाम ॥ ३ ॥
मोरे संग पदमावती, देवदर्श हित जाय ॥
"पतिहित तपती लाज नहिं", तेहि कहि हँसी ठठाय ॥४॥
"मूढ़े हँसती बालपन, तूभी पति लगि ताप ॥
करि है," कोपि दयउ तबै, सिद्धकन्यका शाप ॥ ५ ॥

सोरठा।

सिद्धकन्यका शाप, भोगे हौ बनिहै अवशि ॥
रोकै काको दाप, अब यह जो करती करै ॥ १ ॥
सुनि इमि रानिकहाय, गन्धर्बपति तिसुसंग में ॥
कन्या को समुझाय, निजनगरी गवनत भये ॥ २ ॥

वसन्ततिलकम्।

आकाशमार्ग मन लाइ पती दनासो
ब्रह्मादिपूजित सिधीश्वर पूजती थी ॥
स्वप्ने अदेश मृडको लहि गौरि आश्रम,
पद्मावती नियमतत्पर होइ बैठी ॥ १ ॥

पांचवां तरङ्ग।

इधर तो पद्मावती अपने पति श्रीमुक्ताफलकेतु की प्राप्ति के निमित्त तपश्चर्या में लीन हुई उधर मुक्ताफलकेतु जब अपने नगर में पहुँचे तब उनको क्या दशा हुई सो वर्णन करते हैं। ब्राह्मण का शाप हो गया है अब मनुष्ययोनि में जन्म लेने का समय समीप चला आ रहा था इससे उनका भय बढ़ता जाता था सो इस भय से भीत हो विद्याधरेन्द्र के तनय ने शङ्कर भगवान् की शरण गही। उनके मन्दिर में उनकी पूजा में तत्पर थे कि यह आकाशवाणी सुन पड़ी 'पुत्र! तू भय न करे, गर्भवास का क्लेश तेरे न होगा। तू मनुष्यशरीर में भी दुःख न पावेगा और न बहुत दिन लौं उस शरीर में रहैगा। तू बड़ा बलवान् पराक्रम राजपुत्र होगा। तपोधन मुनि से समस्त अस्त्र शस्त्र की शिक्षा पावेगा और मेरा किङ्कर नाम यक्ष जो गण है सो तेरा अनुज होगा। उसकी सहायता से तू समस्त शत्रुओं को जीत कर देवताओं का कार्य करेगा पश्चात् पद्मावती के साथ विद्याधरों का ऐश्वर्य भोग करेगा, इस प्रकार आकाशवाणी सुन उनको कुछ धैर्य हुआ अब वह राजकुमार शाप के फल की प्रतीक्षा में बने रहे।

अब कथाप्रसङ्ग से यह कथा उठती है—पूर्व दिशा में देवसभ नाम नगर

था जिसका श्री ऐसी कि जिसके सामने देवसभा भी लज्जित हो, जाती। तहां मेरुध्वज नामक सार्वभौम नृप राज्य करते थे जो कि देवासुरसंग्राम में देवराज इन्द्र के सहायक हुआ करते थे। उक्त महात्मा का लोभ यश में था न कि पराये के धन में. खड्ग में तीक्ष्णपन था दण्ड में नहीं, पाप से भय था शत्रुओं से नहीं। कोप के समय जिसकी भौंहें कुटिल हो जातीं किन्तु हृदय में कुटिलता का नाम भी न था, प्रत्यञ्चा के आघातों के चिन्ह युक्त भुज में पारुष्य (१) था वचन में नहीं, युद्ध में दीनारातिरक्षण (२) कोष में नहीं। धर्म्मचर्य्याओं में उन की रति थी अङ्गनाओं में नहीं।

राजा सब प्रकार के सौख्यों से सम्पन्न थे तथापि उनके मन में दो चिन्ताएं थीं, एक चिन्ता यह थी कि उनके कोई पुत्र न था, वह चाहते थे कि एक भी पुत्र हो जाता, दूसरी चिन्ता यह थी कि पूर्वकाल में जब देवासुर युद्ध हो रहा था, उस समय कुछ राक्षस राजा के मारने से बच कर भाग के पाताल में जा छिपे थे, वे कभी २ पाताल से निकलते और दूर दूर के तीर्थ के देवमन्दिरों तथा आश्रमों का विनाश कर फिर पाताल में जा छिपते। वे आकाश और पाताल-चारी थे, अतः राजा उन्हें पा नहीं सकते थे, यद्यपि भूतल में उनका एकछत्र राज्य था तथापि उन तेजस्वी को इसका बड़ा ही सन्ताप था। इन्हीं दोनों चिन्ताओं से वह सदा चिन्तित रहते।

अब चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को इन्द्र के यहां से उनका भेजा रथ राजा को लेने आया, सो राजा उसपर चढ़ कर देवलोक को गये, पर वहां भी उनके मन में वेही चिन्तायें देदीप्यमान रहीं। प्रति वर्ष का नियम यह था कि उक्त दिवस इन्द्र के यहां से रथ आता और राजा मेरुध्वज उस रथ पर चढ़ कर सदा महादेव

(१) कठोरता, अर्थात् भुज बड़े कठोर थे।

(२) सन्धि के कारण यहां श्लेष हो गया है यथा:—दीन+आराति = दीन जो शत्रु उनका रक्षण अर्थात् जो शत्रु नम्र हो गये उन्हें नहीं मारते थे। दीनार+अति रक्षण = दीनार शब्द का अर्थ मोहर है, रक्षणम् = बटोरना अर्थात् मोहर नहीं बटोरते थे भाव यह कि सदा मोहर बटोरने में लीन न थे।

जी के आस्थान को जाया करते थे। वहां देवाङ्गनायें नृत्य करतीं और गानादि का आमोद होता, और राजा का बहुत सम्मान होता तथापि उन्हें आनन्द कहां! ठीक ही कहा है— सोहर।

"राजा बिन रे सन्तति के सम्पतिया त कवने अरथ के हो।"

नीति में भी कहा है:—

अपुत्रस्य गृहं शून्यम्।

महाराज को इस प्रकार उदासीन देखकर इन्द्र इनका इङ्गित भाव समझ गये और उनको बोले—"राजन्! जो दुःख आपको है सो मैं जानता हूं अब आप चिन्ता न करें मुक्ताफलध्वज नामक शिवांश आपसे एक पुत्र होगा, और दूसरा मलयध्वज गण का अवतार होगा। मुक्ताफलध्वज अपने अनुज के साथ तपोधन मुनि से समस्त विद्या कामरूप वाहन और अस्त्रशस्त्र प्राप्त करेगा पश्चात् वह महापशुपतास्त्र पावेगा, इससे वह दुर्जय हो जायगा और समस्त असुरों का संहार कर पृथ्वी और पाताल अपने वश में कर लेगा। आपको मैं काञ्चनगिरि तथा काञ्चनशेखर नामक दो आकाशचारी वारणेन्द्र महास्त्र सहित देता हूं, आप इन्हें ग्रहण करें। इस प्रकार कहकर इन्द्र ने राजा मेघध्वज को अस्त्र और गज देकर बिदा किया और वह प्रहृष्ट मन भूतल पर अपनी नगरी में आये। उधर वे पातालवासी राक्षस राजा के वश में अब लों न आये, यद्यपि राजा की गति आकाश में हो गयी थी पर उन राक्षसों को वह वश न कर सके।

अब राजा शक्र से पुत्रप्राप्ति की बात सुन चुके थे ही, सो वह पुत्रप्राप्ति की कामना से उस दिव्य हाथी पर आरूढ़ होकर तपोधन ऋषि के आश्रम में गये। ऋषि को प्रणाम कर राजा इन्द्र का आदेश सुना गये पश्चात् हाथ जोड़ कर कहने लगे "हे भगवन्! अब यह उपाय बतलाइये कि जिससे मेरे शीघ्र पुत्र होवे।" मुनि ने महाराज की ऐसी अभ्यर्थना सुन राजा से कहा कि आप अपनी भार्या के सङ्ग भगवान् शङ्कर की आराधना कीजिये, उन्हीं का व्रत कीजिये इससे आपकी इष्टसिद्धि शीघ्र ही हो जावेगी। महाराज मेघध्वज उक्त ऋषि के बताये हुए नियम के अनुसार भगवान् शम्भु के व्रत और आराधना में तत्पर हुए। भगवान् का नाम तो आशुतोष है ही बस वह झट सन्तुष्ट हो गये, और राजा को स्वप्न में

दर्शन देकर बोले—"राजन् ! उठो, शीघ्र ही तुम क्रमशः दो पुत्र प्राप्त करोगे, और शेष असुरों का विनाश करोगे; वे तुम्हारे पुत्र अपराजित होवेंगे ।" प्रातः-काल होने पर राजा उठे और मुनि के पास जाकर स्वप्न का वृत्तान्त कह गये। पश्चात् भार्यासहित पारण कर अपने नगर को प्रस्थानित हुए और नगर में पहुंच कर समय की प्रतीक्षा में रहने लगे।

अब कुछ कालोपरान्त महाराज मेरुध्वज की रानी सुलक्षणा महादेवी ऋतुमती हुईं; उन्हीं के गर्भ में श्रीमुक्ताफलकेतु शापवश अपना वैद्याधर शरीर त्याग कर आये और वहां उनके चन्द्रपुर में उनके बान्धवों ने उनका शरीर विद्याप्रभाव से सदा हरा भरा रक्खा। अब देवसभ नगर में राजा मेरुध्वज अपनी रानी को गर्भिणी जान कर अति प्रसन्न हुए और रानी उनका आनन्द दिनों दिन बढ़ाने लगीं। ज्यों २ रानी गर्भ के भार से आलसयुक्त होती जाती थीं, त्यों २ उनके पति का उत्साह बढ़ता जाता था। अब प्रसवकाल उपस्थित हुआ, और रानी सूर्य समान पुत्र जनीं, जैसे पार्वती कुमार को (१)। बालपन में ही उनकी दीप्ति बड़ी उग्र थी। उस समय समस्त वसुधातल में ही उत्सव नहीं छाय गया प्रत्युत आकाश में भी देवगण दुन्दुभी बजा कर आनन्द मङ्गल के उत्सव मनाने लगे। तपोधन मुनि तो तपोधन थे ही, दिव्य दृष्टि से उन्हें ज्ञात हो गया कि राजा के पुत्र हुआ सो वह स्वयं राजा मेरुध्वज के पास अभिनन्दन देने को उपस्थित हुए। इन्द्र ने तो पहिले ही नाम बतला दिया था और मुनि भी समय पर उपस्थित हो गये बस सुअवसर जान राजा ने मुनि की सम्मति लेकर राजकुमार का नाम मुक्ताफलध्वज रक्खा और इस नामकरण के उपलक्ष में बड़ा उत्सव मनाया। नाम धर कर मुनि चले गये।

अब एक वर्ष के उपरान्त रानी के दूसरा पुत्र हुआ, इस समय भी हर्षित मुनि तपोधन स्वयं अभिनन्दन करने के लिये आये और राजा ने उनकी सम्मति से इस द्वितीय राजकुमार का नाम मलयध्वज रक्खा और बड़ा उत्सव मनाया। इसके उपरान्त मुक्ताफलकेतु का वह वयस्य संयतक भी शाप के वश में आ इन्हीं राजा के मन्त्री का पुत्र हुआ, पिता ने इसका नाम महाबुद्धि रक्खा। अब

(१) स्वामिकार्तिक।

सिंहशावक के समान दोनों राजकुमार अपने तेज से उस मन्त्रिपुत्र के साथ बढ़ने लगे। जब आठ वर्ष व्यतीत हो गये तब तपोधन मुनि ने आकर उन दोनों राजकुमारों का जनेऊ कर दिया। और आठ वर्षों में मुनि ने सब विद्याओं और कलाओं तथा महास्त्रों की शिक्षा देकर उन दोनों राजकुमारों को प्रवीण कर दिया। राजा मेरुध्वज अपने दोनों पुत्रों को सब प्रकार के शस्त्रास्त्र में प्रवीण देखकर अपने को कृतार्थ मानने लगे।

जब मुनि राजकुमारों को सब प्रकार की शिक्षा दे प्रवीण कर अपने आश्रम को जाने के लिये उद्यत हुए उस समय राजा मेरुध्वज हाथ जोड़ सम्मुख खड़े हुए और बोले, "महाराज। मेरी विनति यही है कि अब आपकी जो इच्छा हो दक्षिणा मांग लीजिये।" सो सुन तपोधन मुनि बोले, 'राजन् मेरी दक्षिणा यही है कि जो असुर मेरे यज्ञ में बाधा पहुंचाते हैं पुत्रसहित आके आप उनको नाश करें बस यही मेरी इच्छा है।" मुनि का ऐसा कथन सुन राजा बोले, "तो महर्षे! आप वह दक्षिणा इसी समय ले लीजिये, आप चल कर यज्ञ आरम्भ करें, अवश्य ही वे राक्षस आके विघ्न मचावेंगे बस मैं पुत्रसहित वहां तत्काल उपस्थित होऊंगा। हे मुने! पूर्वकाल की बात है कि वे दैत्य आप लोगों का अपराध कर, छलपूर्वक आकाश में उड़ गये और वहां से समुद्र में कूद कर पाताल में चले गये। इस समय तो इन्द्र के दिये आकाशगामी दो गजेन्द्र मेरे पास हैं सो पुत्र के साथ उन्हीं गजेन्द्रों की सहायता से मैं उन्हें आकाश में जाकर भी पकड़ लेऊंगा।" राजा का ऐसा वचन सुन मुनि बड़े सन्तुष्ट हुए और बोले "अच्छा तो आप मेरे यज्ञ का उपक्रम कर दीजिये। जब कि चारों ओर सम्बाद भेज कर मैं यज्ञ प्रारम्भ करूंगा तब आपके पास इस दृढ़व्रत शिष्य को भेजूंगा, यही इच्छानुसार चलनेवाला महाबलशाली विहंग होकर मुक्ताफलध्वज का वाहन होगा।" इतना कह वह मुनि वहां से चले गये और राजा मेरुध्वज ने उनके पीछे ही यज्ञ के सब उपक्रम पठवाय दिये। सब ऋषियों और मुनियों का जमावड़ा हो गया और तपोधन मुनि ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया, यज्ञ सम्बाद पाय पाताल के रहनेवाले दानवों का हृदय क्षुभित हो गया। मुनियों को यह सम्बाद मिल गया कि सब दानव क्षुभित हुए हैं बस उसी समय दृढ़व्रत शिष्य को, जो कि शाप के वश पक्षी

रूप में परिवर्तित हो गया; देवनभ नगर को भेज दिया, पश्चात् उसे आया देख राजा मेरुध्वज को तपोधन मुनि का वचन स्मरण हो आया सो उन्होंने उन दोनों दिव्य गजेन्द्रों को सजा मंगवाया। उनमें से मुख्य जो काञ्चनगिरि था उसपर तो राजा स्वयं आरूढ़ हुए और काञ्चनशेखर गज पर लहुरे पुत्र को चढ़ाया। राजकुमार मुक्ताफलध्वज दृढ़व्रत खगेन्द्र पर चढ़े जिन्होंने सब दिव्य अस्त्र प्राप्त किये थे। उस समय बन्दियों ने महाराज का यशगान किया और अभिनन्दन सुनाया। ब्राह्मणों ने आकर प्रास्थानिक आशीर्वाद दिया। राजा की सेना आगे २ चली और पीछे आकाशगामी वाहनों पर वे तीनों वीर चले। जिस समय ये तीनों वीर दल बल सहित महामुनि तपोधन के आश्रम में पहुचे हैं उस समय अति प्रसन्न होकर उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया कि सब शस्त्रों के तुम अभेद्य हो जाओ (१)।

इतने ही में घोर निशाचरों का दल यज्ञ विध्वंस करने के निमित्त आ पहुंचा, उस दल को देख महाराज मेरुध्वज का दल नाद करता हुआ उसपर टूट पड़ा। अब दैत्यों और मानुषों का युद्ध होने लगा; दैत्य तो आकाश में थे और मानुष धरती पर इस कारण दैत्य मानुषों पर प्रबल हुए (२) इतने में ही पक्षिवाहन मुक्ताफलध्वज दौड़कर दैत्यों को लगे खचाखच काटने और उनकी सेना छिड़ोलने लगे। उन मुक्ताफलध्वज को विहगारूढ़ तथा तेज से प्रज्वलित देखकर हतशेष दैत्य इन्हें नारायण समझ लगे भागने। वे दैत्य भय के मारे भाग के पाताल में गये और दैत्यराज त्रैलोक्यमाली को सारा वृत्तान्त सुना गये। यह सम्वाद पाय त्रैलोक्यमाली ने चारों द्वारा पता लगवाया तो उसे ज्ञात हुआ कि मुक्ताफलध्वज मानुष हैं तब उनसे जो यह पराजय हुआ इसे वह सह्य न कर सका। अब असुरेश्वर ने पाताल के समस्त दानवों को बटोरा और प्रस्थान का डङ्का बजवाय दिया। उस समय बड़े २ अपशकुन उठे किन्तु दानवेन्द्र उनका कुछ भी विचार न कर युद्धार्थ ऋषि के आश्रम को चला ही गया।

(१) सब शस्त्र तुमपर कुछ प्रभाव न कर सकें।

(२) पृथ्वी में आकर्षणशक्ति है अतः ऊपर के छूटे बाण तो नीचे के सैनिकों पर घोर रूप से लगते थे और नीचेवालों के छूटे बाण आकर्षणशक्ति के बल से ऊपर नहीं पहुंच सकते थे।

अब फिर मानुषों और दैत्यों का महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, इस महारण यज्ञ के दर्शनार्थं रुद्र इन्द्र प्रभृति देवगण विमानों पर चढ़ २ आकाश में आ उपस्थित हुए। उस समय मुक्ताफलध्वज क्या देखते हैं कि सामने पाशुपत महास्त्र उपस्थित है जिसका तेज अलंघ्य है। जिसका आकार बड़ा भारी, वह्नि की ज्वाला उगिलता हुआ, तीन जिसके नेत्र, चार मुख, एक पांव, आठ भुज, और जो कि कल्पान्त अनल के समान देदीप्यमान। पाशुपत अस्त्र ने कहा, "राजपुत्र ! मैं भगवान् शङ्कर की आदेश से तुम्हारे विजय के लिये उपस्थित हुआ हूं।" इस प्रकार उक्त अस्त्र का कथन सुन राजकुमार ने पूजन कर उक्त महास्त्र ग्रहण कर लिया। इसी समय आकाश से असुरों का दल महाराज मेरुध्वज की सेना पर अस्त्रवृष्टि कर रहा था जिससे वह सेना विकल हो गयी। यह देख विचित्र युद्ध करनेवाले मुक्ताफलध्वज ने आकाश और पृथ्वी के मध्य वाणों का जाल रच दिया और स्वयं असुरों से युद्ध ठाना।

पिता और भ्राता के साथ आकाशचारी वाहनों पर आरूढ़ मुक्ताफलध्वज को देखकर त्रैलोक्यमाली दैत्येन्द्र ने पन्नगास्त्र (१) छोड़ा उसके छूटते ही विष उगिलते बड़े २ महा भयङ्कर असंख्य सर्प निकले उन्हें देख मलयध्वज ने गारुड़ अस्त्र छोड़ा जिससे असंख्य गरुड़ निकल उन सर्पों का संहार करने लगे। इसके उपरान्त दैत्येन्द्र और दैत्येन्द्र के पुत्र जो २ अस्त्र छोड़ते थे मुक्ताफलकेतु बात की बात में उनका संहार कर देते थे। यह देख देवारि, उसका पुत्र और अन्यान्य जो दानव थे उनका कोप भड़का सो वे सब एक ही समय उनपर आग्नेयादि अस्त्रों का प्रयोग करने लगे, परन्तु यहां तो सब के आगे महाप्रचण्ड पाशुपत अस्त्र विद्यमान है उस महास्त्र के सम्मुख किसी अस्त्र का कुछ चलता ही न था, सब अस्त्र छूटते तो थे पर सामने पाशुपत अस्त्र को जाज्वल्यमान देख भय के मारे मुख फेर कर लौट जाते थे।

इस प्रकार प्रयास के निष्फल हो जाने से दानव बड़े भयभीत हुए, अब उनकी इच्छा हुई कि भाग चलें। उनका यह अभिप्राय मुक्ताफलध्वज ताड़ गये सो उन्होंने चट उनके ऊपर नीचे चारों ओर बाणों के जाल लगा के वज्र समान

(१) सर्पास्त्र अर्थात् सर्प उत्पन्न करनेवाला अस्त्र।

आभेद्य पिंजड़ा बना दिया । अब तो पिंजड़े में वे दानव पक्षियों के समान घूमने लगे और बाहिर से मुक्ताफलध्वज अपने पिता और भ्राता के सहित तीक्ष्ण वाणों का प्रहार कर २ उन दानवों को मारने लगे ।,उधर पिंजड़े के भीतर उन राक्षसों के शिर हाथ और पांव कट २ कर गिरने लगे उस समय उन छिन्न भिन्न राक्षसों के शरीरों से लहूकी नदी बह चली । इस समय आकाश में स्थित देवगण धन्य २ की ध्वनि करने लगे । इसी अवसर पर मुक्ताफलध्वज ने उन शत्रुओं पर मोहनास्त्र का प्रयोग किया । इस अस्त्र से मोहित हो सब दानव अपने राजा सहित धरती पर गिर पड़े सो उन्होंने वरुणास्त्र से उन्हें बांध लिये ।

उसी अवसर पर तपोधन मुनि आये और महाराज मेरुध्वज से कहने लगे "राजन् ! यह बची हुई असुरसेना अब मत मारिये, इनसे अपना आधिपत्य स्वीकार करा लीजिये; ये हतशेष दैत्य अब जाकर रसातल में रहें । दैत्येन्द्र को सपुत्र और समन्त्री बांध लीजिये, आगे ले जाकर प्रधान २ राक्षसों के साथ देवसभा के समीप श्वेतशैल की गुहा के भीतर रख दीजिये और वहां बड़े २ नागेन्द्रों का पहरा नियुक्त कर दीजिये '।' मुनि का ऐसा आदेश सुन महाराज मेरुध्वज ने उन दैत्य योद्धाओं से कहा "सुनो अब तुम लोग हमसे कुछ भय मत करो, बात यह है कि भाई सहित मुक्ताफलध्वज का शासन ग्रहण कर लो बस निश्चिन्त हो अपने २ स्थान में विचरो ।" महाराज का ऐसा कथन सुन सब दानव प्रसन्न हो उनकी उस आज्ञा पर सम्मत हो गये । तब राजा मेरुध्वज ने दैत्यराज त्रैलोक्यमाली को पुत्रादि के साथ श्वेतशैल पर भिजवा दिया, और उस पर्वत की गुहा में उन्हें रखवा दिया तथा उनकी रखवाली का अच्छा प्रबन्ध करवा दिया; बड़े २ शूरवीरों को उनके पहरे में नियुक्त कर दिया और प्रधान अमात्य को भी उनपर दृष्टि रखने की सूचना दे दियी ।

अब संग्राम निवृत्त हुआ, देवों ने मन्दार पुष्पों की वृष्टि कर अपने २ लोक को प्रस्थान किया । इस समय समस्त जगत् में आनन्द छाय गया, सब लोग उत्सव मनाने लगे । इस अवसर पर विजयी महाराज मेरुध्वज ने अपने पुत्रों से कहा हे राजकुमारो ! मेरी बात सुनो, मैं तो यज्ञ की रक्षा के निमित्त यहीं रहता हूं, तुम दोनों इन अपने सैनिकों के साथ दैत्यों के विमानों पर चढ़ कर उनके बचे

हुए सैनिकों को संग लेकर पाताल में जाओ। इन सभी को आश्वासन देकर वहां रख देना और अपना आधिपत्य इनसे स्वीकृत करा लेना और तिनके ऊपर एक प्रधान नियुक्त कर देना; इतना काम कर तुम दोनों यहां चले आना।" पिता का ऐसा आदेश सुन मुक्ताफलध्वज बोले "बहुत अच्छा।"

इतना कह वह दिव्य तथा कामग (१) वाहन पर आरूढ़ हुए और मलयध्वज भी वाहनासीन हुए। दानवों की सेना नम्रतापूर्वक आगे २ चली और पीछे २ दोनों भाई अपने सैन्य के साथ चले। अब ये पाताल में पैठे। मार्ग में भिन्न २ स्थानों में रक्षाकार्य में नियुक्त दानव इनको रोकते थे तिन्हें वे सीधे यमलोक के पथिक बना देते थे और जो बच जाते थे उन्हें अभयदान देकर छोड़ देते। इस प्रकार सब लोगों पर अपना विश्वास उत्पन्न करा नाना रत्नों से पूरित सैकड़ों नगरों से युक्त सातों रसातलों को उन दोनों भाइयों ने अपने वश में कर लिया। अब वे सब कामों के देनेहारे रम्य उद्यानों में विहार करने लगे जिनमें दिव्य आसव (२) से भरी अनेक बावड़ियां विद्यमान थीं, जिनकी सीढ़ियां रत्नों की बनी थीं। राजकुमार वहां क्या देखते हैं कि दानवों की स्त्रियों अतङ्क२ आकृतियों की, हैं और उनकी कन्याएं तरुओं के बीच माया से अपने शरीर आच्छन्न कर बैठी हैं। वहां और क्या देखते हैं कि त्रैलोक्यमाली की भार्य्या स्वयंप्रभा अपने वह पति के कल्याणार्थ तप कर रही है और उसकी त्रैलोक्यप्रभा और त्रिभुवनप्रभा नाम्नी दो बेटियां भी अपने पिता के कल्याण के निमित्त तपस्या कर रही हैं। अब राजकुमारों ने पाताल में सब जनों को शान्त और स्वस्थ कर नाना प्रकार के प्रियवचनों से सम्मानित कर संग्रामसिंहादिकों को अधिकारी ठहरा दिया। पाताल में इतने कार्य कर दोनों विजयी राजकुमार अपने पिता के समीप आ उपस्थित हुए।

इसी अवसर पर यहां मुनि का यज्ञ भी समाप्त हो गया और सब देवता तथा महर्षि अपने २ स्थान को जाने लगे। उस समय इन्द्र को संतुष्ट देख महा

(१) इच्छा के अनुसार चलनेवाला, आरूढ़जन की जो इच्छा हो वह जान कर उसी के अनुसार ही चले।

(२) मदिरा।

राज मेरुध्वज ने उनसे यह अनुरोध किया "हे देवेन्द्र! यदि आप मुझपर तुष्ट हैं तो चल कर मेरा नगर पावन कीजिये।" महाराज का ऐसा अनुनय सुन देवराज बड़े प्रसन्न हुए और मुनि से आज्ञा लेकर राजा की प्रीति के निमित्त उनके तथा उनके पुत्रों के साथ देवसभ नगर को गये। वहां दोनों लोकों के ईश्वर महाराज मेरुध्वज ने शतक्रतु की ऐसी परिचर्य्या कियी कि वह अपना दिव्य सुख भूल ही गये। इसके उपरान्त अति प्रसन्न देवराज पुत्र सहित राजा को अपने दिव्य वाहन पर बैठा कर स्वर्ग में ले गये। वहां नारद, रम्भा आदि का श्रवणसुखद गान हुआ तहां ऐसे सुखमय देवलोक में मेरुध्वज, मलयध्वज और मुक्ताफल को विश्राम करा कर इन्द्र ने पारिजात के पुष्पों की मालाएं पहिनायीं, और दिव्य मुकुट उन्हें दिये तथा बड़ा आदर सम्मान कर उन्हें विदा किया। अब वे तीनों भूलोक में आये। कभी २ पाताल का भी दौरा करते। इस प्रकार वे नृदेव दोनों लोकों का राज्य करने लगे।

अब एक समय महाराज मेरुध्वज ने मुक्ताफलध्वज से कहा "हे पुत्र! सब शत्रु तो जीत लिये गये अब कोई बचा नहीं है, तुम दोनों भाई अब युवा हुए, सो अब यह करो, मैंने बहुतेरी स्वाधीन कन्याएं ढुंढ़वायी हैं, सो अब तुम दोनों अपना २ विवाह कर लेओ।" पिता का ऐसा वचन सुन मुक्ताफलध्वज बोले "हे तात! मेरा मन तो विवाह करने का नहीं है। मैं तो अब भगवान् शङ्कर की आराधना में तपस्या करूंगा, यह वत्स मलयध्वज विवाह कर लेवे।" मुक्ताफलध्वज का एतादृश वचन सुन उनके अनुज मलयध्वज बोले—आर्य! आप अविवाहित रहें और मैं विवाह करूं क्या यह उचित है? आप राज्य न ग्रहण करें और मैं राज काज करूं, क्या यह योग्य है? कहिये ऐसा करना समुचित होगा? बस मैं तो आपके ही मार्ग का अनुसरण करूंगा।" मलयध्वज के इस प्रकार कहने पर महाराज मेरुध्वज अपने ज्येष्ठ पुत्र मुक्ताफलध्वज से पुनः कहने लगे "हे पुत्र! तुम्हारे इस अनुज ने ठीक कहा है। तुम्हारा कहना अनुचित है; भला यह नयी जवानी इस समय तपस्या कैसी! यह समय क्या तपस्या का है,? यह तो तुम्हारे भोग विलास का समय है। अतः पुत्र! यह असमय का आग्रह छोड़ो यह ठीक नहीं है।" राजा के इस प्रकार कहने पर ज्येष्ठ सुत मुक्ताफलध्वज उनके प्रस्ताव पर सम्मत न

हुए। तब राजा मेरुध्वज भी चुप हो रहे कि अच्छा देखो आगे क्या होता है।

इतने में उधर पाताल की यह बात है कि त्रैलोक्यमाली की भार्या और दोनों कन्याएं तपस्या कर रही थीं, सो उन दोनों ने अपनी माता स्वयंप्रभा से कहा, "अम्ब। हमारे पिता सात आठ वर्षों से बन्धे हैं, राज्य चला गया, हमारे पुण्यों का ऐसा क्षय हो गया कि हमपर ऐसी विपत्ति पड़ी, हा! क्यों ऐसी दुर्दशा हुई! यह आठवां वर्ष भी व्यतीत हो चला किन्तु अद्यावधि भगवान् शङ्कर प्रसन्न न हुए और न पिता ही बन्धन से छूटे। शत्रुओं के पराभव के कुछ लक्षण भी नहीं दीख पड़ते हैं तो शरीर रख कर क्या करेंगी अब हम अग्नि में अपना शरीर हवन कर देना चाहती हैं।" पुत्रियों की ऐसी उक्ति सुन स्वयंप्रभा बोली "हे पुत्रियों! ठहरो, शीघ्रता मत करो हमारा उदय फिर होवेगा। मैं जब तपस्या कर रही थी तो ऐसा भासता था कि स्वप्न में भगवान् शङ्कर ने दर्शन देकर मुझसे कहा "वत्से। धैर्य रख, तेरा पति पुनः राज्य प्राप्त करेगा; यह जो मुक्ताफलध्वज और मलयध्वज राजकुमार हैं सो तेरी पुत्रियों के पति होवेंगे। इन्हें मानुष मत समझना क्योंकि इनमें से एक तो श्रेष्ठ विद्याधर है और दूसरा मेरा गण है। इस प्रकार भगवान् शम्भु का आदेश सुन रात बीतने पर मैं जागी तब से इसी आशा में बड़े २ क्लेश सहन करती आती हूं। सो अब यह सम्वाद मैं तुम्हारे पिता प्रभु के पास भेजती हूं, उनकी इच्छा जान कर तुम्हारे विवाह की सिद्धि की चेष्टा करूंगी।"

इस प्रकार पुत्रियों को आश्वासन देकर स्वयंप्रभा अपने अन्तःपुर की वृद्धा स्त्री इन्दुमती से कहने लगी "अली! तुम मेरा यह संदेशा आर्यपुत्र के पास श्वेतशैल गुहा में ले जाओ और मेरे वचन से उनसे कहियो," महाराज! मुझे एक दूसरे कठोर विधाता ने बनाया है क्योंकि मैं आपकी वियोगाग्नि से प्रज्वलित हो के भी जल नहीं जाती हूं, मैंने आपके पुनर्दर्शन की लालसा से आत्मघात नहीं किया। हे वृद्धे! यह मेरा सन्देश कह आर्यपुत्र से महाप्रभु शङ्कर का आदेश कहना। फिर कन्याओं के विवाह के लिये उनसे पूछना जो वह कहें सो आकर मुझसे कहना फिर मैं उसी के अनुसार कार्य करूंगी।" इस प्रकार कहके स्वयंप्रभा ने इन्दुमती को विदा किया।

अब इन्दुमती पाताल से निकली और चली २ उस शैल की गुहा के द्वार पर

पहुंची तो क्या देखती है कि वहां बड़े २ योद्धाओं का पहरा पड़ रहा है। रक्षकों से बड़ी चिरौरी बिनति कर वह भीतर गयी । वहां क्या देखती है कि दैत्यराज त्रैलोक्यमाली बंधे पड़े हैं, यह देख उसके नेत्रों में आंसू भर आये और वह उनके चरणों पर गिरी । दैत्यराज ने पूछा "कहो इन्दुमती ! घर पर सब कुशल तो है ?" इस प्रकार कुशल प्रश्न कियो गयो इन्दुमती उनको भार्य्या का सन्देश साद्यन्त सुना गयी । सो सुन राजा बोले "शम्भु भगवान् ने जो हमारे राज्य मिलने की बात कही सो तो ठीक है परन्तु मेरुध्वज के पुत्रों को कन्यादान की बात कैसी ? मैं यहीं पड़ा २ मर जाऊं पर मनु मानवों को अपनी कन्याएं कदापि न देऊं, भला मैं बंधा होकर उन्हें भेंट देऊं ?" इतना कह दैत्येन्द्र ने इन्दुमती को बिदा किया और वह पाताल में लौट जाकर दैत्येन्द्रपत्नी को दैत्येन्द्र का उत्तर सुना गयी।

पिता का यह सम्वाद सुन दैत्येन्द्रकन्या त्रैलोक्यप्रभा और त्रिभुवनप्रभा अपनी जनयित्री स्वयंप्रभा से कहने लगीं, "माता ! हम दोनों का यह यौवन महा भयङ्कर है, इस भय से अग्नि में प्रवेश करना कहीं अच्छा है, सो अम्ब ! इस चतुर्दशी को हम दोनों अग्नि में प्रवेश कर जावेंगी ।" पुत्रियों का ऐसा निश्चय जान उनकी माता स्वयंप्रभा ने भी अपने परिच्छद सहित अग्नि में प्रवेश करना ही निश्चय किया ।

अब चतुर्दशी आयी सो वे पापरिपु नाम तीर्थ में गयीं, वहां हाटकेश्वर को जा कर उन्होंने चिताएं प्रस्तुत कियीं । उसी अवसर में मेरुध्वज राजा अपनी भार्या तथा पुत्रों के साथ हाटकेश्वर की पूजा के निमित्त वहां आये । पापरिपु तीर्थ में स्नान कर वह अपने सहचर वर्ग के साथ चले जा रहे थे कि कुछ दूर पर वन के बीच उन्हें उक्त तीर्थ के किनारे धूम दीख पड़ा। धूम देख राजा ने अपने पाताल में नियुक्त अधिकारी संग्रामसिंह आदि से पूछा कि यह धूंआं क्यों उठ रहा है, सो सुन वे बोले "महाराज ! त्रैलोक्यमाली की भार्या स्वयंप्रभा अपनी दो कुमारी कन्याओं के साथ तप करती है, निश्चय वे आज कुछ अग्निकार्य करती हैं अथवा तपस्या करती २ थक गयीं तो कदाचित् अग्निप्रवेश का उपक्रम करती हों । यह सुन राजा और सब अनुयायियों को वहीं ठहराय उन अधिकारियों तथा स्त्री और पुत्रों के साथ वहां गये, और वहां छिप कर देखने लगे तो क्या देखते हैं कि वे

दैत्यकन्याएं प्रज्वलित चिताग्नि की पूजा कर रही हैं। उनके मुखों से लावण्य टपक रहा था जिससे दशों दिशाएं भरी थीं, और यह प्रतीत होता था कि रसातल पर सैकड़े चन्द्रविम्ब इस समय विद्यमान हैं। काम ने तीनों जगतों को जो जीत लिया है इस कारण इस समय मानों उनका अभिषेक हो रहा है, दोनों कुच मानों काञ्चन के कुम्भ हैं तिनपर हारों की लड़ी जो पड़ी हैं सो मानों उन घड़ों से जलधारा निकल रही है। बड़े बड़े उन्नत कटिदेश सुप्रशस्त, जिनपर करधनी लटक रही है, जिनकी शोभा ऐसी प्रतीत होती है कि कामदेव रूपी हस्ती के गण्डदेश हों जिनपर नक्षत्र की मालाएं लटक रही हैं। उनकी चोटियां मानों नागिनें हैं ऐसी भावना होती है कि विधिना ने उनके लावण्य की खानि की रक्षा के लिये उन्हें वहां नियुक्त कर दिया है। उन दोनों दैत्यकन्याओं को देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ, वह विचारने लगे, "अहो विश्वस्रष्टा की सृष्टि नवीन नवीन और अद्भुत है। उनकी सुन्दरता ऐसी कि जिसकी समता को न रम्भा, न तो उर्वशी और न तिलोत्तमा ही पा सकती है, अहो ऐसा अपूर्व सौन्दर्य तो इन असुराधिपकन्याओं का है।

महाराज मेरुध्वज इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उधर जेठरी त्रैलोक्यप्रभा वह्नि की पूजा कर इस प्रकार प्रार्थना करने लगी "जब से स्वप्न में दिया हुआ महादेव का आदेश माता ने मुझसे कहा तब से उस गुणनिधान राजपुत्र मुक्ताफलध्वज में पतिबुद्धि रक्खी सो वही दूसरे जन्म में मेरे पति होवें। इस जन्म में तो निगड़बद्ध मेरे पिता उन्हें नहीं दिया चाहते, यद्यपि मेरी जननी की उसमें पूर्ण अनुमति है।" उसकी ऐसी उक्ति सुन उसी प्रकार त्रिभुवनप्रभा ने भी जन्मान्तर में मलयध्वज को हुताशन से पति मांगा। उनका ऐसा कथन सुन महाराज मेरुध्वज अति प्रसन्न हुए। अब वह तथा उनकी भार्या महादेवी परस्पर कहने लगे "यदि हमारे दोनों पुत्र इन दोनों को पत्नी प्राप्त करें तो दोनों लोकों के जीतने का फल प्राप्त हो जावे। सो जब लों कि ये दोनों माता सहित अग्नि में नहीं कूदती हैं तब लों चल कर क्यों न उन्हें रोक देवें।" इस प्रकार देवी के संग मन्त्रणा कर राजा उनके पास जाकर बोले, "साहस मत करो, मैं तुम्हारा दुःख दूर करूंगा।" राजा का यह कर्णामृत वचन सुनताथा उन्हें देख उन असुराङ्गनाओं ने उन्हें प्रणाम

किया। "हम तो सब को देखती हैं पर माया से हम और को अदृश्य हैं किन्तु दो लोकों के ईश्वर आपसे हम अब देख लियी गयीं। अब जब आपने हमें देख लिया तो निश्चय हमारा दुःख शीघ्र ही दूर हो जायगा, फिर इसमें सन्देह ही क्या क्योंकि देव ने स्वयं अपने मुख से अभीष्ट वरदान दिया है अब आप लोग विराजें और अर्घ्यपाद्यादि ग्रहण करें, आप लोग जगत्पूज्य हैं और यह हम लोगों का आश्रम है।" ऐसी स्वयंप्रभा की उक्ति सुन हंस के महाराज मेरुध्वज बोले, ये तुम्हारे जामाता हैं इन्हें अर्घादि देओ।" सो सुन स्वयंप्रभा बोली "देव! श्रीभगवान् वृषध्वज इन दोनों को अर्घ्यादि देंगी परन्तु आप तो इस समय ग्रहण करें।" महाराज मेरुध्वज ने कहा कि यह सब तो मैं पा चुका, अब तुम लोग तो मरण के उद्योग से निवृत्त हो जाओ, जाकर अपने सब काम देनेवाले नगर में रहो तब मैं इसका प्रबन्ध कर लेऊंगा कि जिससे तुम्हारा कल्याण होवे। इस प्रकार राजा का कथन सुन स्वयंप्रभा बोली "महाराज की आज्ञा से हम शरीरत्याग के निश्चय से निवृत्त हैं, परन्तु महाराज! टुक इधर तो ध्यान दीजिये कि हमारे प्रभु तो कारागार सेवें और हम क्योंकर घर में रह सकती हैं, सो देव तब लों हम यहीं रहेंगी जब लों कि देव अपना दिया वर न पालन करेंगे और पुत्र तथा मन्त्री सहित हमारे प्रभु को छोड़ न देंगे। यदि आप छोड़ देंगे तो आपके अधिकार रह के वह राज्य करेंगे और यदि आप चाहेंगे तो आपको वह राज्य भी दे देंगे। वह आपके साथ समय का प्रतिबन्ध भी कर लेंगे और पातालवासियों के साथ हम मध्यस्थ हैं। पाताल में जितने हमारे रत्न हैं सो आप स्वीकार करें।" स्वयंप्रभा की ऐसी उक्ति सुन महाराज मेरुध्वज बोले—"मैं तो यह सब मन में रक्खूंगा किन्तु तुम सब भी अपना वचन स्मरण रखना।" इतना कह स्नान कर महाराज ने हाटकेश्वर की पूजा कियी। उस समय उन दैत्यकन्याओं ने अपने २ स्वामी को स्वयं देख लिया सो उसी क्षण से वे उनमें ध्यान लगा कर तन्मय रहने लगीं।

॥ वसन्ततिलकम् ॥

पातालवासि तिहि काल इकन्न होके।
मेरुध्वजाय सपदी (१) शिर नाइ बोले॥

(१) तुरन्त।

त्रैलोक्यमालि कहँ शीघ्रहि मुक्त कीजै।
याही महोदय हमें अब भीख दीजै॥ १॥
आशा जनाइ यशधौलित छत्र द्वारा।
राजा कृती सहित आत्मज और दारा॥
निकस्यो पताल सन जो असुरों की खानी।
कीन्हीं पयान तब ही निज राजधानी॥ २॥

॥ सोरठा ॥

मलयध्वज तापूत, लहुरी दानवपुत्रि के॥
रह्यो ध्यान में जूत, नींद निगोड़ी भजि गई॥ १॥
काम सतावै ताहि, विकल रहै निशि वासरै॥
सोचत मन महँ याहि, केहि विधि प्राणप्रिया मिलै॥ २॥

॥ दोहा ॥

धैर्यसिन्धु मुक्ताफलध्वज दृढ़भावी जान॥
असुराधिप की पुत्रिकै, तनिकै नाहिं डिगान॥ १॥
जेहि लखि मुनिगन केर मन, पावै तुरत विकार॥
अत जेठी असुराधिपतनया इहां लचार॥ २॥
मुनि सों पूरब जन्म में, जो मांग्यो वरदान॥
ताही के परभावसों, चेतस नाहिँ चलान॥ ३॥

॥ वसन्ततिलकम्॥

मेरुध्वजो तिहिं विवाह विरक्त चीरो।
कामार्त्त इस मलयधुज पुत्र जानी॥
कन्या जु देन चहतो नहिं दैत्यराज।
कैसे बनै यहि विचार वियाकुली थे॥ ३॥

छठां तरङ्ग ।

अब राजा मेरुध्वज अपने पुत्र मलयध्वज को इस प्रकार कामज्वराक्रान्त देख अपनी देवी से इस प्रकार कहने लगे —"देवि ! पाताल में देखो मयों त्रैलोक्यमाली की दोनों कन्याएं मेरे दोनों पुत्र की भार्य्याएं न हुईं तो मैंने किया क्या ! देखो उनमें से बहुरी के विना मेरा पुत्र मलयध्वज लज्जा वश कुछ कहता नहीं किन्तु कामाग्नि से भीतर ही भीतर मुर्त्ता हुआ जा रहा है, इसी लिये मैंने त्रैलोक्यमाली की भार्य्या से उसकी मुक्ति का वचन दिया सो अब लों पूरा न किया । यदि वह छोड़ दिया जाय तो असुर तो वह है ही कदाचित् अपने स्वभाव वश मेरे मानुष पुत्रों को अपनी कन्या न देवे इससे मेरे मन में यह आता है कि उसे समझा बुझा कर उस वरदान की बात कह देऊं ।" इस प्रकार मन्त्रियों से परामर्श कर महाराज ने प्रतीहार को बुला कर यह आदेश दिया कि तुम खेतशैल गुहा में जाओ और बन्धन में पड़े हुए त्रैलोक्यमाली से मेरा यह सन्देश कहो कि हे दैत्यपते ! दैवयोग से तुम लोग यहां पड़े २ बहुत दिनों से कष्ट भोग रहे हो सो अब मेरी बात मान कर क्लेश की शान्ति करो । सो सुनो, बात यह है कि तुम्हारी दोनों कन्याएँ मेरे पुत्रों को देखकर अनुरागवती हो गयी हैं सो तुम उन्हें मेरे दोनों पुत्रों को दे देओ और यहां से छूट दर जा कर आनन्दपूर्वक निर्द्वन्द्व अपना राज्य करो । इतना कह राजा ने उस प्रतीहार को विदा किया और वह चला २ खेतशैल की गुहा में पहुंचा और दैत्येन्द्र से राजसन्देश कह गया । उसने सुनते ही उत्तर दिया "जाओ कह देओ, मैं मनुष्यों को अपनी कन्याएं कदापि न दूंगा ।" उसका ऐसा प्रतिसन्देश पाकर प्रतिहार ने महाराज मेरुध्वज से कह दिया । सो सुन महाराज मेरुध्वज बड़ी चिन्ता में पड़ गये कि अब क्या उपाय किया जाय जिससे कि अभिप्राय सिद्ध हो और वचन पूर्ण हो ।

उधर यह वृत्तान्त स्वयंप्रभा को विदित हुआ, और बहुत दिन व्यतीत हो गये, न तो पति की मुक्ति हुई और न कन्याओं के विवाह की ही कुछ बात पक्की हुई । तब तो उसने इन्दुमती द्वारा महाराज मेरुध्वज के पास यह सन्देशा भेजा । अब इन्दुमती पाताललोक से चली २ महाराज मेरुध्वज के राजभवन में आ उपस्थित हुई

और प्रतीहारी के द्वारा महादेवी के पास सन्देश भेज उनके समक्ष उपस्थित हुई। महारानी ने उसका बड़ा सन्मान किया। सो यह प्रणाम कर महारानी से यह सन्देश कहने लगी —"हे देवि! स्वयंप्रभा आपको यह सूचना देती है कि क्या आप लोगों को अपना वह वचन भूल गया? समुद्र तथा कुलपर्वत प्रलयकाल में चलित हो जाते हैं किन्तु आप समान सज्जनों का वचन उस समय भी अन्यथा नहीं होता। यद्यपि मेरे स्वामी ने कन्यादान नहीं स्वीकार किया सो विचारने की बात है कि वह बन्धेन हैं सो कैसे अपनी कन्याएं उपहार दे सकते हैं। यदि आप उचित रूप से उपकार के लिहोरे उन्हें छोड़ देवें तो निश्चय है कि वह आप लोगों का प्रत्युपकार अवश्य करेंगी। हे देवि! और बात यह भी है कि कहीं स्वयंप्रभा कन्याओं के साथ आत्महत्या कर बैठी तब तो उसको कन्याओं का पाना भी न हुआ और आपका सत्य भी न निबहा। सो महारानी जी अब आप ऐसा उपाय कीजिये कि राजा हमारे प्रभु को छोड़ देवें और सब अर्थ भी सिद्ध होवें। लीजिये यह स्वयंप्रभा का दिया विभूषण है वह दिव्य रत्नों से जड़ा है जिसके प्रताप से लोग आकाश में जा सकते हैं।" इन्दुमती का ऐसा कथन सुन महारानी बोलीं- "वह स्वयंप्रभा तो इस समय स्वयं दुःखित है भला यह कैसे हो सकता है कि मैं उसका यह भूषण लेऊं।" राजमहिषी का ऐसा कथन सुन इन्दुमती बोली—"देवि! यदि आप यह न ग्रहण करें तो हम लोगों को धीरज कैसे होगा और यदि आप ले लेवें तो हम लोगों को यह निश्चय हो जावेगा कि हमारा दुःख शान्त हुआ।" इस प्रकार जब इन्दुमती ने बड़े यत्न से रानी को समझाया तब उसके आश्वास के निमित्त उन्होंने स्वयंप्रभा का उपहार वह आभरण ग्रहण कर लिया। "आर्ये! जब लों महाराज न आवें तब लों तू यहीं रह" इतना कहके रानी ने इन्दुमती को वहीं रक्खा।

इतने में महाराज भी वहां आ पहुंचे, इन्दुमती उन्हें देख उठ खड़ी हुई, महारानी ने उसका परिचय दिया सो उसने झुक कर महाराज को प्रणाम किया और स्वयंप्रभा का दिया हुआ चूड़ारत्न महाराज को अर्पण किया जिसका यह गुण कि धारण करनेवाले को विष, राक्षस, जरा तथा रोगों का भय नहीं हो सकता। राजा बोले "अपने सत्य का बिना पालन किये मैं नहीं ग्रहण करने

का ।" उसी समय प्रवीण इन्दुमती उनसे बोली—"महाराज ! जब आपने प्रतिज्ञा किया तब सत्य पाल हो चुके पर यदि इसे ग्रहण कर लेंगी तो हम लोगों का भाखास न हो जायगा ।" इसप्रकार उसके कहने पर महारानी ने कहा कि इन्दुमती का कहना ठीक है, इतना कह महारानी ने उससे वह चूड़ारत्न लेकर राजा के माथे पर बांध दिया । इसकी उपरान्त इन्दुमती जिस प्रकार स्वयंप्रभा का संदेश रानी से कह चुकी थी उसी प्रकार महाराज को भी सुना गयी । रानी ने भी उसका कथन दोहरा दिया तब राजा ने इन्दुमती से कहा कि तुम आज यहीं रहो कल मैं तुमसे कहूंगा ।

जब रात व्यतीत हुई, प्रातःकाल मन्त्रियों को बुला कर राजा मेरुध्वज ने इंदुमती से इस प्रकार कहा—"तुम इन मन्त्रियों के साथ राजा त्रैलोक्यमाली के पास जाओ और उनसे कहके स्वयंप्रभादिक असुर की स्त्रियों को पाताल से यहां ले आओ और जितने मुख्य २ पातालवासी हैं उन्हें भी लिवा लाओ तथा हाटकेश्वर का मुद्रित कोषवारि (१) भी लेती आना । त्रैलोक्यमाली को अपने भृत्यों और बन्धुओं के साथ हमारे वश में रहना चाहिये और नागों को अपने अस्त्र का व्यवहार न करना चाहिये । इस विषय में स्वयंप्रभा आदि अपने २ पतियों के चरण स्पर्श कर मेरे मन्त्रियों के समक्ष शपथ करके मध्यस्थ होवें । सब पातालवासी प्रतिभू (२) होवें और राजा के सहित अपने सन्तानों को भी बीच में रक्खें । सब लोग मिल के लिख देवें और हाटकेश्वर का सर्वाङ्ग वारिकोष (१) पान करें । जब इतना पातालवासी कर देवें तो मैं त्रैलोक्यमाली को कारागार से छोड़ देऊं ।" इतना कह राजा मेरुध्वज ने अपने मन्त्री के साथ इन्दुमती को विदा किया ।

तब इन्दुमती राजा के मन्त्रियों के साथ वहां से चली और राजा त्रैलोक्यमाली के समक्ष उपस्थित होकर सब वृत्तान्त सुनाय गयी । त्रैलोक्यमाली ने इस पर अपनी इच्छा प्रगट किया तब वह इन्दुमती पाताल में गयी । उसने स्वयंप्रभा आदि को बुलाया और कोषवारि लंगा कर राजा ने जो कुछ कहा था सो सब मन्त्रियों के समक्ष करा दिया ।

(१) जलधरी का पानी ।　　(२) जामिन ।

जब महाराज मेरुध्वज को भली भांति विश्वास हो गया कि अब किसी प्रकार का संदेह नहीं रहा तब उन्होंने पातालाधीश्वर त्रैलोक्यमाली को सपरिच्छद-कारागृह से मुक्त कर दिया। उनके सब साथियों समेत राजा ने उन्हें अपनी राजभवन में बुलवा कर उनका बड़ा सम्मान किया और इसके उपलक्ष में असुरराज ने उनको बहुत से रत्न उपहार स्वरूप दिये, सो स्वीकार कर राजा ने उन्हें बिदा किया। अब त्रैलोक्यमाली अपने राज्य में आये पाताल का राज्य पुनः प्राप्त कर अपने भृत्यों बान्धवों के साथ आनन्दपूर्वक उत्सव मना कर सुख से रहने लगे। उधर राजा मेरुध्वज भी पाताल के प्राप्त रत्नों से पृथ्वी को भरने लगे जैसे वर्षाकाल के मेघ जलधाराओं से धरती को सींचते हैं।

अब एक दिन की बात है कि पातालाधीश्वर त्रैलोक्यमाली एक दिन अपने अन्तःपुर में विराजमान थे कि उनकी धर्मपत्नी स्वयंप्रभा ने पुत्रियों के विवाह की चर्चा चलायी। इस अवसर पर महाराज मेरुध्वज का दिया हुआ उपहार उनको स्मरण आया सो उन्होंने अपनी पत्नी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और निश्चय किया कि अपनी कन्याओं का दान उन्हीं के पुत्रों को देना। इस प्रकार ठान कर उन्होंने महाराज मेरुध्वज को बन्धुबान्धवों सहित नियमित कर अपने यहां बुलाने के निमित्त स्वयं प्रस्थान किया। पाताल से चल कर पातालाधीश्वर त्रैलोक्यमाली महाराज मेरुध्वज के समक्ष उपस्थित हुए। महाराज मेरुध्वज ने उनका उचित आतिथ्य किया सो आतिथ्य स्वीकार करने के उपरान्त त्रैलोक्यमाली महाराज मेरुध्वज से इस प्रकार कहने लगे—"महाराज उस समय आप लोग शान्ति से मन भर पाताल न देख पाये होंगे, अब आप हमारे साथ चलिये, हम लोग आपकी सेवा करेंगे और आप भली भांति देख सकेंगे, और एक काम यह भी करिये कि मेरी जो दो कन्यायें हैं उन्हें आप अपने दोनों पुत्रों के लिये ग्रहण करें।

त्रैलोक्यमाली का ऐसा निमन्त्रण पाकर महाराज मेरुध्वज ने अपनी भार्या तथा दोनों पुत्रों को वहीं बुला भेजा और उनसे असुरेन्द्र का निमन्त्रण तथा कन्या दान का वचन कह दिया। सो सुन महाराज के ज्येष्ठ पुत्र मुक्ताफलध्वज अपने पिता से कहने लगे—"पिता जी! मैं तो पहिले ही कह चुका हूं कि जब लौं भगवान् शङ्कर की आराधना न कर लूंगा कदापि विवाह न करूंगा सो यह मेरा

अपराध क्षमा हो, मैं जब चला जाऊंगा तब मेरा भाई मलयध्वज गृहस्थाश्रम का अवलम्बन करे क्योंकि पाताल कन्या विना इसको धैर्य नहीं है।" राजकुमार का जेठरे भाई का ऐसा कथन सुन लहुरा भाई बोला—"आपके रहते मैं ऐसा अयशस्य और अधर्म्म (१) कर्म कभी नहीं करने का।" इस समय महाराज मेरुध्वज ने बहुत कुछ मुक्ताफलध्वज को समझाया परन्तु उन्होंने कुछ न माना। तब इससे महाराज मेरुध्वज को बड़ा ही खेद हुआ। इसके पश्चात् त्रैलोक्यमाली महाराज मेरुध्वज से आज्ञा लेकर जैसे आये थे वैसे ही पाताल को चले गये।

पाताल में पहुंच महाराज त्रैलोक्यमाली अपनी भार्य्या तथा पुत्र से सब वृत्तान्त कहगये और बोले कि देखो तो यह विधाता हमारा कैसा अपमान करा रहे हैं। अरे मनुष्यों से हम प्रार्थना करें कि कन्या हमारी ग्रहण करो और वे अस्वीकार करें! यह तो वही कहावत हुई "नरकों में ठेलो ठेला" कैसे आश्चर्य की बात है कि पहिले वे बड़ी चिरौरी करते थे तब मैंने कन्याओं का देना स्वीकार न किया और अब यह बात हैं। सो सुन वे बोले—"कौन जाने विधि के मन में क्या है परन्तु हमारा भरोसा है कि भगवान् शङ्कर का वचन अन्यथा नहीं हो सकता।"

पातालाधीश्वर त्रैलोक्यमाली अपनी भार्य्या से इस प्रकार बात चीत कर रहे थे और उनकी कन्याओं ने यह वृत्तान्त जान लिया, तब उन्हें बड़ा शोक हुआ; तत्क्षण उन दोनों त्रैलोक्यप्रभा और त्रिभुवनप्रभा नाम्नी कन्याओं ने यह प्रतिज्ञा कियी कि हम अब बारह दिन भगवान् भूतनाथ के नाम पर उपवास करेंगी और तब भी भगवान् विवाह सम्पतिरूपी प्रसाद हमें न देवेंगे तो हम दोनों एक साथ अग्नि में प्रवेश कर बैठेंगी और धिक्कारमय शरीर न रक्खूंगी। इस प्रकार नियम ठान वे दोनों दैत्यकन्याएं भगवान् शङ्कर के समक्ष निराहार व्रत कर उनके जप और ध्यान में तत्पर हुईं।

कन्याओं का यह व्यापार उनके माता पिता को ज्ञात हुआ, सो वे भी वहीं कन्याओं के प्रेम से जाकर उसी प्रकार अन्न जल त्याग जप और ध्यान में तत्पर हुए! तब स्वयंप्रभा देवी ने इन्दुमती को पुनः मेरुध्वज महाराज की महादेवी के पास इस वृत्तान्त के कहने के लिये भेजा। इन्दुमती राजभवन में पहुंच कर अपने

(१) अपयश और अधर्म्म करनेवाला।

स्वामी के घर का सङ्कट महारानी से कह गयी, राजा मेरुध्वज को भी यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ। बस यह सुनते ही दम्पती ने आहार त्याग दिया। पिता माता आहार नहीं करते तो पितृभक्त पुत्र क्योंकर अन्न ग्रहण करें बस उन दोनों पुत्रों ने भी आहार त्याग दिया। इस प्रकार दोनों लोक में दोनों राजगृहों में सङ्कट व्याप गया।

ऊपर कह ही दिया गया है कि पिता माता के उपवास के कारण दोनों राजकुमार भी उपवास करने लगे सो अब राजकुमार मुक्ताफलध्वज का यह वृत्तान्त है कि वह अनाहार रह कर भूतनाथ की शरण में जाकर उनका ध्यान करने लगे। इस प्रकार जब छः रात्रियां व्यतीत हो गयीं तब प्रातःकाल जब वह जागे तो अपने मित्र महाबुद्धि संयतक से इस प्रकार कहने लगे—"हे मित्र! आज स्वप्न में क्या देखा है कि मैं अपने वाहन पर आरूढ़ हूं, यह वही वाहन है जो कि तपोधन मुनि का दिया हुआ है और कामरूप और मनोगति (१) है। मेरा मन तो खिन्न था ही, सो मैं अपने उस वाहन पर आरूढ़ हुआ और यहां से थोड़ी दूर ही पर मेरुपर्वत्त के समीप महादेवजी का एक मन्दिर है वहां गया, यह मन्दिर क्या ही दिव्य है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। वहां मैं क्या देखता हूं कि एक दिव्य कन्या तप कर रही है और तपस्या से वह नितान्त क्षीण हो गयी है। वहां एक जटाधारी पुरुष था सो वह इस दिव्य कन्या की ओर सङ्केत कर, हंस के मुझसे बोला—"एक कन्या से भाग कर यहां आये अब देखो यह दूसरी तुम्हारे लिये बैठी है।" उस पुरुष के ऐसा वचन सुन मैंने उस कन्या की ओर जो दृष्टि कियी तो आहा! क्या ही! सुनाई, सखे! मैं उसकी ओर जितना देखता तितनी उत्कण्ठा और बढ़ती तृप्ति होती ही नहीं, बस इतने में प्रातःकाल हो गया और नींद टूट गयी। सो हे मित्र! अब तो मैं उसी की प्राप्ति के निमित्त वहीं जाता हूं यदि उसे न पाऊंगा तो हुतासन में प्रवेश कर जाऊंगा। देखो सखे! वह दैत्यकन्या कैसी नम्र है और मुझमें कैसी अनुराग की है, तथापि उसकी ओर मेरा मन न गया, उसका त्याग कर स्वप्न की देखी इस कन्या पर आसक्त हो गया देखो यह विधि की करनी है, मित्र किया क्या जाय। मेरे मन में यह बात आती है कि

(१) जैसे चाहे वैसा रूप धरे और जैसा चाहे वैसा बल।

जो मैं वहां जाऊं तो मेरा कल्याण अवश्य होगा ।" अपने मित्र से इस प्रकार कहके राजकुमार मुक्ताफलध्वज ने अपने मुनिदत्त वाहन को स्मरण किया ।

स्मरण करते ही वह आ पहुंचा, और कामरूप तो था ही सो राजकुमार की इच्छा से इस समय वह विमान बना और राजकुमार मुक्ताफलध्वज अपने वयस्य के साथ उस विमान पर आरूढ़ हुए । अब वह विमान उनके अभीष्ट स्थान की ओर चला । चला चला वह विमान गौरीपति के उसी धाम में पहुंचा जहां मुक्ताफलध्वज को पहुंचना था । स्वप्न में जिस धाम का दर्शन हुआ था उसे देखते ही मुक्ताफलध्वज बड़ा ही हर्षित हुए । तब वह अपने मित्रसहित, जो ही केवल उसका परिचारक था, सिद्धेश्वर नामक तीर्थ में स्नान करने चले ।

अब उधर राजकुमार मुक्ताफलध्वज के घर का यह वृत्तान्त था कि जब महाराज मेरुध्वज को ज्ञात हुआ कि पुत्र न जाने कहां चला गया तो वह बड़े ही विकल हुए और साथ में उनकी महिषी और कनिष्ठ पुत्र मलयध्वज की भी वही दशा हो गयी । एक तो उपवास दूसरे यह दुःख इससे उसका मन और भी क्षुभित हो गया । इतने में यह वृत्तान्त पाताल में भी पहुंचा और वहां भी उसी प्रकार का हाहाकार मच गया । पातालाधीश्वर त्रैलोक्यमाली भी अपनी पत्नी तथा कन्याओं सहित उपवास में लीन तो थे ही सो वह दोनो कन्याओं को लेकर पत्नी के साथ महाराज मेरुध्वज के समीप चले गये । आज चतुर्दशी है कहीं वह शिव भगवान् की पूजा करने गया होगा, सो दिन भर देख लेवें प्रातःकाल यदि न आवेगा तो हम लोग भी वहीं पहुंचेंगे फिर जैसा होगा तैसा देखा जायगा ।" इस प्रकार का निश्चय उन सभों ने ठान लिया ।

इतने में उस मेघवन में, जहां कि गौरी देवी का मन्दिर था यहां क्या हुआ कि गौरी के आश्रम में स्थित पद्मावती ने अपनी सखियों से कहा—"सखियो ! आज स्वप्न में मैंने क्या देखा है कि मैं सिद्धेश्वर के मन्दिर में गयी, उसी समय मन्दिर से एक जटाधारी पुरुष निकला और मुझसे कहने लगा —"पुत्रि ! अब तेरे दुःख का अवसान हुआ, तेरा पति समीप ही आ गया है, अब शीघ्र ही उससे तेरा सम्मिलन होगा," इतना कह वह जटाधारी पुरुष अन्तर्धान हो गया और

साथ हो रात और निद्रा व्यतीत हो गयी । सो आओ सखियों, हम लोग वहीं चलें," इतना कह पद्मावती मेरुपर्वत के समीपस्थ महादेव के मन्दिर को चली गयी।

पद्मावती जिस समय वहां पहुंची उस समय राजकुमार मुक्ताफलध्वज सिद्धोदक में स्नान कर रहे थे, जिन्हें देख बड़े विस्मित में आकर पद्मावती अपनी सखियों से कहने लगी ऐ सहेलियो। देखो न कैसा आश्चर्य है ? यह पुरुष जो सिद्धोदक में स्नान कर रहा है ठीक मेरे प्यारे के समान हैं, क्या वही तो प्राणेश्वर नहीं है, यह मानुष तो नहीं हो सकता।" पद्मावती की यह बात सुन राजकुमार को देखकर सखियां गन्धर्वराज दुहिता से कहने लगी कि "ऐ सखि तू समानता की बात क्या कहती हैं यह समान तो नहीं है परन्तु तेरे वही प्रियतम हैं। देख न तेरे कान्त का संगी जो वह संयतक था वैसा ही इनका भी साथी यह जन हैं। सखि तूने जो आज स्वप्न की बात कही न थी सो ठीक उतरी, हमको तो ऐसा भासता है कि वेही हैं जो शाप से मनुष्य योनि में जा अवतरे हैं। भगवान् शङ्कर अपनी युक्ति से उन्हें यहां ले आये हैं नहीं तो इस देवभूमि में मानुषों का आगमन कब सम्भव है। सखियों का ऐसा कथन सुन पद्मावती भगवान् भूतनाथ की पूजा कर उन मानुषों के वृत्तान्त जानने की अत्यन्त उत्कण्ठा से देव के समीप ही कहीं छिप रही।

इतने में मुक्ताफलध्वज स्नान कर देवाधि देव की पूजा करने वहां मन्दिर में आये तो चारों ओर देखकर अपने वयस्य महाबुद्धि से कहने लगे "अहः! यही वह देवमन्दिर है जो मुझे स्वप्न में दिखाया था और भीतर जिस रत्नमय गौरीश की मूर्ति का दर्शन किया था यही है। वही उपवन है, वही स्थान वह पक्षी और वेही रत्न समान चमकते सब वृक्ष हैं जो स्वप्न में दीखे थे। सब तो वेही दीख पड़ते हैं किन्तु उस समय जो दिव्य कन्या दिखाई पड़ी थी हे मित्र बस वही नहीं दिखाती है और यदि वह न मिली तो निश्चय करता हूं कि मैं अपना जीवन त्याग देऊंगा।"

राजकुमार का इतना कहना सुन पद्मावती की सखियों ने उनसे धीरे से कहा:—सुनो सखि! निश्चय है कि स्वप्न में तुम्हें देखकर यह यहां आये हैं और अब तुम्हारे दर्शन विना प्राण त्याग ने पर उद्यत हैं सो अब छिपी २ देखें कि आगे क्या करते है।" सो वे सब छिपी ही रह गयीं।

इसी अवसर में श्रीमुक्ताफलध्वज देवाधिदेव भगवान् के मन्दिर में पैठे और पूजा कर बाहिर गये । मन्दिर से निकल कर ज्योंही भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा करने लगे कि उसी समय इनके सखा को अपनी जाति का स्मरण हो आया । अब उनके हर्ष का ठिकाना नहीं बड़े आह्लाद के साथ एक दूसरे से अपना वृत्तान्त कहने लगे। इतने में पद्मावती उनके दृष्टिपथ में आ गयी । मुक्ताफलध्वज को पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण तो हो ही गया था और अब पद्मावती जो दृष्टिगोचर हुई सो वह बड़े हर्ष से अपने वयस्य से कहने लगे "सखे ! यही देवी पद्मावती हैं जिन्हें मैंने स्वप्न में देखा था । बड़े भाग्य से यह दीख पड़ी हैं सो इन्हें मैं अब समझाता हूं ।" इतना कहके आंखों में आंसू भर उसके पास गये और कहने लगे "देवि कहां जा रही हो? मैं तुम्हारा वही प्रिय मुक्ताफलकेतु हूं । दृढ़व्रत के शाप से मैं मनुष्य हो गया था, आज मुझे मेरी जाति का स्मरण हो आया है'। इतना कह वह पद्मावती को आलिङ्गन किया ही चाहते थे कि वह संभ्रम में आकर चट अन्तर्धान हो गयीं किन्तु उनके नेत्रों में आंसू भर आये थे । अब राजकुमार उन्हें न देख मोह में आकर मूर्छित हो धरती पर धड़ाम से गिर पड़े । इसपर उनका वयस्य आकाश की ओर शिर उठा कर दुःखमय वचनों से कहने लगा "हे देवि पद्मावति ! जिनके लिये तुमने तप का ऐसा दुःसह कष्ट उठाया वही तुम्हारे समक्ष उपस्थित हैं तो इनसे क्यों नहीं बात कर रही हो ? मैं तुम्हारे प्रियतम का सखा वही संयतक हूं। तुम्हारे ही कारण मेरे प्रिय मित्र को शाप हुआ तो उनसे तुम क्यों नहीं बातचीत करती हो ?" इस प्रकार आकाशमें कहकर वह राजपुत्र को आश्वासन देकर समझाने लगा—' मित्र ! देखो वह दैत्यराजसुता तुममें कैसी अनुरागवती थी और तुमने उसका त्याग कर दिया बस उसी पाप का यह फल तुम्हारे ऊपर आ पड़ा है ।"

यह सब पद्मावती छिप कर सुन रही थी सो वह अपनी सखियों से कहने लगीं "सुनो सुनो सखियो ! यह असुरकन्याओं में अनुरक्त नहीं हुए थे ।" तब सखियों ने भी उनसे कहा कि सब सत्य ही दीख पड़ता है, क्या तुमको स्मरण नहीं है कि शाप के समय में तुम्हारे प्रियतम ने क्या कहा था । तपोधन मुनि से उन्होंने यह वरदान माग लिया था कि मनुष्ययोनि में मैं जब जन्म ग्रहण करूं तो वहां ऐसा हो कि पद्मावती के विना किसी में मेरा मन न लगे । बस उसी वर का

प्रभाव यह है कि दूसरी स्त्रियों में इनका मन नहीं लगा है। इतना सुन के राज कुमारी संशय से विकल हो गयीं।

जब मुक्ताफलध्वज का मोह दूर हुआ तो वह रोकर कहने लगी—"हा प्रिये पद्मावति! तुम यह नहीं देख रही हो? देखो मेरेवन में विद्याधर शरीर में तुम्हारेही निमित्त मुझे शाप मिला और अब यहां तुम्हारे ही निमित्त मेरे प्राण जावेंगे।" इस प्रकार उनका आक्रन्दन सुन विद्याधरकुमारी पद्मावती अपनी सखियों से कहने लगी, "ऐ सखियो! यद्यपि ये सब चिन्ह सत्य २ दीख पड़ते हैं तथापि कदाचित् इन दोनों ने किसी से सुनकर ऐसे लक्षण व्यक्त किये हों। परम्परागत यह बात हुई है, कुछ छिपी तो रही नहीं बस इसी सन्देह के कारण मेरा मन कुछ निश्चय नहीं कर सकता है। और यह बड़े आर्त्त हैं इनका विलाप मुझसे सुना नहीं जा रहा है सो मैं तो अब यहां न ठहरूंगी, गौरी के मन्दिर में जाती हूं और फिर देखो पूजा का समय भी हो आया है।" इतना कह पद्मावती अपनी सखियों के साथ अम्बिका के मन्दिर में चली गयीं।

तहां विद्याधरेन्द्रकुमारी पद्मावती जगदम्बा की पूजा कर उनसे इस प्रकार विनति करने लगीं—"अम्ब! सिद्धीश्वर ने जो उन्हें मेरा पति ठहरा दिया है तो ऐसा करो कि उनसे मेरा शीघ्र मिलन हो जाय।" इस प्रकार कहती हुई यह महामाया के समक्ष बैठी रही।

उधर सिद्धीश्वर क्षेत्र में स्थित मुक्ताफलध्वज ने अपने उस पूर्व मित्र संयतक महाबुद्धि से कहा—"सखे! ऐसा प्रतीत होता है कि वह मेरी प्रिया अपने स्थान अर्थात् गौरी के मन्दिर को गयी सो आओ हम भी वहीं चलें।" इतना कह वह उसी कामगति विमान पर चढ़ के वहीं अम्बिका के आश्रम में गये।

दूर ही से आकाश में आता हुआ वह विमान दीख पड़ा और आकर वहां ठहरा तथा उसपर से मुक्ताफलध्वज उतरे सो उन्हें देख पद्मावती की सखियों ने उनसे कहा कि देवि! देखो न यह कैसा आश्चर्य है, यह तो दिव्य विमान के द्वारा यहां भी आ पहुंचे। भला मनुष्य होकर इनका ऐसा दिव्य प्रभाव कैसा? सच मुच यह बड़ा ही आश्चर्य है। उनका ऐसा वचन सुन पद्मावती बोली, "हे सखियों! क्या तुमको स्मरण नहीं है कि उस शाप देनेवाले दृढ़व्रत को भी मैंने शाप क्या

दिया था कि जो तुमने इन मेरे प्राणेश्वर को शाप देकर मनुष्य होने का कष्ट भुगाया है इससे तुम भी जाकर मानवलोक में इनकी कामरूप तथा इच्छानुगत वाहन होओगी। सो बस वही मुनि-शाप्य वाहन हुए और उन्होंने उन्हीं के विमान का रूप धारण किया और उसपर चढ़ कर यह जहां इच्छा होती है चले जाया करते हैं और भ्रमण करते हैं।" ऐसी उनकी उक्ति सुन सखियाँ कहने लगीं कि देव! यदि तुम पहिचानती हो और बात ऐसी ही है तो तुम प्रतीक्षा किस बात की कर रही हो क्यों नहीं उनको सान्त्वना देती?" पद्मावती सखियों का ऐसा वचन सुन फिर बोलीं —'ऐ सखियो! सम्भावना तो ऐसी ही होती है किन्तु मुझे निश्चय भी नहीं होता है। यद्यपि सत्य वही होवें तथापि दूसरे शरीर में स्थित हैं अपने शरीर में तो हैं नहीं फिर मैं क्योंकर उनसे सम्पर्क कर सकती हूं। सो इस समय यही उचित जान पड़ता है कि हम सब छिपी रहें और देखें कि यह क्या २ करते हैं।" इस प्रकार कहके वह राजपुत्री अपनी सखियों के साथ छिपी रह गयीं।

इतने में मुक्ताफलध्वज अपने विमान से अम्बिका के आश्रम में उतर कर बड़े उत्कण्ठित होकर अपने मित्र से कहने लगे "सखे! यहीं पर राक्षसियों ने इसे बहुत त्रस्त कर डाला था सो मैंने उनसे बचा कर बहुत कुछ सान्त्वनामय वचनों से उसे शान्त किया था। फिर इसी उद्यान में वह स्वयंवर के निमित्त आयी थी सो मैंने उसे देखा था। यहीं पर जब मुझे शाप मिला तब प्रिया मेरा अनुसरण किया चाहती थी सो मुनीन्द्र ने समझा कर उसको शान्त किया। मित्र! आज वही मेरी प्रेयसी मेरे साम्हने से भाग जाती है।"

राजकुमार का ऐसा विलापमय वचन सुन पद्मावती अपनी सखियों को बोली "हे सखियो! सत्य सत्य कहती हूं कि यह वही मेरे प्राणधन हैं किन्तु पूर्व देह में नहीं हैं इससे भला मैं उनके पास क्योंकर जा सकती हूं अब वही सिद्धेश्वर मेरी गति हैं। उन्हीं ने मुझे स्वप्न दिखाया अब वही सत्य करेंगे, उन्हीं के हाथ में उपाय है जो चाहें करें।" ऐसा निश्चय कर वह फिर सिद्धेश्वर के मन्दिर में गयी और पूजा के अनन्तर हाथ जोड़ मस्तक नवाय भगवान् से विनति करने लगीं? "हे देव! या तो यह कीजिये कि मेरे प्रियतम अपने पूर्व शरीर में स्थित हो जांय

और उनसे मेरा मिलन होवे और नहीं तो मुझे मृत्यु दी जाये । इन दोनों के अतिरिक्त तीसरी गति मेरी नहीं है ।" इस प्रकार अनादिनिधन देवाधिदेव महादेव से विनति कर वह पद्मावती अपनी सखियों के साथ वहीं मन्दिर के आंगन में बैठ रहीं ।

उधर मुक्ताफलध्वज गौरी के आश्रम में पद्मावती को ढूंढ़ते रहे पर वह मिले कहां, सो उनके न मिलने से वह अत्यन्त उद्विग्न हुए और अपने वयस्य से कहने लगे—"मित्र ! वह प्रेयसी तो यहां न मिली सो चलो फिर वहीं शम्भु भगवान् के धाम में चलें, और यदि वह वहां भी न मिली तो अब की बार अग्नि में जल मरूंगा ।" उनका ऐसा ग्लानिमय वचन सुन कर वह मित्र बोला—"देव ! यह आप क्या कह रहे हैं, आपका कल्याण होनेवाला है मुनि का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता है फिर भगवान् शम्भु ने स्वप्न में आदेश दिया हो है वह कभी अलीक हो सकता है ?" इस प्रकार कहके वह महाबुद्धि उन्हें समझाने लगा । तब मुक्ताफलध्वज अपने मित्र के साथ विमान पर आरूढ़ होकर सिद्धीश्वर क्षेत्र में गये । पद्मावती ने देख लिया कि प्रियतम आये हैं तथापि वह छिपी रहीं और अपनी सखियों से बोलीं कि देखो सखियो ! वह यहां भी आ गये । मुक्ताफलध्वज मन्दिर के भीतर गये तो क्या देखते हैं कि देव की पूजा टटकी हुई है, सो वह अपने सखा से कहने लगे 'देखो मित्र ! अभी किसी ने भगवान् की पूजा किये है, मुझे तो यह निश्चय होता है वही मेरी प्रिया यहीं कहीं है उसी ने इनकी पूजा किये है ।" इतना कह वह पद्मावती को इधर उधर ढूंढ़ने लगे पर जब वह कहीं न मिलीं तब विरह से विकल हो "हा प्रिये पद्मावती ! तू कहां है ।" इस प्रकार बार २ कहके विलाप करने लगे । कोयल बोलती तो समझते कि प्रिया बोल रही है, कहीं मयूरों के पखों पर दृष्टि पड़ जाती तो समझते कि ये मेरे प्रिया के केशपाश हैं, जब कमलों पर दृष्टि जाती तो पद्मावती के मुख की भ्रान्ति हो जाती थी। कामदेव के वश में पड़ कर उन्मत्तवत् इधर उधर दौड़ने लगे ।

राजकुमार की यह दशा देख उनका मित्र महाबुद्धि बड़ी ही कठिनता में पड़ गया किसी प्रकार धैर्य धर बड़ी नम्रता से राजकुमार को आश्वासन देकर समझाने लगा "देव ! भला यह तो विचारो कि उपवास करते २ आप क्लान्त

हो गये हैं, आप अब यह क्या कर रहे हैं। आपने भूलोक और पाताल को जीत कर अपने वश में कर लिया फिर इस अपने शरीर की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? जब आप अपनी पिता के पास न पहुंचेंगे तो उस समय उनकी क्या दशा होगी ? आपके पिता महाराज मेरुध्वज, ससुर दानवेश्वर त्रैलोक्यमाली. आपकी इच्छा रखनेवाली वह उनकी बेटी त्रैलोक्यप्रभा, आपकी माता देवी विनयवती, तथा आपके अनुज कुमार मलयध्वज अवश्य यही समझेंगे कि आपपर कुछ अनिष्ट घटना पड़ी है, उपवास करते २ वे खिन्न तो होही गये हैं यह आप जानते ही हैं, अब उस समय वे भी प्राण त्याग कर डालेंगे। सो अब चलिये उनकी रक्षा करें, देखिये दिन बीता ही चाहता हैं।"

मित्र का एतादृश कथन सुन मुक्ताफलध्वज ने कहा कि वयस्य ! तब तुम्हीं मेरे विमान पर चढ़ कर जाओ और उन लोगों को आश्वासन देओ। उनका ऐसा वचन सुन वह मित्र बोला कि वह मुनिशिष्य शाप के कारण आपका वाहन हुआ है न कि मेरा, वह मुझको क्योंकर वहन करेगा ? ऐसा जब उसने कहा तब राज पुत्र बोले—"तो मित्र ! टुक ठहरो देखें यहां क्या होता हैं।"

इस प्रकार उन दोनों का आलाप सुनकर पद्मावती ने अपनी सखियों से कहा "ऐ सखियो इन बातों और चिन्हों से तो प्रतीत होता है कि यह मेरे वही पूर्व-प्रियमत हैं। हाय, इस समय यह मानुष देह में हैं और शाप के वश उनकी यह दशा है, जिससे यह इतना विलप रहे हैं। सिद्धकन्या पर मैं जो हंसी थी सो उसी के शाप का यह परिणाम—मेरा ही दोष है और मैं भुगत रही हूं।

इस भांति पद्मावती अपनी सखियों से विलापमय वचन कह ही रही थी कि आकाश में वियोगिवनदावाग्नि (१) लाल २ चन्द्रमा उदित हुए धीरे २ उनकी ज्योत्स्ना से आकाश तथा समस्त धरातल प्रकाशमय हो गये। चन्द्रमा उदित हुए मानों मुक्ताफलध्वज के जलाने के लिये कामदेवरूपी अनल की ज्वाला हो। रात्रौ के आगमन से जो दशा चकेवे की हो जाती है वही उन राजकुमार की हो गयी।

उनकी यह दशा देख अब पद्मावती और न सम्भाल सकी तब अत्यन्त विग्न हो छिपी २ ही उनसे इस प्रकार कहने लगी—"हे राजपुत्र ! यद्यपि तुम मेरे वही

(१) वियोगीरूपी वन के लिये दावाग्नि।

पूर्ववल्लभ हो तथापि दूसरे शरीर में रहने के कारण मेरे लिये पराये पुरुष हो और मैं तुम्हारे लिये परायी स्त्री हूं; सो तुम क्यों बार २ इस प्रकार विलाप करती हो? यदि मुनि का वचन सत्य है तो अवश्य उपाय होवेगा।" पद्मावती की उक्ति तो सुन पड़ी पर वह दृष्टिपथ में आयीं नहीं, इस कारण हर्ष और शोक के कारण राजकुमार मुक्ताफलध्वज की दशा बड़ी ही विषम हो गयी और वह बोले—"देवि! मुझे जब पूर्वजन्म का स्मरण हुआ तो उसी के प्रभाव से मैंने तुमको तुम्हारे ही शरीर में देखकर पहिचान लिया परन्तु तुम तो मुझे विद्याधर शरीर में वर्त्तमान देखकर अब क्योंकर जानती हो कि मैं मर्त्य देह में हूं। यह मेरा शरीर हतभागा है इसे रख कर मैं क्या करूंगा, अब मैं अवश्य इसका त्याग कर डालूंगा।" इतना कह राजकुमार मुक्ताफलध्वज चुप हो रहे और उनकी वह प्रिया छिपी ही रह गयी।

तदनन्तर जब रात बहुत व्यतीत हो गयी, और अमवश वह पूर्वका संयतक महाबुद्धि मित्र सो गया तब मुक्ताफलध्वज उठे, उनको निश्चय तो होही गया था कि प्रिया इस देह से कदापि नहीं मिलने की, सो उन्होंने लकड़ियां चुन कर चिता लगायी, "हे भगवन्! आपके प्रसाद से मैं अपनी पूर्व देह में पहुंचूं और शीघ्र ही प्रिया पद्मावती को प्राप्त कर सन्ताप दूर करूं," इस प्रकार कह भगवान् शङ्कर को प्रणाम कर राजकुमार मुक्ताफलध्वज ने उस प्रज्वलित अग्नि में अपना शरीर हवन कर दिया। इतने में महाबुद्धि की जो नींद टूटी तो वह मुक्ताफलध्वज को न देख इधर उधर उनको ढूंढ़ने लगा; वह तो मिले नहीं पर एक स्थान में प्रज्वलित अग्नि दिखायी पड़ी; बस वह समझ गया कि मेरे विरहाकुल मित्र ने इसी अग्नि में अपना शरीर हवन कर दिया। इस महाशोक से वह भी उसी अग्नि में कूद पड़ा।

यह घटना देखकर पद्मावती को बड़ा दुःख हुआ, सो वह अपनी सखियों से कहने लगीं—"हे सखियो! धिक्कार है मुझको! अरे स्त्रियों का हृदय ऐसा कठोर होता है कि जिसके समक्ष वज्र भी हार माने! हा धिक! अरे ऐसी करुणाव्यञ्जक आत्महत्या देखकर भी ये मेरे पापी प्राण न निकले तो कब लों यह धिकृत आत्मा मैं धारण करूंगी। मेरे पापों की सीमा नहीं है इसी कारण अब लों मेरे दुःख का अन्त भी नहीं हुआ है, फिर उन महात्मा मुनि का वचन भी देखो

अन्यथा हो गया तो ऐसी अवस्था में मेरा मरण ही मेरे लिये कल्याण है । मैं भी इसी चितानल में जल मरती पर इसमें पराये पुरुषों का संग होगा और परपुरुष के संग जलना उचित नहीं है इससे इसमें न जलूंगी बस मेरे लिये फांसी ही अच्छी है।" सखियों से इतना कह राजकुमारी पद्मावती वहां से उठीं और शम्भु भगवान् के समक्ष जाकर अशोक वृक्ष की डाली में लता की फांसी बनाने लगीं । राजकुमारी को सखियां नाना प्रकार की आशा की बातें सुनती और समझातीं और रोकतीं वह एक की भी न सुनती केवल अपने सिद्धान्त पर अटल बनी रहीं ।

इसी अवसर में वही तपोधन मुनि वहां आन उपस्थित हुए और कहने लगे "हे पुत्री ! साहस मत कर मेरा वचन कदापि असत्य नहीं हो सकता, धीरज धर, अभी ही तेरा प्रियतम यहां आवेगा । देख यह तेरे ही तप का प्रभाव है कि उसके शाप का क्षय शीघ्र ही हो गया; तू तपस्या में अनास्था (१) क्यों करने लगी ? यह क्या बात है ? सुन मेरी बात, तेरा विवाह तो अब समीप आ गया है तब तू इतना विषाद क्योंकर रही है ? ज्ञानदृष्टि से मैं सब समझ गया इसी से इस समय यहां आया हूं ।" इस प्रकार आकर कहते हुए मुनि को देख पद्मावती प्रणाम कर दोलारूढ़ा (२) सी हो रही ।

॥ सोरठा ॥

मर्त्य शरीर अपेत (३), लहि निज विद्याधर वपु ।
आये वयस (४) समेत, श्रीमुक्ताफलकेतु तहँ ॥

॥ वसन्ततिलकम् ॥

पावै प्रमोद जिमि चातकि नूतनाभ (५)

---

(१) अविश्वास ।

(२) झूले पर बैठी सी। भाव यह कि जैसे झूला एक बार इधर जाता एक बार उधर वैसे ही उनकी चित्तवृत्ति असमञ्जस में पड़ गयी ।

(३) त्याग कर ।　　(४) वयस्य = मित्र ।

(५) नूतन (नवीन) है आभा (कान्ति) जिसकी; चन्द्रमा का विशेषण है ।

राकाशशाङ्क कहँ (१) पेखि कुमुद्वती (२) सी।
विद्याधरेन्द्रसुत खागत (३) देखती ही
पद्मावती हृदय मोद अपूर्व बाढ़ा ॥

॥ चौपाई ॥

मुक्ताफलकेतु तेहि देखी । नयनन पान करत सुविशेखी ॥
चिर मरुभूमि भ्रमण से श्रान्ता। पथिक विलोकि सरस्वत कान्ता(४)॥
शापरूप रजनी अवसाना (५)। चकवा चकवी सँगम समाना ॥
दोउन हृदय आनन्द उछाहू । तपन तेज मुनि नमन प्रभाऊ (६)॥
तुम दोऊ को शाप बिताई । अब दुहुआं पुनि मिलिगे आई ॥
मेरो मन सन्तोषित भयऊ । कहि अस मुनि अभिनन्द दयऊ ॥

॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

रात्री के बितते महेन्द्र गज पै आरूढ़ ह्वै आयऊ
खोजत दार कनिष्ट पुत्र संग में मेरुध्वजो भूपती ॥
पातालाधिपती विमान चढ़िके त्रैलोक्यमाली तहां
आयो संग जु लेइ रानि अनुचर प्यारी त्रिलोकप्रभा (७) ॥

॥ दोहा ॥

तब मुक्ताफलकेतु कहँ, तिन दोऊ दिखराय ।
बरण्यो तिसु वृत्तान्त सब, जो कछु पहुंच्यो आय ॥
शाप कथा की बात अरु, मुनिवर बरणन कीन ।
मानुष तन जेहि हेतु भो, किमि सोऊ तजि दीन ॥

---

(१) राका (पूर्णिमा) के शशाङ्क (चन्द्रमा)। (२) कोई।
(३) रव (आकाश) से आगत (आये)।
(४) सरस्वत् (समुद्र) की कान्ता (स्त्री) = नदी।
(५) अन्त। (६) तपोधन मुनि के प्रणाम का फल। (७) त्रैलोक्यप्रभा।

॥ उपजाति ॥

जान्यौ तबै अग्नि प्रवेश ठान्यौ

मेरुध्वजादी, मुनि सीख दीन्ही ॥

सिद्धोदकस्नान हरार्चनादी

करिके हुए सब तुरते विशोक ॥

॥ दोहा ॥

तब त्रैलोक्यप्रभाहु कौ जाति सुरत ह्वै जाय।

सिद्धाधिप की कन्यका, देवप्रभा हौं हाय ! ॥

विद्याधर अधिनाथ सो पति होवैं यहि आस।

करत तपस्या मम करेउ, पद्मावति उपहास ॥

सोइ मनोरथ सिद्धि लगि, अनल प्रविसि तजि काय।

अब यहि दानव वंश महँ जनम गहेउँ मैं आय ॥

जामे ह्वै अनुरक्त मैं, सहेउं विविध विधि पीर।

सोई राजकुमार यह, पायउ अपन शरीर ॥

नहीं योग्य या देहते, तिसु संगम यहि हेत।

ता प्रीतीहित अनल मैं, आसुरि (१) तनु हुति देत ॥

॥ वसन्ततिलकम् ॥

ऐसो विचारि जननी जनकै बताई।

मुक्ताफलध्वज हुताशन मां समाई ॥

ताको समर्पि करुणा करि पूर्व देही।

बोल्यो हुताशन तबै सइ आइ तेही ॥

॥ सोरठा ॥

हे मुक्ताफलकेतु, तोहिं लगि तनु यह त्यागेउ।

(१) असुरसम्बन्धिनी।

गयो याहि तेहि हेतु, पत्नी प्रभा तुम्हारि है॥
तुमि कहि गुप्त जु भेव, अन्तर्हित पावक भये।
इन्द्रादिक सब देव, लै आये तब विश्वसृज् (१)॥
विद्याधर के इन्द्र, चन्द्रकेतु संग लेइकै।
गन्धर्वन के इन्द्र, पद्मशेखरौ आयऊ॥
मनयो सबहिँ अनन्द, व्यग्रभार्य (२) गन्धर्वपति।
त्यागि सकल हियद्वन्द, सुतादान मन ठानेऊ॥
पद्मावति कर दान, मुक्ताफलकेतुहिं दयउ।
विधिवत विषय महान, दायज दीन्हीं अमित तेहि॥

॥ उपजाति ॥

सबै जु विद्याधर राजपुत्र
चिरोत्सुका वा दयिताहिं (३) पाई
साफल्य मान्यो निज जन्म को सो
विवाहि लीन्ही सोउ सिद्धकन्या॥
त्रैलोक्यमाली बहुरी सुता सो
सम्मानि दीन्हीं करि दान ताकृन॥
दैत्येन्द्रकन्या त्रिभुवनप्रभा को
लीन्ही मलयध्वज विधि सों विवाहि॥
ह्वै गे कृतारथ मलयध्वजो, तब
सद्वीप पृथ्वी भर राज ऊपर
बैठारि पुत्रै नृप मेरुध्वज सो,

(१) ब्रह्मा।
(२) व्यग्र है भार्य्या जिसकी, गन्धर्वपति मलयध्वज का विशेषण है।
(४) भार्य्या।

दारा सहित गे वन को सिधरी ॥
त्रैलोक्यमाली दितिजाधिराज
स्वराजधानी पतनीसहित गे ।
इन्द्रो जु मुक्ताफलकेतु को तब
दयो सो विद्युद्ध्वज राजलक्ष्मी ॥

॥ सोरठा ॥

श्रीमुक्ताफलकेतु, विद्याधर अरु असुर द्वै ।
भोगे विभव सहित, जाहु सुरन निज निज भवन ॥
सकल सुरन समुझाय, अस अकासवानी भई ।
चले विबुध हरषाय, अपने अपने धाम को ॥

॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

या वाणी सुनि कै सबै मुदित ह्वै ब्रह्मादि इन्द्रादि ते ।
पूछ्यो तासु जु शाप शिष्य लिहि लै गवने तपोधन मुनी ॥
श्रीमुक्ताफलपुत्र सो सुतवधू है लैके हर्ष सों ।
गवने धामसु चन्द्रकेतु अपने विद्याधरैश्वर्ययुक् ॥

॥ वसन्ततिलकम् ॥

सम्भोगि ह्वां बहुत काल सु चक्रवर्ती ।
लक्ष्मी, सुपुत्र संग ह्वै जुविरक्त गे अब ॥
विद्याधरेन्द्र पद पै अभिसिच्य (१) पुत्रै ।
देवीसहित मुनितपोवन में सिधारे ॥

॥ सोरठा ॥

श्रीमुक्ताफकेतु, असुर राज्य लहि इन्द्र सों ।
अब पायो पितु से, तु विद्याधर चक्रवर्ति पद ॥

---

(१) अभिषिक्त करके ।

पद्मावति के संग, तोषमूर्ति, दृश्यकल्प लौं।
भोगैसहित उमंग, होउ साम्राज्य सुखश्रियहिं ॥

॥ उपजाति ॥

निदान संसार के भाव नीरस।
विचारि अन्ते गवन्यो तपोवन ॥
ज्योति: परम पाइ तप: प्रभावात् (१)।
सायुज्य पायो शुभ धूर्जटीको (२)॥

॥ शार्दूलविक्रीड़ितम् ॥

या भाती युग (३) हंस सो अवनि के उत्तम सरस सो कथा।
पयो ज्ञानरु दिव्यहू गति तबै सो ब्रह्मदत्ती नृप ॥
ता भार्या सचिवौ होउ खचर (४) सो सिद्धीश पै जाइकै।
छोड़ी शापतनू शिवानुचरता सब ने लही आपनी ॥

॥ दोहा ॥

सुमि गोमुखवर्णित कथा, सुनि के मुनिगण धीर।
मदनमञ्चुका विरह सैं, चित कछु भयउ भीर (५)॥
श्रीनरवाहनदत्त की, वर्णित कथा विशेष ॥
गोपालक चरु ऋषय सुनि, आनन्द लह्यउ अशेष ॥

॥ सोरठा ॥

छायो अधिक उमङ्ग, कश्यप मुनि के आश्रमहिं।
हर्ष नु लह्यउ अभङ्ग, कथा विविध सुनि सकल जन ॥

---

(१) तपके प्रभाव से।
(२) महादेव। (३) दो। (४) पक्षी। (५) पाप।

॥ श्रीः ॥

कथासरित्सागर का हिन्दी अनुवाद।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित।

विषमशील नामक अठारहवां लम्बक।

सवैया।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालबिनै बल पाई।
शम्भुमुखार्णव ते निकली या कथा की सुधा वसुधा मँह छाई॥
प्रेम समेत पियै जो कोई बलवीर भनै बलि ईस-दुहाई।
पावहि सो जगदीस कृपाते अनन्द अमन्द बड़ी विबुधाई॥

पहिला तरङ्ग।

दोहा।

चन्द्राननार्द्ध देह जिसु, चद्रांशूसित भूति॥
चन्द्रार्कानल नेत्र जिसु, चन्द्रार्धभाल नूति (१)॥ १॥
कुञ्चित जाको अग्र अस, शुण्ड पसारत जौन॥
सिद्धि देत जो सोहते, रखैं गजानन तौन॥ २॥

अब वहां असित गिरि पर कश्यप मुनि के आश्रम में नरवाहनदत्त उन मुनियों से इस प्रकार कहने लगे—"हे मुनियो! आगे की बात यह कि मैं अपनी देवी

(१) चन्द्रमुखी गौरी जिसकी अर्द्धाङ्गिनी है अर्थात् आधी देह जिसकी गौरी है और चन्द्रकिरण हो के समान श्वेत भूति जिसके अङ्ग में लगी है, चन्द्र सूर्य्य और अग्नि जिसके तीन नेत्र हैं और अर्धचन्द्र जिसके मस्तक पर सुशोभित है ऐसे भगवान् शङ्कर को नमस्कार है।

मदनमञ्जुका के विरह में विकल तो था ही उस समय अनुरागवती वेगवती ने मुझे विद्या के हाथ में रक्षा के हेतु डाल दिया। मैं विरह की वेदना और न सह सका तब यह इच्छा हुई कि इस पतित शरीर से क्या काम! इसका त्याग कर देना ही भला है, फिर परदेश में आ पड़ा हूं सो मैं वन में इधर उधर घूमता घामता था कि महर्षि कण्व से भेंट हुई। मैं उन्हें देखते ही उनकी चरणों पर गिरा, मुनि त्रिकालदर्शी तो थे ही, मुझे देखते ही सब समझ गये सो वह मुझ दुःखित को अपने आश्रम में ले गये और मुझसे कहने लगे—"हे राजन्! तुम सोमवंश में न जन्मे हो वीर हो तो ऐसा व्यामोह तुम्हारा कैसा? तुम्हारी भार्य्या का संगम तो भगवान् ने ठहरा ही दिया है फिर उसमें तुम्हारी अनास्था कैसी? सुनो जिनकी कभी सम्भावना भी नहीं, मनुष्यों के ऐसे भी समागम हो जाते हैं। अच्छा सुनो मैं तुमको विक्रमादित्य की कथा सुनाता हूं।"

अवन्ति देश में अति प्रसिद्ध उज्जयिनी नाम्नी नगरी है। युग के प्रारम्भ में विश्वकर्म्मा ने उसी की सृष्टि कियी, वह नगरी पुरारि की वसति है। सती के समान दूसरे से अघृष्य (१) और पद्मिनी के समान श्री की आवासभूमि; सज्जनों की बुद्धि के समान सदा धर्म्म की ओर प्रवृत्त, और जैसे पृथ्वी सब प्रकार के कौतुकों से भरी है वैसे ही वह नगरी सब कौतुकों से परिपूर्ण थी। उस नगरी में जगद्विजयी महेन्द्रादित्य राजा राज्य करते थे। जिस प्रकार अमरावती में इन्द्र। राजा शत्रुओं के बल के संहारक थे। शौर्य उनका ऐसा कि नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र से वह युद्ध करनेवाले, रूप ऐसा कि साक्षात् मन्मथ, दान में उनका हाथ सदा खुला रहता और असि में सदा मुट्ठी बन्धी रहती थी (२)। उन राजा की भार्य्या सौम्यदर्शना नाम्नी थी, जैसी इन्द्र की शची, शंभु की गौरी और नारायण की लक्ष्मी। उनके महामन्त्री का नाम सुमति। और परम्परा से आया हुआ एक प्रतीहार जिसका

---

(१) दूसरे का हाथ जिसपर न चले; सती पर किसी का हाथ जैसे नहीं बढ़ता वैसे ही शत्रुओं का प्रभाव उस नगरी पर कुछ नहीं चलता था।

(२) यहां भाव यह है कि राजा सदा हाथ में खड्ग रखते थे जिनका तात्पर्य यह है कि अपनी प्रजा और दीनों की रक्षा के लिये सदा युद्ध करने को उद्यत रहते।

नाम वज्रायुध था इन अपने परिचरों के साथ वह राजा पृथ्वीपालन करते थे। राजा परमशैव, सदा भूतनाथ की सेवा में तत्पर रहते। नाना प्रकार के व्रत किया करते। उन्हें अभाव यही था कि महीपति के कोई पुत्र न था सो पुत्र की कामना से वह भगवान् शङ्कर की आराधना में तत्पर रहते।

इसी अवसर पर क्या हुआ कि शैलेन्द्र कैलास पर जिनकी कन्दरा में कि देव गण आश्रय कर निवास करते हैं और उत्तर दिशा के हास से जो सुन्दर है, वह उत्तर दिशा अपनी शोभा और सुन्दरता के समय किसी को कुछ समझती ही नहीं मानों समस्त दिशाओं पर जय कर विराजमान हैं म्लेच्छों के उपद्रव से दुःखित हो इन्द्रसहित सब देव पार्वतीसहित भगवान् पुरारि की शरण में उपस्थित हुए। प्रणाम कर,सब अमरगण बैठ कर भूतनाथ की स्तुति करने लगे, तब भगवान् भवानी-पति ने उनसे पूछा: –

"काहहु अमर आये केहि हेतू।"

इस प्रकार जगच्छरण्य शंभु भगवान् का प्रश्न सुन गीर्वाण गण (१) इस भांति कहने लगे: —

हे देव! जिन असुरों को आपने संहारा और जिनको विष्णु ने विदारा वेही अब पृथ्वी पर म्लेच्छरूप हो अवतरे हैं। सो वे ब्राह्मणों को मारते हैं और यज्ञादि क्रियाओं का नाश करते हैं, मुनिकन्याओं को हर ले जाते, ऐसा कौन काम है जो वे पापिष्ठ नहीं करते हों। हे प्रभो! आप जानते ही हैं कि भूलोक से देवलोक सदा परिपुष्ट होता है। ब्राह्मण जो हवि अग्नि में हुनते हैं उसी से देवताओं को तृप्ति होती। अब भूलोक म्लेच्छों से भर गया है, कहीं वषट्कार का नाम नहीं तिससे वहां का मङ्गल नष्ट हो गया (२)। न कहीं यज्ञ होता है न धर्म्म कर्म्म, इससे देवलोक बड़ा कष्ट पा रहा है। सो अब आप कुछ उपाय कीजिये, किसी वीर को भूलोक पर उतारिये (३) कि जो उन म्लेच्छों को उखाड़ डाले।

(१) देवगण।

(२) वषट्कारादि ही मङ्गल के मूल हैं उनके अभाव से कल्याण कहां।

(३) किसी वीर को वहां भेजिये कि जा के अवतार लेवें।

इस प्रकार देवों का निवेदन सुन पुरारि बोले "हे देवो। तुम लोग किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, अब निश्चिन्त अपने २ लोक में जाकर बसो इसका प्रबन्ध मैं अब करूंगा। इसका उपाय मैं शीघ्रही करूंगा इसमें कुछ भी सन्देह मत रखना।' इस प्रकार कहके अम्बिकापति ने देवताओं को विदा किया॥

जब सब अमर अपने २ लोक को चले गये तब माल्यवान् नामक गण को बुलाकर पार्वती सहित भगवान् ने उससे कहा "हे पुत्र! जाकर मनुष्य लोक में अवतीर्ण हो, महापुरी उज्जयिनी में राजा महेन्द्रादित्य का शूर पुत्र हो। वह राजा मेरा ही अंश है और उसकी भार्य्या अम्बिका का अंश है, सो तू उन दोनों के घर में उत्पन्न होकर देवताओं का कार्य्य कर। जो म्लेच्छ वेदधर्म्म के नाशक हैं उनका संहार कर; मेरे प्रसाद से तू सातोंद्दीपों का आधीश्वर होगा। यक्ष राक्षस और वेताल भी तेरे वशमें रहेंगे, मानुष भोगों का उपभोग कर तू फिर हमारे पास चला आवेगा।" पुरजित् (१) का एतादृश वचन सुन वह माल्यवान् गण बोला "महाप्रभो! मुझे तो आपकी आज्ञा माननी है। मानुषलोक के भोग क्या हैं? जहां बन्धु बान्धवों, पुत्रों तथा भृत्यों के असंख्य वियोग विद्यमान रहते, धन के नाश, जरा, तथा रोगादि की पीड़ा सदा बनी रहती सो वहां भोग कहां?" उस गण की ऐसी उक्ति सुन धूर्जटि बोले -"ऐ निष्पाप! ना ये दुःख तुझे न होंगे, मेरे प्रसाद से तुझे सब समय सुख ही रहेगा।' शम्भु भगवान् की ऐसी बात सुन के माल्यवान् वहां से तत्क्षण अदृश्य होगया। वहां से वह उज्जयिनी पहुँचा और उक्त महेन्द्रादित्य की महारानी जब ऋतुमती हुईं तो उनके गर्भ में जा बसा।

उसी समय में निशाकान्त की कला से जिसका मस्तक सुशोभित है ऐसे भगवान् शङ्कर ने स्वप्न में राजा महेन्द्रादित्य को दर्शन देकर यह कहा!" हे राजन् मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। मेरे वरदान से तुम्हारे ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो अपने पराक्रम से आसमुद्रान्त पृथ्वी को अपने वश में करेगा। जितने यक्ष राक्षस और पिशाच आकाश और पाताल में विचरनेवाले हैं उन सभोंको अपने वश में करेगा और म्लेच्छों का संहार करेगा। इसी कारण उसका नाम विक्रमादित्य होगा

(१) महादेव जी।

और शत्रुओं पर बड़ा ही विषम रहेगा इसको छोड़ उसका नाम विषमशील भी होगा।" इतना कहकै भगवान् अन्तर्धान हो गये। उसी समय राजा की नींद टूट गयी सो प्रातःकाल होने पर उन्होंने अति प्रसन्न हो अपने सचिवों को स्वप्न सुनाया। तब सब मन्त्री भी अपने २ स्वप्न का वृत्तान्त बड़ी प्रसन्नता से महाराज को सुना दिये कि भगवान् भूतनाथ ने हमें भी स्वप्न में पुत्र प्राप्ति का आदेश दिया है। इतने में अन्तःपुर की चेरी एक फल लिये महाराज की सभामें उपस्थित हुई और दिखा के कहने लगी कि यह फल भवानीपति ने स्वप्न में महारानी को दिया है। यह देख राजा अति हर्षित हुए और बार बार यही कहते कि सचमुच शर्व भगवान् ने मुझे पुत्र दिया है। सचिव भी अभिनन्दन करते जाते थे।

अब रानी गर्भवती हुईं उनकी द्युति वैसी ही मनभावनी हो चली जैसी कि प्रातःकाल में सहस्रांशु के उदय के समय पूर्व दिशा की होती है। उनके दोनों कुच उनकी और शोभा बढ़ाते तिन कुचों की ढिपनियां काली २ होकर उनकी कान्ति और भी चमका रही थीं। वे यह सूचित करती थीं कि गर्भस्थ जो महाराज हैं उनके लिये जो दूध रक्षित है तिसपर यह मुहर कियी गयी है। एक दिन स्वप्न में रानी ने यह भी देखा कि सात समुद्र पार कर गयी हूं और कि सब यक्ष राक्षस और वेताल मुझे प्रणाम कर रहे हैं।

शुभ समय आने पर रानी अत्यन्त तेजस्वी पुत्र जनीं, जैसे सूर्य के उदय से उनकी ज्योति से आकाश प्रकाशित हो जाता है वैसे ही राजकुमार की दीप्ति से वह राजगृह प्रकाशमय हो गया। उनके जन्मते ही आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी और देवगण वहां गगन में पटुर के दुन्दुभी बजा २ आनन्द प्रकाश करने लगे। उस समय उस नगरी में सर्वत्र मङ्गल आनन्द मनाये जाने लगे, उत्सव आनन्द से चारों ओर चहल पहल मच गयी। जैसे कोई मदपान कर उन्मत्त हो जाय और अंटसंट बके, और जैसी दशा उस पुरुष की हो जाय जिसपर भूत चढ़े और वह प्रलाप करने लगे तथा अंधड़ चले और देश में हलचल मच जाय वैसी दशा इस आनन्दसागर के उमड़ने से इस समय उज्जयिनी नगरी की हुई। राजा मेघ के समान बराबर धन की वर्षा करते रहे उस समय सौगतों के (१) अतिरक्त और

(१) बुद्ध सन्यासी।

कोई भी अकिञ्चन न था। अब महाराज महेन्द्रादित्य ने अपने पुत्र का नाम जैसा शङ्कर भगवान् ही ने बतलाया था विक्रमादित्य रक्खा और विषमशील भी नाम दिया।

कुछ दिनों के उपरान्त महीपति महेन्द्रादित्य के अमात्य सुमति के भी एक पुत्र हुआ तिसका नाम पड़ा महामति। महाराज का वज्रायुध नामक जो प्रतीहार था उसके भी एक पुत्र हुआ तिसका नाम भद्रायुध पड़ा, उसी प्रकार महीधर नामक पुरोहित के भी एक लड़का हुआ उसका नाम श्रीधर पड़ा। अब उन तीनों मन्त्रिपुत्रों के साथ राजकुमार विमक्रादित्य बढ़ने लगे मानों तेज, बल और वीर्य के संग उनकी वृद्धि होती थी; भाव यह कि ज्यों २ वह बढ़ते जाते थे त्यों २ उनके तेज बल और वीर्य भी बढ़ते गये।

अब राजकुमार का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और विद्यारम्भ कराया गया; गुरु लोग उन्हें पढ़ाने लगे पर वहां पढ़ाना तो नाम मात्र का था राजकुमार को जो ही विद्या प्रारम्भ करायी जाती बिना प्रयास स्वयं उन्हें वह आ जाती। जो ही विद्या अथवा कला उन्हें दिखायी मात्र जाती बस वह तुरन्त उसमें दक्ष सिद्ध हो जाते, केवल दक्ष ही नहीं किन्तु ऐसे प्रवीण हो जाते थे कि उनकी समानता का कोई रह ही न जाता था। यह देख उक्त विद्या के विद्वान् लोग दंग हो जाते। राजकुमार नाना प्रकार के दिव्यास्त्रों के प्रयोग में ऐसे प्रवीण हो गये कि जब कभी वह उन अस्त्रों से युद्ध करते तो लोगों को बड़ा ही आश्चर्य होता। उस समय रामचन्द्रादि सुप्रसिद्ध धनुर्धरों की कथा सब लोग मानों भूल ही गये। राजकुमार के पिता महाराज महेन्द्रादित्य ने बहुतेरे राजाओं को जीता सो उन सभों ने अति नम्र हो उक्त महाराज को अपनी कन्याएँ दियीं सो महाराज उन कन्याओं को लाये मानों दूसरी लक्ष्मी। कुछ दिनों के उपरान्त वृद्ध महाराज ने राजकुमार को सब प्रकार से सुयोग्य और प्रजाप्रिय देख राज्य पर अभिषिक्त कर दिया और आप भार्या और सचिव के संग बाराणसी जाकर भगवान् भूतभावन शङ्कर की शरण गही।

अब राजा विक्रमादित्य पिता का दिया राज्य पाकर क्रमशः प्रताप बढ़ाने लगे जैसे कि भास्वान् क्रमशः प्रताप बढ़ाते हैं। राजा का धनुष जब नवता और

उसपर प्रत्य चा चढ़ती तब सब राजा उसे देख समझ जाते कि अब यह हमारी शिक्षा होगी, इस प्रकार जितने उन्नतमस्तक महीपगण थे सो सब नय गये अर्थात् नम्र होकर राजा विक्रमादित्य के वशीभूत हो गये। राजा का प्रभाव ऐसा दिव्य था कि जितने उन्मार्ग चलनेवाले वेताल भूत राक्षस प्रभृति थे उन सभों को वश कर उनपर राज्य करते थे। महीपति विक्रमादित्य की सेनाएँ चारों दिशाओं में राजकार्य सम्पादन करती फिरतीं जिस प्रकार सूर्य की किरणे सर्वत्र दिशाओं में व्याप्त हो जाती हैं। यद्यपि राजा बड़े ही प्रतापी थे तथापि परलोक का भय करते थे, और शूर थे तथापि उनका कर (२) प्रचण्ड नहीं था, वह वैसे ही थे कि यद्यपि पुरुष बुरा हो तथापि अपनी भार्या का प्यारा होता हैं वह यह कि यद्यपि बड़ी वीरता तथा शूरता के कारण राजा बड़े उग्र थे तथापि अपनी प्रजा को अति प्रिय थे और प्रजा को वह भी अधिक मानते थे। राजा अनाथों के नाथ, पितहीनों के पिता, बन्धुरहितों के बन्धु और क्या ऐसा क्या सम्बन्ध था जो राजा अपनी प्रजा से नहीं रखते थे। भाव यह कि वह अपनी प्रजा के सर्वस थे। राजा के यश की उपमा किससे दियी जाय। विधाता ने श्वेतद्वीप, क्षीरसागर तथा कैलास और हिमालय की जो सृष्टि कियी सो मानों इन्हीं राजा के यश की उपमा के निमित्त।

अब एक समय की बात है कि राजा अपनी सभा में विराजमान थे कि उसी अवसर पर भद्रायुद्ध नामक द्वारपाल वहां आया और हाथ जोड़ निवेदन करने लगा—"दक्षिण दिशा जीतने के लिये सेनासहित जो विक्रमशक्ति भेजे गये थे उनके पास आपने जो अनङ्गदेव दूत को भेजा था सो हे देव। वह आया है और उसके साथ एक दूसरा जन भी है। उसका मुख प्रसन्न दीख पड़ता है इससे यह भावना होती है कि कुछ शुभ सम्वाद है।" "लाओ उसे" ऐसा जब राजा ने कहा तब द्वारपाल बाहिर गया और उस दूसरे जन के साथ अनङ्गदेव को बड़े आदर सत्कार के साथ राजसभा में ले आया। राजसभा में पहुंच कर "महाराज की जय हो," ऐसा कह प्रणाम कर दूत महाराज के समक्ष बैठ गया। तब राजा ने उससे पूछा "हमारे सेनापति राजा विक्रमशक्ति कुशल से हैं न? और व्याघ्रवल आदि

(२) हाथ, टिकस।

जो राजा हैं सो सब कुशल से हैं न, और जो उनकी सेना में प्रधान २ राजपुरुष हैं उनका कल्याण है ? । गजाश्व तथा रथपादातिक हैं उनका कुशल तो है?" इस प्रकार राजा के प्रश्न सुन अनङ्गदेव बोला - 'हे महाराज सब सेनाओं के साथ विक्रमशक्ति का कुशल है श्रीमान् ने समस्त दक्षिण देश जीत लिया है; मध्यदेश, सौराष्ट्र देश तथा पूर्व में वङ्गदेश और अङ्गदेश भी वश में हो गये हैं । उत्तर में कश्मीर देश पर्यन्त वश में हो गया और कर देने लगा है ये और जितने द्वीप और दुर्ग तथा द्वीप हैं सो सब जीत लिये गये हैं । म्लेच्छों के समूह मार डाले गये और जो बच रहे सो वश में कर लिये गये और अब वे सब राजा विक्रमशक्ति के कटक में भरती हो गये हैं । उन राजाओं के साथ विक्रमशक्ति अब आ रहे हैं, प्रभो ! अब वह दो तीन पड़ाव पर होंगे ।" इस प्रकार उसका कथन सुन महाराज विक्रमादित्य बड़े ही प्रसन्न हुए, इस शुभ सम्वाद के श्रवण से उन्होंने उस दूत को बहुत से वस्त्र, भूषण और गांव पारितोषिक स्वरूप दिये ।

इसके उपरान्त महाराज विक्रमादित्य ने पुनः उस दूत से पूछा—"हे अनङ्गदेव ! अच्छा यह तो बतलाओ किस २ देश में तुम गये और वहां क्या २ देखा कहां क्या कौतुक देखा सो सब मुझे कह सुनाओ।" महाराज का ऐसा प्रश्न सुन अनङ्गदेव कहने लगा: —

हे देव ! आपकी आज्ञा पाय यहां से चला और क्रमशः चला २ विक्रमशक्ति के पास आपके कटक में पहुंचा, वहाँ क्या देखता हूं कि अनेक मातङ्गों और शोभमान घोड़ों से वह सेना परिपूर्ण है । उसका विस्तार ऐसा कि मानों सागर है जिसमें आपके पक्ष के राजा विद्यमान हैं । मैं प्रभु से भेजा गया था यह जान कर विक्रमशक्ति मुझे आगे से लेने आये और बड़ी नम्रता से उन्होंने मेरा बड़ा सत्कार किया । मैं उन विजयों को देखता हुआ ज्योंही बैठा कि उसी समय सिंहलेश्वरका दूत वहां आया और अपने राजा का सन्देश कहने लगा "यह जो अनङ्गदेव तुम्हारे पास बैठा है सो तुम्हारे राजाका हृदय है । तुम्हारे पास जो दूत आये थे उन्होंने आकर मुझसे ऐसाही कहा है सो अब एक काम करो कि उसे मेरे पास भेज देओ उससे कुछ राजकार्य्य कहना है ।" इस प्रकार सिंहलदेश का आया हुआ वह राजदूत मेरे समक्ष विक्रमशक्तीसे राजसन्देश कह गया । तब विक्रमशक्ति ने मुझसे

कहा ' हे अनङ्गदेव ! तुम झट पट जाओ, महाराज सिंहलेश्वर तुमको बुला रहे हैं, देखो वह तुमसे क्या सन्देश कहते हैं ।

इतनी कथा सुनाय अनङ्गदेव महाराज विक्रमादित्य से फिर कहने लगा कि हे देव ! इस प्रकार विक्रमशक्ति की आज्ञा पाय मैं सिंहलाधीश्वर के दूत के साथ अर्णवपोतपर आरूढ़ हुआ और समुद्रमें यात्रा करता हुआ क्रमशः सिंहलद्वीपमें पहुंचा । तहां राजधानी का क्या वर्णन करूं सुवर्ण की तो वह पुरी बनी तिसके प्रासाद सब नाना प्रकार के विचित्र रत्नों से खचित, वह नगरी मर्त्यलोककी तो है, किन्तु स्वर्गलोक की नगरी से स्पर्धा करनेवाली समझिये । वहां मैं सिंहलेश्वर के समक्ष उपस्थित हुआ सो क्या २ मुझे वहां दीख पड़े मैं उनका क्या वर्णन करूं । महाराज । उनके मन्त्री उनके चहुं ओर घिरे थे, सब मन्त्री बड़ेही नम्र, उनसे सिंहलेश्वर की कैसी शोभा थी मानों अमरावती में देवेन्द्र देवों से घिरे विराजमान हों। जब कि मैं राजसभा में पहुंचा तो महाराजने बड़े आदर भाव से मेरा सत्कार किया और कुशल प्रश्न के उपरान्त मेरे विश्रामका आदेश दिया और सब प्रबन्ध कराय दिया कि मुझे किसी प्रकारकी असुविधा न हो ॥

दूसरे दिन जब राजसभा लगी तो सिंहलद्वीपेश्वरने मुझे बुला भेजा और आप में बड़ी भक्ति दिखाते हुए वह मुझसे इस प्रकार कहने लगे "हे अनङ्गदेव ! बात यह है, सुनो मैं तुमसे कहता हूं, मेरी कन्या मदनलेखा मर्त्यलोक में एकही सुन्दरी है सो उसे मैं तुम्हारे राजा को देता हूं उनके अनुरूप यह भार्य्या है और इसके योग्य वह पति है । तुम्हारे स्वामी का अर्थ मैं साधना चाहता था बस इसी कारण तुमको बुलाया है । तुम पहिले से मेरे दूत के साथ जाके अपने स्वामी को सूचना देओ और तुम्हारे पीछेहो मैं अपनी कन्या को भेजूंगा ।" इतना कह महाराज ने अपनी कन्या को वहीं राजसभा में बुला भेजा । उस समय सब आभूषणों से सजी और रूप लावण्य से परिपूर्ण वह राजदुलारी राजसभा में आयीं सो राजा ने उन्हें अपनी गोदी में बैठा के मुझे दिखाकर कहा—'लो यह कन्या मैंने तुम्हारे स्वामी को दे दियी ।' मैं राजकुमारी का रूप देखकर अचम्भित होगया और बोला—" महाराज ! अपने प्रभु के लिये मैंने राजकुमारी को ग्रहण किया ।" हे देव ! राजकुमारी को देख कर मैं बड़ा विस्मित तो होही गया था सो मैं अपने मन में

विचार करने लगा कि आहा विधाता भी क्या ही अद्भुत हैं कि अब लौं भी उनकी तृप्ति नहीं हुई, यदि यह बात नहीं है तो तिलोत्तमा सी परम सुन्दरी अप्सराको बनाकर फिर इस अत्युत्तम सुन्दरी को सृष्टि क्यों कियो।

अस्तु महाराज! अब मैं वहां से प्रस्थानित हुआ और सिंहलेश्वर का दूत धवलसेन मेरे साथ हुआ। हम दोनों जहाज पर आरूढ़ हुए और वहां से चले। थोड़ी ही दूर गये होंगे कि समुद्र के मध्य एक बड़ी भारी रेत दीख पड़ी, जिसके बीच अत्यन्त अद्भुत रूपवती दो कन्याये दिखायी दियीं एक तो प्रियंगु (१) सी श्यामाङ्गी और दूसरी अमल चन्द्र सी कान्तिमती। जैसा रम्य और मनोहर उनका रङ्ग था वैसेही उचित वस्त्रों तथा आभूषणों से वे सज्जित थीं, हाथ के रत्नजटित कङ्कण ऐसे शब्द करते थे मानों वे तालियां बजाती हैं। उनके समक्ष एक सुवर्ण का बना क्रीड़ामृग छौना (२) था जिसे वे नचा रही थीं। उन्हें देख कर यही भावना होती थी कि ये सजीव चित्र हैं। उन्हें देख कर हम दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ सो एक दूसरे से कहने लगे " भाई! यह कैसा आश्चर्य है स्वप्न है, माया है अथवा भ्रमजाल हैं! कहां यह समुद्र, फिर उसमें भी यह रेत! कहां ऐसा रत्ननिर्मित मृग जो कि सुवर्ण का बना है परन्तु उसके साथ ये दोनों इस प्रकार से खेल रही हैं मानों वह हरिण जीवित है।

हे देव! बड़े अचम्भे में आकर हम दोनों उन्हें देख रहे थे कि इतने में बड़ी भयङ्कर आंधी उठी जिससे समुद्र में बड़े २ हिलकोरे उठने लगी। उससे हम लोगों का वह जलयान तरङ्गों की तड़ातड़ी में पड़ कर टूट गया और उसपर के लोग लगे डबाबड डूबने जिन्हें धर २ मगर खाने लगे। हम दोनों डूबाही चाहते थे कि वे दोनों कन्या वहां आयीं और हम दोनों को उठा के रेत पर ले गयीं इस प्रकार हम दोनों मगरों के मुंह से बच गये। वहां भी तरङ्गों ने पीछा न छोड़ा, उनका प्रसार वहां लौं पहुंचा था जिससे हम दोनों बहुत बिकल हुए, सो वे हम दोनों को सान्त्वना देकर एक गुहा में कदाचित् ले गयीं। वहां बड़ा ही अद्भुत दिव्य वन था, नाना प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे, हम दोनों उस मनोहर दिव्य वन की शोभा निरखने लगे तो क्या देखते हैं कि न तो समुद्र है, न किनारा हैं, न

(१) एक लता विशेष। (२) मृगछौना जो खेलौना है।

मृगछौना और न वे दोनों कन्याएं ही हैं। अब हम दोनों परस्पर कहने लगी कि भाई यह कैसा आश्चर्य है अवश्य यह कोई माया है।

इस प्रकार कहते हुए, हम दोनों चण भर इधर उधर घूमते रहे तो एक बड़ा भारी सरोवर दिखाई पड़ा, जो बड़ा गहिरा और बहुत दूर लौं विस्तीर्ण, जल बहुत स्वच्छ जैसा कि महानुभावों का हृदय होता है। उसका जल तृष्णा और सन्ताप का शमन करनेहारा, वह सरोवर क्या था मानों मूर्तिमान् निर्वाण (१)। वहां एक अति रमणीय नारी स्नान करने के लिये आयी, मानों साचात् वनदेवी ही सखियों से घिरी वहां आयी। पालकी से उतर कर वह स्नान करने के लिये सरोवर में धंसी; स्नान कर कमल पुष्प तोड़ करके भगवान पुरारि के ध्यान में तत्पर हुई। उस समय हे महाराज ऐसा एक आश्चर्य हुआ कि क्या वर्णन करूं, क्या हुआ कि उस सरोवर से साचात् भगवान् शङ्कर दिव्य रत्नमय लिङ्गाकार में प्रगट हुए और उस वराङ्गना के समीप उपस्थित हुए! उस सुन्दरी ने अपने अनुकूल विभवों के अनुसार नाना प्रकार के भोगों से भगवान् भूतनाथ की पूजा कियी पश्चात् वीणा लेकर गाना प्रारम्भ किया। स्वरताल साध कर मन लगा कर वह वीणा बजाती और गाती जाती थी। उस समय उसका गाना ऐसा जमा कि उसका श्रवण कर सिद्धादि का मन भी मोहित हो गया, अप्सरायें भी अपना मान भूल गयीं। सब गगन में आकर निश्चल हो उस सुन्दरी का मधुर गान सुनने लगी, उस काल वे चित्र लिखे से प्रतीत होती थे। गन्धर्व लोग भी आकाश में उसका गाना सुनने आये थे उनकी भी वही गति थी। इसके उपरान्त उसने गाना समाप्त किया और शम्भु का विसर्जन किया, वह देवाधिदेव वहीं सरोवर में मग्न होगये।

अब वह उठी अपनी, दलबलसहित अर्णवपोत पर आरूढ़ हुई और चलने को प्रवृत्त हुई। हम दोनों वार २ बड़े यत्न से उसके परिजनों से पूछते ही रह गये कि यह कौन है किन्तु किसी ने कुछ उतर न दिया। महाराज! मेरे साथ सिंहलेश्वर का दूत था, मेरे मन में उस समय यह भावना आयी कि मैं महाराज विक्रमादित्य का चर हूं अब मुझे उचित है कि मैं अपने प्रभु का प्रभाव उसे दिखाऊं तो मैंने उच्च स्वर से चिल्ला कर कहा "हे शुभे! मैं तुझे महाराज विक्रमादित्य के

(१) मुक्ति, शान्ति।

चरण कमलों का शपथ दिलाता हूं, देख बिना मेरा उत्तर दिये मत जाना।" इतना सुनना कि अपने परिजनों को दूर कर वह बछन से उतरी और मेरे समीप आकर मधुरवाणी से बोली—"महाप्रभु विक्रमादित्य कुशल से तो हैं अथवा हे अनङ्गदेव ! मैं पूछती क्या हूं मुझे तो सब विदित है। मैं ही माया दिखा कर तुमको यहां ले आयी, यह मैंने राजा के लिये ही किया, महाभय से बचानेवाले वह मेरे मान्य हैं। सो आओ मेरे घर चलो, मैं वहां तुमसे सारा वृत्तान्त कहूंगी कि मैं कौन हूं, राजा मेरे मान्य कैसे हुए और कि उनका कार्य क्या है इत्यादि २।

॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

एतो बोलि वि नैसन:इ, तजि को वहनो, चली पांव सों।
लेकै दोउन जा पहूंचि सुमुखी स्वर्लोक सों निजपुरी॥
नाना रत्न विचित्र हेमरचितै, द्वारेन पै शस्त्र धर॥
नाना रूप धरे चतुर्दिक रहे, योधा विराजत खड़े॥ १॥

॥ सोरठा ॥

उत्तम सुन्दरनार, दिव्य भोग लै आइ चट॥
मनुसिद्धी द्वै चार, भई प्रतच्छ अकारधरि॥ १॥
इम दोउन अन्हवाय, अतर फुलेल लगाइ कै॥
वस्त्राभरण पिन्हाय, आदर सो विश्राम दिय॥२॥

दूसरा तरङ्ग।

राजसभा में विराजमान महाराज विक्रमादित्य को इस प्रकार कथा सुनाय अनङ्गदेव फिर इस प्रकार कहने लगा—हे महाराज ! जब मैं भोजन कर सुचित्त हुआ तो सखियों के मध्य में बैठी वह सुवदना मुझसे इस प्रकार कहने लगी—"अनङ्गदेव ! सुनो मैं तुम्हें अब समस्त वृत्तान्त सुनाती हूं। मैं तो कुबेर के भाई मणिभद्र की गृहिणी हूं, यक्षराज दुन्दुभी की बेटी, नाम मेरा मदनमञ्जरी। मैं अपने प्रियतम के साथ नदियों के किनारे, पहाड़ पर तथा वनों और उपवनों में सदा घूम २ विहार किया करती थी ! एक समय की बात है कि मैं उज्जयिनी में गयी, वहां जो मकरन्द नामक उद्यान है उसी में अपने पतिसहित विहार करने गयी थी।

एक दिन की बात है कि विहार के श्रम से मैं सुखनींद सोकर प्रातःकाल में जो उठी तो दैवात् एक खण्डकापालिक अधम की दृष्टि मुझपर पड़ गयी। मुझे देखते ही वह पापी कामदेव के वश में होगया। उसकी इच्छा हुई कि इसे अपनी पत्नी बना लेऊँ। सो इस अभिप्राय से वह श्मशान में जाकर मुझे सिद्ध करने के अभिप्राय से मन्त्र पढ़ २ होम करने लगा। अपनी विद्या के प्रभाव से मैंने तो उस दुष्ट का अभिप्राय जान लिया सो मैंने अपने पति से उसका दुष्ट अभिप्राय कहा। उन्होंने भी जाकर अपने जेठे भाई कुवेर से यह वृत्तान्त कह दिया। धनाध्यक्ष ने जाकर इसकी सूचना कमलासन को दियी तो भगवान् ब्रह्मा ने ध्यान लगाकर इस प्रकार कहा —"यह बात सत्य है कि वह कपाली तुम्हारे भाई की पत्नी को हरण किया चाहता है उन यक्ष साधन मन्त्रों की शक्ति भी ऐसी है। सो अब ऐसा करो कि तुम्हारी भयो मन्त्र से राजा विक्रमादित्याको बुलावे और उन्हें अपना दुखड़ा सुनावे सो वही उसकी रक्षा करेंगे"। ब्रह्मा का इतना कथन सुन धनाध्यक्ष ने आकर मेरे पति से कहा और मेरे पति ने आकर मुझसे कहा, मैं तो उस समय उस खण्ड कापालिक के कुमन्त्र से चकित सी हो रही थी।

इतने में क्या हुआ कि क्रमशः उस खण्डकापालिक का मन्त्र सिद्ध हो गया सो श्मशान में होम करते २ उसने मेरा आकर्षण किया मैं मन्त्र के द्वारा खिंची वहां श्मशान में पहुँची जहां बहुत सी खोपड़ियां पड़ी हैं, भैरव और भूत गण विचर रहे हैं। वहां मैं क्या देखती हूं कि वह दुष्ट कापालिक अग्नि का हवन कर एक शव की छाती पर बैठा है। अपने मन्त्र के प्रभाव से वह कापालिक मदान्ध हो गया था, मुझे देखकर उसका अहङ्कार और भी बढ़ गया सो पास की एक नदी में वह आचमन करने गया। इसी अवसर में मुझे ब्रह्मा का वह वचन स्मरण हो आया, सो मैंने सोचा कि महाराज विक्रमादित्य की दुहाई दूं वह रात में यहीं कहीं घूमते होंगे। इतना विचार मैं उच्च स्वर से चिल्लाकर बोली "दोहाई महाराज विक्रमादित्य की; मेरी, हे देव! मेरी रक्षा करो! हे जगत् के रक्षामणि! देखो तुम्हारे राज्य में यह कापालिक धनाध्यक्ष के अनुज मणिभद्रकी गृहिणी तथा दुन्दुभी की तनया मुझ मदनमञ्जरी का बलपूर्वक सतीत्व नाश किया चाहता है।"

इतना आर्तनाद से कहना कि मैं क्या देखती हूं कि तेज से देदीप्यमान महाराज विक्रमादित्य हस्त में खड्ग लिये वहाँ पहुंच ही तो गये और मुझको बोले—भद्रे! भय मत करो! निश्चिन्त हो जाओ, हे शुभे! इस कापालिक से मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा। भला मेरे राज्य में इस प्रकार का अधर्म कौन कर सकता है।" इतना कह उन्होंने अग्निशिख नामक वेताल को पुकारा। पुकारतेही वह महा भयङ्कर रूप, लाल २ जिसके नेत्र, लम्बे २ बाल, आ पहुंचा और बोला—"महाराज! कहिये क्या आज्ञा होती है!" राजा बोले 'यह जो परायी स्त्री का अपहरण करनेवाला कापालिक है, इसको मारकर खा जाओ।" महाराज का इतना कहना कि अग्निशिख उस पूजा की गठरी में स्थित शव में पैठ गया और उठ कर मुंह बाय हाथ पसार के दौड़ा। उधर से वह कापालिक आचमन कर लौटा आ रहा था, सो यह उसपर लपका; इसे देख वह कापालिक छक्का छोड़ भागा-किन्तु अग्निशिख ने उसे दौड़ा के जाकर उसकी जांघ पकड़ही तो लियी। पश्चात् आकाश में घुमाकर उसे धरती पर पटक दिया। इस प्रकार उसका शरीर और मनोरथ दोनों को एक साथ चूर्ण कर दिया।

इस प्रकार कापालिक को मरा देखकर मांस के लोभी भूत चारों ओर से दौड़ कर घिर गये। उसी समय यमशिख नामक एक अत्यन्त दुर्मद वेताल वहां पर आया; आतेही उसने कापालिक का वह कलेवर (१) लेही तो लिया। यह देख वह पूर्व वेताल अग्निशिख उसको बोला—"अरे दुराचार। महाराज विक्रमादित्य के आदेश से मैंने इस कापालिक को मारा है तू इसका कौन है"। यह सुन यमशिख बोला "तो तुम मुझे बतलाओ उस राजा का प्रभाव कैसा है' तब अग्निशिख बोला "अच्छा जो तुम उनका प्रभाव नहीं जानते हो तो सुनो मैं तुम्हें उनका प्रभाव सुनाता हूं"

इस नगरी में एक जुआड़ी रहता था जिसका नाम डाकिनेय था और वह बड़ाही धैर्यशाली था। एक समय की बात है कि दूसरे जुआड़ियों ने जूए में छल कर उसका सर्वस्व हरण कर लिया। और जिते हुए धन का जो

(१) शरीर।

अधिक बचा था अर्थात् वह न दे सका था, उसके लिये उन्होंने उसे बांध रक्खा। अब उसके पास कुछ बचाही न था तो वह देता क्या, सो वे सब लाठी इत्यादि से उसे पीटा करते और वह बिचारा पत्थर के समान वहीं पड़ा रहता मानों मर गया हो। इसके उपरान्त उन सभों ने यह परामर्श किया कि हम लोगोंने इसे इतना मारा पीटा है, सो यदि यह जीता रहेगा तो अवश्य पलटा लेगा अत: उसे कहीं खपा देना उचित है,। यह विचार उन्होंने उसे लेजाकर एक महा अन्धकारमय कुए में डाल दिया।

अब उस अति गहिरे कूए में पड़ा हुआ वह जुआड़ी डाकिनेय वहां क्या देखता है कि बड़े उग्र दो पुरुष विद्यमान हैं। उस डाकिनेय को गिरा और भयभीत देख उन दोनों ने बड़ी सान्त्वनामय वाणी से उससे पूछा—"भाई तू कौन है और इस कूप में क्यों गिरा? उनका ऐसा प्रश्न सुन उस जुआड़ी ने लम्बी सांस भरी और अपना वृत्तान्त सुनाया पश्चात् उनसे भी पूछा कि भला यह तो कहिये आप दोनों कौन हैं और यहां कैसे आये हैं? उसका ऐसा प्रश्न सुन उस अन्धकारमय कूप में अवस्थित पुरुष बोले "हे भाई। हम दोनों इस नगर के श्मशान पर रहनेवाले ब्रह्मराक्षस हैं। एक समय की बात है कि इस नगर की दो कन्याओं को हम दोनों ने हरण कर लिया, एक तो प्रधान मन्त्री की बेटी थी और दूसरी नगरसेठ की लड़की थी। बड़े २ ओझों ने बहुत कुछ मन्त्र तन्त्र का प्रयोग किया पर किसी की ऐसी शक्ति नहीं कि उन कन्याओं को हमसे छुड़ा सके। उनके पिता से महाराज विक्रमादित्य से बड़ी मित्रता थी, सो उन्हें जब इसकी सूचना मिली तब वह वहीं पहुंचे जहां वे दोनों कन्याएं थीं। उनके पिता के मित्र महाराज विक्रमादित्य को आया देख न दोनों कन्याओं को छोड़कर हम भाग जाया चाहते थे किन्तु न भाग सके। स समय उनके तेज से समस्त दिशाएं जलती दीखने लगीं। बस अब राजा क्रमादित्यने अपने प्रभाव से हम दोनों को बांध लिया। जब कि हम बंध ये तो मृत्यु के भय से अत्यन्तही डर गये, हमे निश्चय हो गया कि अब हम सी प्रकार बंच नहीं सकते। हमें अति दीन देखकर महाराज बोले "ऐ पापी! दोनों एक वर्ष पर्य्यन्त अन्धकूप में जा के बसो। और एक वर्ष के उपरान्त

यदि तुमने फिर ऐसा कार्य किया तो मैं तुम्हें दण्ड देऊँगा।" इस प्रकार कह वह राजा हम दोनों को यहां अन्धकूप में डाल गये। यद्यपि वह हमपर रुष्ट थे पर कृपावश उन्होंने हमारा वध नहीं किया। अब हमारा वर्ष आठ दिनों में पूरा हो जावेगा सो अवधि के पूर्ण हो जाने पर हम यहां से छूट जावेंगे। सो हे मित्र! यदि इन दिनों में हमें तुम कुछ खाने को देओ तो हम यह करेंगे कि इस कूप से निकलकर तुमको बाहिर निकाल देंगे। यदि प्रतिज्ञा कर न देओगे तो यहां से निकल कर तुम्हें निकाल कर खा जावेंगे यह निश्चय जान रक्खो।" उनका ऐसा कथन सुन वह जुवाड़ी उनके प्रस्तावपर सम्मत हुआ तब उन दोनों ने उसे कूएं से ऊपर निकाल दिया।

जब वह कूप से बाहिर निकला तब सोचने लगा कि अब क्या उपाय करूं और क्योंकर उन्हें भोजन देऊं। जब कोई उपाय उसे न सूझा तब वह रात के समय में महामांस (१) बेचने के निमित्त श्मशान में घुसा। उस समय में वहां बसा हुआ था सो मैंने उस जुआड़ी को देखा जो यह कहता था कि महामांस (१) बेचता हूं जिसे आवश्यक हो ले लेवे। उस समय मैंने कहा "जो मैं लेऊँगा कह क्या मूल्य लेगा?" इसपर उसने कहा कि अपने रूप और प्रभाव दे देओ"। मैंने फिर उससे कहा—"ऐ वीर! रूप और प्रभाव लेकर तू क्या करेगा?" तब वह अपना सारा वृत्तान्त मुझको सुना गया और फिर बोला सो मैं तुम्हारे रूप और प्रभावसे उन सब जुआड़ियो को चौधरी सहित ले जाके उन ब्रह्म राक्षसों को देऊँगा।" उस जुआड़ी की इस धीरता से मैं सन्तुष्ट होगया और मैंने सात दिन के लिये अपना रूप और प्रभाव उसे दे दिये। सो वह क्रमशः उन अपने शत्रु जुआड़ियों को ले जाके सात दिन पर्यन्त उन ब्रह्म राक्षसों को दे आता रहा और वे भोजन करते थे।

अब आठवें दिन मैंने अपना रूप और प्रभाव ले लिये तब तो वह जुवाड़ी भय से विकल होकर मुझको बोला—"आज मैंने उनको कुछ भोजन नहीं दिया आज ही आठवां दिन है और आजही वे छूटेंगे बस वे निकल के मुझे खा जावेंगे। सो अब मैं क्या करूं आप मेरे मित्र हैं आपही बतलावें।" उसका

(१) नर मांस।

ऐसा कहना सुन मैं बहुत प्रसन्न हुआ और बोला–"यदि यही बात है तो तुमने वे जुआड़ी उन ब्रह्म राक्षसों को खिलाये अब मैं तुम्हारे लिये उन ब्रह्मराक्षसों को चलो खा लेता हूं, चलो मित्र मुझे दिखा दो।" मेरा ऐसा कथन सुन वह जुआड़ी मुझे अति शीघ्र उस कूप पर ले गया। ज्योंही मैं नीचे मुख कर झांकने लगा कि ऊपर से उस धूर्त ने गलधक्का दे मुझे कूए में ढकेल दिया।

ज्योंही मैं कूए में गिरा कि उन ब्रह्मराक्षसों ने समझा कि भोजन आ गया बस उन्होंने लपक कर मुझे पकड़ लिया। अब मेरा उनके साथ मल्लयुद्ध होने लगा। लड़ते २ जब वे मुझे पछाड़ न सके तब तो समझ गये कि हां यह भी कोई है सो उन्होंने युद्ध छोड़ दिया और मुझसे पूछा कि तुम कौन हो? तब मैं उस डाकिनेय के वृत्तान्त से लेके अपने वृत्तान्त पर्यन्त साद्यन्त समस्त कथा उनको सुना गया। चलो अब क्या अब तो मित्रता हो गयी। तब उन दोनों ने मुझसे कहा "अहो! तुम्हारी हमारी और उन जुआड़ियों की उस दुष्ट धूर्त जुआड़ी ने कैसी गति कर डाली। भला जिनके मनमें न तो मैत्री है न दया है (१) और न उपकार है केवल छलही बाहिर भीतर भरा है ऐसे धूर्त जुआड़ियों का कभी विश्वास हो सकता है! साहस और नैरपेक्ष्य (२) यह तो जुआड़ियों का स्वाभाविक गुण है। सुनो हम तुम्हे ठिण्ठाकराल की कथा सुनाते हैं।

पूर्व काल की बात है कि इसी उज्जयिनी पुरी में ठिण्ठाकराल नामक एक जुआड़ी रहता था वह सदा सबसे टेढ़ा ही रहता था और जैसा उसका नाम था वैसा ही वह सचमुच था। उसकी यह दशा थी कि वह जुआ प्रति दिन खेलता किन्तु सदा हार ही जाता, एक दिन भी न जीतता। उसकी यह दशा थी कि एक कौड़ी भी उसके पास न रहती। जूए में जो दूसरे जुआड़ी जीतते थे वे उसे सौ कौड़ियां प्रति दिन दे दिया करते थे, उन्हीं से वह सायङ्काल में बाजार से गेंहू का पिसान मोल लेता और जहां कहीं होता खपड़ी में सान के लिट्टी

(१) यहां मूल में घृणा शब्द है जिसका अर्थ प्रथम तो दया है दूसरे घिन भी है। परन्तु यहां पहिला अर्थ ही संगत जान पड़ता है।

(२) किसी की अपेक्षा न करनी, अपना अर्थ देखना।

बनाता और श्मशान में जा के चिता के अंगारों पर उन्हें सिझा लेता तथा महा-काल के समक्ष जाकर उन्हीं के आगे जलते दीपकों के घृत में बुभों २ कर खाता (१) उन्हीं महाकाल के आंगन की धरती पर ही बांह पर सिर रख के रात में सो रहता।

एक दिन की बात है कि वह महाकाल के मन्दिर में सोया था कि क्या देखता है कि मातृमण्डल तथा यक्षादिकों की प्रतिमाएं मन्त्र के प्रभाव से इधर उधर दौड़ धूप कर रही हैं, यह देख उसके मन में यह बात आयी कि मैं यहीं क्यों न अपनी युक्ति लगा कर उपाय करूं। यदि कहीं उपाय सिद्ध हो गया तब तो अपना काम ही ठीक हो गया और जो न सिद्ध हुआ तो मेरी इसमें हानि ही क्या है। इतना विचार कर उसने देवताओं को ललकार कर कहा कि आओ मेरे साथ जुआ खेलो तो जानूं। देखो मैं अकेला ही तुम सभों के साथ खेलूंगा परन्तु बात इतनी अवश्य है कि मैं ही सभ्य (२) और पातयिता (३) होऊंगा। और एक बात यह भी है कि जिता हुआ द्रव्य तुरत रख दिया जावे। उसका ऐसा कथन सुन वे कुछ न बोलीं, चुप ही रह गयीं।

इस प्रकार उनके चुप रहने पर ठिण्ठाकराल ने पट पर कुछ टूटी फूटी कौड़ियों का दांव लगा कर पासा फेंक दिया। जुवाड़ियों का यह नियम है कि जो दांव पड़ जाय उसका स्वीकार कर लेना पड़ता है उसमें किसी प्रकार का टांटूं नहीं करना पड़ता। इस प्रकार आप ही पासा फेंकता जाय और जीतता जाय, इस रीति से वह धूर्त बहुत सा सोना उन देवताओं से जीत गया और तब बोला— अब बस! जो कुछ मैं जीत चुका सो झट पट दे दिया जाय। क्योंकि ऐसी प्रतिज्ञा पहिले ही हो चुकी है।

उसका ऐसा बार बार कहना सुनकर देवताओं ने कुछ भी उत्तर न दिया तब तो वह जुआड़ी धूर्त क्रोध कर बोला—"देखा तुम सब अब चुप हो रहे हो और कुछ कहते नहीं हो तो तुम्हारी वही दशा कर डालूंगा जो उस जुआड़ी की कियी जाती है जो जीता हुआ धन नहीं देने के कारण पाषाण सा पड़ा रहता है। सो अब

(१) एक समय वह था कि सौ कौड़ियों में एक जन का पेट भर जाता था।
(२) मालवाला जो जुआ खेलाता। (३) पासा फेंकनेवाला।

मैं यमदंष्ट्रा की धारधार के समान तीक्ष्ण धारे से तुम सभों के अङ्ग काट डालूंगा इसमें मुझको कुछ भी सोचना विचारना नहीं है। इतना कह ज्योंही वह धारा लेकर दौड़ा कि देवताओं ने उसका जीता हुआ स्वर्ण धीरे से उसे दे दिया। इस प्रकार वह जुआड़ी सुवर्ण ले जाकर दिन में जूआ खेलता और सर्वस्व हार कर फिर रात में वहीं आकर मातृमण्डल को जूए के लिये ललकारता इस भांति वह प्रति दिन करता।

इस प्रकार हारते २ माताएं (१) अति खिन्न हो गयीं तब देवी चामुण्डा ने उन्हें खिन्न देख एक दिन कहा —"सुनो मातृदेवताओ! जूए का यह नियम है कि जब कोई जूए के लिये ललकारे तब यह कह देना कि "अब मैं जूए से दूर हूं।" सो तुम सब यही काम करो। जब वह ललकारे तब ऐसा ही कहके अलग हो जाओ!" चामुण्डा का ऐसा वाक्य उन देवियों ने गांठ बांध लियो। सो जब सायङ्काल में वह जुआड़ी आकर जूए के लिये ललकारने लगा तब सभों ने कह दिया "हम जूए से अलग हो गयी हैं।"

जब उन देवियों ने इस प्रकार नाहीं कर दिया तब ठिण्ठाकराल ने उनके प्रभु महाकाल को ही जूए के लिये ललकारा। देव महाकाल तो समझ ही गये थे कि यह पक्का जुआड़ी है, सो वह बोले —"भाई! मैं तो जूए से अलग रहता हूं मैं अब क्या खेलूं।" ठीक ही है जो दोषयुक्त रहता है, सो सदा टेढ़ा बना रहता है। इष्टानिष्ट का भय कुछ भी नहीं रखता उससे देवता भी ऐसे डरते हैं मानों वे कुछ करही नहीं सकते और बड़े असमर्थ हो गये हों।

इस प्रकार उस जुआड़ी ठिण्ठा कराल की युक्ति जब न चली तब वह बड़ा खिन्न हो गया और इस भांति चिन्ता करने लगा—"अहा! देवताओं ने मुझे जूए की स्थिति सिखा कर भी अब तिरस्कार कर दिया। सो अब मैं इन्हीं देव की शरण लेता हूं।" इतना विचार वह ठिण्ठाकराल उन महाकाल के चरण पकड़ कर स्तुति करता हुआ इस प्रकार कहने लगा:—

॥ दोहा ॥

देवी जूए में लिहिन, जीति इन्दु वृष और ॥

(१) मातृदेवियां।

कुञ्जर चर्म्म, कपोल धरि, जानू पर तनु गोर ॥ १ ॥
ऐसे नंगे देव को, नमत अहौं बहुबार ॥
"चरणाम्बुपर मस्तक धरूं, औढ़ाइहानि विचार ॥ २ ॥"
जाकी टूका मात्र मे, विभव देत सुर जाल (१) ॥
जो निरीह दुकनारिधर (२), जटा रु भस्म कपाल ॥३॥
अस निर्मोही होइ कै, भयह लोभ वश आज ॥
मन्दभाग मेरो अहै, जो तुम अस महराज ॥ ४ ॥
टुक थोड़ी सौ बात हित, बहुत मोकहँ देव ॥
अस नाहीं तोहिं चाहिये, भूलि गये निज टेव (३) ॥५॥
कल्पवृच्छ दुर्भाग्य कर, आशा पूरत नाहिं ॥
भैरव विश्वहिं पालि जो, मोकहं पालत नाहिं ॥ ६ ॥

॥ सोरठा ॥

हौं शरणागत तोर, कष्ट व्यसन आविष्टचित (४) ॥
क्षमहु व्यतिक्रम मोर, स्थाणु महाप्रभु करि कृपो ॥ १ ॥
त्र्यक्ष (५) अहो तुम देव, वैसो हो हौंहू अहौं (६) ॥
भस्म जु अङ्गनि सेव (७) तुमरो वैसे मोरहूं (८) ॥ २ ॥

---

(१) समूह। (२) एक ही स्त्री के धारण करनेवाले, एक पत्नीव्रतधारी।
(३) बान, अभ्यास।
(४) कष्ट और विपत्ति से व्याप्त है चित्त जिसका।
(५) तीन आंखवाले त्रिनेत्र।
(६) मैं भी तीन (अक्षों) अर्थात् पासों का रखनेवाला अर्थात् उनसे खेलनेवाला हूं।
(७) भस्म तुम्हारे अङ्ग की सेवा करता है अर्थात् अङ्ग में भस्म लगा रहता है।
(८) मैं भी धूल में लेटता रहता हूं।

तुम कपाल महँ खाव, वैसहिं हौ हूं करत हौं ॥
करहु दया को भाव, तुम दयाल अब मोहि पर ॥ ३ ॥
करि तुव संग अलाप, अब कितवन (१) संग कस करव ॥
हरहु मोर सन्ताप, और काह उद्धार प्रभु ॥ ४ ॥

इस प्रकार जब उस जुआड़ी ने उन भैरवजी की स्तुति कियो तब वह बड़े ही प्रसन्न हुए और प्रत्यक्ष होकर उसको बोले—"ठिण्ठाकराल ! मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं तू धैर्य का त्याग मत कर; अब तू चिन्ता मत कर मैं तुझे नाना प्रकार के भोग देऊंगा, तू मेरे पास यहीं रह।" इस प्रकार देव की आज्ञा पाय वह जुआड़ी वहीं रहने लगा और उनके प्रसाद से प्राप्त नाना प्रकार के भोगों का उपभोग करता।

एक समय की बात है कि उस महाकाल तीर्थ में स्नान करने को रात्रौ के समय अप्सरायें आयीं सो उन्हें देखकर भैरव देव ने उस कितव से कहा:—"हे ठिण्ठाकराल ! देख एक काम कर, ये देवाङ्गनाएं जब स्नान करने लगें तब तू किनारे पर धरे हुऐ उनके वस्त्र बटोर कर यहां चला आना और जब लों वे तुझे अप्सरा की कन्या कलावती को न देवें तब लों तू उनके वस्त्र मत छोड़ियो।" इस प्रकार भैरव भगवान् का कथन सुन वह ठिण्ठाकराल वहां गया और उन अमरमृगनयनियों के (१) वस्त्र लेकर चलता हुआ। यह देख वे सुरवनिताएं बोलीं:—"अरे ! हमारे वस्त्र मत ले जा, सुन उन्हें छोड़, देख हम नङ्गी रह जायंगी सो ऐसा मत कर।" इस प्रकार उनका वचन सुन कर भगवान् के बल से आप्यायित वह ठिण्ठाकराल बोला:—"जो तुम इस कलावती कन्या को मुझे दे दो तो मैं तुम्हारे वस्त्र छोड़ देऊं, यदि ऐसा न करो तो मैं कदापि नहीं देने का।"

उसको ऐसा कथन सुन अप्सराओं ने विचारा कि भैरवजी के प्रसाद से यह इस समय दुर्धर्ष (२) हो गया है अब यह किसी प्रकार मानने का नहीं, पुनः

(१) जुआड़ी, धूर्त्त।

(१) अप्सरा। (२) जिसपर किसी का बल न चले।

कलावती को इन्द्र का शाप भी है तो अब इसका ही कहना मान लेना चाहिये ऐसा विचार वे उसके प्रस्ताव पर सम्मत हुईं। सो उन्होंने उसे अलम्बुषा की कन्या कलावती को विधि के अनुसार दे दिया और उसने उनके वस्त्र दे दिये। अप्सरा इतना कर स्वर्ग को चली गयीं तब ठिण्ठाकराल कलावती के साथ भैरव जी के समीप लौट आया और उन्हीं भगवान् की इच्छा से उसके लिये एक उत्तम भवन बन गया सो वह अपनी भार्य्या के साथ उसी में रहने लगा। कलावती प्रति दिन दिन के समय इन्द्र की सेवा करने के लिये स्वर्गलोक को जाती और रात्री के समय अपने पति के पास लौट आती।

एक समय की बात है कि कलावती ने प्रेम से उससे कहा:—हे प्रिय तुम जो मुझे पति मिले हो इसमें इन्द्र का शाप कारण है, उसी के प्रभाव से तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ है। सो सुन ठिण्ठाकराल ने उससे पूछा कि प्रिये तुम्हारे इस शाप का कारण क्या है? ऐसा पति का प्रश्न सुन कलावती बोली:—एक समय की बात है कि उद्यान में देवों को देख कर मैंने मर्त्यभोग की प्रशंसा कियी और स्वर्ग के उपभोगों को यह कहकर निन्दा कियी कि ये दृष्टि मात्र से उपभोग के देनेवाले हैं।" यह सुन देवराज ने मुझे शाप दे दिया कि जा मैं तुझे शाप देता हूं,। तेरा विवाह एक मर्त्य से होगा और तू मानुष भोगों का उपभोग करेगी। सो हे वल्लभ उसी शाप के कारण हम दोनों का यह संयोग हुआ है। और एक बात यह है कि कल जब मैं स्वर्ग को जाऊंगी, सो आने में कुछ विलम्ब होगा सो तुम घबड़ाना मत। बात यह है कि कल इन्द्र के समक्ष रम्भा एक नवीन नाच दिखावेगी सो जब लौं वह समाप्त न हो जावे हम लोगों को वहां रहना पड़ेगा। हे प्रिय! विलम्ब का यही कारण है।"

एक तो रम्भा का नृत्य, दूसरे नवीन, भला ऐसा अवसर कहां मिले! सुनते ही ठिण्ठाकराल के मुंह से लार टपक पड़ी, उसने अपनी प्यारी कलावती से कहा: "हे प्रिये! मैं उस नृत्य के देखने की इच्छा रखता हूं सो छिपा कर मुझे वहां ले चलो।" पति का ऐसा कथन सुन कलावती बोली:—"हे प्राणवल्लभ! यह क्यों-कर हो सकता है, कदाचित् यह भेद खुल गया तो देवराज मेरे ऊपर बड़े ही अप्रसन्न होंगे।" कलावती का ऐसा वचन सुन फिर भी वह अपने मनोरथ से न

हटा और हठ करता ही गया कि जैसे हो तैसे मुझे वह नाच दिखाओ। निदान अगत्या कलावती को उसके वचन पर सम्मत होना ही पड़ा, अस्तु वह उसको ले जाने पर सम्मत हुई। सो कलावती अपने प्रभाव से ठिण्ठाकराल को छिपा कर अपने कनफूल में रखकर महेन्द्र के मन्दिर में ले गयी।

आहा! महेन्द्र के मन्दिर की शोभा क्या बखानिये! द्वार पर ऐरावत गजेन्द्र झूम रहा है, सामने ही नन्दन कानन अपनी निराली छटा दिखा रहा है। ऐसा भवन देख ठिण्ठाकराल तो फूल गया उसने समझा कि मैं भी एक देव ही हूं तब न ऐसे अनुपम स्थान में आ सका। वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। आगे बढ़ कर जब कलावती इन्द्र की सभा में पहुंची है तब वहां सभा की शोभा का वर्णन क्या किया जाय, अपने २ स्थान पर सब देव विराजमान हैं, गानेवाली अप्सराएं गोल बांध कर बैठी हैं, आज रम्भा का नवीन नृत्योत्सव है इससे अद्भुत हो गया है। नारद मुनि के बनाये हुए (१) सब प्रकार के वाद्य बज रहे हैं। ये सब नृत्य गीत और वाद्य सुन वह ठिण्ठाकराल महाप्रमुदित हुआ। ठीक ही है परमेश्वर के प्रसन्न होने पर क्या अप्राप्य है।

जब नृत्य गीतादि समाप्त हो गया तब स्वर्गीय एक भांड़ उठा और बकरे की आकृति बना वहां नाचने लगा और नाना प्रकार के भाव दिखाने लगा। ठिण्ठाकराल उसे देख पहिचान गया, अपने मनमें विचारने लगा इस बकरे को तो मैं उज्जयिनीमें देखता था सो यहां इन्द्र के समक्ष यह भांड़ कहां से आ गया अहो! यह तो कोई अद्भुत देवमाया है जिसकी भावना भी नहीं हो सकती। ठिण्ठाकराल इस प्रकार अपने मन में चिन्ता करही रहा था कि उस छागाकृति भांड़ का नृत्य समाप्त हो गया और इन्द्रकी सभा विसर्जित हुई। अब कलावती कनफूल में बैठे अपने पति को लिये दिये अति प्रसन्न हो घर लौट आयी।

दूसरे दिन ऐसा हुआ कि ठिण्ठाकराल ने उज्जयिनी में उसी छागाकृति स्वर्गीय भांड़ को देखा, सो देखते ही अहंकार से चूर्ण वह ठिण्ठाकराल उसको बोला:—"अरे भांड़! जिस प्रकार तू इन्द्र के समक्ष नाचता है वैसे ही मेरे सामने

(१) नारदमुनि से आविष्कृत।

भी नाच और जो ऐसा न करेगा तो देख मैं तेरी यह धृष्टता कभी न सहूंगा सो मुझे वही नृत्य दिखा। उसका ऐसा आदेश सुन वह बकरा बड़ा ही अचम्भित हुआ और कुछ बोला नहीं, चुपचाप मन ही मन विचारने लगा कि यह मनुष्य होकर मुझे क्योंकर जानता है! वह तो इस आश्चर्यसागर में गोते खा रहा था इधर ठिण्ठाकराल मानता ही नहीं था वह नाचने को कहता ही जाता था परन्तु वह छाग न नाचा। तब तो ठिंठाकराल को बड़ा क्रोध आया उसने लाठी से उसकी अच्छी पूजा कियो। उस छाग के शिर से लोहू बहने लगा, लहूलुहान वह दौड़ता हुआ इन्द्र के समक्ष उपस्थित हुआ और सारा वृत्तान्त सुना गया।

उसका ऐसा कथन सुन इन्द्र ने ध्यान लगाया कि यह क्या व्यापार है, सो वह समझ गये कि कलावती रम्भा के नृत्य में ठिंठाकराल को यहां ले आयी थी। उसी समय उस अपराधी ने इस छाग का नृत्य देखा था। बस उन्होंने कलावती को तुरंत बुलाय भेजा और यह शाप दिया कि जो नाच के लिये इस छाग की यह दशा कियी गयी, और कि तु बड़े प्रेम के कारण मनुष्य को छिपा कर यहां लायी इससे मैं तुझे यह शाप देता हूं कि," नागपुर में राजा नरसिंह ने जो देव-मन्दिर बनवा रखा है उसके खम्भे में जाकर तू पुतली बन।" देवराज इन्द्र इस प्रकार शाप देकर जब शान्त हुए तब कलावती की माता अलम्बुषा ने इन्द्र से बड़ी विनति और दिरीरी कर शापान्त की प्रार्थना कियी तब महेन्द्र ने यह शापान्त ठहरा दिया कि जब बहुत वर्षों के उपरान्त वह देवमन्दिर ढह कर धरती से मिल जायगा तब इसका शापान्त हो जावेगा।

इस प्रकार इन्द्र से शाप और शापान्त पाकर कलावती अपने पति के पास लौट आयी और रोकर धिक्कारती हुई सारा वृत्तान्त सुना गयी। अब कलावती ने अपने सारे आभरण उतार कर ठिंठाकराल को दे दिये और आप अन्तर्धान हो-कर नागपुर में जाकर देवमन्दिर के खम्भे की अगली पुतली में प्रवेश किया।

इस भांति पत्नी के वियोग विष से ठिंठाकराल जलने लगा, अब उसे न तो कुछ दीख पड़ता और न कुछ सुनाई पड़ता, मूर्छित होकर वह धरती पर गिर कर छटपटाने लगा। जब चेत हुआ तब वह इस प्रकार विलाप करने लगा! अहो! वह मैं जानता था कि यह सुगुप्त विषय है तोभी मैं ऐसा मूर्ख हो गया कि भेद

खोल दिया भला मुझसे स्वाभाविक चपल का प्रेम कब सम्भव है ! इसी चपलता का यह परिणाम है कि ऐसा विषम वियोग मेरे ऊपर भहराया है, यह मेरी ही मूर्खता का फल है ।

थोड़े ही समय में वह प्रकृतिस्थ हुआ, सम्भला और तब यह विचार करने लगा-यह समय अब विलाप करने का नहीं है, धैर्य का अवलम्बन करना चाहिये। धैर्य धर कर उस प्राणेश्वरी के प्राप्ति का यत्न क्यों न करूं ।

इस प्रकार चिन्ता कर वह धूर्त उठा और परिव्राजक का वेष बना मस्तक पर जटा लगा, मृगचर्म धारण कर, अक्षमाला हाथ में लेकर, सूत्र धारण कर, नागपुर की ओर चला । वहां पहुंच कर उसने नगर के बाहिर चारों दिशाओं में चार गढ़े खोदे और अपनी प्रिया के दिये आभरण चार घड़ों में भर कर एक २ घड़ा एक २ दिशा में गाड़ दिया और पांचवें घड़े में बहुत से बहुमूल्य रत्न भर कर नगर के मध्यवर्ती देवमन्दिर के सामनेवाले हाट में रात के समय जाकर धरती में उसे गाड़ दिया । इतना कार्य कर वह धूर्त नदीतीर पर गया और वहां झोपड़ी बना कर झूठ मूठ तपस्या और जप में लवलीन हुआ ।

दिन में तीन वार स्नान करता, भिक्षा मांग कर आहार करता, पत्थर पर ही पड़ रहता । इस प्रकार वह तपस्या करता रहा । थोड़े ही दिनों में उसका नाम चारों ओर फैल गया, लोग उसे महातापस समझने लगे। होते २ राजा के कान में उसकी बात पहुंची, उन्हें उसके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा हुई । राजा ने बड़ी अभ्यर्थना और विनति से उसे बुलवाया पर वह न गया तब नरपति स्वयं उसके समीप उपस्थित हुए । महीपति के साथ नाना विषयों पर कथोपकथन होने लगा। इस प्रकार बहुत देर लों बात चीत होती रही सायङ्काल में जब राजा चलने पर हुए उस समय अकस्मात् बड़ी दूर पर सियारिन फेंकरी उसका फेंकरना सुन वह कपट तापस हंस पड़ा। उसके हंसने पर राजा को बड़ा कौतूहल हुआ उन्होंने पूछा—"महाराज ! यह क्या बात है ?" तापस ने कहा—"यह पूछ कर क्या करोगे ? तब तो महीपति का कौतूहल और भी बढ़ा उन्होंने बड़े चाव से कई बार पूछा। राजा के इस प्रकार बार २ पूछने पर वह मायावी बोला—"राजन् ! मैं पशु पक्षियों की बोली समझता हूं यह सियारिन यह कह रही है कि इस

नगर के पूर्व ओर जंगल में बेत के तले रत्नों और आभरणों से परिपूर्ण एक घड़ा है सो उसे ले लेओ।" इतना सुनते राजा को बड़ा ही कौतुक हुआ। अब वह कपट तापस राजा को लेकर उसी स्थान पर गया। उसने धरती खोद कर वह घड़ा निकाला और धरणीपति को अर्पण कर दिया। आभरणपूर्ण ऐसा कलश पाकर राजा बड़े ही प्रसन्न हुए, उनका विश्वास इस धूर्त तपस्वी पर और बढ़ गया उन्होंने निश्चय कर जान लिया कि यह तपस्वी बड़ा ज्ञानी, सत्यवादी और निस्पृह है; भला निस्पृहता का क्या पूछना कि ऐसा रत्न भरा घड़ा दूसरे को दे देना। अब सब लोग उस तापस के आश्रम को लौट आये। तत्पश्चात् महीश उस तपस्वी को प्रणाम कर रात के समय अपने मन्त्रियों के साथ राजमन्दिर को चले गये, मार्ग में उस योगी की बड़ी प्रशंसा होती रही। अब राजा प्रति दिन उस तपस्वी के आश्रम में पहुंचते। सो उस योगी ने उसी प्रकार किसी न किसी पशु अथवा पक्षी के शब्द के बहाने शेष तीन दिशाओं के रत्नपूर्ण कलश राजा को दे दिये। अब उस तापस के यश को क्या पूछना नगर भर के लोग, सब, मन्त्री और क्या राजा के अन्तःपुर की स्त्रियां भी उस तापस के बड़े ही पूर्ण भक्त हो गये।

एक समय की बात है कि राजा उसे अपने देवागार देखने को लिवा गये सो जब वह वहां गया तो उसी समय एक दूकान पर बैठा कौवा कांव २ करने लगा। सो सुन कपट तापस बोला: —"महाराज देवमन्दिर के समक्ष यहीं हाट में निधि गड़ी है अर्थात् उत्तमोत्तम रत्नों से भरा एक कलश है सो आप उसे भी क्यों नहीं ग्रहण करते। कौवा यही कहता है सो आप स्वीकार करें। ऐसा कह वह राजा को उसी ठांव पर ले गया। वहां उसने भूमि खुदवायी तो सचमुच रत्नपूर्ण घड़ा मिला सो उसने निकाल कर धरणीश को अर्पण कर दिया। राजा बड़े ही सन्तुष्ट हुए।

अब महीपति उस कपटतापस का हाथ पकड़े हुए उस मन्दिर के भीतर गये। वहां उसने खम्भे में वह पुतली देखी जिसमें उसकी प्रिया कलावती पैठी थी। खम्भियां में प्रविष्ट कलावती भी अपने पति को देख कर अति दुःखित हो विरहव्यथा न सम्भाल सकी और रोने लगी। पुतली का रोना बड़ा ही आश्चर्य है, राजा के आश्चर्य और विषाद का ठिकाना न रहा उन्होंने उस तपस्वी से पूछा—

भगवन् ! कहिये तो सही यह क्या बात है ? यह धूर्त तो अपना अवसर ढूंढ़ही रहा था, अत्यन्त अचम्भित और उदास होकर बोला—"महाराज ! चलिये भवन लौट चलिये, यद्यपि यह बात कहने योग्य नहीं है तथापि मैं आपको एकान्त में बतला देऊंगा।" ऐसा कह वह राजा को राजधानी में लौटा ले गया।

वहां उसने नृपति से एकान्त में कहना प्रारम्भ किया—"महाराज ! आपने यह जो मन्दिर बनवाया है सो बड़े ही दुष्ट मुहूर्त में इसकी नींव पड़ी और जिस स्थान में यह मन्दिर बना है वह स्थान भी बड़ा बुरा है। आपको देख के जो पुतली रोयी इसका यह फल सूचित हुआ है कि आज से तीसरे दिन आपका कोई बड़ा ही अनिष्ट होनेवाला है। सो यदि आपको अपने शरीर से कुछ काम हो (१) तो एक काम कीजिये। यह मन्दिर आज ही ढहवा कर धरती के बराबर करवा दीजिये। फिर एक अच्छे स्थान में, शुभ मुहूर्त में मन्दिर बनवाइयेगा, इससे अशुभ का शमन हो जावेगा और आपका तथा आपके राज्य भर का कल्याण होगा।" राजाओंके यहां तो बातकी देरी रहती है। बस सब प्रजाओंको आज्ञा दे दियी और बात की बात में वह मन्दिर गिरा कर धरती के बराबर कर दिया गया। इसके उपरान्त ही एक दूसरे स्थान में देवालय का काम प्रारम्भ हो गया। इसका क्या पूछना है कि वह दूसरा स्थान उसी धूर्त तपस्वी ने निर्धारित कर दिया होगा। इसी प्रकार धूर्त लोग अपनी माया फैला वश में लाकर प्रभुओं को ठगा करते हैं। ठीकही कहा है:—

॥ दोहा ॥

तुलसी देखि सुवेष, भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकी पेख, वचन सुधासम असन अहि॥

अब वह कपटी तापस वेषधारी ठिण्ठाकराल अपना मनोरथ सिद्ध जान झट पट परिव्राट् का भेष त्याग वहां से भागा।

कलावती तो अपने शाप का अन्त जानती थी कि उक्त मन्दिर के धरणी के बराबर होने से ही होगा, सो तो हो ही गया अतः वह शापमुक्त हो गयी सो

(१) जीने की इच्छा रखते हो।

वहां से चली; मार्ग में पति को पाकर उसने बहुत कुछ समाश्वासन दिया और कहा कि मैं इन्द्र के दर्शन कर शीघ्र ही आती हूं। इतना कह वह यहां से चली और इन्द्र के पास तुरन्त जा उपस्थित हो गयी। इन्द्र भी उसे देख अति अचम्भित हो गये कि यह बात क्या हुई कि यह इतनी शीघ्र यहां आ धड़की। कलावती अपने पति की करनी वर्णन कर गयी सो सुन सुरपति उस जुआड़ी की करनी पर बड़े ही प्रसन्न हुए और हंस पड़े।

पास में ही उस समय गुरु बृहस्पति बैठे हुए थे सो इनको सम्बोधन कर गुरु बोले—"शतक्रतो! जुआड़ी ऐसे ही बड़े मायावी होते हैं, इनकी माया बड़ी ही विचित्र होती है सुनिये मैं आपको एक धूर्त जुआड़ी की कथा सुनाता हूं:—

पूर्वकाल की बात है कि किसी नगर में कुट्टिनीकपट नाम एक जुआड़ी बड़ा ही धूर्त रहता था। अपने व्यापार में वह अद्वितीय था। जब वह मर कर परलोक में न्याय के विचार के हेतु धर्मराज के समक्ष उपस्थित हुआ तब धर्मराज ने उससे कहा—"हे कितव! तूने इतने पाप किये हैं जिनसे तुझे कल्प (१) पर्य्यन्त नरक में वास करना पड़ेगा। हां एक बात है कि तूने एक ब्राह्मण को एक सुवर्ण मुद्रा दी है उसका फल यह है कि तुझे एक दिन का इन्द्रत्व मिलेगा। कह पहिले क्या भोगेगा नरक अथवा इन्द्रपद? उनका ऐसा कथन सुन वह जुआड़ी बोला—"महाराज! मैं पहिले इन्द्रपद ही भोगूंगा।" उस धूर्त जुआड़ी का ऐसा उत्तर सुन धर्मराज ने उसे स्वर्ग में भेज दिया। देवतों ने भी एक दिन के लिये इन्द्र को उठा कर उसे इन्द्रासन पर अभिषिक्त कर दिया।

अब तो वह एक दिन के लिये इन्द्र हो गया। वह आदेश चलाने लगा, अपने सब मित्र जुआड़ियों तथा अपनी वेश्याओं को बुलवा मंगाया और देवों को आदेश दिया कि इन लोगों को क्षण भर में ही सब तीर्थों में जो कि स्वर्ग में हैं और भूमि पर हैं और क्या सातों द्वीपों में जो हैं, ले चल कर स्नान करा लाओ और एक काम करो कि सब राजाओं के मन में, जो कि भूमि पर हैं, हमारे उद्देश्य से बड़े बड़े २ दान कराओ। देवगण उसकी आज्ञा पाकर सब कुछ उसके कथनानुसार कर

(१) १००० युग अर्थात् ४३२००००००० मानुष वर्ष।

पाये । इससे उस धूर्त के समस्त पाप धो गये और इन पुण्यों से उसने स्थिर इन्द्रत्व प्राप्त कर लिया । अपने जिन मित्रों और वेश्याओं को उसने बुलवा मंगाया था, उसके प्रताप से वे भी निष्पाप हो अमर हो गये । दूसरे दिन चित्रगुप्त ने धर्म्मराज से उस धूर्त का वृत्तान्त कहा कि महाराज! उस जुआड़ी ने तो अपनी बुद्धि के प्रभाव से स्थिर देवराजत्व प्राप्त कर लिया । तब तो उसके पुण्य को ऐसी कथा सुन धर्म्मराज अति विस्मित हुए और बोले –"अहो ! जुआड़ी ने तो मुझे ठग लिया ।"

इतनी कथा सुना कर देवगुरु बृहस्पति जी बोले—"हे वज्रिन् ! सो देखा न तुमने जुआड़ी लोग ऐसे धूर्त होते हैं ।"

इस प्रकार धूर्त जुआड़ी की धूर्तता की कथा सुना कर जब बृहस्पति चुप हो गये तब देवराज ने कलावती से कहा—"जाकर अपने पति को यहां ले आ ।" जब वह आकर शक्र के समक्ष उपस्थित हुआ तब देवराज ने उसकी बुद्धि और उसके धैर्य से अति सन्तुष्ट हो कलावती को दे दिया और उसको अपना पार्श्ववर्त्ती बनाया । अब वह धूर्त ठिण्ठाकराल भगवान् शङ्कर के अनुग्रह से अपनी प्रियतमा कलावती के साथ देवताओं के समान बड़े आनन्द और सौख्य का उपभोग करता हुआ स्वर्ग-लोक में रहने लगा ।

इतनी कथा सुनाय उन ब्रह्मराक्षसों ने कहा कि हे अग्निशिख वेताल मायावी और साहसी जुआड़ियों की ऐसी चाल ही है । यह आश्चर्य की क्या बात है जो जुआड़ी डाकिनेय ने आपको माया में फंसा इस कुए में ढकेल दिया । सो मित्र! तुम इस कूप से निकल जाओ पीछे हम भी इससे निकल कर चले जांयगे ।

इस प्रकार यमशिख को कथा सुनाय अग्निशिख बोला "हे यमशिख ब्रह्म-राक्षसों की इतनी बात सुन मैं उस मँड़ार से निकला और रात के समय इस नगरी में आया । उस समय मुझे भूख बड़ी लगी थी सो एक पथिक ब्राह्मण दीख पड़ा मैं झपट कर ज्योंहीं उसे पकड़ कर खाया चाहता था कि उसने राजा विक्रमादित्य की दुहाई दियी । सुनते ही अग्नि समान देदीप्यमान राजा वहां आ पहुंचे, मुझपर प्रहार कर बोले "आः ! पापी ! ब्राह्मण का बध मत कर ।" इस प्रकार प्रहार कर वह मेरे शिर काटने पर उतारू हो गये, मेरे गले पर

प्रहार किया और कण्ठ से लोहू बहने लगा । मैं उनके चरणों पर गिर कर विनती करने लगा अतः उन्होंने मेरी रक्षा कर दियी और मैं उस ब्राह्मण को छोड़ कर निर्द्वन्द्व हो गया । सो हे यमशिखा महाराज विक्रमादित्य का ऐसा प्रभाव है। उन्हीं की आज्ञा से मैंने इस खण्ड कापालिक को मार डाला है अतः हे यम-शिख बेताल मेरा भक्ष्य है तुम इसको छोड़ देओ । इस प्रकार अग्निशिख की बात सुन कर भी वह यमशिख अहङ्कार से चूर हो खण्ड कापालिक का कलेवर इधर उधर झकझोरता रहा कि उसी अवसर में महाराज विक्रमादित्य वहां आ पहुंचे. उन्होंने उस पुरुष को धरती पर पटक कर असि से उसका हाथ काट डाला। उनके काटते ही यमशिख का वह हाथ धरती पर गिर पड़ा इतने में ही वह भय के मारे शव छोड़ कर भाग गया। तब अग्निशिख उस कपाली का शव खा गया, मैं इस समय राजा के बल से निर्भय हो गयी थी सो यह सब अपनी आंखों देखती रही ।

इतनी कथा सुनाय अनङ्गदेव फिर कहने लगा कि हे महाराज! वह यक्षवधू मदनमञ्जरी मुझे आपके प्रभाव की इतनी कथा सुना कर फिर बोली—हे अनङ्ग-देव ! इसके उपरान्त उक्त राजा ने मुझसे कहा—"हे यक्षि ! अब तो तू कापालिक से छूट गयी अब अपनी पति के घर जा ।" मैं उनको प्रणाम कर अपने घर चली आयी । मेरे मन में उनके उपकार ने घर कर लिया और मैं सदा सोचती हूं कि क्योंकर उस उपकार से निस्तार पाऊं । इस प्रकार हे अनङ्गदेव ! तुम्हारे स्वामी ने मुझे प्राण, कुल और पति प्रदान किये (१) जब तुम उनसे मेरी यह कही हुई कथा कहोगे तो वह भी मेरी कथा कहेंगे। आज मुझे ज्ञात हुआ है कि सिंहलेन्द्र ने अपनी स्वयंवरा (२) त्रैलोक्यसुन्दरी कन्या उनके पास भेजी है सो डाह के मारे सब राजाओं ने मिल कर उसके हरण की चेष्टा कियी है, उनका विचार यह हुआ है

(१) मेरा सतीत्व रह गया, नहीं तो उसके नाश से मैं प्राणक दापि न रखती। इस प्रकार मेरे प्राण बचे, सतीत्वरक्षा से मेरा कुल बचा अर्थात् कलङ्कित न हुआ मैं शुद्ध रह गयी इससे प्राणपति मुझे मिल गये ।

(२) जो अपने आप पति को चुनने चली हो ।

कि सामन्त सहित विक्रमशक्ति का वध कर कन्या का अपहरण कर लेवें। सो तुम जाकर विक्रमशक्ति को इसकी सूचना दे देओ कि वह उन राजाओं के विषय में सावधान होकर रहे, मैं ऐसा यत्न करूंगी कि वह महाराज विक्रमादित्य शत्रुओं का नाश कर विजयप्राप्त करें। सो अनङ्गदेव! इसी कारण मैं तुम को अपनी माया से हर कर यहां लायी कि सामन्त सहित राजा से जाकर तुम सब वृत्तान्त कह देओ। और एक बात यह भी है कि मैं तुम्हारे प्रभु के पास वैसा ही उपहार भी भेजूंगी जिससे उनके किये उपकार को लेशमात्र निष्कृति हो जावे। महाराज! वह यक्षिणी इस प्रकार कह ही रही थी कि इतने में वे ही दो कन्याएं मृगसहित आ पहुंचीं जिन्हें हमने समुद्र में देखा था। एक तो चन्द्रमा के समान शोभनाङ्गी दूसरी प्रियङ्गुवत् (१) श्यामवर्णा। दोनों समुद्र के समीप वास करनेवाली मानो गङ्गा और यमुना। जब वे दोनों बैठ गयीं तब मैंने उस यक्षी से पूछा—देवि! ये दोनों कन्याएं कौन हैं और यह सौवर्ण (२) मृग कौन है?" महाराज! मेरे ऐसे प्रश्न सुन वह यक्षिणी बोली—"अनङ्गदेव। यदि इस विषय में तुमको कौतुक हुआ है तो सुनो मैं सुनाती हूं।"

पूर्व समय की बात है कि जब प्रजापति प्रजाओं की सृष्टि कर रहे थे उस समय उनकी सृष्टि में विघ्न उपजाने के हेतु बड़े घोर आकार के दानव घण्ट निघण्ट नामक उपस्थित हुए। वे ऐसे बलसम्पन्न कि सब देवगण के भी अजेय हो गये। उन्हीं के विनाश के लिये विधाता ने इन दोनों कन्याओं को, जिनका रूप ऐसा कि जिनको देखते ही जगत् उन्मत्त हो जावे, सृष्टि कियी। इन कन्याओं को निरखते ही दोनों दैत्य इनके हरण की चेष्टा कर परस्पर युद्ध करने लगे और फल यह हुआ कि लड़ते २ दोनों मर गये। तब ब्रह्मा ने धनाध्यक्ष,को ये कन्याएं सौंप दियीं और उनसे कह दिया कि योग्य वर देख कर तुम इनका दान कर देना। धनद ने भी अपने अनुज मेरे पति को सौंप दियीं और उन्होंने इनके विवाह का भार मुझ पर डाल ये कन्याएं मुझे सौंप दियीं। मैंने इन दोनों का पति श्रीविक्रमादित्य को ही निश्चय किया है क्योंकि वह देवता के अवतार होने के कारण इनके योग्य

(१) एक लता है।	(२) सुवर्ण का बना।

पति हैं। यह तो इन कन्याओं की कथा हुई अब सुनो मैं तुमको इस मृग की कथा सुनाती हूं।

शचीपति (१) का पुत्र जयन्त है जो कि उनका बड़ा ही दुलरुआ है। जब वह बालक ही था उसी समय एक दिन की बात है कि स्वर्ग की स्त्रियां उसे आकाश में टहला रही थीं। उसने नीचे जो दृष्टि कियी तो क्या देखा कि बहुत से राजकुमार मृगशावकों के साथ खेल रहे हैं। वह बालक तो था ही, मचला गया कि मैं भी मृगशिशु के साथ खेलूंगा। स्वर्ग में इन्द्रदेव के समक्ष बहुत रोने लगा। इन्द्र ने विश्वकर्म्मा से उसके लिये सुवर्ण और रत्नों का मृग बनवाया और अमृत सींच कर उसे जीवित किया। तब जयन्त सन्तुष्ट हुआ और उस मृग के साथ खेला करता। यह हरिण भी स्वर्ग में रहने लगा।

कुछ कालोपरान्त रावण के पुत्र इन्द्रजित् जिसका कि नाम अन्वर्थ (२) था, स्वर्ग से हरण कर यह मृग अपनी नगरी लंका में ले गया, जब कि सीता हरी गयी उस समय महावीर राम लक्ष्मण ने अति क्रोध कर लङ्का पर चढ़ाई कर रावण और इन्द्रजित् को बध किया। लङ्का का राज्य विभीषण को मिला तब यह हेममय अद्भुत मृग विभीषण के मन्दिर में रहने लगा।

एक समय बिभीषण के घर कुछ उत्सव पड़ा, सो वह मुझे बुला ले गये थे। सो मेरे पति के बन्धुत्व के कारण उन्होंने बड़े सम्मान के साथ यह मृग मुझको दे दिया। सो अब यह हेममृग मेरे घर में रहता है। मैं तुम्हारे प्रभुको यह मृग उपहार दूंगी।"

महाराज! इस प्रकार वह यक्षिणी मुझसे कह रही थी कि इतने में कमलिनी के कान्त (३) सूर्य अस्ताचल के शिखर पर पहुंच गये। सन्ध्यावन्दन का समय हो गया सो हमने सन्ध्योपासन किया। सन्ध्यावन्दन के पश्चात् उस यक्षिणी के बतलाये हुए घर में सिंहलेश्वर के यह दूत और मैं सो रहे। प्रात:काल जब जागे तब क्या देखते हैं कि आपके सामन्त विक्रमशक्ति की सेना में उपस्थित हैं।

(१) इन्द्राणी के पति अर्थात् इन्द्र। (२) जैसा नाम वैसा गुण।
(३) कमलिनीवल्लभ।

हम दोनों बड़े ही अचम्भित हुए कि यह क्या व्यापार है अन्त में यही निश्चित किया कि उस यक्षिणी के प्रभाव से हम दोनों यहां पहुंचाये गये हैं, सो हम दोनों शीघ्र ही विक्रमशक्ति के पास जा उपस्थित हुए। उन्होंने देखते ही हम दोनों का बड़ा सम्मान किया। अब वह हमसे सिंहलेश्वर का सन्देश पूछ ही रहे थे कि, इसी अवसर में यक्षों की सेना से घिरी वे दोनों दिव्य कन्याएं हरिण पोत के संग आ पहुंचीं। हे देव! उन सभों को देखते ही विक्रमशक्ति बहुत घबड़ा गये कि यह क्या बात है, दुष्ट भूतों की माया तो नहीं है। बड़े आश्चर्य से उन्होंने मुझसे पूछा "यह क्या बात है?" तब सिंहलद्वीप के अधीश्वर की कथा से लेकर उक्त यक्षिणी और उन दोनों कन्याओं तथा उस खड्ग का वृत्तान्त मैं क्रमानुसार सुना गया। यह तो मैं पहिले ही यक्षी के मुख से सुन चुका था कि सब राजा एक गुट कर हमारे राजा से द्वेष का उद्यम कर रहे हैं सो मैंने वह वृत्तान्त भी उनसे कह दिया। तब उक्त सामन्त ने हम दोनों का तथा उन दो दिव्य कन्याओं का बड़े हर्ष के साथ सम्मान किया।

इसके उपरान्त, हे देव। विक्रमशक्ति ने युद्ध का डङ्का बजवा दिया। महाराज! बात की बात में सैन्य सज्ज हो गया, तूर्य का महा शब्द होने लगा। इतने में ही म्लेच्छों सहित विपक्षी राजाओं का बड़ा भारी सैन्य आ विराजा। दोनों सैन्यों का परस्पर दर्शन हुआ, दोनों में क्रोध का आवेश हो आया, दोनों दौड़ कर भिड़ गये और हमारी सेना तथा शत्रुओं की सेना से युद्ध छिड़ गया।

यक्षिणी की भेजी सेना ने शत्रुओं का संहार करना प्रारम्भ कर दिया. इधर हमारी ओर भी वीर थे सो दोनों मिलकर शत्रुदल पर अस्त्र शस्त्र की वर्षा करने लगी। उस समय रणदुर्दिन (१) उपस्थित हो गया; सेनाओं से जो धूलि उड़ी थी वही तो मानों मेघ थे, खड्गों की धारा मेघों की मूसल धार वृष्टि, शूरवीर जब भर कर गर्जन करते थे वही मानों मेघगर्जन था। उस समय कट कर जो शत्रुओं के शिर गिरते उनसे ऐसा प्रतीत होता था कि हमारी जयश्री गेंद खेल रही है।

(१) मेघाच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम् — जिस दिन मेघ घिर के वर्षा करें वही दुर्दिन कहलाता है।

क्षण भर में ही उन राजाओं की सेना बिखर गयी और वे राजा लोग भी थोड़े ही रह गये सो जो बचे थे सो आपके सामन्त की शरण में आ गये।

हे सार्वभौम! इस प्रकार जब आपकी सेना ने चारों दिशाएं जीत लियीं और म्लेच्छों को उच्छिन्न कर डाला उस समय वह यक्षिणी अपने पति के साथ वहां पर प्रकट हुई और मुझको तथा विक्रमशक्ति को सम्बोधन कर इस प्रकार कहने लगी—"यह जो मैंने तुम्हारे प्रभु की थोड़ी सी सेवा कर दियी है सो तुम उनसे मेरा यह सन्देशा कहना कि हे देव! आप इन दोनों कन्याओं से व्याह कर लीजियो ये दोनों देवनिर्मिता हैं, इनके ऊपर आपका प्रसाद बना रहे कृपादृष्टि रखियो, और इस मृग का लालन कीजियो। यह मेरा उपहार है।" इतना कह रत्नों की राशि देकर वह यक्षिणी अपने पति तथा अनुचरों के साथ अन्तर्धान हो गयी।

दूसरे दिन क्या हुआ कि सिंहलेश्वर की कन्या मदनलेखा भी दल बल सहित बहुत विभव के साथ आ पहुंची। विक्रमशक्ति ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत किया और बड़ी नम्रता के साथ हर्षपूर्वक अपनी सेना में उनको वह ले आये। इसके उपरान्त दूसरे दिन ही विक्रमशक्ति ने उन सिंहलेश्वरसुता, उन दोनों दिव्य कन्यकाओं तथा जगत् के नेत्रों के कौतुकस्वरूप उस मृग को लेकर राजवर्ग के साथ महाराज के चरणों के दर्शनों के हेतु यहां आने के निमित्त प्रस्थान कर दिया। महाराज! अब वह सामन्त समीप ही आ पहुंचे हैं, हम दोनों को पहिले से ही आवेदन के लिये भेज दिया है। सो महाराज! सिंहलेन्द्र के, यक्षिणी के, तथा उनकी कन्याओं के लाने हारों के अनुरोध से उन राजाओं की चल कर अगवानी कीजिये।

अनङ्गदेव जब इस प्रकार कथा कह चुप हो गया तब महाराज विक्रमादित्य को उस दुःसाध्य कार्य का स्मरण हो आया जो उन्होंने यक्षिणी के प्रति किया था। और इस समय यक्षिणीकृत प्रत्युपकार की बात सुन महाराज ने अपने मन में सोचा कि मैंने तो कुछ बड़ा उपकार न किया जिसके कारण ऐसा भारी प्रत्युपकार मिले। ठीक ही कहा है।

करि कै बड़ उपकार सब्यै मालत उच्चमन (१)

महाराज विक्रमादित्य यह शुभ सम्वाद सुन बड़े ही प्रसन्न हुए । उन्होंने सिंहलाधीश के दूत तथा धनञ्जदेव को बहुसंख्यक हाथी, घोड़े, गांव और रत्न देकर परिपूर्ण कर दिया ।

॥ वसन्ततिलका ॥

वा द्यौस को वितङ्क सिंहलराजपुत्री
को, दोउ और जलजो द्भवकन्यका के (२)
स्वागत करै नृपति उज्जयिनीपुरी से
सेना जु संग चतुरङ्गिनि लै सिधार्यो ॥

॥ चौपाई ॥

सुन्दर अञ्जन गिरि जो कुञ्जर ॥
जय बर्धन तापर शुभ आगर ॥ १ ॥
काल मेघ गज जो मतवारा ॥
रणभट तापर भयो सवारा ॥ २ ॥
है संग्रामसिद्धि गज जोही ॥
तापर सिंहपराक्रम सोही ॥ ३ ॥
रिपुराक्षस गज ऊपर सोभित
विक्रमनिधि जिसु बल नहिं परिमित ॥ ४ ॥

॥ सोरठा ॥

चढ़े अश्व जयकेत, नाम जासु है पवनजव ॥
बल्लभशक्ति सहेत, वैठे सिन्धुकलोल (३) पे ॥ १ ॥

(१) जिनका मन ऊंचा है । (२) ब्रह्मा की कन्या । (३) समुद्रकल्लोल ।

॥ दोहा ॥

बाहू और सुबाहु कर घोटक अति विख्यात।
एक अहै अरवेग पुनि गरुड़वेग शुभ जात ॥

॥ बरवा ॥

श्यामा कुवलय माला कोकमजात ॥
कीर्ति वर्म को तुरगी अति शुभगात ॥ १ ॥
सिन्धुदेश में उपजो कर्का (१) जोइ ॥
समरसिंह की गङ्गालहरी सोइ ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

इहि विधि गज रथ तुरग सजि, चले अमित भूपाल।
विक्रम आदिक भूप वर, कीन्ह गमन तेहि काल ॥
तेहि अवसर महि लखिपरत सैन्यमयो चहुंओर।
दिशि विदिशन महँ भरि रह्यो कोलाहल अतिघोर ॥
चलत सैन्य संघर्ष से, उड़ो तेहि छन धूरि।
जा पहुंचो आकाश में, रहो तहां भरिपूरि ॥

॥ सोरठा ॥

चहुंदिशि सुनियत धन्य, धन्य गिरा सब लोग कर।
अचरज छाड़ि न अन्य, कर्म रह्यो तेहि काल महँ ॥
विक्रम आदिक भूप, इहि विधि अगवानिहिं चले।
महिमा तासु अनूप, कहु को वर्णन करि सकै ॥

---

(१) श्वेतवर्ण।

तीसरा तरङ्ग।

उज्जयिनी से इस प्रकार चल कर महाराज विक्रमादित्य उस स्थान पर पहुंचे जहां उनका विजय सैन्य उतरा था जिसका अधिष्ठाता वह विक्रमशक्ति था। विक्रमशक्ति अति प्रसन्न हो आगे बढ़ कर महाराज से मिला और उनके चरणों पर गिरा सो महाराज अपनी उस सेनानी के साथ अपने सैन्य में बैठे। जब महाराज सभा में विराजमान हुए उस समय प्रतीहार उपस्थित होकर राजाओं का परिचय देकर निवेदन करने लगा—"महाराज! यह गौड़देश के राजा शक्तिकुमार हैं, यह कर्णाटक के अधीश्वर जयध्वज हैं, यह लाट के (१) अधिपति विजयवर्मा हैं यह कश्मीर के महीपति सुनन्दन हैं, सिन्धुदेश के भूपति यह गोपालक हैं, भिल्लों के प्रभु यह विन्ध्यबल हैं और पारस देश के भूपाल यह निर्मूक हैं। सो हे महाराजाधिराज ये नरेशगण आपको प्रणाम करते हैं।" इस प्रकार सबका परिचय पाके महाराज विक्रमादित्य ने सभों का सामन्तसहित बड़ा सम्मान किया। उपरान्त महीपति ने सिंहलेन्द्र की कन्या उन दोनों दिव्य कन्याओं तथा हेमसृग और विक्रमशक्ति का यथायोग्य आदर सत्कार किया। वह दिन सब के सम्मान में ही व्यतीत हो गया।

दूसरे दिन महाराज विक्रमादित्य अपने दलबल के साथ वहां से चले और अपनी राजधानी उज्जयिनी में जा विराजे। यहां समस्त राजाओं का विशेष रूप से सन्मान हुआ। महीपति से सब नरेशों ने अपने २ देश जाने की आज्ञा मांगी तब महाराज विक्रमादित्य ने सबको यथोचित आदर सत्कार करके बिदा किया और वे नरेशगण बिदा हो २ अपने २ देश को सिधारे।

अब वह समय उपस्थित हुआ जिसमें समस्त चराचर आनन्दमग्न हो जाते हैं, चहुंओर आनन्द और उत्सव का डेरा पड़ गया अर्थात् ऋतुराज वसन्त का शुभागमन हुआ। लताएं पुष्पों के आभरण धारण कर सजधज के अठिलाने लगीं, भौंरियां गुञ्जार करतीं, मानों मधुर संगीत हो रहा है। वन में मरुत का झकोरा लगता है उससे समस्त वृक्ष जो डोल रहे हैं, सो मानों वनराजी नृत्य कर रही

(१) देश विशेष।

है। कोयलें जो कुहू कुहू शब्द कर रही हैं सो मानों मधुर स्वर से मङ्गल गान हो रहा है। ऐसे ही शुभ समय में महामण्डलेश्वर श्रीमहिमान्वित महाराज विक्रमादित्य ने उन तीनों अर्थात् सिंहलेश्वर की कन्या तथा उन दोनों दिव्य कन्याओं का पाणिग्रहण किया। इस विवाहोत्सव में सिंहलेश्वरकन्या के ज्येष्ठ भ्राता सिंहवर्म्मा उपस्थित हुए थे, सो उन्होंने उत्तमोत्तम बहुमूल्य अनेक रत्न यौतुकमें दिये। इसी अवसर पर वह यक्षी मदनमञ्जरी आकर उपस्थित हुई और उन दोनों दिव्य कन्याओं की ओर से असंख्य रत्नों की राशियां यौतुक में दियीं। मदनमञ्जरी बोली—"महाराज! आपने मेरे साथ जो उपकार किया है उससे क्या मैं कभी उऋण हो सकती हूं किन्तु यह जो कुछ है सो मेरी भक्ति का सूचक समझियेगा, यह मैंने कुछ भी नहीं किया है। अब मेरा अनुरोध आपसे यही है कि इन दोनों कन्याओं पर और इस हरिण के ऊपर आप अपना अनुग्रह बनाये रखियेगा।" महाराज ने उक्त यक्षिणी का बड़ा सम्मान किया और तब वह अन्तर्धान हो गयी।

इतना कह कर जब यक्षिणी चली गयी तब महाराज अपनी उन तीनों नव वधुओं के साथ विहार करते हुए कृतकृत्य हो सुखपूर्वक रहने लगे। इधर ऐसी अनूप तीन भार्या रत्नों का मिलना उधर सद्वीपा सारी वसुन्धरा हस्तगत हुई भला उनके कृतित्व का कहीं ठिकाना था। अब वह निष्कण्टक राज्य शासन करने लगे। नाना प्रकार के सौख्य का अनुभव करते हुए विहार करते, कभी अत्यन्त रमणीय उद्यानों में, उष्णकाल में नदियों के जल में, तथा धारायन्त्र गृहों (१) में विहरते। वर्षाकाल में अन्तःपुरों में जहां मृदङ्ग की ध्वनि विनादित होती थी। शरदकाल में राजप्रासाद की छतों पर जहां चन्द्रउदय होने पर आमोद की सीमा न रहती और आपान का आनन्द पृथक् ही प्रमुदित करता। हेमन्तऋतु में वासभवनों में विहार करते जहां पयःफेननिभा (२) शय्यायें बिछी रहतीं और जो कालागुरु से सुवासित किये रहते तथा जहां वरनारियां महाराज को चहुंओर से

(१) ऐसे गृह जिनमें यन्त्रों द्वारा धारा पहुंचायी जाती।

(२) दूध के फेन के समान कोमल।

घेर कर आमोद की वृद्धि करतीं। इस प्रकार नाना प्रकार के सुख सौख्यों का उपभोग करते हुए महाराज विक्रमादित्य पृथ्वी का न्यायपूर्वक शासन करने लगे।

महाराज विक्रमादित्य के राज्य में एक चित्रकार रहता था जिसका नाम नगरस्वामी था वह चित्रविद्या में ऐसा निपुण था कि विश्वकर्म्मा को भी उसके समक्ष आश्चर्य हो जाता। वह सौ गांवों का स्वामी था। उस चित्रकार का काम यह था कि वह प्रत्येक दूसरे दिन एक चित्र बना कर महाराज को अर्पण करता और विशेषता यह कि प्रत्येक चित्र का रूप भिन्न २ होता था।

एक दिन की बात है कि उसके यहां कोई उत्सव पड़ा, उसमें व्यस्त रहने के कारण वह भूल गया और दैवात् उस दिन महाराज के निमित्त चित्र न बना सका। दूसरे ही दिन उपहारप्रदान का दिन आ गया, चित्र तो बनाया ही नहीं गया था इससे उसको बड़ी चिन्ता हो गयी कि अब महाराज को उपहार क्या दूंगा।

इसी चिन्ता में वह व्यस्त था कि इतने में अकस्मात् एक पथिक बड़ी दूर से पास आया, इसके हाथ में एक पुस्तिका रख कर वह बड़ी शीघ्रता के साथ न जानें कहां चला गया। वह चित्रकार बहुत ही विस्मित हुआ कि यह क्या बात है और यह पुस्तिका कैसी है, उसको बड़ा ही कौतुक हुआ, सो वह पुस्तिका खोल कर देखने लगा कि इसके भीतर क्या है तो क्या देखता है कि एक पट पर एक पुतरी उरेही है उसने देखा कि इस चित्र का रूप तो बड़ा ही अद्भुत है। उसको इस बात का बड़ा ही हर्ष हुआ कि आज ही मेरे उपहार का दिन था और आज यह अनोखा चित्र हाथ लगा। उसने यह चित्र ले जाके महाराज को अर्पण कर दिया।

चित्र-पुतरी को देखकर राजा बड़े ही आश्चर्य में पड़ गये और उस चित्रकार से बोले—"भाई! यह तो तुम्हारी चित्रकारी नहीं है यह विश्वकर्म्मा की बनायी चित्रकारी है। भला मनुष्य ऐसा रूप बनाना क्या जाने। महाराज की ऐसी उक्ति सुन वह चित्रकार जैसा कुछ हुआ था सो सब सुना गया।"

अब राजा की क्या बात पूछना है, इस चित्र के निरखते ही उनकी गति बड़ी ही विचित्र हो गयी, उसका ध्यान बंध गया। किसी काम में मन लगता ही नहीं।

हर घड़ी उसी की चिन्ता में मग्न रहते। जागते सोते उठते बैठते उसी चित्रपुतरी का ध्यान।

एक दिन की बात है कि महाराज सोये हुए थे। सो स्वप्न में क्या देखते हैं कि किसी द्वीप में पहुंचे हैं। उसी द्वीप में उन्हें वैसी ही एक कन्या दिखायी पड़ी जैसी चित्र में थी। राजा की उत्कण्ठा बढ़ी उधर से वह भी महीपति को देखकर मोहित हो गयी अब महाराज ज्योंही उसे आलिङ्गन कर सङ्गम करने पर प्रवृत्त हुए कि रात्री व्यतीत हो चली सो पहरुए ने उन्हें जगा दिया। हा महा अनर्थ। महाराज कैसे आनन्दमग्न सङ्गम का उपभोग करने चले थे कि ऐसी घटना हो गयी। वह बड़े ही क्रोधित हुए, ऐसा क्रोध बढ़ा कि उन्होंने उस पहरुए को नगर से निकलवा दिया।

अब उनके मन में और भी चिन्ता बढ़ी, वह विचारने लगे—"हा! कहां वह पात्र, और कहां वह पुस्तिका फिर तिसमें ऐसी अनुपम चित्रपुतली फिर कहां सजीव हो के,मुझे स्वप्न में उसका दिखायी पड़ना। सो यह निश्चय है कि वह कन्या एक दैवघटना है बस यही बात मुझे प्रतीत होती है। यह भी मैं नहीं जानता कि वह द्वीप कहां है सो उसे क्योंकर प्राप्त कर सकता।" इस प्रकार चिन्ता करते करते उनका मन और भी विकल हो गया। चारों दिशायें सूनी दिखातीं. कहीं चित्त न लगता। कामज्वर से सदा जलते रहते। उनकी विकलता से समस्त राज-भवन उदास हो गया।

महाराज को इस प्रकार सन्तप्त देख भद्रायुध नामक उनके एक परिचर ने एकान्त में पूछा कि महाराज! आपकी यह क्या दशा होती चली जा रही है? इसका कारण क्या है? उसके पूछने पर महाराज इस प्रकार बोले- भाई! सुनो मैं कहता हूं, तुम तो जानते ही हो कि उस चित्रकार ने मुझे एक चित्र पुस्तिका दियी। उसी पुतली का ध्यान मुझे बना रहता। एक दिन मैं निद्रा में सोया था सो क्या स्वप्न देखता हूं कि समुद्र पार कर एक अति सुन्दर नगर में पहुंचा हूं। वहां क्या देखता हूं कि सामने ही बहुत सी कन्यायें खड़ी हैं सबकी सब अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थीं। मुझको देखते ही सबकी सब चिल्ला कर बोल उठीं—"मारो मारो। इतने में ही न जाने कहां से एक तापसी वहां आ पहुंची,

वह मुझे अपने घर में लिवा ले गयी और संक्षेप में मुझसे इस प्रकार कहने लगी "पुत्र ! यहां की राजपुत्री जो है सो पुरुषों से बड़ा ही द्वेष रखती हैं, उसका नाम मलयवती है, सो अपनी इच्छा से भ्रमण करती हुई इधर आ निकली है। उसके सामने जहां कोई पुरुष पड़ा कि उसने इन कन्याओं से उसे मरवा डाला यही कारण है कि तुम्हारी रक्षा के हेतु मैं तुम्हें अपने घर में लिवा लायी।" इतनी कहके उसने चट मेरा स्त्री वेश बना दिया। कन्यायें अवध्य होती हैं यह समझ मैंने यह सब चुपचाप सह लिया।

वह राजकन्या ज्योंही उस भवन में पैठी त्योंही मैं हर्ष के मारे फूल गया, मित्र क्या कहूं यह वही कन्या थी जो मैंने चित्र में देखी थी। उस प्राणेश्वरी को देख कर मैं सोचने लगा कि मैं धन्य हूं कि इसका चित्र देखकर अब प्रत्यक्ष इसे देख रहा हूं। इतने में राजपुत्री उन कन्याओं के साथ उस घर में घुस आयी और उक्त तापसी से पूछने लगी—"हम लोगों ने इस घर में एक पुरुष को पैठते देखा है।" वह तापसी मुझे दिखा के बोली—"पुरुष कैसा, यह देखो मेरी बहिनबेटी पाहुन आयी है सो यह बैठी है। राजकन्या की और मेरी ज्योंही आंखें मिली बस फिर क्या पूछना, यद्यपि उसने मुझे स्त्रीवेश में देखा तथापि वह काम के वश हो गयी, पुरुषों के प्रति उसका जो द्वेष था सो सौ कोस दूर भाग गया। उसके रोएं खड़े हो गये, न जानूं क्या सोचती हुई कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही। ऐसा प्रतीत हुआ कि कामदेव ने अवसर पाकर मानों उसे वहीं कीलित कर दिया। थोड़ी देर चुप रहने के उपरान्त राजसुता उस तापसी को बोली—"आर्य्ये ! तो यह तुम्हारी बहिनबेटी मेरी भी पाहुन हुई सो यह मेरे भवन में चले वहां इसका यथोचित् सत्कार करूंगी।" इतना कह राजकुमारी मेरा हाथ पकड़ अपने मन्दिर को ले गयीं। मैं समझ गया कि मैं इसके चित्त में समाय गया हूं। इस प्रस्ताव का समर्थन उस चतुर तापसी ने भी किया।

अब मैं वहां राजकुमारी के मन्दिर में रहने लगा। उनके संग खेलता। जितनी कन्यायें थीं वे परस्पर विवाह का खेल खेलती थीं मैं भी इनमें योग देता। राज कुमारी का मन मुझमें ऐसा लग गया था कि वह एक क्षण भी मुझे अपनी आंखों की ओझल नहीं होने देती थीं। जहां मैं नहीं वहां वह भी नहीं। ऐसी वह मुझ

पर आसक्त हो गयी कि सब बातें ही भूल गयी, उसको कुछ भी अच्छा न लगता।

इसी खेल में क्या हुआ कि उन कन्याओं ने राजकन्या को दुलहिन बना के और मुझे वर बना कर दोनों का विवाह कर दिया। इस प्रकार हम दोनों का विवाह हो गया। अब हम दोनों रात के समय वासगृह में गये तहां निःशङ्कभाव से राजसुता ने मुझे गले लगा लिया। उस समय मैं और छिपा न रह सका, प्रकट हो गया; मैंने भी उसे आलिङ्गन कर लिया। उसका हर्ष तो अब द्विगुण हो गया सो वह मुझे देखकर लाज के मारे मुंह नीचे कर बैठ गयी। मैंने उसकी लज्जा दूर कर ज्योंही सुरत में उसे प्रवृत्त किया त्योंही उस दुष्टात्मा पहरुये ने जगा दिया। सो भद्रायुध उस मलयवती को चित्त में और फिर स्वप्न में देखकर अब उसके विना मैं रह नहीं सकता हूं।

महाराज का ऐसा कथन सुन भद्रायुध प्रतीहार समझ गया कि यह स्वप्न सत्य ही है, सो वह महाराज को बहुत कुछ सान्त्वना दे समझा बुझा कर बोला—"महाराज! यदि आपको पूरा २ स्मरण हो तो आप उस नगर का चित्र पट पर लिख देवें तब कुछ उपाय किया जाय।" भद्रायुध का ऐसा कथन सुन राजा विक्रमादित्य ने पट पर उस नगर का चित्र खींच कर उसका समस्त वृत्तान्त लिख दिया।

चित्रपट लेकर भद्रायुध उपाय में प्रवृत्त हुआ। उसने एक मठ बनवाया और उसकी भीत पर वही चित्र लटका दिया। मठ में उसने दूर २ देशों से आये हुए वन्दियों के लिये सत्र खोल दिया जहां उन्हें षट्रस भोजन मिलता और चलते समय वस्त्र और दो स्वर्णमुद्रा विदायी में मिलतीं। मठाधिकारियों को यह आज्ञा देकर चिता दिया था कि यदि कोई इस चित्रपटस्थ नगर का वृत्तान्त जाननेवाला वहां आवे तो मुझे सूचना देना।

इतने में ग्रीष्मवन का, कि जिसमें मल्लिका का आमोद भरा कर वायु विचरण कर रहा है, छाया में सब पथिक विश्राम कर रहे हैं और पाटल फूल रहे हैं, निरीक्षण कर, प्रावृट्काल रूपी मत्त हाथी उपस्थित हुआ जिसका वर्ण मेघों के कारण श्याम है, गुरु और गम्भीर गर्जन कर रहा है केतक पुष्प जिसके बड़े २ दांत हैं। इस वर्षाकाल में पुरवैया बतास जो बही उससे महाराज विक्रमादित्य

की विरहाग्नि और बढ़ गयी । इस समय भी महाराज को अन्तःपुर की नारियों के वचन सुन पड़ते थे "हे हारलते। हिमदे! हे चित्राङ्गि! चन्दन सींच, हे पत्र-लखे! कमल पत्तों का ठंढा पलङ्ग बिछा दे। हे कन्दर्पसेन के ले व पत्ते सी तीजना हांक। "क्रम से वर्षाऋतु, कि जिसमें बिजली चमक कर हृदय कंपा देती थी, और घन घिरे रहते थे, बीत गयी परन्तु महाराज का मदनज्वर नहीं शान्त हुआ जिससे विरह की ज्वाला बराबर निकल रही थी।

बटोही अपनी यात्रा प्रारम्भ करें, दूर २ पर अवस्थित जो प्रेमी हैं सो अपनी अपनी २ प्रेमिकाओं से मिल जावें, इनका समागम होवे; कलहंसों के रव से इस प्रकार के आदेश देती हुई शरद आ पहुंची जिसका फूले हुए कमल मुख है और कास जो और कुसुम जिसकी मुस्कुराहट है । उसी समय एक बन्दी भद्रायुध के स्थापित सत्र की बात सुनकर भोजन के हेतु वहीं मठ में आया जिसका नाम कि शम्बर था । मठ में भरपेट भोजन किया दो वस्त्र पाये। इतने में उसकी दृष्टि भीत पर लटकाये हुए उस चित्रपट पर पड़ा उसे देखते ही वह बन्दी विचार में पड़ गया कि चित्रस्थनगर यहां कैसा! सो उसने पूछा—"भाई! क्या यह बतला सकते हो कि यह नगर किसने उरेहा है? बात यह है कि यह नगर तो मैंने ही देखा है और कि उसने जिसने इसका चित्र उरेहा, उपरान्त कोई दूसरा इसका भेद जाने यह तो मैं कदापि नहीं मान सकता" उसका ऐसा कथन सुन मठाधिकृत जनने जाकर भद्रायुध को इसकी सूचना दियी। यह सुन भद्रायुध स्वयं मठ में आया और उस बन्दी को राजा के समक्ष ले गया।

यह वृत्तान्त सुन महाराज विक्रमादित्य ने उस बन्दी से पूछा—"भाई! क्या तुमने वह नगर सचमुच देखा है?" महाराज का ऐसा प्रश्न सुन शम्बर सिद्धि इस प्रकार कहने लगा- "महाराज! मलयपुर नामक वह नगर मैंने देखा है। एक समय की बात है कि मैं देश भ्रमण कर रहा था सो समुद्र पार कर उस द्वीप में पहुंचा। उस नगर में मलयसिंह नामक नरेश राज्य करते हैं उनके एक कन्या है जिसका नाम मलवती है जिसकी उपमा ही किसी से नहीं दियी जा सकती। पुरुषों से वह बड़ा ही द्वेष रखती है। एक दिन की बात है कि राजकुमारी ने स्वप्न देखा कि विहार के लिये निकली हूं सो कोई महापुरुष दिखलायी पड़े

उनको देखते ही वह पुरुष डर गया और झटपट उनके मन से निकल भागा क्योंकि उस पुरुष को यह ज्ञात था कि यह पुरुषों से द्वेष रखती हैं। जो हो स्वप्न में ही राजकुमारी उस पुरुष को अपने भवन में ले गयी और उसके साथ विवाह कर वासभवन में बैठीं। वहां उक्त जन के साथ सुरतोत्सव में प्रवृत्त हुई ही थीं कि वासभवन की दासी ने रात्री के अवसान में उन्हें जगा दिया। राजकुमारी ने उस दासी को नगर से निकलवा दिया। अब उनको उक्त स्वप्नदृष्ट पुरुष की चिन्ता सताने लगी, उस प्रियतम का ही ध्यान बंधा रहता विरहाग्नि में जलने लगीं। उस प्रियतम के मिलने का कोई उपाय न देखतीं, ऊपर से कामदेव अपना घात करने लगी, वह पलङ्ग पर उठ २ बैठतीं और फिर गिर पड़ती. सारे अङ्ग ढीले पड़ गये। सदा मौन रहतीं, मानों भूत लग गया हो अथवा तमोगुण प्रबल हो गया हो। जब कोई पूछता तो कुछ भी उत्तर न देतीं। माता पिता को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब उन्होंने राजकुमारी से पूछा तो अपनी आप्त सखी से सारा स्वप्न का वृत्तान्त सुनवा दिया। उस समय पिताने उन्हें बहुत कुछ आश्वासन दिया। तब राजकुमारी ने यह प्रतिज्ञा कियी कि यदि वह छः मास के भीतर न मिले तो मैं अग्नि में प्रवेश कर बैठूंगी। महाराज! आज पांच मास व्यतीत हो गये अब कौन जाने क्या होनहार है। सो जब मैं उस नगर में गया था सो यही वृत्तान्त सुना था।

इस प्रकार जब शम्बर सिद्धि सुसम्वाद सुना चुका तब महाराज को उस व्यापार में निश्चय हो गया, उस समय भद्रायुध बोला—"महाराज! अब तो कार्य सिद्ध हो गया, प्रभो! वह राजा भी तो आपके वश में हैं सो अब ऐसा काम कीजिये कि छठा मास बीत न जाय। इस प्रकार महाराज विक्रमादित्य कह कर भद्रायुध शम्बरसिद्धि को भी सारा वृत्तान्त सुनाया गया। उपरान्त महाराज ने शम्बरसिद्धि को बहुत धन देकर उसका बड़ा सम्मान किया।

अब महाराज ने उक्त नगर को चलने का उपक्रम किया। अपना सन्ताप तो सूर्य की किरणों में रख दिया, आसूं घनों में और दौर्बल्य नदियों के जलों में। शम्बरसिद्धि आगे किया गया और महाराज विक्रमादित्य सब प्रकार की चिन्ता त्याग निर्भय होकर थोड़ी सी सेना लेकर अपनी प्रियतमा से मिलने के हेतु प्र-

प्रस्थानित हुए। चलते २ क्रमपूर्वक नाना देश देशान्तर डांकते हुए समुद्र पार कर उस नगर में पहुंचे।

ज्योंही महाराज विक्रमादित्य अपने दल बल सहित उस नगर में पैठे हैं उसी समय क्या देखते हैं कि सामने लोगों की बड़ी भीड़ लगी हुई है और बड़ा कोला-हल मचा है। एक जन से महाराज विक्रमादित्य ने पूछा कि भाई आज इस नगर में क्या कोलाहल हो रहा है? उसने कहा - "क्या कहूं राजकुमारी मलयवती आज आग में प्रवेश किया चाहती है; छ: मास की अवधि उनकी आज बीत गयी और उनका प्राणप्यारा नहीं मिला इसी से वह आज आग में प्रवेश करेंगी।" उस जन से ऐसा सुन कर महाराज बिना बिलम्ब किये झटपट उसी स्थान पर जा बिराजे जहां राजकुमारी के लिये चिता रची गयी थी। महाराज को देखते ही लोग हट गये और वह राजकन्या के समक्ष जा पहुंचे। अहा! वहां अन्धकार कहां हो गयी। महाराज को देखते ही राजकुमारी आनन्द में मग्न हो बोल उठीं अहा! यही मेरे प्राणेश्वर हैं जिन्हें मैंने स्वप्न में देखा था सो यह मुझसे विवाह करने को यहां आ उपस्थित हुए हैं। सो हे सखिया! जाकर मेरे पिता जी से यह शुभ सम्वाद कह देओ। सखियों ने जाकर उन महीपति से यह मङ्गल समाचार कह सुनाया। सो सुनते ही उनका जो दुःख था सो दूर हो गया और हर्ष उमड़ आया, वह वहां से चले और महाराज विक्रमादित्य के समीप अति नम्रतापूर्वक आ उपस्थित हुए। उस समय उस शब्दसिद्धि बन्दी ने अपनी भुजा उठा कर उच्च स्वर से यह पढ़ सुनाया:— छप्पय।

जय जय अपने तेज कीन्ह सब भूप स्ववश जो।
म्लेच्छ विपिन संहार करन अति घोर अनल जो॥
सात समुद्र प्रजन्त अहै महिमा जिमि व्यापी।
जीति सकल महिपाल तिन्हों पर आज्ञा थापी॥
महाराज विक्रम उदित जय होवे नित नवल वय।
विषमशील महिपाल वर विक्रमवारिधि जयति जय॥

बन्दी ने जब इस प्रकार महाराज विक्रमादित्य का उत्कर्ष कह सुनाया तब मही-

पति मलयसिंह को यह निश्चय हो गया कि यह महाराज विक्रमादित्य हैं सो वह उनके चरणों पर गिरे। अब महीपति मलयसिंह ने महाराज विक्रमादित्य का बड़ा सम्मान और सत्कार किया और उनको तथा मृत्यु के मुखसे बची अपनी दुहिता मलयवती को साथ ले अपने भवन में प्रवेश किया। अब महाराज मलयसिंह ने अपने को परम धन्य माना और विधिविधान के साथ बड़ी उत्कण्ठा सहित महाराज विक्रमादित्य के साथ अपनी कन्या मलयवती का विवाह कर दिया। यह विवाह कर वह बड़े ही कृतार्थ हुए।

इस समय महाराज विक्रमादित्य के आनन्द का ठिकाना ही न रहा। जिसे उन्होंने चित्र में देखा था, पुनः जिसे वैसे ही स्वप्न में देखा फिर अब उसी को प्रत्यक्ष अपने अङ्क में देख रहे हैं। महाराज ने यही समझा कि यह जो कुछ सुख मुझे प्राप्त हुआ है सो श्री महादेव जी की कृपा का फल है, यह उन्हीं का प्रसाद है कि यह स्वप्न की घटना प्रत्यक्ष हुई।

॥ दोहा ॥

मलयवती नव बधुहिं लहि मनहुं मूर्त्ती रूप (१) ॥
भरे उमङ्ग उछाह मन, चले नगर तब भूप ॥ १ ॥
होइ बारिनिधि पार तब, जेहि जेहि पहुंचे देस ॥
तहं तहँ के भूपाल तेहि, दीन्हेउ भेंट असेस ॥ २ ॥
निज नगरी उज्जयिनि जब, आ पहुंच्यो महिपाल ॥
सहित बधू तेहि निरखि सब, भई सुप्रजा निहाल ॥३॥

॥ सोरठा ॥

यहि बिधि देखि प्रभाव, चित्र देखि सब कीन्ह जेहि ॥
जहँ तहँ सब कोउ गाव, श्रीमहीश के गुणगान ॥ १ ॥
असकोउ नहिं तेहि काल, जो न अचम्भव मानेउ ॥
जो नहिं भयउ निहाल, हर्षोत्सव जेहि कीन्ह नहिं ॥ २ ॥

---

(१) सन्तोषरूपिणी।

चौथा तरङ्ग ।

एक समय की बात है कि महाराज विक्रमादित्य रनिवास में बैठे थे, रानियां सब महाराज के चहुंओर बैठी हुई थीं, नाना प्रकार की बात चीत हो रही थी कि मलयवती के व्याह की चर्चा छिड़ गयी ? तिस समय महारानी कलिङ्गसेना अपनी सवतीं को सम्बोधन कर बोलीं—हे बहिनो ! महाराज ने मलयवती के निमित्त जो किया उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि महाराज सदा विषमशील कहके पृथ्वी में प्रसिद्ध हैं । क्या तुम यह नहीं जानतीं कि यह मेरे रूप की पुतली देख कर कामवश हो गये थे और बलपूर्वक सब को दबा कर मुझसे व्याह किया था । इसी विषय में देवसेन नामक एक यात्री ने मुझसे जो कथा कही थी सो सुनो मैं तुमको सुनाती हूं ।

मुझे इस बात का बड़ा ही खेद था कि महाराज ने मेरा विवाह विधिविरुद्ध क्यों किया । सो वह यात्री मेरे पास आया और मुझे सान्त्वना दे समझा बुझा कर कहने लगा—देवि ! कोप मत करो, महाराज ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से तुम्हारे साथ विवाह किया है सुनो मैं जड़ से उसकी कथा सुनाता हूं ।

मैं आपके प्रभु के यहां सेवक होकर रहा किन्तु मैंने देशाटन का काम अपने शिर पर लिया सो मैं सदा यात्रा ही किया करता । एक समय की बात है कि एक बड़े जङ्गल में एक बड़ा भारी शूकर देखा । बड़े २ उसके मुख में दाढ़, तमाल के समान श्यामवर्ण, मानों अग्नि की कलाएं खाता हो । हे देवि ! ऐसा भयावना सूअर देख कर मुझे बड़ा अचम्भा हुआ सो मैंने आकर महाराज को जैसे का तैसा ही सुना दिया । महाराज को उसके देखने की बड़ी लालसा उपजी सो वह मृगया के हेतु निकले ।

जब हम मृगया के स्थल में पहुंचे तब महाराज नाना प्रकार के मृगों और व्याघ्रों का संहार करने लगे, उस समय मैंने दूर से ही उस बराह को दिखा दिया सो महाराज ने उस अद्भुत जीव को देखा । देखकर महाराज ने यही समझा कि यह कोई कारणशूकर है । सो महाराज उच्चैःश्रव के सुत रत्नाकर नामक घोड़े पर सवार हो गये ।

रत्नाकर की कथा ऐसी है कि सूर्यदेव सदा मध्याह्नकाल में एक मुहूर्त भर आकाश में ठहर जाते हैं, उस समय अश्व स्नान और पान के लिये घोड़ों को छोड़ते हैं। एक समय अश्व उच्चैःश्रवा सूर्य के रथ से छूटा वन में महाराज की घोड़ी को देखकर उसने उससे इस तुरङ्गम को जन्म दिया।

यह वायु समान वेगवाले इस घोड़े पर चढ़ महाराज उस वराह के पीछे दौड़े राजा को देख वह सूअर भागा। देखते २ वह सूअर बहुत दूर निकल गया और महाराज की दृष्टि से लोप हो गया। उच्चैःश्रवा के सुत इस घोड़े से भी उसका बल अधिक ठहरा। महाराज के साथ के लोग पीछे छूट गये और महाराज दूर निकल आये केवल मैं ही पीछे २ महाराज के पीछे २ उनके संग वहां पहुंचा। मुझे साथ में देखकर महाराज को बड़ा आश्चर्य हुआ सो उन्होंने मुझसे इस प्रकार पूछा—"क्यों जी तुम जानते हो कि हम कितनी दूर निकल आये हैं।" देवि! महाराज का ऐसा प्रश्न सुन मैंने उत्तर दिया—"प्रभो! हम दोनों तीन सौ योजन निकल आये हैं। अब तो राजा का आश्चर्य और बढ़ा वह बोले—"भाई! तो तुम पांव पांव क्योंकर इतनी दूर चले आये?" इस प्रकार विस्मित महाराज का प्रश्न सुन मैंने कहा—"देव! मेरे पास पादलेप है, आगे मैं इसका वृत्तान्त आपको सुनाता हूं:—"

पूर्वकाल की बात है कि मैं अपनी भार्या के वियोग में तीर्थयात्रा के लिये निकला। मार्ग में एक देवस्थान मिला जहां एक उद्यान भी था। सायङ्काल भी आ गया था सो मैंने यहीं आज ठहरना विचारा। रात बिताने के हेतु मैं उसके भीतर गया तो एक स्त्री देख पड़ी। उस स्त्री ने बड़े सत्कार के साथ मेरा आतिथ्य किया और मैं वहीं रहा। रात के समय उसने अपना एक ओठ तो आकाश में लगाया और दूसरा धरती पर इस प्रकार मुंह बाकर मुझसे कहा कि तुमने कहीं ऐसा मुख देखा है? मैं भी झट तलवार और धनु खींच कर भौहें चढ़ा कर उससे बोला कि क्या तुमने कहीं ऐसा पुरुष देखा है? तब तो उसने अति सौम्य वपु धारण कर मुझसे कहा—"सुनो जी! मैं चण्डी नामक यक्षी हूं, तुम्हारे धैर्य से बहुत सन्तुष्ट हुई हूं, सो अब कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं?" उस यक्षिणी का ऐसा वचन सुन मैंने कहा—"हे यक्षि! यदि तुम मुझपर सन्तुष्ट हुई हो तो मुझे ऐसी शक्ति

दे दो कि मैं सब तीर्थों में पर्यटन करूं और थकावट न प्रतीत हो।" इस प्रकार मेरा कथन सुन उस यक्षी ने मुझे एक लेप दिया जिसके प्रभाव से मैं समस्त तीर्थों को यात्रा करता रहा और हे महाराज! आज आपके साथ २ दौड़ता चला आया। इतना ही नहीं, हे देव! उसी लेप के प्रभाव से मैं प्रति दिन यहां जङ्गल में आता और फल भक्षण कर उज्जयिनी लौट जाकर आपकी सेवा में प्रवृत्त होता।

इतनी कथा सुना कर देवसेन ने महारानी कलिङ्गसेना से कहा कि देवि! जब मैंने महाराज को यह वृत्तान्त सुनाया तब उनको विश्वास हुआ कि हां हम इतनी दूर निकल आये हैं और यह भी माना कि मैं एक योग्य अनुयायी हूं।

इसके उपरान्त देवसेन पुन: रानी कलिङ्गसेन से कहने लगा कि देवि! इसके अनन्तर मैंने महाराज से निवेदन किया कि देव! यदि आप खावें तो मैं बहुत अच्छे २ स्वादिष्ट फल ला दूं। इसपर महाराज ने कहा "भाई मैं न खाऊंगा, मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता है, तुम थक गये हो कुछ खा लो।" इस प्रकार जब महाराज मुझे कह चुके तब मैंने खाने का विचार किया, मुझे वहां एक ककड़ी मिली ज्योंही मैंने ककड़ी खायी कि बड़े आश्चर्य की बात है कि मैं तत्क्षण अजगर हो गया। हे देवि! मुझे अकस्मात् अजगर हुआ देख विषमशील देव को बड़ा ही विषाद हुआ और साथ ही उनको अचम्भा भी बहुत हुआ। अब वह अकेले रह गये सो उस क्षण उन्होंने भूतकेतु वेताल को स्मरण किया जिसको कि पूर्वकाल में नेत्ररोग हो गया था, और महाराज ने देखते ही उसे चंगा कर दिया सो उसी दिन से वह महाराज के वश हो गया। स्मरण करते ही वह वेताल आ पहुंचा और बड़ी नम्रता से उसने महाराज से विनति कर कहा कि महाराज आपने क्यों मुझे स्मरण किया। कहिये आपकी क्या आज्ञा होती है? अब राजा ने उस वेताल से कहा—"भद्र! यह मेरा कार्पाटिक साथी एकाएक अजगर हो गया है सो तुम इसको उसकी आकृति में कर दो।" महाराज का ऐसा कथन सुन वह वेताल बोला—"महाराज! मेरी इतनी शक्ति नहीं है, आपको जानना चाहिये कि सब शक्तियां नियत हैं, भला जल वैद्युत अग्नि का शमन कर सकता है।" उस वेताल का ऐसा उत्तर पाय महाराज बोले "तो अच्छा चलो इस पल्ली (१) में चलें, भिल्लों से पूछें कदाचित् कोई उपाय वे बतला देवें।"

(१) गांव।

इस प्रकार विचार करके महीपति बेताल के साथ उस पल्ली में गये तहां चोरों ने उन्हें आभूषण धारण किये देखकर घेर लिया। वे चोर महाराज पर लगी वाण-वर्षण करने तिस समय महीपति की आज्ञा से भूतकेतु बेताल पांच सौ चोरों को चट कर गया, शेष अपने प्राण लेकर अपने सेनापति के पास पहुंचे और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। एकाकिकेसरी नामक वह सेनापति अग्गुण चोरों की ऐसी बात सुन बड़ा ही क्रोधित हुआ और सेना सजाय लड़ने को निकला। उसका एक भृत्य महाराज विषमशील को पहिचानता था सो उसने जा के एकाकिकेसरी से कहा कि वह तो महाराज विक्रमादित्य हैं।

अब तो एकाकिकेसरी की सारी वाई पच गयी, वह चटपट आकर महाराज के चरणों पर गिरा और बड़ी विनति और नम्रता से अपना वृत्तान्त कह गया कि महाराज। मैं भिल्लों का राजा एकाकिकेसरी हूं। महाराज ने बड़े सम्मान से उनका ग्रहण किया और कुशल पूछा—पश्चात् महीपति ने उससे कहा—भाई! मेरा साथी कार्पटिक इस वन में वानड़ी खाकर अकस्मात् अजगर हो गया, सो भाई ऐसा कोई उपाय करो कि जिससे उसका छुटकारा हो जावे।" महीपति का ऐसा वचन सुन वह सेनापति बोला, "महाराज! यह आपका अनुचर मेरे इस पुत्र को बता दिया देव।" हे देव! इसके उपरान्त सेनापति का पुत्र उस बेताल के साथ मेरे पास आया, उसने एक औषधि का रस मेरी नाक में टपका दिया और बस पूर्ववत् मुझको मनुष्य बना दिया। तब हम लोग बड़े हर्ष के साथ राजा के पास पहुंचे, मैं राजा के पांवों पर गिरा उस समय वह समस्त वृत्तान्त मुझे सुना गये कि क्योंकर मेरी मुक्ति हुई।

इसी समय भिल्लसेनापति ने महाराज से बड़ी बिनति कर कहा कि महाराज अपने अनुचरों के साथ चल कर मेरा घर तो पवित्र कर दीजिये। सो इस प्रकार निमन्त्रण दे वह हम सबोंसहित महाराज को अपने घर ले गया। उसके घर की क्या शोभा वर्णन करूं, चारों ओर जहां देखो वहीं शबरियां, हाथी के दान्तों को भीत बनी है और बाघ के चमड़ों की छत, उनके वस्त्र मोर के पंख है। हार के स्थान पर घुंमची की मालाएं हैं। जहां मस्त मातङ्ग के गण्डस्थल से मद वह रहा है, स्त्रियां अनूठी शोभा बना रही हैं। सेनापति की भार्या ने स्वयं महा-

राज की परिचर्या कियी, उसके वस्त्र कस्तूरी से भरे हुए थे और मोतियों की माला उसके गले में पड़ी थी।

वहां भी एक आश्चर्य की ही बात देखने में आयी, वह सेनापति तो युवा था और उसके पुत्र वृद्ध थे। सो जब हमाराज स्नान भोजन से सुचित्त हुए तो उन्होंने सेनापति से पूछा—"सेनापते! मुझे इसको बड़ा आश्चर्य है कि तुम तो तरुण हो और ये तुम्हारे पुत्र वृद्ध हैं सो कहो इसमें क्या रहस्य है?" महाराज का ऐसा प्रश्न सुन वह शवरेन्द्र बोला, "देव! यह कथा तो बड़ी भारी है यदि आपको सुनने का कौतुक है तो सुनिये मैं आपको सुनाता हूं:—

पूर्व समय की बात है कि मैं मायापुरी में रहता था, देव! मैं ब्राह्मण हूं एक दिन मैं पिता की आज्ञा से वन में लकड़ी लेने गया। मार्ग में एक वानर रोका सी बैठा रहा, उसने मेरी कुछ बाधा न कियी किन्तु वह बड़े आर्त नेत्रों से मेरी ओर देखता और एक दूसरा मार्ग मुझको दिखाता रहा। ऐसा न हो कि यह मुझे खा जाय सो आओ उसी मार्ग से चलूं, जो यह दिखा रहा है ऐसा उस कपि का आशय विचार कर मैं उसी मार्ग पर चल पड़ा। जब मैं उस मार्ग पर चला तो क्या देखता हूं कि वह मर्कट चट उसी पथ पर आगे २ चलने लगा परन्तु उलट २ कर मुझको देखता जाता था। जाते २ जब बहुत दूर निकल गया तब एक जामुन का पेड़ मिला सो वह बन्दर उसी वृक्ष पर चढ़ गया, मैं उसके पीछे २ पहुंचा तो लताओं से आच्छादित उस वृक्ष पर दृष्टि कियी तो क्या देखता हूं कि वहां एक वानरी है जो लता वलय में बन्धी है। बस मैं ताड़ गया कि इसी निमित्त यह वानर मुझको यहां ले आया है। मैं उस वृक्ष पर निडर होकर चढ़ गया, उसका बन्धन अपनी कुल्हाड़ी से मैंने काट डाला और वानरी को छुड़ा दिया। इतना काम कर मैं वृक्ष से उतर आया तब वे दोनों वानर और वानरी भी उतरे और मेरे चरणों पर लोटने लगे। इसके उपरान्त वह वानर उस वानरी को मेरे चरणों पर रख न जानूं कहां चला गया, और क्या जानूं कहां से एक दिव्य फल लाकर उसने मुझे दे दिया। फल मैंने ले लिया पश्चात् इन्धन लेकर मैं अपने घर लौट आया तहां अपनी भार्या के साथ मैंने वह उत्तम फल खाया। फल खाने का परिणाम यह हुआ कि बुढौती और रोग का भय हम दोनों का जाता रहा।

इसके उपरान्त उस देश में बड़ा ही भारी अकाल पड़ा, उस अकाल से पीड़ित हो लोग देश त्याग कर भागने लगे जिसको जहीं सूझा सो तहीं चला गया। मैं भी अपनी भार्या के साथ देश छोड़ भागा और चलते २ दैवात् इसी देश में आ निकला। उस समय यहां काञ्चनदंष्ट्र नामक शबराधीश्वर राज्य करते थे सो मैंने उनका शरण ग्रहण कर उनकी सेवा ग्रहण किया इस प्रकार मैं उनका भृत्य हो गया।

जब कभी कहीं लड़ाई पड़ती तो मैं सबमें सबसे आगे रहता। इस प्रकार जब कई लड़ाइयों में मेरी वीरता का परिचय उन्हें मिल गया तब उन्होंने मुझे सेनापति बना दिया। मैं सेनापति होकर भी एकान्त भक्ति से अपने स्वामी की सेवा करता रहा इससे वह बड़े सन्तुष्ट रहते। उनके कोई पुत्र न था सो अन्तकाल में यह राज्य वह मुझे ही दे गये। महाराज! यहां रहते मेरे सत्ताईस सौ वर्ष बीत गये पर उस फल के भक्षण करने से बुढ़ौती मेरे पास न फटक पायी।

इस प्रकार वह एकाकिकेशरी भिल्लराज जब अपना वृत्तान्त सुना गया तब महाराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। सो वह भिल्लराज पुनः धरणीपति से इस प्रकार कहने लगा—"महाराज! उस वानर के दिये फलभक्षण से मैंने जो चिरजीवन प्राप्त किया सो आज पूर्ण हो गया सो उसी का फल यह हुआ कि आपके चरणों का दर्शन पाया। सो हे देव! अब मेरी प्रार्थना यह है कि आपके मेरे घर आकर जो अनुग्रह मुझपर किया सो उसका परितोष कीजिये। हे देव! मेरी क्षत्रिया भार्य्या से एक कन्या उत्पन्न हुई है, वह सौन्दर्य में अपनी बराबरी की कोई ललना नहीं रखती, उसका नाम मदनसुन्दरी है। आपको छोड़ यह कन्यारत्न और कहां शोभा पावे सो महाराज मैं उसे आपको देता हूं आप विधिपूर्वक उसके साथ विवाह कर लेवें। महाराज! मेरे दो लाख धनुर्धर अनुचर हैं, मैं आपका दास हूं।" इस प्रकार उसका अनुनय सुन महाराज उसके प्रस्ताव पर सम्मत हुए।

शुभ लग्न में महाराज विक्रमादित्य ने उस एकाकिकेसरी शबरराज की कन्या मदनसुन्दरी का पाणिग्रहण किया, जिसके यौतुक में उसने मोतियों और कस्तूरी से लदवा के सौ ऊंट दिये। महाराज वहां भिल्लपल्ली में एक सप्ताह रहे। अब महाराज विषमशील विक्रमादित्य ने अपने नगर को चलने का विचार किया, सो

वहां से अपनी नवोढ़ा पत्नी मदनसुन्दरी के साथ प्रस्थान किया । साथ में भिल्लों की सेना पहुंचाने चली ।

उधर जब मृगयावन में महाराज को लिये दिये घोड़ा न जानें कहां चला गया था, उस समय समस्त सेना में खलबली मच गयी, हाहाकार होने लगा कि यह क्या अनर्थ हो गया कि महाराज न जानें कहां चले गये । इस प्रकार समस्त जनों को विकल देख महाराज का द्वारपाल भद्रायुध सबको सान्त्वना दे समझा कर कहने लगा – "आप लोग ऐसा विषाद क्यों करते हैं, विषाद का कोई अवसर नहीं है, हमारे महाराज शीघ्र ही आते हैं । महाराज का प्रभाव ऐसा दिव्य है कि उनका अहित कदापि हो हो नहीं सकता । क्या आप लोग यह भूल गये कि महाराज अकेले ही पाताल में गये थे और वहां से नागकन्या सुरूपा को विवाह लाये थे । वह वीर गन्धर्वलोक को गये थे सो वहां से गन्धर्वाधिपति की कन्या ताराबली को साथ लाये थे ।" इस प्रकार जब भद्रायुध ने सबको आश्वासन दिया तब आकर लोग कुछ शान्त हुए और आकर के द्वार पर बैठ कर महाराज के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे ।

इधर राजा शबरसेना के साथ सरल मार्ग के द्वारा चलते थे, मदनसुन्दरी यथेच्छ गमन करती थी । सो महाराज घोड़े पर आरूढ़ हुए वेताल और सेरे साथ उस वन में पहुंचे जहां वराह पहिले दीख पड़ा था । उस वराह के देखने की इच्छा से महाराज वहां पहुंचे । ज्योंही महाराज वन में पैठे कि वह वराह सामने आ ही तो गया, देखते ही महीपति ने पांच बाणों से उसको मार डाला । ज्योंही वह मारा गया कि वेताल ने दौड़ कर उसका पेट फाड़ डाला । हे देवि ! अकस्मात् उसके उदर से एक बड़ा सुन्दर पुरुष निकला । उसको देख राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उस पुरुष से पूछते रहे थे कि आप कौन हैं कि इतने में जङ्गम (१) पर्वत के समान एक बनैला हाथी वहां आ पहुंचा । उस बनैले गज को आते देखते ही महाराज ने एक बाण उसके मर्मस्थल पर मारा बस उसी से उसका काम पूरा हो गया और वह धरती पर गिर पड़ा । वेताल ने दौड़कर उसका भी पेट फाड़ डाला सो इसके उदर से भी एक दिव्य पुरुष निकल खड़ा हुआ और

(१) चलते हुए ।

एक सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री भी। महाराज वृत्तान्त पूछा ही चाहते थे कि वराह के पेट से निकले हुए पुरुष ने कहा—"राजन्! सुनिये मैं अपना वृत्तान्त आपको सुनाता हूं।"

हम दोनों देवकुमार हैं, इसका नाम भद्र और मेरा शुभ। दोनों एक समय भ्रमण कर रहे थे कि कण्वऋषि के आश्रम में पहुंचे। मुनि वहां ध्यानस्थित थे। हम दोनों गज और सूकर के रूप धारण कर खेल करने लगे और इस प्रकार क्रीड़ा करते २ हम दोनों मुनि को नाना भांति त्रास दिखाने लगे। इस व्यापार से महर्षि को बड़ा क्रोध हुआ सो उन्होंने हमें शाप दे दिया कि जाओ इसी प्रकार तुम दोनों जङ्गल में गज और सूकर बने विचरा करना, जब राजा विक्रमादित्य तुम्हारा वध करेंगे तब तुम्हारा यह शाप छूटेगा और तुम इन शरीरों से छुटकारा पाओगे। सो महाराज! इस प्रकार हम दोनों मुनि के शाप से गज और सूकर हुए और आज आपसे छुड़ाये गये। अब यह स्त्री अपना वृत्तान्त स्वयं सुनावे। अब महाराज आप एक काम और करिये कि इस सूअर का कण्ठ छूइये और इस हाथी की पीठ, बस आपके करस्पर्श से ये दोनों सूकर और गज आपके लिये तलवार और ढाल हो जायेंगे। इतना कह वह पुरुष दूसरे के साथ अन्तर्धान हो गया और राजा के हाथ से छू जाकर वे दोनों सूअर और हाथी तलवार और ढाल हो गये।

अब महाराज ने उस स्त्री से उसका वृत्तान्त पूछा तो वह इस प्रकार कहने लगी। "महाराज! उज्जयिनी में धनदत्त नामक जो वणिक् हैं मैं उन्हीं की भार्या हूं। एक समय की बात है कि मैं अपनी अटारी पर सोयी थी कि यह हाथी वहां पहुंचा और मुझको निगल कर यहां चला आया, इसके भीतर कोई मनुष्य न था। जब इस का पेट फाड़ा गया तब मेरे साथ पुरुष निकला बस महाराज यही मेरा वृत्तान्त है।" इस प्रकार वह दीना स्त्री जब अपना वृत्तान्त सुना चुकी तब महाराज उससे बोले—"भद्रे! धीरज धरो घबड़ाओ मत, किसी बात की चिन्ता नहीं है। मैं तुमको तुम्हारे पति के घर पहुंचा दूंगा तुम मेरी भार्या के साथ निर्भय होकर रहो। इतना कहकर महाराज ने वेताल के द्वारा महारानी मदन-

सुन्दरी को जो कि स्वच्छन्द दूसरे मार्ग से जा रही थीं बुलवा भेजा और उन्हें यह स्त्री सौंप दियो ।

जब बेताल लौट कर आया तब अकस्मात् वहां दो राजकन्याएं, जिनके पास बहुत ही भव्य (१) थे, दिखायी पड़ीं । तब राजा ने सुभेभेज कर सरदारों को बुलवाया और उनसे पूछा कि ये दोनों कन्याएं कौन और कहां से आयी हैं ? महाराज का ऐसा प्रश्न सुन वे बोले—"महाराज ! कटक नामक एक द्वीप है जो सब सम्पतियों का आकार है। तहां के राजा गुणसागर यथार्थ में गुणसागर ही हैं । उनकी पटरानी महादेवी से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम गुणवती पड़ा । गुणवती का सौन्दर्य ऐसा कि जिसके देखने से विधाता को भी आश्चर्य होता । सिद्धों ने बतलाया कि इस राजकुमारी का पति सप्तद्वीपेश्वर होगा सो राजा ने मन्त्रियों को बुला कर मन्त्रणा कियी, अन्त में धरणीपति ने निश्चय किया कि मेरी इस दुहिता के योग्य पति महाराज विक्रमादित्य ही हैं सो विवाह के निमित्त उन्हीं के पास में इसे भेज देता हूं । इस प्रकार निश्चय कर महीश ने एक जहाज धनधान्य और रत्नों से परिपूर्ण करवाया और उसपर अनुचर वर्गों के साथ राजकन्या को चढ़ाया ।

जिस समय कि वह जहाज सुवर्णद्वीप के निकट पहुंचा उस समय एक आकस्मिक घटना घटी कि एक मत्स्य वह जहाज निगल गया । इतने में समुद्र के हिलकोरे से वह मत्स्य रेती में फेंक दिया गया जहां पड़ कर वह मत्स्य मग्न हो गया । उसको वहां पड़ा देखकर लोग दौड़े और लगे उसपर प्रहार करने जब वह मर गया तब लोगों ने उसका पेट फाड़ डाला । जब पेट में से अर्णवपोत निकला तो देखते ही लोग आश्चर्य में डूब गये । उस द्वीप में राजा गुणसागर के साला राजा चन्द्रशेखर राज्य करते थे । यह सम्वाद पाकर वह वहां उपस्थित हुए और अर्णवपोत पर के लोगों से उनको ज्ञात हुआ कि क्या व्यापार है । तब वह यह जान करके यह गुणवती मेरी भाञ्जी है राजकुमारी को अपनी राजधानी में ले गये उस अवसर पर वहां बड़ा भारी उत्सव मनाया गया ।

उनके भी एक कन्या थी जिसका नाम चन्द्रवती था । इसका विवाह राजा

(१) भड़कदार ।

चन्द्रपीडने ने महाराज विक्रमादित्य के साथ ही करना विचारा था। सो दूसरे दिन उन्होंने एक उत्तम प्रवहण (१) सजवाया और उसमें नाना प्रकार के विभव भरवाय दिये। उसी पर अपनी भान्जी गुणवती और पुत्री चन्द्रवती को चढ़ा कर शुभ मुहूर्त में बिदा किया। समुद्र पार कर चलती हुई अब ये दोनों राजकन्याएं हे महाराज! यहां आ पहुंचीहैं, और हम लोग इनके परिकर हैं। हे महाराज! जब हम लोग यहां पहुंचे तो पर्वताकार एक शूकर और एक हाथी हमपर दौड़े। उस समय हम लोगों ने लोकपालों को दोहाई देकर कहा—"हे लोकपालो! विक्रमादित्य देव के स्वयम्वर में ये दोनों कन्याएं आयी हैं (२) सो इनकी रक्षा करो।" ऐसा हमारा आक्रन्दन सुन वे दोनों शूकर और हाथी स्पष्ट वचनों में (३) बोले—"धीरज धरो! अब भय नहीं है तुमने जो महाराज विक्रमादित्य का नाम ही लिया तो अब कुछ भी डर नहीं है। अभी तुम लोग उस महाराज को यहीं आया देखोगे।" इतना कह वे दिव्य हाथी और शूकर न जानें कहां चले गये। बस महाराज! यही हमारा वृत्तान्त है।

इतना कह जब वे राजपुरुष चुप हो गये, तब हे देवि! मैंने उनसे कहा—"आर्य्यो! जिस दिव्यप्रभाव महाराज विक्रमादित्य की खोज में तुम लोग निकले हो वे यही हैं। इतना सुनते ही वे आनन्द से फूल उठे और महाराज के चरणों पर गिरे। पश्चात् उन सभों ने उन दोनों राजकन्याओं गुणवती और चन्द्रवती को महाराज के अर्पण कर दिया। इतने में महीपति ने उस वेताल को आज्ञा देकर उन दोनों सुन्दरियों को भेज दिया और कहा कि मदनसुन्दरी के पास लेजो जावें। वेताल जब पहुंचा कर लौट आया तब राजा, हे देवि। मैं और उस वेताल के साथ बड़े बीहड़ मार्ग से चले।

इतनी कथा रानी कलिङ्गसेना को सुना वह देवसेन कार्पटिक आगे फिर कहने लगा—हे देवि! उस समय जब हम लोग बीहड़ मार्ग से जङ्गल में होकर जा रहे थे कि इतने में सूर्य्य भगवान् अस्ताचल के शिखर पर चढ़ हो

(१) जहाज।
(२) अर्थात् महाराज विक्रमादित्य को वरण करने ये दोनों कन्याएं आयी हैं।
(३) मनुष्य की बाणी से।

गये । उस समय हम लोगों को नगाड़े की ध्वनि सुन पड़ी महाराज ने पूछा कि ऐसे सुनसान जङ्गल में यह नगाड़े की ध्वनि कैसी ? तब वेताल बोला—"देव ! यहां पर एक मन्दिर है । हे प्रभो यह मन्दिर ही कौतूहलजनक है, यह विश्व कर्मा का बनाया है वहीं दर्शन के निमित्त सन्ध्या समय में यह नगाड़ा बज रहा है । वेताल का ऐसा वचन सुन हम दोनों के मन में भी बड़ा कौतुक उपजा सो हे देवि ! वेताल, राजा और मैं. सब लोग वहां गये, घोड़ा बांध कर हम लोग मन्दिर में घुँसे । भीतर जाकर देखा कि सुवर्ण रत्नों का बना एक बड़ा भारी शिव-लिङ्ग है जिसकी पूजा हुई है । सामने एक ऊंचे स्थान पर दीपक जल रहा है, घड़ी, घण्टा, शङ्ख, झांझ बज रहे हैं और गान्धर्व राग से गान हो रहा है, सा-मने अति सुन्दर दिव्य स्त्रियां नृत्य कर रही हैं ।

इस प्रकार जब दर्शन हो गया तब हम लोगों ने क्या देखा कि खम्भों में जो पुतलियां बनी थीं उनमें तो नाचनेवालियां जा के लुप्त हो गयीं और जो गाने बजानेवाले थे भी चित्रस्थ पुरुषों में छिप गये । यह आश्चर्य देख महाराज को बड़ा अचम्भा हुआ । तिस समय वेताल बोला. महाराज, विश्वकर्मा की बनायी यह माया ऐसी ही और अक्षय है, प्रतिदिन सर्वदा प्रातःकाल और सायङ्काल में ऐसा होता है ।"

इतना कह जब वेताल चुप हो गया तब हम तीनों घूम २ कर मन्दिर देखने लगे तहां एक स्थान में एक अद्भुत सुन्दर खम्भे की युवती दीख पड़ी । उसे देखते ही महाराज तो उसके लावण्य पर मोहित हो गये । ऐसे चुपचाप क्षण भर उसको देखते रह गये मानों वह भी खम्भे पर उरेहे चित्र हो गये । क्षण भर के उप-रान्त महाराज बोले—"यदि इस रूप की जीवित अङ्गना न देखी तो मेरे राज्य से क्या और जीवन से क्या ?" सो सुन वेताल बोला, "महाराज! यह अप्राप्य कुछ भी नहीं है, कलिङ्गाधिप की कन्या कलिङ्गसेना नाम्नी है । एक समय की बात है कि वर्द्धमान नगर के एक चित्रकार ने राजकन्या को देखा, उनका रूप देखकर उसका मन हुआ कि मैं भी ऐसा ही रूप बनाऊं सो उसी ने यह स्तम्भ की पुतली उरेही है सो प्रभो ! यह कोई असम्भव बात नहीं है, उज्जयिनी चलिये और वहां से दूत भेज कर कलिङ्गराज से उक्त कन्या की याचना कीजिये और जो न

देवें तो बल पूर्वक हरण कर लाइये। वेताल का यह वचन महाराज ने हृदय में रख लिया। रात में हम लोग वहीं टिक रहे।

जब प्रातःकाल हुआ तो हम लोग वहां से प्रस्थानित हुए। चलते २ हम लोग एक स्थान पर पहुंचे वहां एक आम्रीक का वृक्ष था। उसके नीचे बड़े ही सुन्दर दो पुरुष बैठे थे, सो राजा को देख कर उठे और इनके चरणों पर गिरे। राजा ने उनसे पूछा कि तुम दोनों कौन हो और यहां अरण्य में किस लिये आये हो? इस प्रकार राजा के प्रश्न सुन उनमें से एक बोला—"देव! सुनिये मैं आपको अपना वृत्तान्त सुनाता हूं। मैं उज्जयिनी का रहनेवाला धनदत्त नामक बनिया हूं। मैं अपनी भार्य्या के साथ अँटारी पर सोया था। प्रातःकाल उठ कर क्या देखता हूं कि मेरी पत्नी नहीं है। न तो अँटारी पर न तो और प्रासादों पर और न तो उद्यान और उपवन में; कहीं उसका पता न लगा। उसका चित्त किसी दूसरे पर नहीं लगा था, इसका मुझको पूर्ण विश्वास है क्योंकि उसने मुझे एक माला दियी थी और कहा था कि यदि मैं साध्वी हूं तो यह माला कदापि नहीं मुरझायगी सो वह माला ज्यों की त्यों बनी है। अब मैं नहीं जानता कि मेरी वह प्राणप्यारी कहां गयी और कि कोई भूत तो उसे नहीं कहीं उठा ले गया। उसी की खोज में मैं रोता और विलपता उसकी विरहाग्नि से सदा जलता रहता हूं। खाना पीना मुझको कुछ भी नहीं सोहाता, उसी की चिन्ता में सदा मग्न रहता हूं भाई बन्धुओं ने बहुत कुछ समझाया बुझाया तब मैं भोजन करने लगा। तब मैं देवालय में रहने और ब्राह्मणों को भोजन कराने लगा। देवालय में रहते रहते एक दिन की बात है कि वहां यह ब्राह्मण देवता आये। स्नान आहारादि करा कर मैंने इनको विश्राम कराया। जब यह भोजन करके सुचित्त हुए तब मैंने इनसे पूछा कि देवता जी! कहां से आये हो? तब इन्होंने उत्तर दिया कि बारायसी के समीप एक गांव से आया हूं।

मेरे भृत्य ने इनको मेरा वृत्तान्त बतला दिया तब इन्होंने मुझसे कहा कि मित्र! यह तुम क्या करते हो कि उद्योग त्याग चुपचाप बैठ कर अपने आत्मा को दुःखित कर रहे हो। जो उद्योग करता है वह दुष्प्राप्य को भी प्राप्त कर लेता है। सो चलो हम दोनों मिल कर चलें और तुम्हारी भार्य्या को, खोजि में

तुम्हारा मित्र हूं, तब मैंने कहा—"सखे! भला उसकी खोज क्योंकर हो सकती है जिसकी दिशा भी नहीं ज्ञात है कि किधर गयी।" तब ब्राह्मण देवता ने कहा "भाई! ऐसा मत कहो, क्या तुम नहीं जानते हो कि पूर्वकाल में केसट नामक एक व्यक्ति ने रूपवती भार्या को जिसका समागम भी असम्भव है, उद्योग से ही प्राप्त किया, सुनो मैं तुमको उसकी कथा सुनाता हूं।"

पूर्व समय की बात है कि पाटलिपुत्र में केसट नामक एक धनाढ्य ब्राह्मण कुमार रहता था। वह युवा ऐसा सुन्दर कि जिसके देखने से यही अनुमान होता कि मानों यह द्वितीय कामदेव है। वह यही चाहता था कि जैसा सुन्दर मैं हूं वैसी ही सुन्दर भार्या मुझको मिले तो ठीक है। सो वह माता पिता के विना जनाये घर से निकला और तीर्थयात्रा के बहाने देश २ भ्रमण करता फिरा। चलते २ वह नर्मदा किनारे पहुंचा वहां पहुंच कर क्या देखता है कि वरयात्रा प्रसङ्ग से बड़ा भारी जन समूह उसी मार्ग से चला जा रहा है। जब वह दूर ही पर था कि उन लोगों में से एक वृद्ध ब्राह्मण उसको देखकर उसके समीप आकर बड़े प्रेम से कहने लगा—"भद्र! मैं तुमसे कुछ मांगता हूं यह कार्य्य तुम खेल की भांति सिद्ध कर सकते हो, इससे मेरा बड़ा उपकार हो जावेगा, सो यदि करो तो कहूं।" सो सुन केसट बोला, "आर्य! जो आप यह कह रहे हैं कि वह कार्य शक्य है तो मैं अवश्य करूंगा जिससे आपका उपकार हो जावे।" सो सुन वह वृद्ध ब्राह्मण बोला—"पुत्र! सुनो; मेरे एक पुत्र है कुरूपों में वह अग्रगण्य है जैसे कि तुम रूपवानों में हो। बड़े २ दांत, चिपटी नाक काला रंग, कचरीली आंख, पेट निकला हुआ, टेढ़ी २ टांगें, सूप से बड़े २ कान। ऐसे तो उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग हैं। मुझे उसके विवाह की बड़ी चिन्ता पड़ी कि कैसे करूं।

इसी चिन्ता में मुझे एक उपाय सूझा रत्नदत्त नामक एक ब्राह्मण है सो मैं उसके पास गया। तहां मैंने पुत्र के रूप का सच्चा वर्णन न किया किन्तु स्नेह के कारण बनावटी अति सुन्दर स्वरूप बतला कर इस ब्राह्मण से कन्या मांगी। इस कन्या का नाम रूपवती है सो उसके पिता ने उसका देना स्वीकार कर लिया है। कन्या रूपवती सचमुच रूपवती ही है। क्या कहूं पुत्र! आज उस

दोनों का विवाह होना है। इसी के विवाह की बरात यह जा रही है परन्तु मुझे तो इस बात की बड़ी चिन्ता है कि मेरा पुत्र तो ऐसा कुरूप है, जब समधी जी देखेंगे तो भला अपनी रूपवती कन्या उसे काहे को देंगे। तब तो मेरा सारा परिश्रम ही व्यर्थ हुआ। मैं इसी चिन्ता में पड़ा था कि तुम दीख पड़े। सो जैसी कि तुमने प्रतिज्ञा किया है सो पूरी करो, अब शीघ्र मेरा मनोरथ सिद्ध करो। बस इतना ही करो कि हमारे साथ चलो और उस कन्या का विवाह करके मेरे पुत्र को दे देओ क्योंकि तुम उस वधू के योग्य वर हो।" केसट इस प्रस्ताव पर सम्मत हो उस ब्राह्मण के साथ चला तब बरात के सब लोग नाव पर चढ़ नर्मदा पार हुए। चलते २ एक गांव पड़ा तहां उस गांव के बाहिर ही उस ब्राह्मण ने विश्राम के लिये अपने साथियों सहित डेरा डाला और उधर आकाश के पथिक सूर्य भी अस्ताचल पर जा पहुंचे।

धीरे २ अन्धकार फैल गया। उस समय स्नान करने के निमित्त केसट जल के समीप गया तो वहां क्या देखता है कि एक बड़ा घोर राक्षस उठ खड़ा हुआ है। "ऐ केसट! मैं तुझे अभी खा लेता हूं। अब तू मेरे सामने से कहां जायगा।" इस प्रकार जब कह कर वह राक्षस लपका तब केसट ने उससे कहा—"भाई! ऐसा अभी मत करो, देखो मैंने ब्राह्मण से प्रतिज्ञा कियी है सो पूरी करनी चाहिये। सो तुम मेरी बात का विश्वास करो और मुझे भक्षण मत करो मैं यह सत्य २ कहता हूं ब्राह्मण का कार्य करके मैं निश्चय तुम्हारे पास आ जाऊंगा।" केसट का ऐसा वचन सुन राक्षस ने उससे शपथ लेकर छोड़ दिया और केसट अपने साथियों के पास लौट गया।

अब उस वृद्ध ब्राह्मण ने केसट को वर के वस्त्राभरण से भूषित किया। बारात सजी और वृद्ध ब्राह्मण वर केसट को लेकर बारात के साथ उस नगर में पैठा। होते २ बारात रत्नदत्त के घर पर पहुंची वहां वेदी प्रस्तुत थी और नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। विवाह की सब रीतियां क्रमशः होने लगी। पश्चात् रत्नदत्त ब्राह्मण ने विधिपूर्वक अपनी सुरूपा सुशीला गुणवती कन्या रूपवती का दान केसट के हाथ में कर दिया और यौतुक में बहुत सा धन दिया। वहां जितनी

स्त्रियां थी सब केसट को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुईं, सब कहती थीं कि जैसी सुन्दरी रूपवती है वैसा ही सुन्दर इसको वर भी मिला, दोनों बराबर ही योग्य हैं; और वह रूपवती भी अपने ऐसे पति को देखकर अति प्रफुल्लित हुई। रूपवती की सखियां भी ऐसे सुरूप केसट को देखकर कामदेव के वश में हो गयीं। सब लोग तो केसट को देखकर बड़े ही प्रमुदित थे और आनन्द में चूर हो रहे थे किन्तु केसट यह चरित्र देखकर बड़ा अचम्भा करता था।

अस्तु रात्री के समय जब वर वधू एक घर में सुलाये गये उस समय केसट पलङ्ग पर एक ओर करवट सो रहा और बड़ी चिन्ता में लीन था। उसकी पत्नी ने जब यह देखा कि मेरे प्राणेश्वर किसी बात की चिन्ता में मुंह फेर सो गये हैं तब वह भी इस प्रकार मिस कर सो रही मानों निद्रिता हो गयी है।

केसट को तो अपनी प्रतिज्ञा के पालन की चिन्ता पड़ी थी कि एक प्रतिज्ञा जो किये थी सो तो पूरी कर चुका पर अब उस राक्षस से जो प्रतिज्ञा कर आया हूं सो भी पूरी करनी चाहिये। जब आधी रात हुई तब वह उठा तो क्या देखता है कि रूपवती निद्रा में सो रही है। केसट चट वहां से उठा और अपने सत्य के पालन के अर्थ उस राक्षस के समीप पहुंचने को चला। जब पति उठ के चला तब पतिव्रता रूपवती को बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि यह कहां जाते हैं सो वह भी चुपके से उठी और छिपी २ अपने पति के पीछे २ चली।

जब केसट उस राक्षस के निकट पहुंचा तब राक्षस बोला—"केसट तुम धन्य हो। हे महासत्व! तुमने अपना सत्य पालन किया है। तुमने पाटलिपुत्र नगर को और पिता केसट को पवित्र कर दिया, सो आओ मैं तुम्हें अब भक्षण करूं। इतना सुनते ही रूपवती झटपट राक्षस के समक्ष जा खड़ी हुई और बोली—"मुझे खाओ क्योंकि जब मेरे पति को खा डालोगे तो मेरी क्या गति होगी।" उसका ऐसा कथन सुन राक्षस बोला—"भिक्षा तेरी गति होगी (१)।" तब रूपवती बोली—भला मुझ स्त्री को भिक्षा कौन देगा," राक्षस ने कहा कि जो तुझे भिक्षा न देगा उसका सिर सौ टुकड़े हो जावेगा। इसपर रूपवती बोली—"तो तुमसे ही भिक्षा मांगती हूं कि पतिरूप भिक्षा मुझको दे देओ।" राक्षस ने

(१) भिक्षा मांग कर खाइयो।

उसकी भिक्षा स्वीकार न कियी इस कारण उसका शिर सौ टुकड़ों में फट गया और वह राक्षस मर गया। केसट को अपनी विवाहिता पत्नी का यह चरित देख बड़ाही आश्चर्य हुआ। अब रूपवती केसट को लेकर घर पहुंची और इसी अवसर पर रात भी व्यतीत हो गयी।

जब प्रातःकाल हुआ, सब लोगों ने आवश्यक कार्य से छुट्टी पाकर स्नानाहार किया। उपरान्त बारात बिदा हुई। चलते २ सब लोग नर्मदा किनारे पहुंचे तहां वह वृद्ध ब्राह्मण अपने साथियों के साथ बहू रूपवती को एक नाव पर चढ़ा कर आप एक दूसरी नाव पर चढ़ा। केसट को अपने सब आभरणादि लेकर उसने एक दूसरी नाव पर चढ़ा दिया जिसके मल्लाहों से उसने पहिले ही बात चीत कर रक्खी थी। उधर तो ब्राह्मण अपने साथियों के साथ पार उतर के चला और इधर मल्लाह केसट की नाव दूसरी ओर ले चले। बहुत दूर नाव ले जाकर नाविकों ने धारा में वह नाव छोड़ दियी केसट उसी पर रह गया और वे नाविक पैर कर पार आ गये। उन्होंने उस धूर्त ब्राह्मण से धन लेकर पहिले से ही ऐसा ठान रखा था इसी कारण ऐसा दुःसाहस किया।

केसट की नाव धारा में बही जाती थी वह विचारा उसी पर बैठा २ कुछ सोच रहा था। इतने में नाव बहती २ समुद्र में जा गिरी तहां उसी समय प्रचण्ड आंधी जो आयी तो वह तरङ्गों से उठा कर तट पर फेंक दिया गया। कहा ही है "आयुर्मर्माणि रक्षति," केसट की आयु बची थी इसी कारण वह तट पर आ पड़ा। जब कुछ अश्वस्त हुआ तब सोचने लगा "अहो! मैंने जो उस ब्राह्मण के साथ उपकार किया उसी का प्रत्युपकार उसने किया! क्या उसी ने अपनी अधार्मिक की मूर्खता नहीं कह दियी थी जो कि दूसरे की विवाही भार्या अपने पुत्र की भार्या बनाता है। इस प्रकार वह विचार ही रहा था और विचार २ विकल हो रहा था कि उसी अवसर में रात्री आ पहुंची जिसमें खेचरियां विचरण करती हैं।

विपत्ति का मारा विचारा केसट क्या करता इस समय विह्वल हो नाना प्रकार की चिन्ता करता हुआ सो रहा पर निद्रा कहां! करवटें पलटता, समय काटने लगा। किसी प्रकार रात के तीन पहर तो बीत गये, चौथे पहर में क्या हुआ

कि आकाश में उसको कोलाहल सुन पड़ा तो आंख खोल कर देखने लगा तो क्या देखता है कि एक सुन्दर पुरुष आकाश से सामने आ गिरा है। उसे देखते ही कैसट डर गया और बहुत देर लों उसको ओर देखता रहा। जब उसको निश्चित रूप से ज्ञात हो गया कि यह कोई भयङ्कर तत्व नहीं है तब कैसट ने उस पुरुष से पूछा—"भाई। तुम कौन हो?" उसका ऐसा प्रश्न सुन वह पुरुष बोला—"पहिले तुम ही बताओ कि तुम कौन हो और यहां कैसे आये हो तब पीछे मैं अपना वृत्तान्त सुनाऊंगा।" उसके इस प्रकार पूछने पर कैसट अपना वृत्तान्त साद्यन्त सुना गया। सो सुन वह पुरुष बोला—"तब तो भाई! हम दोनों की एक ही अवस्था है। मित्र! सुनो अब मैं अपना वृत्तान्त तुमको सुनाता हूं":—

वेणा नदी के किनारे रत्नपुर नामक एक नगर है। वहां एक बड़ा धनवान् ब्राह्मण रहता है तिसका मैं पुत्र हूं नाम मेरा कन्दर्प है। मैं गृहस्थधर्म्म में वर्तमान हूं। एक दिन की बात है कि मैं सायङ्काल में पानी के निमित्त गया वहां जो पांव फिसला तो नदी में जा पड़ा और धारा में बह चला। रात का समय कहीं कुछ सूझता भी न था। रात भर मैं बहता गया किन्तु जब प्रातःकाल हुआ तो आयु रहने के कारण किनारे के एक वृक्ष के खोंड़रे में जा पड़ा। अस्तु किसी प्रकार डाल पकड़ कर मैं करारे पर चढ़ गया। वहां कुछ क्षण विश्राम कर इधर उधर जो दृष्टि कर देखने लगा तो देवी का एक बड़ा भारी मन्दिर दीख पड़ा। मन्दिर तो बड़ा भारी किन्तु सूना था। मैं मन्दिर के भीतर गया तहां क्या देखता हूं कि तेज से देदीप्यमान देवियां हैं उनके दर्शन से मेरा भय शान्त हुआ तब मैंने स्तुति कर उनसे कहा—"हे भगवतियो! मुझ विपदग्रस्त का परित्राण करो मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। हे मित्र! इस प्रकार निवेदन कर मैं बैठ गया। नदी की धारा में बहते २ मेरा शरीर नितान्त थक गया था सो मैं विश्राम करने लगा, मैं तो इस प्रकार विश्राम कर रहा था कि हे मित्र इसी अवसर में वासर भी विश्राम को प्राप्त हो गया (१)। तारारूपी अस्थि की मालाओं से भूषित, ज्योत्स्नारूपी भस्म रमाये चन्द्रमारूपी शुभ्रकपाल लिये अति भयङ्करी रजनीरूपिणी तापसी आ गयी। उस समय में क्या देखता हूं कि उन देवियों के मध्य से योगिनियां

(१) दिन भी बीत गया।

निकलीं और परस्पर कहने लगीं—आज चक्रपुर में मेला है सो हम सब तो वहां जावेंगी और यह स्थान हिंस्र जन्तुओं से परिपूर्ण है यहां इसकी रक्षा क्योंकर होगी। सो ऐसा करना चाहिये कि इसे ले चल कर कहीं ऐसे स्थान में रख देवें जहां इसका शुभ हो और जब आवेंगी तब इसे फिर लेती आवेंगी क्योंकि यह हमारी शरण में आया है। इतना कह मुझे भली भांति अलंकृत कर के योगिनियां आकाशमार्ग से उड़ कर चलीं और किसी नगर में एक बड़े धनवान् ब्राह्मण के घर में रख कर चली गयीं।

हे मित्र! उस घर में क्या देखता हूं कि उस दिन कन्या का विवाह है। वेदी सजी हुई है, सब उपक्रम हो रहा है। इतने अवसर में लग्न भी आ पहुंची परन्तु अब लों बारात नहीं आयी। सब लोगों की दृष्टि मुझपर पड़ी मैं तो उस समय योगिनियों के द्वारा उत्तमोत्तम वस्त्रालङ्कार से सुसज्जित एक दूलहा सा बनाया ही गया था। सब लोग मुझे देखते ही बोल उठे—"अहो देखो दूलहा आ पहुंचा। बस चटपट मुझे लोग वेदी पर ले गये, अलङ्कार से सुसज्जिता कन्या भी वहां लायी गयी, अस्तु उस ब्राह्मण ने विधिपूर्वक उसका दान मेरे हाथ में कर दिया। उस बधू का नाम सुमना था सो इस समय सब स्त्रियां आपस में कहने लगीं कि इस सुमना का भाग्य बड़ा भारी है कि ऐसा योग्य वर इसको मिल गया, आज इसका सौन्दर्य सफल हो गया। विवाह के उपरान्त जब सब उपचार हो गये तब मैं अपनी भार्य्या के साथ अटारी पर जाकर सुखपूर्वक सोया। मित्र क्या कहूं रात के चौथे पहर वे योगिनियां चक्र मेले से लौटीं और बड़ी युक्ति से मुझे हरण कर आकाश में उड़ चलीं। आकाश में जब कि वे चली जा रहीं थीं तब दूसरी योगिनियां मुझे हरण करने की इच्छा रखती थीं सो परस्पर उन सभों में खींचा खींची होने लगी। सो उनके हाथ से मैं अब यहां गिर पड़ा। हे सखे! अब मैं यह नहीं जानता कि वह नगर कहां है जहां मैंने सुमना से विवाह किया और यह भी नहीं जानता कि अब क्या होगा। सो मित्र! यही मेरी विधि की दियी हुई दुःख परम्परा है सो सुखान्त हो निकली कि तुमसे समागम हुआ।

कन्दर्प की इतनी कथा सुन केसट बोला—"मित्र! अब भय मत करो सुनो अब योगिनियों का बल तुमपर न चलेगा, इसका कारण यह है कि मेरे पास

ऐसी शक्ति है जिसपर किसी का बल नहीं चल सकता; अब हम दोनों साथ ही भ्रमण करेंगे आगे विधाता हमारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार वे दोनों वार्तालाप कर रहे थे कि इतने में रात बीत गयी। प्रातःकाल होने पर दोनों ने प्रस्थान किया।

चलते २ वे दोनों केसट और कन्दर्प रत्न नदी के तट पर बसे भीमपुर नामक नगर में पहुंचे। वहां जब नदी के तट पर गये तब बड़ा कलकल शब्द सुनायी पड़ा—सो दोनो वहां जाकर क्या देखते हैं कि एक बड़ा भारी मच्छ है सो इस पार से उस पार लों है। यह मच्छ समुद्र की तरङ्ग से यहां फेंका गया था। शरीर इसका बहुत बड़ा था इस कारण लोग नाना प्रकार के शस्त्रों से काट रहे थे। क्योंकि उन्हें उसके मांस की इच्छा थी। जब वह मत्स्य काटा जा रहा था कि उसके पेट से एक स्त्री निकली, सब लोग बड़े आश्चर्य में पड़ गये कि यह क्या व्यापार है अस्तु वह कामिनी तट पर आयी। उसको देखते ही कन्दर्प हर्ष से उछल उठा और केसट को बोला—"वयस्य! यह वही सुमना है जिससे मेरा विवाह हुआ था। यह नहीं जान पड़ता कि यह मच्छ के पेट में क्योंकर पहुंची। अच्छा चुप रहें सब बातें आप ही खुली जाती हैं।" हां यही ठीक है केसट ने उत्तर दिया। दोनों वहीं खड़े २ देख रहे हैं कि देखें क्या वृत्तान्त प्रकट होता है।

जब वह किनारे पर पहुंची तब लोगों ने उस ललना सुमना से पूछा कि तू कौन है? तब वह कहने लगी—"रत्नाकर नामक एक पुर है, तहां जयदत्त नामक एक विप्रचूड़ामणि रहते हैं उन्हीं की मैं कन्या हूं नाम मेरा सुमना है। रात की बात है कि एक अति सुन्दर ब्राह्मणकुमार से जो कि मेरे अनुरूप थे, मेरा विवाह हुआ। जब कि रात में मैं सोयी थी कि न जानूं मेरे प्राणेश्वर कहां चले गये, मेरे पिता ने बहुत खोजवाया पर कहीं कुछ पता न चला। मुझसे पतिवियोग की अग्नि न सही गयी सो मैं उसकी शान्ति के निमित्त नदी में कूदी कि डूब मरूं सो यह मच्छ मुझे निगल गया और विधिवश यहां आयी।

जब वह सुमना इस प्रकार अपनी कहानी सुना गयी तब उस भीड़ में से एक ब्राह्मण निकला जिसका नाम यज्ञस्वामी था, वह सुमना को गले लगा कर कहने लगा—"आ बेटी! तू मेरी भांजी है, मैं यज्ञस्वामी तेरी माता का सहोदर भाई

हूं। यह सुनते ही सुमना मुख खोल कर (१) ज्यों देखती है तो सचमुच मामा यज्ञस्वामी ही है सो वह मामा को पहिचान कर उसके पांवों पर गिर पड़ी और रोनें लगी। इस प्रकार क्षण भर रोकर वह चुप हुई और पीछे बोली—"मामा जी! अब मैं जी कर करूंगी क्या सो आप इतना उपकार कर दीजिये कि चिता लगवा दे और मैं जलमरूं क्योंकि पति से विहीन मेरी गति अग्नि को छोड़ और क्या है। उसका मामा उसको बहुत समझाता पर वह कब मानने की, वह अपने निश्चय से किञ्चिन्मात्र विचलित न हुई।

अब लों कन्दर्प उसके चित्त को परीक्षा के अर्थ रुका रहा परन्तु अब जब कि वह अग्नि में प्रविष्ट होने को उद्यत हुई तब उसने और ठहरना उचित न समझा कन्दर्प अब उसके पास गया, उसको देखते ही वह बुद्धिमती उसे पहिचान गयीं, और उसके चरणों पर गिर कर रोने लगी।। लोग और मामा उससे पूछने लगे तब वह बोली कि यही मेरे वह पति हैं। यह देख सब लोग बड़े ही हर्षित हो गये, तब यज्ञस्वामी सुमना और उसके पति कन्दर्प तथा कन्दर्प के मित्र केसट को अपने घर ले गया। वहां ये सब अपना २ वृत्तान्त कह गये, यज्ञस्वामी ने अपने कुटुम्ब सहित उनका उपचार बड़े प्रेम से किया।

इस प्रकार जब कुछ दिन व्यतीत हो गये तब केसट ने कन्दर्प से कहा—"भाई! अभीष्ट पत्नी पाकर तुम तो कृतार्थ हो गये सो अब तुम अपनी पत्नी के साथ अपने नगर रत्नपुर को जाओ परन्तु मै तो अपने देश को न जाऊंगा क्योंकि अभी मेरा अर्थ सिद्ध नहीं हुआ है। हे सखे! इसी प्रकार तीर्थयात्रा करते २ अपनी आयुष्य बिता दूंगा। उस समय यज्ञस्वामी वहीं बैठा था सो उसने केसट से कहा—"अजी ऐसा क्यों कहते हो, क्यों उद्वेग करते हो जीते रहने से सब कुछ प्राप्त होता है—देखो कहा हो है:—

"जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति।"

(१) घूंघट हटा कर। देखो सोमदेव के समय में भी घूंघट की प्रथा थी। यही कुलललनाओं की शोभा है, शालीनता बड़ा गुण हैं। आजकल के नवशिक्षित टुक अपने भ्रम पर ध्यान करें और विचार कर देखें।

जो प्राण ही त्याग दिया तब क्या ! ऐसा विचार भूल कर भी न करना चाहिये । सुनो मैं तुमको कुसुमायुधा का वृत्तान्त सुनाता हूं:—

चण्डपुर नामक एक नगर है, वहां देवस्वामी नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसके एक कन्या थी जो कि अतिसुन्दरी थी जिसका नाम कमललोचना था। उस ब्राह्मण का शिष्य कुसुमायुध नामक था। वह शिष्य और यह कन्या परस्पर प्रीतिभाव रखते थे। एक समय की बात है कि कमललोचना के पिता ने उसका विवाह एक दूसरे वर से ठीक कर दिया है। उस कन्या ने अपने इस विवाह का वृत्तान्त एक सखी से कुसुमायुध को कहला दिया। कमललोचना ने सखी के द्वारा यह सन्देशा कहला दिया कि मेरे पिता तो मुझे दूसरे को देना स्वीकार कर चुके है किन्तु मैं पूर्व में तुमको अपना पति निश्चित कर चुकी हूं। सो अब किसी युक्ति से मुझे यहां से हर ले चलो। अब उसके हरण करने के लिये कुसुमायुध ने निश्चय किया।

कुसुमायुध ने हरण का निश्चय कर उसे सूचना दे दियी कि आज रात को तुम घर से निकलना मेरा सेवक वहां तुमको एक खचड़ी लिये मिलेगा। अस्तु उससे ऐसा ठीक ठाक कर कुसुमायुध ने रात के समय अपने सेवक के साथ एक खचड़ी वहां घर के बाहिर भेज दियी। कमललोचना निर्दिष्ट समय पर चुपचाप घर से निकली और खचड़ी पर चढ़ कर चली। सेवक के मन में पाप बसा वह उसे कुसुमायुध के पास न ले जाकर अपने ही अर्थ और कहीं ले गया। रातो रात वह भृत्य कमललोचना को लिये दिये बहुत दूर निकल गया। प्रातःकाल होने पर एक नगर मिला तहां वह सती उस भृत्य से बोली—"तेरे स्वामी वह मेरे भर्त्ता कहां हैं, क्यों नहीं मुझे वहां ले चलता ?" सो सुन वह उस शठ ने अकेली और विदेश में प्राप्त उस कमललोचना से कहा, मैं तुमसे विवाह करूंगा, उससे क्या अब वह कहां और तुम कहां ! कमललोचना थी बड़ी पण्डिता। उस दुष्ट का असदभिप्राय समझ समयोचित प्रत्युत्पन्न मतित्व का उदाहरण उसने दिया। उसका ऐसा कथन सुन वह बोली –"आहा क्या ही अच्छी बात है तुम तो मुझे बहुत ही प्रिय हो, सो आज ही और यहीं मैं क्यों न तुमसे विवाह कर लूं।"

वह मूर्ख कमललोचना की पट्टी में आगया, उसने उसका मर्म न समझा।

वह यह प्रस्ताव सुनते ही फूल उठा और उसे नगर के उद्यान में रख हाट में विवाह की सामग्री लेने गया। इधर कमललोचना ने क्या किया कि वह खच्चड़ी सहित एक वृद्ध माली के घर चली गयी। वहां वह अपनी रामकहानी सुना गयी और उस माली से सत्कार पाकर वहां रहने लगी। वह दुष्ट भृत्य हाट से जब सामग्री लेकर लौटा तो यहां उद्यान में कमललोचना नहीं, सो वह अपनी करनी पर माथा पीटता चला गया।

दुष्ट अपनी प्रकृति का परिचय अवश्य ही देते हैं। इधर तो उस दुष्ट भृत्य ने ऐसा दुःसाहस किया पुनः जब मनोरथ सफल न हुआ तो अपने स्वामी कुसुमायुध के समीप लौट जाकर बातें बना कर कहने लगा – महाराज! तुम तो बड़े सीधे हो, कुटिल स्त्रियों का चरित भला तुम क्या जानो। अरे वह बड़ी धूर्त है, देखिये आपको तो ऐसा सन्देशा भेज और ऐसा प्रबन्ध कराया कि आप घर से निकले ही नहीं। लोगों ने मुझे देख लिया और मुझे बहुत पीट तथा खच्चड़ी छीन लियी, महाराज दैव अनुकूल था किसी प्रकार से भाग कर यहां आ पहुंचा नहीं तो आज प्राणों पर आ बनी थी।" भृत्य का ऐसा कथन सुन कुसुमायुध विचार में पड़ गया कुछ कह न सका चुप हो रहा।

कुछ दिनों के उपरान्त ऐसा हुआ कि कुसुमायुध का विवाह होने लगा। सो वह विवाह के लिये पिता से भेजा जाकर चला। चलता चलता उसी नगर में पहुंचा जहां कमललोचना थीं। वहां एक समीपस्थ उद्यान में बारात उतरी और कुसुमायुध घूमने निकला। दैव की करनी कि उस कमललोचना की दृष्टि पड़ गयी सो उसने माली से यह वृत्तान्त कहा माली जाके सब वृत्तान्त कह उसके पति को बुला लाया। विवाह की सब सामग्री उपस्थित थी ही सो चिरआचित उन वधू वर का विवाह यही उसी दिन सम्पन्न हो गया इसके उपरान्त कुसुमायुध ने उस पापी भृत्य को दण्ड दिया जिसने विवाह होतीं कमलमोचना को उससे बिछुड़ा दिया था पश्चात् जिस कन्या के विवाह के लिये वह चला था उसको भी विवाह कर दोनों भार्य्याओं के साथ अपने देश को लौट गया।

इतनी कथा सुनाय यज्ञस्वामी बोला—केसट! सो तुम चिन्ता मत करो भक्त लोगों को ऐसा ही अचिन्त्य समागम हो जाता है। सो तुम भी शीघ्र ही अपनी

प्रिया को प्राप्त करोगी; धीरज धरो, तुम्हारा मनोरथ सफल होगा ।" इस प्रकार यज्ञस्वामी की कही कथा सुन केसट कुछ शान्त हुआ और कन्दर्प, सुमना तथा केसट उसके घर कुछ दिन और रहे ।

कुछ कालोपरान्त यज्ञस्वामी से आज्ञा लेकर तीनों चले और चलते २ एक बड़े घने जङ्गल में जा निकले । दैवात् एक मस्त हाथी आ पहुंचा इससे तीनों फिर तितर बितर होकर बिछुड़ गये । अब केसट अपने मित्र के बिछुड़ जाने से अकेला पड़ गया इससे बड़ा दु:खी हुआ और चलता २ काशीपुरी में पहुंचा तहां मित्र कन्दर्प उसे मिला । सो उसके साथ वह अपने नगर पाटलिपुत्र में पहुंचा । उसके आने से माता पिता को बड़ा आनन्द हुआ और वह कुछ दिन वहां रहा । केसट ने रूपवती के साथ अपने विवाह से लेकर कन्दर्प को प्राप्ति तथा उसका वृत्तान्त सब अपने माता पिता को सुना दिया ।

यह तो केसट और कन्दर्प की बात हुई अब उधर सुमना का यह वृत्तान्त हुआ कि जब वह हाथी के डर से भागी तो एक बन में जा पहुंची और उसी समय सूर्य्य भी अस्ताचल पर जा विराजे । आर्यपुत्र ! हा तात ! हा अम्ब ! तुम कहां हो ! इस प्रकार सोचती और विलाप करती वह बहुत विकल हो अन्त को दावाग्नि में जल मरने को उद्यत हुई । इसी अवसर में वे योगिनियां जो कि कन्दर्प पर बहुत कृपावती थीं, अन्य योगिनियों पर विजयिनी हुईं और अपने मन्दिर में पहुंचीं । तहां उनको कन्दर्प की बात का स्मरण हुआ । ध्यान से उन्होंने जान लिया कि कन्दर्प कहां है और उसकी पत्नी बन में छूट गयी है तब सब आपस में परामर्श करने लगीं । सभों ने यह निश्चय किया कि कन्दर्प तो धीर पुरुष है अपना वाञ्छित आप ही प्राप्त कर सकता है किन्तु उसकी भार्य्या बाला है और बन में छूट गयी है ऐसा न हो कि प्राण त्याग कर देवे । सो आओ उसे रत्नपुर ले चल कर छोड़ आवें कन्दर्प के पिता के घर में वह अपनी सौत के साथ रहे । इतनी मन्त्रणा कर वे वहां पहुंची जहां सुमना विलाप करती विकल हो मरने पर उद्यत थी । उन्होंने उसे बहुत कुछ समझा बूझा कर इस निश्चय से हटाया पश्चात् वे उसे लेकर वहां से उड़ीं और रत्नपुर में छोड़ कर अपने स्थान को चली गयीं ।

अब रत्नपुर की कथा सुनिये। जब कि रात बीती उस समय सुमना उठी और एक ओर जाने लगी। उस समय क्या देखती हैं कि एक मनुष्य दौड़ता चला जा रहा है और यह कहता जाता है कि यह अनङ्गवती कन्दर्प ब्राह्मण की भार्य्या है। इसका पति न जाने कहां चला गया सो साध्वी कुछ दिन उसकी प्राप्ति की इच्छा से प्रतीक्षा करती रही, अब जों कन्दर्प न मिला सो वह निराश होकर घर से निकली है कि अग्नि में प्रवेश करूं और सास ससुर उसके पीछे २ चले गये हैं। इतना सुनते ही सुमना चट पट वहां गयी जहां चिता लगी हुई थी और अनङ्गवती के समीप जाकर निवारण कर इस प्रकार कहने लगी—"आर्य्ये! साहस मत करे, तेरा पति जीवित है," इतना कहके आरम्भ से उसकी कथा सुना गयी। इस बात के विश्वास के लिये उसने कन्दर्प की दियी हुई रत्नजटित अंगूठी दिखायी जिससे लोगों को उसकी बात सत्य ज्ञात हुई और सब लोगों ने इस शुभ सम्वाद पर हर्ष मनाया। इसके उपरान्त कन्दर्प के पिता ने सुमना का बड़ा आदर सत्कार किया और बड़ी प्रसन्नता के साथ वह अपनी दोनों पतोहुओं अर्थात् अनङ्गवती और सुमना को घर ले गया।

उधर केसट और कन्दर्प की कथा ऐसी थी कि कन्दर्प प्रति दिन बिदा मांगता परन्तु केसट प्रेम के मारे उसे जाने की आज्ञा न देता। कन्दर्प को अपनी भार्य्या सुमना की बड़ी चिन्ता थी, उसे इसी बात का ध्यान रहता कि वह क्योंकर मिले सो एक दिन वह केसट से विना कहे निकला और एक ओर चला गया। केसट को भी रूपवती की चिन्ता थी, उसके विना वह बड़ा दुःखी था; उसके मन में भी यह चिन्ता थी कि क्योंकर रूपवती मिले। अस्तु वह भी अपने माता पिता को विना जनाये घर से निकल पड़ा।

अब पहिले कन्दर्प के भ्रमण का वृत्तान्त कहा जाता है। जब वह केसट के घर से निकला तब घूमता दैवात् उसी नगर में पहुंचा जहां रूपवती का विवाह केसट से हुआ था। वहां उस समय बड़ा कोलाहल हो रहा था सो कन्दर्प ने एक जन से पूछा कि भाई! यह क्या गोलमाल है? उस मनुष्य ने कहा यह केसट की भार्य्या रूपवती अपने पति के विना मरने पर उद्यत है। सो यही कलकल हो रहा है। सुनो इसका वृत्तान्त ऐसा है, इस प्रकार कह कर वह पुरुष

केसट के विवाह तथा राक्षस की कथा जैसी कुछ रूपवती पर बीती थी; सुना गया और फिर बोला:—

जब कि वृद्ध ब्राह्मण केसट को ठग कर अपने पुत्र के लिये रूपवती को लेकर चला उस समय सब थे किन्तु केसट न था सो रूपवती अपने प्राणेश्वर केसट को न देख कर बोली कि यह कैसी बात है कि जो सब लोग जा रहे हैं इनमें मैं अपने आर्यपुत्र को नहीं देख रही हूं ? सो सुन वह वृद्ध ब्राह्मण अपने पुत्र को दिखा कर बोला—"पुत्रि ! वही यह मेरा पुत्र तेरा पति है, देखो यही तो है।" तब तो रूपवती का क्रोध भड़का वह बड़े क्रोध से इन वृद्धों को, जो कि उस समय वहां थे, बोली—"यह कौन कुरूप मेरा पति है। बस हो गया चलो हटो, जिसने कल मेरा पाणिग्रहण किया यदि उस पति को न पाऊंगी तो निश्चय प्राणत्याग देऊंगी।" इतना कह उसने अन्न पान सब छोड़ दिया। तब तो उस वृद्ध ब्राह्मण को बड़ा भय हुआ कि कहीं राजा के कानों में यह बात पहुंची तो भारी अनर्थ हुआ सो वह रूपवती को उसके पिता के घर पहुंचा आया। वहां उसने अपने पिता से उस ब्राह्मण की ठगहारी का वृत्तान्त कह दिया सो सुन कर वह विचारा बड़े सोच में पड़ गया कि अब क्या किया जाय, वह बोला—"हे पुत्रि ! जिससे तेरा विवाह हुआ वह कौन है और अब किस प्रकार जाना जाय।" पिता का ऐसा कथन सुन रूपवती बोली —'हे तात ! वह मेरे पति पाटलिपुत्र नगर के रहनेवाले देसट नामक ब्राह्मण के पुत्र हैं नाम उनका केसट है, यह बात मैं राक्षस के मुख से सुन चुकी हूं इतना कह वह अपने पिता को पत्र और राक्षस की कथा सुना गयी। तब उसका पिता उस स्थान पर गया जहां वह राक्षस मरा पड़ा था तब उसे उसकी बात की सत्यता का निश्चय हुआ और वह उन दोनों दम्पती के व्यवहार से बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ। तब उस ब्राह्मण ने अपनी पुत्री को बहुत कुछ सान्त्वन देकर दूतों को पाटलिपुत्र में केसट के पिता के पास भेजा। वे दूत थोड़े ही दिनों में पाटलिपुत्र से लौट आये और केसट के वृत्तान्त के विषय में इस प्रकार कहने लगे:—

महाराज ! हम लोग पाटलिपुत्र में गये तहां केसट के पिता देसट से भेंट हुई। हमने उनसे पूछा कि आपके पुत्र केसट कहां हैं ? तब उन्होंने आंखों में

आंसू भर कर कहा "कहां है केसट! भैया! वह यहां अपने एक कन्दर्प नामक मित्र के साथ आया तो था पर रूपवती के विरह में दुःखी था सो मुझसे विना कहे ही न जानूं किधर कहां चला गया।" उनका ऐसा कथन सुन महाराज! हम लोग यहां चले आये।

इस प्रकार जब दूत केसट का वृत्तान्त सुना गये तब रूपवती ने अपने पिता से कहा—हे तात! जब आर्यपुत्र का पता न चला तो अब मैं क्या करूं बस अग्नि ही मेरी शरण है सो अग्नि में जल मरूंगी, भला पति के विना कितने दिन जीऊं इस प्रकार कहकर वह जल मरने के लिये उद्यत हुई, पिता किसी प्रकार उसे रोक न सका। सो आज रूपवती जल मरने के लिये निकली है उसको दो सखियां हैं एक का नाम शृङ्गारवती है और दूसरी का अनुरागवती सो भी उसी प्रकार जल मरने के लिये निकली हैं। जिस समय कि रूपवती का विवाह हो रहा था उस समय केसट को देखकर ये दोनों भी मोहित हो गयी थीं सो दोनों ने मन में केसट को पति बनाने का संकल्प कर लिया कि इससे विवाह करेंगी।

इतनी कथा सुनाय वह पुरुष कन्दर्प से बोला कि भाई सुना न यही इन तीनों के जल मरने का कोलाहल हो रहा है!

इस प्रकार उस पुरुष की बात सुन कन्दर्प उन तीनों की चिता के पास गया उस समय रूपवती अग्नि की पूजा कर रही थी। सो यह झटपट भीड़ छांट कर रूपवती के पास पहुंचा और चिल्ला कर बोला—"आर्ये! साहस मत कर, तेरा पति केसट जीता है, वह तेरा पति मेरा मित्र है और मैं कन्दर्प हूं।" इतना कह उस वृद्ध ब्राह्मण के छल करने दूसरी नाव पर चढ़ाने की कथा से लेकर केसट की सारी कथा कन्दर्प सुना गया। इस वृत्तान्त से रूपवती को विश्वास हो गया कि हां मेरा पति जीता है सो वह बड़ी हर्षित हुई और अपनी दोनों सखियों के साथ घर लौट गयी, रूपवती के पिता ने कन्दर्प का बड़ा उपचार किया और भी भली भांति उसकी रक्षा कियी और अनुरोध किया कि यहीं रहो सो वह उसके कहने से वहां रहा।

इतने में एक दिन की बात है कि कन्दर्प के यहां से एक मनुष्य पत्र लेकर आया उसने यह भी कहा कि जहां उसके मित्र केसट ने रूपवती से विवाह किया

था कन्दर्प आजकल वहीं हैं और रूपवती भी है । इतना कह वह उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा । अब कन्दर्प के पिता को केसट अपने विवाह का वृत्तान्त सुना गया । उस दिन इस शुभ सम्वाद से कन्दर्प के घर बड़ा आनन्दोत्सव मनाया गया !

दूसरे दिन कन्दर्प के पिता ने कन्दर्प को बुला लाने के लिये दूत को तथा प्रिया की प्राप्ति के निमित्त केसट को भेजा । केसट उस पत्र ले आनेवाले के साथ उस देश के लिये चला जहां उसकी प्यारी पत्नी पिता के घर रहती थी । वहां पहुंच कर केसट ने अपनी प्राणवल्लभा रूपवती को पाया, उस दिन भारी उत्सव मनाया गया । उसने सन्ताप त्याग कर अपनी प्यारी रूपवती को बहुत समझा बूझा कर सान्त्वना देकर उसका सन्ताप दूर किया जैसे मेघ चातकी का सन्ताप दूर करता है । कन्दर्प से भेंट हुई सो दोनों मित्र भर पेट मिले । इस अवसर पर रूपवती ने अपने प्राणनाथ से अनुरोध किया कि प्रभो ! ये मेरी दोनों सखियां आपके प्रेमबन्धन में बंधी हैं, आपको हो व्याहना इन्होंने स्थिर कर लिया है सो इनका भी पाणिग्रहण कर लिया जाय । प्राणवल्लभा के अनुरोध से केसट ने उन दोनों सखियों से भी विवाह कर लिया ।

अब केसट अपने मित्र कन्दर्प से अनुमति ले तीनों पत्नियों को अर्थात् रूपवती, शृङ्गारवती और अनुरागवती को लेकर अपने देश चला गया और कन्दर्प भी उस दूत के साथ अपने नगर रत्नपुर को चला और जाकर अपनी दोनों पत्नियों अर्थात् अनङ्गवती और सुमना तथा बन्धुवर्गों से मिला ।

॥ सोरठा ॥

निज निज देशन जाय, रूपवती सुमना प्रियहिं ।
केसट कन्दरप पाय, सुखसों भोगत भोग सब ॥

॥ चौपाई ॥

एहि विधि विधिगति बिछुरे जोय ।
पुनरपि प्रियासमागम होय ॥
जिन दुःखन कर अवधी नाहिं ।
धीरसत्व तापारहिं जाहिं ॥

॥ बसन्ततिलकम् ॥

सो शीघ्र उठ चलिय मित्र जु ताहि खोजें।
तुम भी आपनि प्रिय सीं अवशै लहोगे ॥
को जान दैवगति पै इतनो समूझे।
मैं हू लह्यो निज सुता पतनी सञोवा ॥

॥ सोरठा ॥

एहि विधि कथा सुनाय, प्रोत्साहित मोकहं कियउ।
आगे मोहिं चलाय, पीछे सो चलतो भयउ ॥
सो मैं भ्रमता देश, देश यहां आवत भयउँ।
सूकर सहित गजेस, देखि अचम्भव महँ पड़ेउँ ॥

॥ चौपाई ॥

सो गज उगिलि प्रियहिं तब दीन्हा।
पुनि देखतहि निगलि तेहि लीन्हा ॥
भयउ अचम्भव मों कहँ भारी।
देखि पराये वश महँ प्यारी ॥
बड़ दिन खोजत दीख सो नागा।
पुनि देखिउँ प्रभुपद बड़ भागा ॥

॥ दोहा ॥

एहि विधि कथा सुनाइके, वणिकपूत औ भूप।
तब मँगवायो पति तिसु, विक्रम आदित भूप ॥
गज बधि ताहि उधारेउ, सौंपि ताहि तेहि दीन।
वणिकपुत्र कितज्ञता, बहुत प्रकट सो कीन ॥
निज निज मिलन वृत्तान्त कहि, दम्पति मोद महान।
विषमशील नरपाल कर, करन लगे गुनगान ॥

पांचवां तरङ्ग ।

अब महाराज विक्रमादित्य ने उस बनिये के साथ आये हुए उसके मित्र उस ब्राह्मण से पूछा—"भाई तुमने जो अभी यह कहा है कि मैंने अपनी मृतभार्य्या को जीती पाया सो इसका क्या भेद है, इसका वर्णन विस्तार के साथ हम लोगों को सुनाओ।" राजा का ऐसा वचन सुन बणिक्पुत्र का मित्र बोला—"देव! यदि आपको इसके सुनने का बड़ा कौतुक है तो सुनिये मैं आपको सुनाता हूं:—

ब्रह्मस्थल में जो ब्राह्मण रहते हैं उनमें श्रेष्ठ ब्राह्मण मैं हूं, नाम मेरा चन्द्र-स्वामी है, मेरी भार्य्या जो कि बड़ी सुन्दरी है, घर में है। एक समय की बात है कि पिता की आज्ञा से मैं किसी काम को गांव गया था उसी समय एक कापालिक मेरे घर भिक्षा मांगने आया, उसने कहीं मेरी स्त्री को देख लिया। उसको देखते ही मेरी भार्य्या को ज्वर हो आया और उसी ज्वर से सांझ को उसका प्राणान्त हो गया रात के समय मेरे बन्धु बांधव उसे फूंकने को ले गये। वहां चिता लगायी गयी और उसपर मेरी मृता भार्य्या रख दियी गयी। जिस समय चिता जल रही थी उसी समय मैं उस गांव से लौटा। आकर क्या देखता हूं कि रोना पीटना हो रहा है। पश्चात् ज्ञात हुआ कि क्या दुर्घटना घटी है। मैं भी मसान में गया और ज्योंही मैं चिता के पास पहुंचा कि उसी समय वह कापालिक भी वहीं आ उपस्थित हुआ, उसके कन्धे पर एक खट्वाङ्ग (१) धरा था जो कि घूम रहा था और जिसके हाथ में डमरू बज रहा था। उसने भस्म फेंका कर चिता की अग्नि बुझा दियी बस इतने में ही मेरी भार्य्या ज्यों की त्यों चिता से निकल पड़ी कहीं भी कुछ जलने का चिन्ह न था। कापालिक ने सिद्धि के द्वारा उसका आकर्षण किया सो वह उसके पीछे दौड़ी, मैं भी बड़ी शीघ्रता के साथ उसके पीछे धनुष और बाण लिये दौड़ा।

चला २ वह कापालिक गङ्गा किनारे पहुंचा, वहां एक गुहा थी उसने खट्वाङ्ग को धरती पर धर दिया और गुहा के भीतर जो कन्याएं थीं उनसे बड़े हर्ष से

(१) एक प्रकार की गदा। एक लम्बी लकड़ी (या लोहे की छड़) जिसके ऊपर खाट लगा हो। यह योगियों का अस्त्र है।

कहा—"देखो ! तुम दोनों को पाकर भी मैंने तुमसे भोग नहीं किया सो यही कारण था कि मैं इसकी प्राप्ति की इच्छा रखता था, सो आज यह हाथ लगी अब मेरी प्रतिज्ञा सिद्ध हुई।" इस प्रकार कहकर वह मेरी भार्या को उन्हें दिखाने लगा कि इधर मैंने क्या किया कि उसका खट्वाङ्ग उठा कर गङ्गा में फेंक दिया। खट्वाङ्ग के नष्ट हो जाने से उसकी सिद्धि जाती रही सो मैंने उस कापालिक से ललकार कर कहा—"रे ! कापालिक ! मेरी भार्य्या हरण करनेवाला तू अब कहां जाता है।" उसने बाहिर जो दृष्टि किया तो खट्वाङ्ग नहीं है तब तो वह उपायान्तर न देख भागा बस मैंने विष बुझा वाण धनुष पर चढ़ा छोड़ा जिसके लगते ही वह ठांव ही ठंढा हो गया। पाप की सिद्धि से उन्नत होनेवाले पाख-ण्डियों की यही गति होती है, वे ऐसे ही नष्ट हो जाते हैं और पूर्वकाल में बहु-तेरे इसी प्रकार नष्ट भी हो चुके हैं।

इसके उपरान्त मैं अपनी भार्य्या तथा उन दोनों कन्याओं को लेकर घर आया। मेरे कुटुम्बियों को इस वृत्तान्त से बड़ा ही आश्चर्य हुआ। घर आकर मैंने उन कन्याओं से पूछा कि तुम्हारा क्या वृत्तान्त है तब उन दोनों ने कहा—"हम काशी में रह क्षितिभृत् और सार्थवाह की बेटियां हैं। यही कापालिक सिद्धि की युक्ति से हम दोनों को हर ले आया था, आपकी कृपा से हम उस पापी से छूटीं और हमारा धर्म्म बचा।" उनका ऐसा कथन सुन मैं दूसरे दिन उन्हें लेकर बाराणसी को चला। वहां पहुंच मैंने उन के बन्धुओं को समस्त वृत्तान्त सुना उन दोनों को सौंप दिया।

उनको पहुंचा कर जब मैं अपने घर को लौटा आ रहा था कि मार्ग में यह वणिकपुत्र भार्य्यावियोग में विकल दीख पड़े। सो इनके ही साथ साथ मैं यहां आया। देव! उस कापालिक की गुहा कैसे २ सुगन्ध द्रव्यों से वासित थी कि उसका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। बस इतने से ही समझ लीजिये मैं प्रति दिन स्नान करता हूं तथापि मेरे शरीर से सुगन्धि निकलती रहती है। सो देव! इस प्रकार मैंने अपनी मृता भार्या जीविता पायी।

इस प्रकार जब वह ब्राह्मण अपनी मृता भार्या के जीने का वृत्तान्त सुना चुका

तब महाराज विक्रमादित्य ने बड़ा सत्कार और मान कर उस ब्राह्मण और उस वणिक्पुत्र को बिदा किया।

इसके उपरान्त महाराज ने गुणवती, चन्द्रवती और मदनसुन्दरी को बुलवा भेजा। सब लोगों को साथ लेकर सेना सहित महाराज अपनी राजधानी उज्जयिनीपुरी को चले। नगरी पहुंच महाराज विक्रमादित्य ने गुणवती और चन्द्रवती का पाणिग्रहण कर लिया।

इसी अवसर पर महाराज को विश्वकर्म्मा के बनाये देवमन्दिर में देखी हुई खम्भे की पुतली का स्मरण हुआ सो उन्होंने चट प्रतीहार को आदेश दिया कि कलिङ्गसेन के पास एक दूत भेजो और उससे कह दो कि जाकर उनसे उस कन्या को मांगो जिसकी मूर्ति मैंने खम्भे की पुतली देखी। महाराज का आदेश पाकर प्रतीहार ने सुविग्रह नामक दूत को महाराज के समक्ष ला खड़ा किया और सन्देश कहकर उसे राजा कलिङ्गसेन के पास भेजा।

वह दूत चला २ कलिङ्गदेश में पहुंचा और कलिङ्गसेन महिपाल के समक्ष उपस्थित होकर इस प्रकार कहने लगा—"हे राजन्! राजाधिराज श्रीमान् महाराज विक्रमादित्य आपको यह आदेश देते हैं—आप यह जानते हैं कि पृथ्वी में जो रत्न है सो मुझे प्राप्त होते हैं; आपके एक कन्या रत्न है सो मुझे दे दीजिये और मेरे प्रसाद से अकण्टक राज्य कीजिये।" दूत का ऐसा कथन सुनते ही महाराज कलिङ्गसेन जलजला उठे, बड़े क्रोध से वह बोले—"हे दूत यह कौन विक्रमादित्य है जो मुझे इस प्रकार की आज्ञा देता है। अरे! वह दर्पान्धि कन्या रूपी उपहार मांगता है, अवश्य वह अपने अहङ्कार का फल मांगेगा।" कलिङ्गसेन महीपाल का ऐसा वचन सुन उस दूत से न रहा गया वह बोला—"अरे तू भृत्य होकर प्रभु के विषय में ऐसा कहता है, इतना बल कहां से आ गया? अरे मूढ़ उनकी प्रतापाग्नि में क्यों फतिङ्गा हुआ चाहता है।" कलिङ्गसेन से इतना कह वह दूत महाराज विक्रमादित्य के पास लौट आया और वहां का वृत्तान्त आद्यन्त सुना गया।

दूत के मुख से कलिङ्गसेन का ऐसा वृत्तान्त सुन महाराज विक्रमादित्य के क्रोध का अन्त न रहा उन्होंने चट सेना को सज्ज होने का आदेश दिया और अपने भूतवैतु और वेतालों को बुला लिया। सब साज सजा कर उन्होंने दलबल

के साथ कलिङ्गदेश की चढ़ाई के लिये प्रस्थान किया। उस समय इनके सैन्यों से समस्त दिशाओं में यही प्रतिध्वनि उठती थी कि हे कालिङ्ग! अपनी कन्या दे दो। कलिङ्गदेश में पहुंच कर महाराज ने देखा कि राजा कलिङ्गसेन भी युद्ध के लिये सन्नद्ध हैं सो उन्होंने अपनी सैन्यों द्वारा उनको घेर ही तो लिया। इतना कार्य तो महाराज ने किया किन्तु वह मन में विचारने लगे कि इनकी पुत्री के विना तो मेरा किसी प्रकार से निस्तार ही नहीं है सो ससुर को क्योंकर मारूं सो अच्छी एक युक्ति कियी जाय। इतना विचार महाराज विक्रमादित्य बेताल सहित उसकी सिद्धि के प्रभाव से अलक्षित हो रात्री के समय कलिङ्गाधिप के वासघर में पहुंचे जहां कि वह सोये हुए थे।

बेताल ने उन्हें जगा कर हंस कर कहा—"अरे! विषमशील महाराज से विग्रह कर सो रहा है? इतना सुनते और उठ कर बेताल को देखते ही कलिङ्गसेन के डर का थाह न रहा, उन्होंने महाभयङ्कर बेताल के संग उपस्थित तथा जिसने साहस अपना दिखला दिया, ऐसे महाराज को पहिचान कर महाराज के चरणों पर गिर कर इस प्रकार कहा:—"देव! अब तो मैं आपके वश में हूं, कहिये क्या करूं?" महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया यदि मुझ प्रभु से तुम्हारा कुछ स्वार्थ हो तो अपनी सुता कलिङ्गसेना मुझे दे देओ। "तथास्तु" कह कर कलिङ्गसेन ने प्रतिज्ञा कियी, तब महाराज विक्रमादित्य कृतकृत्य होकर अपने बेताल सहित निज शिविर को लौट गये।

इतनी कथा सुनाय देवसेन कार्पाटिक महारानी कलिङ्गसेना को बोला:—"हे देवि! दूसरे दिन की बात यह है कि आपके पिता, कलिङ्गाधिपति ने महाराज विषमशील के हाथ में आपका दान विधिपूर्वक कर दिया और यौतुक में बहुत धन प्रदान किया। सो हे देवि! महाराज का आपके ऊपर बड़ा ही स्नेह था तब महाराज ने अपने शरीर की कुछ चिन्ता न कर चढ़ाई कर आपका विवाह किया, कुछ शत्रुविजय की इच्छा से उन्होंने चढ़ाई नहीं कियी थी।"

इस प्रकार अपनी सौतों को अपने विवाह का वृत्तान्त सुना कर महारानी कलिङ्गसेना बोलीं:—"ऐ बहिनो! इस प्रकार जब मैंने कार्पाटिक देवसेन के मुंह से अपने विवाह का वास्तवान्त सुना तब जाकर मेरा कोप शान्त हुआ। यह क्रोध

मुझे इस कारण हुआ था कि महाराज विषमशील ने इस प्रकार हम सभों का बड़ा ही भारी अपमान क्यों किया किन्तु जब सत्य वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब मेरा क्रोध शान्त हो गया। सो इस प्रकार खम्भे की पुतली के देखने से मैं महाराज से विवाही गयी और यह मलयवती भी चित्र के दर्शन से व्याही गयी।"

इस भांति विक्रमादित्य की सभा में महारानी कलिङ्गसेना ने अपने पति का प्रभाव वर्णन कर अपनी सौतों को प्रमुदित किया। अब महाराज विक्रमादित्य उन पत्नियों के साथ तथा मलयवती के संग साम्राज्य का सुख भोगते हुए आनन्द मङ्गल से रहने लगे।

अब एक समय की बात है कि कोई राजकुमार लक्ष्यदत्त नामक, दक्षिण देश का रहनेवाला अपने गोतियों से सताया गया, महाराज विक्रमादित्य के समीप उपस्थित हुआ। उसके साथ पांच सौ राजपुत्र आये थे सो वह महाराज के सिंहद्वार पर आकर कार्पाटिक का व्रत धारण कर रहने लगे। उसने यह प्रतिज्ञा कर लियी थी कि मैं बारह वर्ष महाराज विक्रमादित्य की सेवा करूंगा, महाराज मना भी करते रहे पर वह इस प्रतिज्ञा से न टला। सो वह अपने अनुयायियों के साथ महाराज विषमशील के द्वार पर रह के सेवा में तत्पर रहने लगा। इस प्रकार सेवा करते २ उसके ग्यारह वर्ष व्यतीत हो गये।

बारहवां वर्ष जब लगा तब ऐसा हुआ कि उसकी भार्य्या इस बहुदिनव्यापी वियोग से बड़ी व्याकुल हुई। सो उसने इसके पास एक पत्र लिख भेजा। रात के समय जब सब लोग सो गये और सन्नाटा हो गया तब वह दीपक बाल कर अपनी भार्य्या का पत्र पढ़ने लगा और महाराज विक्रमादित्य अपने नियम अनुसार भेष पलट जैसे निकला करते थे वैसे ही आज भी इसके समीप आकर छिप कर खड़े हो सुनने लगे। पत्र में यह दोहा लिखा था:—

॥ दोहा ॥

नाथ तिहारे विरह महँ कठिन हृदय मोहिं जान।
अविरत (१) निकसत सांस हैं पै निकसत नहिं प्रान॥

(१) लगातार।

वह कार्पटिक अपनी प्रिया का ऐसा पत्र बार २ पढ़ता और फिर रख देता उसका ऐसा पत्र सुन महाराज विषमशील अपनी राजभवन में चले गये और वहां जाकर चिन्ता करने लगे। यह कार्पटिक बहुत दिनों से यहां पड़ा है, यह बड़ा दुःखी है और इसकी भार्य्या भी बहुत कष्ट सह रही है । कहीं ऐसा न हो कि बारह वर्ष बीत जावें और इसका कार्य्य न हुआ तो यह प्राण त्याग देवे। सो अब मुझे इसके विषय में विलम्ब करना उचित नहीं है। इस प्रकार चिन्ता कर महाराज ने दासी भेज कर उसी समय उस कार्पटिक को बुलवा भेजा । उसके आने पर महाराज ने एक अनुशासनपत्र (१) लिखा कर उससे कहाः—"भाई! ओंकारपीठमार्ग (२) से उत्तर की ओर तुम चले जाओ, वहां पूछते २ चले जाना कि खण्डवटक नामक गांव कहां है बस वह गांव मैंने तुम को दे दिया सो तुम इस शासनपत्र के अनुसार तुम उस ग्राम को भोग करो। इतना कह महाराज ने उसे शासन पत्र दे दिया । अब कार्पटिक महाराज का अनुशासन पत्र ले अपने भृत्यों को विना जनाये रातों रात वहां से चल पड़ा।

अब वह कार्पटिक चलते २ अपने मन में विचारता जाता था कि एक गांव से मेरा क्या होगा ! मैं जो अपने मन में जीतने की इच्छा रख कर बैठा हूं वह क्या होनी यह एक गांव तो अल्पापद मात्र है तदापिकर्त्तव्यक्या है । प्रभु की आज्ञा हो ऐसी है तो वश क्या ? इस प्रकार विचारासन्तुष्ट हो वह चला जाता था। ओंकारपीठ से उत्तर बतलाये मार्ग से वह चला और चलते २ जब बहुत दूर निकल गया तब एक जङ्गल पड़ा । वहां बहुत सी कन्याएं खेलती थीं, उनसे इसने पूछाः—"अहो! क्या तुम लोग जानती हो कि खण्डवटक कहां है ?" कन्याओं ने उत्तर दिया "हम नहीं' जानतीं । हे सौम्य ! यहां से दस योजन आगे चले जाओ, वहां हमारे पिता रहते हैं सो उनसे पूछियों कदाचित् वह जानते होवें !" उन कन्याओं का ऐसा कथन सुन वह कार्पटी आगे बढ़ा और चला २ वहां पहुंचा जहां उन कन्याओं का पिता रहता था । वह एक महा-भयङ्कर राक्षस था। उस राक्षस को देखकर यह कुछ भी न डरा प्रत्युत उसके समक्ष पहुंच कर निर्भय भाव से उसने पूछा—"कहो भाई! तुम जानते हो कि

(१) हुक्मनामा। (२) ओङ्कार नाथ के मन्दिर से।

खण्डवटक गांव कहां है ?" राक्षस उसके इस धैर्य से मुग्ध हो गया और बोला— "अरे भाई ! उस नगर की बात क्या पूछते हो, वह तो बहुत दिनों से सूना पड़ा है, तोभी जो तुमको जाना ही है तो सुनो । देखो तुम्हारे सामने से यह मार्ग दो हो गया है । सो तुम बांये मार्ग से जाना बस वहां तुमको खण्डवटक की बड़ी सड़क मिलेगी । जहां बड़ा भारी प्राकार (१) बना है ।"

इस प्रकार उस राक्षस का कथन सुन वह कार्पटिक वहां से चला और चलता चलता वहां पहुंचा जहां उसे खण्डवटक की वह बड़ी सड़क मिली । उसी से चल कर वह उस नगर में पहुंचा । यह नगर बड़ा भारी था किन्तु सूना पड़ा था यद्यपि जनशून्य और भयदृ था तथापि दिव्य और मनोहर जान पड़ता था । तहां राजभवन मिला जिसमें सात खण्ड थे सो वह उसमें पैठा और अटाली पर चढ़ा वहां आगे ही सोने का बना मणिजटित सिंहासन धरा हुआ था सो वह उसपर गया । उसका बैठना कि बेत हाथ में लिये एक राक्षस वहां आया और कहने लगा "अरे तू मनुष्य होकर राजा के आसन पर कैसे बैठा है ?" क्षणशक्ति कार्पटिक बड़ा ही धैर्यशाली था, वह कुछ भी डरा नहीं, वरण बड़े साहस के साथ बोला, "मैं यहां प्रभु हूं और तुम सब मेरे करद (२) हो तुम ही मेरे कुटुम्बी हो देव विक्रमादित्य ने तुम सभों का मेरे शासन में नियुक्त किया है ।" उसका ऐसा वचन सुन, शासन पत्र देख उस राक्षस ने प्रणाम कर कहा "बस ठीक है आप राजा हैं और मैं आपका प्रतीहार हूं । विक्रमादित्य देव की आज्ञा सर्वत्र अखण्डित रहती है ।" इतना कह उस राक्षस ने समस्त प्रकृतियों (३) को बुलाया। बात में सब मन्त्री और राजकर्मचारी गण आ गये और चतुरङ्गिणी सेना से वह नगर भर गया सभों ने आकर उसको प्रणाम किया तब तो उस कार्पटिक के हर्ष का ठिकाना न रहा । इसके उपरान्त उसने राजोचित उपचार से स्नानादिक क्रियाएं सम्पन्न कियीं ।

इस प्रकार जब वह कार्पटिक राजा हो गया तब वह अपने मन में विचार करने लगा कि अहो ! महाराज विक्रमादित्य महाराज का कैसा अतुल प्रभाव

(१) नगर के चहुंओर की दीवाल ।　(२) कर (मालगुजारी) देनेवाले।
(३) प्रजा; मन्त्री, मित्र, कोषाध्यक्ष, इत्यादि ।

है। उनके गाम्भीर्य की गुरुता कैसी अपूर्व है आश्चर्य की बात है, इस प्रभु में जितनी बातें हैं सब अपूर्व और अद्भुत हैं। भला देखो तो कहो उनसे मांगेगांव और वह देवे राज्य। सो भी कैसी ऐसा ऐश्वर्य सम्पन्न!

महाराज विक्रमादित्य के नये राज्यैश्वर्य से सम्पन्न वह कार्पाटिक कृष्णशक्ति इस प्रकार विचार करता और परम आश्चर्य माना उसके साथ जो लोग आये थे उनका पालन पोषण महाराज विक्रमादित्य करते थे।

कुछ दिनों के उपरान्त उस कार्पाटिक के मन में यह उत्कण्ठा उठी कि जिस प्रभु के दिये ऐश्वर्य का मैं उपभोग कर रहा हूं चलकर उसका दर्शन तो कर आऊं, उनको प्रणाम तो कर आऊं। ऐसा विचार कर वह अपने दल बल के साथ चला उस समय उसके सैन्य से भूतलकोप उठा। उज्जयिनी में पहुंच कर वह महाराज विक्रमादित्य के चरणों पर गिरा। तिस समय महाराज ने उससे कहा "भद्र! अच्छा अब तुम एक काम करो कि अपने देश जाओ और तुम्हारी पत्नी जो विरह से सन्तप्त हो विकल हो रही है उसको सान्त्वना देओ उसका शोक दूर करो।" महाराज की ऐसी आज्ञा उसने शिरोधार्य्य कियी सो वह कृष्णशक्ति वहां से महाराज को प्रणाम कर अपने मित्रों के साथ निज देश को प्रस्थानित हुआ। वहां पहुंच कर उसने पहिला काम यह किया कि जिन गोत्रियों ने उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया था, उनको उसने उच्छिन्न कर डाला पश्चात् अपनी विरहोत्सुका भार्य्या को आनन्दित किया। इस प्रकार अभीष्ट से भी अधिक प्राप्त कर वह कृष्णशक्ति अपने राज्य का उपभोग करने और आनन्द मङ्गल से दिन व्यतीत करने लगा। सो महाराज विक्रमादित्य ऐसे अद्भुत चारित्र के हैं।

अब एक समय की बात है कि महाराज विक्रमादित्य को एक ब्राह्मण देखपड़ा जिसके समस्त रोम और शिर के केश खड़े २ थे सो महीपति ने उससे पूछा "कहो देवता जी। यह तुम्हारी क्या दशा है? महाराज का ऐसा प्रश्न सुन वह ब्राह्मण इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाने लगा।

महाराज! पटने में अग्निस्वामी नामक एक अग्निहोत्री ब्राह्मण रहते थे, उन्हीं का मैं पुत्र हूं नाम मेरा देवस्वामी है। एक बड़े दूर देश में जाकर मैंने एक ब्राह्मण की कन्या से विवाह किया, वह बहुत छोटी थी अतः मैं उसे उसके

पिता के घर ही छोड़ आया जब कुछ दिन व्यतीत हुए और वह युवती हुई तब मैं एक घोड़े पर चढ़ एक भृत्य के साथ अपनी ससुराल गया। ससुर ने मेरा बड़ा सम्मान किया। मेरी पत्नी विदा हुई और उसके साथ उसकी एक चेरी भी चली। मैंने घोड़े पर अपनी पत्नी को आरूढ़ कर अपने चाकर और उस चेरी के साथ प्रस्थान किया। महाराज क्या कहूं—आधे मार्ग में जब हम लोग पहुंचे उस समय एक बहुत ही, अद्भुत घटना घटी; मेरी भार्य्या पानी पीने के बहाने से घोड़े पर से उतरी और नदी तट पर गयी। उसके जाने पर बहुत देर हो गयी तब तो मैं घबड़ाया कि यह क्या व्यापार है कि वह न लौटी तब मैंने अपने भृत्य को भेजा कि जाके देख कि बात क्या है। सेवक के गये भी बहुत विलम्ब हुआ और वह न लौटा तब तो मुझे और भी सन्देह हुआ सो मैं उस चेरी को रक्षा में घोड़े को छोड़ स्वयं देखने चला कि बात क्या है। वहां जाकर क्या देखता हूं कि मेरे भृत्य को वह मेरी पत्नी खा पीकर चट कर गयी है उसकी हड्डियां इधर उधर पड़ी हैं और मेरी भार्य्या का मुख लहू से लाल हो गया है। यह देखते ही मेरे भय की सीमा न रही और मैं खड़े पांव लौटा यहां आकर क्या देखता हूं कि मेरे घोड़े को भी वह चेरी चट गयी बस महाराज अब तो मारे डर के मेरी दशा अद्भुत हो गयी. मैं प्राण लेकर ताबड़तोड़ भागा, भय से जो मेरे रोंगटे और केश खड़े हो गये सो अब लों नहीं गिरे, भीतर ऐसा डर समा गया है कि निकलता नहीं। सो हे महाराज। यही मेरी गति है।

इस प्रकार जब वह ब्राह्मण अपना वृत्तान्त सुना गया तब महाराज विक्रमादित्य ने आज्ञा देकर उसका त्रास दूर किया और ब्राह्मण स्वस्थ हो गया। उस समय महाराज विक्रमादित्य ने कहा, "अहो धिक् है २ स्त्रियां बड़ी साहसिनी होती हैं उनका विश्वास नहीं करना चाहिये।" इस प्रकार जब महाराज कह रहे थे उस समय उनके एक मन्त्री ने यह कहा—"देव! स्त्रियां ऐसी ही दुष्टा होती हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या क्या आपने अग्निशर्म्मा ब्राह्मण का वृत्तान्त नहीं सुना है? अच्छा सुनिये मैं आपको उसकी कथा सुनाता हूं।"

यहीं सोमशर्म्मा का बेटा अग्निशर्म्मा नामक एक ब्राह्मण रहता है, माता पिता का वह प्राण है किन्तु बड़ा ही मूर्ख है और कुछ भी विद्या नहीं जानता।

वर्द्धमान में एक ब्राह्मण की लड़की से उसने विवाह किया, किन्तु लड़की छोटी थी इस कारण उसके धनवान् पिता ने उसे बिदा नहीं किया। जब कि वह युवती हुई उस समय अग्निशर्मा के माता पिता ने उससे कहा—"पुत्र ! अब भी तुम अपनी भार्य्या को क्यों नहीं ला रहे हो?" इतना सुनना कि वह मूर्ख अग्निशर्मा अपने माता पिता को विना जनाये अकेले ही घर से निकल पड़ा और अपनी भार्य्या की ओर चला। जब कि यह घर से निकला उस समय उसके दक्षिण ओर तित्तिर बोली और उसी ओर सियारिन फेकरी जिससे कि अपशकुन की सूचना हुई किन्तु वह मूर्ख कुछ भी न समझ सका प्रत्युत अच्छा शकुन समझ "जीओ जीओ" कहता हुआ बहुत प्रसन्न हुआ। शकुन देवता अदृश्य है सो उसकी इस मूर्खता पर हंस पड़ा।

जब वह ससुर के घर पहुंचा और भीतर पैठा ही चाहता था कि उस समय तित्तिर बायें बोली और बायें ही सियारिन फेकरी जिससे फिर अशकुन की सूचना हुई किन्तु वह मूर्ख क्या समझे, फिर भी उसी प्रकार "जीओ जीओ" कह कर प्रमुदित हुआ। (१) उस मूर्ख का ऐसा व्यापार देख शकुन के देवता को बड़ी चिन्ता हुई, वह विचारने लगा कि यह कैसा मूर्ख है कि अशुभ को शुभ मान प्रसन्न होता है, कार्य ही जिलाता है अत: मुझे उचित है कि मैं इसका जीव बचाऊं। इस प्रकार श्वसुर का देवता विचार रहा था कि वह अग्निशर्मा अपने श्वसुर के घर में पैठा।

दामाद आया इससे घर में बड़ा ही हर्ष उमड़ गया, उसका श्वशुर बहुत ही प्रसन्न हुआ उसने तथा औरों ने भी पूछा कि पुत्र अकेले ही क्यों आये हो? इसपर उसने कहा कि घर में विना लोगों को जनाये वैसे ही चला आया। इसके उपरान्त स्नानादिक करके उसने भोजन किया। जब रात हुई तब वह शयनागार में जाकर सोया।

उस समय उसकी भार्य्या सजधज कर उसके पास गयी। वह जीवनशर्मा तो

(१) किसी २ पुस्तक में "अदृश्य शकुन देवता यह सुनकर हंस पड़ा," इतना अंश फिर पाया जाता है।

मार्ग की थकावट से सुखनींद सोरहा था। वह स्त्री वहाँ से तुरंत लौटी और अपने उपपति चोर के पास पहुंची जो कि उस समय शूल पर चढ़ाया गया था। उसने जाकर उसको देह का आलिङ्गन किया, उस चोरके भीतर एक भूत प्रविष्ट था, उसने उसकी नाक काट लियी सो वह भयके मारे वहां से भागी और घर में अपने पति के समीप आपहुंची। उस दुष्टा ने पति के पास एक छोटीसी खुली तलवार रख दियी, उच्चस्वर से चिल्लाकर पश्चात् वह इस प्रकार कहने लगी कि सब घरके लोग सुनकर जाग पड़े — "हाय हाय!! मैं मरी, मैं मरी!! अरे इस निर्दयी मेरे पति ने उठकर अकारण ही मेरी नाक काट लियी।" उसका ऐसा क्रन्दन सुनकर घर के सबलोग जाग गये और जाकर देखते हैं तो सचमुच उसकी नाक कटी है, यह देख लोग लाठियों से अग्निशर्म्मा को लगे पीटने। रात में तो उसकी इतनी ही पूजा होकर रहगयी किन्तु प्रातःकाल लोग उसे राजा के समक्ष लेगये और उसकी करनी का वर्णन सुना गये। राजा ने सब सुनकर यह न्याय करदिया कि यह अकारण भार्य्या का द्रोही है अतः वध योग्य है। ऐसी आज्ञा सुनाय महाराज ने उसे वधिकों को सौंपदिया। वधिक उसे वध्यस्थान की ओर ले चले।

जब कि वधिक लोग उसे लेकर वध्यभूमि में पहुंचे उस समय शकुन का देवता, जो कि उसकी भार्य्या का रातवाला वृत्तान्त देख चुका था, मनमें विचारने लगा कि यह ब्राह्मणकुमार निमित्त (१) का फल बिना जाने "जीवो, जीवो" ऐसा कहता गया अतः वध से इसकी रक्षा मैं करूँगा। इतना विचार गुप्तरूप से हो आकाश से इस प्रकार वह देवता बोला—"हे हो वधिको! यह ब्राह्मण-तनय निर्दोष है। देखो इसका वध मत करो। जाकर देखो इसकी नाक शूल पर चढ़ाये गये चोर के मुंह में है।" इस प्रकार कहके रात का सारा वृत्तान्त सुनागया। इस आकाशवाणी के सुनने से वधिकों को विश्वास होगया सो उन्होंने जाकर चोर का मुंह खोलकर देखा तो सचमुच वहाँ नाक मिली। यह देख उन सभोंने दूत के मुख से राजाके पास सन्देशा कहला भेजा। राजाने आज्ञा दियी कि अग्नि

(१) शकुन।

शर्म्मा छोड़ दिया जाय। अग्निशर्म्मा छूटकर घर चलाअया। उधर राजा ने उस दुष्टा स्त्री को बन्दीगृह में डालदिया और उसके बान्धवों को दण्ड दिया।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री ने महाराज विक्रमादित्यसे,कहा कि हे देव! स्त्रियां ऐसी होती हैं। मन्त्री का ऐसा कथन सुन महाराज विक्रमादित्य बोले कि "तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, बात ऐसी ही है।"

महाराज के समीप उस समय मूलदेव नामक धूर्त (१) उपस्थित था सो यह कथोपकथन सुन बोला—"देव! ऐसा क्यों कहा जाता है कि क्या सब स्त्रियां असाध्वी ही हैं क्या उनमें साध्वी नहीं हैं? सुनिये मैं आपको आपबीती सुनाता हूं।"

एक समय की बात है कि मैं शशी के साथ पटना गया था। मेरे मन में यह बात आयी कि यह एक बड़ा नगर है,सो उसको देखना उचित है। सो हमदोनों उस नगर के दर्शन की लालसा से वहां गये। नगर के बाहिर सरोवर पर एक धोबिन मिली, सो मैंने पूछा कि यहँा धर्म्मशाला कहां है यहां पथिक बसैं? उसने उत्तर दिया "यहां पान्थावास (२) कहां। यहां तो तीर पर चक्रवाक (३) जल में मत्स्य और कमलों में भ्रमर वास करते हैं।" उक्त प्रश्न की यह वक्रोक्ति (४) सुन मैं अचम्भित सा हो रहा।

अस्तु मैं शशी के साथ नगर के भीतर धँसा। पहिले ही क्या देखता हूं कि एक घर के द्वारपर एक लड़का बैठा रोरहा है उसके सामने थाली में गरमागरम परमान्न (५) परोसा रखा है, पर वह खाता नहीं प्रत्युत रोता है। यह देख शशी बोला—"अहो यह बालक कैसा मूर्ख है कि यह सामने खीर परोसी है सो तो खाता नहीं और व्यर्थ रोरो कर विकल हो रहा है।" शशी की ऐसी उक्ति सुन वह बालक आंख पोछ हंसकर बोला—"अरे तुम बड़े मूर्ख हो, तुम नहीं जानते कि मेरे रोने में कैसे २ गुण हैं। परमान्न बहुत देर में ठंढा होता है और ज्यों २ ठंढा होता जाता है उसका स्वाद बढ़ता जाता है और तब वह अधिक अच्छा लगता है पुनः श्लेष्मा (६) छन होजाता है। मेरे रोने में इतने गुण हैं,

(१) छली,जुआड़ी। (२) सराय। (३) चकवे। (४) दोअर्थीबात। (५) खीर (६) कफ।

मैं मूर्खता से नहीं रोता हूं। तुम गँवैयाँ भुख हो और मूर्ख हो तुम भला यह मेरा अभिप्राय क्या समझ सको ।" उस बालक का ऐसा कथन सुन हमदोनों लज्जित हो गये कि यह सच कह रहा है । हम दोनों यथार्थ में यह बात जानते तो ऐसी नहीं सो एका एक आश्चर्य भी हमको हुआ।

अच्छा, अब हम आगे बढ़े । आगे जाकर क्या देखते हैं कि एक आम का पेड़ है उसपर एक वरकन्या (१) आम तोड़ रही है और उसके साथ के लोग नीचे खड़े हैं। हम दोनों ने कहा—"हे शुभे ! हमें भी कुछ आम के फल दे।" हमारी ऐसी प्रार्थना सुन वह कन्या बोली "आम के फल गरम २ (२) खाते हो अथवा ठंडे !" उसका ऐसा प्रश्न सुन मुझे तो बड़ाही आश्चर्य हुआ परन्तु मैंने उस को उत्तर दिया कि हे सुन्दरि ! हमतो पहिले गरम २ खाते हैं तब ठंढे । मेरा ऐसा वचन सुन उसने कुछ फल तोड़कर नीचे धूल में फेंक दिये । हम दोनों मुख से फूँक उनको धूलि झाड़कर फल खा गये । यह देख वह कन्या ठहाका मार हँसने लगी और उसके साथ के लोग भी खिलखिलाकर हंसने लगे । पीछे उस- कन्याने हमसे कहा "पहिले गरम २ आम के फल तुमको दिये सो, मुंहसे फूंक कर तुम खा गये अब लो मैं तुम्हें वे फल देती हूं जो मैंने अपने वस्त्र में रक्खे हैं, इनमें फूंक की आवश्यकता नहीं ये स्वयं ठंढे हैं।" इतना कह उसने अपने अंचल से निकालकर और फल लेकर फेंक दिये। फल लेकर हम चलते हुए किन्तु लज्जा के बोझ से दबे जाते थे कि अहो हमारा यहां कैसा उपहास हुआ । उस समय मेरा चित्त बड़ाही उदास होगया सो मैंने अग्नी तथा और और सहचरों से कहा—"यह कन्या बड़ी चतुरा प्रतीत होती है सो मैं अवश्य इसके साथ विवाह करूंगा तब इसकी हंसी का पलटा होगा, तब जानना कि मैं पक्का धूर्त हूं नहीं तो व्यर्थही है मेरी धूर्तता ।" इस प्रकार मेरा कथन सुन उन सहचरों ने उसके पिता के घर का पता लगाया और दूसरे दिन हमसब लोग भेष पलट २ कर उसके घर पहुंचे और उसके द्वारपर वेद पढ़ने लगे । सो सुन वह स्वामी ब्राह्मण घरसे निकल

(१) उत्तम कन्या अर्थात् उत्तम जाति की कन्या=ब्राह्मण की कन्या । (२) टटके, तुरत डालि के तोड़े ।

कर हमारे पास आया और कहने लगा कि तुम सब कौन हो और कहां से आये हो ? हमने उत्तर दिया कि हमलोग मायापुरी से यहां विद्या के हेतु आये हैं । ब्राह्मण बड़ा धनवान् था सो बोला "तो यहीं मेरेघर चौमासा बिताओ, तुम सब बड़े दूर देश से आये हो, बस यही अनुग्रह मुझपर करो।" ब्राह्मण का एतादृश अनुनय सुन हमलोग बोले 'हे ब्रह्मन् हमलोग आपका वचन तब मानें यदि आप यह प्रतिज्ञा कर देवें कि चौमासे के बीतने पर हम जो मांगें सो आप देवें।" तब वह ब्राह्मण बोला "कुछ चिन्ता नहीं यदि तुम्हारा अभीष्ट मेरे वश में होवे तो अवश्य देऊंगा" जब ब्राह्मण ने ऐसी प्रतिज्ञा किया तब उसके घर में हम रह गये।

जब चौमासा बीत गया तब हमने उस ब्राह्मण से कहा कि अब तो हम जाते हैं अब वह प्रतिज्ञात वस्तु, जो हम मांगते हैं दीजिये—"यह क्या वस्तु है ?" ऐसा जब उसने प्रश्न किया तब सभों ने मुझे दिखाकर उस ब्राह्मण से कहा—"यह हममें मुखिया हैं सो इनको आप अपनी कन्या देदीजिये।" ब्राह्मण यज्ञस्वामी वाग्बद्ध होगया था सो विचार करने लगा कि अहो इन सभोंने भलेही मुझे छला। अच्छा, इसमें दोष ही क्या है यह गुणवान् है ही फिर चिन्ता क्या ! "इसप्रकार विचार कर उस ब्राह्मण ने विधिपूर्वक अपनी कन्या मुझे व्याह दियी।

रात में जब मैं वासगृह में था तो हंसकर अपनी पत्नी से कहने लगा "क्यों जी ! वे गरम और ठंडे आम के फल खाना है ?" सो सुन वह चट मुझे पहिचान गयी और मुसकुराकर बोली - कि गंवार लोग ऐसेही नगर के लोगों से ठङ्गे भी उड़ाये जाते हैं।" यह सुन मैंने उससे कहा—'अच्छा मैं गवांर न हूं, तो तुम भलेही नगर में सुख चैन उड़ाती रहो। देखो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं तुमको छोड़कर बड़ी दूर चला जाऊंगा।" मेरी ऐसी प्रतिज्ञा सुन उसने भी प्रतिज्ञा कियी, "कोई चिन्ता नहीं मैं भी प्रतिज्ञा करती हूं कि मैं तुमसे हो पुत्र जनूंगी उसी पुत्र से तुमको पकड़वा मंगाऊंगी तब तो मेरानाम सती।" अस्तु इस प्रकार जब हम दोनों में प्रतिज्ञा ठन गयी तब वह मुंह फेर सो रही और उसे नींद आगयी। मुझे नींद क्यों आवे। जब देखा कि वह गाढ़ी नींद में सो रही है

तब मैं उसको अंगुली में अपनी अंगूठी पहिना कर घर से निकल भागा और अपने साथियों में आ मिला। अब मैंने मन में विचारा कि देखूं वह कहां लौं चतुराई लड़ाती है। अस्तु, मैं अपने साथियों के साथ अपनी उज्जयिनी नगरी को लौट आया।

प्रात:काल जब वह विप्रसुता जागी तब क्या देखती है कि मैं नहीं हूं किन्तु मेरे नाम की अँगूठी अपनी अंगुली में देखकर वह विचारने लगी कि इस धूर्त ने तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखायी कि मुझको त्यागकर कहीं को प्रयाण कर दिया। अच्छा क्या चिन्ता, अब मुझे भी उचित है कि सन्ताप त्याग कर अपनी प्रतिज्ञा पालने में प्रवृत्त होऊं। इस अँगूठी पर मूलदेव नाम है सो यह तो है कि मूलदेवनाम का प्रसिद्ध धूर्त जो है सो ही यह है। लोग कहते हैं कि वह उज्जयिनी में रहता है सो अब किसी युक्ति से वहां जाकर मुझे अपना अर्थ साधना चाहिये।

इस प्रकार संकल्प कर उसने अपने पिता से कहा कि हे पिताजी मेरे पति मुझे न जाने क्यों त्यागकर चलेगये, अब उनके विना मैं यहां कैसे रहूं और सुख भोगूं, सो अब मैं तीर्थयात्रा करने जाती हूं यह हतभागा शरीर क्लेश देता है सो इसे क्लिष्ट करूं।" पिता उसके प्रस्ताव पर प्रसन्न न हुआ तो भी वह उससे आज्ञा लेकर कुछ लोगों को साथलेके बहुत साधन ले यात्रा करने को निकली। क्रमानुसार चली २ वह उज्जयिनी में पहुंची।

यहां उसने बहुत ढंग रचा, ऐसा भेष बनाया कि लोक में उस समय वही एक सुन्दरी थी मानों। अपने साथ के लोगों से उसने पहिले से ही परामर्श कर गुट बांध लिया था। उसने अपना नाम यहां सुमङ्गला प्रख्यात किया। उसके भृत्योंने नगरमें यह बात फैला दियी कि यह वेश्या कामरूप से आयी है नाम इसका सुमङ्गला है। यहां जो देवदत्ता नाम्नी गणिका थी वह उसके पास गयी उसको देखकर देवदत्ता के मन न जानें क्या बात आ गयी कि उसने उसे अपना ऐसा उत्तम भवन देदिया कि जो राजाओं के रहने योग्य है।

उसकी ऐसी प्रख्याति होतेहुए मेरे मित्र शशी के कान में पड़ी, सो, उसके मन में कौतुक उपजा और वह उससे मिलने के हेतु उसके घर पहुंचा। शशी ने

वहां जाकर उससे कहा कि कहो बीबी क्या लेती हो ? जो कहो दूं। उसने उत्तर दिया कि मैं कुछ लेती देती नहीं बस मेरी प्रतिज्ञा यही है कि जो स्वामी मेरी बात माने वही मेरे पास आवे और पशु समान मनुष्यों से मुझे कुछ भी काम नहीं है। सुमङ्गला के मुख से ऐसा बचन सुन यशी बोला "बहुत अच्छा" (१)

जब रात हुई तब यशी उसके घर को चला। वहां द्वार पर पहुंच कर उसने अपना परिचय दिया। तहां द्वारपाल ने कहा कि मेरी स्वामिनी की जो आज्ञा है सो पूरी करलो फिर तब आगे जाइयेगा। तुम स्नान तो कर ही चुके होगे तोभी अब फिर स्नान करो। यदि ऐसा न करो तो भीतर नहीं जा सकते। उस द्वारपाल का ऐसा कथन सुन यशी ने स्नान करना स्वीकार किया अब दासियां जुड़ आयीं और कोई उबटन कोई तेल मलने लगी। उबटन इत्यादि के पश्चात् स्नान का उपक्रम होने लगा। यशी तो उनकी बातों में फँस गया था उसे यह क्या विदित कि इस प्रकार समय नष्ट किया जाता है। अस्तु, इसी स्नान में पहिला पहर बीत गया। तब वह आगे बढ़ा दूसरी डेवढ़ी पर द्वारपाल ने कहा, "स्नान तो आपका हो गया किन्तु प्रसाधान (२) नहीं हुआ सो टुक यहां ठहरिये तो वहभी हो जावे।" "अच्छा" इतना कहते ही उसका प्रसाधान होने लगा इतनेमें दूसरा पहर भी बीत गया। अब वह फिर आगे चला तो तीसरे द्वार पर पहुँचा, वहां पहरुओं ने कहा कि स्नान कर वेश भूषण से सजधज कर यहां आये हो तो अब भोजन भी तो कर लो तब भीतर जाना। "बहुत अच्छा" जब उसने कहा तब दासियों ने उसे खिलवा दिया। वहां नाना प्रकारके आहारों में ऐसा विलम्ब कराया गया कि तीसरा पहर व्यतीत हो गया। अब जब कि वह वहांसे छुट्टी पाकर वासगृहके द्वार पर पहुंचा तब वहा के द्वारपालने डांटकर कहा—"दूर हो गंवार कहीं का "चौथे पहर में चला है गणिका से संगम करने, अब हट यहांसे, नहीं तो मारे घूसोंके भुर्त्ता बना दूंगा।" प्रत्यक्ष यमराज से मानों इस प्रकार डांटा गया यशी भौचक हो गया, उसके मुंहकी कान्ति उतर

(१) मैं सब स्वीकार करता हूं। (२) वस्त्राभूषणसे सजाना। शृङ्गार।

गयी अपनासा मुहँ लेकर जैसे आया था वैसेही लौट गया। इसी प्रकार सुमङ्ग-ला आदि विप्रसुतासे और और भी बहुतसे ठगे गये।

हे महाराज ! इसी प्रकार उसकी चर्चा मेरे कानोंमें पड़ी सो मैं तो धूर्त हूं स्वयं वहीं उपस्थित होऊं। दूत भेजकर सब ठीक ठाक कर लिया। बस रात के समय सज धज कर मैं चला प्रत्येक द्वारपर मैंने द्वारपालों को रुपये देकर सन्तुष्ट कर दिया सब वे नहीं रोकते थे इस प्रकार एक द्वार से दूसरे और दूसरेसे तीसरे होता हुआ मैं उसके वासगृहमें ठीक समय पर पहुंच गया। वह विप्रसुता वेश्या वेश में थी इससे मैं तो पहिचान न सका, मैं तो यही जानता था कि यह वेश्या है परन्तु वह पहिचान गयी सो वह उठकर आगे आयी और ठीक वेश्या समान हाव भाव कटाक्ष करती हुई मुझे पलंग पर ले गयी और मुझे अपने फन्देमें फँसाकर अपने अर्थ साधनमें प्रवृत्त हुई। उसकी सुन्दरता का क्या वर्णन करूं कहते नहीं बनती। अस्तु उस लोक सुन्दरी के साथ मेरी रात क्षणभर के समान व्यतीत हो गयी। यद्यपि रात बीत गयी तथापि उसके अनुराग से मैं ऐसा मुग्ध हो गया था कि उसके घर से निकलते नहीं बनता था। उसने मुझसे ऐसा प्रेम बढ़ा लिया था कि एक क्षणके लिये भी वह मेरे पास से न टलती। कुछ दिनोंके उपरान्त वह सगर्भा हो गयी, धीरे २ कई मास बीते और पयोधरके अग्रभाग काले हो चले।

एक दिन की बात है कि उस धूर्ता ने मुझे एक जाली पत्र दिया और कहा कि हे प्रभो ! देखो मेरे प्रभु ने यह पत्र भेजा है, पढ़ो क्या लिखा है मैं पत्र खोल कर बांचने लगा।

कामरूप से लिखी श्रीमान् महीपति मानसिंह का यथायोग बांचना। आगे समाचार यह है कि हे पिङ्गले तुम्हे गये बहुत दिन हो गये सो क्या कारण है कि तुम इतने दिन वहां बिलम गयी ? विदेश का कौतूहल छोड़ो और पत्र देखते चली आओ। इति शुभम्।

इस प्रकार जब मैं पत्र पढ़ चुका तब उसने बड़ाही दुःख प्रकट कर मुझसे कहा "प्यारे मैं क्या करूं, मैं परवश हूं, देखो कुछ बुरा न मानना। अब मैं

जाती हूं देखो मुझे भूल मत जाना, ।" इस प्रकार बहाना कर वह पटना चली गयी। यद्यपि मैं उससे अनुरक्त था तथापि क्या कर सकता यह जानके कि वह पराधीन है इसके साथ जाकरभी क्या करूंगा अत: महाराज मैं उसके संग पटना नहीं गया।

जब वह पटना पहुंची तब कुछ दिनों के उपरान्त पुत्र जनी। वह लड़का दिनोंदिन बढ़ने लगा। ज्यों२ बढ़ता गया त्यों २ सब कलाएँ सीखता गया, इस प्रकार सब कलाओं में वह प्रवीण हो गया। जब कि वह लड़का बारह वर्ष का हुआ तब एक दिन उसने लड़कस्वभावसे एक दासीपुत्र को लातसे पीटा। सो वह दासीपुत्र रोता हुआ कहने लगा—क्योंरे तू मुझको मारता है जिसके कि पिता का पता नहीं कि कौन है ! माता देश विदेश घूमती फिरी न जाने किस पेट रखाया और तू जन्मा। इतना सुनते ही उस बालक का मुंह उतर गया सो उसने माता से जाकर पूछा कि हे माता बता मेरा पिता कौन है और कहां है वह विप्रसुता उसकी माता क्षणभर ठहरकर बोली—"पुत्र तेरे पिता मूलदेव हैं, वह मुझे त्याग कर उज्जयिनी चले गये हैं। इतना कह वह समस्त वृत्तान्त आद्यन्त सुना गयी। माताकी ऐसी बात सुन वह बालक बोला—" माता कोई चिन्ता नहीं। अब मैं उज्जयिनी जाता हूं और उन्हें पकड़कर लेआके तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करता हूं। इस भांति माता को सान्त्वना देकर वह बालक उज्जयिनीको प्रस्थानित हुआ। उसकी माता ने उस समय उसको मेरा पता, रूप, रंग, ढंग, और चिन्ह प्रभृति सब बता दिया।

उस विप्रसुता का सुत चला चला उज्जयिनी में पहुंचा। उस समय मैं जुआड़ियोंके साथ बैठा जुआ खेल रहा था माता के बताये हुए लक्षणों से वह मुझे पहिचान गया, बस वहां पहुंच लगा जुआ खेलने; बातकी बातमें उसने हम सब जुआड़ियोंको जीत लिया। ऐसा छोटा बालक और ऐसा बड़ा धूर्त। हमलोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। इस पर से विशेषता यह कि जुएमेंजो धन उसने कमायाथा सो सब मंगनोंको देदिया। अब रातको बात सुनिये कि जब मैं सो रहा था तो न जानूं किस प्रकार से वह चुपचाप मेरे पास आया और कपासकी ढेरी पर मुझे धीरेसे उठाकर रखके मेरा पलंग लेकर चलता हुआ। जब मेरी नींद टूटी

तब क्या देखता हूं कि कूड़े के गाले पर पड़ा हूं और पलङ्ग का कहीं पता नहीं ! इससे मुझे बड़ी लज्जा हुई और इसी भी आया कि यह बात क्या है । हे देव ! दूसरे दिन जब मैं हाट में गया तो क्या देखता हूं कि वही बालक वह मेरा पलङ्ग बेच रहा है सो मैं उसके पास जाकर बोला —" अरे यह पलङ्ग कितने में बेचेगा ?" तब वह बालक बोला —" हे धूर्तशिरोमणे ! इस खट्वा का मूल्य यदा कोई देगा, यह मूल्य से न मिलेगी इसका मूल्य बस यही है कि कोई अपूर्व और अद्भुत वृत्तान्त सुनाया जाय ।" उसका ऐसा कथन सुन मैंने कहा " अच्छा सुनो मैं एक अद्भुत बात (१) सुनाता हूं अक्षर २ वह सत्य है, बूझो तो सही कि वह क्या है और यदि तुम न बूझ सको या यह कहो कि यह झूठ है तब तुम दोगले ठहरे और यह खाट मैं लेऊंगा - यदि यह प्रतिज्ञा करो तब कहूं । बस, अब प्रतिज्ञा हो चुकी अब बूझो:—

पूर्वकाल की बात है कि एक राजा के राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा, नागों के वाहन की बोछाड़ी से सूकर की प्यारी की पीठ पर राजा ने खेती कियो । जिससे अन्न उपजे जिनसे समृद्ध होकर राजा ने अपनी प्रजाओं का दुर्भिक्ष शमन किया और लोगों ने उस नरपाल की बड़ी पूजा कियी

पूर्वकाल की बात है कोउ इक रहेउ भुआल ।
दैवकोप तिसुराज्य महं परेउ महान अकाल ॥ १ ॥
नागनके वाहनन की ग्रोकार सींचो जोय ।
सूकर की जो प्रेयसी तासु पीठ पै सोय ॥ २ ॥
कीन्ह कृषी भूपाल तब उपज्यो बहुते अन्न ।
शान्त भयो दुर्भिक्ष तब भई प्रजा परसन्न ॥ ३ ॥

मेरा ऐसा बुझौवल सुन वह बालक हंसकर बोला—यह क्या अद्भुत है सुनो मैं इसका अर्थ बतलाता हूं —

नागों के वाहन मेघ हैं और धरती सूकर की प्यारी है क्योंकि जब भगवान् ने सूकर रूप धारण किया तब उसका उद्धार किया इससे यह उनकी प्रियतमा कही जाती हैं । सो उसी पृथ्वी में मेघ के जल से धान्य उपजे ।

(१) बुझौवल । पहेली ।

मुझे उस बालक का ऐसा उत्तर सुन बड़ाही आश्चर्य हुआ। तब वह बालक बोला—"अच्छा अब मैं एक बुझौअल कहता हूं देखो यह कैसा आश्चर्य है। यदि तुम उसे, जोकि अक्षर २ सत्य है बूझ जाओ तो मैं यह खट्वा तुम को दे देऊं और जो न बूझ सके तो तुम मेरे दास हुए।" मैंने जब "तथास्तु" कहा—तब उस बालक ने यह कहा—

हे धूर्तपते! पूर्वकाल की बात है कि एक बालक उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होतेही उसने अपने पावों के भार से पृथ्वी कँपा दियी। उसी क्षण वह वृद्ध (१) हुआ और उसने लोकान्तर में पांव रख दिया।

सुनहु धूर्तपति पूर्वमें प्रगट भयउ इक बाल।
ताके चरणन भारसों होइ गयो भूचाल॥ १॥
भयो वृद्ध ततकाल सो लोकान्तर गयो पांव।
धूर्तशिरोमणि बूझि यहि जीतिलेहु निजदांव॥ २॥

महाराज! मैं तो उसको यह पहेली न समझ सका और उससे बोला—कि यह बात नितान्त असत्य है ऐसा कभी हो हो नहीं सकता। तब वह बालक बोला—क्या तुम यह नहीं जानते हो कि जब हरि भगवान् ने वामन अवतार धारण किया था उस समय उनके भार से पृथ्वी कांप उठी थी और उसी समय बढ़कर उन्होंने स्वर्ग पर्य्यन्त अपना पांव नहीं बढ़ाया था? तो बस अब तुम हार गये और मेरे दास हुए। ये जो हाट के लोग (२) भी हम दोनों के पण में साक्षी हैं इनसे पूछलो और चलो मेरे साथ जहां मैं जाऊं मेरे साथ २ चलो। इतना कह उस धीर बालक ने मेरा हाथ पकड़ लिया और वहां के लोगों ने भी कह दिया कि हां तुम सचमुच हार गये अब इसके दास होगये।

अब वह बालक मुझे बांधकर अपने साथियों के साथ लेकर चला और चला चला पटने में पहुंचा और अपनी माता के समक्ष मुझे लिये दिये आकर खड़ा होगया। उसकी माता पुत्र को देखकर अति प्रसन्न हुई और मुझको सम्बोधन

(१) बढ़ना और बूढ़ा होना यह श्लेष है।

(२) दूकानदार।

कर बोली—" आर्य्यपुत्र ! मैंने भी अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी कर लियी । देखो तुमसे ही उत्पन्न हुए पुत्र से तुमको पकड़ न मंगवाया ?" इतना सुभक्के कहके वह साध्वी सबके सामने अपना सारा वृत्तान्त सुना गयी । बस अब क्या था सब लोग उसकी इस चतुराई पर बड़े ही प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करने लगे । क्यों न हो जिसका पुत्र ऐसा चतुर और बुद्धिमान् निकले और प्रतिज्ञा माता की पूरी कर देवे उसकी प्रशंसा अवश्य होती ही है । अस्तु, आज के दिन बड़ा भारी उत्सव मनाया गया और घर के लोगों के आनन्द का ठिकाना न रहा । महाराज में भी आनन्द हुआ कि ऐसी साध्वी पत्नी मिली और ऐसा योग्य पुत्र जन्मा । सो बहुत दिन उनके साथ रह के मैं फिर उज्जयिनी को लौट आया ।

इतनी कथा महाराज विक्रमादित्य को सुनाकर मूलदेव फिर बोला-" देव ! इस प्रकार भी बहुतेरी कुलललनाएं साध्वी और पतिप्राणा हैं । सभी स्त्रियां सर्वथा दुष्टा नहीं होतीं ।

इस प्रकार मूलदेव की कही कथा सुनकर महाराज विक्रमादित्य तथा उनके मन्त्री लोग बहुत ही प्रसन्न हुए । इस भांति के नाना प्रकार और भांति के आश्चर्य कर्म करते और आश्चर्य की बातें सुनते महीपति विक्रमादित्य सप्तद्वीपवती पृथ्वी का भोग करते रहे ।

दोहा ।

विषमशील महिपाल को, योगवियोगनपूरि ।
कण्वमुनी जु सुनायऊ, कथा मोहिं तहभूरि ॥ १ ॥
मदनमञ्चुकाविरह में, रह्यउं भयो बेहाल ।
इहिविधि बोध धराइके, बोलेउ दीनदयाल ॥ २ ॥
जैसे दैवसंयोग से, होतो है संयोग ।
तैसे ही सब जीवकर, हत सदैव वियोग ॥ ३ ॥
सुनु नरवाहनदत्त यह, काहउं रेख खंचाइ ।
शीघ्र हि तुमरो प्यारिहू, तुम्हें मिलेगी आइ ॥ ४ ॥
वत्सराजसुत और तुम, धरहु करहुगे भोग ।
विद्याधरचक्रवर्तिपद, भार्यासचिवसंयोग ॥ ५ ॥

बरवा ।

यहिविधि-सब कथोकर सुनि उपदेश ।
धैर्य धरेउँ, विरहीकर ह्वै गयो शेष ॥ १ ॥
पायउँ भार्य्या विद्या, खेचर राज ।
क्रम से लहेउँ आगत सकल समाज ॥ २ ॥
यह सब लहेउं वरद शिवकेर प्रसाद ।
भार्य्या-स, यश उत्तम बड़ मरजाद ॥ ३ ॥
सो सब पूर्वहिं बरनेउँ हे मुनिनाथ ।
तुम सबकर दरशन लहि भयउँ सनाथ ॥ ४ ॥

दोहा ।

यहिविधि सब मुनिवरनकहँ, अपनी कथा सुनाय ।
श्रीनरवाहन दत्तजू, कीन्हेउ मोद बढ़ाय ॥ ५ ॥
मातुल श्रीगोपालकर, बहुत बढायउ हर्ष ।
नरवाहनदत धन्य हैं जाको अस उतकर्ष ॥ ६ ॥

सोरठा ।

बितइ तहां चौमास, लहि मुनिन तुलआयसु ।
चले जु सहित हुलास, चढि विमान शुभ काम महँ ॥ १ ॥
भार्य्यासचिव सहाय, खेचर सेना तासुन ।
रही अकास जु छाय, धन नरवाहनदत्तजू ॥ २ ॥
छण महँ पहुंचे जाय, ऋषभकगिरि निजवास यत ।
सुवनमधि हरषाय, विविध भोग भोगन लगे ॥ ३ ॥
मदनमंचुका संग, औरो रत्नप्रभादि मह ।
पूरित अधिक उमंग कल्पजीवि सुख भोगेउ ॥ ४ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

यो भीत तुहिनाद्रिजा (१) कर, शशीशेखर (२) जु अभ्यर्थना

(१) तुहिन = पाला, अद्रि = पहाड़ अर्थात् हिमालय तिसकी कन्या पार्वती । (२) महादेव ।

सुनि सोत्साह बृहत्कथा कहत भे कैलासपृष्ठे (१) पुरा (२)
उपजी जो लहि आप भूतल, वररुचिकात्यायनाद्याकृती
दोन्हीं याहि प्रसिद्धि भूरि भुव पै श्रीपुष्पदन्तादिनै ॥ १ ॥
पढ़ते वा सुनते जु आदर सहित मोरे वदनसों कढ़ी
या उत्कृष्टकथा धरें मन, कृती होवें, नशें ताप सब ॥
सद्विद्याधरता सुभोगि हमशा पावें नियत (३) लोककी
ऐसो दीन्हेउ याहिवर गिरिसुताभर्त्ता (४) कृपाआगरे ॥ २ ॥

(१) कैलास पर्वत पर। (२) पूर्वसमय। (३) सदाके लिये। (४) गिरि-हिमालय, तिसकी सुता पार्वती तिसका भर्ता पति अर्थात् श्रीमहादेवजी।

ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति।

वसन्ततिलका वृत्त।

श्रीसातवाहन कुलाम्बुधिप विजात,
सङ्ग्रामराज अस भूमिपती हुए थे।
जाने जु जन्म गहि देवनभक्त ह्वै कै,
काश्मीर मंडलहिं नन्दन सों बनायो ॥ १ ॥

ताके सुवंश महं जन्मउ कल्पवृच्छ,
श्रीमान् अनन्त अस शूर जु चक्रवर्ती।
जाके अनन्त महिपालनमौलिमाणिक-
कं स्पर्श हेतु पदपीठ भयो कसौटी ॥ २ ॥

द्वाराग्रसीम पर जासु निकृत्तकंठ, (१)
त्याग के उदर नृपति केर लुठत जु मूर्धा।
सेवा में अइ हरिचक्र जितो जु कीर्ती,
सुनके मनों बसेउ होइ जु तुष्ट राह ॥ ३ ॥

उपजाति वृत्त।

वाने त्रिगर्ताधिप (२) चन्द्र केरी,
व्याही सुकन्या जनु देवि दूजी।
तमोपहा (३) सूर्यवती प्रभाकी,
जो प्रात-सन्ध्यासम विश्ववन्द्या (४) ॥ ४ ॥

दोहा।

सो देवी कश्मीर में बनवायो बहु भौन।
कल्पवृच्छ उमपुर नित आश्रित आशा जौन ॥ १ ॥
विप्रन कर आश्रय यथा अहौ जु वेदसमाज।
नानादेशन आइ तहँ तेहि सेवत द्विजराज ॥ २ ॥

---

(१) जिसका गला कटगया है। (२) जलन्धर के राजा (३) अन्धकार को नाशनेवाली (४) जगत्पूज्य।

रत्ननमौं पूरित यथा अहै जु उदधि गंभीर ।
तिमिउत्तम रत्नन सहित शोभित थे प्राचीर ॥ ३ ॥
अेतियुक्त जो भूपवर ताके रहैं गरण्य ।
तनके विभव विलास को पत्तन अपर अगण्य ॥ ४ ॥

वसन्ततिलक ।

जाह्नवनार्यमलतोयवहा वितस्ता (१)
विस्तीर्णतीर भुव पै सित सौधमण्डल (२) ।
मन्दाकिनी तट निविष्ट हिमाद्रिशृङ्ग ।
भंगी करै जु नितरां सुरमंदरा वै ॥ १ ॥
देकै असंख्य मणिमाणिक अग्रहार (३)
कृष्णाजिन (४) द्रविण पर्वत के सहस्रै ॥
विश्वम्भरा……महि नम्…………
विप्रै सदा भगवती निहचै जु पालै ॥ २ ॥
भूमण्डलैकतिलको खलु सत्यसन्ध (५)
बन्धु गुणीनकर वर्धत मित्रतौं को ॥
शत्रुकुलै (६) अशिव (७) औरं शिव वत र ।
ताको भयो कलशदेव सुनो उदार ॥ ३ ॥
अत्युग्रभूपन नमावन हेतु जोसो ।
सातो समुद्र (८) कहिं पौवन मौं समर्थ ॥
जो हा नवीन सुरकर्दृक कुम्भजन्मा (९)
श्री हर्षदेव अब नाति भये जु ताको ॥ ४ ॥
जाको सदैव गिरिशार्चन होम कर्म—
नानाप्रकार शुभदानहि उद्यमो गो ॥

(१) झेलमनदी । (२) श्वेतप्रासाद समूह । (३) राजदत्तभूमि । (४) कृष्णमृगचर्म । (५) सत्य वे प्रीति रखनेवाले । (६) शत्रुसमूह । (७) अशुभ (८, लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और शुद्धजलके समुद्र । (९) घटज ।

सुनतो जु शास्त्र व पुराणन भक्ति सोभो ।
ता देवि के व्ह क्षण चित्तविनोदहेतु ॥ ५ ॥
नाना कथामृत-सुपूर्णबृहत्कथा को ।
जो नारभाग सुमनाम्बु 'भपूर्णचन्द ॥
श्रीसोमदेव 'द्विजवर्य गुणाभिराम ।
रामात्मजो किय जु संग्रह ग्रन्थ पञ्चो ॥ ६ ॥

सो॰ठा ।

प्रवितत तरल तरङ्ग, कथा सरित्सागर अगम ॥
रच्यो सोम सउमङ्ग, सज्जन हियाह्लत मोद जो ॥

सोरठा ।

भारम्भे उ अनुवाद, यम अनुपम शुभग्रन्थको ॥
कविगण को मरजाद, रामकृष्ण बलवीर कवि ॥ १ ॥
विगह्यो स्व स्थ्य जु तासु, कछुक अंश अनुवाद करि ॥
सौंपिदोन्ह सब भासु (१) लक्ष्मीनारायण द्विजहिं ॥ २ ॥
कीन्हपूर्ण अनुवाद, लक्ष्मीनारायण कवी ॥
राधाकृष्णप्रसाद, 'शरणरि निजगुरुवरचरण ॥ ३ ॥
छपवायो सानन्द, श्रीकृष्णावर्म्मा जु यहि ॥
लहहिं सुजन आनन्द, तौ श्रम जानिय सुफल सब ॥ ४ ॥
याकर जैसो नाम, तैसो गुण निहिचै अहै ॥
कथा अनेक ललाम, एकबार पढ़िलो जये ॥ ५ ॥